स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGIST-01
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में आधार पाठ्यक्रम

प्रथम खण्ड : विज्ञान का इतिहास

द्वितीय खण्ड : आधुनिक विज्ञान का उद्भव

तृतीय खण्ड : ब्रह्मांड और सृष्टिः प्रारंभ

चतुर्थ खण्ड : पर्यावरण और संसाधन

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, इलाहाबाद - 211013

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGFST - 01

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में आधार पाठ्यक्रम

ब्लॉक

1

विज्ञान का इतिहास

इकाई 1

विज्ञान : मानव प्रयास के रूप में 7

इकाई 2

प्राचीन काल में विज्ञान 22

इकाई 3

मध्य युग 49

इकाई 4

भारत में विज्ञान का स्वर्ण युग 70

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में आधार पाठ्यक्रम

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय में स्नातक स्तरीय सभी छात्रों के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी में आधार पाठ्यक्रम पढ़ना जरूरी है। आप सोचते होंगे कि ऐसा क्यों है। इसका कारण यह है कि इस विश्वविद्यालय ने उस विचार दर्शन को अपनाया है जिसमें संसार की अनेक संस्थाएँ और विद्वान विश्वास करते हैं। इस विचार दर्शन के अनुसार स्नातक शिक्षा का आधार विस्तृत होना चाहिए। विज्ञान और प्रौद्योगिकी का आधार पाठ्यक्रम इस विचार दर्शन को दृष्टि में रखकर तैयार किया गया है। इसलिए आगे चलकर जब आप अनेक विषयों में से किसी एक में विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करना चाहें तो एक विस्तृत परिप्रेक्ष्य में अध्ययन कर सकते हैं। इससे आपको विशिष्ट ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के आपसी संबंधों को समझने में सहायता मिलेगी तथा इन क्षेत्रों के संबंध में गहरी अन्तर्दृष्टि विकसित होगी। स्नातक उपाधि के उपरांत यदि आप अपनी पढ़ाई समाप्त कर देना चाहते हों, तो यह और भी जरूरी हो जाता है कि आप ज्ञान के अनेक क्षेत्रों से परिचित हों।

जैसा कि आप जानते हैं, आज की दुनिया में विज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि लगभग कोई भी कार्य विज्ञान के बिना संभव नहीं हो पाता। यातायात, संचार, चिकित्सा, कृषि, उद्योग, शिक्षा, मनोरंजन आदि सभी विज्ञान, और प्रौद्योगिकी के रूप में उसके उपयोग पर निर्भर करते हैं। विज्ञान की वृद्धि तेज़ी से हुई है। इसका श्रेय जांच-खोज की विधि तथा अज्ञात वस्तुओं के अन्वेषण को दिया जाता है। वैज्ञानिक पद्धति ने हमारे वैज्ञानिक ज्ञान और समझ का तो विस्तार किया ही है, साथ ही सामाजिक एवं मानव-विज्ञान की अनेक समस्याओं, यहाँ तक कि व्यक्ति की निजी समस्याओं को सुलझाने में भी योगदान दिया है। इसलिए, विज्ञान अति आवश्यक है और प्रत्येक को, विशेषकर स्नातक को, यह जानना चाहिए कि विज्ञान क्या है और समाज के हित के लिए हम इससे कैसे लाभ उठा सकते हैं।

आप कह सकते हैं कि विज्ञान पूरी तरह लाभदायक नहीं है, इसका इस्तेमाल विनाश के लिए किया जा सकता है। नाभिकीय, रासायनिक या जैविक हथियार इसके कुछ उदाहरण हैं। यह इस दृष्टिकोण से भी हानिकारक है कि वैज्ञानिक दृष्टि से विकसित देश विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अपने ज्ञान का इस्तेमाल दूसरे देशों को नीचा दिखाने तथा उन देशों की दरिद्रता से अधिकाधिक लाभ कमाने में करते हैं। किंतु क्या यह विज्ञान का दोष है अथवा हमारे सामाजिक ढांचे का? उदाहरण के तौर पर, धर्म अपने आप में सही हो सकता है, किंतु समाज और देश हमेशा इसका इस्तेमाल हत्याओं, विनाश और शोषण के लिए भी करते हैं। समाज को और लोगों को अपने कार्यों की व्यवस्था बुद्धिमानी से करनी चाहिए ताकि विज्ञान का उपयोग पूरी तरह से मानव कल्याण के लिए किया जा सके।

इस प्रकार आप देखते हैं कि जब हम विज्ञान की बात करते हैं तो कई अन्य सामाजिक, आर्थिक और यहाँ तक कि नैतिक प्रश्न उभर कर सामने आते हैं। इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय का विचार समाज के विकास के लिए, मानव कल्याण तथा विज्ञान की उन्नति से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों के संदर्भ में आपको विज्ञान से परिचित कराना है। यह आधार पाठ्यक्रम इसी विचार की एक अभिव्यक्ति है। इसका संबंध विज्ञान की किसी विशेष शाखा से नहीं है क्योंकि यदि आप प्राणि विज्ञान या गणित पढ़ना चाहें तो आप इनके संगत वैकल्पिक पाठ्यक्रम लेकर इन विषयों को गहराई से पढ़ सकते हैं। इसके बजाय, यह पाठ्यक्रम बताता है कि जीवन के विविध रूप किस प्रकार एक दूसरे पर निर्भर हैं। यह मनुष्य के मस्तिष्क एवं व्यवहार, भोजन और कृषि, स्वास्थ्य, पोषण एवं औषधि, विज्ञान और उद्योग पर भी प्रकाश डालता है। इस प्रकार यह आपसे और विज्ञान से जुड़ी आपकी समस्याओं के असंख्य प्रश्नों से जुड़ा है। इस पाठ्यक्रम की सामग्री तैयार करते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि आपको अति आधुनिक जानकारी दी जाए। साथ ही, विज्ञान के क्षेत्र में राष्ट्रीय विकास के संदर्भ में भारतीय उपलब्धियों को रेखांकित किया गया है।

पाठ्यक्रम का उद्देश्य

ऊपर जितनी भी बातें कही गयी हैं, वे वस्तुतः इस पाठ्यक्रम के उद्देश्य हैं जिनसे आप :

- विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास सामान्यतः समाज के संदर्भ में और विशेष रूप से भारतीय संदर्भ में समझ सकेंगे।
- न केवल यह जानेंगे कि अतीत में क्या हो चुका है और वर्तमान में क्या हो रहा है अपितु यह भी जान सकेंगे कि भविष्य के लिए हमारे पास क्या है?
- विज्ञान की पद्धति का महत्व समझ सकेंगे और रोजमर्रा की ज़िन्दगी में आने वाली समस्याओं को हल करने में इनका उपयोग कर सकेंगे।

- जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना सकेंगे, अर्थात् अपने जीवन में जिज्ञासु प्रवृत्ति, वस्तुपरक विचारधारा और तर्कसंगत विचारों का उपयोग कर सकेंगे।
- जान सकेंगे कि विज्ञान कैसे उन प्रश्नों को हल करने का भी प्रयत्न करता है, जिनके बारे में मनुष्य सभ्यता के आरंभ से ही जिज्ञासा रखता आया है, जैसे ब्रह्मांड कैसे बना, पृथ्वी पर जीवन कैसे आया, मानव-मस्तिष्क कैसे कार्य करता है आदि।
- विज्ञान और प्रौद्योगिकी की इस क्षमता को जान सकेंगे कि यह किस प्रकार मानवीय समस्याओं को हल करने में सहायक है और स्रोतों का सही उपयोग करके अधिक अन्न उत्पादन द्वारा, स्वास्थ्य रक्षा की सही जानकारी द्वारा, उत्पादन की अधिक मात्रा बढ़ाकर, संचार व्यवस्था के सुधार द्वारा मानव के जीवन स्तर को बेहतर बनाता है।
- समाज की संरचना की प्रकृति को जान सकेंगे— जिसे जानना इसलिए आवश्यक है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी की पूरी सामर्थ्य का सबकी भलाई के लिए उपयोग हो सके।
- पत्र-पत्रिकाओं एवं समाचारपत्रों के लेखों को आलोचनात्मक ढंग से पढ़ें, हमारे देश के विकास से जुड़े प्रश्नों से संबंधित कार्यक्रमों को रेडियो पर सुनें और दूरदर्शन पर देखें और विभिन्न इकाईयों में आए मुद्दों पर अपनी सम्मति दें।
- विभिन्न इकाईयों में दी गयी सूचनाओं तथा विचारों के परिप्रेक्ष्य में हमारे देश के भविष्य से संबंधित महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अपने विचार और दृष्टिकोण बना सकें।
- विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विभिन्न उपयोगों पर आधारित सरल प्रश्नों के उत्तर दे सकें।

अग्रलिखित कथन चित्र 2.22, 3.1, 3.4, 4.1, 4.7 तथा 4.9 में प्रकाशित मानचित्रों के संबंध में हैं।

(1) भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

(2) समुद्र में भारत का जल प्रदेश, उपयुक्त आधार रेखा से मापे गये बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

© भारत सरकार का प्रतिलिप्यधिकार, 1988

आभार

राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली
(कुछ वस्तुओं के चित्र लेने की अनुमति प्रदान की)

भारतीय पुरातत्वीय सर्वेक्षण, नई दिल्ली के सौजन्य से कुछ चित्र प्राप्त हुए।

खंड 1 विज्ञान का इतिहास

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के पाठ्यक्रम का प्रथम खंड, भारत के विशेष संदर्भ में विज्ञान के इतिहास की जानकारी देता है। इस विषय पर वैसे तो बहुत सी पुस्तकें उपलब्ध हैं, जैसा कि आप इकाई के अंत में दी गयी कुछ उपयोगी पुस्तकों की सूची में देखेंगे। किंतु हमारा मकसद विज्ञान के इतिहास की विस्तृत व्याख्या करना नहीं है। बल्कि हमारा मकसद यह बताने का रहा है कि आप समझ सकें कि किस प्रकार मानवीय जिज्ञासा या मानवीय आवश्यकताओं के कारण वैज्ञानिक ज्ञान विकसित होता है। उदाहरण के लिए, पृथ्वी पर प्राप्त की जाने वाली ऊर्जा और प्रकाश का अद्वितीय स्रोत सूर्य है। हम इस बारे में जिज्ञासु हो सकते हैं कि सूर्य अपनी ऊर्जा को कैसे कायम रखता है, या यह ऊर्जा सूर्य से पृथ्वी तक कैसे यात्रा करती है। हम इस ऊर्जा को उपयोग में लाने का विचार भी बना सकते हैं, पानी गर्म करने के लिए या खाना पकाने के लिए, मशीन चलाने के लिए या फिर रेफ्रीजरेटर चलाने के लिए। इस साधारण से उदाहरण से आप समझ सकते हैं कि कैसे विकसित प्रौद्योगिकी के ज्ञान को जानने की उत्सुकता बढ़ती है।

विभिन्न समाजों में आदमी की आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। इसलिए विज्ञान भी विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न रूप से विकसित होता है। उदाहरण के लिए, प्राचीन समय के गाँव समुदाय आत्मकेंद्रित होते थे, जीवन आरामदायक था जो सूर्योदय, सूर्यास्त और मौसम के द्वारा संचालित होता था। रेल, टेलीफोन-मशीनों की तब आवश्यकता नहीं थी। दूसरी ओर, आज अतिविकसित औद्योगीकृत समाज की शीघ्रगामी संचार माध्यमों की माँग ने पराध्वनिक वायुयानों (supersonic planes) तथा उपग्रहों के विकास की आवश्यकता को जन्म दिया है।

यह भी कहा जा सकता है कि विज्ञान का उपयोग समाज को बदलता है। उदाहरण के लिए, ऐसा समाज जिसमें रेडियो, टी.वी. और पुस्तकें—जो वैज्ञानिक प्रगति का ही परिणाम है—मौजूद न हों उस समाज से बिलकुल भिन्न होगा जिससे आज हम परिचित हैं। हम यह भी पाते हैं कि कभी-कभी विज्ञान के विकास की परिस्थितियाँ एवं उसे लागू करने की परिस्थितियाँ किसी विशेष समाज में अनुकूल होती हैं। और कभी-कभी प्रतिकूल भी होती हैं। इस खंड का मुख्य उद्देश्य है प्राचीन समय में विज्ञान और समाज के बीच हुई अन्तःक्रिया को बताना। हम आशा करते हैं कि इस खंड को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि :

- यह समझ सकें कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास मानव के उस उत्साह या उद्यम का अभिन्न अंग है जिससे वह अस्तित्व की कठिनाइयों को दूर करता है, मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में सुधार लाता है, तथा प्राकृतिक जिज्ञासाओं को शांत करता है।
- विज्ञान और समाज की एक दूसरे पर निर्भरता के महत्व को जान सकें कि किस प्रकार एक निश्चित समय में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास समाज के रूप को एवं उसकी गतिशीलता को प्रभावित करते हैं जो बदले में वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी के विकास के स्तर में परिवर्तन लाते हैं।
- विज्ञान के कालक्रमिक इतिहास का संक्षिप्त परिदृश्य और इससे संबंधित सामाजिक विकास को जान सकें।
- विज्ञान के विकास की प्रक्रिया को समझ सकें तथा इतिहास के विभिन्न अर्थों में एवं विभिन्न समाजों में इसकी परिवर्तन लाने वाली भूमिका को समझ सकें। यह भी समझ सकें कि एक समाज की आवश्यकताएँ और नये विचारों को ग्रहण कर उनका उपयोग करने की सामर्थ्य किस प्रकार विज्ञान के विकास को बदलती हैं।
- प्राचीन काल में भारत में विज्ञान की प्रगति के स्तर को जान सकें।

अध्ययन दर्शिका

इससे पहले कि आप इस खंड का अध्ययन शुरू करें, हम आपको कुछ राय देना चाहेंगे जो इस अध्ययन में सहायक होगी। इस खंड की पहली इकाई समाज में विज्ञान के विकास एवं विज्ञान के बारे में कुछ महत्वपूर्ण विचारों एवं संकल्पनाओं से संबंधित है। इनमें से कुछ विचारों से आप पहली बार परिचय प्राप्त करेंगे। यह विचार आपको अमूर्त लग सकते हैं— जब तक कि आप इसके बाद आने वाली इकाइयों को न पढ़ लें। हम आपको राय देंगे कि इन विचारों को अपने मस्तिष्क में बैठने दें, चाहे इन्हें एक बार और क्यों न पढ़ना पड़े। सारा खंड पढ़ने के बाद आप

फिर इकाई 1 को पढ़ें। इकाई 2 से इकाई 4 तक विज्ञान के इतिहास को कालक्रमानुसार रेखांकित करते हुए हमने इन विचारों और संकल्पनाओं को ठोस उदाहरण दे कर समझाने का प्रयास किया है। विषय को सरल बनाने के लिए इन इकाइयों में बहुत से रेखाचित्र, नक्शे एवं टिप्पणियाँ दी गयी हैं। हम आप को राय देते हैं कि आप इनका अध्ययन भी ध्यानपूर्वक करें।

प्रत्येक इकाई में हमने बहुत से बोध प्रश्न भी दिये हैं। बोध प्रश्न प्रत्येक महत्वपूर्ण संकल्पना के बाद दिये गये हैं। प्रत्येक इकाई में "अंत में कुछ प्रश्न" भी दिये गये हैं। बोध प्रश्नों और "अंत में कुछ प्रश्न" के उत्तर भी प्रत्येक इकाई के अंत में दिये गये हैं। किंतु हम आपको यह राय देते हैं कि जहाँ तक हो सके इन प्रश्नों के उत्तर न देखें। यदि आप इन प्रश्नों को स्वयं हल कर लेते हैं तो आप विषय को अच्छी तरह समझ सकेंगे। हमारा प्रयास आप को प्रत्येक तथ्य को याद करवाने का नहीं अपितु इन तथ्यों के बीच के संबंध या विचारों और संकल्पनाओं को समझाने का रहा है।

खंड के अंत में शब्दावली में कठिन पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या की गयी है। कठिन शब्दों के लिए आप शब्दकोश की सहायता ले सकते हैं। अंत में यदि आप किसी विषय या विषय से संबंधित किसी चीज़ को अधिक गहराई से समझना चाहते हैं, तो हमने संदर्भ के लिए कुछ पुस्तकों के नाम दिये हैं जहाँ से आप संबंधित सामग्री पढ़ सकते हैं। ये पुस्तकें आपके अध्ययन केंद्र के पुस्तकालय में उपलब्ध होंगी।

- विज्ञान और समाज के परस्पर संबंधों पर आधारित एक ऑडियो प्रोग्राम, जिसका शीर्षक है 'विज्ञान और समाज', आप अपने अध्ययन केंद्र में सुन सकते हैं।

इकाई 1 विज्ञान : मानव प्रयास के रूप में

इकाई की रूपरेखा

.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
.2 विगत को वर्तमान से जोड़ना
विगत की खोज क्यों करें
विज्ञान का इतिहास क्या है
.3 विज्ञान के कुछ पहलू
विज्ञान: एक संस्था
वैज्ञानिक पद्धति
विज्ञान की परंपरा
विज्ञान का सामाजिक दायित्व
1.4 सारांश
1.5 अंत में कुछ प्रश्न
1.6 उत्तर

1.1 प्रस्तावना

विज्ञान मानव के द्वारा किया गया एक प्रयास है। प्रागैतिहासिक काल से मानव ने अपने कल्याण के लिए प्रकृति को अपने बस में करने की कोशिश की है। इसके लिए, प्रकृति को ध्यान से देखना और समझना आवश्यक था। इस ज्ञान से उसे अपनी ज़रूरत के अनुसार, प्रकृति से फल प्राप्ति के उपाय मालूम हुए। प्रकृति संबंधी इस समझ को उसने उपयोगी कार्यों के लिए तो इस्तेमाल किया ही, साथ ही और अधिक प्रश्नों-शंकाओं और जिज्ञासाओं का मार्ग भी प्रशस्त किया, जिससे उसके ज्ञान में वृद्धि हुई। परिणामस्वरूप, मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बेहतर तकनीकें भी प्राप्त हुईं।

प्रकृति को समझने और उस समझ का प्रकृति को नियंत्रित करने के लिए इस्तेमाल करने की प्रक्रिया ही 'विज्ञान' है। मानव-समाज में विज्ञान की प्रगति के दौरान होने वाले उतार-चढ़ावों की कहानी बड़ी रोचक है। जैसा कि हम कह चुके हैं, इस खंड में हम विज्ञान की इस कहानी की ही चर्चा करेंगे। निश्चय ही, आपके मन में यह जिज्ञासा हो सकती है कि आपको विज्ञान के इतिहास को जानने की क्या आवश्यकता है? आप यह भी पूछ सकते हैं कि विज्ञान के 'इतिहास' से हमारा क्या अभिप्राय है? क्या इसका अर्थ बेशुमार तारीखों, नामों और स्थानों को याद करना है? इकाई 1 में हम आपके इन प्रश्नों के उत्तर देंगे। आधुनिक मानव-समाज में विज्ञान संबंधी कुछ पहलुओं पर भी हम संक्षेप में चर्चा करेंगे। जैसा कि हम जानते हैं कि विज्ञान का मूल आदिम मानव समाज में स्थित है, अतः अगली इकाई में हम मानव समाज के उदय काल से विज्ञान की कहानी की शुरुआत करेंगे। इसमें हम देखेंगे कि एक आदिम समाज से कृषि प्रधान समाज बनने में कैसे विज्ञान का जन्म हुआ और प्राचीन युग में उसकी वृद्धि-विकास कैसे हुए।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- यह बता पाएँगे कि विज्ञान के इतिहास को जानना क्यों ज़रूरी है,
- विज्ञान के इतिहास का अर्थ बता पाएँगे, और
- वर्तमान समाज में विज्ञान के कुछ पहलुओं की व्याख्या कर सकेंगे।

1.2 विगत को वर्तमान से जोड़ना

मानव सभ्यता के इतिहास से पता चलता है कि विज्ञान की प्रगति हमेशा समान गति से नहीं होती। भारत में 2000 वर्ष पहले गणित में तथा 2500 वर्ष पहले चिकित्सा विज्ञान में आश्चर्यजनक प्रगति हुई थी। परन्तु पिछले 2000 वर्षों में यहाँ उस गति से विकास नहीं हुआ।

प्राचीन काल में भारत में जब अत्यंत जटिल गणनाएँ और सूक्ष्म अन्वेषण किये जा रहे थे, उस समय यूरोप सामान्य रूप से आदिम अवस्था में ही था। दूसरी ओर भारत पर जब ब्रिटेन का शासन और शोषण हो रहा था, यूरोप में औद्योगिक क्रांति का उद्भव और विकास हो रहा था। यह चित्र यद्यपि जटिल है किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि विज्ञान और मानव समाज परस्पर संबंधित हैं और यह दोनों मिलकर मानव सभ्यता को जन्म देते हैं।

आज हम जीवन और उसके सुख से संबंधित अनेक प्रश्नों से चिंतित हैं, जैसे :

i) ऐसा क्यों है कि हमारे देश में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के बावजूद अधिकांश जनता को भरपूर भोजन, पीने के लिए साफ़ पानी, स्वास्थ्य-सुविधाएँ अथवा शिक्षा संबंधी साधारण सुविधाएँ तक उपलब्ध नहीं है। बहुत कम लोगों को ही विज्ञान और प्रौद्योगिकी के लाभ क्यों प्राप्त हैं? बहुत ही कम लोगों को शल्यचिकित्सा आदि का लाभ प्राप्त है। अधिकांश लोगों को तो सामान्य चिकित्सा सुविधा भी उपलब्ध नहीं है। हमारे देश में अत्यंत आवश्यक औषधियाँ इतनी महँगी क्यों हैं?

ii) हमारे देश में विज्ञान और प्रौद्योगिकी उतने उन्नत क्यों नहीं है, जितने कि पश्चिमी देशों अथवा समाजवादी देशों में हैं? हज़ारों वर्ष पूर्व गौरवशाली शुरुआत के पश्चात् भी हम इतना पीछे कैसे रह गये?

iii) ऐसा क्यों है कि पश्चिमी देशों में अधिकांश लोगों के पास उन्नत और अति उत्तम मशीनें हैं, स्वास्थ्य की सर्वोत्तम देखभाल की व्यवस्था है; उनके जीवन-यापन का स्तर ऊँचे दर्जे का है, जबकि हमें यह सब उपलब्ध नहीं है?

iv) क्या यह सही है जैसा कि देश के कुछ लोग आज कह रहे हैं और जैसा कि उपनिवेशवादी कहा करते थे कि विज्ञान और भारत को एक दूसरे से कुछ लेना-देना नहीं है? वे कहते हैं कि हमारी संस्कृति केवल अध्यात्मवादी है, विज्ञान दरिद्र बनाता है जबकि अध्यात्म से सुख और शान्ति मिलती है। इसलिए हमें केवल धर्म ग्रन्थों से सरोकार रखना चाहिए, परखनलियों से नहीं। क्या ऐसा सोचना सही है? क्या विज्ञान के बिना हम रह सकते हैं? क्या हम विज्ञान की उपेक्षा कर सकते हैं?

v) विज्ञान ने जहाँ मानव का असीम हित किया है, वहीं इसका उपयोग विनाश के साधन के रूप में हुआ है। उदाहरण के लिए आज हमारे सामने एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि संभावित नाभिकीय युद्ध से दुनिया के लिए उत्पन्न होने वाले खतरे को किस प्रकार रोका जाए? एक ऐसे विश्व का निर्माण कैसे किया जाए जिसमें विभिन्न राष्ट्रों में आपसी संबंध शांतिपूर्ण हों।

आप इस प्रकार के अन्य प्रश्नों के बारे में भी सोच सकते हैं। ये प्रश्न इसलिए उठते हैं क्योंकि चेतन अथवा अचेतन अवस्था में हम विज्ञान को अपने जीवन का अंग मानते हैं और यह आशा करते हैं कि उससे हमारा जीवन स्तर अधिक अच्छा होगा। एक ओर तो हम विज्ञान से यह आशा लगाए हुए हैं। दूसरी ओर हमारे सामने ऐसी बाधाएँ हैं जो या तो विज्ञान के सही उपयोग में अड़चन डाल रही हैं या फिर विज्ञान के लाभ को कुछ ही लोगों तक पहुंचा पा रही हैं।

1.2.1 विगत की खोज क्यों करें

इन प्रश्नों का उत्तर कैसे दिया जाए, जो हमारे लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं?

हेनरी फोर्ड अमरीका के रहने वाले थे। वे यंत्रों की खोज के लिए मशहूर थे तथा उद्योगपति थे जो बड़े पैमाने पर मोटर वाहनों के निर्माण में अग्रणी थे।

एक तरीका यह है कि हम हेनरी फोर्ड के इस कथन "इतिहास थोथी बकवास है" का अनुसरण करें। इस दृष्टिकोण के अनसार पहले का समस्त उपयोगी ज्ञान वर्तमान में आ चुका होता है। वह केवल हमारी गलतियाँ होती हैं जिन्हें छोड़ दिया जाता है। परन्तु इस दृष्टिकोण से मूल प्रश्नों का उत्तर देना संभव नहीं है। उदाहरण के लिए, पिछले भाग में हमने जिस अंतिम प्रश्न को उठाया है, उसी को लें। अधिकाधिक घातक अस्त्रों के निर्माण के लिए विज्ञान का दुरुपयोग किया जा रहा है। इसके लिए रक्षा अनुसंधान कार्यों में लगे वैज्ञानिकों को ही दोष देना काफी नहीं होगा। यह देखने के लिए कि प्रभावी समूहों द्वारा अपने संकीर्ण हितों के लिए ज्ञान का उपयोग कैसे किया जाता है, हमें इतिहास को जानना होगा। आर्थिक दृष्टि से हावी होने की होड़ ने हर क्षेत्र में विज्ञान को विनाशकारी कार्यों के लिए बढ़ावा दिया, चाहे वह कबीलों का जीवन हो, कृषि प्रधान समाज हो या फिर औद्योगिक दृष्टि से उन्नत देश हों। नये आविष्कारों ने यद्यपि विज्ञान को सम्पन्न बनाया किन्तु समय के साथ इनका उपयोग भी साम्राज्यों का विस्तार करने, अपने लिए नये बाज़ारों का निर्माण करने या फिर प्राकृतिक संसाधनों पर काबू पाने के लिए किया जाने लगा और इसका लाभ हमेशा कुछेक लोगों अथवा देशों को ही मिला।

यही दृष्टिकोण उपर्युक्त अन्य सभी प्रश्नों पर भी लागू होता है। यह स्पष्ट है कि ऐसे किसी भी प्रश्न का उत्तर, जो विज्ञान की हमारे जीवन और समाज के साथ हुई प्रतिक्रिया से उत्पन्न हुआ है, विज्ञान के इतिहास को जाने बिना नहीं दिया जा सकता है। अतः विज्ञान से पूरा-पूरा लाभ उठाने के

लिए हमें इस बात को समझना होगा कि सामाजिक और आर्थिक तत्त्वों से विज्ञान किस प्रकार जुड़ा है।

विज्ञान वह साधन है, जिससे हमारी सभ्यता में तेज़ी से बदलाव आ रहा है। विगत में विज्ञान का प्रसार मंद गति से तथा अदृश्य रूप में होता था। परंतु अब विज्ञान दिन दुगुनी रात चौगुनी तरक्की कर रहा है, जिसे सभी देख सकते हैं। हमारी सभ्यता का ताना-बाना हमारे अपने जीवनकाल में ही बहुत अधिक तब्दील हुआ है और अब भी यह काफी तेज़ी से हर वर्ष बदल रहा है। यह समझने के लिए कि ऐसा कैसे हो रहा है, केवल यही जानना काफ़ी नहीं है कि विज्ञान इस समय क्या कर रहा है? इसके लिए यह बात जानना भी ज़रूरी है कि यह अपनी वर्तमान स्थिति तक कैसे पहुँचा। विभिन्न समाजों के प्रति विगत में इसकी पारस्परिक क्रिया किस प्रकार की थी तथा तत्कालीन समाज को बदलने में इसकी क्या भूमिका रही? किसी भी अन्य मानवीय संस्थान से अधिक विज्ञान में यह आवश्यक है कि वर्तमान को समझने के लिए तथा भविष्य को नियंत्रित करने के लिए उसके विगत की जानकारी हासिल की जाए। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो हमें विज्ञान का इतिहास जानना होगा। परन्तु फिर प्रश्न उठता है कि "विज्ञान का इतिहास" है क्या? हम जल्दी ही इस प्रश्न का उत्तर देंगे। पर आगे पढ़ने से पहले शायद आप निम्न प्रश्नों के उत्तर देना चाहेंगे।

बोध प्रश्न 1

निम्नलिखित कथनों में से कौन-सा सत्य (स) है और कौन-सा असत्य (अ)? नीचे दिये गये खानों में (स) अथवा (अ) लिखकर बताइए।

क) आज के हमारे महत्वपूर्ण प्रश्नों के समाधान के लिए सही दृष्टि यही होगी कि विगत में जो कुछ भी किया गया है उसकी उपेक्षा कर दी जाए। ☐

ख) आज जो मामले विज्ञान और हमारे जीवन से पूरी तरह जुड़े हुए हैं, उन्हें यदि हम समझना चाहते हैं तो हमें विज्ञान के इतिहास को देखना होगा। ☐

ग) विज्ञान और समाज से संबद्ध किसी भी मुद्दे की हमें चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। ☐

घ) यह समझने के लिए कि हमारी सभ्यता बदलने में विज्ञान किस प्रकार सहायक हुआ है, हमें विगत में विज्ञान एवं समाज में हुई पारस्परिक क्रियाओं का ज्ञान होना चाहिए। ☐

ङ) यदि हम वर्तमान को समझना और सबकी भलाई के लिए भविष्य को नियंत्रित करना चाहते हैं तो हमें भूतकाल की खोज करनी होगी। ☐

1.2.2 विज्ञान का इतिहास क्या है?

"विज्ञान का इतिहास" वैज्ञानिक खोज की घटनाओं की तिथियों का विवरण नहीं है। यह विज्ञान और मानव समाज की पारस्परिक क्रियाओं की प्रक्रिया की कहानी है। यह कहानी आदिम मानव समाज से प्रारंभ होती है और भिन्न-भिन्न प्रकार से समाजों से होकर विभिन्न युगों में से अपना रास्ता बनाती हुई आधुनिक काल तक पहुँची है (देखें चित्र 1.1)। यह वह कहानी है जो बताती है कि किसी समाज में उत्पन्न होने वाले सामाजिक और आर्थिक दबावों के कारण कैसे विशेष प्रकार के आविष्कार और परिष्कार का होना आवश्यक हो जाता है। हावी होने वाली सामाजिक शक्तियाँ धीरे-धीरे इन्हीं परिष्कारों का उपयोग समाज में अपना प्रभुत्व बनाये रखने के लिए करती हैं। समाज में ठहराव आने से प्रगति रुक जाती है। ठहराव की अवधि में विज्ञान और प्रौद्योगिकी में संयोगवश कुछ नये विचार भी उठते हैं जो अपने समय से काफ़ी आगे के होते हैं। अतः अपने समय की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में उन सबको लागू नहीं किया जा सकता और व्यवहार में नहीं लाया जा सकता। बाद में समाज के हताश और शोषित वर्गों से नये सामाजिक दल और शक्तियाँ उभर कर आती हैं। ये नये दल नये विचारों, आविष्कारों और खोजों के पूर्ण उपयोग पर बल देते हैं। इस प्रकार की माँगों और संघर्षों से एक नये समाज को जन्म होता है, जिसमें नयी शक्तियाँ प्रबल होती हैं। यह प्रक्रिया अन्तहीन नहीं होती, क्योंकि प्रत्येक चरण के साथ विज्ञान समाज को एक उच्चतर गुणवत्ता वाले स्तर पर पहुँचा देता है। प्रत्येक ऊंचे स्तर की ओर अधिक जटिल समस्याएँ और सामाजिक संबंध होते हैं, जो विज्ञान के लिए और अधिक जटिल एवं कठिन समस्याएँ पैदा कर देते हैं।

उपर्युक्त तथ्य यद्यपि मोटे तौर पर यथार्थ हैं, तो भी वास्तविक कहानी में रोचक परिवर्तन हुए हैं। उदाहरण के लिए किसी एक भौगोलिक क्षेत्र अथवा समाज में गतिरोध के कारण हमेशा उसी क्षेत्र में अथवा समाज में आमूल परिवर्तन होना ज़रूरी नहीं है। व्यापार एवं अन्य जनसंचार साधनों के माध्यम से नये विचार दूसरे भौगोलिक स्थानों में पहुँच जाते हैं। हो सकता है, वहाँ का समाज

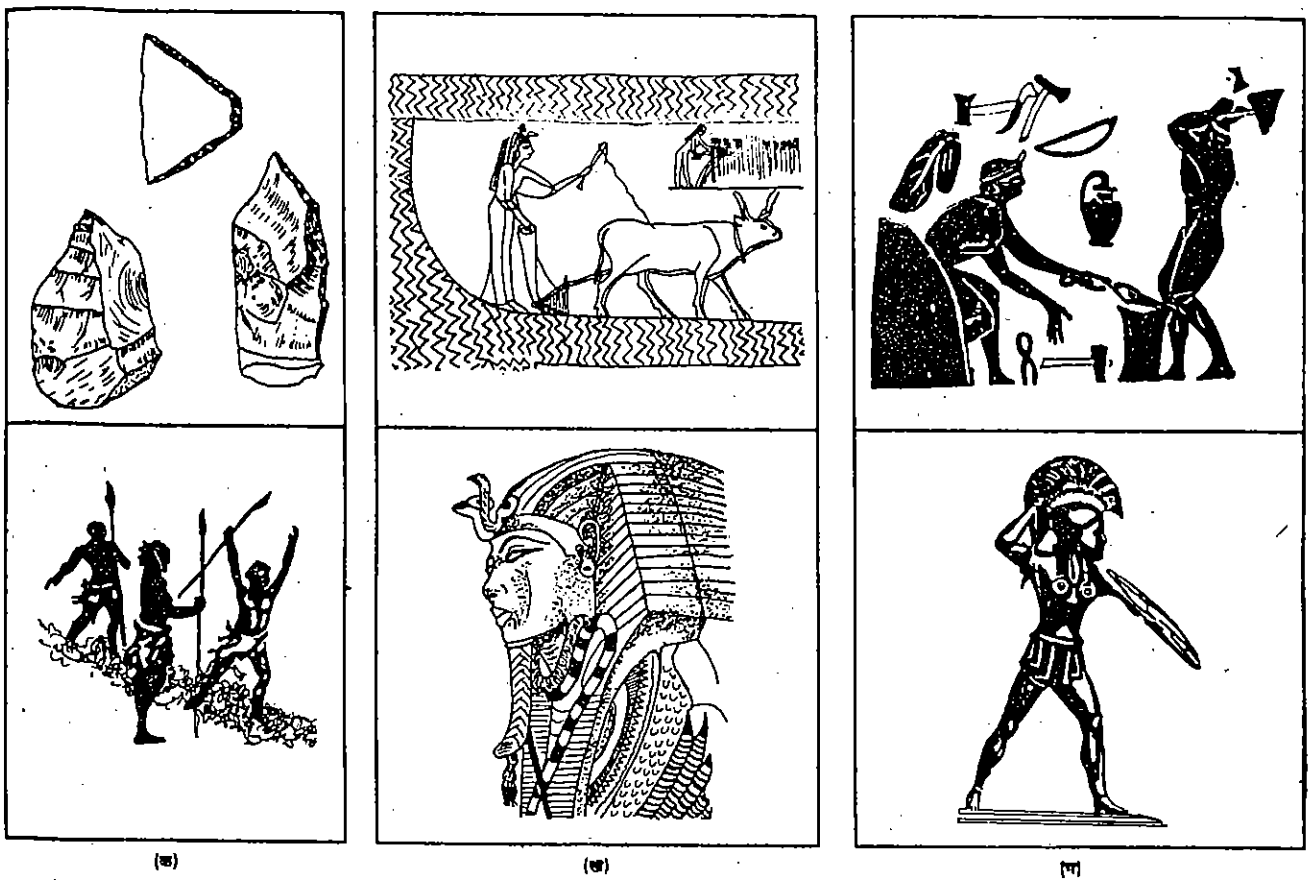

चित्र 1.1 पाषाण युग, काँस्य युग और लौह युग की तीन सभ्यताएँ। (क) आदि मानव का जीवन भोजन इकट्ठा करने और शिकार पर निर्भर था। वह मुख्यतः पत्थर के औजारों का इस्तेमाल करता था: पाषाण युग के कुछ औज़ार, आदि मानव; (ख) काँस्य युग में खेती की शुरुआत हुई और काँसे से बने औज़ारों का इस्तेमाल होने लगा: बैलों द्वारा खींचे गये हल से फसल की बुआई और दराँती द्वारा फसल की कटाई, चौदहवीं शताब्दी ईसा पूर्व के मिश्र के एक फैरों तूतनखानम; (ग) लौह युग में लोहे की खोज हुई और विभिन्न औज़ारों एवं उपकरणों में उसका प्रयोग होता था। इस युग में विभिन्न समाजों में लगातार युद्ध होते रहते थे: लोहार की दुकान में काम करता हुआ एक दास, ग्रीस का एक योद्धा।

किसी तीव्र परिवर्तन के लिए अधिक अनुकूल हो। यह भी हो सकता है कि किसी एक समाज में किसी अवधि विशेष में तो तीव्र परिवर्तन हुए हों परंतु किसी दूसरी अवधि में उसी स्थान में

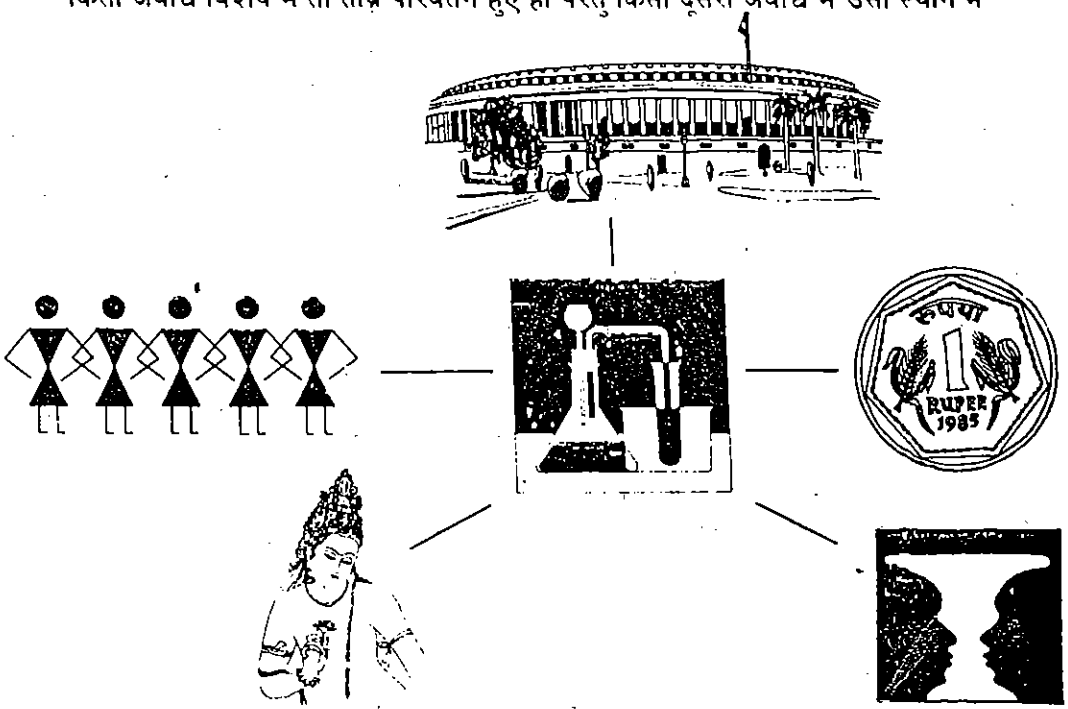

चित्र 1.2 विज्ञान का राजनीति, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था से गहरा संबंध है।

परिवर्तन की गति बहुत धीमी रही हो। आप हैरान होंगे कि ऐसा क्यों होता है? इसे समझने के लिए आपको किसी एक समाज की विशिष्ट सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों को समझना होगा। हमें उस सांसारिक परिस्थिति को भी समझना होगा जिसमें कि वह समाज क्रियाशील है। वस्तुतः इसी परिप्रेक्ष्य में हम विज्ञान के इतिहास का अध्ययन करने जा रहे हैं। विज्ञान, जैसा कि वह आज है, चंद प्रतिभाशाली व्यक्तियों द्वारा निःस्वार्थ भाव से किये गये सत्यान्वेषण का परिणाम नहीं है। न ही वह कोई बड़ा स्मारक है जिसकी भव्यता को बढ़ाने के लिए एक के ऊपर दूसरी ईंट रख दी गयी है। विज्ञान का इतिहास मानव जीवन की कहानी है। यह अपनी सभी असफलताओं, कमज़ोरियों और शक्तियों से युक्त मानवीय प्रयासों की कहानी है। यह समाज में विद्यमान अन्य शक्तियों जैसे अर्थव्यवस्था, नीति, राजनीति, मनोविज्ञान, संस्कृति व सामाजिक संगठनों के साथ हुई विज्ञान की पारस्परिक क्रिया की कहानी है (चित्र 1.2)। विगत के केवल इसी प्रकार के अध्ययन से मानव जाति के कल्याण एवं भविष्य का नियंत्रण हो सकता है।

बोध प्रश्न 2

विज्ञान और समाज में पारस्परिक क्रिया कैसे होती है, यह बताने वाले कुछ कथन नीचे दिये गये हैं। नीचे दिये हुये शब्दों में से इन कथनों के रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

क) "आवश्यकता आविष्कार की जननी है" का अर्थ है कि किसी समाज में ..... आवश्यकताओं के कारण ही ..... होते हैं।

ख) प्रभावशाली सामाजिक दल आविष्कारों का उपयोग समाज में अपनी स्थिति ..... अथवा ..... स्थापित करने के लिए करते हैं।

ग) प्रभावशाली दलों की स्थिर तथा ..... स्थिति से समाज में गतिरोध और विज्ञान में ..... उत्पन्न होता है।

घ) ..... विचार कभी-कभी सामाजिक आवश्यकता से बहुत आगे होते हैं और इसलिए या तो उनका उपयोग नहीं किया जा सकता या फिर उपयोग किये जाने से पहले उन्हें सामाजिक और आर्थिक ..... की आवश्यकता हो सकती है।

ङ) समाज के ..... वर्गों का विज्ञान में गतिरोध देने में कोई ..... स्वार्थ नहीं हो सकता।

अधीन, सुदृढ़ करने, निहित, नये, सुरक्षित, आधिपत्य, आविष्कार, गतिरोध, सामाजिक-आर्थिक, परिवर्तनों।

1.3 विज्ञान के कुछ पहलू

आज जब हम विज्ञान की ओर देखते हैं तो वह हमें एक सुसंगठित और विशिष्ट मानवीय क्रियाकलाप प्रतीत होता है। वैसे विज्ञान की यह विशेषता 300 साल से अधिक पुरानी नहीं है। उससे पहले विज्ञान सामान्य संस्कृति का ही एक अंग होता था जिसके ज्ञान के अन्य क्षेत्रों से अलग कोई पहचान नहीं थी। पुराने ज़माने में कोई व्यक्ति दार्शनिक, शिल्पी, पुरोहित-पुजारी या जादूगर होने के साथ-साथ वैज्ञानिक भी हो सकता था। परंतु आज विज्ञान एक बहुपक्षीय गतिविधि है। इसका अपना ही ज्ञान-भंडार, संगठन, विशेषज्ञ, निर्धारित कार्य और विधियाँ हैं। इससे पहले कि हम विज्ञान के इतिहास की ओर बढ़ें, विज्ञान के इन पहलूओं पर संक्षेप में विचार करना महत्वपूर्ण है।

1.3.1 विज्ञान : एक संस्था

आधुनिक युग में विज्ञान एक सामूहिक और संगठित प्रयास है जिसमें लाखों स्त्री-पुरुष सक्रिय रूप से कार्यरत हैं। वे ऐसे उपकरणों से काम करते हैं, जो कि एक आम व्यक्ति को विचित्र और रहस्यपूर्ण लगते हैं। वे अति जटिल गणना करते हैं और ऐसी भाषा बोलते हैं, जिसे समझने में आम आदमी को कठिनाई होती है। वैज्ञानिकों को सामान्यता समाज का एक अलग ही वर्ग माना जाता है। विस्तृत और विविधतापूर्ण वैज्ञानिक गतिविधि, जो कि सुसंगठित भी है, विज्ञान को एक 'संस्था' जैसा बना देती है। चित्र 1.3 में ऐसी कुछ गतिविधियाँ दर्शाई गयी हैं जिनमें वैज्ञानिक शामिल हैं।

हमारे दैनिक जीवन में विज्ञान का प्रभाव यद्यपि बढ़ गया है, परंतु हममें से बहुत लोगों को विज्ञान आसानी से समझ में नहीं आता। आजकल वैज्ञानिक स्वयं को विशेष क्षेत्रों के अध्ययन तक ही सीमित रखते हैं। अध्ययन के ये क्षेत्र इतने संकीर्ण हैं कि वैज्ञानिक समुदाय का एक वर्ग तक दूसरे वर्ग की बात को समझ नहीं पाता। उदाहरण के लिए, ऐसा भी हो सकता है कि कीटों के

चित्र 1.3 विज्ञान का उपयोग सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में ...ा व्यक्तिगत जिज्ञासा को शांत करने में हो सकता है।

क) ए.एस.एल.वी. (Augmented Satellite Launch Vehicle) राकेट का प्रक्षेपण
ख) ए.एस.एल.वी. के प्रक्षेपण का नियंत्रण कक्ष।
ग) गेहूँ की नयी किस्म के फायदे के बारे में किसानों को समझाता हुआ एक कृषि वैज्ञानिक।
घ) (ISRO, Indian space research organisation) के भूतपूर्व अध्यक्ष, स्वर्गीय श्री विक्रम साराभाई।
ङ) बंबई में स्थित भाभा एटॉमिक रिसर्च सेंटर (BARC) में जटिल उपकरणों का संचालन करते हुए वैज्ञानिक।
च) बहुत छोटे इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का निर्माण।

अध्ययन में विशेषज्ञता रखने वाला वैज्ञानिक, साँपों और बंदरों के बारे में कुछ विशेष न जानता हो। विज्ञान में किसी क्षेत्र में विशेषज्ञ बनने का अर्थ उस क्षेत्र के एक सीमित दायरे का गहन अध्ययन करना होता है। अतः यह कुछ समस्याओं के शीघ्र समाधान में सहायक होता है। फिर भी अति संकीर्ण क्षेत्र में अध्ययन करने से एक व्यापक वैज्ञानिक समझ नहीं बन पाती। इससे वैज्ञानिकों को विभिन्न तरह के प्रश्नों का आपसी संबंध देखने में कठिनाई हो जाती है जिससे ज्ञान के विकास में रुकावट आती है। विशेषज्ञता के कारण विशेष प्रकार की शब्दावली और भाषा का प्रयोग होता है जिससे साधारण लोग विज्ञान को समझने और उसके प्रयोग से लाभ उठाने से रह जाते हैं। इससे विज्ञान का विकास रुक जाता है।

जब हम विज्ञान को एक सामाजिक संस्थान मान कर चलते हैं तो विज्ञान के उद्देश्य, सामान्य अर्थ में सामाजिक उद्देश्य होते हैं। समाज के आर्थिक तथा वैचारिक वातावरण से वैज्ञानिक कार्यों की प्रेरणा मिलती है और सामाजिक जीवन के विशिष्ट क्षेत्र जैसे व्यापार अथवा "बाज़ार",

औद्योगिक विकास, कृषि, प्राकृतिक संसाधन, स्वास्थ्य आदि विज्ञान के सामने विशेष समस्याएँ रखते हैं। दुर्भाग्य से पूरे इतिहास में सैनिक गतिविधि भी विज्ञान के लिए बड़े सामाजिक लक्ष्यों में से एक रही है। ऐसे लक्ष्यों से मानव कल्याण संभव नहीं है, बल्कि ये वैज्ञानिक कार्यकलापों को विकृत कर देते हैं। आधुनिक युग मे बहुत से वैज्ञानिकों ने अपने कार्य की इस विकृति का विरोध किया है। हाल ही में विश्व भर के वैज्ञानिकों द्वारा अंतरिक्ष में घातक शस्त्रास्त्रों का विरोध इसका एक उदाहरण है।

अत: एक संस्था के रूप में विज्ञान का उपयोग, मौजूदा सामाजिक परिस्थितियों के व्यापक ढाँचे के भीतर रहते हुए विभिन्न क्षेत्रों की विशिष्ट समस्याओं को सुलझाने में किया जाता है। वैज्ञानिक श्रम के परिणामों का उपयोग मानव की बेहतरी के लिए भी किया जा सकता है तथा उनका दुरुपयोग भी हो सकता है। वस्तुत: यह इतिहास के विशिष्ट कालखंड तथा किसी समाज विशेष में हावी समूहों के हितों पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, निजी लाभ पर आधारित समाज में विज्ञान के प्रयोग से ऐसी वस्तुओं का उत्पादन नहीं होगा जिनकी वास्तव में आवश्यकता है, अपितु उन वस्तुओं का उत्पादन होगा जिन्हें बेचकर मुनाफा कमाया जा सके। ऐसे समाज में यदि शस्त्रों से मुनाफा प्राप्त हो सकता है, तो शस्त्रों का ही उत्पादन किया जाएगा, न कि रोगियों के लिए औषधियों का। हम सभी को और विशेषतया वैज्ञानिकों को, इस बात के प्रति सजग रहना होगा।

इन सब बातों से यह पता चलता है कि विज्ञान के अर्थ और मूल्य के निर्णायक अंतत: हम साधारण जन ही हैं। अत: विज्ञान को कुछ लोगों के हाथों में रहस्य बनाकर नहीं रखा जाना चाहिए। विज्ञान के क्षेत्र और संस्था के रूप में उसकी कार्य प्रणाली को हम सभी को समझना होगा। केवल तभी हम यह माँग करने में समर्थ होंगे कि विज्ञान को हमारी आवश्यकताओं से जोड़ा जाना चाहिए तथा सभी के कल्याण के लिए उसका उपयोग किया जाना चाहिए।

बोध प्रश्न 3

नीचे दिये गये कथनों में से जो ठीक हैं, उन पर सही (√) तथा जो गलत हैं उन पर गलत (x) का निशान लगाइये।

क) विज्ञान एक सामाजिक संस्था है। इसका अर्थ है कि :
   i) वैज्ञानिक कार्य संसार में बहुत सारे विशाल भवनों में किया जाता है। ☐
   ii) वैज्ञानिक कार्य बड़ी संख्या में और संगठित रूप में परस्पर संबंद्ध लोगों द्वारा किया जाता है। ☐

ख) विज्ञान में विशेषज्ञता का अभिप्राय है :
   i) किसी दिये हुए क्षेत्र की विशिष्ट समस्या का गहन अध्ययन करना। ☐
   ii) विशेषज्ञ विभिन्न क्षेत्रों के आपस में जुड़े हुए अनेक प्रश्नों के विषय में व्यापक ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ है। ☐
   iii) वैज्ञानिक विचारों को व्यक्त करने के लिए शीघ्र समझ में आने वाली भाषा का उपयोग करना। ☐
   iv) साधारण लोग विज्ञान को न तो समझ पाते हैं और न ही अपनी भलाई के लिए उसका इस्तेमाल कर पाते हैं। ☐

1.3.2 वैज्ञानिक पद्धति

हम ऊपर देख चुके हैं कि विज्ञान एक सामाजिक संस्था है जिसमें दुनिया भर के बहुत बड़ी संख्या में लोग मिलकर कार्य करते हैं। वे सुनिश्चित ढंग से कार्य करने, जैसे कि ज्ञान की सीमाओं को बढ़ाने अथवा व्यावहारिक समस्याओं को सुलझाने के लिए विज्ञान का प्रयोग करते हैं। जिन विधियों और पद्धति को वे अपनाते हैं उन्हें सामान्यता **वैज्ञानिक पद्धति** कहा जा सकता है। मानसिक और व्यावहारिक कार्यकलाप की पारस्परिक क्रिया से अन्वेषण और विज्ञान में लगातार विकास हो रहा है। विज्ञान को विशुद्ध बौद्धिक रूप नहीं दिया जा सकता। क्योंकि व्यावहारिक जीवन से विज्ञान को अलग करने से दीर्घ काल में विज्ञान विकृत हो जाता है।

वैज्ञानिक पद्धति अनेक संक्रियाओं पर आधारित है जिनमें से कुछ मानसिक और कुछ शारीरिक होती हैं। **प्रेक्षण और प्रयोग** विज्ञान के लिए अनिवार्य हैं। वैसे तो सभी लोग, चाहे वे वैज्ञानिक हों या न हों, वस्तुओं और घटनाओं का प्रेक्षण करते हैं परंतु वैज्ञानिक के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न यह होता है कि– क्या प्रेक्षण करें और कैसे करें? वैज्ञानिक को यह भी निश्चित करना होता है कि उनके प्रेक्षण उनकी भावनाओं और इच्छाओं से निरपेक्ष हों। तो भी, केवल व्यवस्थित प्रेक्षण मात्र हमें यह नहीं बताते कि 'वस्तुएँ जैसी हैं वैसी क्यों है' पूर्व ज्ञान और प्रेक्षणों के आधार पर 'क्यों' प्रश्न का उत्तर देने के लिए सामान्यता एक सैद्धांतिक ढाँचे अथवा परिकल्पना (hypothesis) का

निर्माण किया जाता है। पहली परिकल्पना को सिद्ध करने के लिए अथवा यह देखने के लिए कि किन दशाओं में एक विशेष विचार सत्य है, प्रयोग किये जाते हैं। इन्हीं से आगे चलकर ऐसे **नियम** और **सिद्धांत** बनते हैं जो निश्चय ही अपरिवर्तनीय नहीं माने जाते हैं। प्रत्येक नियम कुछ निश्चित सीमाओं अथवा दशाओं में ही सत्य होता है। वास्तविक जीवन में ही इन नियमों के प्रयोग से इनकी सीमाएँ प्रकट होती हैं, जिनसे नयी परिकल्पनाओं का जन्म होता है और अधिक प्रयोगों का सिलसिला शुरू होता है तथा बेहतर नियमों का निर्माण होता है।

वैज्ञानिक युक्ति

वैज्ञानिक पद्धति के बारे में आप विस्तार से इकाई 8 में पढ़ेंगे।

अब तक हमने समस्याओं को सुलझाने और यह निश्चित करने के लिए कि उनके हल संतोषजनक हैं, वैज्ञानिक पद्धति की चर्चा की। परंतु समस्याएँ उत्पन्न कैसे होती हैं? समस्या का हल क्यों खोजा जाए? व्यापक रूप में, आर्थिक और सामाजिक आवश्यकताएँ ही समस्याएँ प्रस्तुत करती हैं। उदाहरण के लिए, सामान्य रोगों के उपचार की आवश्यकता या किन्हीं विशेष प्रकार की जलवायु अथवा मिट्टियों में सभी के लिए अन्न पैदा करने की आवश्यकता, ऐसी ही कुछ समस्याएँ हैं। पूँजीवादी समाज में किसी वस्तु को बेचने की इच्छा भी समस्याएँ प्रस्तुत कर सकती है। किसी एक वैज्ञानिक द्वारा व्यक्तिगत रूप में खोजी गयी समस्या का हल उससे पूर्व किसी वैज्ञानिक द्वारा किये गये कार्य का ही तर्कसंगत विस्तार होता है। यह भी ध्यान देने की बात है कि महत्वपूर्ण वैज्ञानिक प्रगति ऐसे लोगों द्वारा की जाती है, जिनमें मात्र जिज्ञासा होती है और जो प्रकृति के रहस्यों को सुलझाना चाहते हैं। न्यूटन, डार्विन और आइन्स्टीन जैसे वैज्ञानिक इसी कोटि के थे।

बोध प्रश्न 4

क) नीचे दिये गये शब्दों से रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

विज्ञान की सहायता से हल की जाने वाली समस्याएँ सामान्य सामाजिक और ..... आवश्यकताओं से उत्पन्न होती हैं। सभी को ..... अथवा ..... उपलब्ध कराना ऐसी ही कुछ समस्याएँ हैं। ..... के रहस्यों के विषय में किसी व्यक्ति की ..... से भी समस्याएँ उठ सकती हैं। किसी वैज्ञानिक द्वारा ..... तौर पर सुलझाई गयी समस्या बहुधा ..... वैज्ञानिकों के कार्य का विस्तार मात्र होती है।

आवास, ब्रह्मांड, पूर्व, व्यक्तिगत, पेय जल, आर्थिक, जिज्ञासा।

ख) नीचे दिए गए चित्र 1.4 में वैज्ञानिक विधि के अलग-अलग घटक दिये गये हैं। इन्हें तीर का निशान लगाकर तर्कसंगत श्रेणी में जोड़िए। पहला चरण हमने स्पष्ट कर दिया है

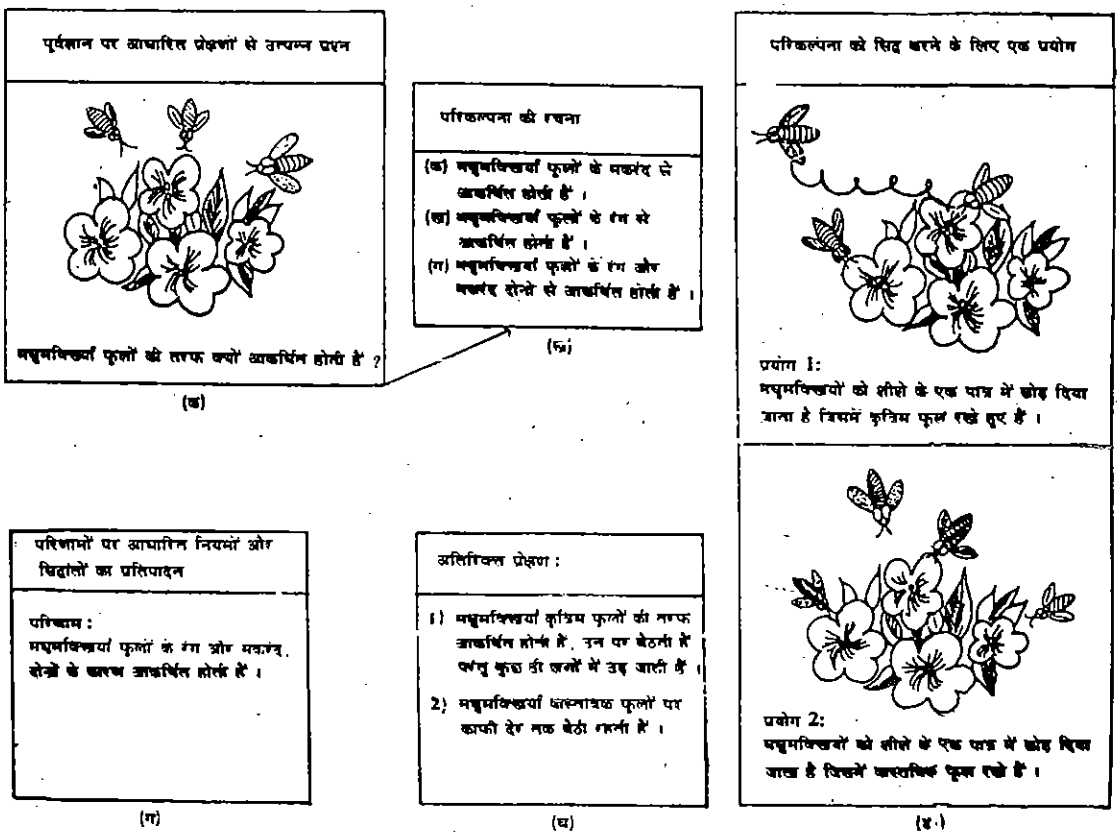

1.3.3 विज्ञान की परंपरा

वैज्ञानिक प्रयासों का एक पहलू इसे सामाजिक उपलब्धि के अन्य सभी पहलुओं से अलग कर देता है। वह यह है कि किसी भी समय पर होने वाला वैज्ञानिक प्रयास पूर्व ज्ञान पर आधारित होता है। पूर्व ज्ञान के बिना, किसी वैज्ञानिक की विधियाँ कोई बड़ी उपलब्धि हासिल नहीं कर सकेंगी। साथ ही, वैज्ञानिक कहलाने के लिए किसी वैज्ञानिक को पूर्व ज्ञान में कुछ जोड़ना होता है। किसी स्वीकृत सत्य को बदलने की कोशिश वैज्ञानिक हमेशा करते हैं। इस प्रकार वह अन्य पेशेवर लोगों, जैसे कि वकीलों, पुरोहितों और प्रशासकों से अलग होते हैं, जो कि मुख्यतया पहले से विद्यमान ज्ञान की व्याख्या अथवा उसका उपयोग करते हैं।

विज्ञान एकत्रित ज्ञान है, अर्थात् विज्ञान किसी भी समय में, उस समय तक के संचित ज्ञान का कुल परिणाम होता है। इसके अलावा किसी वैज्ञानिक का व्यक्तिगत कार्य चाहे कितना ही महान् क्यों न हो, वैज्ञानिक ज्ञान में उसका समावेश हो जाता है। वैज्ञानिक का कार्य तभी उपयोगी होता है, जब उसके समकक्ष वैज्ञानिकों द्वारा उसे स्वीकार किया जाता है। परंतु शीघ्र ही इस कार्य को पीछे छोड़ कर नया कार्य शुरू हो जाता है। विज्ञान और ज्ञान के सामान्य इतिहास में उसके कार्य की वैयक्तिकता विलीन हो जाती है। कला और संगीत के क्षेत्र में पुराने कलाकारों की रचनाओं का हमेशा मान होता है और लोगों को उन रचनाओं की तलाश रहती है। विज्ञान में, ज्ञान की केवल समसामयिक स्थिति ही महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि भूत वर्तमान में समा चुका होता है। उदाहरण के लिए, हम अब भी उस्ताद बड़े गुलाम अली खां या उस्ताद फैयाज़ खां जैसे महान् संगीतकारों के संगीत को सुनते और उसकी सराहना करते हैं। लियोनार्दो दी विंची की महान् कृति "मोना लिसा" की अनुकृतियाँ संसार भर के कला प्रेमियों द्वारा खरीदी जाती हैं। आज भी शेक्सपीयर और कालिदास की कृतियाँ पढ़ी जाती हैं। किन्तु, न्यूटन के प्रिंसिपिया मैथेमैटिका और आइन्स्टीन के मूल विख्यात शोधपत्रों को अब अधिकांश लोग पढ़ने की आवश्यकता नहीं समझते। विज्ञान के लिए तो वह रूप ही महत्वपूर्ण है, जिसमें आज उन विचारों का उपयोग हो रहा है।

कला और धर्म व्यक्ति के अपने श्रद्धा-विश्वासों और भावनाओं को आकर्षित करते हैं। इसके विपरीत, वैज्ञानिक क्रियाकलाप हमेशा वैयक्तिकता को कम करने तथा 'वस्तुनिष्ठ' आधार बनाने की कोशिश करते हैं। विज्ञान के परिणामों की किसी भी व्यक्ति द्वारा कहीं भी जाँच की जा सकती है या उन्हें दोहराया जा सकता है। यही विज्ञान की 'सार्वभौमिकता' का लक्षण है।

विज्ञान का सत्य उसके प्रयोग में निहित होता है। इसकी वैधता की अंतिम कसौटी वास्तविक जीवन में विज्ञान के परीक्षण में तथा कुछ चुने हुए लक्ष्यों के लिए प्रकृति को नियंत्रित करने में है।

बोध प्रश्न 5

नीचे कालम (2) में कुछ सामान्य विशेषताएँ दी गयी हैं। इनमें से कुछ विज्ञान से संबंधित हैं और कुछ विधि, धर्म, कला, संगीत आदि से। इन विशेषताओं को कालम (1) में दिये गये उपयुक्त शीर्षक के अंतर्गत रखें। उदाहरण के लिए, विज्ञान और विधि दोनों तर्क पर आधारित हैं।

कालम (1)	कालम (2)
क) विज्ञान	i) व्यक्तिगत भावनाओं और विचारों से मुक्त।
(ii)	ii) तर्क पर आधारित।
अन्य पहलू जैसे कि	iii) भूतकाल की महान् रचनाओं को पाने की उत्सुकता
ख) विधि (कानून)	iv) पूर्व ज्ञान का उपयोग और व्याख्या।
(ii),	v) परिवर्तन के लिए तैयार।
	vi) सामान्य परम्परा में व्यक्ति के कार्य का समावेश।
ग) धर्म	vii) नये ज्ञान का सृजन।
घ) कला और संगीत	viii) कोई भी कहीं भी परिणामों का सत्यापन कर सकता है।
	ix) निजी श्रद्धा और विश्वास का अत्यधिक महत्व।

1.3.4 विज्ञान का सामाजिक दायित्व

अब तक जिन विशेषताओं की चर्चा की गई है, वे विज्ञान को एक संस्था के रूप में, एक पद्धति के रूप में तथा एक वृद्धिशील और निरंतर परिवर्तनशील ज्ञान के भंडार के रूप में प्रस्तुत करती हैं। वे अपने आप में अनेक प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पातीं। उदाहरण के लिए, आज विज्ञान का मुख्य कार्य क्या है? विज्ञान का उद्भव एक विशेष क्रिया के रूप में क्यों हुआ? सामाजिक विकास के ढंग को विज्ञान कैसे प्रभावित करता है? वे कौन से सामाजिक कारण हैं जो या तो उसके विकास में मदद करते हैं या बाधा डालते हैं? अब हम इन प्रश्नों की व्याख्या करेंगे।

विज्ञान और उत्पादन के साधन

विज्ञान ने उत्पादन के क्षेत्र में सदैव एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मानव जाति का इतिहास मुख्य रूप से इस बात का इतिहास है कि मानव ने अपने उपयोग के लिए किस प्रकार प्रकृति पर नियंत्रण किया (चित्र 1.5)। इसमें उत्पादन के विभिन्न औज़ारों और साधनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रमुख ऐतिहासिक युगों को हम उत्पादन के मुख्य साधनों के नाम से पुकारते हैं, जैसे पाषाण युग, काँस्य युग और लौह युग। पिछली कुछ शताब्दियों में उत्पादन के साधन बहुत जटिल हो गये हैं और इसलिए अब इनका उल्लेख भिन्न आधार पर औद्योगिक युग, परमाणु युग अथवा अंतरिक्ष युग के रूप में किया गया है।

प्रारंभिक मानव सामग्रियों का निर्माण इस प्रकार करता था कि वे उसकी मुख्य आवश्यकताओं की पूर्ति में औज़ारों के रूप में काम आ सकें। इस प्रकार तकनीकों की खोज हुई। आप पढ़ेंगे कि मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कैसे तकनीकी और फिर विज्ञान का समाज में विकास हुआ।

विभिन्न देशों में विज्ञान विभिन्न समयों में फला-फूला। आम तौर पर जब-जब वस्तुओं का उत्पादन और अपने सुख को बढ़ाने के लिए किसी समाज ने अपने को संगठित किया था, तब-तब विज्ञान फला-फूला। विज्ञान के विकास से उत्पादन में और भी वृद्धि हुई। परंतु किसी एक प्रकार के सामाजिक संगठन में मात्रा और गुणवत्ता, दोनों दृष्टियों से उत्पादन की क्षमता और स्तर की एक सीमा होती है। अतः इस प्रक्रिया में जब भी उत्पादन अपनी चरम सीमा को छू लेता है तो विज्ञान में गतिरोध उत्पन्न हो जाता है। उत्पादन के असमान बँटवारे ने ऐसे शक्तिशाली वर्ग को जन्म दिया जो स्थिति को वैसा ही बनाये रखना चाहता था। विज्ञान के विकास में यह एक और रुकावट थी। किंतु जो समाज नये विचारों को ग्रहण करना चाहते थे, वे आगे बढ़ गये और वहां विज्ञान समृद्ध हुआ। जैसा कि आप अगली इकाइयों में पाएँगे, वैज्ञानिक प्रगति की सर्वाधिक लाभदायक अवधियाँ वे रहीं जिनमें वैज्ञानिकों अथवा समूहों में व्यवहार और सिद्धांत एक हो जाते थे; जहाँ चिकित्सक, कारीगर और तकनीशियन समानता के आधार पर विद्वानों से घुलते-मिलते थे।

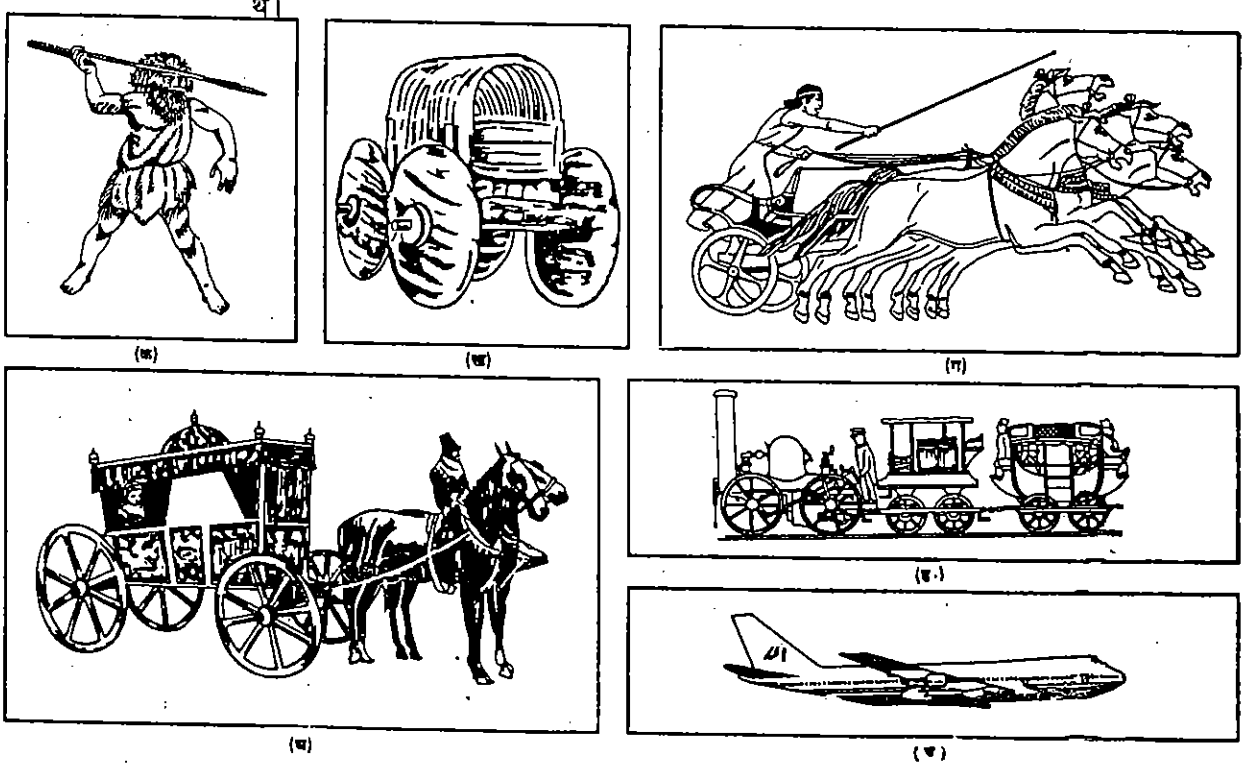

चित्र 1.5 विज्ञान और तकनीकी के विकास से उत्पादन के साधनों अर्थात् भूमि, यातायात, संसाधनों, उपकरणों, मशीनों तथा उपयोगी वस्तुएं बनाने के तरीकों में सुधार हुआ है। यहाँ यातायात के

विज्ञान की वृद्धि केवल उत्पादन ही नहीं बढ़ाती, अपितु इससे उत्पादन की विधियों में भी सुधार होता है। जब उत्पादन की विधियाँ एक नये शिखर पर पहुँचती हैं, तो समाज बदल जाता है। उदाहरण के लिए, जब उत्पादन का मुख्य साधन कृषि था, मानव बस्तियाँ अपनी विशेष जीवन-शैलियों सहित, देहाती क्षेत्र में जहाँ-तहाँ फैली थीं। परंतु जब कारखानों पर आधारित उत्पादन आम बात हो गयी तो औद्योगिक नगरों का विकास हुआ क्योंकि अब बड़ी संख्या में लोग एक ही स्थान पर कार्यरत थे और उनका जीवन ग्रामीण जीवन से बहुत भिन्न था।

परिवर्तन की इस प्रक्रिया में समाज छिन्न-भिन्न भी हो जाता है। इस प्रक्रिया में समाज के एक वर्ग का दूसरे वर्ग से संघर्ष हो जाता है और नये सामाजिक संगठन बनते हैं। यूरोप में, विकास के एक चरण में, अपने इलाकों की मुस्तैदी से रक्षा करने वाले ज़मींदारों और छोटे-बड़े व्यापारियों में टकराव हुआ। ये व्यापारी उन क्षेत्रों से बिना शुल्क दिये गुज़रना चाहते थे तथा विशाल भौगोलिक क्षेत्रों के लिए समान कानून चाहते थे। कुछ शताब्दियों पहले विज्ञान और उद्योग का विकास साथ-साथ हुआ, जबकि विज्ञान की वृद्धि और उत्पादन प्रणालियों के सुधार में आपसी घनिष्टता थी। वर्तमान चरण में विज्ञान की उस सीमा तक वृद्धि हो गई है कि उसके कारण उद्योग का विकास होता है।

विज्ञान एवं वैचारिक चिंतन

हमने ऊपर कहा है कि विज्ञान के व्यावहारिक प्रयोग से उसकी वृद्धि होती है। किंतु विज्ञान का विकास व्यावहारिक पहलू के अलावा किसी और बात पर भी निर्भर होता है। विज्ञान के अनिवार्य अंग सिद्धांत और संकल्पनाएँ हैं जिन्होंने इसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सैद्धांतिक ढाँचा व्यावहारिक उपलब्धियों को परस्पर जोड़ देता है और उन्हें बौद्धिक एकता प्रदान करता है। जैसा कि हम बाद में देखेंगे, विज्ञान में बड़े विकास तब हुए जब किसी एक सिद्धांत विशेष को सिद्ध किया गया अथवा उसका खंडन किया गया। विज्ञान में सिद्धांत का व्यवहार से घनिष्ट संबंध होता है। बहुत बार ऐसा हुआ है कि कोई महत्वपूर्ण सिद्धांत बहुत ही औपचारिक बन गया और उसका उपयोग बिना किसी नये विचार या परिवर्तन के बिलकुल यांत्रिक तौर पर होने लगा। तभी व्यावहारिक अनुभव से नया संपर्क स्थापित होने पर इसकी सीमाएँ नज़र आयीं। फिर या तो उसमें संशोधन करना पड़ा अथवा बहिष्कार। इससे विज्ञान में एक और बड़ा विकास हुआ।

हमने यह भी देखा कि किसी समाज में विज्ञान के व्यावहारिक प्रयोग का स्तर उस समय की सामाजिक परिस्थितियों पर भी निर्भर होता है। उदाहरण के लिए, जन्म को रोकने के लिए, जनसंख्या को नियंत्रित करने की वैज्ञानिक विधियाँ मौजूद हैं परंतु अनेक देशों की सामाजिक परिस्थितियाँ विज्ञान के इस प्रकार के प्रयोग की अनुमति नहीं देती। एक अन्य उदाहरण लें, कृषि में, मशीनीकरण से उत्पादकता बढ़ सकती है। परंतु ऐसे क्षेत्रों में जहाँ किसानों के पास बहुत थोड़ी ज़मीन है, मशीनीकरण संभव नहीं है। इसी प्रकार, विज्ञान के सिद्धांत समाज के उस सामान्य बौद्धिक वातावरण से भी प्रभावित होते हैं जिसमें वैज्ञानिक कार्य करते हैं। अधिकतर ऐसा भी होता है कि कोई सिद्धांत सामान्य बौद्धिक वातावरण के अनुकूल होता है, इसीलिए सार्वजनिक रूप में स्वीकृत हो जाता है परंतु वह वैज्ञानिक उपलब्धियों के विकास में बाधक होता है। अनुभव से खोजे गये नये लक्ष्यों पर आधारित नये सिद्धांत प्रचलित सिद्धांतों से बिलकुल भिन्न भी हो सकते हैं। अतः उनका प्रचलित विचारों और सामाजिक चिंतन से टकराव होता है। भूतकाल में इस टकराव से वैज्ञानिकों को पीड़ा भी हुई। उदाहरणार्थ, गैलीलियो ने टेलीस्कोप से स्वयं भी देखा और अन्य लोगों को भी दिखा दिया कि बृहस्पति गृह के चंद्रमा (उपग्रह) उसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाते हैं। यह घटना उसी तरह की थी जो गैलीलियो ने पृथ्वी के लिए कही थी कि वह सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है। उसने यह भी दिखाया कि चंद्रमा की सतह पर पहाड़ियाँ और घाटियाँ है। परंतु ये विचार उस समय प्रचलित इस धारणा के विरुद्ध थे कि ईश्वर ने संपूर्णतया गोल चंद्रमा की सृष्टि की है और यह कि सूर्य की परिक्रमा करता है। उसके नये सिद्धांत के प्रकाशित होने पर गैलीलियो पर मुकदमा चलाया गया।

फिर भी इतिहास से पता चलता है कि कुछेक अपवादों को छोड़कर विज्ञान के नये विचारों ने विरोध पर विजय पायी और समय के साथ उन्हें मान्यता भी मिली। इससे विज्ञान ने न केवल बड़ी तेज़ी उन्नति ही की अपितु सामान्यतया उसने बौद्धिक चिंतन को भी नये साँचे में ढाला।

बोध प्रश्न 6

क) किन्हीं दो बातों का उल्लेख कीजिए जिनसे विज्ञान की वृद्धि समाज में उत्पादन प्रक्रिया को प्रभावित करती है।

.....

.....

.....

.....

ख) नीचे दिये गये शब्दों से रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
विचार और ..... विज्ञान की वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विज्ञान के किसी सिद्धांत के प्रमाणित अथवा ..... होने से विज्ञान में प्रगति होती है। ये सिद्धांत समाज के सामान्य ..... वातावरण से प्रभावित होते हैं। विद्यमान सिद्धांतों से सर्वथा ..... नये सिद्धांत उभर कर सामने आ सकते हैं। प्रारंभ में तो उन्हें स्वीकार नहीं किया जाता, क्योंकि वे ..... सिद्धांतों और सामाजिक विचारों से मेल नहीं खाते। फिर भी उनकी स्वीकृति से विज्ञान में बड़े ..... होते हैं। यह स्वीकृति सामान्य सामाजिक रवैयों और ..... तथा सामान्य ..... को भी प्रभावित करती है।

चिंतन, खंडित, विकास, भिन्न, बौद्धिक, प्रचलित, संकल्पनाएँ, विश्वास।

अतः विज्ञान की प्रगति काफ़ी हद तक तत्कालीन सामाजिक चिंतन से प्रभावित वैज्ञानिक चिंतन की परंपरा पर निर्भर होती है। परंतु यह परंपरा हमारे चारों ओर के संसार से प्राप्त नये अनुभव के प्रकाश में बीच में बार-बार टूटती और पुनः स्थापित होती रहनी चाहिए।

कुल मिलाकर, इस भाग में हमने विज्ञान के, जैसा कि आज की दुनिया में उसका स्वरूप है, अनेक पहलुओं का अध्ययन किया है।

- हमने देखा कि विज्ञान एक सामाजिक संस्था है।
- वैज्ञानिक विधि का उपयोग सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओं से अथवा व्यक्तिगत कौतूहल से उत्पन्न समस्याओं का हल खोजने के लिए किया जाता है।
- विज्ञान की एक संचित ज्ञान परंपरा है। पूर्व ज्ञान ही नये ज्ञान का आधार बनता है और पूर्व ज्ञान नये ज्ञान में मिल जाता है।
- किसी भी समाज में विज्ञान को अनेक कार्य करने होते हैं। उत्पादन और विकास में यह बड़ी भूमिका निभाता है।
- विज्ञान तत्कालीन सामाजिक चिंतन से प्रभावित होता है। दूसरी ओर वैज्ञानिक विचारों में बुनियादी परिवर्तनों से समाज भी प्रभावित होता है।
- विज्ञान में सिद्धांत और व्यवहार गहन रूप से जुड़े होते हैं। अतः जहाँ व्यवहारविद् और चिंतक परस्पर मिलते और विचार-विमर्श करते हैं, उन समाजों में विज्ञान तेज़ी से प्रगति करता है। सिद्धांत के बिना व्यवहार वैसा ही अनुपजाऊ है, जैसे व्यवहार के बिना सिद्धांत।

इन सभी पहलुओं में समान बात यह है कि विज्ञान को समाज के संदर्भ में देखा जा रहा है। उसे मानव जाति की सामान्य परंपरा के एक स्वाभाविक अंग के रूप में देखा जा रहा है। इस महान् परंपरा की वृद्धि और उसमें हुए परिवर्तन को विज्ञान के बिना नहीं देखा जा सकता। इस प्रकार, इस परंपरा में इसकी भूमिका को जाने बिना हम विज्ञान को नहीं समझ सकते। इसी परिप्रेक्ष्य में हम संक्षेप में विज्ञान की पूरी यात्रा को, उसके उद्भव से लेकर आज की स्थिति तक, देखेंगे। विज्ञान की कहानी की परतें जैसे-जैसे खुलती चलेंगी वैसे-वैसे हमें अध्ययन में आसानी होगी।

1.4 सारांश

इस इकाई में हमने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास को मानवीय प्रयास के रूप में देखने की कोशिश की है। अब तक हमने निम्नलिखित विचार-सूत्रों का अध्ययन किया है :

- अपने जीवन और विज्ञान व प्रौद्योगिकी में हुई पारस्परिक क्रिया से उत्पन्न होने वाले प्रश्नों का यदि हम उत्तर देना चाहें तो हमें विज्ञान के इतिहास को देखना होगा। यदि आज के समाज में हम विज्ञान और प्रौद्योगिकी के लक्षणों को समझना चाहें और उनके भावी विकास पर एक सजग नियंत्रण रखना चाहें तो भी विज्ञान के इतिहास को जानना आवश्यक होगा।
- विज्ञान का इतिहास केवल विख्यात वैज्ञानिकों के कार्य का वर्णन नहीं है। या फिर वैज्ञानिक घटनाओं की ऐसी महत्वपूर्ण तारीखें नहीं हैं, जिन्हें बिना सोचे-समझे रट लिया जाए। यह तो मानव जीवन की कहानी है। इससे पता चलता है कि समाज में विज्ञान की वृद्धि कैसे हुई; विज्ञान में हुए विकास ने समाज की भौतिक अवस्थाओं को कैसे-कैसे प्रभावित किया। बदली

हुई परिस्थितियों से समाज में परिवर्तन आया जिससे समाज पहले की तुलना में उच्च धरातल पर पहुँच गया और विज्ञान के सामने अधिक जटिल समस्याएँ प्रस्तुत कर दीं। इस प्रकार विज्ञान की वृद्धि समाज के विकास से गहन रूप में जुड़ी हुई है।

- आज के समाज में विज्ञान को एक सामाजिक संस्था के रूप में देखा जा सकता है जिसकी अपनी विधि और परंपरा और निरंतर बढ़ने वाला ज्ञान भंडार है। विज्ञान की वृद्धि में सिद्धांत और व्यवहार गहन रूप से जुड़े हुए हैं।
- किसी समाज में, विज्ञान, उत्पादन के साधनों को प्रभावित करता है, वह केवल उत्पादन ही नहीं बढ़ाता, बल्कि समाज में उत्पादन की विधियों में सुधार भी करता है।
- विज्ञान में विद्यमान विचार और सिद्धांत तत्कालीन सामाजिक चिंतन से प्रभावित होते हैं और वैज्ञानिक चिंतन में हुए बुनियादी परिवर्तन सामाजिक रवैयों, विश्वासों और चिंतन को प्रभावित करते हैं।

1.5 अंत में कुछ प्रश्न

1) निम्नलिखित में से कौन-सा कथन विज्ञान के इतिहास की व्याख्या सबसे सही ढंग से करता है।

   विज्ञान का इतिहास :

   क) विज्ञान की खोजों का एक तिथिक्रमानुसार विवरण है।

   ख) महान् वैज्ञानिकों के योगदान का लेखा-जोखा है।

   ग) विज्ञान और समाज की पारस्परिक क्रिया की कहानी है। जिसमें यह बताया जाता है कि ये दोनों एक दूसरे को कैसे प्रभावित और परिवर्तित करते हैं।

   घ) युगों से होने वाले महत्वपूर्ण वैज्ञानिक विकासों का विवरण है।

2) निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर दीजिए।

   क) किसी समाज में

   i) वैज्ञानिक क्रियाकलाप के व्यापक क्षेत्र का निर्धारण कौन-से तत्व करते हैं?

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

   ii) किन क्षेत्रों के क्रियाकलाप विज्ञान के लिए विशिष्ट लक्ष्यों का निर्धारण करते हैं।

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

   ख) कौन-सी बातें यह निर्धारण करती हैं कि विज्ञान की उपलब्धियों का मानव की भलाई के लिए इस्तेमाल किया जाता है या विनाशकारी प्रयोजनों के लिए?

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

ग) विज्ञान के प्रयोजन और क्षेत्र के विषय में समाज में किसे निर्णय लेना चाहिए?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन करने वाले निम्नलिखित कथनों में से विज्ञान का विकास दिखाने वाले कथनों को उनके आगे "वि" अक्षर लिखकर और बाधा दिखाने वालों को "बा" अक्षर लिखकर स्पष्ट करें।

i) ऐसे प्रभावशाली दल का प्रकट होना जिसका हित चीज़ें जैसी हैं, वैसी ही बनी रहने देने में है। ☐

ii) सामाजिक संगठन ऐसा है कि वस्तुओं के उत्पादन का स्तर बढ़ जाता है तथा अपेक्षाकृत बड़ी संख्या में समाज के सदस्य सुखी हैं। ☐

iii) समाज में विज्ञान की उपलब्धियों का असमान बँटवारा। ☐

iv) किसी समाज विशेष में, उत्पादित वस्तुओं की परास (range) और उनके उत्पादन का स्तर दोनों ही, संख्या और गुणवत्ता की दृष्टि से सीमित होते हैं। उत्पादन में एक तृप्ति की स्थिति आ जाती है। ☐

v) समाज नये विचारों को ग्रहण करके उत्पादन की नयी विधियाँ अपना लेते हैं। ☐

vi) जो लोग स्वयं हाथों से काम कर सकते हैं तथा वे जो केवल मानसिक कार्य कर सकते हैं, मुक्त रूप से पारस्परिक क्रिया करते हैं और उन दोनों से बराबरी का बरताव किया जाता है। ☐

1.6 उत्तर

बोध प्रश्न

1) क) अ ख) स ग) अ
घ) स ङ) स

2) क) सामाजिक-आर्थिक, आविष्कार
ख) सुदृढ़ करने, आधिपत्य
ग) सुरक्षित, गतिरोध
घ) नये, परिवर्तनों
ङ) अधीन, निहित

3) क) i) × ii) √
ख) i) √ ii) × iii) × iv) √

4) क) आर्थिक, पेय जल, आवास, ब्रह्मांड, जिज्ञासा, व्यक्तिगत, पूर्व
ख) क, ⟶ ख, ⟶ ङ, ⟶ घ, ⟶ ग, ⟶ क

5) क) i, ii, v, vi, vii, viii
ख) i, ii, iv
ग) iv, ix
घ) iii, iv, ix

6) क) किसी समाज में विज्ञान के विकास से :
i) उत्पादन में वृद्धि होती है।
ii) उत्पादन की विधियों में सुधार होता है, जैसे कि आज के समाज में सुधरे औज़ार, मशीनें या कंप्यूटर आदि।

ख) संकल्पनाएँ, खंडन, बौद्धिक, भिन्न, प्रचलित, विकास, विश्वास, चिंतन।

अंत में कुछ प्रश्न

1) ग)

2) क) i) किसी समाज में वैज्ञानिक कार्यकलाप के व्यापक क्षेत्रों का निर्धारण समाज की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों तथा तत्कालीन वैचारिक वातावरण द्वारा होता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी समाज में, लोगों की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति करना अधिक महत्वपूर्ण है तो विज्ञान पहले इन्हीं का समाधान करेगा। लेकिन यदि कोई समाज बाज़ार की अर्थ-व्यवस्था पर स्थित है तो वह उन क्षेत्रों में वैज्ञानिक कार्यकलाप को प्राथमिकता देगा जो उसके मुनाफ़े में वृद्धि करें, जैसे हथियारों अथवा उपभोक्ता उत्पादों, जैसे इलेक्ट्रॉनिक्स उत्पादों आदि का निर्माण। इस संदर्भ में, आप वर्तमान भारतीय समाज का विश्लेषण करें।

ii) व्यापार, स्वास्थ्य, संसाधनों का उपयोग और प्रबन्ध, कृषि, उद्योग, यातायात, संचार, सैनिक गतिविधि आदि विशिष्ट क्षेत्र ही विज्ञान के लिए विशिष्ट लक्ष्य प्रस्तुत करते हैं।

ख) विज्ञान का उपयोग अथवा दुरुपयोग इस बात पर निर्भर है कि समाज में प्रभावशाली दल कौन से हैं तथा उनके हित-स्वार्थ किन वस्तुओं में निहित हैं। ये बातें उस विशेष काल द्वारा भी निर्धारित की जाती हैं जिसमें वह समाज स्थित तथा कार्यशील होता है।

ग) हमारे जैसे साधारण लोगों को यह तय करना चाहिए कि समाज में विज्ञान को किन प्रयोजनों के लिए और कैसे इस्तेमाल करना चाहिए। उदाहरण के लिए, हमारे समाज में विज्ञान का उपयोग केवल सेटेलाइट (उपग्रह) छोड़ने, नाभिकीय (न्यूक्लियर) रिऐक्टर बनाने या दक्षिणी ध्रुव प्रदेश में अभियान दल भेजने के लिए ही नहीं, अपितु स्वच्छ पेय जल, भोजन, मकान आदि उपलब्ध कराने के लिए तथा समुचित स्वास्थ्य सेवा, बेहतर यातायात, बिजली आदि उपलब्ध कराकर जीवन-स्तर को बेहतर बनाने के लिए भी करना चाहिए।

3) i) बा ii) वि
iii) बा iv) बा
v) वि vi) वि

इकाई 2 प्राचीन काल में विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
2.2 आदिम मानव समाज
भोजन इकट्ठा करना और शिकार
आदिम जीवन का भौतिक आधार
आदिम जीवन का सामाजिक आधार
विज्ञान की उत्पत्ति
पाषाण युग का अंत
2.3 कृषि और सभ्यता
कृषि और सभ्यता का उद्भव
कांस्य युग की वैज्ञानिक और तकनीकी उपलब्धियाँ
सिंधु घाटी की सभ्यता
काँस्य युग की सभ्यता का पतन
2.4 सारांश
2.5 अंत में कुछ प्रश्न
2.6 उत्तर

2.1 प्रस्तावना

इकाई 1 में हमने समझा कि हमें विज्ञान के इतिहास को क्यों पढ़ना चाहिए और विज्ञान के इतिहास का क्या अर्थ है। हमने जाना कि आज की दुनिया में विज्ञान क्या है आज विज्ञान एक सामाजिक संस्था है। इसकी अपनी पद्धति और व्यवहार है। विज्ञान की परंपरा की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। अब तक हमने विज्ञान और समाज की अंतः क्रिया को सैद्धांतिक स्तर पर समझने का प्रयास किया है। अब हम देखेंगे कि पिछले युग में विज्ञान का विकास कैसे हुआ और यह अपनी वर्तमान स्थिति तक कैसे पहुँचा?

इसके लिए हमें अपना पाठ विज्ञान की उत्पत्ति के अध्ययन से शुरु करना पड़ेगा। ऐसा कहना तो आसान है, पर करना बहुत मुश्किल। जब हम अतीत पर विचार करते हैं तब यह जानने में काफ़ी कठिनाई होती है कि वास्तव में कौन-सी घटनाएँ घटी थीं। वे स्रोत जो उस समय की विज्ञान की कहानी कहते हैं, मानव कला और संस्थाओं के इतिहास में छिपे हुए हैं और उनको ढूँढ निकालना है। उस समय के हमारे पूर्वजों के जीवन, कार्यकलापों और रीति-रिवाज़ों से हमारा विज्ञान आरंभ हुआ। इसलिए प्राचीन युग के विज्ञान को उस समय के लोगों के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के अध्ययन से ही समझा जा सकता है।

इतिहासकारों ने प्राचीन काल के लोगों के जीवन, सामाजिक संगठन, रीति-रिवाज़ और संस्कृति का अध्ययन किया है। उन्होंने प्राचीन प्रमाणों और लिखित दस्तावेज़ों के आधार पर उस युग के लोगों के जीवन का ढाँचा तैयार किया है। प्रमाणों के इस खजाने के आधार पर हमने आदि मानव समाज में विज्ञान के उद्भव और विकास की कहानी तैयार की है। लेकिन इस कहानी को पढ़ते समय याद रहे कि यह कथा साहित्य नहीं है। इसकी हर घटना निश्चित प्रमाणों पर आधारित है, और हो सकता है कि नये प्रमाण मिल जाने पर यह कहानी बदल जाए।

इस इकाई में हम आदि मानव समाज की उन विशेषताओं का अध्ययन करेंगे जिनके फलस्वरूप बाद में विज्ञान की उत्पत्ति हुई। हम यह अध्ययन करेंगे कि किस तरह आदिम समाज का कृषि-आधारित समाज में रूपांतरण होने पर विज्ञान का उद्भव और विकास हुआ। आदि मानव पत्थर के औज़ारों का उपयोग करता था। अतः इस युग को 'पाषाण युग' कहते हैं। कृषि के साथ मानव इतिहास में एक नये युग ने जन्म लिया जिसे 'काँस्य युग' कहते हैं। इस युग में भारतीय उपमहाद्वीप की घटनाओं की भी चर्चा की जाएगी। इकाई 3 में हम दूसरे ऐतिहासिक युग का उल्लेख करेंगे जिसे लौह युग कहते हैं।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- आदिम समाज के रीति-रिवाज़, तकनीकी और अन्य विशेषताओं को समझ सकेंगे जिन्होंने विज्ञान के उत्थान में मदद दी।
- यह बता सकेंगे कि किस प्रकार आदिम समाज ने कृषि पर आधारित सभ्यता में प्रवेश करने पर विज्ञान को जन्म दिया।
- यह विवेचन कर सकेंगे कि किस प्रकार नगरों के विकास, नगरों के बीच व्यापारिक संबंध तथा सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं ने विभिन्न वैज्ञानिक क्रियाओं को जन्म दिया।
- कांस्य युग में विज्ञान की प्रगति को रोक देने वाले सामाजिक परिवर्तनों के बारे में बता सकेंगे।

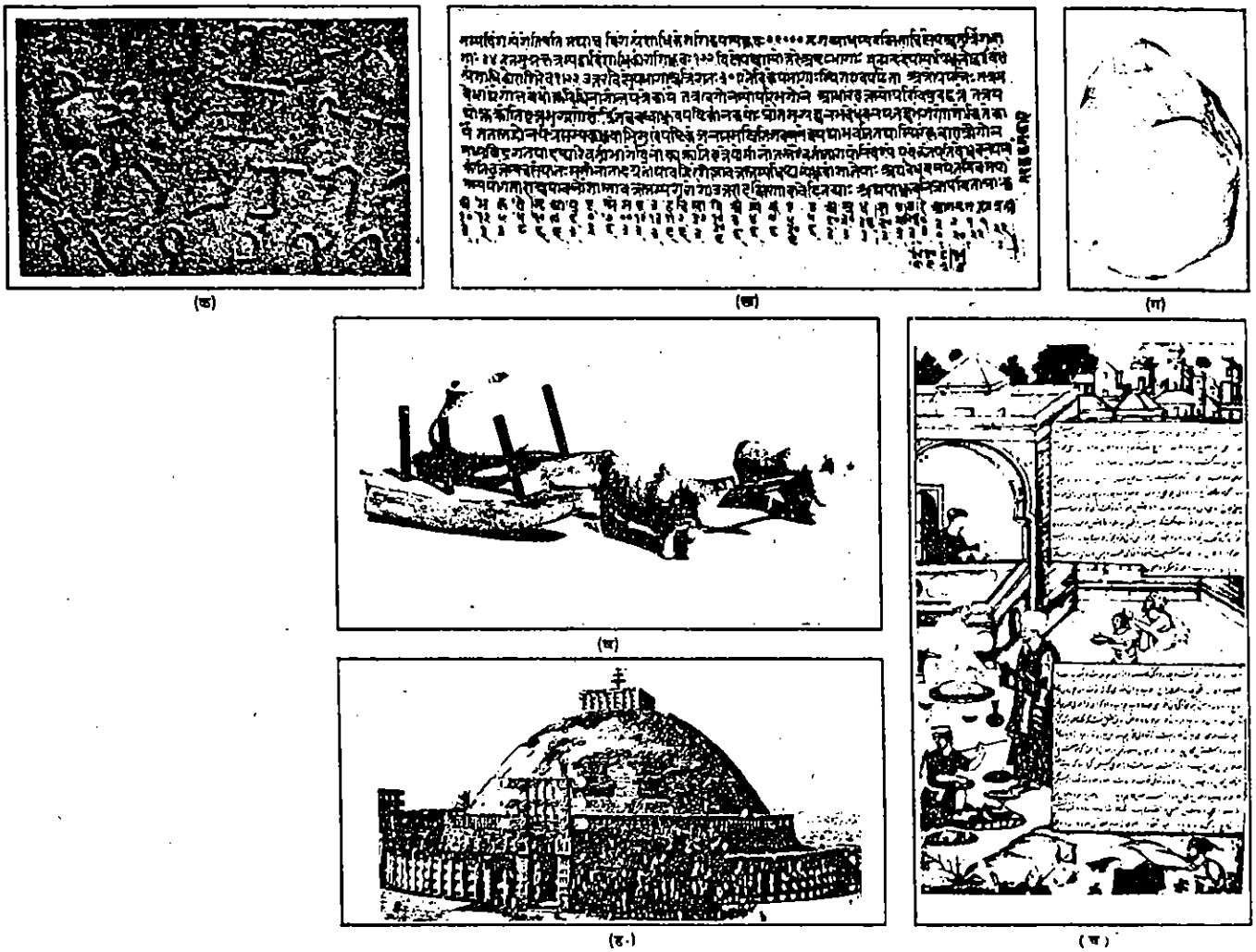

चित्र 2.1 किसी समाज के जीवन और काल की संरचना के लिए कुछ ऐतिहासिक स्रोत।
क) सम्राट अशोक के समय का शिलालेख।
ख) सन् 400 ई. में लिखे गये सूर्य सिद्धांत की प्रतिलिपि जो सोलहवीं सदी में बनायी गयी।
ग) पत्थर की कुल्हाड़ी। (घ) मोहनजोदाड़ों से प्राप्त खिलौना गाड़ी। (ङ) सांची स्तूप।
च) मुगलकालीन लघु चित्र।

2.2 आदिम मानव समाज

विज्ञान की उत्पत्ति के लिए हमें मानव समाज की उत्पत्ति का अध्ययन करना पड़ेगा। अपनी प्रारंभिक अवस्था में मानव का जीवन भोजन इकट्ठा करने और जंगली जानवरों के शिकार पर ही निर्भर था (चित्र 2.2)।

2.2.1 भोजन इकट्ठा करना और शिकार

मनुष्य को जीवित रहने के लिए भोजन और विभिन्न ऋतुओं से तथा जंगली जानवरों से अपनी रक्षा करने की आवश्यकता थी। इन दोनों ही कार्यों के लिए उसने समूह में रहना उचित समझा।

चित्र 2.2 आदि मानव समूह में शिकार करता था। प्रागैतिहासिक मानव द्वारा बनाया गया गुफा चित्र।

जहाँ भी मनुष्य रहे, वहाँ उन्होंने पेड़-पौधों से भोजन की तलाश की और पौधों की जड़ों को खोद कर भोजन प्राप्त किया। इस तरह उनको पता चला कि सही भोजन क्या है और उसको कैसे प्राप्त किया जा सकता है। यह जानने के बाद कि कौन से जानवर ख़तरनाक हैं और कौन से नहीं, उनसे बचने के उपाय भी मनुष्य ने जान लिये थे। यह ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को देना भी ज़रुरी था जिससे उनका सामूहिक जीवन निरंतर चलता रहता।

यह परंपरागत ज्ञान औज़ार और तकनीकों के रूप में उभर कर सामने आया। अचानक तोड़ी गयी पेड़ की टहनी अथवा किसी पत्थर से मनुष्य को पेड़ से फल तोड़ने या पेड़ की जड़ खोदने में मदद मिली तथा जानवरों को मारने और आत्मरक्षा करने में सहायता मिली। समय के साथ पुराने औज़ारों और हथियारों में सुधार होता गया और उन औज़ारों को बनाने की नयी विधियाँ भी जान ली गयीं। तकनीक की तरह औज़ार बनाने का यह विशेष ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचता रहा। जीवनयापन की कठिन परिस्थितियों में भोजन इकट्ठा करना और शिकार करने का काम सामूहिक रूप से होने लगा। उन्हें भोजन परिरक्षण (सुरक्षित रखने) की विधि मालूम नहीं थी इसलिए इसे शीघ्र खाना आवश्यक था। इस तरह अधिक भोजन को आपस में बाँटने की आवश्यकता महसूस हुई।

इस तरह चीजों को आपस में बाँटने की सामाजिक प्रथा ने जन्म लिया। बिशेषकर उस समय जब उन लोगों को अक्सर यह अनुभव होने लगा कि अधिक लोगों के साथ मिलकर शिकार करने या भोजन इकट्ठा करने से अधिक और बेहतर भोजन मिलता है। साथ ही सुरक्षा की दृष्टि से यह बेहतर होता है। इस प्रथा के बाद छोटे समूह बनने लगे। ऐसे समाजों की अपनी कुछ विशेषताएँ थीं। उनकी पहचान उनके विशेष भोजन से होने लगी। इस विशेष भोजन को टोटम (totems) कहते थे। उस समाज की जनसंख्या पर्यावरण और कुल उपलब्ध भोजन की मात्रा पर निर्भर थी। भारतीय उपमहाद्वीप में पाषाण युग में जनसंख्या का अनुपात कदाचित् प्रति मनुष्य 25 वर्ग कि.मी. से अधिक नहीं था।

ये समूह भोजन की तलाश करते समय अक्सर एक-दूसरे को मिल जाते थे। कुछ समय बाद इन मुलाकातों के दौरान उपहार लेने-देने का सिलसिला शुरु हुआ। इस लेन-देन से भोजन में सुधार हुआ। भोजन की अधिक किस्में उपलब्ध होने लगीं। औज़ार बनाने और उनका उपयोग करने की नयी विधियों का भी लेन-देन होने लगा। आरंभ में इस तरह भोजन का लेन-देन और समूहों में आपसी मेल-मिलाप त्यौहार की तरह मनाये जाते थे। इस मेल-मिलाप से कला, नृत्य, गायन, सामाजिक रीतियों और संस्कारों तथा पूजा आदि का जन्म हुआ। यह स्वाभाविक था कि इस तरह आपस में चीज़ें बाँटने और मेल-मिलाप से आपस में बोलने, किसी चीज़ विशेष को एक ही नाम से पुकारने और चीज़ों की मात्रा ज्ञात करने के लिए तोलने जैसी बातों की ज़रूरत महसूस हुई। इससे भाषा का विकास हुआ। भाषा ने इस तरह समाज को एक सूत्र में बाँधने में सहायता की और साथ ही उस समय तक के संचित ज्ञान को दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने में सहयोग दिया।

अब तक हमने आदि मानव समाज का बहुत ही सामान्य चित्र पेश किया है। आगे हम इसकी पूरी चर्चा करेंगे। हम आदि मानव के औज़ार, कपड़े आदि विषयों की विशेष जानकारी देंगे और बताएँगे कि मनुष्य ने खाना पकाने के लिए 'आग' का उपयोग किया। ये सभी विशेषताएँ आदि मानव के जीवन का भौतिक आधार दर्शाती है।

वैज्ञानिक प्रायः प्राचीन स्थानों की खुदाई करके प्राचीन मानव समाजों, विशेषकर प्रागैतिहासिक काल का अध्ययन करते हैं। ऐसे वैज्ञानिकों को पुरातत्त्वविद् कहते हैं। इन पुरातत्व सर्वेक्षणों में मिले शिल्प जंतुओं और पौधों के अवशेष, वास्तुकला आदि प्राचीन इतिहास को पुनः गठित करने में मदद करते हैं। खुदाई में मिली अधिकांश वस्तुओं को संग्रहालय में रखा जाता है जहाँ कोई भी उन्हें देख सकता है।

2.2.2 आदिम जीवन का भौतिक आधार

आदि समाज ने जानवर पकड़ने और भोजन इकट्ठा करने, उसे एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने और पकाने के लिए साधनों (उपकरणों) का आविष्कार किया। प्रकृति से अपनी रक्षा करने के लिए वह वस्त्र पहनने लगा और उसने गुफ़ाओं में आश्रय ढूँढा। आदि मानव के जीवन का भौतिक आधार उन औज़ारों और कलात्मक वस्तुओं में दिखाई देता है जो पुरातत्व सर्वेक्षणों में

पाये गये हैं। ये सभी औज़ार पत्थर के बने हैं। इसीलिए उस युग को **'पाषाण युग'** के नाम से जाना जाता है।

उपकरण और औज़ार

खोदने फेंकने या छीलने आदि कार्यों के लिए पत्थरों को विशेष आकार दिया जाता था। विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में समय के साथ-साथ इनके आकार निर्धारित हो गये। ये आकार इस प्रकार रूढ़ हो गये कि आदिवासी कबीलों में वे आज तक इस्तेमाल हो रहे हैं। आप शिकार, खुदाई और किसी वस्तु को आकार देने के लिए प्रयोग किये जाने वाले वर्तमान औजारों की पाषाण युग के औज़ारों से तुलना कीजिए (चित्र 2.3)। इनको देखकर आपको लगेगा कि हमने कितना लंबा सफ़र तय कर लिया है।

चित्र 2.3 आदि मानव द्वारा इस्तेमाल किये गये पत्थर के कुछ औज़ार। (1) लगभग 7,00,000 वर्ष पुराना गँडासा। (2) पेड़ काटने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला लगभग 3,00,000 वर्ष पुराना औज़ार। (3) फलक, (4) बाणाग्र और (5) सुआ लगभग 60,000 वर्ष से 25,000 वर्ष पुराना। (6) पेड़ काटने के लिए लगभग 4,000 वर्ष पुरानी पत्थर की छेनी।

औज़ार बनाने का एक रोचक पक्ष यह है कि किसी औज़ार को बनाने से पहले उसके बनाने वाले के दिमाग में उसका 'विचार' आया होगा। पुरातत्व के सबूत यह दर्शाते हैं कि पहले बड़े-बड़े पत्थरों को निश्चित आकार में काटकर औज़ार बनाने की उसी प्रकार योजना बनायी गयी जिस प्रकार कोई इंजीनियर किसी मशीन के पुर्ज़े तैयार करने के लिए बनाता है। इसे बेहतर तरीक़े से समझने के लिए चित्र 2.4 देखिए। सजग दूरदर्शिता की इस प्रक्रिया को अभिकल्पना (design) और योजना (plan) का प्रमुख भाग बनाना था और यही विज्ञान की विशेषकर, प्रायोगिक विधियों की विशेषता है। यह विशेषता किसी वस्तु को बनाने की विभिन्न विधियों के बाद उपलब्ध होती है। आज भी हम देखते हैं कि किसी वस्तु को बनाने से पहले उसके नमूने और रेखाचित्र तैयार किये जाते हैं। बाद में उस वस्तु को भूल और सुधार की प्रणाली के आधार पर ही ठीक किया जा सकता है।

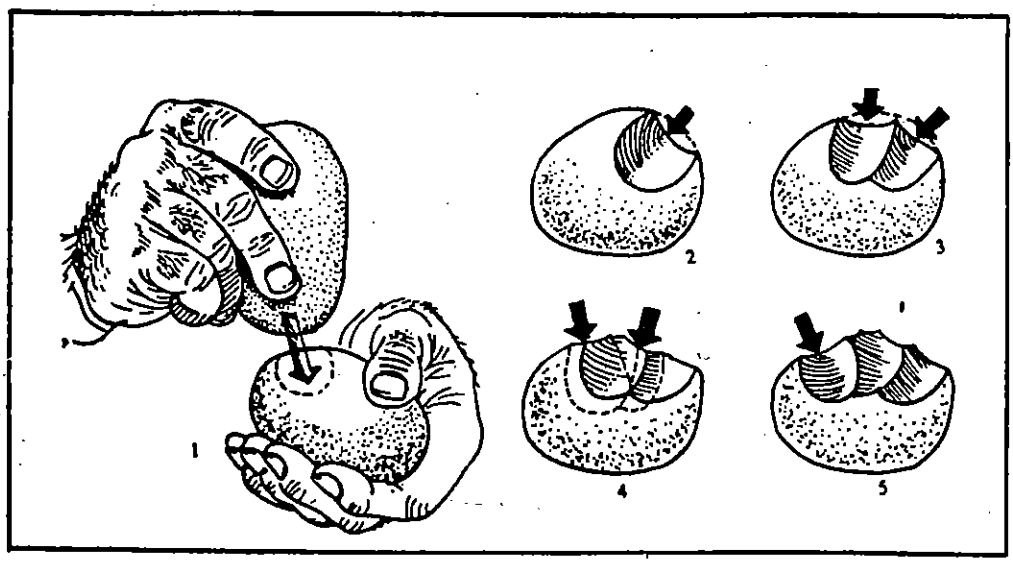

चित्र 2.4 औज़ार बनाने से पहले औज़ार बनाने वाला अपने दिमाग में उसका प्रारूप बना लेता था। एक छोटा विषम और तेज़ धार वाला गँडासा जो पत्थर से बनाया जा रहा है। (1) औज़ार बनाने वाला पत्थर के हथौड़े से एक पत्थर के किनारे पर तेज प्रहार करता हुआ। (बिंदु रेखा और तीर के निशान को देखिए (2 और 3) पत्थर के दो टुकड़े पहले तोड़ दिये जाते हैं। (4) औज़ार को उलट कर यही क्रिया दोहरायी जाती है। (5) जब एक और परत निकाल दी जाती है तो औज़ार छोटा, विषम और तेज़ धार वाला बन जाता है।

इस स्तर पर मुख्य प्रगति थी—'मास्टर औज़ारों' का आविष्कार अर्थात् ऐसे औज़ारों का आविष्कार जिनसे औज़ार बनाये जा सकें। इससे विभिन्न किस्मों के उपकरण बनाने की संभावना बढ़ गयी और मनुष्य सिर्फ प्राकृतिक तौर पर उपलब्ध औज़ारों पर ही निर्भर नहीं रहा।

औज़ार बनाने की प्रक्रिया ने ढालने और पीटने आदि की वर्तमान विधियों की नींव डाली। औज़ार बनाने और उनके विभिन्न उपयोगों से मनुष्य के काम में आने वाले विभिन्न पदार्थों के यांत्रिक गुणों का भी पता चल गया। उदाहरणार्थ उनको यह पता चल गया कि कौन सा पदार्थ मज़बूत है, किन पदार्थों को आसानी से ढाला जा सकता है और कौन-से पदार्थ शीघ्र टूट जाते हैं। इससे भौतिक विज्ञान का जन्म हुआ।

औज़ार सिर्फ शिकार करने के काम ही नहीं आते थे बल्कि लकड़ी जैसे नरम पदार्थों को छीलकर सही आकार देने और हड्डियों से सजावटी सामान बनाने अथवा ठंड से बचने के लिए वस्त्र बनाने के काम में भी आते थे। बर्तनों, बाल्टियों और टोकरियों के इस्तेमाल के बाद अनाज इकट्ठा करना काफ़ी आसान हो गया। शिकार के लिए औज़ारों में संशोधन करने और नरम पदार्थों का उपयोग ज्ञात हो जाने के बाद, छेद करने, बाँधने, मोड़ने और बुनाई आदि का ज्ञान होने लगा (चित्र 2.5)। कपड़े, कालीन और तम्बू बनाने के लिए इन्हीं तकनीकों की ज़रूरत थी।

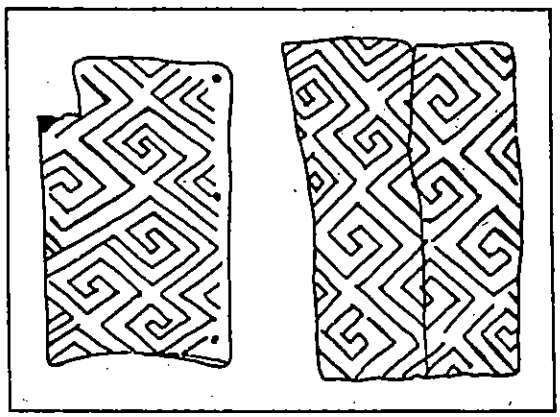

चित्र 2.5 रूस में कीव के निकट प्राप्त पाषाण युग के बुनाई के नमूने। गलतियों और विकृतियों को नोट करें।

भारत में दक्षिण-पूर्वी तट के रेत के टीलों में पत्थर के सूक्ष्म औज़ार मिले हैं। ये 3000 वर्ष ईसा पूर्व या उससे पहले के माने जाते हैं। ये औज़ार अधिकतर प्राचीन नदियों और मछली पकड़ने के तालाबों के निकट मिले हैं, हालांकि उन तालाबों पर अब रेग (सिल्ट) भर गयी है। 'अगेट' और 'ओनिक्स' जैसे कुछ रत्न भी मिले हैं, जिन्हें काट-छाँट कर नुकीला या तेज़ धार युक्त बनाया गया था। वर्तमान अफ्रीकी कबीलों द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले औज़ारों से तुलना करके हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि वे जटिल औज़ारों के अंग हो सकते हैं। ये टुकड़े गोंद या किसी चिपचिपे पदार्थ की सहायता से लकड़ी, सींग या हड्डी के हत्थों में चिपकाये जाते थे। इनसे भाले, काँटेदार बर्छियाँ, तीर, चाकू और दराँती आदि बनाये जाते थे (चित्र 2.6)।

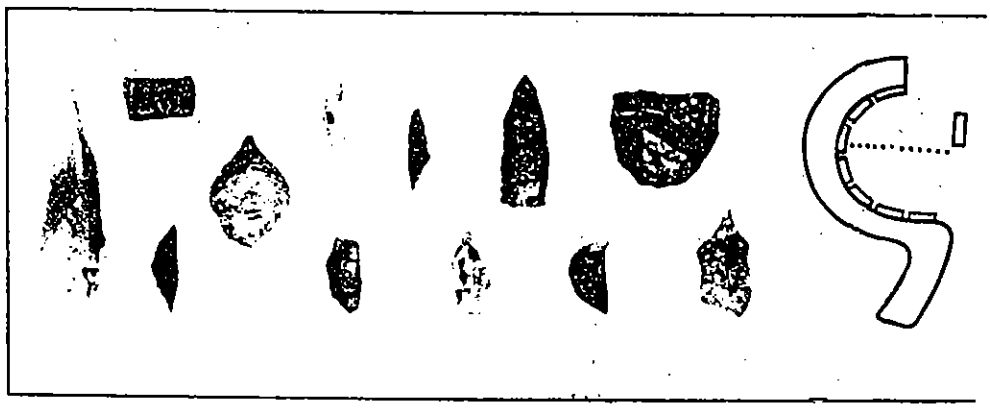

चित्र 2.6 गुजरात के लंघनाज क्षेत्र से प्राप्त लगभग 3,000 ईसा पूर्व पत्थर के छोटे औज़ार या माइक्रोलिथ। इन्हें हड्डी या लकड़ी की मूठ पर लगा कर हँसिया आदि औज़ार बनाये जाते थे।

पत्थरों के इन औज़ारों से जानवरों की खाल उतारने, मांस छीलने और चमड़े के नीचे के रेशों को तोड़ने का काम लिया जाता था। ये औज़ार खुदाई करने और काटने के काम में भी आते थे। साथ ही इनसे टोकरियाँ बुनने के काम आने वाले केन को फाड़ने आदि में इस्तेमाल किया जाता था। बारीक, नुकीले टुकड़ों से खाल सिलने के लिए सुई बनायी गयी। तालिका 2.1 में हम आपको

तालिका 2.1 पत्थर के कुछ औज़ार और उनके उपयोग

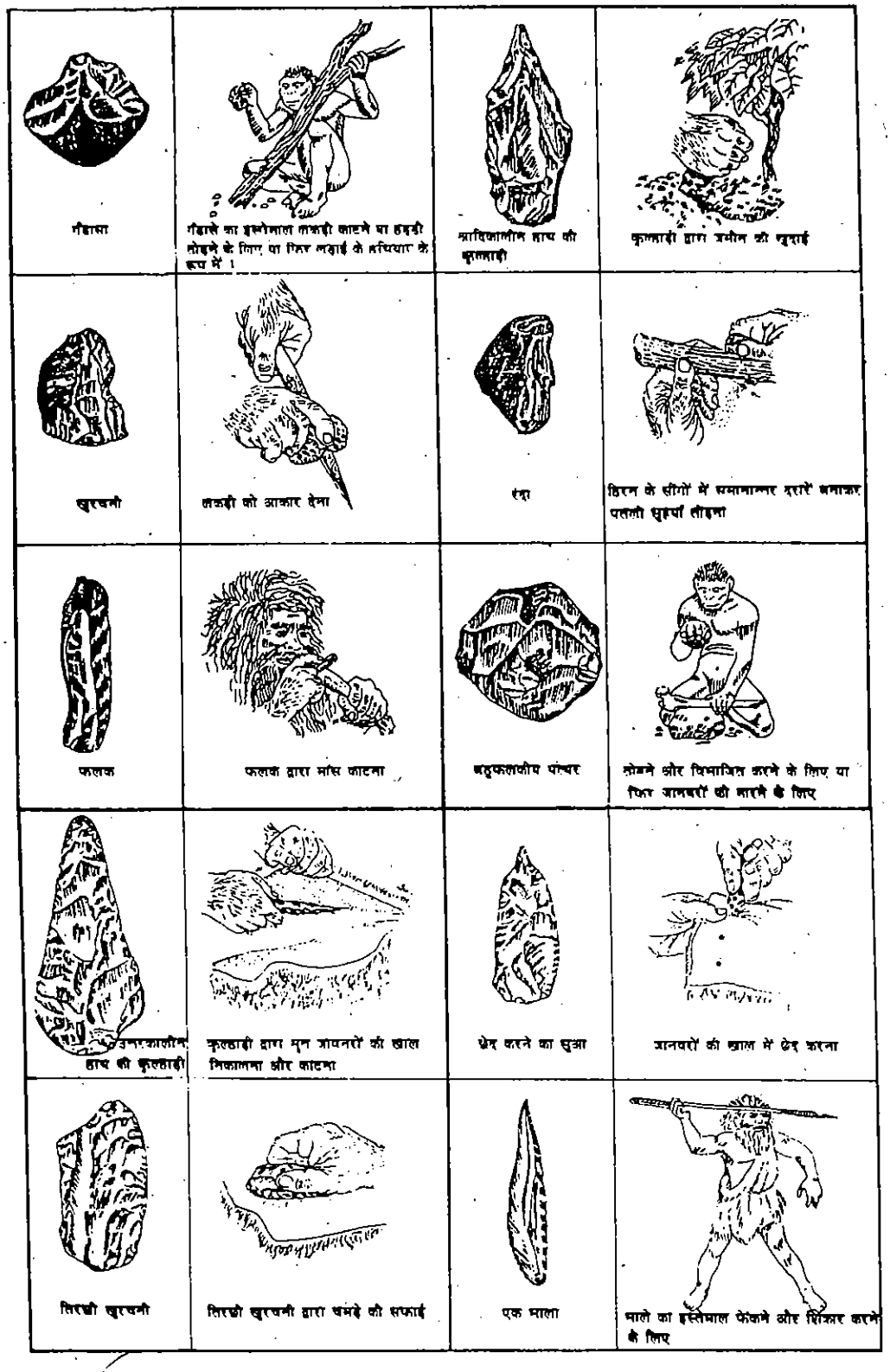

इनमें से कुछ वस्तुएँ दिखा रहे हैं। टोकरियाँ और चमड़े के थैले संभवतः अनाज जमा करने और भंडारण के लिए इस्तेमाल होते थे क्योंकि उस समय तक आनाज का भंडारण करना आम बात हो गयी थी। भारत में जिन स्थलों पर ये औज़ार मिले हैं, उन पर कुछ मिट्टी के बर्तन पाये गये हैं जो 6000 ई. पूर्व के माने जाते हैं।

कपड़े

मनुष्य को कपड़ों की आवश्यकता शायद बुनाई की कला सीखने से पहले ही महसूस हो गयी थी। उस समय कपड़े का इस्तेमाल शायद भोजन सामग्री और उपयोगी औज़ारों को लाने-ले जाने में किया जाता था। सामान ढोने के लिए कपड़े को सुविधानुसार बालों, गर्दन, कमर, कलाई या टखनों से बाँधा जाता था। इस बंधक पर आमतौर से पंख, हड्डियाँ और खाल चढ़ा दी जाती

थी। कपड़े को पहनने के लिए इस्तेमाल करने के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण खोज यह हुई कि रोएँदार खाल से मनुष्य अपने शरीर को ठंड में भी गर्म रख सकता है। शरीर ढकने के लिए वस्त्रों के उपयोग ने, तथा जानवरों को पालने और समय पड़ने पर उनको मारकर खा लेने की खोज ने मानव प्रगति में बहुत योगदान दिया। इन खोजों से मनुष्य की बड़े इलाकों में घूमने और ठंडे मौसम में भी जीवित रहने की क्षमता बढ़ गयी।

आग एवं खाना पकाने की विधि

आग का उपयोग सबसे पहले कब और कहाँ हुआ, इसकी ठीक-ठीक जानकारी हमें नहीं है। आरंभ में आग निश्चय ही एक डरा देने वाली वस्तु रही होगी, जिसने अनेक किंवदंतियों और कहावतों को जन्म दिया। धीरे-धीरे जब मनुष्य ने आग पर काबू पाना सीख लिया तो उसे आग से जंगली पशुओं को डराने और ठंड से बचने के लिए इसकी उपयोगिता का आभास हुआ। इस बात का भी अनुमान लगाया जा सकता है कि मनुष्य को कभी अचानक आग से जला अथवा भुना हुआ माँस मिल गया होगा जिससे इसे खाद्य पदार्थों को पकाकर खाने का ज्ञान हुआ होगा। अब मनुष्य सख्त मांस को भी खा सकता था और इसका स्वाद भी अच्छा होता था। इस तरह खाद्य पदार्थों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हो गयी। संभवतः आग से खाना पकाने के उपयोग से ही मनुष्य को मिट्टी के बर्तन पकाने एवं औज़ार बनाने के लिए धातु को पिघलाने का ज्ञान हुआ होगा।

आदि मनुष्य को द्रव पदार्थों को उबालने में कुछ कठिनाइयाँ अवश्य आयी होंगी। आरंभ में चमड़े के थैलों में पानी भरकर उसमें गर्म पत्थर डालकर पानी गर्म किया जाता था। क्योंकि पूर्व ऐतिहासिक स्थलों के निकट हमें इस तरह गर्म और ठंडा करने से टूटे हुए पत्थरों के अवशेष मिले हैं। इस महत्वपूर्ण खोज ने संभवतः यह सिखाया होगा कि थैले पर मिट्टी की मोटी तह चढ़ाकर उसे गर्म किया जा सकता है। अंत में पाषाण युग की समाप्ति के समय लोगों को यह ज्ञान हो गया था कि लेप किये हुए थैले गर्म करने पर चटख जाते हैं जबकि मिट्टी से बने पके हुए बर्तन नहीं चटखते। इस तरह मिट्टी के पके हुए बर्तन तैयार करना एक महान् उपलब्धि थी। इस तरह तरल पदार्थ को मिट्टी के बर्तन में अधिक समय तक रखने की समस्या का हल भी ढूँढा गया होगा। रासायनिक परिवर्तन की धीमी गति की किण्वन (fermentation) की क्रिया का पता चला और बाद में शराब निकालने में इसका उपयोग होने लगा होगा। रंगों के उपयोग से पेंट और चमड़ा बनाने का ज्ञान भी इस युग में शुरू हुआ होगा। इससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि पाषाण युग के अंतिम चरण में पदार्थों के परिवर्तन के लिए प्रारंभिक रसायन का उपयोग होने लगा था।

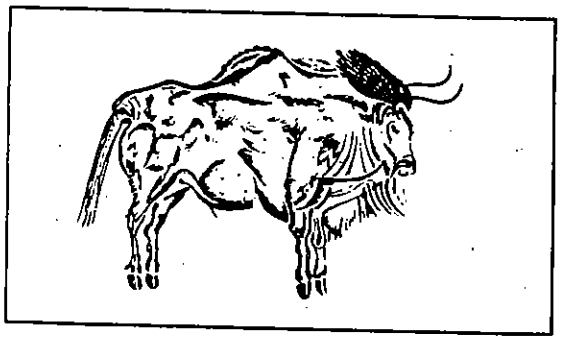

चित्र 2.7 प्राचीन काल में मानव को जानवरों की शरीर रचना का स्पष्ट ज्ञान था। स्पेन में अल्तमीरा की गुफाओं में चित्रित गवल (bison)।

बोध प्रश्न 1

नीचे आदि मानव सभ्यता के क्रियाकलाप और तकनीकें दी जा रही हैं। प्रत्येक प्रश्न के आगे दिये गये रिक्त स्थान में यह लिखिए कि विज्ञान की किस विशेष शाखा—भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र या प्रौद्योगिकी, के उद्भव में यह सहायक हुई।

i) शिकार करने के हथियारों, भाला, काँटेदार बर्छी, तीर आदि का निर्माण और उनका उपयोग।

.....

ii) खाना पकाने के लिए आग का उपयोग।

.....

iii) लकड़ी, हड्डी और चमड़ा जैसे नरम पदार्थों का उपयोग।

.....

iv) बर्तनों में तरल पदार्थों का भंडारण।

.....

v) रंगों या पेंटों का उपयोग और चमड़ा कमाना।

.....

vi) औज़ार बनाने के लिए मुख्य उपकरण (मास्टर टूल)।

.....

2.2.3 आदिम जीवन का सामाजिक आधार

पिछले भाग में हमने आदि मानव की समस्याओं और उनके समाधान का संक्षिप्त विवेचन किया। जैसे-जैसे औज़ार निर्माण, आग की खोज, प्राकृतिक शक्तियों से सुरक्षा आदि से उनकी भौतिक अवस्था सुधरने लगी, वैसे-वैसे उनका सामाजिक जीवन भी बदलता गया। भाषा, रीति-रिवाज़ और संस्कार आदि उस समय के आदि जीवन के सामाजिक आधार बन गये। यहाँ उनके सामाजिक जीवन की कुछ विशेषताएँ दी जा रही हैं।

भाषा

भाषा का उद्भव तब हुआ होगा जब बहुत से लोगों ने मिलकर शिकार करना शुरू किया होगा, भोजन इकट्ठा किया होगा या ऐसे अन्य काम किये होंगे। किसी विशेष बात को कहने के लिए प्रत्येक समूह किसी विशेष ध्वनि का इस्तेमाल करता होगा। जैसे ही इन समूहों ने ज़रूरत से ज़्यादा अन्न का आपस में लेन-देन शुरू किया, बोले गये शब्दों के मानकीकरण (standardisation) की आवश्यकता महसूस होने लगी जिससे विचारों का आदान-प्रदान सही ढंग से हो सके। इस विशेषता का अर्थ है उस इलाके में प्राप्त ख़ास जानवरों और पेड़-पौधों के लिए विशेष प्रकार का नाम देना। इस तरह सभी प्रकार के जानवरों के लिए 'जानवर' और सभी प्रकार के पेड़-पौधों के लिए 'पेड़' की सामान्य शब्दावली का विकास बहुत बाद में हुआ। आज भी आदिम जाति द्वारा प्रयोग किये जाने वाले कठिन व्याकरण और बोलचाल के शब्दों के अध्ययन से इस बात का आसानी से आभास होता है। उदाहरण के लिए, आरंभ में 'रंग' शब्द का अर्थ 'लाल' या 'खून' का रंग होता था। बाद में पीला, नीला और हरा आदि भी रंग कहे जाने लगे। विशेष तौर से आम बोलचाल एवम् भाव वाचक भाषा का विकास हुआ। इससे प्रतीकात्मक भाषा की उत्पत्ति हुई। शीघ्र ही मनुष्य एक शब्द से विभिन्न वस्तुओं का अर्थ समझने लगा। ऊपर 'जानवर', 'पेड़', 'रंग' आदि के उदाहरण दिये गये हैं। उसी तरह महसूस करने, भावनाओं और विचारों के लिए भी बोलचाल के चिह्न प्रयोग में आने लगे।

सामाजिक जीवन और संस्कार

आदि मानव समूहों अथवा कबीलों का सामाजिक जीवन भोजन इकट्ठा करने की क्रियाओं के इर्दगिर्द घूमता था। आरंभ में उन्होंने वे चीजें, जो वे खा सकते थे और जिन्हें वे हाथों से पकड़ सकते थे—बीज, फल, जड़, शहद और छोटे जीव-जंतु आदि इकट्ठी की होंगी। मिल बाँटकर भोजन करने वाले सबसे बड़े समूह ने ऐसे भोजन के भंडारण पर अधिक ध्यान दिया होगा जो आसानी से काफी मात्रा में उपलब्ध हो। इस प्रकार एक किस्म का भोजन करने वाले लोगों के समूह अपने आपको 'रिश्तेदार', एक ही जाति या कबीले के सदस्य कहने लगे होंगे। दूसरे मानव समुदाय, जो भिन्न प्रकार का भोजन करते थे, रिश्तेदार नहीं समझे जाते थे। आरंभ में तो वे मनुष्य ही नहीं समझे जाते थे। जैसा आपको आरंभ में बताया गया है, यह विशेष भोजन ही 'कुल चिह्न' (totem) कहलाया। 'कुल चिह्न' को इकट्ठा करना विशेष संस्कारों से जुड़ा होता था (चित्र 2.8)। इन संस्कारों में अधिक भोजन उपलब्ध करने के लिए बलि, जिसमें मानव बलि भी शामिल है, दी जाती थी। भोजन इकट्ठा करने वाले ये कबीले पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर रहते थे। इसलिए अन्न की कमी से बचने के लिए उन्होंने कुछ पाबंदियाँ भी लगा रखी थीं। उदाहरणार्थ, भोजन की सीमित मात्रा के लिए, अपनी जनसंख्या पर काबू पाने के लिए उन्होंने स्त्री-पुरुष के सहवास पर पाबंदी लगा दी थी। कबीले की जनसंख्या को नियंत्रित करने के लिए एक ही कुल चिह्न वाले लोगों में आपसी सहवास करने पर पाबंदी लगाने के प्रयास किये गये थे।

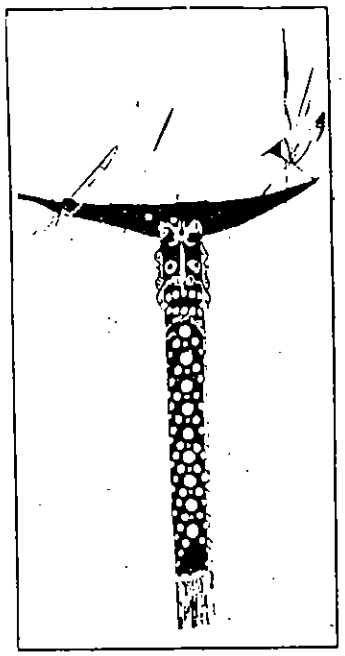

चित्र 2.8 इंडोनेशिया के निकट एक द्वीप बोरनियो में एक आदिम कुल-चिह्न का स्तंभ। संभवतः आदिम लोग अपने कुल-चिह्नों के साथ इन स्तंभों के चारों ओर कुछ धार्मिक अनुष्ठान करते थे।

जादू, धर्म और जाति

आपने यह अवश्य अनुभव किया होगा कि आदिम मानव जाति के लिए भोजन इकट्ठा करने वाला युग बहुत ही कठिन समय रहा होगा। उन्होंने अपने बचाव के लिए प्रकृति पर नियंत्रण पाने और उसे अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ढालने के अथक प्रयास किये होंगे। परंतु उनका ज्ञान इस दिशा में बहुत कम था। इसलिए उन्होंने तकनीकी कमियों को पूरा करने के लिए जादू-टोने का

सहारा लिया होगा। उनका विश्वास था कि प्रतिमाओं (images), और प्रतीकों (symbols) तथा नृत्य के प्रयोग से वे जानवरों और पेड-पोधौं को अधिक फलने-फूलने के लिए प्रोत्साहित कर सकते थे (चित्र 2.9)। अधिकांश पदार्थों के गुणों की कल्पना की जाने लगी। कभी-कभी यह कल्पना सही भी उतरती थी। जैसे कुछ पत्थरों में लोहे को अपनी ओर खींचने के गुण की कल्पना। परंतु आम तौर पर ये कल्पनाएँ निराधार होती थीं। उदाहरण के लिए, यह समझा जात था कि सोना बुराई या खतरे से रक्षा करता है।

एक तरह से पाषाण युग के जादू से विज्ञान के उद्भव में मदद मिली, क्योंकि यह प्रचलित तकनीकों के विस्तार का प्रयास था। इससे मानव की पर्यावरण पर अधिक नियंत्रण रखने की इच्छा का आभास होता है परंतु जीवन की बदलती परिस्थितियों के साथ जादुई विचारों में कोई बदलाव नहीं आया। बाद की कई पीढ़ियाँ तो यह भी नहीं समझ सकीं कि इन विचारों का वास्तविक अर्थ क्या था। अंत में ये विचार अंधविश्वासों और मिथकों में बदल गये जिनका कोई अर्थ नहीं है।

चित्र 2.9 शिकार से पहले एक पशु के चित्र के चारों ओर नृत्य करते हुए आस्ट्रेलिया के आदिवासी।

आदिम विचारधारा का एक अन्य दृष्टिकोण 'आत्माओं' (मृत व्यक्तियों, देवताओं अथवा पिशाचों का वास्तविक जगत् पर प्रभाव था। इसलिए उन पर काबू पाने और उनको प्रसन्न करने की ज़रूरत महसूस होने लगी। हो सकता है कि इस धारणा के पीछे शुरू में मनुष्य द्वारा मृत्यु की सच्चाई को स्वीकार करने की असमर्थता रही हो। ऐसी अनेक घटनाएँ घटती रहती थीं जिन्हें वह समझ नहीं पाता था और जिन पर उसका कोई नियंत्रण नहीं था। उदाहरणार्थ,सूखा, बाढ़, भूकंप या दावाग्नि, अथवा संक्रामक रोगों का प्रकोप जिससे बहुत बड़ा नरसंहार हो जाता था। इन सब कारणों से भी 'आत्मा' के विचार को बढ़ावा मिला।

धर्म का उद्भव और विकास प्राकृतिक साधनों से जीवन यापन करने के प्रयत्नों, अनेक विकट परिस्थितियों में अपने आपको अत्यंत असहाय पाने और 'टोटम' पर आधारित भोजन इकट्ठा करने की जीवन पद्धति से हुआ होगा। भारत में अधिकतर देवी-देवता मात्र पत्थर की मूर्तियाँ हैं, जो लाल रंग से रंगी हैं, जो रक्त का प्रतीक हैं। आदिम धर्म, मानव द्वारा प्रकृति से तालमेल करने का प्रयास या मनुष्य का अपने चारों ओर घटित होने वाली घटनाओं को समझने और जानने का प्रयास भी कहा जा सकता है। जब खेती होने लगी और स्थायी जीवन बिताना संभव हो गया तब छोटे कबीले बड़े कबीलों में मिल गये। इससे उनके कुल चिह्न निषेध और धार्मिक मान्यताएँ आपस में मिल गयीं और मान्यतओं की नयी प्रणाली धर्म बन गयी।

जो लोग इन धार्मिक समूहों में मिल गये थे, उन्होंने भी अपनी कुछ पुरानी धारणाएँ अपनाये रखीं और कुछ हद तक इन समूहों से अलग रहे। भारत में यह संबंध जाति के रूप में रूढ़ हो गया। भारत में जाति प्रथा के विकास में लंबा समय लगा। उस पर अनेक युगों की छाप पड़ी। इन जातियों के वंशों की छाप जाति के नामों में लक्षित होती है जैसे—मगर, मोरे, पिम्पले। मोरे जाति के लोग मोर का मांस नहीं खाते, पिम्पले अपने कुल चिह्न, पीपल के वृक्षों की पत्तियाँ नहीं खाते आदि। जाति समूहों में कृषि जैसे विशेष व्यवसायों की छाप भी दिखाई देती है जैसे—जड़ी-बूटी बेचने वाले 'वैद्' और खुदाई करने वाले 'खुदार' आदि।

बोध प्रश्न 2

निम्नलिखित में से आदिम जीवन के किन तीन उपयोगों या भाषा के गुणों ने विज्ञान के उद्भव में सहायता दी। प्रत्येक कथन के आगे दी गयी खाली जगह में सही (√) उत्तर पर निशान लगाइए।

i) भोजन प्राप्त करने अथवा इधर-उधर घूमने में विचारों का आदान-प्रदान। ☐
ii) औज़ारों के निर्माण और उपयोग तथा अतिरिक्त भोजन के विनिमय में। ☐
iii) अनुष्ठानों, नृत्य अथवा गायन के दौरान विचारों का आदान-प्रदान। ☐
iv) भौतिक पदार्थों, क्रियाओं और व्यवहार का वर्णन करने में चिह्नों का प्रयोग। ☐
v) भावनाओं को व्यक्त करने, नृत्य, पूजा आदि में चिह्नों का उपयोग। ☐

2.2.4 विज्ञान की उत्पत्ति

अब तक हमने यह देखा कि आदि मानव ने किस प्रकार उपकरणों और औज़ारों के प्रयोग, आग में भोजन पकाने, जानवरों के शिकार करने और भोजन के लिए पेड़-पौधों से फल-बीज इकट्ठे करने में अनेक तरह का ज्ञान प्राप्त किया। यह सब ज्ञान एक सम्मिलित भंडार के रूप में आपस में मिल गया। और इसमें संस्कारों और मिथक (myth) को शामिल करने से जो उपलब्धि हुई वही उनकी संस्कृति बन गयी। अब हमें संस्कृति की इस कोख में विज्ञान के मूल को ढूँढना है। हम निम्नलिखित तीन प्रमुख क्षेत्रों में इस विकास को देख सकते हैं जिनका विज्ञान पर गहरा असर पड़ा है।

क) **तर्कसंगत यांत्रिकी** : औज़ारों के बनाने और उनके इस्तेमाल से मानव प्रकृति को अपनी इच्छा के अनुसार ढालने की कोशिश कर रहा था। इस कोशिश ने ठोस वस्तुओं की यांत्रिकी, गति और पदार्थों के गुणों के अध्ययन को जन्म दिया। धनुष बाण, बरछी और बूमरेंग (boomerang) का उपयोग इसके उदाहरण हैं (चित्र 2.10)। उत्तोलक के संबंध में भी पहले ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उसके एक सिरे को दबाने से दूसरे सिरे पर क्या असर होगा। इन युक्तियों के उपयोग से प्राकृतिक शक्तियों के साथ अंत: क्रिया के परिणाम मालूम किये जा सकते हैं। उन्हें 'देखा' या 'महसूस' किया जा सकता है। इस प्रकार मानव में समझ और आत्मविश्वास का विकास हुआ। कम से कम एक क्षेत्र में लोग महसूस करने लगे थे कि वस्तुएँ कैसे कार्य करती हैं।

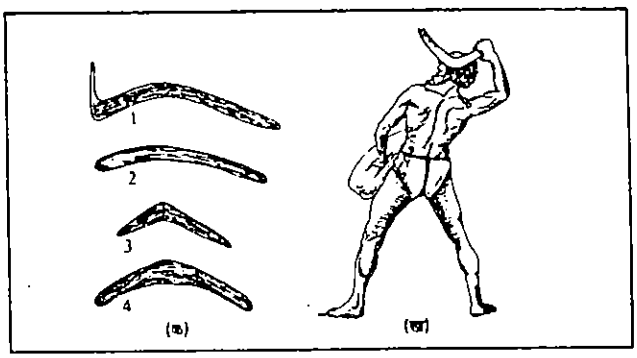

चित्र 2.10 (क) विभिन्न प्रकार के बूमरेंग (हथियार) (1) लड़ने के लिए; (2) शिकार के लिए; (3) और (4) वे बूमरेंग जो फेंकने के बाद वापस आते हैं। (ख) बूमरेंग फेंकता हुआ आस्ट्रेलिया का एक आदिवासी।

ख) **प्रेक्षण और वर्णन** : प्राकृतिक नियमों को समझे बिना भी जब मनुष्य ने प्राकृतिक घटनाओं का नियमित रूप से अध्ययन किया, वह उनका लाभ उठा सका। उसके लिए इतना जान लेना काफ़ी था कि किसी स्थिति का फ़ायदा उठाने के लिए कब और क्या अपेक्षा करनी चाहिए। उदाहरणार्थ, लोगों ने अपने अनुभव से यह पाया कि भूमि की उर्वरता मौसम के साथ बदलती रहती है। पौधों की वृद्धि और जानवरों का भ्रमण करना भी मौसम के बदलाव पर निर्भर करता है। फल और मेवे एक निर्धारित समय पर इकट्ठा कर लिये जाते थे। मौसम के बदल जाने पर चिड़ियों, भैंसों, हिरणों का स्थानांतरण होता था। पाषाण युग के लोगों की जीवित रहने की इच्छा ने ही उन्हें ये सब प्रेक्षण (observation) करने के लिए प्रेरित किया। यह तथ्य भारत और मिश्र जैसे स्थलीय देशों के लिए अधिक सत्य है जहाँ स्पष्ट मौसम और असमान भौगोलिक परिस्थितियाँ हैं। इससे प्रकृति और पर्यावरण के प्रेक्षण तथा तर्कसंगत विवेचन के लिए आधार तैयार हुआ।

यांत्रिकी के विपरीत खाना पकाने या शराब बनाने जैसी क्रियाओं में यह अनुमान लगाना आसान नहीं था कि किसी विशेष क्रिया का क्या परिणाम होगा। उदाहरणार्थ, अगर एक पत्थर को ऊपर फेंका जाता है तब वह अवश्य नीचे लौटेगा ही। कोई भी किसी फल या जानवर पर निशाना लगा कर उसे निश्चय ही मार देगा परंतु खाना पकाते समय परिणाम इस बात पर निर्भर करता है कि पकाये जाने वाले पदार्थ में कितनी नमी है तथा आँच कितनी तेज़ है। शराब बनाना तो इस से भी जटिल क्रिया है। इन सभी क्रियाओं में इस तरह की कितनी ही अनिश्चितताएँ हैं।

फिर भी, यह जानना संभव था कि किसी विशेष प्रक्रिया को करने के बाद क्या होगा। इन परिणामों के प्रेक्षण और उनको याद रखने से संभव था कि उसी क्रिया को दुहराने पर बेहतर परिणाम निकलें। इस क्षेत्र में, और इससे भी अधिक जानवरों के व्यवहार में, ज्ञान मूलतः परंपरागत था और पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से दिया जाता रहा। इन घटनाओं के कारणों को अक्सर दैवी शक्तियों या कुल देवता की कृपा माना जाता था।

ग) **वर्गीकरण** : इसके अतिरिक्त वस्तुओं और घटनाओं में कई समानताएँ पायी गयीं जिससे उनके वर्गीकरण की ज़रूरत पड़ी। पहला वर्गीकरण चेतन (जीवधारी), जड़ (पदार्थ), तीव्र इच्छाओं और कार्यों के रूप में हुआ। अगर किसी समूह के एक सदस्य ने किसी खास तरह का व्यवहार किया तो उसी समूह के दूसरे सदस्य से उसी व्यवहार की उम्मीद की जा सकती थी। इस प्रकार ज्ञान के भंडारण और अनुभव के आदान-प्रदान का प्रारंभिक जीव विज्ञान और रसायनशास्त्र पर गहरा प्रभाव पड़ा।

बोध प्रश्न 3

नीचे कॉलम 1 में कुछ वैज्ञानिक लक्षण दिये गये हैं। कॉलम 2 में कुछ तकनीकें या क्रियाएँ दी गयी हैं। कॉलम 1 के लक्षण का कॉलम 2 की उससे जुड़ी तकनीक से मिलान कीजिए। उदाहरण के रूप में हमने इस अभ्यास का एक भाग हल किया हुआ है।

कॉलम 1	कॉलम 2
i) युक्तिसंगत यांत्रिकी	क) बूमरेंग फेंकना
	ख) जानवरों का शिकार
ii) अवलोकन और विवरण	ग) जानवरों के व्यवहार का अध्ययन
	घ) जीवों का अध्ययन
	ङ) धनुष बाण का उपयोग
	च) विभिन्न मौसमों में बीज और फलों को इकट्ठा करना
iii) वर्गीकरण	छ) निर्जीव पदार्थों का अध्ययन
	ज) उत्तोलक का प्रयोग
	झ) मौसम का नियमित चक्र
	ञ) भोजन पकाना और शराब बनाना

अब तक हमने यह देखा कि पाषाण युग के आदिम समाज में सुखमय जीवन बिताने के लिए अनेक तकनीकें विकसित कर ली गई थीं। पुरातत्व के रिकार्ड यह दर्शाते हैं कि पाषाण युग के अंतिम चरण में लोग झोंपड़ियों, सिले कपड़ों, थैलों और बाल्टियों आदि का प्रयोग करने लगे थे। उन्होंने छोटी नावों, खूँटियों और काँटेदार बर्छियों, भालों, गुलेल, फेंकने वाली छड़ी, बूमरेंग आदि का उपयोग भी सीख लिया था (चित्र 2.11)। इनमें अनेक वस्तुओं का उपयोग आज भी एस्कीमो, दक्षिण अफ्रीकी बुशमैन, आस्ट्रेलियाई आदिम जातियाँ और भारतीय आदिवासी करते हैं।

हमने सामान्य तरीके से आदि समाज में विज्ञान के उद्भव को ढूँढने का प्रयास किया है। हमने देखा कि उपकरणों के बनाने और उनके इस्तेमाल से यांत्रिकी और भौतिकी की नींव पड़ी। रसायनशास्त्र का आधार आग के प्रयोग से आरंभ हुआ और जीव विज्ञान का ज्ञान जानवरों और पेड़-पौधों के व्यावहारिक ज्ञान से मिला।

सामाजिक ज्ञान भाषा और कला में निहित था। समाज की प्रकृति मूलतः समुदाय पर आधारित थी। अभी तक कोई स्पष्ट व्यवसाय और वर्ग विभाजन पैदा नहीं हुआ था। भौतिक पदार्थों के उपयोग से मानव ने प्रकृति पर नियंत्रण के अनेक प्रयास किये थे।

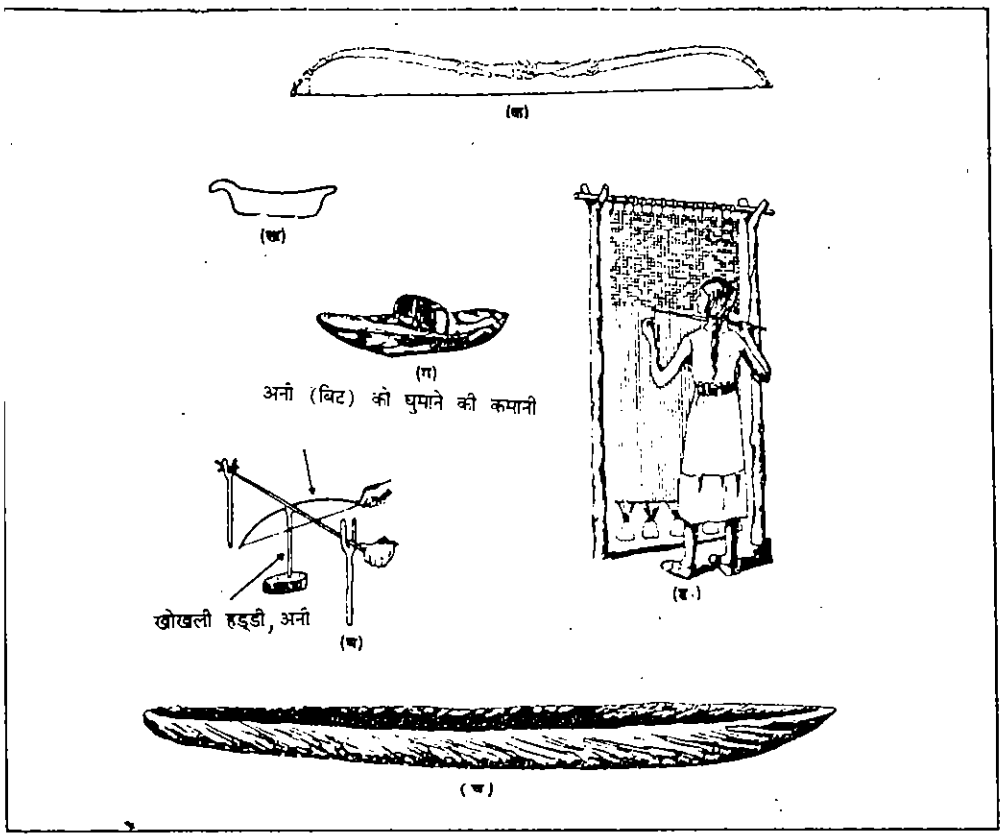

चित्र 2.11 पाषाण युग के अन्तिम चरण के आस-पास इस्तेमाल किये गये उपकरण। (क) कमान, (ख) चमड़े की नाव (नार्वे से प्राप्त रेखाचित्र), (ग) अनाज़ पीसने का पत्थर, (घ) पत्थर में छेद करने का बरमा, (ङ) प्राप्त अवशेषों और वर्णनों पर आधारित बुनाई का करघा, (च) पेड़ के तने को चीर कर बनायी हुई एक नाव।

इन सब बातों से आपको यह आश्चर्य हो सकता है कि आखिर आदि मानव स्वयं को उसी स्थिति में क्यों नहीं रख पाया। निश्चय ही कुछ लोग आज भी उसी स्थिति में बहुत ही दूर-दराज़ की जगहों पर रह रहें हैं। भोजन जमा करने वाला और जंगली जानवरों का शिकार करने वाला समाज लगभग पूर्ण रूप से इतिहास में समा गया है। ऐसा क्यों हुआ? पाषाण युग का अंत क्यों हुआ? अब हम इन प्रश्नों के उत्तर ढूँढने का प्रयास करेंगे।

2.2.5 पाषाण युग का अन्त

शिकार करने और भोजन जमा करने वाले समाज की प्रमुख विशेषता थी हर कार्य के लिए प्रकृति पर निर्भर रहना। प्रकृति से वह भोजन तो ले सकता था परंतु जनसंख्या वृद्धि के साथ अधिक अन्न पैदा करने के लिए प्रकृति पर नियंत्रण नहीं रख सकता था। न ही वह इसके लिए जानवरों की संख्या में वृद्धि कर सकता था। इसलिए जब भी अन्न की कमी हुई तब या तो लोगों को वह स्थान छोड़ना पड़ा या वे समाप्त हो गये। जनसंख्या वृद्धि के साथ कबीलों का घूमना-फिरना कठिन हो गया। प्रकृति के प्रकोपों पर काबू न पा सकने के कारण कबीलों में अधिकांश आबादी नष्ट हो जाती थी।

जलवायु में तबदीलियों के कारण ही पाषाण युग का अंत हुआ। यूरोप और उत्तरी गोलार्द्ध में अतिशीत परिस्थितियों के कारण, जिसे शीतयुग भी कहते हैं, मुख्य भोजन (staple food) जमा करना और शिकार करना कठिन हो गया और इसमें काफ़ी कमी आ गयी। समाज को जीवित रहने के लिए उत्पादन की नयी विधियाँ खोजनी पड़ी। यहाँ यह बताना अच्छा होगा कि भारतीय उपमहाद्वीप (पाकिस्तान, अफगानिस्तान और बर्मा सहित) में शीतयुग न तो यूरोप की भाँति कठोर था और न ही व्यापक। इसलिए यूरोप की अपेक्षा यहाँ भोजन की विभिन्न किस्में अधिक मात्रा में आसानी से उपलब्ध होती रहीं। इसका भारतीय उपमहाद्वीप और यूरोप के विकास पर काफ़ी प्रभाव पड़ा जबकि 5-6 किस्मों के अनाज, मटर और सेम आदि यूरोपीय मुख्य भोजन के आधार रहे। इधर महाराष्ट्र जैसे साधारण उपजाऊ प्रदेश में भी 40 से अधिक किस्मों के खाद्य पदार्थ पैदा हुए।

इस भाग्यशाली घटना का अर्थ यह भी है कि इस उपमहाद्वीप में पाषाण युग का काल और क्षेत्र यूरोप की अपेक्षा अधिक व्यापक था। यहाँ के लोग भोजन एकत्र करने का कार्य अधिक समय

तक करते रहे जबकि पड़ोसियों को और अधिक अनाज पैदा करने के लिए अपना स्थान छोड़ना पड़ा। इसका अर्थ यह हुआ कि इस उपमहाद्वीप में सैकड़ों वर्षों तक साधारण ज्ञान और तकनीक की पुरानी संस्कृति चलती रही। नये युग के आगमन तक यहाँ ऐसी ही स्थिति रही। दो समानांतर संस्कृतियों और उत्पादन की विधियों में भी कभी-कभी संपर्क हो जाता था जिससे उनमें संघर्ष होता रहता था। उदाहरणार्थ, इकाई 3 में हम देखेंगे कि खेती योग्य भूमि की तलाश में अक्सर आर्यों और आदि कबीलों में संघर्ष हो जाते थे। फलस्वरूप कबीलों को सुदूर क्षेत्रों में धकेल दिया जाता था। इसके बदले पुराने रीति-रिवाज़ उन नये क्रियाकलापों को प्रभावित करते थे, जो नये उत्पादन के तरीकों की विशेषताएँ थीं।

बोध प्रश्न 4

यहाँ पाषाण युग के पतन के कारणों का विवेचन किया गया है। नीचे दिये गये शब्दों में से रिक्त स्थान भरें।

..... का अंत मुख्यतः दो कारणों से हुआ। पहला यह कि बढ़ती हुई आबादी को खिलाने के लिय पर्याप्त ..... उपलब्ध नहीं था। क्योंकि आदि मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ..... का नियंत्रण करने में सफल नहीं थे। बल्कि वे प्रकृति पर ..... थे। दूसरे प्राकृतिक ..... से भी आबादी पर प्रभाव पड़ता था। शीत युग का आरंभ ऐसा ही एक संकट था। ..... परिस्थितियों में भोजन जमा करना और शिकार करना असंभव हो गया। जीवित रहने के लिए समाज को उत्पादन का ..... तरीका अपनाना पड़ा। इस तरह ..... समाज से कृषि समाज का जन्म हुआ।

प्रकोप, भिन्न, पाषाण युग, आदिम, प्रकृति, ठंडी, भोजन, निर्भर

इसके साथ ही अब हम यहाँ पाषाण युग की चर्चा समाप्त करते हैं। इस इकाई में हमने आपको पाषाण युग की जीवन पद्धति, रीति-रिवाज़ और संस्कृति के बारे में कुछ जानकारी देने की कोशिश की। इसमें आपने यह भी देखा होगा कि किस प्रकार से दैनिक जीवन के संघर्ष से जो तकनीकें विकसित हुई उनसे विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों की नींव पड़ी। अब हम आपको थोड़ा विश्राम करने की सलाह देंगे। एक कप चाय पियें और अब तक आपने जो पढ़ा है उस पर सोच-विचार करें।

2.3 कृषि और सभ्यता

मानव समाज के विकास का अगला युग, **'काँस्य युग'** के नाम से जाना जाता है। इसका नाम उस नयी मिश्र धातु पर रखा गया जिसने इस युग में पाषाण का स्थान ले लिया। वास्तव में इस युग में उत्पादन की नयी क्रिया—'कृषि' शुरू हुई। अब हम पढ़ेंगे कि किस प्रकार कृषि ने पूरे समाज को बदल दिया। हम यह भी देखेंगे कि किस प्रकार नगरीकरण और सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं में होने वाले बदलाव ने विज्ञान को जन्म दिया। नगरों के विकास ने सामाजिक संगठन को बदल दिया। बाद में इसका प्रभाव काँस्य-युग में विज्ञान के विकास पर पड़ा।

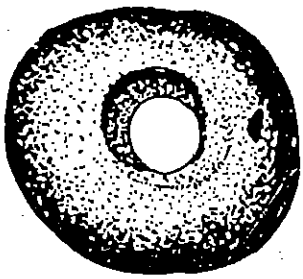

चित्र 2.12 प्राचीन काल में कृषि में काम आने वाली पत्थर की चक्की। इसके सुराख में लकड़ी का एक डंडा डाल दिया जाता था। इस औज़ार से मिट्टी के ढेले तोड़े जाते थे।

2.3.1 कृषि और सभ्यता का उद्भव

कृषि की शुरुआत किस प्रकार हुई, इसका हमारे पास कोई ऐतिहासिक सबूत नहीं है। इसके बारे में हम सिर्फ़ कल्पना कर सकते हैं। अन्न की खेती की शुरुआत अवश्य ही भोजन इकट्ठा करने की प्रवृत्ति से हुई। जिन स्थानों पर जंगली अनाज का ढेर होगा, वहाँ काफ़ी बीजों के इधर-उधर बिखर जाने से काटने लायक फ़सल तैयार हो जाती होगी। खेती शायद इस समझ के कारण हुई कि बीजों से पौधे उगाये जा सकते हैं और फ़सल उगने का मौसम के साथ कुछ संबंध है। उस समय उपलब्ध पानी ने शायद इस प्रक्रिया में मदद की हो। कृषि की शुरुआत आदिम युग की समाप्ति थी क्योंकि मनुष्य ने अब प्रकृति पर पूरी तरह निर्भर रहना छोड़ दिया था और अपनी आजीविका और भाग्य पर नियंत्रण करना शुरू कर दिया।

कृषि की बदौलत ही मनुष्य उन स्थानों पर स्थायी अथवा अस्थायी तौर पर बसने लगा जहाँ भूमि और मौसम फ़सल के लिए उपयुक्त थे। धीरे-धीरे ये आवास गाँवों में बदलने लगे, जो एक सामूहिक तथा आराम की ज़िंदगी थी। यह स्वाभाविक ही था कि जो इलाके खेती-बाड़ी की दृष्टि से सबसे उपयुक्त थे उनका विकास तेज़ी से हुआ। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि ईसा से

लगभग 4000 वर्ष पूर्व से लेकर 1500 ईसा पूर्व तक, नील, टिग्रिस और यूफ्रेट्स, सिंधु और ह्वाङ-हो नदियों की विशाल घाटियों में क्रमशः मिश्र, मैसोपोटामिया, भारत और चीन—इन चार महान् सभ्यताओं ने जन्म लिया (चित्र 2.13)। सिंधु घाटी सभ्यता, जिसके हम वंशज हैं, का काल 2700 वर्ष से 1750 वर्ष ईसा पूर्व का माना जाता है।

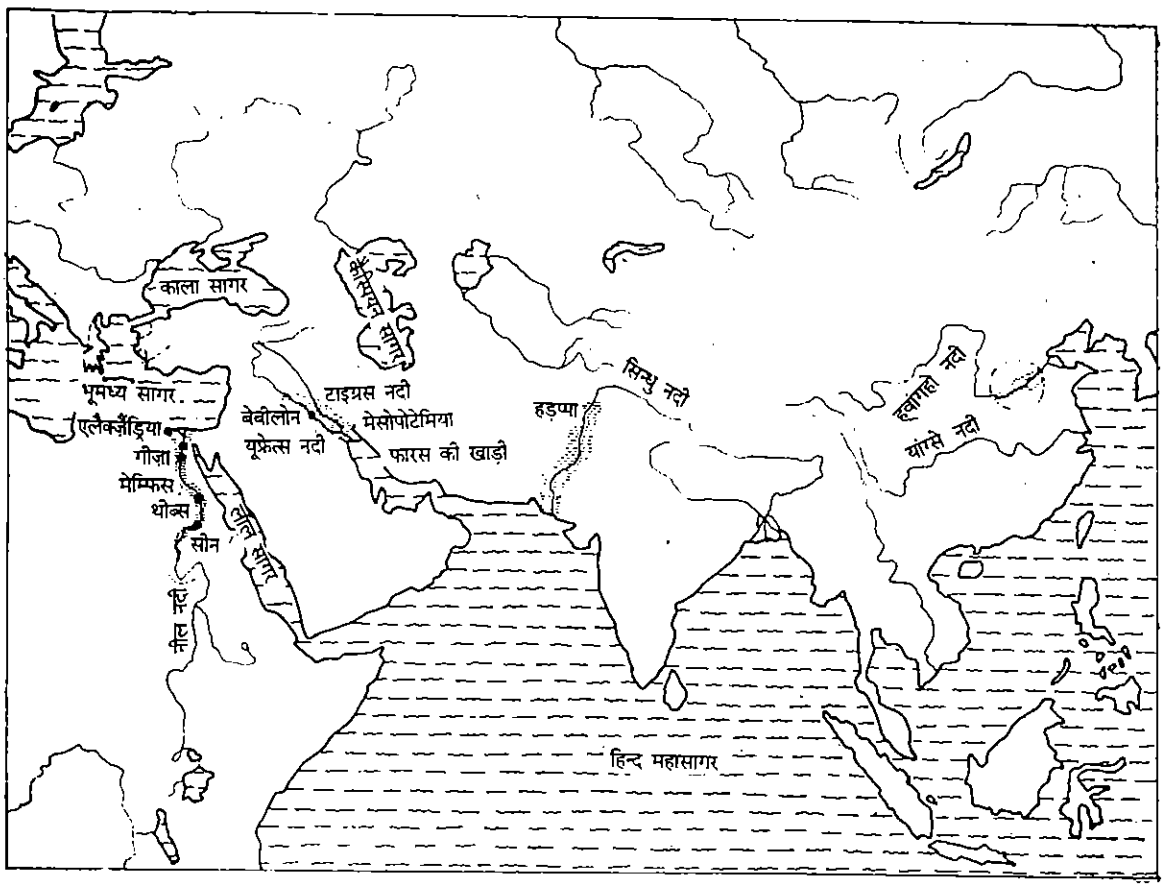

चित्र 2.13 मिश्र, मेसोपोटेमिया (आज का ईराक), भारत और चीन की चार मुख्य नदी घाटी की सभ्यताएँ। छायांकित क्षेत्र लौह युग की ग्रीस सभ्यता को दर्शाता है।

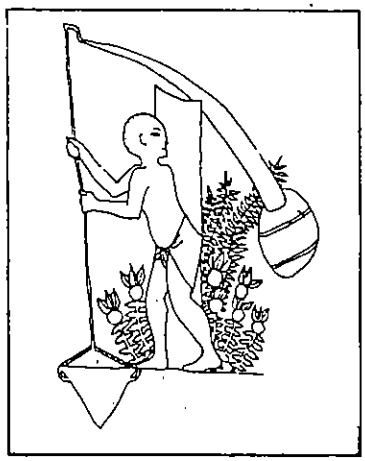

चित्र 2.14 खम्भों पर संतुलित बल्ली से लटकी चमड़े की बाल्टी को नीचे करके पानी ऊपर उठाता हुआ मिश्र का एक किसान। दूसरे सिरे पर भार होने के कारण किसान को पानी ऊपर उठाने में आसानी होती है। लगभग 1500 ईसा पूर्व मकबरे की चित्रकला के प्राप्त रेखाचित्र। भारत में आज भी इस तरह का उपकरण, "डेंकली" प्रयोग किया जाता है।

नगरों का विकास

उस समय के लोग खाद्य पदार्थों के उत्पादन में नदियों के महत्व को भली-भाँति समझने लगे थे। वे यह भी जानने लगे थे कि यदि प्राकृतिक और कृत्रिम तरीके से सिंचाई करने के लिए नदियों का समुचित उपयोग किया जाए तो अनाज का उत्पादन कई गुणा बढ़ सकता था (चित्र 2.14)। परन्तु यह कार्य अकेले एक गाँव से नहीं हो सकता था। इसके लिए कई गाँवों को एक साथ मिलकर काम करने का ज़रूरत थी। इसके साथ ही विनिमय व्यापार में कुछ ऐसे स्थानों को चुना गया जो विनिमय के लिए उपयुक्त थे। वस्तुओं के प्रदर्शन के लिए तथा कपड़े और मसालों के बदले में अनाज के लेन-देन अथवा कुशल कारीगरों द्वारा बनाये गये बेहतर किस्म के औज़ारों और उपकरणों आदि के क्रय-विक्रय के लिए सुविधाजनक स्थानों का चयन किया गया। कुछ सबूत यह बताते हैं कि गाँवों की आबादी के एक साथ मिलने से नगरों की स्थापना हुई। नगरीकरण के विकास ने प्रशासक वर्ग को जन्म दिया। यह वर्ग वस्तुओं के उत्पादन और विनिमय को आयोजित और समन्वित तो करता था पर उसमें प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लेता था।

इस तरह उत्पादन के इस नये तरीके से नगरों के विकास में मदद मिली। मनुष्य ने अपने आश्यकता से कहीं अधिक उत्पादन-करना शुरू कर दिया। इसलिए समाज में हर व्यक्ति को खेती करने की ज़रूरत नहीं रही। वे कई अन्य उपयोगी वस्तुएँ बना सकते थे, या संगीत अथवा नृत्य जैसी कलाओं में प्रवीण होने के लिए समय निकाल सकते थे। अतिरिक्त अन्न उन कारीगरों को जो खेती के लिए उपकरण और भंडारण पात्र बनाते थे, उन मिस्त्रियों को जो घरों का निर्माण करते थे, उन कुम्हारों को जो मिट्टी के बर्तन बनाते थे, या गाड़ी बनाने वालों को उपयोग के लिए दिया जा सकता था। इसके अलावा भी समाज में और लोग थे जो प्रशासक तथा पुजारी

थे और जिनका उत्पादन कार्यों से सीधा संबंध नहीं था। इन सभी वर्गों के लोग नगरों में बस गये थे।

नगरों की आबादी का भरण-पोषण आसपास के इलाकों में होने वाली खेती-बाड़ी तथा दूर-दराज़ के गाँवों की सहायता से भी होता था। इसका परिणाम यह निकला कि गाँवों और शहरों के निवासियों में अंतर आता गया। एक तरफ़ वे लोग थे जो अनाज पैदा करते थे, दूसरी तरफ़ वे लोग जो उत्पादन में मदद करते थे। अर्थात् एक तरफ़ वे लोग जो अपने हाथ से काम करते थे और दूसरी तरफ़ बुद्धिजीवी वर्ग जो प्रशासक अथवा पुजारी होते थे। काम के इस विभाजन का विज्ञान और तकनीकी के विकास पर निश्चय ही बड़ा गहरा असर पड़ा। किसी भी काम-धंधे अथवा व्यवसाय में मनुष्य ने पहली बार विशेष योग्यता हासिल की थी। भोजन की कोई कमी न थी इसलिए समाज उन लोगों का भी पेट पाल सकता था जो उत्पादन के काम में हाथ नहीं बँटाते थे। ऐसे लोगों के पास सोचने-विचारने, अपनी कार्यकुशलता विकसित करने तथा कला एवम् सौन्दर्य के सृजन का काम करने के लिए पर्याप्त समय था। ये लोग धार्मिक और प्रशासनिक संस्थाओं के माध्यम से समाज का नेतृत्व करने के लिए अपनी योग्यता बढ़ाने में अपना समय बिताते थे।

जीवन की अन्य ज़रूरी वस्तुएँ और ऐशो-आराम की चीज़ें प्राप्त करने के लिए फ़ालतू अनाज को थल, नदी, और समुद्री मार्गों से एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाना ले-जाना भी पड़ता था। इसने परिवहन के साधनों जैसे बेड़ों, नावों और छोटे जलयानों आदि के विकास को बहुत बढ़ावा दिया। इससे विभिन्न समाजों के बीच व्यापारिक और सांस्कृतिक संबंध बने तथा तकनीकी का आदान-प्रदान होने लगा।

सामाजिक संगठनों में परिवर्तन

हम यह देखते हैं कि हमने अभी जिस विचारधारा का ऊपर ज़िक्र किया है उसने सामाजिक संगठनों में एक ऐसी प्रवृत्ति को जन्म दिया जिससे इन सभ्यताओं के विकास की प्रक्रिया एक दम ठप्प हो गयी और अंत में उनके विनाश का कारण बनी। समाज की आवश्यकता पूरी करने के बाद जो फ़ालतू सामान अथवा खाद्यान्न बचते थे, उस पर शासकों का एक छोटा वर्ग अपना अधिकार जमा लेता था। ये ही लोग बाद में पुजारी और राजा बन बैठे तथा इन्होंने अपना एक विशेष वर्ग बना लिया। मूल प्रशासकों के उत्तराधिकारी, धीरे-धीरे कृषि की तकनीकों तथा उत्पादन की अन्य विधियों से अपने संपर्क तोड़ बैठे। इन्होंने समाज पर अपनी सत्ता क़ायम रखने तथा अपने को विशिष्ट वर्ग के व्यक्ति कहलाने के लिए अपना समय और ध्यान भवनों, मंदिरों और राजप्रासादों के निर्माण में लगाना शुरू कर दिया। इन्होंने ज़्यादा से ज्यादा उपजाऊ भूमि को अपने कब्ज़े में लेने के लिए सेनाएँ बनानी शुरू कर दीं। इनका पुरोहिती प्रभाव भी बढ़ता गया। इन्होंने एक ऐसी विचारधारा को जन्म दिया कि इनके पास अलौकिक शक्तियाँ हैं तथा सामान्य नागरिक का पथ-प्रदर्शन करने और उसका नेतृत्व करने के लिए स्वयं ईश्वर ने इन्हें बनाया है। इस समाज में दो वर्ग बन गये। एक वर्ग वह था जो उत्पादन करता था और दूसरा वर्ग उस पर अपना हक़ जमा लेता था।

इस प्रक्रिया से यह नुकसान हुआ कि जिन लोगों ने आरंभ में उत्पादन बढ़ाने के लिए तकनीकी और अपनी अनुभव कुशलता का इस्तेमाल किया था वे उन उत्पादन तकनीकों और कौशल को भूल गये जिनकी बदौलत वे सत्ता में आये थे। इसका नतीजा यह निकला कि भौतिक समस्याओं का समाधान ढूँढने के लिए विज्ञान और तकनीकी की बजाए जादुई शक्ति या झूठी धारणाओं का ज़्यादा से ज़्यादा सहारा लिया जाने लगा। जो किसान और कारीगर उत्पादन करते थे, वे अब रोज़मर्रा की समस्याओं में उलझे रहने लगे। उनके पास नये आविष्कारों के लिए अब बहुत कम साधन बचे थे। इस प्रकार कारीगर और उत्पादक वर्ग अपनी समस्याएँ हल करने के लिए तकनीक में सुधार नहीं कर पाता था और अभिजात्य वर्ग जिनके पास समय, साधन और शक्ति थीं, उसकी इस ओर में कोई दिलचस्पी नहीं बची थी। इसका परिणाम यह निकला कि विज्ञान और तकनीकी की प्रगति रुक गयी।

इतिहास में ऐसा कई बार हुआ है कि इस गतिहीनता ने सभ्यताओं को पूरी तरह नष्ट कर दिया, जैसा सिंधु घाटी सभ्यता के साथ हुआ था। कभी-कभी एक समुदाय जब दूसरे समुदाय पर विजय प्राप्त कर लेता था तो उनमें आपसी मेल-जोल भी हो जाता था - जैसे यूरोप में कमज़ोर तथा निष्क्रिय संस्कृतियों पर क्रूर हमलों के कारण हुआ। इन दोनों स्थितियों में प्रगति का केन्द्र बिंदु अन्य भौगोलिक स्थानों पर चला गया।

अभी तक हमने आपको काँस्य युगीन सभ्यता में विद्यमान सामाजिक परिस्थितियों के बारे में मोटे तौर पर जानकारी दी। अब हम आपको उस युग की कुछ वैज्ञानिक और तकनीकी उपलब्धियों के बारे में बताएँगे जिनका बाद में मानव के विकास पर काफी प्रभाव पड़ा।

2.3.2 काँस्य-युग की वैज्ञानिक और तकनीकी उपलब्धियाँ

नगरीकरण के साथ जो उल्लेखनीय तकनीकी प्रगति हुई, उसमें धातुओं और मिश्रित धातु काँसे की खोज और उनका इस्तेमाल प्रमुख था। इसके साथ ही विभिन्न समाजों के बीच व्यापार में हुई वृद्धि के कारण परिवहन के साधनों में भी सुधार हुआ। शहरी जन-जीवन को चलाने के लिए विभिन्न प्रकार की ज़रूरी सेवाओं में गुणों की दृष्टि से कई परिवर्तनों का आना वैज्ञानिक चेतना की शुरुआत थी। यह सब इसलिए संभव हो सका क्योंकि विकास के आरंभिक दौर में तकनीकी के उपयोगकर्ताओं और पुरोहितों, जो केवल मानसिक कार्य ही करते थे, को मिलकर काम करना पड़ा। वस्तुओं की संख्या या मात्रा का हिसाब-किताब रखना, उनकी गिनती, नाप-तौल के लिए मानक तैयार करना और पंचांग आदि की खोज, काँस्य युग में मात्रात्मक विज्ञान (quantitative science) के आधार थे। इनमें से हम प्रत्येक पर संक्षेप में विचार करेंगे।

धातुओं का उपयोग

सबसे पहले मनुष्य को सोने और ताँबे की चमक ने अपनी ओर आकर्षित किया जो प्रकृति में मुक्त तत्वों के रूप में मिलते हैं। उसने इन्हें मूल रूप से आभूषणों के रूप में इस्तेमाल करना शुरू किया। पाषाण युग के आभूषणों और गले के हारों में धातुओं के टुकड़े पाये गये हैं। परंतु पीट-पीट कर विभिन्न आकारों में बनाये गये ताँबे के पिण्ड व्यावहारिक रूप से बहुत उपयोगी नहीं थे, क्योंकि इनसे बनाये गये औज़ार और हथियार इस्तेमाल करने लायक नहीं थे। ये बहुत मुलायम होते थे। मिट्टी के बर्तन बनाने के लिए बनायी गयी आग की भट्टियों के विकास के बाद ताँबा तैयार करने के लिए ताम्र अयस्कों (copper ores) का इस्तेमाल होने लगा। इन भट्टियों में अयस्कों को आसानी से अपचयित किया जा सकता था। बाद में राँगे और ताँबे की मिश्र धातु खोज निकाली गयी। वह ताँबे से ज़्यादा कठोर और मज़बूत थी तथा उसे बड़ी आसानी से उपकरणों और हथियारों में ढाला जा सकता था। ढालने के लिए पिघले हुए ताँबे और राँगे के मिश्रण को 'साँचे' अथवा किसी बर्तन में डाला जाता था। मिश्रण के ठंडा हो जाने पर वह बर्तन का आकार ले लेता था। इस प्रकार से बनाये गये कुछ औज़ार और हथियार पत्थर से बने उपकरणों और हथियारों से कहीं अधिक ज़्यादा मज़बूत होते थे और आसानी से तैयार किये जा सकते थे (चित्र 2.15)। नयी धातु के इस्तेमाल का अर्थ था—कृषि तथा बढ़ईगिरी, राजगिरी (चिनाई), औज़ार और बर्तन बनाने जैसे अन्य तकनीकी क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन (चित्र 2.16)।

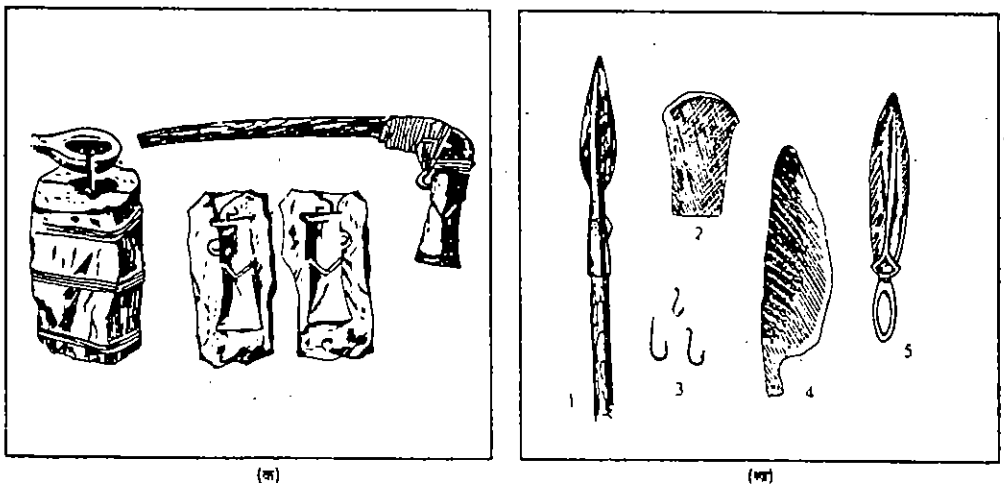

चित्र 2.15 (क) ताँबे की कुल्हाड़ी और इसे ढालने का तरीका। (ख) ताँबे के औज़ार और हथियार: (1) भाले का सिरा, (2) कुल्हाड़ी, (3) कांटे, (4) आरी और (5) छुरा।

काँस्य युगीन सभ्यता में यह नयी धातु दुनिया के विभिन्न भागों में बड़े पैमाने पर हथियार और उपकरण बनाने में इस्तेमाल की जाने लगी तथा यह दूर-दराज़ के देशों से व्यापार करने की वस्तु बन गयी। भारत में ताम्र अयस्क राजस्थान में पाया गया और वह वहाँ इतनी मात्रा में उपलब्ध था कि बेबीलोन को निर्यात किया जाता था। ताम्र अयस्क को लाने की समस्या को परिवहन की प्रगति से हल किया गया।

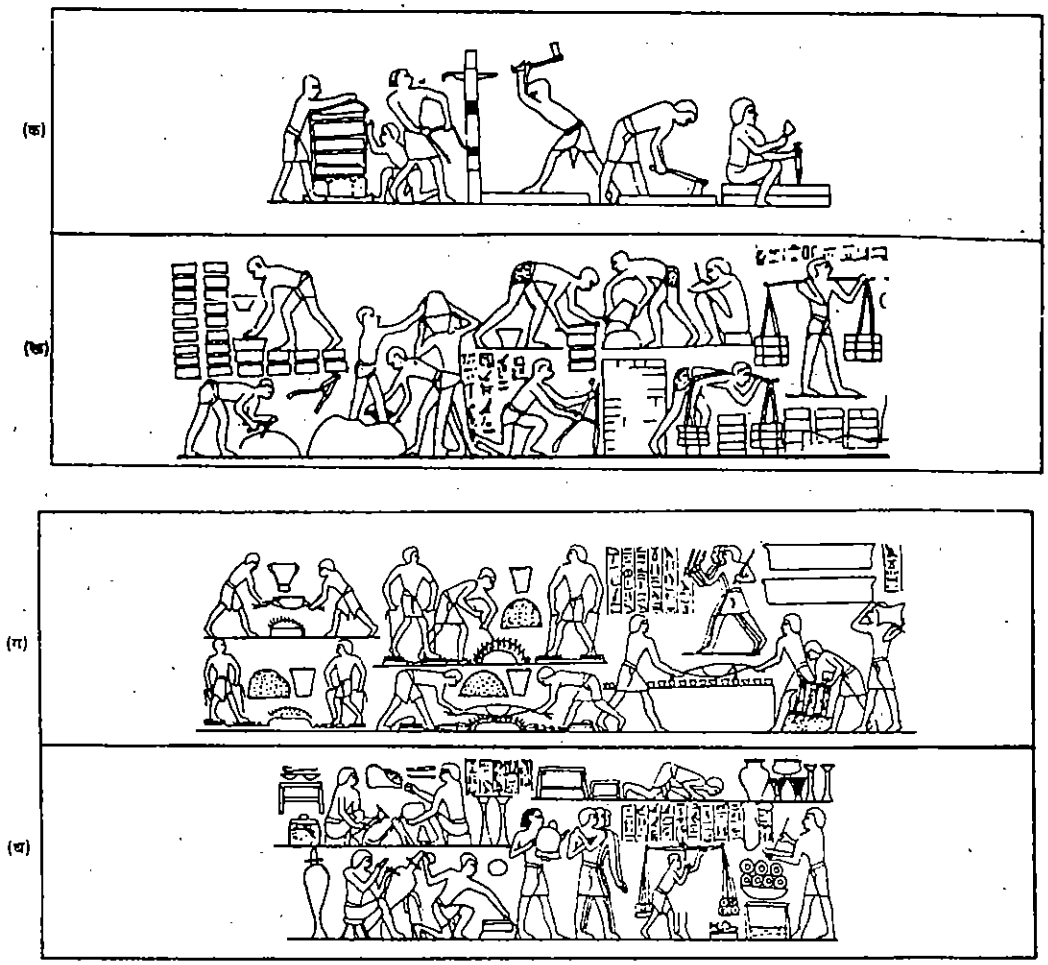

चित्र 2.16 लगभग 1470 ईसा पूर्व मिश्र के एक बादशाह रेखमीर के मकबरे से प्राप्त शिल्प तकनीक। शिल्प और कला के उदाहरण निम्नलिखित को दर्शाते हैं: (क) अलमारी का बनाया जाना (बरमे, छैनी, आरी और हथौड़े के उपयोग पर ध्यान दीजिए), (ख) ईंट बनाना और भवन निर्माण (संतुलित भार पर ध्यान दें),
(ग) काँसे की ढ़लाई (पैर द्वारा चलाई जाने वाली धौकनियों और चिमटे के उपयोग पर ध्यान दें),
(घ) ससुज्जित गुलदाम और कीमती धातुओं का तोलन (ईंट ढोने वाले पात्र से तुला की समानता देखिए)। इन सब क्रिया कलापों के बारे में चित्रों में लिखे लेख पर ध्यान दीजिए।

परिवहन

नदी घाटी सभ्यताओं की पहचान नदियों के किनारे बसी उनकी बस्तियाँ और शहर थे जिनके विकास के लिए अन्य चीज़ों के अलावा अट्टालिकाएँ (ऊँची इमारतें) और मकान बनाने के लिए पत्थर और लकड़ी की आवश्यकता थी। इन्हें दूर-दूर से लाना पड़ता था। शहरों में एक और महत्वपूर्ण बात यह थी कि प्रत्येक व्यक्ति भूमि पर निर्भर नहीं था। खाद्यान्नों का उत्पादन काफ़ी मात्रा में होता था जिससे कुछ लोग व्यापार तथा अन्य काम धंधा करके अपनी आजीविका चला सकते थे। अतिरिक्त खाद्यान्न का व्यापार संसार के विभिन्न भागों में तैयार की जाने वाली अन्य वस्तुओं से विनिमय के रूप में किया जाता था। उदाहरण के तौर पर हमारे पास ऐसे प्रमाण हैं जिनसे पता चलता है कि मैसोपोटामिया के लोग बहरीन के रास्ते भारत के साथ व्यापार करते थे। भारतीय व्यापारी ताँबे के अलावा मोर और बंदर, हाथी दाँत और उससे बनी कंघियाँ, मोती और कुछ किस्मों के कपड़े आदि का निर्यात करते थे। इन चीज़ों के बदले में ये लोग चाँदी तथा अन्य सामान लेते थे। व्यापार तथा बड़े से बड़े भू-भाग पर अधिकार करने की इच्छा ने परिवहन बढ़ाने की आवश्यकताओं को जन्म दिया। नदियों में पानी के बहाव का आसानी से इस्तेमाल किया जा सकता था, इसलिए संभवतः सबसे पहले जल परिवहन का विकास हुआ (चित्र 2.17)।

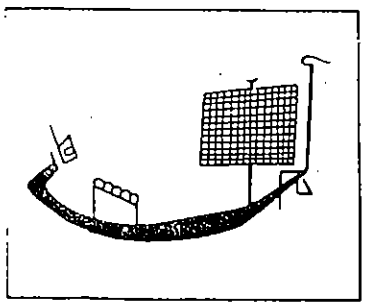

चित्र 2.17 मिश्र के 5,000 वर्ष पुरानी नील नदी की नाव के चित्र में सबसे पुरानी पाल का चित्रण किया गया है।

हमें ऐसे भी सबूत मिले हैं जिनसे पता चलता है कि बड़ी मात्रा में सामान ढोने के लिए डोंगी और बाँस तथा शहतीरों से बने बेड़ों का इस्तेमाल किया जाता था। प्राचीन युग में ही किसी समय पहली बार पाल का इस्तेमाल आने-जाने के लिए किया गया होगा। नदी परिवहन का विस्तार जब समुद्र तक हो गया तो जहाज़रानी और नौकाओं के निर्माण की नयी समस्याएँ सामने आयीं। तेज़ हवा में नौसंचालन का अर्थ था पाल बनाने के लिए अधिक मजबूत वस्त्र और भारी ढाँचे की

ज़रूरत। लकड़ी के काम को भी मज़बूत और टिकाऊ होना चाहिए था। नदियाँ तो सड़कों के समान एक ही दिशा में बहती थीं परंतु समुद्र में आदमी आसानी से अपने मार्ग से भटक सकता था। इसलिए दिशा और स्थिति ज्ञात करने के लिए नये तरीके ईज़ाद करने की आवश्यकता थी। इसका सबसे पुराना तरीका था भूमि ढूँढ़ने वाले पक्षियों से स्थिति का ज्ञान हासिल करना (पढ़ें पृष्ठ 39 पर दी गई हांशिये की टिप्पणी)। सूर्य और तारों से दिशा मालूम करने का तरीका भी काफ़ी प्रचलित था।

शहरों के विकास के लिए भारी-भरकम सामान थोड़ी दूर तक पहुँचाने के लिए भूमि परिवहन की आवश्यकता पड़ी होगी। शुरू में यह काम स्लेज़ गाड़ी ने किया होगा। पहाड़ की चोटियों से अथवा ऊँचाई से, भारी चीज़ें नीचे की ओर आसानी से लुढ़कायी जा सकती थीं। लेकिन मैदानी इलाकों में वृक्षों के मोटे-मोटे तने रोलर के रूप में इस्तेमाल किये जाते थे। पहिये के आविष्कार से भूमि परिवहन के विकास में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। हमारे लिए किसी ऐतिहासिक सबूत के ज़रिये यह पता लगाना मुश्किल है कि पहिये का आविष्कार सबसे पहले कहाँ हुआ। गाड़ियाँ बनाने के लिए इसका इस्तेमाल संभवतः काँस्य युग की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। इन गाड़ियों का इस्तेमाल सामान और यात्री ढोने के लिए किया जाता था। इस प्रकार के परिवहन के विकास में सबसे बड़ी प्रवीणता इस बात में थी कि ठोस पहिया गाड़ी में इस प्रकार जोड़ा गया था कि वह बाहर आये बगैर ही अपनी धुरी पर घूम सकता था। दूसरे शब्दों में पहिये और धुरी का जन्म जुड़वाँ रूप से हुआ। शीघ्र ही मैसोपोटामिया और सिंधु में और बाद में मिश्र में जहाँ परिवहन का मुख्य साधन केवल नौकाएँ थीं, पशुओं द्वारा खींची जाने वाली गाड़ियों का विकास हुआ। प्राचीन मैसोपोटामिया की गाड़ियों में और कुछ वर्तमान भारतीय बैलगाड़ियों में भी धुरी घूमती है और चमड़े के पट्टों से उसे अपने स्थान पर रखा जाता है (देखिए चित्र 2.18)।

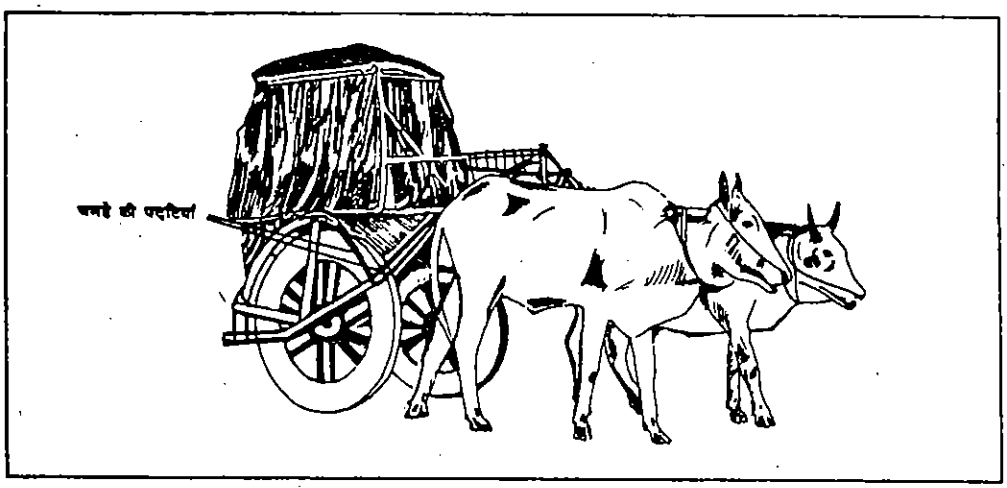

चित्र 2.18 भारत की एक बैलगाड़ी। पहिये के चारों ओर लगे हुए चमड़े के पट्टों पर ध्यान दीजिए।

उन दिनों नावें समुद्र तट किनारे-किनारे ही यात्रा करती थीं। यदि नाविकों की दृष्टि से भूमि ओझल हो जाती तो वे एक कौवा उड़ाते थे जो सबसे निकट वाले समुद्री तट की ओर उड़ता था। इस तरह उसकी उड़ान की दिशा से समुद्री किनारे का पता चल जाता था। आपने शायद बाइबल में नोह की कहानी पढ़ी होगी। उसने भूमि की दिशा जानने के लिए नाव से पहले कौवा उड़ाया था। उसके बाद यह जानने के लिए कि भूमि उपजाऊ है या नहीं, उसने एक पालतू कबूतर को उड़ाया था।

पहिये की गति, बड़े-बड़े पत्थरों को उखाड़ने के लिए उत्तोलक के इस्तेमाल ने तथा अन्य भंडारों और मंदिरों के निर्माण में सामान को ऊपर या नीचे पहुँचाने के लिए ढलुवाँ सतह के इस्तेमाल ने यांत्रिकी के सिद्धांतों को समझने में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। वास्तव में यांत्रिकी ने मनुष्य की गतिशीलता को बढ़ाने में बड़ा ही प्रभावशाली योग दिया है। आज हम ज़मीन पर कहीं भी तीव्र गति से आ-जा सकते हैं, समुद्र लाँघ सकते हैं, आकाश में उड़ान भर सकते हैं और अंतरिक्ष में जा सकते हैं।

मात्रात्मक विज्ञान

कृषि से उपलब्ध अतिरिक्त पैदावार और कारीगरों द्वारा तैयार किया गया माल काफ़ी मात्रा में उपलब्ध होने के कारण उनका आपस में आदान-प्रदान और व्यापार मनुष्य के जीवन का एक अंग बन गया था। समय बीतने के साथ-साथ विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का लेन-देन शुरू हो गया और यह लेन-देन काफ़ी बड़ी मात्रा में होने लगा। इसलिए किस वस्तु को किस दूसरी वस्तु के बदले और कितनी मात्रा में लिया अथवा दिया जाए, इसे ज़ुबानी याद रखना मुश्किल हो गया। इसके लिए कोई न कोई मानक जैसे अनाज आदि की मात्रा की नाप-तोल मालूम करना ज़रूरी हो गया, जिससे लेन-देन के लिए अथवा व्यापार के लिए एक निश्चित मात्रा में वस्तु निकाल कर अलग कर दी जाए।

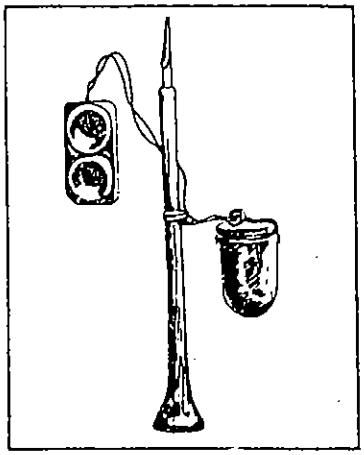

(क)

(ख)

चित्र 2.19 (क) प्राचीन मिश्र की लेखन सामग्री: दवात, नरकुल से गढ़ा गया कलम और पानी रखने का पात्र, (ख) मिश्र की कुछ चित्रलिपियाँ।

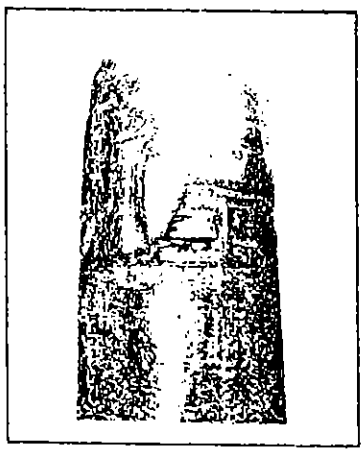

चित्र 2.20 मेसोपोटेमिया के कीलाक्षर: मेसोपोटेमिया के राजा हमूराबी (लगभग 1800 ईसा पूर्व)के द्वारा बनायी गयी नियमावली जो एक स्तम्भ पर खुदी है। स्तम्भ के ऊपरी सिरे पर सूर्य देवता द्वारा हमूराबी को नियमावली देते हुए दिखाया गया है और निचले भाग में नियमावली लिखी गयी है। इस स्तम्भ की एक प्रतिकृति नई दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित है।

जिस वस्तु का व्यापार करना होता था, उसका हिसाब-किताब रखने के लिए नाप-तोल का जो संकेत बनाया गया उसमें कोई चित्र अथवा उस वस्तु विशेष का छोटा सा चिन्ह होता था। धीरे-धीरे इन चिन्हों अथवा संकेतों का उपयोग किसी वस्तु विशेष अथवा कार्य को दर्शाने के लिए किया जाने लगा और इस प्रकार लेखन कला का जन्म हुआ। लेखन कला का विकास या तो रेखाचित्रों द्वारा बनाये गये संकेतों के रूप में हुआ, जो पूरे भाव को व्यक्त करते थे, (जैसा कि चीनी भाषा में है) या फिर मैसोपोटामिया की कीलाक्षर लिपि के रूप में अथवा मिस्र की चित्रलिपि के रूप में हुआ, जिसमें संकेत और ध्वनि दोनों का एक साथ बोध होता था (चित्र 2.19 और 2.20)। वस्तुओं के आदान-प्रदान के लिए उनके भार का 'मानक' निश्चित करने के साथ ही तुला की आवश्यकता पड़ी। यह एक ऐसी वैज्ञानिक खोज थी जिसके बड़े-बड़े परिणाम निकले। आदान-प्रदान के लिए जोड़ने और घटाने की भी ज़रूरत पड़ी और इस प्रकार अंकगणित का आविष्कार हुआ।

मकान बनाने के लिए ईंटों के इस्तेमाल ने समकोण और सीधी रेखा का उपयोग करना सिखाया जिसने उस विषय को जन्म दिया जिसे हम रेखागणित कहते हैं। कलकत्ता के देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय और ऑक्सफोर्ड के अलचिन जैसे आधुनिक इतिहासकारों और पुरातत्वशास्त्रियों के दल का यह मत है कि किसी समय सिंधु घाटी सभ्यता में भी रेखागणित का आधार तैयार हुआ। इस सभ्यता ने रेखागणित का जो ज्ञान दिया, उसका अनुसरण लौह युग के यूनानी ज्यामितिशास्त्रियों ने भी किया। इस प्रकार आधुनिक रेखागणित पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ा। ईंटों से भवन निर्माण की विधि ने किसी भी ठोस वस्तु अथवा आकृति के क्षेत्रफल और आयतन की विचारधारा को जन्म दिया। यह आयतन और क्षेत्रफल उस वस्तु की लंबाई नाप कर ज्ञात किये जा सकते थे। सबसे पहले केवल आयताकार टुकड़ों का ही आयतन मालूम किया जा सकता था। बाद में मिस्र में गणित इतना विकसित हो गया कि उससे किसी पिरामिड (pyramid) का आयतन भी नापा जा सकता था।

शीघ्र ही गिनने और गणना करने की योग्यता अन्य क्षेत्रों में, पंचांग तैयार करने और उससे होने वाले खगोल विज्ञान के विकास में भी लाभदायक सिद्ध हुई (चित्र 2.21)। इस इकाई में हम पहले पढ़ चुके हैं कि किस प्रकार मार्ग निर्देश करने के लिए सूर्य, चंद्रमा और तारों के अध्ययन की आवश्यकता पड़ी। बड़े पैमाने पर खेती-बाड़ी की योजना बनाने के लिए भी व्यावहारिक खगोल विज्ञान की आवश्यकता महसूस की गई। नदी घाटियों में बाढ़, जो बार-बार आने वाली विपत्ति थी, का सामना करने के लिए पहले से तैयार रहना ज़रूरी होता था। वर्ष की अवधि नापने के लिए सूर्य और तारों की गति का इतना सही अध्ययन किया गया कि ईसा से लगभग 2700 वर्ष पूर्व ही मिस्र के लोगों ने वर्ष की अवधि 365.2422 दिन निश्चित कर दी थी।

चित्र 2.21 ब्रहमांड के बारे में मिश्र की प्रारंभिक धारणाएं। ऊपर सितारों से भरी आकृति आकाश की देवी नूट की है। नूट के नीचे पवन के देवता शु हैं जिनके हाथों में अरमत्व का प्रतीक है। उसके नीचे भूमि के देवता गेब की आकृति है जिसका शरीर पत्तियों से ढका है। चित्र के प्रत्येक ओर बनी नावें सूर्य को प्रतिदिन आकाश के उस पार की यात्रा पर ले जाती थी।

सुमेरियाई खगोलशास्त्रियों ने और मैसोपोटामिया में उनके उत्तराधिकारियों ने सही अध्ययन करके सौर और चंद्र पंचांग तैयार कर लिये थे। उन्होंने वृत्त को 360° के अंश में बांट कर षाष्ठिक पद्धति का आविष्कार किया (यह एक वर्ष में कुल जितने दिन होते हैं, उसके आसपास था)। इसमें 60 मिनट का एक घन्टा और 60 सेकेंड का एक मिनट होता है। गणितीय तालिका

का इस्तेमाल करते हुए कई तरह के प्रयोग किये गये जिनके फलस्वरूप आगामी युगों में बीजगणित तथा अंकगणित का जन्म हुआ।

एक अन्य व्यवसाय, जिसे शहरों के विकास के साथ बहुत प्रतिष्ठा मिली, चिकित्सा विज्ञान था। यद्यपि चिकित्सा का उपयोग केवल घाव, अस्थिभंग अथवा हड्डी चटकने आदि के इलाज तक ही सीमित था परंतु चिकित्सक कई बीमारियों का सफलतापूर्वक निदान कर लेते थे। वे एक रोगी का दूसरे रोगी की बीमारी से तुलना करना, उनमें अंतर ज्ञात करना और उनके लक्षणों को दर्ज करना जानते थे। ये विवरण मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मिलते गये और इस प्रकार शरीर-रचना विज्ञान और शरीरक्रिया विज्ञान (anatomy and physiology) की उत्पत्ति हुई। चिकित्सकों को पौधों और कई प्रकार के खनिज पदार्थों के गुणों की भी जानकारी थी जिनसे वे विभिन्न तरह की बीमारियों के इलाज के लिए औषधियाँ तैयार करते थे। औषधियाँ बनाने के लिए वे अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियाँ और पौधे भी उगाते थे। यही वह स्रोत था जिससे बाद में वनस्पति-विज्ञान (botany) का जन्म हुआ। रसायनशास्त्र का मुख्य आधार जौहरी और धातुशिल्पी तथा मिट्टी के बर्तन बनाने वाले कारीगर थे। ये लोग कम से कम नौ रासायनिक तत्त्वों—सोना, चाँदी, ताँबा, रांगा, सीसा, पारा, लोहा, गंधक और कार्बन के बारे में जानते थे। इसके अलावा इन्हें धातु पर क्रिया करने वाले कई प्रकार के तरल एवं शुष्क पदार्थों की भी जानकारी थी। अयस्कों को गलाने, उन्हें शुद्ध करने, उन पर रंग और तामचीनी (enamel) चढ़ाने के लिए अनेक जटिल रासायनिक क्रियाओं की ज़रूरत पड़ती थी तथा इन्हें कई प्रकार के प्रयोगों और परीक्षणों से गुज़रने के बाद सीखा जा सका। लेकिन काँस्य युग में रसायनशास्त्र को कभी भी एक मान्यता प्राप्त विज्ञान का दर्ज़ा नहीं मिला।

एक चन्द्र वर्ष में 354 (12 × 29½) दिन होते हैं। इसे सौर वर्ष, जो 366 दिनों का होता है, के बराबर लाने के लिए इसमें प्रत्येक वर्ष में 12 दिन जोड़ दिये जाते हैं, या फिर प्रति 2½ वर्षों में 30 दिनों का एक महीना जोड़ा जाता है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि विकसित हो रहे शहरों की सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं और शहरों के बीच व्यापार-संबंधों ने मात्रात्मक विज्ञानों तथा नाप-तोल का मानकीकरण, अंकगणित, रेखागणित, खगोलशास्त्र और चिकित्सा विज्ञान आदि को जन्म दिया। इसके अतिरिक्त कई अन्य क्षेत्रों जैसे रसायन विज्ञान, बीजगणित, शरीर-रचना विज्ञान और शरीर-क्रियाविज्ञान तथा वनस्पति विज्ञान आदि के विकास का आधार भी इसी युग में तैयार हुआ।

बोध प्रश्न 5

निम्नलिखित तालिका में हमने उन विभिन्न सेवाओं की सूची दी है जो एक शहर के जनजीवन को चलाने के लिए आवश्यक होती है। साथ ही उस वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति की भी जानकारी दी गयी है जिससे इन सेवाओं को जारी रखने में मदद मिलती है। आप तालिका में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए। आपकी सुविधा के लिए हमने पहले रिक्त स्थान की पूर्ति कर दी है।

शहरी सभ्यता की आवश्यकताएँ अथवा सेवाएँ	संबंधित वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति
i) राजगिरी (चिनाई), बढ़ईगिरी और कृषि आदि के लिए आवश्यक उपकरण।	ताँबा और उसकी मिश्र धातु काँसे की खोज तथा विभिन्न प्रकार के उपकरण बनाने में उनका उपयोग।
ii) भारी मात्रा में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का आदान-प्रदान।	....
iii) शहरों की रूप रेखा तैयार करने, मकान बनाने के लिए ईंटों का इस्तेमाल।	....
iv)	खगोल विज्ञान
v)	चिकित्साविज्ञान
vi) आभूषण बनाने की कला, बर्तन बनाने की कारीगरी तथा धातु का काम, इत्यादि।	.....

अभी तक हमने भारतीय उपमहाद्वीप में प्राचीन सभ्यता के दौरान प्राप्त वैज्ञानिक और तकनीकी उपलब्धियों के स्तर के बारे में अधिक चर्चा नहीं की है। अब हम सिंधु घाटी सभ्यता से मिले पुरातत्व संबंधी प्रमाणों और अन्य सबूतों के आधार पर उस युग में भारत की वैज्ञानिक प्रगति पर एक नज़र डालेंगे।

2.3.3 सिंधु घाटी की सभ्यता

सन् 1920 के आस-पास हड़प्पा और मोहन-जोदड़ो नामक दो महान् प्राचीन शहरों का पता चला था। ये शहर अब पाकिस्तान में हैं। ये दोनों शहर सिंधु घाटी की अत्यंत विकसित सभ्यता के पहले प्रमाण हैं। उसके बाद कालीबंगन, रोपड़ और लोथल जैसे अन्य स्थानों पर की गई खुदाई से पता चला कि यह सभ्यता पूर्व में वर्तमान हरियाणा तक और दक्षिण में गुजरात तक फैली हुई थी। आप ये सब स्थल साथ में दिये गये चित्र में देख सकते हैं (चित्र 2.22)।

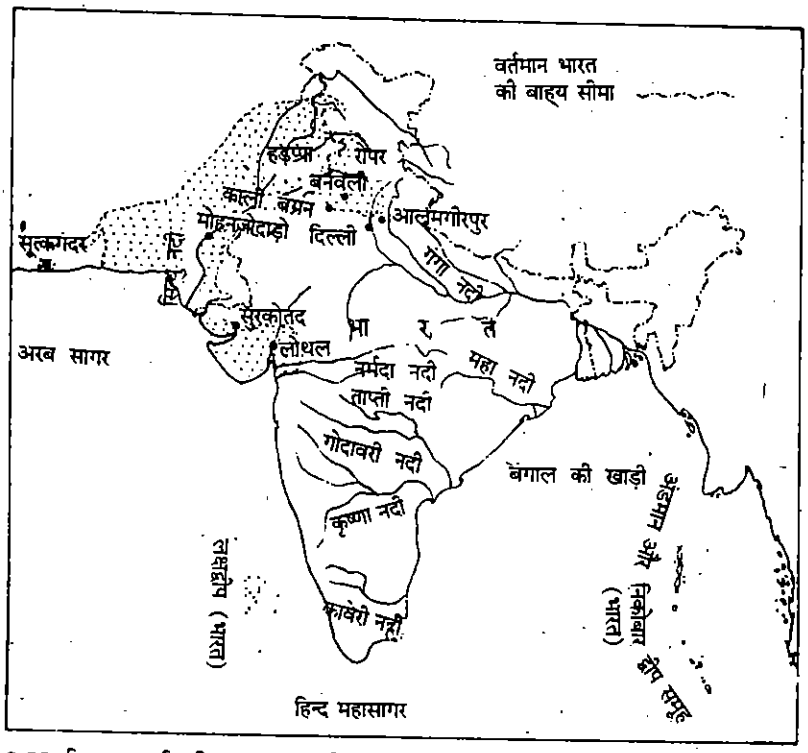

चित्र 2.22 सिन्धु घाटी की सभ्यता का विस्तृत क्षेत्र जिसमें कुछ प्रमुख शहर दिखायी दे रहे हैं।

सिंधु घाटी के प्राचीन शहरों में जिस योजनाबद्ध ढंग से बस्तियाँ बसायी गयी थीं, उनकी रूपरेखा देखते ही बनती है। शहरों के कुछ मकान बहुमंज़िले और आलीशान थे। ये पक्की ईंटों से बनाये गये थे तथा इनमें स्नानागार और शौचालय आदि की बेहतरीन सुविधाएँ उपलब्ध थीं। स्पष्ट है कि ये मकान धनी वर्ग के लोगों के रहे होंगे। बस्तियों के नक्शे में मकान लगभग 200×400 गज के आयताकार क्षेत्रों में बनाये गये थे। इनमें मुख्य सड़क चौड़ी होती थी और छोटी-छोटी गलियाँ थीं। सीधी सड़कें बिलकुल ठीक-ठीक समकोण पर मिलती थीं। बरसात के पानी के लिए जल-निकासी की शानदार व्यवस्था थी तथा गंदगी की निकासी के लिए मल-कुंड बनाये गये थे। अनाज का सुरक्षित भंडार रखने के लिए कई अच्छे अनाज भंडार बनाये गये थे। आयताकार क्षेत्रों में बने छोटे-छोटे मकान विशेषकर मज़दूरों अथवा दासों के लिए थे। सार्वजनिक स्नानस्थल सिंधु घाटी के शहरों की एक प्रमुख विशेषता थी। खुले आंगन में एक लगभग 23 फुट चौड़ा और 30 फुट लंबा तथा 8 फुट गहरा आयताकार कुआँ मिला है जिसके चारों ओर कई कमरे और बहुमंज़िली इमारतें पायी गयीं हैं। कुएँ की दीवारें भली-भाँति चिनी गयी ईंटों से बनी हैं और उनके ऊपर पानी को रोकने वाले पलस्तर हैं। कुएँ की सफ़ाई और पानी निकालने के लिए एक अच्छी नाली बनी है तथा उसमें स्वच्छ जल भरने के लिए पास में एक कुँआ हैं (चित्र 2.23)।

सिंधु घाटी में निर्माण और विन्यास की उच्च किस्म को देख कर यह पता चलता है कि उस युग के लोग बहुत ही बढ़िया तकनीकी के जानकार थे। उन्होंने जगह के बेहतर उपयोग और रेखागणित के ज्ञान की बदौलत निर्माण की कला में महारत हासिल कर ली थी। इतिहासकारों का यह मानना है कि ज्यामितीय गणना से एकदम सही-सही ईंटें बनाना और उन्हें विभिन्न आकार में तथा तरह-तरह की बनावटों में एक साथ जोड़ना, सड़कों तथा मकानों के निर्माण में सीध बनाये रखना और सही जगह पर बिलकुल सही मोड़ देना आसान काम नहीं था। इसके लिए रेखागणित का बहुत अच्छा ज्ञान होना आवश्यक था।

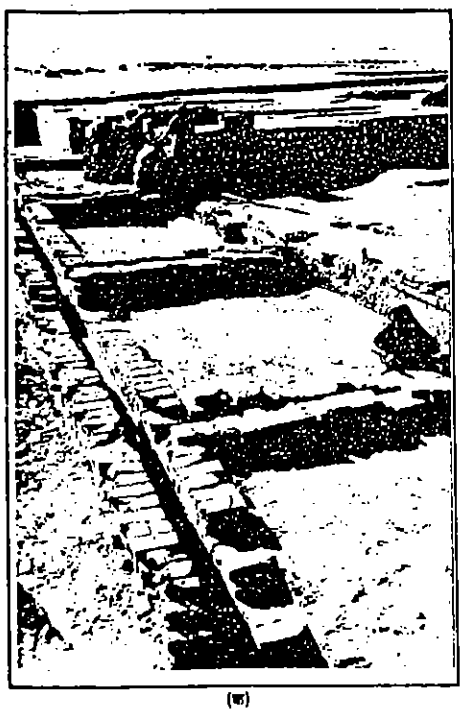

(क)

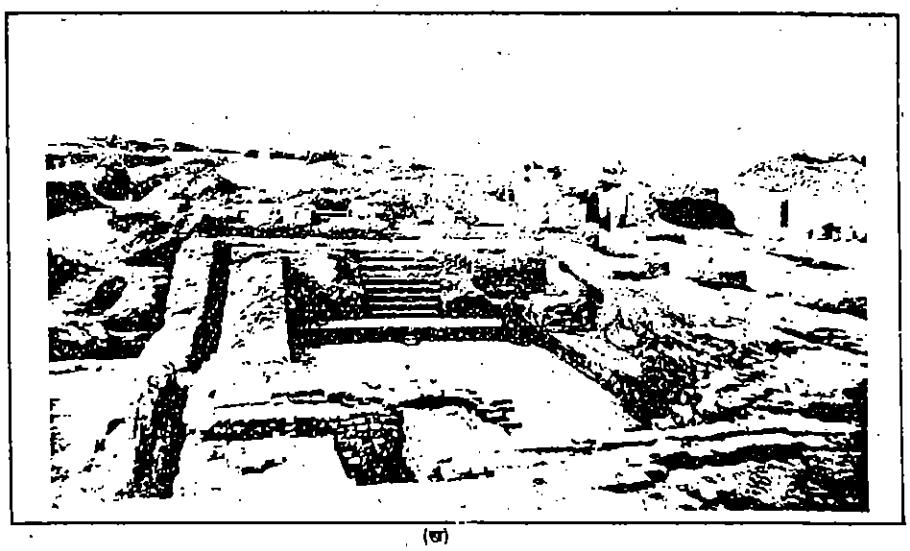

(ख)

चित्र 2.23 (क) लोथल में मकानों के आस-पास बना सार्वजनिक नाल,
(ख) मोहनजोदड़ों का पानी हौज़।

उल्लेखनीय है कि लगभग 600-300 वर्ष ईसा पूर्व के एक ग्रंथ शुल्वसूत्र में ज्यामितीय प्रमेय और उन्हें सिद्ध करने की विधियों का विस्तृत विवरण मिला है। इन सूत्रों का उपयोग वैदिक युग में धार्मिक अनुष्ठानों और यज्ञ आदि के लिए अग्नि की वेदी बनाने के लिए किया जाता था। अग्नि की ये वेदियाँ सिंधु घाटी सभ्यता के कुछ शहरों, जैसे कालीबंगन में भी पायी गई हैं। इन तथ्यों के आधार पर इतिहासकारों का यह अनुमान है कि शुल्व ज्यामिती सिंधु घाटी सभ्यता की देन है जो परंपरागत ढंग से बाद की पीढ़ियों को मिली।

पाइथागोरस प्रमेय के बारे में हम सब जानते हैं (चित्र 2.24)। इसके अनुसार—"किसी भी समकोण त्रिभुज के कर्ण का वर्ग त्रिभुज की दोनों भुजाओं के वर्गों के जोड़ के बराबर होता है।" आम तौर पर यह माना जाता है कि इसकी खोज यूनानी दार्शनिक पाइथागोरस (582 = 500 वर्ष ई.पू.) ने की थी। शुल्वसूत्र में इस प्रमेय की और परिभाषा दी गयी है। इसके अनुसार "किसी भी आयत का विकर्ण उतना ही क्षेत्रफल घेरता है जितना उसकी लंबाई और चौड़ाई अलग-अलग घेरती है।" इसके अलावा शुल्वसूत्र में ज्यामितीय आकृतियाँ बनाने, विभिन्न क्षेत्रफलों वाले एक जैसे रेखाचित्र खींचने तथा ज्यामिति से संबंधित अनेक अन्य समस्याएँ हल करने की विधियां दी गयी हैं। शुल्वसूत्र में 2 का वर्गमूल 1.4142156 दिया गया है। इन सब तथ्यों के आधार पर हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि सिंधु घाटी के लोगों को रेखागणित का काफ़ी अच्छा ज्ञान था।

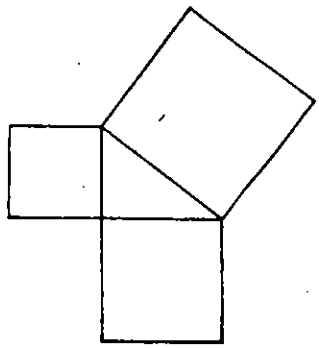

चित्र 2.24 पायथागोरस की प्रमेय का रेखाचित्रण

मोहनजोदड़ो, हड़प्पा और अन्य स्थानों की खुदाई से प्राप्त हुए काँसे के बर्तनों, उपकरणों, मुहरों, आभूषणों और खिलौनों से यह पता चलता है कि सिंधु घाटी सभ्यता ने विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में उच्च स्तर की जानकारी प्राप्त कर ली थी (चित्र 2.25)। पुरातत्व के सर्वेक्षणों में मिले शिल्प-तथ्यों से यह भी सिद्ध होता है कि मैसोपोटामिया के साथ उनके व्यापार संबंध भी थे।

चित्र 2.25 सिन्धु घाटी की सभ्यता के विभिन्न स्थानों की खुदाई से प्राप्त कुछ औज़ार और अन्य वस्तुएँ

सिंधु घाटी सभ्यता की एक अन्य बड़ी ही महत्वपूर्ण विशेषता यह मिली है कि उस युग के लोग काँसे का इस्तेमाल केवल मज़बूत चाकू, छेनी और आरी आदि उपकरणों को बनाने के लिए करते थे। उन्होंने संभवतः कभी भी ऐसे हथियारों का निर्माण नहीं किया, जो हिंसा के काम आ सकते थे। उस समय के बर्छी या भाले बिना धार वाले होते थे जो लड़ाई आदि के लिए बिलकुल बेकार थे। न ही उस समय काँसे की नोक वाले तीर बनाये जाते थे। वास्तव में सिंधु घाटी की प्राचीन संस्कृति अहिंसावादी थी।

सिंधु घाटी सभ्यता के बारे में ये सभी निष्कर्ष केवल वस्तुगत प्रमाणों के आधार पर निकाले गये हैं, जैसे उपकरण, मिट्टी के बर्तन और कपड़े आदि के रूप में प्राप्त अवशेष, शिल्प, शहरों की बनावट और योजना जिसमें उनकी उस समय की जल-मल व्यवस्था आदि शामिल है। परंतु यदि हम इन स्थानों की खुदाई से प्राप्त हुए सिक्कों और मुहरों की भाषा पढ़ सकें तो उस युग के बारे में और अधिक जानकारी हासिल कर सकते हैं। अभी तक हम पत्थर की मुहरों पर खुदे विभिन्न चिह्नों और लिपि को नहीं पढ़ पाये हैं। हो सकता है कि भविष्य में कुछ और ऐसे तथ्य मिल जाएँ जिनसे सिंधु घाटी की संस्कृति के बारे में अधिक जानकारी मिल सके।

यहाँ अपनी बात समाप्त करते हुए संक्षेप में हम यह कहना चाहेंगे कि किस प्रकार उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन से शहरों और गाँवों के विकास में मदद मिली। शहरों में वृद्धि के साथ-साथ मनुष्य की माँग और बढ़ती गयी जिसके फलस्वरूप विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। इस प्रगति से उत्पादन के तौर-तरीकों में सुधार हुआ। उस समय खोजे गये उनके बहुत से उपकरणों में पाँच हज़ार वर्ष बाद भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। हममें से अनेक उसी तरह की मेज और कुर्सियाँ इस्तेमाल करते हैं, वैसे ही कमरों में रहते हैं जिनकी दीवारें और छत ईंट, पत्थर तथा प्लास्टर की बनी होती हैं, उसी प्रकार की प्लेटों में खाना खाते हैं तथा वैसे ही सूती, ऊनी अथवा रेशमी वस्त्र पहनते हैं। यहाँ तक कि आज जो दालें हम खाते हैं, वे उस समय के लोगों को भी कमोबेश मालूम थीं। परंतु यह शानदार युग जिसने हमें इतनी सब चीजें दीं, ईसा से लगभग 1500 वर्ष पूर्व पूरी तरह लुप्त हो गया। अब आगे हम आपको उन विशेष कारणों के बारे में जानकारी देंगे जिनसे काँस्य युग का धीरे-धीरे पतन हो गया।

2.3.4 काँस्य युग की सभ्यता का पतन

हम यह पाते हैं कि प्राचीन शहरों के उद्भव के साथ उत्पादन के तौर-तरीकों में जो महान प्रगति हुई, वह केवल कुछ शताब्दियों तक ही रही। शुरू में तो तकनीकों के विकास में बहुत प्रगति हुई। किंतु बाद में एक लंबे दौर तक कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। शहरी राज्य बने और बिगड़े, पुरोहित-राजाओं के वंश आये और गये। लेकिन उत्पादन के तौर-तरीकों में कोई परिवर्तन नहीं आया। खेती के पुराने तरीके, जो सिंचाई पर निर्भर थे, चलते रहे और साथ-साथ दूसरे शहरों के साथ व्यापार चलता रहा। किंतु कोई महत्वपूर्ण बदलाव नहीं आया।

शहरी राज्य उस शहर को कहते हैं जो एक स्वतंत्र राज्य भी होता है। उदाहरण के लिए मैसोपोटेमिया में बेबीलोन और ग्रीस में एथेन्स।

यह सब शायद इसलिए हुआ क्योंकि इस दौरान सामाजिक संगठनों का ढाँचा भी बदला। आदि मानव समुदाय में कोई विशिष्ट वर्ग नहीं होता था, जबकि इस समाज में विभिन्न वर्गों के लोग रह रहे थे। जैसा कि हमने इस इकाई के भाग 2.3.1 में पढ़ा कि एक वर्ग वह था, जो उत्पादन करता था और दूसरा वर्ग वह था जो उस उत्पादन पर अपना हक जमा लेता था। इसका एक अर्थ यह भी है कि सोचने वालों और करने वालों में फ़र्क था, सिद्धान्त और व्यवहार में अंतर था। हमने यह भी देखा कि इससे विज्ञान की प्रगति में भी रुकावट आयी। अंत में, पूरे सामाजिक ढाँचे में शोषण का समावेश हो गया। किसान और शहरी कारीगर ग़रीब होते गये, अंततः उनमें से कुछ दास बन गये। समाज दो वर्गों में बँट चुका था। एक वे जिनके पास सब कुछ था और दूसरे वे जिनके पास कुछ नहीं था। यहाँ से दोनों के बीच दरार पैदा हो गयी। इससे शहर कमज़ोर होते गये और अंत में उनकी बौद्धिक एवं तकनीकी प्रगति बिलकुल ठप्प हो गयी।

बढ़ती हुई जनसंख्या और बाहरी बर्बर जातियों के आक्रमण के फलस्वरूप भी शहरी संस्कृति पर भारी दबाव पड़ा। अपनी जनसंख्या को रोटी खिलाने के लिए उन्हें और अधिक ज़मीन की आवश्यकता पड़ी तथा उन्हें अपनी भौगोलिक सीमा का विस्तार करना पड़ा। उसकी रक्षा के लिए सेना गठित करनी पड़ी तथा किलेबंदी की आवश्यकता हुई। यहाँ तक कि सिंधु घाटी के लोगों को भी बाद में किलेबंदी करनी पड़ी, जबकि वहाँ एक अहिंसावादी संस्कृति पल रही थी। किलेबंदी, दीवार और हिंसा के अन्य उपकरणों जैसे शिलाप्रक्षेपक (catapult) और खिसकायी जा सकने वाली मीनारों के लिए यांत्रिकी के ज्ञान की आवश्यकता थी। जब युद्ध जीवन के अंग बन गये तो नये पेशेवरों के एक नये वर्ग का जन्म हुआ। ये वे लोग थे जिन्होंने नयी युद्ध मशीनें बनायीं और सुरक्षात्मक तथा हमलावर किस्म की चीज़ों का निर्माण किया। आज के इंजीनियर संभवतः इन्हीं लोगों की देन हैं।

काँस्य युग की कहानी समाप्त करते हुए अब हम यहाँ यह कहना चाहेंगे कि नदियों के किनारे बसी सभ्यताओं में जहाँ एक ओर ठहराव आ गया वहाँ दूसरी ओर उनका प्रभाव व्यापक होता गया। ये अपनी अगली पीढ़ियों के लिए ज्ञान का एक बहुत बड़ा भंडार छोड़ गयीं। बाद के प्रमुख ऐतिहासिक काल अर्थात् लौह युग का विज्ञान और प्रौद्योगिकी काफ़ी हद तक प्राचीन युग से ही प्राप्त हुए थे। लौह युग के लोगों को उन साम्राज्यों की महानता के बारे में ज़रा भी संदेह नहीं था जो उन्होंने नष्ट कर दिये। यूनान के प्रसिद्ध प्राचीन ग्रंथों में तथा होमर द्वारा रचित इलियड और ओडिसी में हमें आज भी उस युग की गूंज सुनाई देती है। लौह युग के लोगों के बारे में हम अगली इकाई में पढ़ेंगे।

बोध प्रश्न 6

काँस्य युग के पतन के क्या कारण थे? निम्नलिखित कारणों में से किन्हीं तीन पर सामने दिये गये रिक्त स्थान में सही (√) का निशान लगाइए।

क) उत्पादक और अधिकार जमाने वाले विभिन्न वर्गों का उदय। ☐

ख) अनेक शहरों का उदय और विनाश। ☐

ग) खानाबदोश लुटेरों के आक्रमण। ☐

घ) एक वंश के पुरोहित-राजा द्वारा दूसरे वंश की सत्ता पलट देना। ☐

ङ) जनसंख्या में वृद्धि जिसके फलस्वरूप शहरों पर दबाव बढ़ता गया। ☐

2.4 सारांश

हमने अभी दो प्रमुख युगों – पाषाण युग और काँस्य युग में विज्ञान के इतिहास का अध्ययन किया है। इनमें हमने आदिम मानव समाज में विज्ञान [illegible] तथा प्राचीन मानव सभ्यता के दौरान विज्ञान के उदय और उसकी प्रगति के बारे में [illegible] करने के प्रयास किये। इन दोनों युगों का समय, मानव इतिहास के एक लाख (1,00,000) वर्षों से अधिक रहा है। अब हम संक्षेप में यह देखेंगे कि इस इकाई में हमने क्या पढ़ा।

- आदिम मानव ने खाने-पीने, रहने और पहनने की अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए जो प्रयास किये उसमें ही विज्ञान की उत्पत्ति देखी जा सकती है। इन्हीं प्रयासों के परिणामस्वरूप प्राचीन उपकरणों और तकनीकों का विकास हुआ।
- भाषा का जन्म, मूलतः मनुष्य द्वारा एक दूसरे से बेहतर तरीके से संपर्क स्थापित करने की आवश्यकता के फलस्वरूप हुआ। भाषा के साथ-साथ अनेक धार्मिक और जादुई कृत्य प्रचलित हो गये।
- बढ़ती हुई जनसंख्या और मौसम में आये कुछ परिवर्तनों ने आदि मानव को उत्पादन के नये तरीके खोजने के लिए बाध्य किया।
- मनुष्य को अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए प्रकृति पर नियंत्रण पाने तथा उसे अपने अनुरूप ढालने में कृषि से मदद मिली। शहरों का जन्म हुआ। विकसित हो रहे शहरों की आवश्यकताओं ने वैज्ञानिक और तकनीकी गतिविधियों को तीव्र गति प्रदान की और इस प्रकार मनुष्य के ज्ञान का भंडार और बढ़ा। नयी तकनीक की बदौलत उत्पादन के बेहतर साधन उपलब्ध हुए।
- उत्पादन के असमान बँटवारे के कारण पुरोहित-राजाओं अर्थात् दार्शनिकों के वर्ग का प्रभुत्व बढ़ता गया तथा उन्होंने अपने आपको किसानों और शहरी कारीगरों अर्थात् काम करने वालों के वर्ग से अलग कर लिया। पुरोहित-राजाओं ने अपनी शक्ति मज़बूत करने के लिए जो प्रयास किये उनसे दोनों वर्गों के बीच अंतर बढ़ता ही गया जिसके परिणामस्वरूप समाज में तथा विज्ञान के क्षेत्र में एक गतिहीनता आ गयी। बर्बर लोगों के हमलों ने शहरी राज्यों को और कमज़ोर किया।

2.5 अंत में कुछ प्रश्न

1) चार या पाँच पंक्तियों में उत्तर दें।

   क) ऐसी कौन सी आदि प्रथाएँ थीं जिनमें आधुनिक विज्ञान की अभिकल्पना (design) और योजना की विशेषताओं की झलक मिलती है?

   .....

   .....

   .....

   .....

   ख) जानवरों को पालने और वस्त्रों के उपयोग ने किस प्रकार आदिम समाज को प्रभावित किया?

   .....

   .....

   .....

   .....

2) निम्नलिखित किन कारणों ने 'आत्मा,' धर्म और जादुई कृत्यों, संस्कारों की विचारधारा को जन्म दिया?

   रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

   क) आदिम युग के मनुष्य प्राकृतिक प्रकोपों जैसे बाढ़ और आग आदि पर काबू पाने में असमर्थ थे। वे यह भी नहीं समझ पाते थे कि मनुष्य मरते क्यों हैं। इसका कारण वे ..... को मानते थे।

   ख) ऐसी तकनीकों का समुचित विकास नहीं हुआ था जिनसे सभी को पर्याप्त भोजन मिल सके। उस समय यह धारणा थी कि पशुओं और पौधों के इर्द-गिर्द नाचने-गाने और बलि चढ़ाने से खाद्यान्न में वृद्धि होगी। इससे अन्य चीज़ों के अलावा ..... की प्रथा शुरू हुई।

   ग) मनुष्य ने जब अपनी आवश्यकताओं के लिए प्रकृति पर विजय पाने में अपने आपको असहाय पाया और परिस्थितियों से समझौता करने की कोशिश की तो उसने ..... को अपना सहारा बनाया।

3) नीचे दिये गये प्रश्नों का तीन-चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

   i) आदिम समाज से कृषि प्रधान समाज में परिवर्तन के दौर में उत्पादन के तौर-तरीकों में अनेक परिवर्तन हुए। शहरों का जन्म हुआ और उस समय की सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं के कारण विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में प्रगति हुई।

   क) आदि समाज और काँस्य युग सभ्यता में मनुष्य द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली उत्पादन विधियों में क्या अन्तर था?

   .....

   .....

   .....

   .....

   ख) उन सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं का विवरण दीजिये जिनके कारण शहरों के प्रारंभिक विकास के दौर में तकनीकी प्रगति हुई।

   .....

   .....

   .....

   .....

   ग) उस समय की तकनीकी प्रगति से इन आवश्यकताओं की किस प्रकार पूर्ति हुई?

   .....

.....

.....

.....

ii) शहरों के विकास और तकनीकी प्रगति के परिणाम स्वरूप दो अलग-अलग वर्ग बन गये—उत्पादनकर्ता और अधिकार जमाने वाले।

घ) दोनों वर्गों में क्या अन्तर था?

.....

.....

.....

.....

.....

ङ) नीचे दी गई सूची में से उत्पादनकर्त्ता और स्वामित्व जमाने वाले लोगों का चयन कीजिये तथा उन्हें बराबर में दी गयी तालिका में रखिए।

	उत्पादनकर्ता	स्वामी
कृषक		
पुजारी		
राजमिस्त्री		
बढ़ई		
प्रशासक		
पहिये बनाने वाला		
कृषि के औजार बनाने वाला		
राजा		

च) पिछली इकाई में विज्ञान के [illegible] पहलुओं के बारे में आपने पढ़ा उनकी सूची दीजिये। ऊपर दिये गये कथनों (i), (ii) तथा अपने उत्तरों (क) से (ङ) की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.6 उत्तर

बोध प्रश्न

1) (i) भौतिकी, प्रौद्योगिकी, (ii) रसायनशास्त्र, (iii) भौतिकी, (iv) रसायनशास्त्र, (v) रसायनशास्त्र, (vi) प्रौद्योगिकी

2) (i) √ (ii) √ (iii) × (iv) √ (v) ×

3) (i) क, ख, ङ, ज (ii) ख, ग, च, झ, ञ (iii) घ, छ

4) पाषाण युग, भोजन, प्रकृति, निर्भर, प्रकोप, ठंडी, भिन्न, आदिम।
5) ii) संख्याओं, मापतोल और भार का मानकीकरण; लिपि; तुला और गणित का उपयोग।
   iii) समकोण, सीधी रेखा, चतुर्भुज की कल्पना, आकृतियों का क्षेत्रफल, ठोस वस्तुओं के आयतन ने रेखागणित के जन्म का आधार तैयार किया।
   iv) समुद्र में मार्ग निर्देशन की आवश्यकता, पंचांग बनाना, बड़े पैमाने पर खेती-बाड़ी करने की योजना बनाना, बाढ़ से बचाव के लिए तैयारी आदि।
   v) घाव, हड्डी का टूटना और खिसकने आदि का इलाज, रोगों का निदान।
   vi) रसायनशास्त्र।
6) क, ग, ङ

अंत में कुछ प्रश्न

1) क) औज़ार बनाने वाले पहले मनुष्य ने यह सोचा होगा कि वह कौन-सा औज़ार बनाएगा (डिज़ाइन) और किस तरह बनाएगा (योजना)। फिर उसने बड़ा-सा पत्थर लिया और अपनी योजना के अनुसार उसे तरह-तरह के रूप देता रहा।

   ख) वस्त्रों के इस्तेमाल ने आदि मानव को ठण्डे मौसम में अपना बचाव करना सिखाया। पशुओं को पालतू बनाने से उसके आने-जाने में और भोजन प्राप्त करने में वृद्धि हुई। इस प्रकार आदिम समाज कठिन परिस्थितियों में भी अपने आपकों ज़िंदा रखने की आशा रखता था।
2) (क) आत्मा, (ख) जादुई कृत्य/संस्कार, (ग) धर्म
3) क) आदिम समाज में शिकार करना और भोजन इकट्ठा करना, काँस्य युग सभ्यता में कृषि, राजगिरी, बढ़ईगिरी और दूसरे शिल्प।
   ख) विकसित हो रहे शहरों में कृषि के लिए बेहतर औज़ार, रहने के लिए मकान, चीज़ें रखने के लिए मिट्टी के बर्तन, व्यापार और परिवहन के लिए बैलगाड़ियाँ तथा नावें, सुनियोजित नक्शों आदि की आवश्यकता के परिणामस्वरूप तकनीकी प्रगति हुई।
   ग) मिट्टी के बर्तन बनाने की कला, धातु के काम, राजगिरी, बढ़ईगिरी, ईंटों का काम, नाव बनाना और पत्थर के काम आदि में हुई तकनीकी प्रगति द्वारा।
   घ) किसान, राजमिस्त्री, पहिये बनाने वाले, और बढ़ई आदि जैसे उत्पादनकर्त्ता चीज़ों का उत्पादन स्वयं करते थे, इन चीजों पर स्वामित्व जमाने वाले लोग स्वयं माल तैयार नहीं करते थे। ये लोग दूसरे लोगों द्वारा बनायी गयी वस्तुओं को हड़प जाते थे।
   ङ) उत्पादनकर्त्ता : कृषक, राजमिस्त्री, बढ़ई, पहिये बनाने वाले, कृषि के औज़ार बनाने वाले। स्वामी : पुजारी, प्रशासक, राजा।
   च) हम इकाई 1 में से विभिन्न पहलुओं की सूची दे रहे हैं। साथ में प्रत्येक कथन के सामने उन पृष्ठों का संदर्भ भी दे रहे हैं जिनमें ये आये हैं।
      i) उत्पादन के नये-नये तरीके ईज़ाद होने के साथ-साथ ही समाज में परिवर्तन आया (पृ. 16, 17) समाज में एक समय ऐसा आया जब सामाजिक और आर्थिक ज़रूरतों ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास में मदद की। (पृ. 9)
         क) प्रमुख ऐतिहासिक युगों का संबंध उत्पादन के विभिन्न तरीकों से है। (पृ. 16)
         ख) वही जो (i) पर दिये गये उत्तर के दूसरे भाग में है।
         ग) विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में प्रगति से वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि होती है और इससे उसके सदस्यों में संतोष की भावना जागृत होती है। (पृ. 16)
      ii) (घ), (ङ) विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में हुए आविष्कारों का इस्तेमाल समाज की प्रभावशाली ताकतों ने धीरे-धीरे अपना प्रभाव मज़बूत करने के लिए किया। (पृ. 9)

इकाई 3 लौह युग

काई की रूपरेखा

.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
.2 लौह युगीन भारत में विज्ञान
कृषि योग्य भूमि और खनिजों की खोज
नगरीय समाजों का उत्थान
विज्ञान का उदय
चिकित्सा विज्ञान में प्रगति
.3 लौह युगीन यूनान में विज्ञान
विज्ञान के कुछ क्षेत्रों में प्रगति
.4 प्राचीन काल में परमाणु सिद्धांत
.5 यूरोपीय विज्ञान का पतन
.6 सारांश
.7 अंत में कुछ प्रश्न
.8 उत्तर

.1 प्रस्तावना

काई 2 में हमने आदि मानव के विचारों और तकनीकों का संक्षेप में अध्ययन किया। हमने उस मय की संस्कृति में विज्ञान के मूल को खोजने की कोशिश की। आपने प्राचीन विश्व में, उस तिहासिक काल में, जो काँस्य युग के नाम से प्रसिद्ध है, विज्ञान के उत्थान और विकास के बारे भी पढ़ा। अब हम विज्ञान के इतिहास के एक बहुत महत्वपूर्ण युग पर ध्यान देंगे जिसे 'लौह ग' कहते हैं।

सा पूर्व पंद्रहवीं शताब्दी के आसपास हम पाते हैं कि अब सभ्यता कुछ नदी घाटियों तक ही ीमित नहीं रह गयी थी बल्कि एशिया, उत्तर अफ्रीका और यूरोप के खेती योग्य क्षेत्रों तक फैल यी थी। सभ्यता के प्रसार में एक नयी धातु लौह की खोज और उसके उपयोग से बहुत मदद ाली। इसीलिए यह काल 'लौह युग' के नाम से प्रसिद्ध है। 'लौह युग' में कोई ऐसी सनसनीखेज द्योगिक प्रगति नहीं हुई, जैसी काँस्य युग में हुई थी। इस सभ्यता के प्रसार के साथ, एक सस्ती ौर काफ़ी मात्रा में पाई जाने वाली धातु के मिलने से व्यापक परिवर्तन आये जिन्होंने समाज के ाभिन्न वर्गों के संबंधों को भी प्रभावित किया।

म पढ़ चुके हैं कि अर्थव्यवस्था और संस्कृति की अनेक समस्याओं के फलस्वरूप काँस्य युग में ी घाटी सभ्यताओं का पतन हो रहा था। उनका अंत बर्बर जातियों के लगातार हमलों से शीघ्र गया। ये खानाबदोश बर्बर लोग चरवाहे थे, जिन्होंने लोहे को इस्तेमाल करना सीख लिया ा। वे बहुत गतिशील थे क्योंकि सवारी के लिए उन्होंने जंगली घोड़ों को पालतू बना लिया था ौर ज़्यादातर वे अपना भोजन साथ लेकर चलते थे। जो सभ्यताएँ समाप्त हो रही थीं उनको हस-नहस कर वे अन्य देशों को लूटने और सभ्यताओं को उजाड़ने के लिए आगे बढ़ते जाते थे। त विनाश-लीला के दौरान जो स्थानीय तकनीकें अच्छी लगती उन्हें वे अपना लेते थे। वे जिन ाकों को तहस-नहस कर देते थे, उनका दुबारा निर्माण करना बर्बाद हुए लोगों के लिए संभव हीं था। ये बर्बर लोग संसार भर में दूर-दूर तक फैल गये। उन्होंने जिन सभ्यताओं को जन्म या दे कम शांतिपूर्ण थीं और कम प्रगतिशील भी पर वे बदलावों के प्रति अधिक लचीली थीं।

इकाई में हम 'लौह युग' की भारतीय और यूनानी सभ्यताओं में विज्ञान और तकनीकी की ति के बारे में पढ़ेंगे। अगली इकाई में हम भारत में वैज्ञानिक प्रगति के एक सबसे अधिक फल काल, जिसके दौरान खगोल-विज्ञान, गणित और प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में अत्यधिक प्रगति ई थी, पर विचार करेंगे।

देश्य

इकाई को पढ़ लेने के बाद आप :

- लौह युग के दौरान भारत और यूनान में विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्रों में हुई प्रमुख उपलब्धियों का वर्णन कर सकेंगे;

- भारत में विभिन्न वैज्ञानिक विचारधाराओं और तकनीकों में हुई प्रगति की यूनान की प्रगति से तुलना कर सकेंगे; और
- यूरोप में विज्ञान के पतन के लिए जिम्मेदार कारकों को समझ सकेंगे।

3.2 लौह युगीन भारत में विज्ञान

भारतीय उपमहाद्वीप में आने वाले खानाबदोश आर्य, उन घास के मैदानों से आये थे, जो आजकल सोवियत, मध्य एशिया और ईरान के हिस्सों में स्थित हैं। वे पहली बार ईसा से लगभग 1500 वर्ष पूर्व आये थे। वे दक्षिण-पूर्व की ओर बढ़ते गये और पंजाब में पशु चराने वाले कृषक समुदायों और राज्यों के रूप में बस गये (चित्र 3.1)। पशु चराने वाले खानाबदोश समुदाय से वे स्थायी रूप से रहने वाले कृषक समुदाय में बदल गये। यह बदलाव मुख्य रूप से ईसा पूर्व 1500 से 1000 वर्ष के बीच में हुआ किंतु वह 700-600 वर्ष ईसा पूर्व तक चलता रहा।

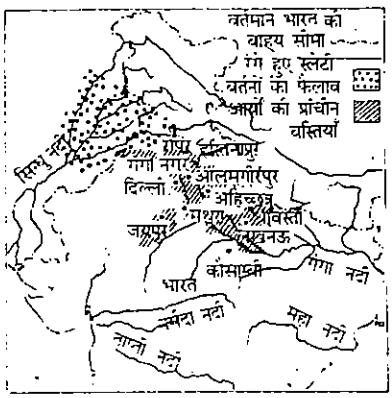

चित्र 3.1 गंगा के मैदानी भागों से प्राप्त रंगे हुए स्लेटी बर्तनों का फैलाव जो आर्यों के पूर्व की ओर बढ़ने का प्रमाण है।

इस युग के बारे में हमें वैदिक काल के साहित्य जैसे वेद, संहिता, उपनिषद, सूत्र आदि से जानकारी मिलती है। आइए, अब हम उस काल के इतिहास की एक बार फिर कल्पना करें।

3.2.1 कृषि योग्य भूमि और खनिजों की खोज

आर्यों के लिए खानाबदोश चरवाहों से किसानों में बदल जाने का काल स्थानीय निवासियों के साथ युद्ध और कलह का काल था। हमेशा ही वे खेती योग्य भूमि, खनिज और अयस्क भंडारों की खोज में रहते थे। इसके लिए उन्होंने घने जंगलों को भी साफ़ कर डाला। इस काल को ऋग्वैदिक काल कहते हैं।

ऋग्वैदिक काल (1500-700 वर्ष ईसा पूर्व)

ऋग्वैदिक काल में आर्य लोग हमेशा घूमते रहते थे और आपस में या स्थानीय लोगों से जो आर्य नहीं होते थे, संघर्ष करते रहते थे। इसलिए उन्हें विज्ञान और प्रौद्योगिकी को आगे बढ़ाने का समय नहीं मिला। उनकी प्रौद्योगिकी मुख्यत: रथों, लोहे के औज़ारों और युद्ध के सामान बनाने तक ही सीमित थी। गंगा के कछार में उस काल (1000 से 600 वर्ष ईसा पूर्व) के मिले मिट्टी के बर्तनों को 'रंगे हुए सलेटी बर्तन' कहा जाता है। पर वे उतने विकसित नहीं थे जितने कि हड़प्पा काल के बर्तन थे। यह आप चित्र 3.2 में देख सकते हैं। इसी प्रकार उस समय ईंट बनाने की तकनीकों में भी हड़प्पा काल की प्रौद्योगिकी के मुकाबले में कोई विशेष अंतर नहीं था। काष्ठ कारीगर, रथ बनाने वाले, धातुकर्मी, जलयान निर्माता आदि दस्तकार समाज के स्वतंत्र नागरिक थे। बुनाई और कताई का काम स्त्रियाँ ही करती थीं।

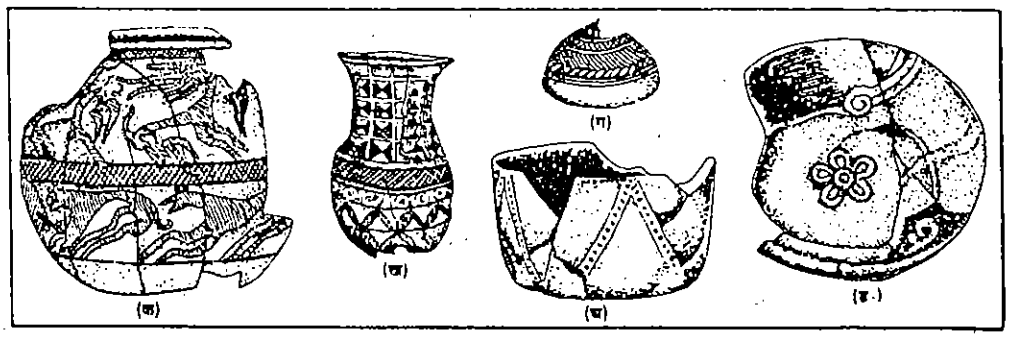

चित्र 3.2 सिन्धु घाटी और रंगे हुए स्लेटी बर्तनों के स्थलों से प्राप्त मिट्टी के बर्तनों का रेखाचित्र। (क) दयामाबाद से प्राप्त लगभग 2,000 वर्ष ई.पू. के मिट्टी के बर्तन, (ख) लोथल से प्राप्त मिट्टी के बर्तन, (ग) नवादातोली से प्राप्त लगभग 2,000 वर्ष ईसा पूर्व का बर्तन। रंगे हुए स्लेटी बर्तन, (घ) कटोरा (पानीपत) और (ङ) तश्तरी (अहिच्छत्र)। इनके नमूने, प्रकार और पकाने के तापमान से यह लगता है कि हड़प्पा के मिट्टी के बर्तन, रंगे हुए स्लेटी बर्तनों की तुलना में बेहतर हैं।

जहाँ तक विज्ञान के अन्य क्षेत्रों का संबंध है, हमें ऋग्वेद में ब्रह्मांड का तीन क्षेत्रों—पृथ्वी, अंतरिक्ष और आकाश में बँटे होने का उल्लेख मिलता है। आज हम यह जानते हैं कि यह विभाजन सही नहीं था। यज्ञ तथा समारोह, जो सूर्य, चंद्रमा और ग्रहों की गति पर निर्भर होते थे, को संपन्न करने के लिए ब्राह्मणों को पंचांगों की ज़रूरत होती थी। इसके लिए इन खगोलीय पिण्डों की गतियों का पता लगाया गया। आर्यों ने जो पंचांग बनाये, वे समय को दिनों, महीनों,

वर्षों में बाँटते थे। साथ ही वे ऋतुओं को भी दर्शाते थे। परंतु उस काल में इन ग्रहों, तारों और मंदाकिनियों की गतियों के बारे में गहन अध्ययन नहीं हो पाया था। ऋग्वेद के मंत्रों और छंदों में यदा-कदा ही हमें विभिन्न पौधों, उनके वर्गीकरण और संरचना के बारे में उल्लेख मिलते हैं। कुछ मंत्रों में औषधियों के प्रति रुचि की झलक भी मिलती है।

यजुर्वेद के मंत्र भूमि और अन्य संसाधनों की जिज्ञासा को दर्शाते हैं : "मुझे दें; मोटा अनाज, भोजन, भूख से छुटकारा, चावल, जौ, तिल, मोठ, मटर, गेहूँ, मसूर, जवार... और जंगली धान। (यज्ञों से फूलूँ-फलूँ); मुझे दें; पत्थर, मिट्टी, पर्वत... सोना, काँसा, शीशा, रांगा, लोहा, ताँबा, आग... जुतने वाली और न जुतने वाली जमीन पर होने वाली सभी वस्तुएँ, पालतू और जंगली मवेशी, यज्ञ से फूलें-फलें।"

यजुर्वेदिक काल (700-400 वर्ष ईसा पूर्व)

ऋग्वैदिक काल के बाद का समय कृषि योग्य भूमि और खनिजों की खोज में आर्यों के पूर्व की ओर आगे बढ़ने का काल था। यजुर्वेदिक काल के नाम से प्रसिद्ध यह समय लगभग 300 वर्षों तक रहा। यजुर्वेद में बारह बैलों द्वारा खींचे जाने वाले हलों का उल्लेख है। इस प्रकार के हल कठोर, नयी भूमि की गहरी खुदाई के लिए जरूरी थे। अन्यथा भूमि से अच्छी पैदावार नहीं मिलती थी अथवा भूमि अपनी उपजाऊ शक्ति को कायम नहीं रख सकती थी। इस प्रकार के हल मजबूत लकड़ी के बनाये जा सकते थे, उन्हें कांसे के औजारों से तराशा जा सकता था। परन्तु कठोर धरती को जोतने के लिए लोहे का फाल बनाया जाना ज़रूरी हो गया था। परंतु प्रश्न यह था कि लोहा आए कहाँ से? राजस्थान में तांबा तो मिल सकता था परंतु लौह अयस्क तो दूर पूर्व में मिलते थे। भारत में लोहे और तांबे के अयस्कों की सर्वोत्तम जमावटें, गंगा के कछार की पूर्वी सीमा पर (वर्तमान दक्षिण-पूर्व बिहार) में पायी जाती है। धातु अयस्कों के लिए आर्यों द्वारा की गयी खोज के सबूत हमें लगभग 1000 वर्ष ईसा पूर्व के तांबे की बर्छियों और अर्द्ध-मानव मूर्तियों के रूप में मिलते हैं (चित्र 3.3)। ये बर्छियाँ और मूर्तियाँ पूरे गंगा के कछार में पायी गयी हैं। इस प्रकार मिले औज़ारों और कलात्मक वस्तुओं से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि इन्हें आर्य व्यापारी ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे। इन वस्तुओं से यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि आर्यों को बढ़िया भट्ठों में नियंत्रित अग्नि द्वारा ताम्र को शोधने की तकनीक ज्ञात थी।

आर्यों के नौकाचालन के ज्ञान से उनकी गतिशीलता के बारे में पता चलता है। हमें ऋग्वेद में भी सौ पतवारों वाली नौका का उल्लेख मिलता है। व्यापार और नये क्षेत्रों की खोज के लिए नौकाओं को गंगा नदी में वाराणसी से आगे पाटलीपुत्र और गंगा के डेल्टा तक भेजा जाता था।

समय के साथ बढ़िया किस्म के लोहे की माँग बहुत तेज़ी से बढ़ी। परिणामस्वरूप आर्यों ने देश भर में लोहे की नयी जमावटों की खोज आरंभ कर दी। इस खोज में वे लगभग 200 से 100 वर्ष ईसा पूर्व तक उन इलाकों में भी जा पहुँचे जो वर्तमान आंध्र और कर्नाटक में हैं। लोहे, तांबे, चांदी और राँगे के धातुकर्म के अपने ज्ञान में आर्य मौर्य युग के मध्य तक वृद्धि करते रहे। हमें 'अर्थशास्त्र' में अयस्कों को अपचयित करने और गलाने के ऐसे निर्देश मिलते हैं जिनके अनुसार उन्हें विभिन्न किस्मों में बाँटा जा सकता है।

अर्थशास्त्र एक अति महत्वपूर्ण पुस्तक है जो आज हमारी धरोहर है। उसे चंद्रगुप्त के मंत्री कौटिल्य ने 321-300 ई.पू. के आस-पास लिखा था।

3.2.2 नगरीय समाजों का उत्थान

इस काल के ग्रंथों में हमें उस समय की सामाजिक परिस्थितियों की तस्वीर भी मिलती है। उस समय समाज की रचना में बुनियादी परिवर्तन हो रहे थे। समाज कबीलों से नगरीय समाज में बदल रहा था। उस समय जब आर्यों ने पूर्व की ओर बढ़ना शुरू किया तब अतिरिक्त परिश्रम के लिए 'दास' बनाने की प्रथा आरंभ हो चुकी थी। एक अति विकसित पुरोहित वर्ग भी जन्म ले रहा था। यह वर्ग यज्ञ संस्कारों में बड़ा कुशल था जिनमें आर्यों और अनार्यों की परंपराएँ शामिल थीं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन हो रहा था। दस्तकार और मज़दूर उनका उत्पादन स्थानीय समाज के सीधे उपयोग के लिए न करके दूर इलाकों में बसी आर्य और अनार्य बस्तियों के लिए करते थे। उत्तरपथ और बाद में दक्षिणपथ नाम के व्यापारिक मार्ग बन चुके थे। आप इन मार्गों के चित्र 3.4 में देख सकते हैं। सार्थवाह और वैदेहिक नाम से प्रसिद्ध व्यापारियों ने इन मार्गों द्वारा तक्षशिला से मगध तक आना-जाना शुरू कर दिया था। खुदाई में मिले सिक्कों से हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी के अंत तक सिक्कों का काफ़ी प्रचलन हो चुका था।

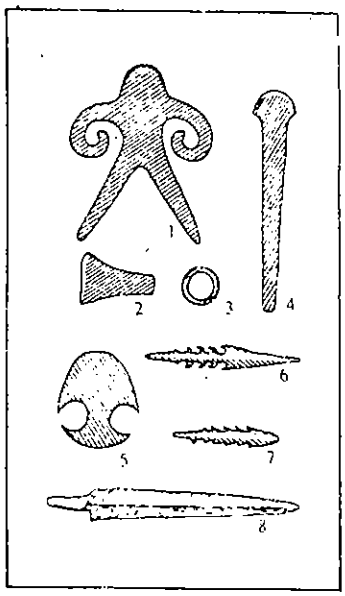

चित्र 3.3 गंगा के मैदानी भागों से प्राप्त ताँबे से बनी कुछ वस्तुओं के रेखाचित्र: (1) अर्ध मानव प्रतिमा, (2) कुल्हाड़ी, (3) चक्र, (4) छैनी, (5) दोहरी कुल्हाड़ी, (6) और (7) काँटेदार बर्छी, (8) तलवार।

इस काल के लगभग अंत तक विज्ञान, चिकित्सा और तकनीकी को पूर्णकालिक पेशे के रूप में अपनाने का प्रचलन आरंभ हो गया था। पूरे उत्तरपथ से विद्यार्थी विषय विशेष के प्रशिक्षण के लिए तक्षशिला जैसे विद्या केंद्रों की ओर आने लगे थे। व्याकरणाचार्य पाणिनी चौथी शताब्दी के आसपास तक्षशिला में अध्ययन करते थे।

अत्रेय वहीं छठी शताब्दी में चिकित्सा विज्ञान पढ़ाते थे। अत्रेय के शिष्यों और उत्तराधिकारियों—जीवक, कुमारभट्ट, भेला, पाराशर और अन्य लोगों ने ही भारत में अगले 1000 वर्षों तक चिकित्साविज्ञान में विकास को अत्यधिक योगदान दिया।

लगभग 800 से 600 वर्ष ईसा पूर्व के बीच एक नयी व्यवस्थित सामाजिक परंपरा ने जन्म लिया। यह वैदिक समाज की कमियों और न समाप्त होने वाले संघर्षों से मुक्त थी। छोटे-छोटे राज्य या जनपद बनने लगे। इन पर राजा राज्य करते थे और इनका शासन इन राजाओं द्वारा बनाये गये कानूनों और रीति-रिवाज़ों के अनुसार चलता था। ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी में ऐसे सोलह जनपद थे

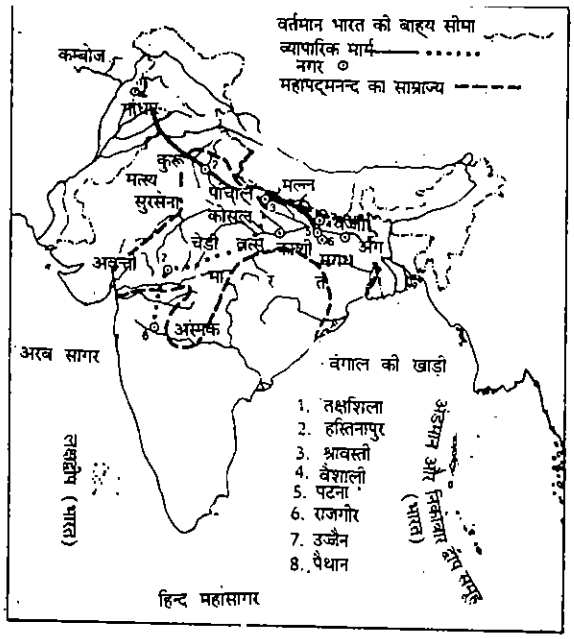

चित्र 3.4 ईसा पूर्व सातवीं सदी के सोलह मुख्य जनपद। उत्तरपथ (——) और दक्षिणपथ (.....) के व्यापारिक रास्ते। चौथी सदी ई.पू. महापद्मनन्द के अधीन मगध साम्राज्य।

(चित्र 3.4)। इन राज्यों की आय के स्रोत कृषि और व्यापार थे। इनमें राजा के साथ पुरोहित, विद्वान, सैनिक, व्यापारी, किसान, दस्तकार और निम्न कोटि के मज़दूर होते थे। राजकाज को सुचारू रूप से चलाने और यह निश्चित करने के लिए कि शक्ति हमेशा धनवानों के हाथ ही में रहे, पुरोहितों द्वारा चलायी गयी यह सामाजिक परंपरा जल्दी ही सुदृढ़ हो गयी। समाज चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—में बँट गया। इस परंपरा की रक्षा के लिए यह बात फैलायी गयी कि यह ईश्वरीय व्यवस्था है। इसके भंग करने वाले पर दैवीय प्रकोप होगा।

बोध प्रश्न 1

निम्नलिखित कथन भारत के काँस्य युगीन और लौह युगीन समाजों के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। प्रत्येक कथन के आगे यदि वह काँस्य युग से संबंधित है तो 'क' और यदि लौह युग से संबंधित है तो 'ल' लिखिए।

i) यह सभ्यता भारत में गंगा के मैदानों में दूर-दूर तक फैली थी। .....

ii) इस काल की अधिकांश आबादियाँ सिंधु नदी की घाटी में स्थित थीं। .....

iii) इस सभ्यता काल में व्यापार मुख्य रूप से विनिमय पद्धति से होता था यानी एक किस्म की वस्तु को खरीदते समय दूसरे किस्म की वस्तुएँ दी जाती थीं। .....

iv) वस्तुओं का व्यावसायिक तौर पर उत्पादन आरंभ हो गया था। दूसरे शब्दों में कुछ वस्तुएँ स्थानीय खपत के लिए नहीं वरन् दूर-दराज़ के क्षेत्रों में बेचने के लिए बनायी जाती थीं। .....

v) इस समाज में जाति प्रथा का जन्म हुआ। .....

vi) मुख्य रूप से उन वस्तुओं का व्यापार किया जाता था जो समाज में खपत के बाद बच जाती थीं। .....

vii) नयी चीज़ों की खोज में लोग बड़ी संख्या में लगे थे। .....

viii) व्यापारिक लेन-देन के लिए सिक्कों का नियमित रूप से उपयोग होने लगा था। .....

ix) समाज के दो प्रमुख वर्ग थे—पुरोहित-राजा; किसान और नगरीय दस्तकार। .....

x) लोगों के छोटे समूह विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विशिष्ट क्षेत्रों में पारंगत होने लगे थे। .....

3.2.3 विज्ञान का उदय

पिछले खंड में हमने आपके समक्ष लौह युग में भारतीय समाज के गठन की झांकी प्रस्तुत की थी। नगरीय समाजों के उदय के साथ विज्ञान और तकनीकी में तीव्र विकास के द्वार खुल गये। अब हम संक्षेप में विज्ञान की विभिन्न शाखाओं जैसे खगोलविज्ञान, गणित, रसायनशास्त्र, वनस्पतिविज्ञान और प्राणिविज्ञान में हुई प्रगति का वर्णन करेंगे।

खगोलविज्ञान और गणित

हम ऋग्वैदिक काल में खगोलविज्ञान के बारे में उपलब्ध ज्ञान के स्तर का वर्णन पहले कर चुके हैं। बाद में, इस युग में खगोलविज्ञान के क्षेत्र में हुआ ज़्यादातर कार्य ऋग्वेद में वर्णित ज्ञान का ही विस्तार था क्योंकि इस युग में खगोलविज्ञान का विकास मुख्य रूप से यज्ञ समारोहों मे उत्पन्न ज्योतिषीय परंपराओं से हुआ था। वास्तव में इस युग के अंतिम वर्षों में खगोलविज्ञान पथभ्रष्ट होकर फलित ज्योतिष बन गया था।

शुल्वसूत्रों के बारे में, जिनका वर्णन खंड 2.3.3 में किया गया है, आप पहले से जानते हैं। उनमें ज्यामिति का काफ़ी उच्च स्तरीय ज्ञान लक्षित होता है। वैसे अंकगणित भी, इस युग में उतना ही विकसित हो चुका था। लोगों को 10 के गुणनों की संख्याओं का ज्ञान 10^{12} (दस खरब) तक था और वे इन संख्याओं का उपयोग भी करते थे। उन्हें संख्याओं की सब संक्रियाएँ भी ज्ञात थीं। शुल्वसूत्रों में जोड़, घटा, गुणा, भाग और भिन्न का वर्ग निकालने के अनेक उदाहरण दिये गये हैं। उनमें द्विघाती समीकरणों, अपरिमेय समीकरणों और क्रमचय का भी उल्लेख है।

रसायनशास्त्र

नये व्यवस्थित समाज में रसायनशास्त्र के ज्ञान और उपयोग की झलक विभिन्न स्थानों पर मिले मिट्टी के बर्तनों, लोहे के औज़ारों और काँच की वस्तुओं से मिलती हैं। आप चित्र 3.5 में जिन लौह औज़ारो को देख रहे हैं वे लोहा गलाने के अत्यधिक विकसित ज्ञान के प्रतीक हैं। भारतीय धातुकर्मियों ने ईसा पूर्व पाँचवीं या चौथी शताब्दी तक लोहा और इस्पात बनाने की तकनीक में उच्चकोटि की कुशलता हासिल कर ली थी। 30 से अधिक स्थानों पर की गयी खुदाई में मिली काँच की वस्तुएँ भी यह संकेत करती हैं कि काँच के निर्माण का ज्ञान इस युग के अंतिम चरण में ही हुआ था (चित्र 3.6)। इन स्थानों से ईसा पूर्व छठी शताब्दी से दूसरी शताब्दी तक की कांच की

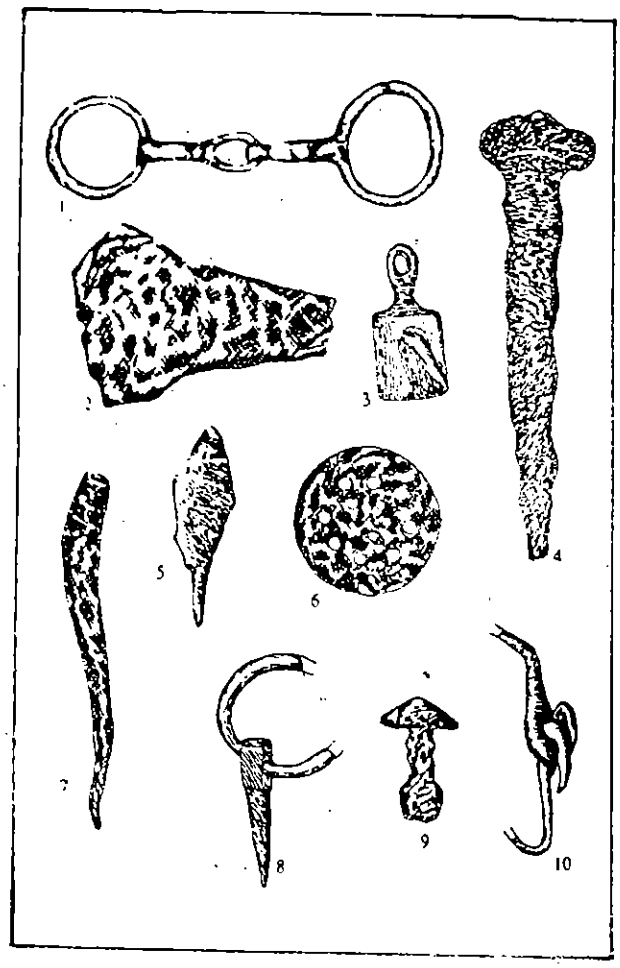

चित्र 3.5 विभिन्न स्थानों जैसे तक्षशिला, [illegible], उज्जैन और शिशुपालगढ़ से प्राप्त कुछ प्राचीन लौह वस्तुओं के रेखाचित्र
1) कड़ीदार ज़ंजीर, 2) लोहे की कुल्हाड़ी का [illegible], [illegible] घंटी, 4) छल्लेनुमा सिरे का हिस्सा, 5) भाले [illegible] वाला उत्तल चक्र, 7) वर्गाकार [illegible] का गोलाकार टुकड़ा जिसमें कील [illegible]

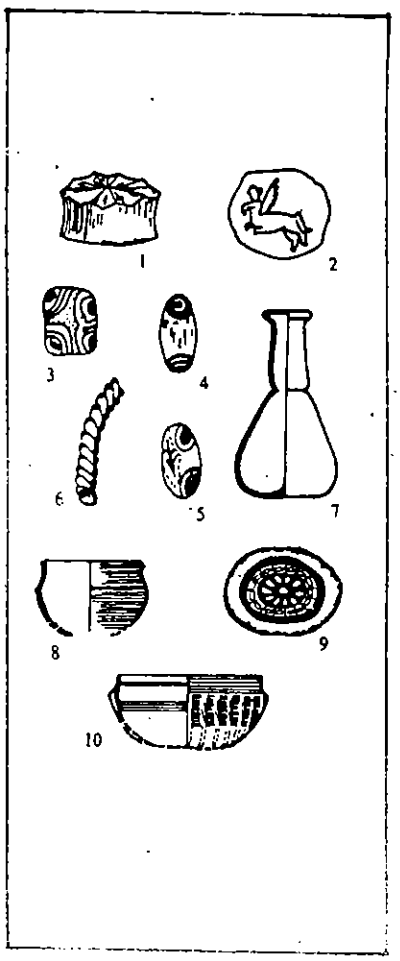

चित्र 3.6 [illegible]

कटोरियाँ, तश्तरियाँ, ढक्कन और हाँडियाँ मिली हैं। इस युग में लोगों को किण्वन (fermentation) के तरीके, रंगाई तकनीकें, अनेक रसायनों और रंगीन द्रवों के निर्माण और उपयोग की विधियाँ भी भली-भाँति ज्ञात थीं।

वनस्पतिविज्ञान

काँस्य और लौह युगों में संसार भर में कृषि मनुष्य का प्रमुख व्यवसाय बन चुकी थी। इसलिए यह विचित्र बात नहीं है कि कृषि में प्रगति होने के साथ-साथ भारत में वनस्पतिविज्ञान और प्राथमिक पादक क्रियाविज्ञान (plant physiology) में भी प्रगति हुई। चिकित्साविज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति भी इन विज्ञानों के विकास में सहायक हुई। उदाहरण के तौर पर ऋग्वैदिक मंत्रों में, अथर्ववेद, तैत्रिय संहिता आदि में निम्नलिखित विषयों पर यदा-कदा उल्लेख मिलते हैं।

i) पौधे के विभिन्न अंग जैसे मूल, तना, कंद, वल्स आदि।

ii) आकृति विज्ञान (morphology) और उपयोग के अनुसार पौधों का वर्गीकरण, जैसे औषधि पौधे, वल्ली, गुच्छ आदि।

iii) पौधों को मिट्टी के अलावा पोषण प्रदान करने वाले पदार्थों जैसे गोबर आदि के अनुसार पौधों का क्रियाविज्ञान।

परन्तु वनस्पतिशास्त्र पर व्यवस्थित अध्ययन पाराशर के बृहत् ग्रंथ 'वृक्षायुर्वेद' में हुआ जिसकी रचना लगभग पहली शताब्दी ईसा पूर्व में ही हुई थी। इस ग्रंथ में वनस्पतिशास्त्र और औषधिविज्ञान के क्षेत्र में उस समय तक उपलब्ध ज्ञान को शामिल किया गया था पर हम इस बारे में यहाँ विस्तार में नहीं जाएँगे।

प्राणिविज्ञान

घोड़ों और हाथियों को पालतू बना लिये जाने और युद्धों में उनके उपयोग आरंभ होने से उनकी शारीरिक संरचना और क्रियाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त करना ज़रूरी हो गया था। वैदिक साहित्य का सर्वेक्षण करने से पता चलता है कि उस समय 260 से भी अधिक जातियों के जंतुओं के बारे में जानकारी उपलब्ध थी। उस काल में जन्तुओं के वर्गीकरण और उनके आहारों के बारे में अध्ययन करने के प्रयत्न किये गये थे। मानव शरीर क्रियाशास्त्र का भी अध्ययन किया गया था। वैदिक काल के बाद के साहित्य में जन्तुओं के नामों और उनकी शारीरिक संरचना, शारीरिक क्रियाओं, भोजन आदि के बारे में प्रकृतिविज्ञान का काफी बड़ा भंडार है। हो सकता है कि इन प्रेक्षणों (observations) ने ही बाद में जीव-जंतुओं के वर्गीकरण, आनुवंशिकी, भ्रूणविज्ञान आदि की संकल्पनाओं को प्रभावित किया हो। परंतु खगोलविज्ञान, गणित, रसायनशास्त्र, वनस्पतिविज्ञान और प्राणिविज्ञान के क्षेत्रों में हुई प्रगति, चिकित्साविज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति की तुलना में बहुत कम है। हम इस प्रगति के बारे में आपको अगले भाग में बताएँगे।

बोध प्रश्न 2

यह बताइए कि निम्नलिखित कथन, लौह युगीन भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के बारे में सत्य हैं अथवा असत्य।

क) खगोलविज्ञान, जिसका जन्म ज्योतिष क्रियाकलापों और यज्ञ समारोहों के फलस्वरूप हुआ था, का विकास सूर्य, चन्द्रमा, ग्रहों और तारों की गतियों के अध्ययन में और अनेक नये प्रतिमानों (models), नियमों और सिद्धांतों के विकास में प्रतिफलित हुआ। .....

ख) यज्ञवेदियों के निर्माण की आवश्यकता ने ज्यामिति के ज्ञान में काफी वृद्धि की। .....

ग) लौह युग में भारतीय लोग इस्पात बनाना जानते थे। .....

घ) पौधों और जन्तुओं के वर्गीकरण, संरचना और शरीर क्रियाशास्त्र के बारे में उपलब्ध ज्ञान प्रारंभिक रूप में ही था। .....

ङ) वैदिक काल में आधुनिक विज्ञान की पूर्ण प्रगति हो चुकी थी। और हम उस ज्ञान की केवल फिर से खोज कर रहे हैं। .....

3.2.4 चिकित्सा विज्ञान में प्रगति

आरंभिक वैदिक युग में रोगी का उपचार करना पुरोहित का कर्त्तव्य माना जाता था। रोगों को, मनुष्य द्वारा किये गये पापों के लिए भगवान की सज़ा अथवा प्रेतों का प्रकोप माना जाता था। इन विचारों के साथ-साथ हमें वैदिक ग्रंथों में रोगों के उद्गम, औषधियों के उपयोग और शल्य चिकित्सा आदि के बारे में परिकल्पनाएँ भी मिलती हैं। चिकित्सा के ज्ञान की विज्ञान के रूप में आयुर्वेदिक संकल्पना का विकास बाद में हुआ।

चिकित्सा की आर्युवेदिक पद्धति

पुनरवसु अत्रेय (ईसा पूर्व लगभग छठी शताब्दी) तक्षशिला में चिकित्सा विज्ञान पढ़ाते थे। उनके प्रत्येक शिष्य जैसे भेला, जातुकर्ण, हरिता, क्षारपाणी, पाराशर ने औषधिविज्ञान पर ग्रंथों की रचना की थी। पतंजलि ने, जिनका काल ईसा पूर्व लगभग दूसरी शताब्दी माना जाता है, तथा उनके बाद अनेक विद्वानों ने भारतीय चिकित्सा पद्धति के मुख्य ग्रंथ **चरक संहिता** पर टीकाएँ लिखी थीं। आज **चरक संहिता** के केवल कुछ अंश ही उपलब्ध हैं और उसके बारे में आज हमें जो जानकारी है, वह मुख्यतः इन टीकाओं पर ही आधारित है। समझा जाता है कि **चरक संहिता** और शल्य चिकित्सा के मूल ग्रंथ **सुश्रुत संहिता** की रचना ईसा से 600 वर्ष पूर्व हुई थी। इन ग्रन्थों के लेखकों के बारे में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोगों का मत है कि इन ग्रंथों की रचना अकेले व्यक्तियों ने की थी जबकि अन्य लोग यह मानते हैं कि इनके लेखक विशेष समुदायों के समूह के चिकित्सक एवं शल्य चिकित्सक थे। इन ग्रंथों के मुख्य भाग में विभिन्न रोगों के लक्षणों और निदानों की सूची और बहुत ही सुचारू वर्गीकरण, रोगों की उपचार पद्धतियों का वर्णन है तथा औषधियों के गुण और उनके देने के तरीकों और खुराकों आदि का विवरण है। ये ग्रंथ इतने महत्वपूर्ण इसलिए हैं कि :

i) अपने दृष्टिकोण और तकनीकों में वे एकदम वैज्ञानिक हैं,

ii) उनका प्रभाव विज्ञान की अन्य शाखाओं जैसे रसायनशास्त्र तथा वनस्पतिविज्ञान आदि की प्रगति पर भी दिखायी देता है; तथा

iii) वे प्राचीन काल से ही आयुर्वेद के मुख्य स्रोत के रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं।

दृष्टिकोण और तकनीक

उक्त ग्रंथों में, चिकित्सकों के लिए बताये गये दृष्टिकोण और विधियों से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार हैं :

i) चिकित्सक केवल एक ही बात में रुचि रखता था और वह थी रोगी का उपचार। इसके लिए वह झूठ तक भी बोल सकता था। उदाहरण के तौर पर, यदि रोगी को स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से मांस खिलाना आवश्यक होता था तो चिकित्सक उसकी धार्मिक और नैतिक मान्यताओं को दबाने के लिए कोई भी चालाकी अपना लेता था।

ii) चिकित्सक को अपना ध्यान केवल रोगी के उपचार पर ही केंद्रित रखना होता था। इसलिए उसे किसी भी हालत में रोगी को कोई हानि नहीं पहुँचानी होती थी चाहे इसके लिए स्वयं उसे अपने जीवन की बाज़ी लगा देनी पड़ती। चिकित्सक को रोगी से अपने पुत्र की भाँति व्यवहार करना होता था।

iii) चिकित्सा का ज्ञान पूर्व-चिकित्सकों से तथा चिकित्सा-संबंधी वाद-विवाद से प्राप्त किया जाता था।

iv) अनुभव से पैदा हुआ ज्ञान पहली आवश्यकता थी। कहा जाता था कि सब किस्म के लक्षणों में वे ही सबसे अधिक प्रामाणिक होते हैं जो आँख से दिखाई देते हैं। किसी भी जानकार चिकित्सक को केवल तर्क के आधार पर रोगी की परीक्षा करना मना था। चिकित्सक औषधि का प्रभाव सीधे प्रेक्षण द्वारा मालूम करते थे।

निदान और फलानुमान

रोग का निदान तथा फलानुमान प्रत्यक्ष रूप से देखकर, सुनकर, सूंघकर और रोगी के सब अंगों को छूकर तथा अप्रत्यक्ष रूप से नाड़ी की जाँच करके किया जाता था।

इन प्रेक्षणों को अकेले तथा संयुक्त रूप से विशेष रोगों के साथ जोड़कर किया जाता था। इस प्रकार फोड़े में चिकित्सक उसमें से झागदार रक्त के साथ वायु के तेज़ी से निकलने की ध्वनि को सुनता था। इसी प्रकार अंतड़ियों की गुड़गुड़, जोड़ों की चटकने की आवाज और ज़बान में बदलाव तथा अन्य लक्षणों को चिकित्सक देखता था। चिकित्सक अपना निदान प्रत्यक्ष प्रेक्षणों पर ही नहीं वरन् रोगी के घर, जाति, रहन-सहन के तरीके, आहार तथा रोगों के इतिहास के आधार पर करता था। फलानुमान इस सिद्धांत पर आधारित था कि एक होशियार चिकित्सक को असाध्य रोगी का उपचार नहीं करना चाहिए। इसके अनुसार अरिष्टों या अपशकुनों (रोग की प्रकृति के अनुसार वर्गीकृत) की, जिनसे रोगी की मृत्यु हो जाती थी अधिक जांच की जाती थी।

उपचार विधियाँ

सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपचार विधियों को निम्न समूहों में बाँटा गया था—वमन उत्पन्न करना,

मूल ग्रंथ के शब्दों में : "चिकित्सा संबंधी वाद-विवाद किसी ऐसे प्रस्ताव की अनुमति नहीं देता जो अप्रासंगिक, अप्रमाणिक, अशोधित हो और जिसकी कोई व्यावहारिक सार्थकता न हो, जो उलझा हुआ हो तथा जिसका कोई सामान्य उपयोग न हो। प्रत्येक प्रस्ताव तर्कों द्वारा प्रमाणित होना चाहिए। केवल वे ही प्रस्ताव चिकित्सा के उद्देश्यों के लिए उपयोगी होते हैं जो तर्कों द्वारा प्रमाणित हों और किसी भी दृष्टिकोण से निष्कलंक हों।

चरक संहिता में ज्वर, विषाक्तता, हैजा, कोढ़, बवासीर, गैस, मधुमेह, पीलिया, मोतियाबिंद, सबलबाय, फोड़ा, मलद्वार का नाड़ी-व्रण आदि रोगों के उपचार में रेचकों का उपयोग सुझाया गया है।

जंतु-जन्य पदार्थों में चरक संहिता में शहद, दूध, विष्ठा, मूत्र, शुक्राणु, सींग, मांस आदि का उल्लेख है। खनिजों के अंतर्गत सोना, चाँदी ताँबा, जस्ता, अंजन (एंटीमनी) आदि के नाम दिये गये हैं। चरक संहिता में उन रोगों के अनुसार, जिनके उपचार में इनका इस्तेमाल किया जाता था, 700 पादप (जड़ी-बूटियाँ) औषधियों का जिक्र है।

ये कथन अत्रेय उपनिषद् और बृहदारण्यक उपनिषद् से लिये गये हैं।

रेचक देना (पेट की सफाई के लिए), एनीमा देना, तैलीय एनीमा देना और नासीय चिकित्सा आदि। रोगों के अनुसार इनका उपयोग किया जाता था। चरक और सुश्रुत संहिताओं में इन उपचार विधियों के इस्तेमाल में संभावित दुर्घटनाओं की सूची भी दी गयी है। इनमें रोगों का विस्तृत वर्गीकरण भी दिया गया है।

आरोग्यवर्धक (स्वास्थ्य बढ़ाने वाले) पदार्थों को उपचारी और निरोधक औषधियों में बाँटा गया था। चरक के अनुसार ये औषधियाँ जंतु, पादक (जड़ी-बूटियाँ) और खनिज उद्गम के होते थे। औषधियों को एक अन्य पद्धति के अनुसार भी वर्गीकृत किया गया था जैसे—औषधि के प्रभाव के अनुसार—वामक, रेचक आदि। इन वर्गों को, उनके द्वारा होने वाले आरोग्य लाभ के अनुसार पचास समूहों में फिर बाँटा गया था।

शल्य चिकित्सा

शल्य चिकित्सा का प्रमुख ग्रंथ सुश्रुत संहिता है। इसमें रोगों के लक्षणों तथा उनकी चिकित्सा के साथ-साथ मानव शरीरक्रिया शास्त्र, शरीर रचना, विशेष रूप से आंतरिक अंगों की संरचना की काफ़ी विस्तार से चर्चा की गयी है। उदाहरण के तौर पर व्रणों या घावों के उपचार के बारे में यह बताया गया है कि उनमें औज़ारों का प्रयोग करते समय नाजुक अंगों जैसे शिराओं, अस्थियों आदि को बचाना चाहिए। संहिता में स्थानीय लोहारों द्वारा बनाये जाने वाले लोहे के औज़ारों की, जो गले-सड़े अंगों को शरीर में से निकालने में प्रयोग किये जाते थे, उनकी धार, आकृति, आकार आदि के संबंध में, विस्तार से चर्चा है (चित्र 3.7, 3.8)। इस संहिता के दो महत्वपूर्ण तथ्य हैं :

i) घावों की चिकित्सा के पहले और बाद में सफ़ाई के बारे में विशेष सतर्कता : इससे संक्रमण के बारे में अनुभव पर आधारित ज्ञान का आभास होता है।

ii) संवेदनाहारी औषधियों का उपयोग : यद्यपि शल्य चिकित्सा से पूर्व रोगी को बहुत मज़बूती से बाँध देने के बारे में, जिससे वह शल्य चिकित्सा के दौरान हिले नहीं, सलाह दी गयी थी, पर यह भी सुझाया गया कि उसे शल्य चिकित्सा से पहले मदिरा पिला देनी चाहिए जिससे वह पीड़ा के कारण बेहोश न हो पाये। साथ ही उसे औज़ार की चुभन भी महसूस न हो।

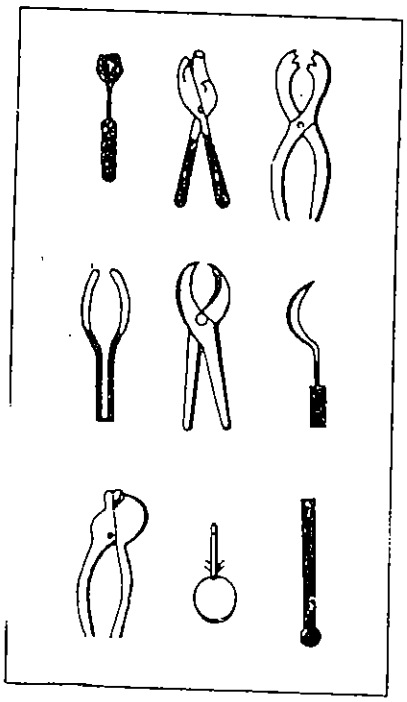

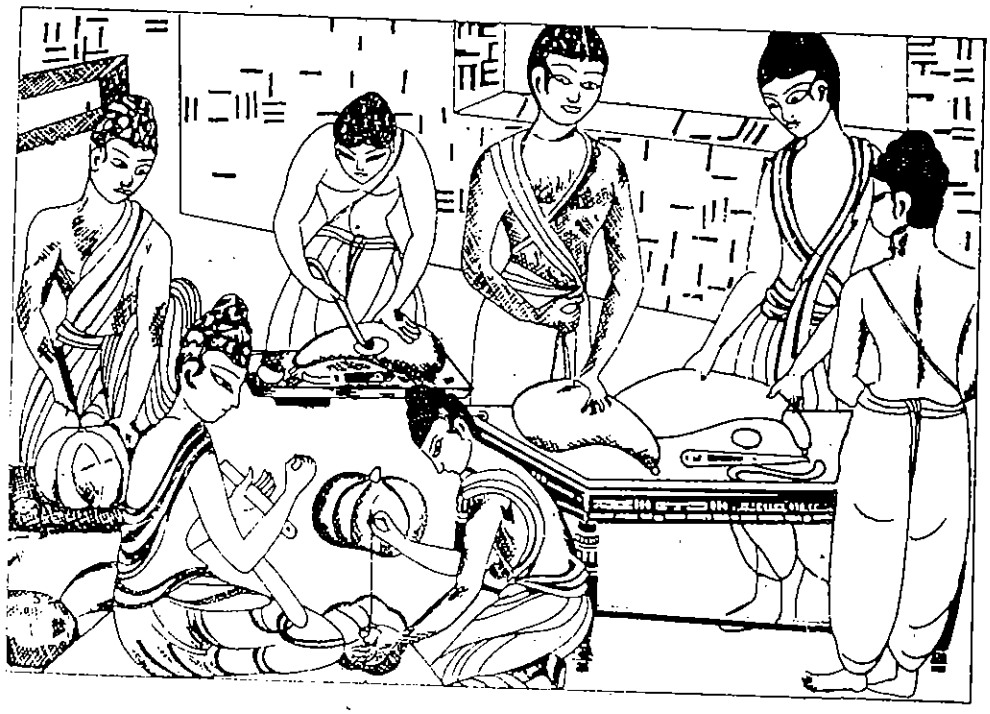

चित्र [illegible] संहिता में वर्णित [illegible]

चित्र 3.6 एक कलाकार [illegible] बनाये गये रेखाचित्र में सुश्रुत के विद्यार्थियों द्वारा विभिन्न सब्जियों जैसे [illegible] (पुरानी) [illegible] (अलाबू) या [illegible] (इक्षारुका) पर चीर-फाड़ का अभ्यास करते हुए। [illegible] पहले विद्यार्थियों को सब्जियों, पानी से भरे थैलों, मृत [illegible] पर अच्छी तरह से [illegible] अभ्यास कराया

[illegible] इसका कारण [illegible] प्रायः ऐसे मंत्र

कह कर कि "देवता रहस्य पसंद करते हैं" या "देवताओं को रहस्य पसंद है, वे प्रेक्षण से घृणा करते हैं" अपनी जीविका अर्जित करते थे। भारतीय चिकित्सक अपने व्यवसाय में उच्च और निम्न जातियों में भेद नहीं करते थे। यह भी एक कारण था जिससे पुरोहित वर्ग चरक और सुश्रुत को पसंद नहीं करते थे।

यह कहना सही नहीं होगा कि चिकित्सक उस समय समाज में प्रचलित धारणाओं और अंधविश्वासों के प्रभावों से एकदम मुक्त थे। ब्रह्मांड उत्पत्ति सिद्धांत अर्थात् ब्रह्मांड, पृथ्वी और जीवधारियों के जन्म से संबंधित दर्शनशास्त्र की धारणा की झलक आयुर्वेद में भी मिलती है। उदाहरण के तौर पर, सब बीमारियों के लिए तीन दोषों—वायु, पित्त और कफ़—को उत्तरदायी ठहराना इसी प्रकार का एक प्रभाव था। आरोग्य प्रदान करने वाली वस्तुओं के गुणों को पंचतत्वों (पंचभूत)—पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और आकाश से जोड़ देना एक ऐसा ही उदाहरण है। परंतु तत्कालीन दार्शनिक और धार्मिक हठधर्मिता वैद्यों को उन औषधियों को जिन्हें वे आरोग्य लाभ के लिए आवश्यक समझते थे, रोगी को देने में कोई बाधा उपस्थित नहीं करती थी।

आयुर्वेद के अनुसार त्रिदोश—वात, पित्त और कफ़—सभी जीवित प्राणियों में विद्यमान होते हैं। यह माना जाता है कि शरीर में इन दोषों की अधिकता, कमी या असंतुलन के कारण बीमारियाँ पैदा होती हैं।

बोध प्रश्न 3

निम्न में से कौन से तथ्य चिकित्सा के क्षेत्र में चरक और सुश्रुत द्वारा अपनाये गये वैज्ञानिक दृष्टिकोण और विधियों के अपवाद हैं। सही उत्तर के आगे (√) निशान लगाएं।

क) चिकित्सा विज्ञान का ज्ञान पूर्व चिकित्सकों के ज्ञान और वाद-विवाद पर आधारित था।

ख) उपचार की नयी तकनीकों को अपनाने से पूर्व भली-भाँति जाँच की जाती थी और निष्कर्षों को तर्क की कसौटी पर कसा जाता था।

ग) विभिन्न रोगों के उपचार में प्रयोग की जाने वाली औषधियों और उपचार विधियों के चयन में प्रक्षेण और प्रयोगों का महत्वपूर्ण योग रहता था।

घ) यह समझा जाता था कि रोग तीन दोषों—वायु, पित्त और कफ़—के कारण होते हैं और उपचार करने वाले पदार्थों को अपने गुण पंचतत्त्वों—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश—से प्राप्त होते हैं।

ङ) औषधियों और रोगों के वर्गीकरण किये गये थे।

यह वास्तव में बहुत खेद का विषय है कि चिकित्सा विज्ञान जिसका शुभारंभ इतने सुचारू अनुभवजन्य प्रेक्षण से हुआ था, कभी भी इन प्रेक्षणों के वर्गीकरण के स्तर से आगे नहीं बढ़ पाया। वह कभी भी वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित नहीं हो पाया। ज्ञान के इस अपार भंडार के आधार पर कोई भी सामान्य नियम अथवा सिद्धांत नहीं बनाया जा सका। तीसरी या चौथी शताब्दी के बाद तो चिकित्सा विज्ञान खोजपूर्ण प्रेक्षण पद्धति पर कम और 'जादुई' कारनामों पर अधिक आधारित होने लगा। इस प्रकार की गतिहीनता के कारण अनेक थे। इसका एक कारण रूढ़िग्रस्त धार्मिक विचारधारा से मिलने वाला विरोध था।

हमें यह भी पता चलता है कि इस युग में विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों की प्रगति पिछले युग से बहुत भिन्न थी। काँस्य युग में जैसे-जैसे लोगों के सामने जीवन संग्राम अथवा श्रेष्ठ जीवन जीने की समस्याएँ सामने आती रहीं वे औज़ार, धातुक्रम, जलयान निर्माण अथवा चिकित्सा संबंधी नयी खोजें करते रहे और तकनीकें विकसित करते रहे। यह एक सार्वभौमिक घटना थी कि उत्पादन में लगे व्यक्ति बड़ी संख्या में कुछ हद तक आविष्कार भी करते थे। परंतु लौह युग में नये आविष्कार करने, प्रेक्षणों के आधार पर सामान्य नियम बनाने, लोगों का उपचार या आगे आने वाली पीढ़ियों तक ज्ञान [illegible] का काम राज्य पर आश्रित कुछ ही लोगों तक सीमित रह गया था। पर इस पद्धति के [illegible] क और नकारात्मक दोनों पहलू थे। सकारात्मक पहलू के रूप में इस पद्धति ने [illegible] जटिल समस्या का बहुत गहराई से व्यवस्थित अध्ययन करने [illegible] मुक्त रहने के अवसर प्रदान किये। दूसरी ओर इस [illegible] से अलग कर दिया। इसने सिद्धांत और प्रयोग के बीच [illegible] दिया। इससे अमूर्त ज्ञान और अंधे अनुकरण की [illegible] य विज्ञान के लिए भी और यूनानी विज्ञान के लिए भी मान्य है। [illegible] विज्ञान की प्रगति का वर्णन करेंगे।

3.3 लौह युगीन यूनान में विज्ञान

लौह युगीन विश्व के इतिहास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू था--भारत और यूनान में संस्कृतियों का एक-सा विकास। हम जानते हैं कि इन दोनों देशों में आपस में व्यापार होता था। इन दोनों के बीच जानकारियों का आदान-प्रदान पहले पश्चिम एशिया की मार्फत होता था। बाद में, ईसा पूर्व 327 में उत्तर-पश्चिम भारत पर आक्रमण के फलस्वरूप सीधा होने लगा (चित्र 3.9)। इस प्रकार यह कहना सरल है कि भारतीयों और यूनानी विद्वानों की ब्रह्मांड उत्पत्ति की परिकल्पनाओं ने तथा चिकित्सा विज्ञान और शल्य चिकित्सा के ज्ञान ने एक दूसरे को इन संपर्कों के माध्यम से प्रभावित किया हो।

चित्र 3.9 (क) ग्रीक शहरी राज्य

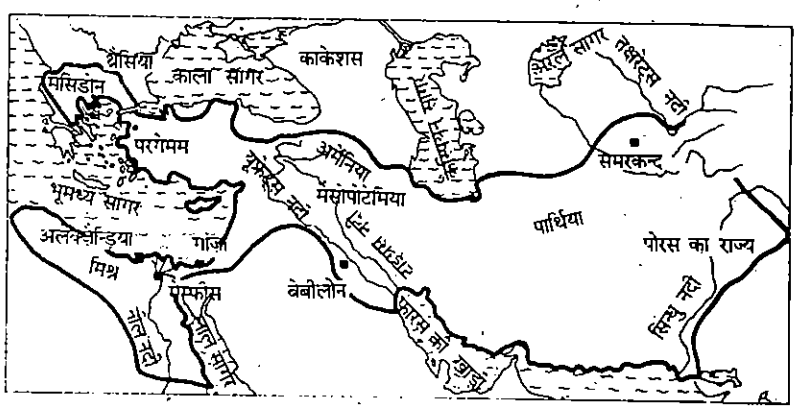

(ख) सिकन्दर का साम्राज्य

भारतीय और यूनानी सभ्यताओं में एक समानता थी--एक ही काल में, एक जैसे ही विभिन्न वर्गों से युक्त समाज का गठन। जब भारत में जाति प्रथा ने परिश्रम वाले सब कार्यों को निम्न जातियों पर थोप दिया था, तब यूनान में परिश्रम के कार्य दास ही करते थे। दस्तकारों और हाथ से काम करने वाले लोगों को मानसिक कार्य करने वालों और विचारकों से निश्चय ही हीन समझा जाता था। यद्यपि मुक्त नागरिक भी हस्त कलाओं के क्षेत्र में काफ़ी कार्य करते थे, पर उन्हें दासों की प्रतिस्पर्द्धा का मुकाबला करना पड़ता था। इसलिए उनके कार्यों को भी हीन समझा जाता था। इस विचारधारा ने जैसे कि हम पहले देख चुके हैं, तकनीकी को विचारशील विज्ञान से दूर कर दिया। ऐसा भारत में भी और यूनान में भी हुआ। इसने व्यावहारिक कार्यों पर विचार करने वालों के प्रभाव को और चिंतन पर व्यवहार के प्रभावों को कम कर दिया। शासन द्वारा विचारकों और अध्यापकों को संरक्षण प्रदान करने से उस युग में विज्ञान के विकास को एक विचित्र मोड़ मिला।

आरंभ में इससे यूनान में ज्यामिति, यांत्रिकी, चिकित्सा विज्ञान और ब्रह्मांड की उत्पत्ति जैसे विज्ञान विकसित हुए। पर अंत में उसने यूनानी विज्ञान को बहुत अधिक चिंतनशील और अमूर्त बना दिया। अमूर्त होने से विज्ञान जीवन से एकदम अलग हो गया। अंततः ऐसी प्रणालियाँ विकसित हो गई जिन्हें कोई चुनौती नहीं दे सकता था और फिर वे प्रकृति के 'अटूट नियम' बन गये। ये नियम अगले 2000 वर्षों तक, विज्ञान की प्रगति में मुख्य आधार बने रहे।

भारत में भी अमूर्तता अवश्य आयी और भौतिकी और ब्रह्मांड की उत्पत्ति के सिद्धान्तों में ही। चिकित्सा विज्ञान, रसायन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान और कृषि विज्ञान ने प्रेक्षण से अपने मज़बूत संपर्क बनाये रखे। इसके अतिरिक्त चिकित्सा विज्ञान में उपचार के लिए समाज द्वारा बहिष्कृत मांस तथा अन्य पदार्थों का उपयोग जरूरी था। उपचार करते समय और रोगी की जान बचाने के लिए चिकित्सक अपने कर्म और अन्य प्राचीन सिद्धांतों की परवाह नहीं करते थे। इससे धार्मिक और न्यायिक अधिकारी उनकी निंदा करने लगे और परिणामस्वरूप तीसरी से चौथी शताब्दी ईस्वी में चिकित्सा विज्ञान में गतिहीनता आ गयी।

यह जानना रोचक होगा कि विज्ञान पर तत्कालीन विचारधारा और धार्मिक प्रणालियों के प्रभावों के बारे में भारतीय और यूनानी विज्ञानों में मूलभूत अंतर थे। इस युग के भारतीय वैज्ञानिक ग्रंथ सदैव ही देवत्व के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने से आरंभ होते थे। परंतु वास्तविक पाठ, ब्रह्मांड की उत्पत्ति से अथवा कुछ हद तक चिकित्सा विज्ञान से (पंचभूतों और त्रिदोषों के बारे में विचार) संबंधित ग्रंथों के अतिरिक्त दार्शनिक प्रेरणा आदि से मुक्त रहते थे। पर यूनानी विज्ञान तत्कालीन

सामाजिक दर्शन और विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित था। इस बारे में डेमोक्रिटस और हिप्पोक्रेटिज आदि की रचनाएँ कुछ अपवाद थीं। यूनानी विज्ञान में वह युग जिज्ञासा का युग था। दार्शनिक वैज्ञानिक हमेशा ही कार्य और कारण के बीच संबंध ज्ञात करने के लिए उत्सुक रहते थे। परन्तु प्रायोगिक उपकरणों के अभाव में और तत्कालीन दास प्रथा को मान्यता देने वाले सामाजिक ढाँचे की वजह से वैज्ञानिक अपने हल उस समय की सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल ही खोजते थे।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी के आरंभिक यूनानी दार्शनिकों जैसे थेल्स, एंपेडोक्लीज और पाइथागोरस ने देवताओं की मदद के बिना विश्व उत्पत्ति की कल्पना की थी। चार तत्वों—पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि—का सिद्धांत आयोना के इन्हीं अग्रज दर्शनशास्त्रियों की देन माना जाता है। आगे के भागों में हम इसके बारे में विस्तार से बतायेंगे। अरस्तू (ईसा पूर्व चौथी शताब्दी) एक अग्रज यूनानी दर्शनशास्त्री थे जिन्हें विज्ञान के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है (चित्र 3.10)। उन्होंने आयोना के दर्शनशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित विश्व उत्पत्ति के सिद्धांत का विरोध किया। उनके विचार में विश्व हमेशा से ऐसा ही था जैसा कि उस समय था और वह हमेशा वैसा ही रहेगा। क्योंकि उसका ऐसा रहना ही तर्कसंगत है। इस विश्व में हर वस्तु, चाहे वह विकासवृक्ष के निम्न स्तर में स्थित मछली हो अथवा यूनानी नगर का दास, हर कोई अपना स्थान जानता था और अधिकांशतः उसी स्थान पर रहता था। इस व्यवस्था में जड़ वस्तुएँ केवल उसी समय गति में आती हैं जब वे अपने स्थान से हटाई जाती है और पूर्वनिर्दिष्ट व्यवस्था में अपने मूल स्थान को लौटना चाहती हैं। उदाहरण के रूप में पत्थर को ऊपर हवा में फेंकने पर हमेशा ही वह धरती की ओर आ जाता है। अग्नि की लपटें स्वर्ग की अग्नि से मिलने ऊपर की ओर जाती हैं। जीवधारी इसलिए गतिमान होते हैं क्योंकि ऐसा करना उनकी प्रकृति है। इस प्रकार हवा में उड़ना पक्षियों का और पानी में तैरना मछलियों का स्वभाव है। इसी प्रकार उन्होंने प्रकृति में विद्यमान सब गतियों को पूर्वनिर्दिष्ट कारणों के आधार पर समझाने के प्रयत्न किये थे।

चित्र 3.10 अरस्तु ने अपना सर्वश्रेष्ठ व्यक्तिगत वैज्ञानिक कार्य जीवविज्ञान के क्षेत्र में किया। उन्होंने कुछ समुद्री जीवों, मधुमक्खियों और उनसे संबंधित बीमारियों का गहराई से अध्ययन किया।

अरस्तू ने कभी भी किसी से कोई ऐसी बात नहीं की जिस पर उसे पहले से ही विश्वास न हो। उन्होंने समझाया था कि दुनिया वैसी ही है जैसी कि वे उसे जानते हैं। जब तक दुनिया एक जैसी

ही रहनी अरस्तू के सिद्धांत सही माने जाते। परन्तु जैसा कि हम देखेंगे विश्व एक जैसा नहीं रहा और लोगों ने अरस्तू के सिद्धांतों को चुनौती दी, यद्यपि ऐसा होने में लगभग 2000 वर्ष का काफ़ी लंबा समय लगा।

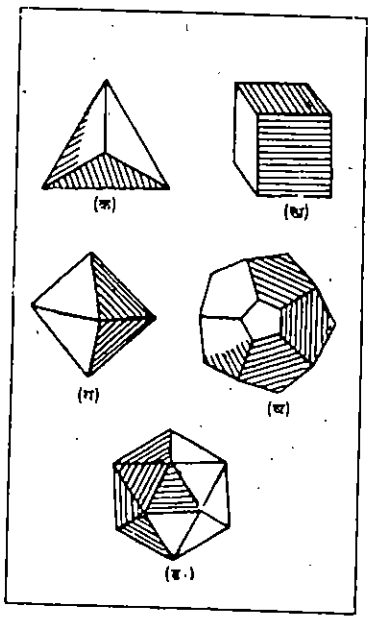

चित्र 3.11 ग्रीक द्वारा अध्ययन किये गये पाँच समफल के ज्यामितीय ठोस: (क) चतुष्फलक, (ख) घन, (ग) अष्टफलक, (घ) विंशफलक, (ङ) द्वादशफलक। इन सभी ठोस पदार्थों में फलक का क्षेत्रफल और आकार समान था। इन सभी आविष्कारों का श्रेय ग्रीक गणितज्ञ और दार्शनिक पायथागोरस को जाता है।

3.3.1 विज्ञान के कुछ क्षेत्रों में कुछ प्रगति

अब हम संक्षेप में यूनानी विज्ञान के कुछ क्षेत्रों में हुई मुख्य प्रगति की चर्चा करेंगे।

ज्यामिति और खगोलविज्ञान

पूर्ण आकारों और अनुपातों को दर्शाने की आवश्यकता ने पाइथागोरस (582-500 वर्ष ईसा पूर्व) और किओस के हिप्पोक्रेटीज (लगभग 450 वर्ष ईसा पूर्व) को ज्यामिति करने के लिए प्रेरित किया (चित्र 3.11)।

हिप्पोक्रेटीज़ ने स्वयं वृत्त का वर्ग तैयार करने और घन को दुगुना करने आदि समस्याओं को हल करने के प्रयत्न किये जिनका लंबे समय से उत्तर नहीं मिल रहा था। वे दोनों समस्याओं को हल नहीं कर सके पर उन्होंने वक्रों की ज्यामिति के द्वार खोल दिये। यूडोक्सस (408-355 ईसा पूर्व) सबसे महान यूनानी गणितज्ञ थे। उन्होंने ऐसे संकेंद्रित गोलों (concentric spheres) के सेटों (समुच्चयों) द्वारा, जिनमें प्रत्येक की धुरी गोले के बाहर एक ही धुरी में निहित थी, सूर्य, चंद्रमा और ग्रहों की गति समझाने के प्रयत्न किये (चित्र 3.12)। उनका मॉडल बहुत सरल और अपक्व था जिससे उस समय तक ज्ञात तथ्यों को समझाया नहीं जा सकता था। परंतु मॉडल पर आधारित वास्तविक धातु के गोलों ने लंबे समय तक अधिकांश खगोलीय उपकरणों का आधार प्रदान किया है।

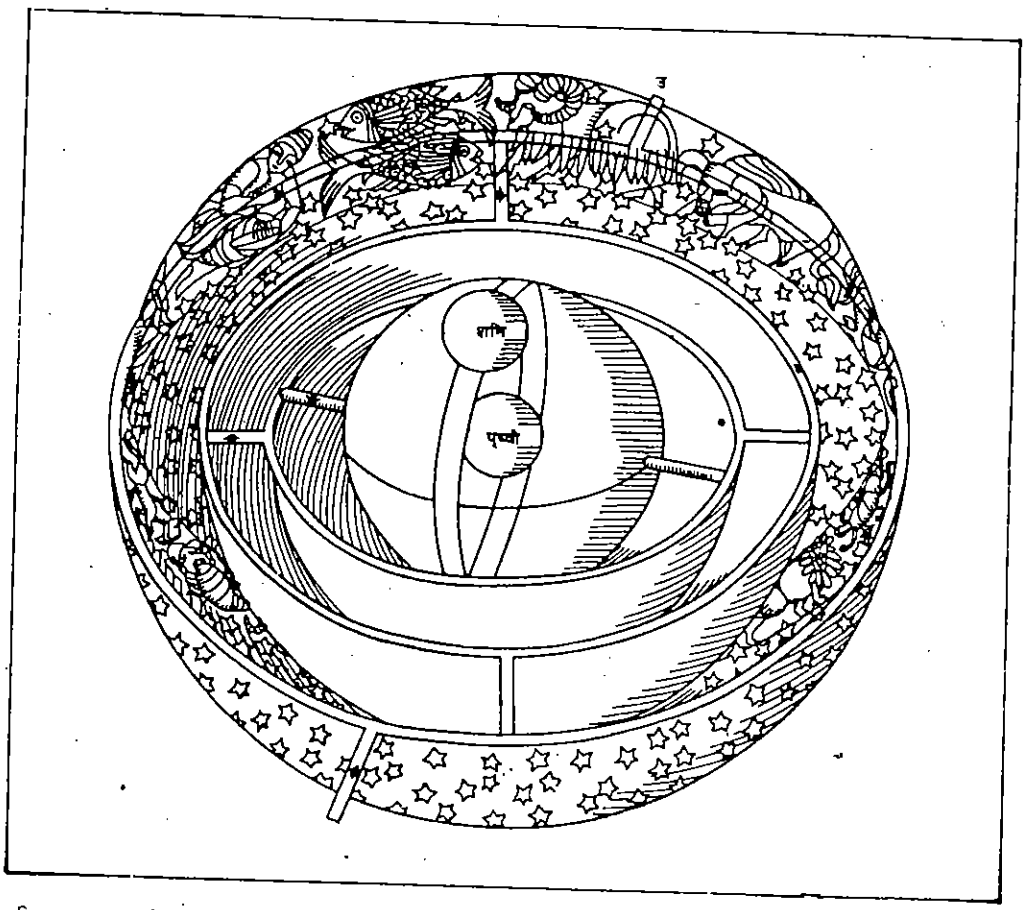

चित्र 3.12 ग्रहों की गति की व्याख्या करने के लिए यूडोक्सस का गोलों के अन्दर गोलों का आंशिक प्रतिरूप। इस बात पर विश्वास करते हुए कि ग्रह पृथ्वी के चारों ओर वृत्त में चक्कर लगाते हैं, यूडोक्सस ने पृथ्वी के चारों ओर 27 समकेन्द्रीय गोले खींचे। प्रत्येक गोला अपने ग्रह समेत एक भिन्न धुरी पर घूमता है। चित्र में तीर के निशान गोलों के चक्कर को दर्शाते हैं।

लगभग 300-200 वर्ष ईसा पूर्व में ज्यामिति की परंपरा, जो एथेंस की अकादमियों और विद्यालयों के विद्वत्तापूर्ण वातावरण में पनपती थी, सिकंदरिया के संग्रहालय में जा पहुँची। यूडोक्सस की ज्यामिति में परगा के एपोलोनियस (लगभग 220 वर्ष ईसा पूर्व) ने विस्तार किया। उन्होंने शंक

परिच्छेद जैसे दीर्घवृत, पैराबोला और हाइपरबोला पर अनुसंधान किये (देखें चित्र 3.13)। गणित के पूर्वज्ञान के बड़े अंश को एकत्रित करके यूक्लिड (लगभग 300 वर्ष ईसा पूर्व) ने स्वयंसिद्धियों (axioms) से निगमन के आधार पर ज्यामिति की नींव डाली जो आज भी स्कूलों में पढ़ाई जाती है।

सिकंदरिया का संग्रहालय पश्चिम में पहला संस्थान था जिसे राज्य का समर्थन प्राप्त था। इसमें खगोलविज्ञान, प्रकाशविज्ञान, यांत्रिकी और गणित की प्रगति हुई। अगले 2000 वर्षों में इनमें कोई खास प्रगति नहीं हुई।

खगोल विज्ञान का संबंध सिद्धांत और प्रयोग दोनों से था। प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक प्लेटो के अनुसार, खगोल विज्ञान आकाश में एक आदर्श विश्व का अध्ययन था और इस आदर्श स्थिति से जो विचलन दिखाई देते थे उन्हें छोड़ा जा सकता था। दूसरी ओर तारों और ग्रहों की स्थिति ज्ञात करना भी महत्वपूर्ण था। परिणामस्वरूप यूनानी खगोलशास्त्रियों ने प्रेक्षणों से प्राप्त परिणामों के अनुसार जटिल मॉडलों का आविष्कार किया। ये मॉडल एक आदर्श, सरल और सुंदर संसार की कल्पना को भी दर्शाते थे। खगोल विज्ञान के गणितीय आधार यूक्लिड के गोले थे। पर वास्तविक ग्रहों की गति को जानने के लिए हिप्पारकस (190-120 वर्ष ईसा पूर्व) ने एक चपटे मॉडल को अपनाया था। यह 'पहिये के अंदर पहियों' का मॉडल था। उन्होंने खगोल विज्ञानिक उपकरणों का भी अविष्कार किया जिनमें से अधिकांश अगले 2000 वर्षों तक इस्तेमाल होते रहे।

इसके दो सौ वर्ष बाद टॉलमी (सन् 90-168 ईस्वी) ने एक ऐसा मॉडल तैयार किया जिसमें पृथ्वी केंद्र में स्थित थी और सूर्य, चंद्रमा तथा अन्य ग्रह उसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाते थे। यही यूरोप में नवजागरण (रेनांसा) युग तक मानक खगोल विज्ञान माना जाता रहा। इसके साथ ही सेमोस के अरिस्टार्कस (310-230 ईसा पूर्व) तथा अन्य लोगों ने सौर-मंडल का एक विकल्प मॉडल भी प्रस्तुत किया। इसमें सूर्य केंद्र में था तथा पृथ्वी और अन्य ग्रह इसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाते थे। पर इसे उस समय स्वीकार नहीं किया गया क्योंकि इसे दर्शनशास्त्र की दृष्टि से असंगत और दैनिक अनुभव के विपरीत माना गया। परंतु इस मॉडल को अरबों ने आगे बढ़ाया, कोपर्निकस (1473-1543) ने पुनः जीवित किया और अंत में गैलीलियो (1564-1642), केपलर (1571-1630) और न्यूटन (1642-1727) ने ठीक पाया। आप इसके बारे में इकाई 6, 9 और 10 में विस्तार से पढ़ेंगे।

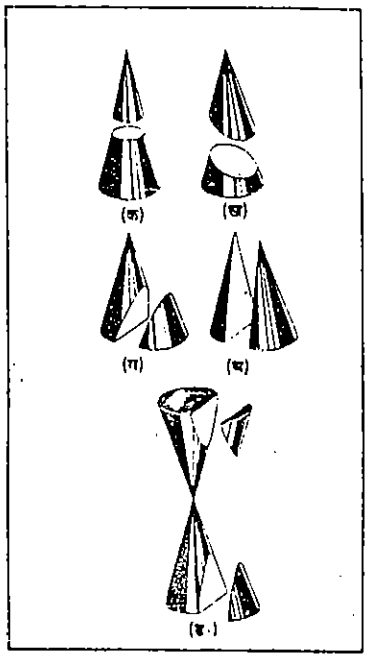

चित्र 3.13 अपोलोनियस द्वारा विभाजित शंकु (क) शंकु को आधार के समानांतर काटने पर एक वृत्त बनता है, (ख) शंकु को तिरछा काटने पर दीर्घवृत्त बनता है, (ग) शंकु पर बनी सीधी रेखा को समानांतर काटने पर परवलय बनता है। (घ) यदि शीर्ष बिंदु से काटा जाए तो एक दूसरे को काटती हुई दो रेखाएं बनती हैं, (ङ) यदि शंकु और उसके प्रतिबिंब को काटा जाए तो अतिपरवलय बनता है।

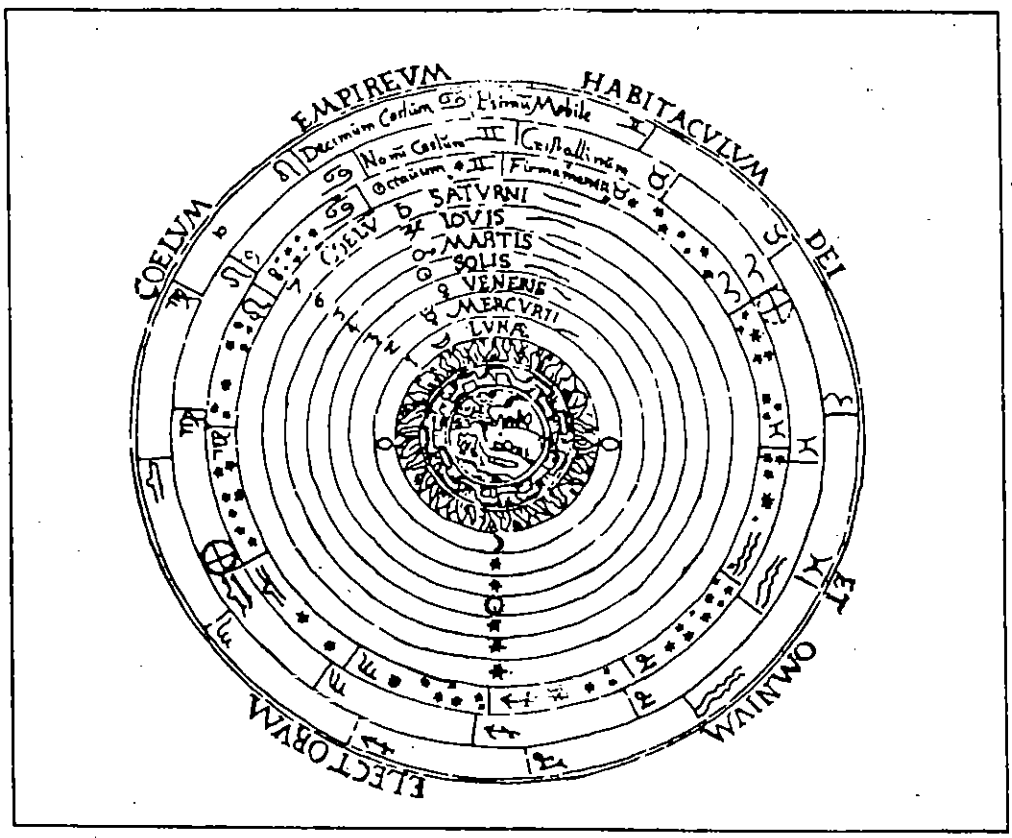

चित्र 3.14 टॉलमी का पृथ्वी केन्द्रित ब्रह्मांड का मॉडल। चार तत्वों धरती, वायु, अग्नि और पानी सहित पृथ्वी को केन्द्र में दिखाया गया है। इन तत्वों के ऊपर पारलौकिक चीज़ें जैसे चंद्रमा, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति और शनि स्थित हैं। इसके बाद अचल तारों का समूह आता है, उसके बाद परमात्मा द्वारा संचालित नवें और दसवें गोलों का प्रभाव क्षेत्र है और जिससे अन्य गोले अपनी गति प्राप्त करते हैं। इसके बाद ईश्वरीय निवास स्थान है।

यांत्रिकी

विज्ञान की एक अन्य शाखा, जिसमें यूनानी सभ्यता ने सर्वाधिक योगदान दिया वह है यांत्रिकी। यांत्रिकी का विकास, सिंचाई करने, भारी वस्तुओं को लाने-ले जाने, जलयान बनाने और सैनिक उपकरण बनाने की आवश्यकताओं से हुआ। जब सिकंदर की फौजें मध्य पूर्वी देशों के दस्तकारों के संपर्क में आईं तब अनेक आविष्कारों जैसे घिरनी, बेलन-चरखा और पेंच (स्क्रू) आदि का उपयोग किया जाने लगा। साथ ही उनमें सुधार होने लगा। आर्किमिडीज़ (287-212 ई.पू.) ने यंत्र बनाने की इस प्रक्रिया को अपने बलों के सिद्धांत तथा तैरती हुई वस्तुओं और द्रव स्थिति विज्ञान के अध्ययनों मे बहुत योग दिया। इस सिद्धांत के अनुसार किसी पदार्थ को स्थिर अवस्था में रखने के लिए उस पर लगने वाले बलों का संतुलित रहना ज़रूरी है।

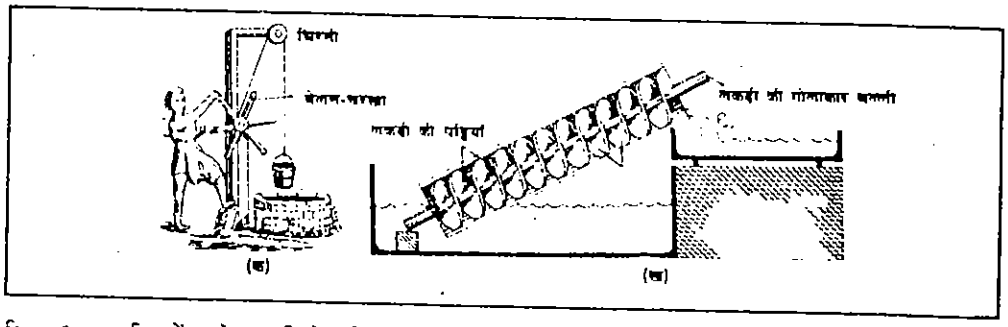

चित्र 3.15 ग्रीस में इस्तेमाल किये गये कुछ यंत्र: (क) कुएं से पानी निकालने के लिए बेलन चरखा और घिरनी। (ख) आर्किमिडीज द्वारा बनाये गये पानी खींचने वाले पेंच का तिरछा भाग जिसका उपयोग सिंचाई में किया जाता था। एक लकड़ी के गोल डंडे के किनारे पर लकड़ी की पट्टियाँ कुंडली के आकार में फिट की जाती थीं। इसे तब लकड़ी के तख्ते में फिट कर दिया जाता था। पानी में डालकर इसे घुमाने से पानी कुंडली पर चढ़ता हुआ तेज़ी से बाहर निकलता था।

चिकित्सा विज्ञान

एक अन्य क्षेत्र जहाँ यूनान में हुई प्रगति भारत के बराबर थी, वह था चिकित्सा विज्ञान। हालाँकि इसकी प्रगति में दोनों देशों में दो विपरीत स्रोतों से प्रोत्साहन मिला था। भारत में चरक और सुश्रुत के शिष्य परिव्राजक चिकित्सक थे जो गाँव-गाँव घूमकर सामान्य नागरिकों का उपचार करते थे और लोकतांत्रिक विचारधारा फैलाते थे। दूसरी ओर, यूनान में चिकित्साशास्त्री अपनी प्राचीन परंपराओं को इसलिए आगे बढ़ा सके क्योंकि उन्हें अभिजात्य वर्ग का समर्थन प्राप्त था। इस युग में यूनानी समाज का उन्नति के शिखर पर पहुँचने के बाद पतन शुरू हो चुका था। भोग-विलास और हर चीज़ की अधिकता के कारण वहाँ का धनी वर्ग अस्वस्थ जीवन बिताने पर बाध्य हो चुका था। इसलिये वह चिकित्सकों पर पूरी तरह निर्भर हो गया। सिकंदरिया के संग्रहालय ने शरीर रचना और शरीर क्रियाविज्ञान में अनुसंधान को बढ़ाने में बहुत मदद की।

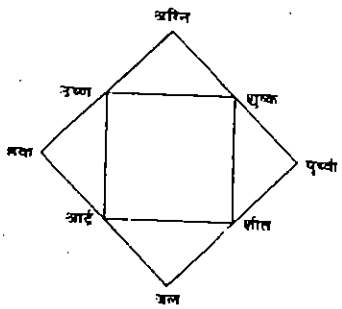

चित्र 3.16 ग्रीक के विचारक एम्पिडोक्लिस द्वारा बनाये गये चार तत्व। एम्पिडोक्लिस के अनुसार "मूल भूत पदार्थ" का विभिन्न वस्तुओं में बदल जाना इस बात पर निर्भर है कि कौन-सा मुख्य गुण उसे प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए मूलभूत पदार्थ में मूल गुणों-शीतल और शुष्क के मेल से पृथ्वी बनेगी, शीत और आर्द्र मिलने पर जल बनेगा, उष्ण और शुष्क मिलने पर अग्नि बनेगी, उष्ण और आर्द्र मिलकर वायु बनेगी।

कोस के हिप्पोक्रेटीज़ यूनानी चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व व्यक्ति थे। उनके ग्रंथों में (जिनकी रचना 450 से 350 ईसा पूर्व के बीच हुई थी) अनेक रोगों के लक्षण दिये गये हैं, ये लक्षण सावधानी से किये गये प्रेक्षणों पर आधारित हैं। इनमें रोगों के जादुई अथवा धार्मिक कारणों और उपचारों का वर्णन नहीं है। परंतु चिकित्सा विज्ञान के बारे में हिप्पोक्रेटिज़ के मूल मत के प्रभाव को 'चार दोषों के सिद्धांत' ने कम कर दिया। इस सिद्धांत को सबसे पहले आयोना के दार्शनिक एंपेडोक्लीज़ ने प्रस्तुत किया था (चित्र 3.16)। उनकी विचारधारा चिकित्सा विज्ञान के सिद्धांतों और पेशे के लिये अत्यंत हानिकारक सिद्ध हुई।

उस समय के एक महान् चिकित्सक हेरोफिलस (लगभग 300 वर्ष ईसा पूर्व) प्रेक्षण और प्रयोगों में विश्वास रखते थे। तंत्रिकाओं की कार्य प्रणाली समझने वाले ये पहले व्यक्ति थे। उन्होंने संवेदी (sensory) और प्रेरक तंत्रिकाओं (motor) में भेद किया और नाड़ी देखकर रोग के लक्षणों का अनुमान लगाते थे। इरासिसट्रेटिक्स (लगभग 280 वर्ष ईसा पूर्व) उनसे भी आगे बढ़ गये थे। उन्होंने मानव मस्तिष्क की विशिष्ट संरचना के महत्व का पता लगाया। दुर्भाग्य से इस काल के अधिकांश महत्वपूर्ण मूल ग्रंथ खो गये हैं। परंतु इनकी महत्वपूर्ण खोजों का सार गालेन (130-200 ईस्वी) ने ढूंढ निकाला और उसमें वृद्धि भी की। गालेन अरबी और मध्ययुगीन चिकित्सा विज्ञान के संस्थापक थे और इस क्षेत्र में उनका उतना ही सम्मान था जितना अरस्तू का। उन्होंने अपने अध्ययनों के लिए जानवरों की चीरफाड़ की और उससे शरीर रचना के बारे में बहुत ज्ञान प्राप्त किया। गालेन द्वारा दिया गया शरीर क्रिया विज्ञान जिसमें धमनियों और शिराओं में बहते रक्त के ज्वार-भाटे और जीवात्माओं का प्रवाह, शरीर को उष्मा प्रदान करने वाला हृदय, पंखों की तरह शरीर को ठंडक पहुँचाने वाले फेफड़े आदि हैं, मानव शरीर का चित्रण व्यापक रूप से करने तो अवश्य हैं पर वास्तविक नहीं है। जहां तक शारीरिक क्रियाओं को समझाने का प्रश्न

था गालेन भी तीन भाव और आत्माओं के प्राचीन सिद्धांत से ऊपर नहीं नहीं उठ पाये। इस सिद्धांत के कारण अपने शरीर के बारे में जानने के मुनष्य के प्रयासों में अगले 1500 वर्षों तक विशेष प्रगति नहीं हो पायी।

बोध प्रश्न 4

यूनानी विज्ञान का विकास यह दर्शाता है कि वह सदैव दो विचारधाराओं से प्रभावित होता रहा है। पहली विचारधारा में वास्तविक प्रेक्षणों को समझने का प्रयत्न किया जाता था जबकि दूसरी में आदर्श संसार की कल्पना को सही सिद्ध करने के लिए सिद्धांत और मॉडल खोजे जाते थे। निम्नलिखित तालिका में दो कॉलम हैं। कॉलम 2 में यूनानी विज्ञान के विकास के कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे दिये जा रहे हैं। उन्हें कॉलम 1 में दी गयी विचारधारा के अनुसार व्यवस्थित कीजिए।

	कॉलम 1		कॉलम 2
क)	अरस्तू के आदर्शों तथा संतुलित और सुंदर विश्व के दृष्टिकोण पर आधारित विकास	i)	तैरती हुई वस्तुओं का अध्ययन, घिरनी का आविष्कार, पानी उठाने वाली पेंच (स्क्रू) आदि।
		ii)	ब्रह्मांड का ऐसा मॉडल जिसमें पृथ्वी केंद्र में हो।
		iii)	नियमित सममित ठोसों और ज्यामितीय वक्रों का अध्ययन।
ख)	परिवर्तनशील विश्व के वास्तविक प्रेक्षणों पर आधारित विकास	iv)	रोगों के लाक्षणिक विवरण, तंत्रिकाओं की क्रियाविधि का अध्ययन, जानवरों की चीरफाड़ आदि।
		v)	प्रकृति के चार तत्वों के आधार पर शरीर के चार रसों का सिद्धांत।
		vi)	प्रकृति में परिपूर्ण वृत्तों और गोलों के अतिरिक्त किसी अन्य आकृति की उपस्थिति मानने से इनकार करना। इस सिद्धांत के फलस्वरूप ही ग्रहों की गति को समझाने के लिए संकेंद्री गोलों वाला मॉडल तैयार किया गया।
		vii)	समुद्री जीव जंतुओं और मधुमक्खियों तथा उनके रोगों का अध्ययन।
		viii)	विश्व हमेशा से ही ऐसा था जैसा अब है और ऐसा ही रहेगा।

अब तक हमने यूनानी विज्ञान के विविध क्षेत्रों तथा ज्यामिति, खगोलविज्ञान, यांत्रिकी और चिकित्सा विज्ञान में हुई प्रगति का वर्णन किया। एक अन्य क्षेत्र जिसने दार्शनिकों का ध्यान आकर्षित किया, वह था पदार्थ की प्रकृति। ब्रह्मांड में द्रव्य की स्थिति के बारे में भारतीय और यूनानी विद्वानों के सिद्धांत समानांतर थे। अब हम इनमें से कुछ सिद्धांतों की चर्चा करेंगे। हो सकता है कि यह सिद्धांत आपको कुछ विचित्र लगे। हम यह भी जानते हैं कि ये अब बिल्कुल मान्य नहीं हैं। परंतु वे हमारे पूर्वजों की अपने आसपास के संसार के बारे में जिज्ञासा और उसे समझने के प्रयासों को दर्शाते हैं।

3.4 प्राचीन काल में परमाणु सिद्धांत

सांख्य दर्शन भारत का सबसे पुराना दर्शन है। इसकी पद्धति मानती थी कि चेतना के अतिरिक्त हर वस्तु आदि द्रव्य से विकसित हुई है। इस पद्धति के अनुसार चेतना, जड़ द्रव्य और ऊर्जा एक दूसरे पर निर्भर और आपस में संबंधित अस्तित्व के तीन रूप हैं। विकास की प्रक्रिया में न तो

द्रव्य का निर्माण हुआ है और न विनाश, तथा द्रव्य, ऊर्जा और चेतना तीनों का कुल योग हमेशा एक ही रहता है। द्रव्य और ऊर्जा के पुनः वितरण से ही पार्थिव संसार में भिन्नता आयी और पेड़-पौधे तथा जीव जन्तु बने। द्रव्य में हमारी पाँच इंद्रियों के अनुरूप पाँच पहचाने जा सकने वाले गुण होते हैं—गंध, स्वर, स्पर्श, रंग और ध्वनि। द्रव्य के पाँच रूप होते हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश।

इसी सिद्धांत के समानांतर, पर इससे काफी बाद, लगभग 600 ई.पू. में, यूनान में थेल्स और अन्य विद्वानों ने पार्थिव ब्रह्मांड की उत्पत्ति के सिद्धांत को विकसित किया। थेल्स ने यह विचार दिया था कि प्रत्येक वस्तु मूलतः पानी से उत्पन्न हुई है। उसके बाद पृथ्वी, वायु और जीवधारी पृथक-पृथक हो गये। पृथ्वी, वायु, कुहरा और अग्नि, ये चार तत्व बने जिनसे मिलकर अन्य पदार्थ बनते हैं। इन तत्त्वों को सांख्य दर्शन के अनुसार दो परस्पर विरोधी कार्य करने पड़े। एक ओर तो वे वास्तविक वस्तुओं के प्रतीक थे जैसे पवन, बाढ़, तूफान आदि और दूसरी ओर वे उष्ण, शीत, आर्द्र, शुष्क, हल्के, भारी आदि गुणों के भी प्रतीक थे।

सांख्य दर्शन और यूनानी विचारधारा ने ब्रह्मांड के निर्माण की और घटनाओं के घटने की एक ऐसी तस्वीर प्रस्तुत की जिसमें देवताओं का दखल नहीं था और न ही कोई पहले से निश्चित योजना थी। इन विचारधाराओं की कमज़ोरियाँ थीं उनकी अस्पष्टता और शुद्ध वर्णनात्मक प्रकृति। ये विचारधाराएँ अपने आप में किसी निश्चित लक्ष्य पर नहीं पहुँचती थीं। उनसे कोई ठोस निष्कर्ष नहीं निकलता था और उनका कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं था। परंतु अपनी सब कमज़ोरियों के बावजूद ये विचारधाराएँ मनुष्य की, स्वयं अपने उद्गम के बारे में और ब्रह्मांड के बारे में सोचने का पहला प्रयास थीं। द्रव्य की प्रकृति को समझने की एक अत्यंत भिन्न विधि थी—परमाणुओं की कल्पना। परमाणुओं को सब दृश्य पदार्थों की मूल इकाई समझा जाता था। उनके विशिष्ट संयोजन ही पदार्थों को भिन्न-भिन्न गुण प्रदान करते थे।

भारतीय वैशेषिक पद्धति में, जिसके प्रतिपादक प्रसिद्ध विद्वान कणाद (लगभग 600 ई.पू.) थे, लघुतम कणों को आकारहीन गणितीय बिंदु मानते थे। इन बिन्दुओं में चार तत्त्वों —पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के संभावित गुण विद्यमान समझे जाते थे। इनके आधार पर उन्हें चार वर्गों में बाँटा गया था। एक ही वर्ग के कम से कम छह परमाणुओं के संयोजन से, जिनके बीच का स्थान रिक्त होता था, जटिल परमाणु बनते थे। ये जटिल परमाणु रासायनिक तत्त्व के अनुरूप होते थे।

विभिन्न विजातीय परमाणुओं की संयोजन समस्याओं को जैनों ने हल किया। जैनों का मत था कि जब दो विजातीय परमाणु मिलते हैं तो एक नये पदार्थ का जन्म होता है। संयोजन की क्रियाविधि पारस्परिक आर्कषण समझी जाती थी। धनात्मक और ऋणात्मक परमाणु परस्पर एक दूसरे को आकर्षित करते थे। यौगिकों के गुणों में सब प्रकार के परिवर्तनों को उनके पारस्परिक आकर्षण के आधार पर समझाया जाता था।

यद्यपि उपर्युक्त दर्शन पद्धतियाँ उच्च बौद्धिक क्रियाकलापों की प्रतीक थीं पर उनकी सीमाएँ उनकी अमूर्तता में निहित थीं। दार्शनिकों को दो विरोधी विचारों को अपने सिद्धांतों में शामिल कर लेने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती थी। उदाहरण के तौर पर अपने ब्रह्मांड की उत्पत्ति के सिद्धांत में उन्होंने वे तथ्य भी शामिल कर लिये थे जो उन्होंने पार्थिव वस्तुओं के प्रेक्षण के बाद ढूंढे थे। इसके साथ ही [illegible] सिद्धांत में धार्मिक ग्रन्थों से ज्ञात बातें और ऐसी बातें भी थीं जिनका कोई पार्थिव आधार नहीं था। इस प्रकार जैनों ने अपने भौतिकवादी सिद्धांत में कर्म और आत्मा को शामिल कर लिया था। वैशेषिक पद्धति को अपनाने वालों ने यह पेशकश की थी कि परमाणु की गति का कारण 'अदृष्ट' (पूर्व जन्म के कर्म) हैं।

मज़े की बात यह है कि यूनानी परमाणुशास्त्री आत्मा, अदृष्ट, कर्म की विचारधारा से मुक्त थे। डेमोक्रिटस (लगभग 420 वर्ष ई.पू.) ने यह कल्पना की थी कि ब्रह्मांड का निर्माण शून्य आकाश में विचरण करने वाले असंख्य अविभाज्य कणों से हुआ है (चित्र 3.17)। ये कण अपरिवर्तनशील हैं। वे अनेक ज्यामितीय आकारों के माने जाते थे जिससे उनमें संसार की भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुओं के निर्माण करने की क्षमता थी। उनकी गति के फलस्वरूप ही सब दृश्य-परिवर्तन होते थे।

इस परमाणु सिद्धांत के अनुसार ब्रह्मांड चिरस्थायी नहीं था। वह एक गतिशील ब्रह्मांड का चित्र प्रस्तुत करता था जिसमें वस्तुएँ स्थायी नहीं थीं वरन् सदैव गतिशील रहती थीं। इस अर्थ में वह धर्म विरोधी था क्योंकि वह प्लेटो और अरस्तू की भली-भाँति स्थापित विचारधाराओं को चुनौती देता था।

हम यूनानी या भारतीय परमाणु सिद्धांत को उसकी विद्वत्ता के बावजूद भी वैज्ञानिक विचारधारा के अंश नहीं मान सकते थे। उससे कोई भी ऐसा निष्कर्ष नहीं निकल सकता था जिसे प्रयोगों से सिद्ध किया जा सके। परन्तु हम इस बात से भी इंकार नहीं कर सकते हैं कि यूनानी परमाणु सिद्धांतों में निहित भौतिकवाद और तर्क ने गैसेन्डी (1592-1655), न्यूटन (1642-1727) और उनके माध्यम से डाल्टन (1766-1844) के परमाणु सिद्धांतों को 2000 वर्ष बाद, अवश्य प्रभावित किया था।

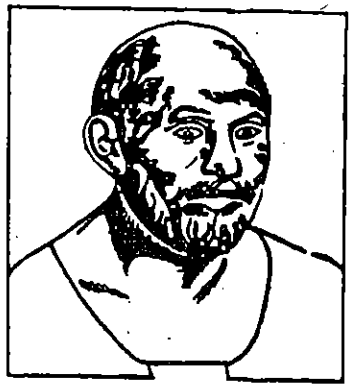

चित्र 3.17 डेमोक्रिटस

बोध प्रश्न 5

नीचे दी गयी तालिका में हमने एक ओर लौह युगीन यूनान के विज्ञान और समाज के कुछ गुण दिये है और दूसरी ओर उसी युग के भारतीय विज्ञान और समाज के गुण। दोनों ओर हमने कुछ स्थान रिक्त छोड़ दिये हैं, जिन्हें आपको भरना है। हमने उदाहरण के तौर पर पहला स्थान भर दिया है।

	यूनानी विज्ञान	भारतीय विज्ञान
क)	यूनानी समाज सामंतों, किसानों, दस्तकारों, व्यापारियों और दासों में बंटा हुआ था।	भारत में वर्ण-व्यवस्था का उदय हो रहा था। वर्ण चार थे– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।
ख)	.....	विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले अधिकांश कार्य तत्कालीन भारत के दर्शन और विचारधारा से मुक्त थे यद्यपि हर ग्रंथ देवत्व के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन से आरंभ होता था। विज्ञान ने प्रयोग और प्रेक्षण से अपना संपर्क बनाये रखा था और वह मात्र कल्पना पर बहुत कम निर्भर था।
ग)	यूनानी चिकित्सा विज्ञान मुख्य रूप से इसीलिए फला-फूला क्योंकि उसे अभिजात्य वर्ग का समर्थन प्राप्त था।	.....
घ)	यूनानी ब्रह्मांडोत्पत्ति सिद्धांत के अनुसार ब्रह्मांड चार तत्वों–वायु, अग्नि, धुंध और पृथ्वी से बना है।	.....
ङ)	.....	भारतीय परमाणु वैज्ञानिकों ने द्रव्य और गति के अपने सिद्धांतों में आत्मा, कर्म अथवा अदृष्ट को भी शामिल कर लिया था।

3.5 यूरोपीय विज्ञान का पतन

ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के मध्य तक यूनानी राज्य अराजकता और रोमन साम्राज्य के अधिक प्रबल होने के कारण बिखरने लगा था। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में इटली अच्छे जलवायु और बढ़ती हुई स्वस्थ आबादी वाला कृषि प्रधान देश था। ईसा पूर्व पहली शताब्दी तक जन समर्थन से रोमनों ने अपने आपको शक्तिशाली सैनिक तानाशाही में बदल लिया था। इटली की सेनाओं ने भूमध्य सागर के पूर्व और पश्चिम में स्थित देशों को ही नहीं वरन् ब्रिटेन, पश्चिम जर्मनी और ऑस्ट्रिया को भी जीत लिया था (चित्र 3.18)। यद्यपि रोम में सेना सबसे अधिक शक्तिशाली हो गयी थी पर शासन धनी व्यापारी वर्ग और गुलामों के मालिकों के हाथ में था। साम्राज्य को एक सूत्र में बाँधने वाली शक्ति सेना थी। सम्राट उसका उपयोग कर वसूलने में करते थे जिससे सैनिक विद्रोह न कर सकें और दूसरा सम्राट चुनने की धमकी न दे सकें। देश की सर्वोतम भूमि पर धनवानों का कब्ज़ा था जिसपर वह अपने गुलामों से खेती करवाते थे जबकि घटिया धरती नीचे के स्तर के लोगों के लिए अथवा मुक्त किये गये गुलामों के लिए छोड़ दी जाती थी।

रोमन साम्राज्य की आय के मुख्य स्रोत थे साम्राज्य के विभिन्न भागों से सेना द्वारा लूटा गया धन और गुलामों द्वारा की जाने वाली खेती। इस अवस्था में यह सोचना आश्चर्यजनक नहीं है कि उत्पादन बढ़ाने और नयी तकनीकों के उपयोग से अर्थव्यवस्था सुधारने की माँग बहुत कम थी। इस प्रकार रोमन साम्राज्य ने जो ईसा के बाद दूसरी शताब्दी के मध्य तक कायम रहा, विज्ञान और कलाओं

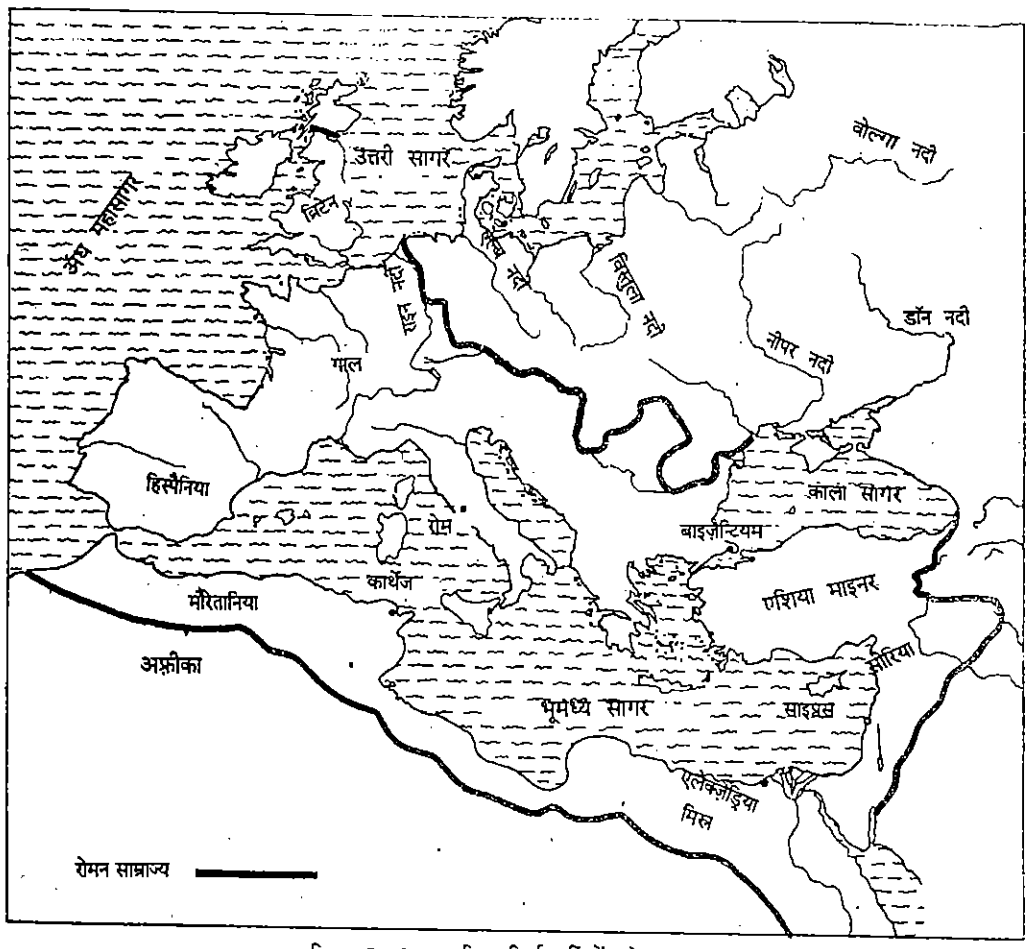

चित्र 3.18 दूसरी सदी ईसवी में रोमन साम्राज्य।

के रूप में संस्कृति में बहुत कम योग दिया है। यद्यपि रोमन युग में न तो तकनीकी में सुधार हुआ था और न ही विज्ञान के विकास में, तथापि मौजूदा ज्ञान का इस्तेमाल सैनिक और गैर-सैनिक उपयोगों के लिए भवनों के निर्माण में किया जाता था। पकायी गई ईंटों और ज्वालामुखी की राख तथा चूने से बनी सीमेंट का इस्तेमाल सड़कों, बंदरगाहों, नहरों, स्नानागारों और नाटकघरों के निर्माण में किया जाता था (चित्र 3.19)।

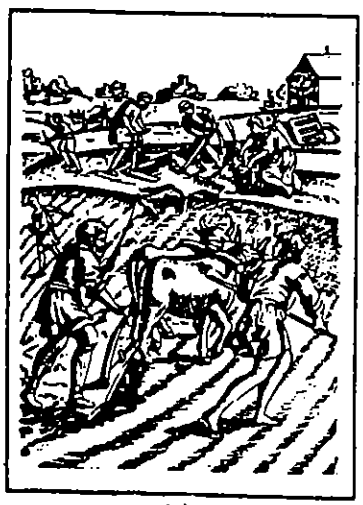

(क)

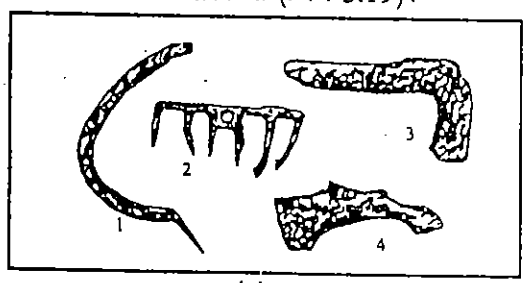

(ख)

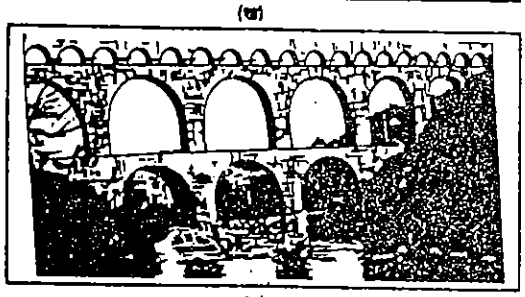

(ग)

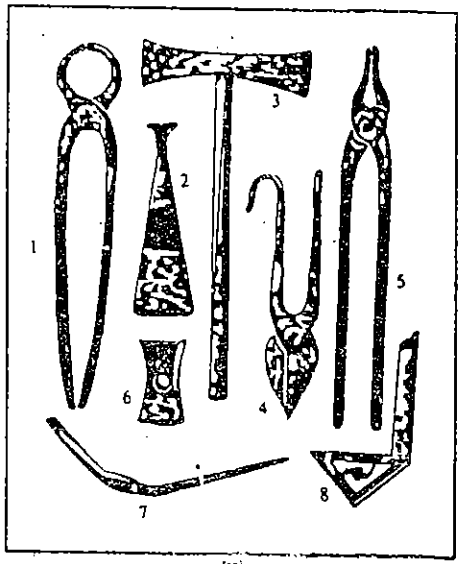

(घ)

चित्र 3.19 (क) रोम में कृषि। हल चलाना, लकड़ी चीरना, हल बनाना और टोकरी की बुनाई आदि क्रिया-कलापों पर ध्यान दीजिए। पीछे रखे पटरे को भी देखिए।
(ख) कृषि के उपकरण।
(1) हँसिया, (2)पाँचा, (3) बगीचे का चाकू, (4) कुल्हाड़ी-फावड़ा।
(ग) रोमन साम्राज्य में हजारों किलोमीटर दूर तक पानी ले जाने के लिए चूने तथा ज्वालामुखी की राख से बने कंक्रीट और जली हुई ईंटों द्वारा निर्मित जलसेतु। पानी की नलियाँ सेतु के ऊपर से होकर जाती थीं।
(घ) रोम के भवन निर्माण के औज़ार: 1,5) चिमटे, 2) गारा-मसाला फैलाने वाली करनी, 3,6) हथौड़ा और हथौड़े का सिरा, 4,7) काटने के औज़ार, 8) राजगीर की गुनिया।

थाड़ से धनवान लोगों के हाथों में शक्ति और धन के संचय, उनकी क्रूरता आदि के रिणामस्वरूप गुलाम और भी ग़रीब हो गये। इससे उपभोक्ता वस्तुओं की मांग कम हो गयी। व्यापारियों और दस्तकारों की दशा और भी बिगड़ गयी। नयी तकनीकों के विकास के लिए समुचित प्रोत्साहन न मिलने से प्रकृति के क्रियाकलापों की खोज करने की प्रवृत्ति समाप्त हो गयी। रोमन साम्राज्य के बाद यूरोप में बंधुआ मज़दूरों वाली ज़मींदारी अर्थव्यवस्था का युग आया। इसमें संस्कृति गतिहीन हो गयी। यह गतिहीनता 15वीं शताब्दी तक रही। यूरोप में अंधकार का युग आ गया और विद्या तथा ज्ञान के केंद्र पूर्व की ओर चले गये। आपको जे.डी. बर्नाल की प्रसिद्ध पुस्तक "साईंस इन हिस्ट्री" (पृष्ठ 231) में से अग्रलिखित पंक्तियाँ पढ़ना रोचक लगेगा। इसमें यह दर्शाया गया है कि सामाजिक पतन किस प्रकार विज्ञान का पतन लाता है।

"अगर पहले नहीं तो तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व तक तो प्राचीन सभ्यता की (रोम, सभ्यता)अवनति होनी ही थी। विज्ञान के साथ त्रासदी यह हुई कि उसकी मृत्यु में इतना समय लगा क्योंकि उस युग में जो भी उपलब्धियाँ हुई थीं वे सब लुप्त हो चुकी थीं। ज्ञान का उपयोग आगे ज्ञान-अर्जन के लिए नहीं किया जाता है, तो वह नष्ट होकर लुप्त हो जाता है। आरंभ में पुस्तकें अलमारियों में ही पड़ी रहीं क्योंकि बहुत से लोगों को न तो उनको पढ़ने की ज़रूरत थी और न ही वे उन्हें पढ़ना चाहते थे। बाद में ऐसी स्थिति आ गयी कि कोई उन्हें समझ नहीं पाता था। अंत में वे बिना पढ़े ही नष्ट हो गयीं। जैसी कि सिकंदरिया के बृहत् पुस्तकालय की पुस्तकों के साथ हुआ। उसका बाकी बचा भाग जन-स्नानागारों में पानी गर्म करने के लिए जला दिया गया अथवा सैकड़ों अन्य तरीकों से नष्ट कर दिया गया।"

3.6 सारांश

इस इकाई में हमने लौह युग में (1500 ईसा पूर्व से लगभग 400 ईसा पूर्व) भारतीय और यूनानी सभ्यताओं में विज्ञान की प्रगति के बारे में पढ़ा। हमने देखा कि इस युग में, भारत और यूनान दोनों में, वर्गों में बँटे हुए समाज का उत्थान हुआ जिसने विज्ञान की प्रवृत्ति और विकास को प्रभावित किया। अब हम इसके कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं का सारांश प्रस्तुत कर रहे हैं।

- भारत में कृषि योग्य भूमि और खनिजों की खोज के फलस्वरूप गंगा के संपूर्ण कछार में सभ्यता का प्रचार हुआ। चरवाहे आर्य कबीलों को कृषक समाज के रूप में बस्तियाँ बसाने में लगभग 1000 वर्ष का समय लग गया। ये कबीले ऐसे सभ्य शहरी समाज के रूप में संगठित हो गये जो लड़ाइयों से अपेक्षाकृत मुक्त था। इन शहरी बस्तियों में आपसी व्यापार बढ़ा और वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन आरंभ हो गया। इन परिवर्तनों के साथ वर्ण व्यवस्था का भी उदय हुआ और यह व्यवस्था समय के साथ-साथ सुदृढ़ होती गयी। उसी समय के आसपास यूनान में गुलाम समाज का उदय हुआ।
- आरंभ में इस युग में दोनों सभ्यताओं ने खगोल विज्ञान, ज्यामिति, यांत्रिकी, रसायनशास्त्र, वनस्पतिविज्ञान, प्राणिविज्ञान और चिकित्साविज्ञान जैसे क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति की।
- कठोर वर्गों में विभाजित, सामाजिक ढाँचे में वे लोग जो अपने हाथों से काम करते थे, चिंतकों से अलग होते गये। सिद्धांत और व्यवहार के बीच अंतर बढ़ जाने से विज्ञान का विकास मंद पड़ गया। यूनान में इसने ब्रह्मांड और विश्व के बारे में एक आदर्शवादी दर्शन को जन्म दिया, जैसा कि अरस्तू की विचारधारा में परिलक्षित होता है। अगले 2000 वर्षों तक अरस्तू की विचारधारा न केवल यूनानी विज्ञान पर बल्कि विश्व विज्ञान पर भी छायी रही।
- भारत में चरक और सुश्रुत के शिष्यों द्वारा अपनाये गये उपचार व वैज्ञानिक तरीके इस समय के अपवाद थे। ये चिकित्सक गाँव-गाँव घूमकर अमीर और ग़रीब, दोनों का जाति और धर्म की परवाह किये बिना, इलाज करते थे। इसलिए भारत में चिकित्सा विज्ञान में त्रिदोषों और पंचभूतों के सिद्धांत के अतिरिक्त बहुत कम भ्रांतियां उत्पन्न हुई।
- ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के मध्य में यूनानी साम्राज्य का पतन और रोमन साम्राज्य का उत्थान हुआ। रोमन साम्राज्य की अर्थ व्यवस्था उसकी सेना द्वारा की गयी लूट-पाट और गुलामों द्वारा की गयी खेती पर निर्भर थी। उत्पादन बढ़ाने के लिए नये विचार ग्रहण करने और प्रचलित तकनीकों में सुधार करने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं था। इसलिए रोमन काल में विज्ञान और संस्कृति का बहुत कम विकास हुआ। सांस्कृतिक गतिहीनता की यह अवस्था यूरोप में 15 वीं शताब्दी तक चलती रही।

3.7 अंत में कुछ प्रश्न

1. लौह युग के रोमन चरण के दौरान प्रचलित ज्ञान का उपयोग सड़कें, नहरें, नाटकघर आदि बनाने के लिए किया गया। न तो प्रचलित तकनीकों में सुधार किया गया और न कोई नयी

विचारधारा विकसित हुई। धीरे-धीरे विज्ञान ने अपनी जिज्ञासु प्रवृत्ति खो दी। सामाजिक जीवन की किन विशेषताओं के कारण विज्ञान में यह गतिहीनता आई? दिये गये स्थान में अपना उत्तर लिखें।

.....

.....

.....

.....

2) पहली इकाई में आपने जिन संकल्पनाओं और विचारों का अध्ययन किया है, उनके उदाहरण इस इकाई में मौजूद हैं। निम्न कथनों में से प्रत्येक के लिये इस इकाई से उदाहरण दें।

क) व्यवहार (प्रयोग) को सिद्धांत से अलग करना विज्ञान के विकास में बाधक बन गया।

.....

.....

.....

ख) विज्ञान के सिद्धांतों पर समाज में व्याप्त सामान्य वातावरण के प्रभाव पड़े।

.....

.....

.....

ग) ऐसे नये सिद्धांत और व्यवहार जो प्रचलित सामाजिक विचारधाराओं या दर्शन के विरुद्ध हों, उसने टकराते हैं। वे धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं और पुन: किसी अन्य समाज में उदय होते हैं।

.....

.....

.....

घ) स्थायित्व से समाज में गतिहीनता आती है और समाज से विज्ञान में।

.....

.....

.....

3.8 उत्तर

बोध प्रश्न

1) (i) ल, (ii) क, (iii) क, (iv) ल, (v) ल,
(vi) क, (vii) क, (viii) ल, (ix) क, (x) ल,
2) (क) असत्य, (ख) सत्य, (ग) सत्य, (घ) सत्य, (ङ) असत्य,
3) घ)
4) क) (ii), (iii), (v), (vi), (viii)
ख) (i), (iv), (vii)
5) ख) यूनानी विज्ञान की प्रगति पर तत्कालीन सामाजिक दर्शन और विचारधाराओं के अत्यधिक प्रभाव पड़े।
ग) भारत में चिकित्सकों ने साधारण ग्रामीणजनों का उपचार भी उसी प्रकार किया जैसा वे धनवानों का करते थे। उन्होंने दोनों को एक समान समझा।
घ) भारतीय ब्रह्मांडोत्पत्ति सिद्धांत के पाँच तत्व थे– पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, और आकाश।

ङ) यूनानी परमाणुशास्त्री आत्मा, अदृष्ट या कर्म के विचारों से मुक्त थे। उनका परमाणु सिद्धांत बदलते हुए विश्व का चित्र पेश करता है।

ंत में कुछ प्रश्न

) क) रोमन अर्थव्यवस्था सेना द्वारा की गयी लूटपाट और गुलामों द्वारा की गयी खेती पर आधारित थी।

ख) शक्ति और धन कुछ लोगों के हाथों में ही इकट्ठे हो गए। अधिकांश नागरिक ग़रीब थे। इस प्रकार उत्पादन के बढ़ाने के लिए न तो विज्ञान को सुधारने और न नयी तकनीकें विकसित करने के लिए कोई प्रोत्साहन दिया गया।

) क) भारत में परिश्रम और हाथ से किये जाने वाले काम निम्न जाति के किसान और दस्तकार तथा यूनान में गुलाम करते थे। उनमें और विचारकों के छोटे से समूह में जो विज्ञान के बारे में सोचते थे और जिन्हें राज्य का संरक्षण प्राप्त था, कोई संपर्क नहीं था। सिद्धांत और व्यवहार के बीच की इस खाई ने विज्ञान के विकास में बाधा उत्पन्न कर दी थी।

ख) भारत में चिकित्सा की आयुर्वेदिक पद्धति ने ब्रह्मांडोत्पत्ति की कल्पना के प्रभाव स्वरूप, त्रिदोषों और पंचभूतों की विचारधारा अपना ली थी। परमाणु सिद्धांत में भी 'आत्मा' 'कर्म' और 'अदृष्ट' का समावेश कर लिया गया। जैसा कि आप बोध प्रश्न 4' में देख चुके हैं, यूनान में आदर्श जगत के बारे में अरस्तू के दृष्टिकोण ने विज्ञान के अनेक क्षेत्रों को प्रभावित किया।

ग) चरक और सुश्रुत के शिष्यों का वैज्ञानिक व्यवहार भारतीय समाज के पुरोहितों के विचारों के विपरीत था। तीसरी या चौथी शताब्दी ईसवी तक रूढ़िवादी धार्मिक विचारों के विरोध तथा अन्य कारणों के फलस्वरूप आयुर्वेदिक पद्धति भी प्रेक्षण के स्थान पर जादुई कारणों पर अधिकाधिक आश्रित होने लगी। आजकल इसे पुन:वैज्ञानिक आधार पर स्थापित करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

इसी प्रकार यूनान में सेमोस के एरिस्टार्कस ने ग्रहीय गतियों का सूर्य-केंद्रित सिद्धांत प्रस्तुत किया था। पर वह स्वीकार नहीं किया गया क्योंकि वह प्रचलित दार्शनिक विचारधारा को ग़लत साबित करता था। उसे कोपरनिकस ने पुन: जीवित किया।

घ) रोमन साम्राज्य में विज्ञान की अवनति इस संकल्पना का उदाहरण है।

इकाई 4 भारत में विज्ञान का स्वर्ण युग

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
4.2 भारत में दूसरी नगरीय सभ्यता
भारतीय राज्य
मौर्य साम्राज्य में प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास कार्य
दक्षिण भारत में विकास कार्य
4.3 गुप्त काल
सामाजिक संगठन
तकनीकों तथा शिल्पकला में सुधार
गणितशास्त्र के क्षेत्र में उपलब्धियाँ
खगोल विज्ञान के क्षेत्र में उपलब्धियाँ
गुप्त साम्राज्य का पतन
4.4 संघर्ष का युग
4.5 सारांश
4.6 अंत में कुछ प्रश्न
4.7 उत्तर

4.1 प्रस्तावना

इकाई 3 में हमने ईसा की चौथी शताब्दी पूर्व तक भारत में हुई विज्ञान की प्रगति का विवेचन किया है। आपने देखा होगा कि इस अवधि में विज्ञान की प्रगति में नगरीय समाजों के उदय ने किस प्रकार सहायता की। अब आप भारत में विज्ञान के इतिहास के सबसे अधिक महत्वपूर्ण युग के बारे में पढ़ेंगे। यह काल मोटे तौर पर ईसा पूर्व चौथी शताब्दी से आरंभ होकर लगभग ग्यारह शताब्दियों तक रहा। इस अवधि में उत्तर भारत में जंगलों को काटकर एक स्थान पर बसकर खेती करने की प्रक्रिया शुरू हुई। छोटे-छोटे राज्य बड़े साम्राज्यों में बदलने लगे और इसी के साथ व्यापार और वाणिज्य भी फलने-फूलने लगा। साम्राज्यों ने सबके लिए समान कानून और नियम बनाये और ये कानून एक बहुत बड़े भू-भाग पर लागू होते थे। एक ऐसी सत्ता उभर कर सामने आयी जो अपनी प्रजा के हितों की देखभाल करती थी और इस प्रकार भारत में शांति और समृद्धि के युग की शुरुआत हुई। यह सिलसिला सातवीं शताब्दी तक लगातार चलता रहा।

यह काल भारत में विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियों का युग था। खासकर इस दौरान खगोल विज्ञान एवं गणितशास्त्र के क्षेत्र में विशेष उपलब्धियाँ हुई। यह बौद्ध और जैन धर्म जैसी महान् उदारवादी धार्मिक विचारधाराओं का भी समय था। किंतु इस काल के अंत तक इन धार्मिक सिद्धांतों का महत्व कम होता गया और उनके स्थान पर कट्टर हिंदू वर्ण व्यवस्था फिर से स्थापित हो गयी। इन धर्मों के वैचारिक संघर्षों का विज्ञान के विकास पर स्थायी प्रभाव पड़ा। जैसे-जैसे साम्राज्य छोटे-छोटे सामंतशाही राज्यों में बँटते गये, वैसे-वैसे विज्ञान का भी पतन होता गया। किंतु, सौभाग्य से इससे पहले महान् भारतीय वैज्ञानिक परंपरा अरबों के पास पहुँच चुकी थी। अरबों ने विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। बाद में भारत को भी इसका लाभ हुआ। विज्ञान में अरबों का योगदान तथा मध्ययुगीन भारत में विज्ञान के बारे में आप अगली इकाई में पढ़ेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- भारतीय राज्य तथा सामाजिक संगठनों की उन महत्वपूर्ण विशेषताओं को स्पष्ट कर सकेंगे, जिनके फलस्वरूप मौर्य और गुप्त काल में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति में सहायता मिली;
- ईसा पूर्व चार शताब्दी से लेकर ईसा के बाद सातवीं शताब्दी तक भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई महत्वपूर्ण उपलब्धियों का विवरण दे सकेंगे; और
- उन कारणों को स्पष्ट कर सकेंगे जिनसे सातवीं शताब्दी तक भारत में विज्ञान का ह्रास आरंभ हो गया।

4.2 भारत में दूसरी नगरीय सभ्यता

इस इकाई 3 में आपको यह बता चुके हैं कि ई. पू. सातवीं शताब्दी में जो 16 जनपद थे, उनमें मगध सबसे बड़ी शक्ति के रूप में उभर कर सामने आया। अतः एक हज़ार वर्ष के पहले हुए हड़प्पा सभ्यता के पतन के बाद भारत में दूसरी नगरीय सभ्यता के पनपने का मार्ग प्रशस्त हो गया था। यह द्वितीय चरण मौर्य राजा, सम्राट चंद्रगुप्त के उदय के साथ ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में शुरू होता है। अंतिम मौर्य सम्राट अशोक ने लगभग ईसा के 270 वर्ष पूर्व राजगद्दी संभाली। उनका साम्राज्य पूरे उत्तर भारत से लेकर दक्षिण में आज के कर्नाटक राज्य तक फैला हुआ था (चित्र 4.1)।

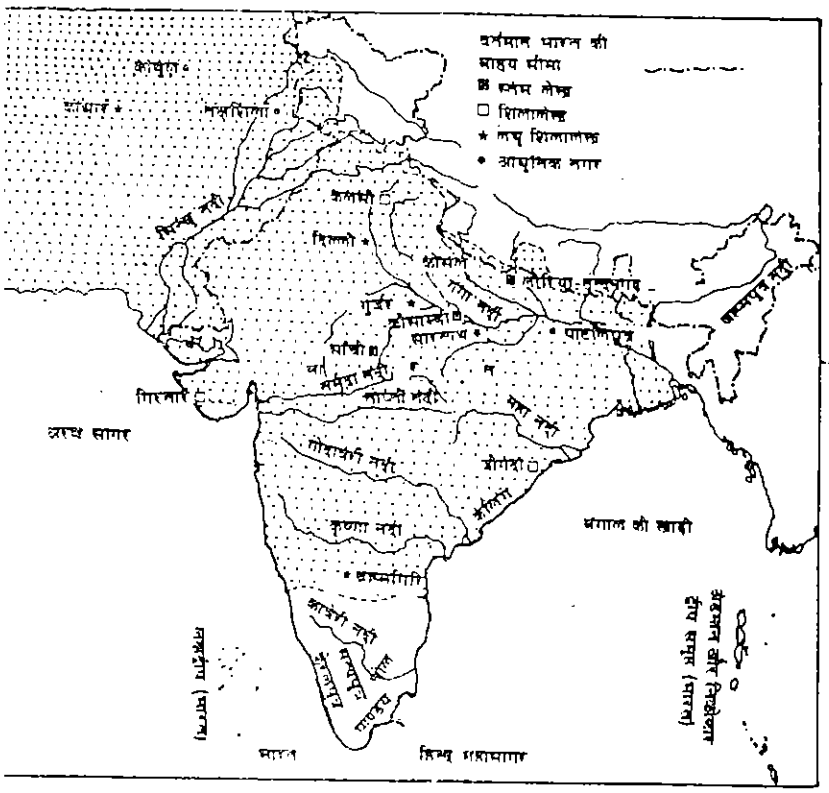

चित्र 4.1 अशोक का साम्राज्य (लगभग 274—236) ईसा पूर्व।

साम्राज्य की रुचि मुख्यतः कृषि योग्य भूमि पर अपना अधिकार जमाये रखने की थी। अतः छोटे-छोटे राज्यों को जीतकर वहाँ के आदिवासियों की भूमि ले ली गयी। पराजित देश की स्थानीय जनता राजकीय कर्मचारियों की देखरेख में वहीं बसकर कृषि-कार्य में लग गयी। ये राजकीय कर्मचारी प्रायः ब्राह्मण हुआ करते थे। उन्होंने उस समय खोजी गयी नयी तकनीकों को अपनाना आरंभ कर दिया। कृषि-भूमि दो प्रकार की होती थी; पहली वह जिससे राज्य को कर प्राप्त होते थे। उसका प्रशासन अर्द्धस्वायत्त एवं स्थानीय किस्म का होता था, हालाँकि फ़सल का छठा भाग साम्राज्य के राजकोष में चला जाता था। दूसरे किस्म की भूमि "सीता भूमि" होती थी और यह सीधे राज्य की देखरेख में आती थी। इसकी जुताई-बुआई आदि बस्तियों में बसाये गये 200 से 500 शूद्रों द्वारा करायी जाती थी। ये लोग राजा को अपनी पैदावार का पाँचवा हिस्सा दिया करते थे। इसमें "सेना के राशन" के रूप में दिया जाने वाला कर और राजा को भेंट के रूप में दिया जाने वाला अनाज शामिल नहीं था (चित्र 4.2)।

इतने बड़े पैमाने पर भूमि पर कब्जा करके उसे कायम रखने के लिए प्रशिक्षित सेना के साथ-साथ प्रशासनिक तथा धार्मिक अधिरचना, कृषि के सुदृढ़ आधार तथा खनन उद्योग की ज़रूरत होती थी। इन सबसे ऊपर एक केंद्रीकृत राज्याधिकारी की ज़रूरत थी जो इस प्रकार के असमान एवं पंचमेल साम्राज्य को एक रखकर उसका विस्तार कर सके। आइए, देखें कि मौर्य साम्राज्य में राज्य की शक्ति के सामाजिक एवं राजनीतिक संगठन का स्वरूप क्या था?

4.2.1 भारतीय राज्य

इस राज्य और उनकी नीति का वर्णन चंद्रगुप्त के महामात्य कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र में किया गया है। उनके अनुसार यह एक ऐसा शक्तिशाली केंद्रीकृत राज्य था जो न केवल उद्योग

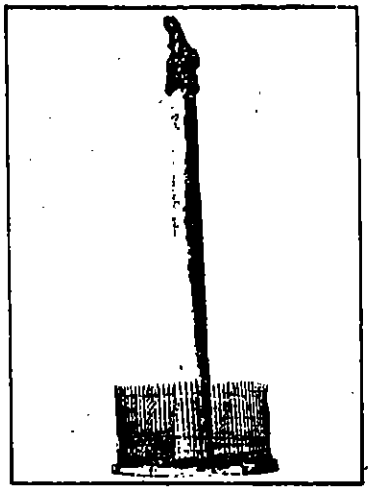

(क)

(ख)

चित्र 4.2 अशोक की नीतियों की अधिकांश जानकारी उन लेखों से मिलती है जो खरोष्ठी लिपि में चटटानों पर, तराशे हुए पत्थरों पर, स्तम्भों पर और गुफाओं में खुदे हैं। यहाँ तक कि कान्धार में ये लेख ग्रीक भाषा और ग्रीक लिपि में लिखे गये हैं। (क) लौरिया-नन्दनगढ़ में स्थित अशोक स्तंभ। (ख) अशोक के काल का एक शिलालेख।

का मुख्य स्वामी होता था बल्कि वस्तुओं का भी सबसे अधिक उत्पादन करता था। राज्य द्वारा पैदा की गयी वस्तुएँ व्यापारियों द्वारा खरीदी और बेची जाती थीं। व्यापारी वर्ग पूरे साम्राज्य में एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करता था और प्रायः नदी मार्ग से नावों द्वारा आया-जाया करता था। कभी-कभी तो अपना माल बेचने के लिए वे बर्मा, इंडोनेशिया, तथा श्रीलंका भी जाया करते थे। व्यापारिक-प्रक्रियाओं और व्यापारियों द्वारा लिये जाने वाले मूल्यों पर राज्य का कठोर नियंत्रण होता था। भूमि और व्यापारियों से वसूल किये जाने वाले राजस्व के नियम स्पष्ट, सख्त और सीधे होते थे। इस राजस्व का उपयोग 5 लाख व्यक्तियों की भारी फौज का रख-रखाव करने में किया जाता था। ये सैनिक भूमि का अधिग्रहण करते थे, उसकी रक्षा करने के साथ-साथ सीमाओं की भी रक्षा करते थे, तथा वृहत् साम्राज्य में कानून और व्यवस्था बनाये रखते थे। इस राजस्व का उपयोग ऐसे अनाथों, बूढ़ों, कमज़ोर व्यक्तियों, विधवाओं तथा गर्भवती महिलाओं के लिए किये जाने वाले कल्याणकारी कार्यों में भी किया जाता था, जिनके पास कोई और साधन नहीं था।

यद्यपि सेना किसी भू-भाग को जीत सकती थी, तथापि इस बात का निर्धारण नहीं कर सकती थी कि पराजित भू-भाग के लोग साम्राज्य की स्वेच्छा से शांतिपूर्वक सेवा करेंगे और उसे समृद्धशाली बनाएँगे। हम पाते हैं कि राज्य ने इस उद्देश्य को हासिल करने के लिए बहुत ही चतुराई से धर्म का इस्तेमाल किया।

राजा के प्रतिनिधि के रूप में ब्राह्मण इस अभियान का प्रचार एवं प्रसार नये क्षेत्रों में करते थे। एक ऐसी प्रक्रिया आरंभ हुई जिसके अंतर्गत कबीलों के देवताओं को आर्यों के सर्वमान्य देवताओं के समान माना जाने लगा। ब्राह्मणों ने ऐसे जनजातीय देवी-देवताओं के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए जिन्हें वे वैसे अपना नहीं सकते थे, नये धर्म-ग्रंथों की रचना की। जनजातीय रीति-रिवाज़ों को महत्व देने के लिए कई नये विधि-विधान एवं कर्मकांड शुरू किये गये और साथ ही चंद्र-पंचांग के अनुसार विशेष तिथियाँ लागू की गयीं। परम्परागत हिंदू धर्म-ग्रंथों में आदियुगीन मत्स्य, कच्छप, वानर, वृषभ आदि टोटेमवादी (totemic) देवी-देवताओं को स्थान देकर उन्हें भगवान विष्णु आदि हिंदू देवताओं का सहयोगी या उनका अवतार बताया गया। इसके अतिरिक्त इस आशय के विचारों का भी प्रचार-प्रसार किया गया कि कबीलों के सरदार भी "द्विज" होते हैं अर्थात् दो बार जन्म लेते थे। इसके फलस्वरूप उन्हें उच्च जाति का विशेष दर्जा प्राप्त हो गया। इस प्रकार जाति का एक ऐसा सूक्ष्म ढाँचा तैयार किया गया, जिसके अंतर्गत जनजाति समुदाय के विशिष्ट शासक-वर्ग को साम्राज्य के शासक-वर्ग में शामिल कर लिया गया। इन सबका परिणाम यह हुआ कि जनजातीय संगठन साम्राज्य की अधिक बलशाली जातीय-वर्ण-व्यवस्था में घुल-मिल गया। वैश्यों और शूद्रों का वर्ग, जो इन जनजातियों में नया बना था, साम्राज्य के कृषकों एवं श्रमिकों के निचले समुदाय में शामिल हो गया और साथ ही इसमें उनकी अपनी परंपराओं, संस्कृति और धर्म पर प्रत्यक्ष रूप से कोई ग़लत असर नहीं पड़ा। उन्होंने इन सबको संजोये रखा।

ब्राह्मण वर्णाश्रम पद्धति को आसानी से लागू कर सकने में समर्थ थे, क्योंकि उन्होंने जनजाति के

लोगों के लिए कृषि एवं वस्तु-उत्पादन के नये द्वार खोलने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। उन्होंने खाद्य-सामग्री जुटाने की, काटने और जलाने की पद्धति के स्थान पर हल द्वारा खेती करने की पद्धति शुरू की। ब्राह्मणों द्वारा नयी फ़सलों और दूर-दूर के बाज़ारों की जानकारी उपलब्ध कराने के फलस्वरूप लोगों के मन में अधिक उत्पादन करने की भावना जागृत हुई।

इन घटनाओं के फलस्वरूप भूमि से प्राप्त होने वाले उत्पादन पर गहरा असर पड़ा। उनके मन में शांतिपूर्ण जीवन के प्रति लगाव पैदा हुआ, जिससे वे सांस्कृतिक रूप से एकता के सूत्र में बंध गये। इन घटनाओं से राज्य की धन-संपदा में वृद्धि हुई। किंतु नया धर्म, जो एक समय के दौरान विकसित हुआ था, अब संस्कृति एवं उत्पादन, दोनों के ही विकास में बाधक बनने लगा। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि इसने अंध-विश्वासों पर ज़रूरत से ज्यादा ज़ोर देना शुरू कर दिया, जो कबायली जीवन-शैली एवं अविवेक पूर्ण कर्मकांडों के ही एक हिस्से थे। जिन अंधविश्वासों ने निचली जातियों की विचारधारा को जन्म दिया था, वास्तव में उन्हीं के कारण वे सदा दासता की बेड़ियों में जकड़े रहे। अंत में इन अंधविश्वासों के कारण वैज्ञानिक विचारधारा के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगा।

कोई आश्चर्य नहीं कि इन्हीं अंधविश्वासों और कर्मकांडी संस्कृति के विरोध में सम्राट अशोक ने प्रतिक्रिया स्वरूप बुद्ध के उपदेशों को ग्रहण किया। बौद्ध धर्म अपने प्राकृत रूप में कर्मकांडों और अंधविश्वासों से दूर था और अत्याचारों का डटकर विरोध करता था। बौद्ध धर्म सादे जीवन पर ज़ोर देता था, (चित्र 4.3)।

अशोक एवं उसके बाद के भारतीय राजाओं ने बौद्ध मठों को उदारतापूर्वक अनुदान दिया, जिससे शिक्षा एवं विज्ञान को बढ़ावा मिला। नालंदा महान् बौद्ध मठ था। यह एक ऐसा मंच था जहाँ विभिन्न विद्वान् लगातार मिलते रहते थे और औषधि-शास्त्र, खगोल-विज्ञान, मानविकी तथा धर्म शास्त्रों पर अपने विचारों का आदान-प्रदान करते थे। भारतीय साम्राज्य के शासकों ने इन मठों को लगातार मध्ययुग तक सहायता देना जारी रखा (चित्र 4.4)।

चित्र : 4.4 नालन्दा में मठों का एक दृश्य

ये मठ धनी संस्थान बन गये और ये व्यापारियों को धन एवं पूँजी उपलब्ध कराते थे। बाद में बौद्ध धर्म की तपोमय सरलता का स्थान कर्मकांडी धर्म ने ले लिया। यद्यपि बौद्ध धर्म ने हिंदुओं की कठोर जाति-प्रथा को आरंभ में चुनौती दी थी, लेकिन अंततः हिंदुओं का ही पलड़ा भारी रहा। इसका कारण यह था कि बौद्ध धर्म ने लोकप्रियता हासिल करने के लिए उस समय की हिंदू धर्म की वैचारिक तथा कर्मकांडी प्रथाओं को अपनाना शुरू कर दिया।

हमने ऊपर मौर्य साम्राज्य की आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का कुछ विस्तार से इसलिए, उल्लेख किया है क्योंकि इस घटना के स्वरूप ने विज्ञान के प्रयोग पर काफी प्रभाव डाला। अब हम संक्षेप में प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई घटनाओं पर प्रकाश डालेंगे। किंतु, इससे पहले यदि आप निम्नलिखित बोध प्रश्नों का उत्तर देने की कोशिश करें तो आप यह जान जाएंगे कि अब तक आपने क्या सीखा।

बोध प्रश्न 1

निम्नलिखित कथनों में से मौर्य साम्राज्य की सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं को दर्शाने वाले ऐसे पाँच कौन-से कथन हैं, जिनके फलस्वरूप तत्कालीन तकनीकी विकास संभव हुआ। उनके

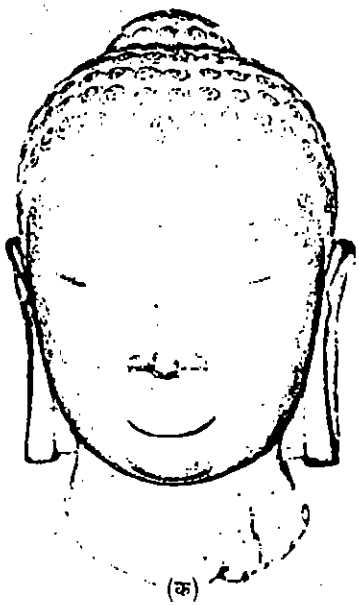

(क)

किसी भी बात पर विश्वास न करें
सिर्फ़ इसलिए कि वह आपको बतायी गयी है या वह पारंपरिक है
या उसकी कल्पना आपने स्वयं की है
अपने अध्यापक द्वारा बतायी गयी बातों पर विश्वास न करें
सिर्फ़ इसलिए कि आप अपने अध्यापक का सम्मान करते हैं
पर विधिवत् परीक्षणों और विश्लेषणों के बाद आप पाते हैं कि यदि कोई विचार
सभी प्राणियों की अच्छाई के लिए
लाभ के लिए,
कल्याण के लिए सहायक है
तो उसी सिद्धांत में विश्वास करें,
उसमें निष्ठा रखें
और उसे अपना मार्ग दर्शक मानें।
गौतम बुद्ध

(ख)

चित्र 4.3 (क) गुप्तकाल का बुद्ध का चित्र-पाँचवी सदी ईसवीं। (ख) गौतम बुद्ध की शिक्षाएं। उनकी शिक्षाओं के वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर ध्यान दें।

सामने सही (√) का निशान लगाएँ।

i) बड़े पैमाने पर भूमि का अधिग्रहण एवं उसकी सुरक्षा। ☐
ii) केंद्रीकृत राजकीय शक्ति का उदय। ☐
iii) बड़ी एवं प्रशिक्षित सेना का रख-रखाव। ☐
iv) साम्राज्य के भीतर तथा विदेशों के साथ व्यापार। ☐
v) राजस्व एकत्रित करने के लिए कानून बनाना। ☐
vi) कृषि तथा खनन उद्योग का विकास। ☐
vii) वैचारिक तथा धार्मिक अधिरचना का उदय। ☐

4.2.2 मौर्य साम्राज्य में प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास कार्य

हमें 'अर्थशास्त्र' नामक ग्रंथ से मौर्य काल में प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई महत्वपूर्ण घटनाओं के बारे में काफ़ी जानकारी मिलती है। अर्थशास्त्र में सेना के काम आने वाली उन मशीनों की विस्तार से चर्चा की गयी है, जो अपकेंद्री बलों (centrifugal forces) के सिद्धांत पर कार्य करती थीं। इन मशीनों को वायु,जल, भाप अथवा बिजली जैसी शक्ति से चलाने का विचार अभी नहीं उभरा था, जो कि आगे चलकर सामने आया।

सिविल इंजीनियरी के क्षेत्र में काफ़ी प्रगति हुई। "सीता भूमि" की उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए सिंचाई के कई तरीकों का इस्तेमाल किया जाने लगा। सेना तथा व्यापारियों के आने-जाने की सुविधा के लिए पूरे साम्राज्य में सड़कों का निर्माण किया गया। दलदलीय स्थानों पर लट्ठों की सड़कें बनायी गयीं। उदाहरण के तौर पर, बिहार में सातवीं शताब्दी में भी ऐसी सड़कों का जाल मीलों तक फैला हुआ था। अधिकांश भवन लकड़ी के बने हुए थे। संभवतः अशोक के समय में पहली बार भारत में भवन-निर्माण में पत्थरों का प्रयोग शुरू हुआ। पत्थरों को चमकाकर शीशे जैसा कर दिया जाता था और उनका उपयोग स्तंभों और मेहराबों के निर्माण में किया जाता (चित्र 4.5)।

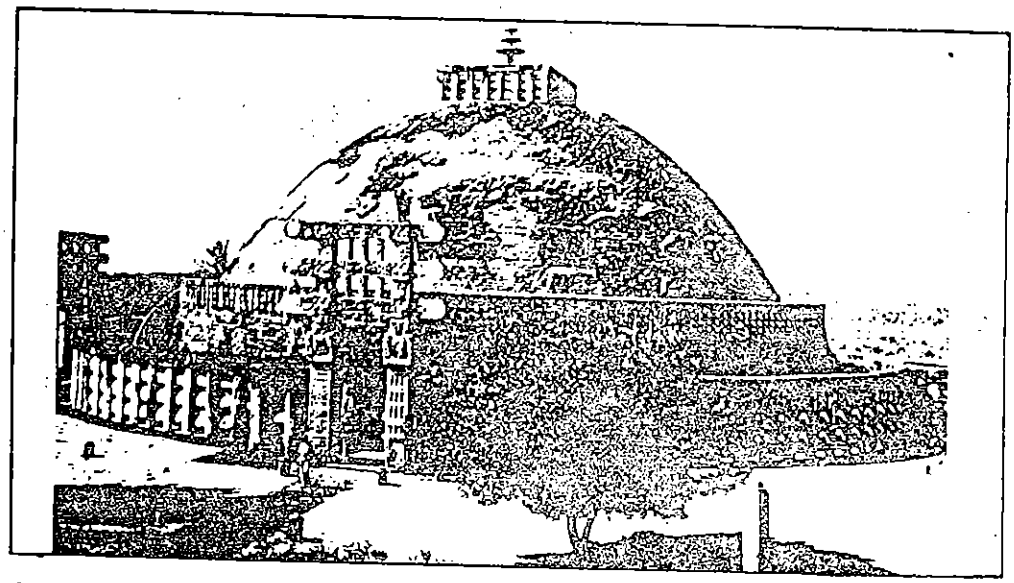

चित्र 4.5:सांची के स्तूप का एक सामान्य दृश्य। स्तंभ की जटिल कार्यकुशलता की तरफ़ ध्यान दीजिए जो उस काल की मानवीय कला और निपुणता का संकेत करते हैं।

ग्रामीण उद्योगों में भी कुछ प्रगति हुई थी। सीता भूमि के पास अनाज की भूसी निकालने, तिलहनों से तेल निकालने, कपास से बिनौला निकालने, सूत कातने, ऊन की किस्में निकाल कर उनकी सफ़ाई करने, कंबल बनाने तथा लकड़ियों को तख्तों और कड़ियों के रूप में बदलने में लघु उद्योग तथा अन्य संगत उद्योगों का जन्म हुआ (चित्र 4.6)। संभवतः पहली बार कारखाने में उत्पादन करने की संकल्पना ने जन्म लिया, क्योंकि उपर्युक्त सभी वस्तुएँ 'राज्य के भंडार-गृहों' के निरीक्षक की देख-रेख में बनायी जाती थीं। जब खेती का काम कम होता था तो स्थानीय मजूदरों को कुछ समय के लिए कारखानों में लगाया जाता था। इस उत्पादन प्रक्रिया के हर चरण पर प्रत्येक सामग्री में होने वाली सामान्य क्षति, कुशल मज़दूर का औसत उत्पादन, तैयार उत्पादन का अंतिम वज़न या माप आदि का सावधानी से बहियों में रिकार्ड रखा जाता था। इस रिकार्ड से उत्पादन पर नियंत्रण रखा जाता था।

प्रौद्योगिकी की प्रगति में सबसे बड़ा योगदान धातु-विज्ञान तथा धातु-कर्म के क्षेत्र से मिला। उत्तर-पश्चिम के स्थान पर मगध को शक्ति का केंद्र बनाने का मुख्य कारण लोहे, तांबे, टिन, सीसा तथा अन्य धातुओं की भारी माँग थी। हथियार और खेती के उपकरण मौर्य साम्राज्य की ख्याति के दो मुख्य स्तम्भ थे। धातुओं का इस्तेमाल हथियार और खेती के उपकरणों के साथ-साथ अन्य व्यापारिक वस्तुओं के निर्माण में भी होता था। अयस्कों से अपचयन और उन्हें गलाने का अर्थशास्त्र में भी संक्षेप में विवरण दिया गया है। इस ग्रंथ में विभिन्न अयस्कों के बीच दिखावट और अन्य गुणों में अंतर और उसके अनुसार उनके संसाधन तकनीकों में अंतर का विस्तार से विवरण दिया गया है। मिश्र धातु इस्पात बनाने के लिए साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में खासकर दक्षिण से बढ़िया किस्म का लौह-अयस्क लाया जाता था। इन मिश्र धातुओं से बनी तलवारों को ग्रीस सहित कई देशों में बेचा जाता था।

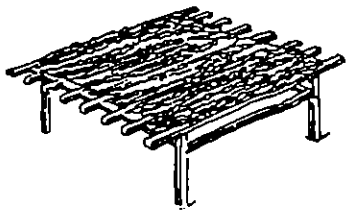

चित्र 4.6 अर्थशास्त्र में कई ग्रामीण उद्योगों का उल्लेख है जैसे ऊन को सुलझाना। इस प्रक्रिया में निम्न स्तर की ऊन को सुलझाया जाता था। ऊन को लचीली टहनी से बने चौखट पर फैलाकर कामगार उसे तार की खुरचनी से अलग-अलग करते थे।

बोध प्रश्न 2

हम नीचे साम्राज्य की कुछ आवश्यकताओं की सूची दे रहे हैं। प्रत्येक कथन के सामने यह संकेत करें कि इनके साथ कौन-सी तकनीकी विशेषताएँ जुड़ी थीं।

क) व्यापारियों तथा सेनाओं की बेहतर गतिशीलता .....

ख) भूमि की उत्पादकता में वृद्धि .....

ग) खपत तथा व्यापार के लिए वस्तुओं का निर्माण करने के लिए कृषि-उत्पादों का संसाधन .....

घ) शस्त्रों और खेती के सामान बनाना .....

हम पाते हैं कि ग्रामीण उद्योग, सिविल इंजीनियरी, धातु-विज्ञान एवं खनिज इंजीनियरी जैसे कुछेक क्षेत्रों में, मौर्य साम्राज्य ने उल्लेखनीय प्रगति की थी। अब हम पढ़ेंगे कि भारत के दूसरे हिस्सों में खासकर दक्षिण भारत, में इसी अवधि में क्या कुछ हो रहा था।

4.2.3 दक्षिण भारत में विकास कार्य

अशोक के बाद मौर्य साम्राज्य छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया जिनमें आपस में कटु प्रतिस्पर्द्धा थी। उनके बाद जिस साम्राज्य का उदय हुआ, वह कुषाण वंश था। यह साम्राज्य ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में उभरा। इसमें न केवल उत्तर तथा उत्तर-पूर्वी भारत के क्षेत्र भी आते थे। बल्कि मध्य एशिया और वर्तमान पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान के क्षेत्र भी आते थे। कनिष्क के शासन काल में (द्वितीय शताब्दी) उसका साम्राज्य पूर्व में बिहार के कुछ हिस्सों के साथ-साथ मध्य एशिया में नर्मदा नदी तक फैला हुआ था। दक्षिण भारत में, लगभग इसी समय सातवाहनों, क्षत्रप तथा वाकाटकों के कुछ शक्तिशाली राज्यों का उदय हुआ (चित्र 4.7)।

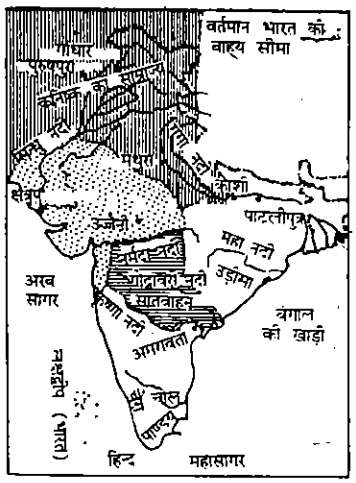

चित्र 4.7 भारत के विभिन्न साम्राज्य (लगभग 150 ईसवी)

दक्षिण भारत में यह समय शिल्प तथा वाणिज्य के इतिहास में सबसे अधिक वैभवशाली समय था। तत्कालीन शिलालेखों में बुनकरों, स्वर्णकारों, रंगसाज़ों, जौहरियों, मूर्तिकारों तथा धातु एवं हाथी दाँत के कारीगरों का उल्लेख किया गया है। इससे इस बात का पता लगता है कि ये शिल्प बहुत विकसित थे। उस समय के लोहे के औज़ार और सामान जैसे कि करछी, उस्तरे, कुल्हाड़ियाँ, हँसिए, फावड़े, खेती के फाल आदि आंध्र प्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र के करीमनगर तथा नालगोंडा ज़िलों में पाये गये हैं (चित्र 4.8) सीसे, तांबे, काँसे, चांदी तथा सोने के सिक्के भी पाये गये है। इनमें से कई सिक्के सातवाहन राज्य के हैं। इससे यह पता चलता है कि उन्होंने लौह-धातु-विज्ञान में ही नहीं बल्कि पीतल, जस्ता, ऐंटीमनी आदि के धातु कर्म में भी बहुत बड़ी महारत हासिल कर ली थी। कपड़ा बनाना, रेशम की बुनाई तथा हाथी दाँत, काँच और मोतियों से विलास की वस्तुएँ भी बनायी जाती थीं। दक्षिण भारत के कुछ शहरों में रंगाई उद्योग एक फलता-फूलता उद्योग था। ईंटों के बने रंगाई के हौज, जो पहली से तीसरी शताब्दी के थे, तमिलनाडु में उरईयूर तथा अरिकामेडू की खुदाई में पाये गये हैं। पहियों द्वारा चलने वाले कोल्हू से तेल निकाले जाने से तेल के उत्पादन में वृद्धि हो गयी।

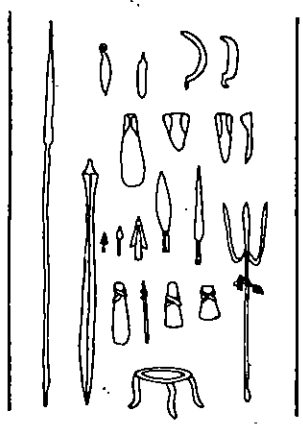

चित्र 4.8 दक्षिण भारत के विभिन्न स्थानों में स्थित समाधियों से प्राप्त लोहे के औज़ार और अन्य वस्तुएं। हँसिया, छुरा, कुल्हाड़ी, तीर के सिरे भाले के सिरे, भाला, तलवार, त्रिशूल और निसाई पर ध्यान दीजिए।

उस समय समुद्री मार्ग से बड़े पैमाने पर व्यापार होता था। यह ज्ञान, कि मानसूनों से नौकायन में काफ़ी सहायता मिलती है, समुद्री मार्ग से व्यापार करने वाले व्यापारियों के लिए काफ़ी लाभदायक सिद्ध हुआ। अफ्रीका के बंदरगाहों को लोहा तथा इस्पात की वस्तुएँ जैसे कि छुरी-काँटे आदि, निर्यात की जाती थीं। मलमल, मोती, जवाहरात, हीरे तथा मसाले रोम को निर्यात किये जाते थे। इस फलते-फूलते उद्योग के कारण सातवाहनों द्वारा शासित नगरों की समृद्धि बढ़ गयी।

किंतु इन साम्राज्यों का तीसरी शताब्दी के बाद पतन शुरू हो गया। चौथी शताब्दी के आरंभ में गुप्त वंश के उदय के साथ भारतीय साम्राज्यों का महान् युग अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। अब हम गुप्त काल में सामाजिक संगठनों का वर्णन करेंगे और देखेंगे कि उस समय इससे विज्ञान तथा प्रौद्योगिक के विकास में किस प्रकार सहायता मिली।

4.3 गुप्त काल

गुप्त साम्राज्य काफ़ी बड़े भू-भाग पर फैला हुआ था। इसका क्षेत्र उत्तर, दक्षिण पूर्वी तथा पश्चिमी भारत तक फैला हुआ था। सांस्कृतिक दृष्टि से चंद्रगुप्त द्वितीय (380-415 ई.) के राज्य में इसका विकास चरम सीमा पर था (देखिए चित्र 4.9)। यह उपयोगी होगा कि हम लगभग 500 वर्ष के इस काल की कुछ विशेषताओं पर विचार करें। तब आप समझ सकेंगे कि इस युग को भारतीय विज्ञान का स्वर्ण युग क्यों कहा गया है।

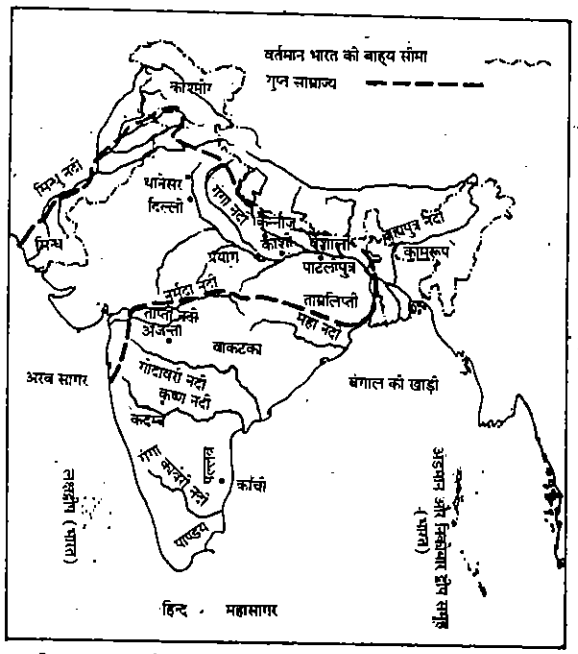

चित्र 4.9 चौथी शताब्दी के अन्त में गुप्त साम्राज्य।

4.3.1 सामाजिक संगठन

गुप्त साम्राज्य में भी उत्पादन का मुख्य साधन कृषि ही था। मौर्यों द्वारा आरंभ किया गया भूमि-अभिग्रहण का कार्य गुप्त सम्राटों ने भी जारी रखा। समुद्रगुप्त ने गंगा, नर्मदा और महानदी की घाटियों में स्थित जंगल के अनेक राज्यों को जीतकर इस दिशा में अंतिम प्रयास किया। किंतु इस काल में भूमि-व्यवस्था मौर्य काल में अपनायी गयी भूमि-व्यवस्था से एकदम भिन्न थी। साफ की गयी भूमि पर राज्य का स्वामित्व एवं नियंत्रण काफ़ी हद तक कम हो गया और भूमि अब लोगों के हाथों में आ गयी। लोगों को अपनी भूमि का प्रबंध करने तथा कर वसूल करने की अनुमति देने के लिए कानून बनाये गये। इससे राज्य का कोई सरोकार न रहा कि वे लोग स्वयं खेती करते थे या नहीं। अधिकांश गुप्त सम्राटों का अपना धर्म चाहे जो भी रहा हो, जहाँ तक राज्य का संबंध था, वे धर्म-निरपेक्ष थे। बौद्ध धर्म, जैन धर्म तथा परंपरागत हिंदू संगठनों को अनुदान के माध्यम से सहायता दी जाती थी तथा संरक्षण प्रदान किया जाता था।

किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति पहले वंश परंपरा के आधार पर जानी जाती थी पर अब कुछ हद तक उस व्यक्ति की संपत्ति उसकी सामाजिक स्थिति का मापदंड बन गयी थी। इस प्रकार ब्राह्मणों का महत्व कम हो गया। कृषि को महत्व देने तथा दस्तकारी की वस्तुओं का उत्पादन आरंभ होने से शूद्रों की स्थिति में कुछ सुधार हुआ। समाज में कौन क्या करता है, यह अधिक महत्वपूर्ण हो गया। यहाँ तक कि ब्राह्मणों को भी धार्मिक अनुष्ठानों के अलावा दूसरे काम करने पड़े।

पिछले काल की तुलना में इस काल में कठोर राजकीय नियंत्रण हटा देने का काफ़ी अच्छा प्रभाव पड़ा, क्योंकि इससे लोगों को कार्य में पहल करने की प्रेरणा मिली। इससे ब्राह्मणों का प्रभाव कम होने के साथ-साथ कृषि पर आधारित समाज पर कठोर वर्ण-व्यवस्था का प्रभाव भी कम होना शुरू हो गया।

अब तक हमने गुप्त काल में सामाजिक संगठनों के स्वरूप की चर्चा की। हम पाते हैं कि उस काल में सामाजिक ढाँचा मौर्य साम्राज्य के ढाँचे से काफी भिन्न था। अब हम आपको गुप्त साम्राज्य में तकनीकों और शिल्पकला में हुए सुधार के बारे में बताएंगे।

4.3.2 तकनीकों और शिल्पकला में सुधार

इस काल में नयी तकनीकों और बीजों के कारण कृषि उत्पादन में तेज़ी आयी। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि शिल्पकला में गुणवत्ता के साथ-साथ विविधता की दृष्टि से भी काफ़ी प्रगति हुई। हम इस खंड में कृषि तथा शिल्पकला में हुए सुधार की चर्चा करेंगे। हम आपको यह भी बताएँगे कि व्यापार में वृद्धि के कारण इस प्रक्रिया में किस प्रकार योगदान मिला।

कृषि

काली मिर्च और मसालों की पैदावार घरेलू खपत तथा निर्यात, दोनों के लिए की जाती थी। विभिन्न किस्म की फसलें, जैसे चावल, गेहूँ, जौ, तिल, दालें, कई प्रकार की सेम एवं मसूर, तथा सब्जियाँ जैसे ककड़ी, प्याज़, लहसुन, सीताफल, तथा पान आदि का उत्पादन किया जाता था। कई प्रकार के नये फल जैसे कि नाशपाती तथा आड़ू की पैदावार भी पहली बार शुरू की गयी। यह सब किसी संयोग से नहीं हुआ। इसके लिए बाक़ायदा नियम-पुस्तिकाएँ बनायी गयी थीं। इनमें कई बातों की जानकारी दी जाती थी। जैसे प्रत्येक पौधे के लिए मिट्टी की किस्म और उसका गुण क्या होना चाहिए, पौधों में कौन-कौन सी बीमारियाँ लग सकती हैं, पौधों के बीच फ़ासला कितना होना चाहिए तथा साथ ही बुवाई की तकनीकें क्या हैं अर्थात् बुवाई के पहले मिट्टी कैसे तैयार की जाती है, आदि। इन पुस्तिकाओं में अनाज, सब्जियों तथा फलों की किस्मों के लिए नये-नये तरीके दिये गये थे। विभिन्न किस्म की मिट्टी के लिए हलके फालों के वज़न और आकार निर्धारित कर दिये गये और इस प्रकार कृषि-औज़ारों के लिए लोहे का इस्तेमाल एक आम बात हो गयी।

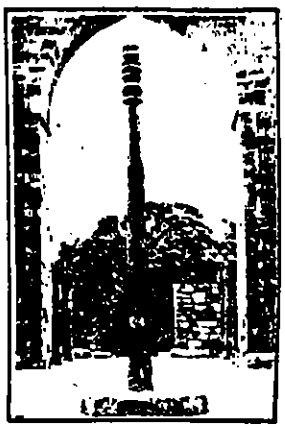

चित्र 4.10 दिल्ली स्थित महरौली में लौह स्तम्भ

शिल्पकला

धातु कर्म तथा बुनाई की कला में इस काल में बहुत अधिक प्रगति हुई। जंग न लगने वाले लोहे तथा ताँबे के मिश्र-धातु बनाये जाते थे तथा उनका प्रयोग जटिल किस्म की असैनिक तथा सैनिक इस्तेमाल की वस्तुएँ बनाने के लिए किया जाता था। इन वस्तुओं की गुणवत्ता इतनी अच्छी होती थी कि उनका बड़े पैमाने पर अफ़्रीका जैसे देशों में निर्यात किया जाता था। इन वस्तुओं के डिज़ाइन पर कुछ हद तक ग्रीक-रोमन एवं मध्य एशियाई प्रभाव था। किंतु कुल मिलाकर उनका स्वरूप स्थानीय ही था (चित्र 4.10)।

बुनाई में सूती तथा रेशमी कपड़े बनाने की तकनीकों में काफ़ी निखार आ गया था। रंगों का निर्माण तथा कपड़ों की रंगाई में उनका बड़े पैमाने पर इस्तेमाल शुरू हो गया था। भारतीय वस्त्र खास कर बनारस एवं बंगाल के वस्त्र अपने हल्के वज़न और सुंदर बुनावट एवं तंतु विन्यास के लिए प्रसिद्ध हो गये। वे वस्त्र पश्चिमी देशों में भी लोकप्रिय हुए जिससे इनका निर्यात व्यापार की एक महत्वपूर्ण सामग्री बन गयी थी।

राज्य के हस्तक्षेप में कमी आने के फलस्वरूप इस नयी व्यवस्था में कारीगरों या शिल्पकारों की संस्थाएँ बन गयीं जो काफ़ी शक्तिशाली और महत्वपूर्ण हो गयीं। उन्हें काफ़ी स्वतंत्रता प्राप्त थी तथा व्यक्तियों के बीच प्रायः अनुबंध होते थे; यहाँ तक कि राजकीय अधिकारियों के साथ भी करार किये जाते थे। इस 'श्रेणी' के शिल्पकार लोगों से पूँजी उधार लिया करते तथा उन्हें ब्याज सहित रकम वापस लौटा दिया करते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि बढ़ते हुए व्यापार के कारण शिल्पकला में सुधार की दिशा में काफ़ी सहायता मिली।

व्यापार

जैसे-जैसे आंतरिक तथा बाहरी व्यापार का अनुपात तथा उसकी मात्रा तेज़ी से बढ़ती गयी, वैसे-वैसे वस्तुओं का सीधे उत्पादन करने वालों का महत्व बढ़ता गया। जिन क्षेत्रों में पहले जाना भी मुश्किल था तथा जो बसे हुए नहीं थे, उनके खुल जाने, और परिवहन, संचार तथा व्यापारिक मार्ग की बेहतर सुविधाओं के कारण व्यापार में काफ़ी वृद्धि हुई। एक विस्तृत साम्राज्य में दूर तक फैले हुए बड़े-बड़े बाज़ारों के अस्तित्व से फलते-फूलते व्यापार में मुद्रा प्रसार को बहुत बढ़ावा मिला। कारीगरों की तरह ही व्यापारियों की संस्थाएँ भी अस्तित्व में आयीं जिन्हें "श्रेणी" कहा जाता था। मुख्य व्यापारिक मार्ग गंगा और सिंधु नदियों के आस-पास थे। वस्तुओं के खरीदने और बेचने पर अभी तक शासन का नियंत्रण था। कुषाणों, सातवाहनों और गुप्त वंश द्वारा स्थापित राजनयिक संबंधों से प्रोत्साहित तेज़ी से विकसित होते हुए विदेशी व्यापार से आंतरिक व्यापार में वृद्धि हुई। विशेष रूप से मानसून के ज्ञान के प्रयोग से भारतीयों द्वारा जहाज़रानी में सुधार और जलयानों के नये नमूनों ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भारतीयों ने अरबों, भूमध्य देशों, खासकर रोम, अफ़्रीका, दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों जैसे जावा, सुमात्रा और श्रीलंका के साथ व्यापार किया। इन संबंधों ने भी व्यापार की वृद्धि में सहयोग दिया (चित्र 4.11)।

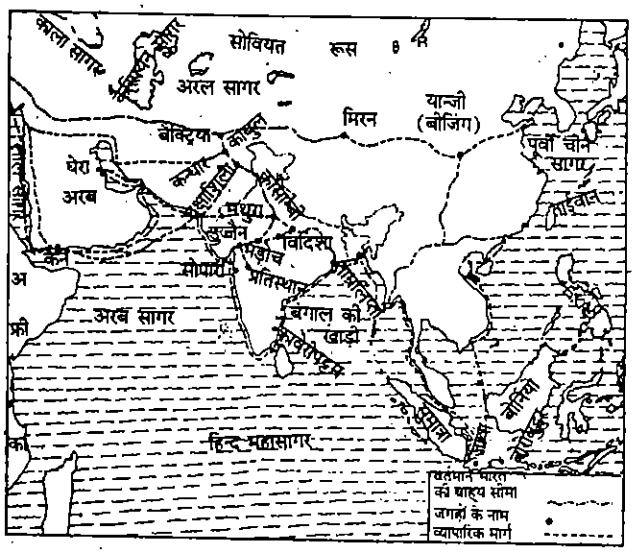

चित्र 4.11 प्राचीन व्यापारिक मार्ग।

उपर्युक्त वर्णन से उस भारतीय समाज की एक ऐसी झलक मिलती है जहाँ वस्तुओं का उत्पादन और विनिमय स्वदेशी बाज़ारों के फैलाव और विदेशी व्यापार में वृद्धि के कारण ज़ोरों पर था। इन गतिविधियों मे उत्पादन की नयी तकनीकों, बेहतर प्रबंध के लिए नये प्रकार के गणित तथा अंकज्ञान और निर्माण, संचार तथा जहाज़रानी के नये तरीकों की आवश्यकता महसूस हुई। यह बात उल्लेखनीय है कि नयी तकनीकों की यह सामाजिक माँग ऐसी परिस्थिति में पैदा हुई जब पूर्वकाल का कठोर प्रशासनिक नियंत्रण व्यक्तिगत उपक्रम के पक्ष में कुछ कम कर दिया गया था। पुराने विशिष्ट शासक कुछ हद तक ढीले पड़ रहे थे। इस समय एक सीमा तक सामाजिक गतिशीलता आयी जिससे संभवतः शिक्षित और अशिक्षित वर्ग में संपर्क स्थापित होने शुरू हो गये थे। यह एक ऐसा समाज था जहाँ पुरानी जाति व्यवस्था जो कमज़ोर पड़ चुकी थी, कायम थी पर श्रम विभाजन के आधार पर एक नयी जाति व्यवस्था भी अस्तित्व में आयी जो उस समय तक सुदृढ़ नहीं थी।

ऐसे ही काल में भारत में गणित और खगोल विज्ञान के क्षेत्रों में महान् प्रगति हुई। इन प्रगतियों के बारे में हम आगे की इकाइयों में विस्तार से चर्चा करेंगे। इससे पहले कि हम आगे बढ़ें, अपनी प्रगति को परखने के लिए निम्नलिखित प्रश्नों को हल कीजिए।

बोध प्रश्न 3

क) गुप्त साम्राज्य में सामाजिक संगठन की कोई तीन विशेषताएँ बताइए जिनके कारण विज्ञान और प्रौद्योगिकी में विशेष सुधार हुआ।

.....

.....

.....

.....

ख) निम्नलिखित में से कौन-से चार नव प्रवर्तन गुप्त कालीन तकनीकी एवं दस्तकारी से संबंधित हैं? सामने दिये गये खाने में सही का चिह्न (√) लगाएँ।

i) सीमेंट और कंकरीट के भवन। ☐

ii) विभिन्न प्रकार की फ़सलें, फल, सब्ज़ियाँ और मसाले, बोने और उगाने की प्रक्रिया में नयी तकनीकों और औज़ारों का प्रयोग। ☐

iii) जंग न लगने वाला लोहा और तांबे की मिश्र धातुएँ बनाना। ☐

iv) पवन-चक्कियों और पनचक्कियों का प्रयोग। ☐

v) बढ़िया आकार और हल्के वज़न के कपड़ों का निर्माण तथा कपड़ों की रंगाई। ☐

vi) काँसे के फालों का प्रयोग। ☐

vii) अच्छे जहाज़ों से जहाज़रानी में सुधार तथा मानसून का ज्ञान। ☐

4.3.3 गणित शास्त्र के क्षेत्र में उपलब्धियाँ

हम जानते हैं कि भारत में गणित शास्त्र की परंपरा प्राचीन-युग से चली आ रही है। हम इकाई 2

तथा इकाई 3 में "शुल्व ज्यामिति" का ज़िक्र कर चुके हैं। यह परंपरा जैन गणितज्ञों ने भी बनाये रखी। उन्होंने 500 ई.पू. से 500 ई. तक की लंबी अवधि में इसमें बहुत बड़ा योगदान दिया। यह संभव है कि ग्रीक लोगों के साथ संपर्क बढ़ने के कारण, भारतीय गणितज्ञों पर उनका प्रभाव पड़ा होगा। इसके अतिरिक्त, जैन परंपरा जो गुप्त काल में उत्तर से दक्षिण भारत में फैली थी अब मैसूर तथा उज्जैन की गणित शाखा के भी संपर्क में आयी। इस विकास-क्रम की ठीक पद्धति जो भी रही हो परंतु गुप्त काल में गणित, बीजगणित तथा संख्याओं की एक सशक्त धारा उभरकर सामने आयी। ये सूत्र अथवा नियम इस सीमा तक खगोल-विज्ञान से संबंधित गणनाओं के लिए आधार बन गये कि उस समय के ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर तथा आर्यभट्ट जैसे महान् खगोल विज्ञानी, गणितज्ञ तथा खगोल-विज्ञानी, दोनों ही रूपों में प्रसिद्ध थे। यह परंपरा गुप्त-काल में ही समाप्त नहीं हो गयी बल्कि भास्कर के समय (बारहवीं शताब्दी) तक चलती रही। यह पश्चिम की ओर भी गयी तथा इसने अरबी गणितज्ञों को भी काफ़ी प्रभावित किया। आइए, देखें इससे गणित के क्षेत्र में क्या प्रगति हुई।

जैनों का गणित-शास्त्र

जैन साधु अपनी धार्मिक शिक्षा में गणित के ज्ञान को बहुत महत्व देते थे। उमास्वाति तथा अन्य लोगों द्वारा लिखित स्थानांग-सूत्र (100 वर्ष ई.पू.), सूर्यप्रज्ञापति, भद्रबाहवी संहिता (300 वर्ष ई.पू.), तथा क्षेत्रसमास (150 ई.) में क्षेत्रमिति (mensuration), करणी (surds), भिन्न (fraction), क्रमचय और संचय (permutations & combinations), ज्यामिति (geometry), घातांक-नियम (law of indices) और संख्याओं के वर्गीकरण (classification of numbers) आदि का विस्तार से विवरण दिया गया है। जैनियों द्वारा प्रयोग किये जाने वाले ये विषय तथा विभिन्न तकनीकी शब्दावलियाँ बाद में विद्वानों के गणितीय ग्रंथों में अपना ली गयीं, चाहे उनकी धार्मिक विचारधारा जो भी रही हो। अब हम जैन गणितज्ञों की कुछ विशेषताओं का उल्लेख करेंगे। उन्होंने क्षेत्रमिति में यह स्पष्ट किया कि किसी वृत्त के व्यास, परिधि, चाप और किसी वृत्त की जीवा में क्या संबंध है (चित्र 4.12) । इस प्रक्रिया में उन्होंने करणी का अनुमानित मूल्य निकालने के हल प्रस्तुत किये। हम पाते हैं कि जैनी बड़े और जटिल गणितीय गुणनफलों का प्रयोग करते थे। निश्चित संख्याओं का हल निकालने में वे प्रायः अनुमानित मूल्य का सहारा लेते थे। जब भी भिन्न के भाग का मान 1/2 से अधिक होता, तो वे उसके स्थान पर 1 मान लेते थे तथा 1/2 से कम होने पर वे उसे छोड़ देते थे। इस प्रकार $315089\frac{218}{630}$ के स्थान पर वे 315089 रखते थे तथा $318314\frac{550}{636}$ के स्थान पर 318315 रखते थे।

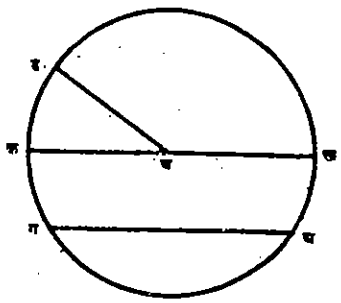

चित्र 4.12 एक वृत्त, जिसका केन्द्र च पर स्थित है, व्यास क ख है, ग घ जीवा है और क ङ चाप है।

भगवती-सूत्र (ई.पू. पहली शताब्दी) में, जैनी "n" मूलभूत वर्गों में से एक बार में एक (एकैक संयोग), एक बार में दो (द्विक संयोग), एक बार में तीन (त्रिक संयोग) अथवा एक बार में बहुत सी संख्याएँ लेकर संचय की संभावित संख्याओं के बारे में अनुमान लगाते थे। वे हर स्थिति में क्रमचय और संचय के सूत्रों को, जिन्हें हम आज जानते हैं, ज्ञात करने में सफल हुए।

जैनियों ने इस प्रकार के सूत्र निकाल लिये थे :

$${}^nC_1 = n$$

$${}^nC_2 = \frac{n(n-1)}{2\times 1}$$

$${}^nC_3 = \frac{n(n-1)(n-2)}{3\times 2\times 1}$$

$${}^nP_1 = n$$
$${}^nP_2 = n(n-1)$$
$${}^nP_3 = n(n-1)\,n(n-2)$$

संख्याओं के संबंध में सभी जैन ग्रंथों में प्रयुक्त जो एक सन्निहित सूत्र है, वही आधुनिक घातांक नियम है:

$a^m \times a^n = a^{(m+n)}$, तथा $a^{(m)/n} = a^{mn}$

जहाँ m तथा n या तो पूर्णांक हैं अथवा भिन्न की संख्याएँ हैं।

भारत में बीजगणित

ब्रह्मगुप्त के समय से (लगभग 598 ई.) गणितशास्त्र की एक पृथक शाखा के रूप में बीजगणित का उदय हुआ। बीजगणित के भारतीय विद्वानों ने संभवतः इतिहास में पहली बार रंगों अथवा रत्नों के संक्षिप्त नामों को अज्ञात मात्राओं, संक्रियाओं, घातों, मूल आदि के प्रतीक के

जैन किसी ऋणात्मक संख्या को अर्थात् —2 को ₀2 से दर्शाते थे।

रूप में व्यक्त किया। उन्होंने ऋणात्मक मात्राओं को एक बिंदु द्वारा व्यक्त किया। यदि किसी संख्या में बिंदु नहीं होता था तो इसे धनात्मक मान लिया जाता था। इनमें से कुछ अंकन पद्धतियाँ तालिका 4.1 में दी गयी हैं।

तालिका 4.1 कुछ वर्तमान गणितीय संकेत चिन्ह और उनके संगत प्राचीन गणितीय चिन्ह

आज के संकेत चिह्न	प्राचीन काल के संकेत चिह्न
चर	चर
x	मा (माणिक्य)
y	नी (इंद्रनील)
z आदि	मु (मुक्ता) आदि
संक्रियाएँ	संक्रियाएँ
+	यु (युत)
—	+(ब्रह्मी के क्षय K का चिह्न)
×	गु (गुणा)
÷	भा (भाग)
$(\ )^2$	व (वर्ग)
$(\ )^3$	घ (घन)
$(\ )^4$	व-व
$\sqrt{\ }$	मू (मूल)

उन्होंने बीजगणित समीकरणों को तीन वर्गों में बाँटा था :

i) एक अज्ञात संख्या में समीकरण
ii) कई अज्ञात संख्याओं में समीकरण
iii) अज्ञात संख्याओं के गुणनफल का समीकरण

रैखिक तथा द्विघातीय समीकरणों के हल उन्हें मालूम थे। एक से अधिक अज्ञात संख्याओं के प्रथम तथा द्वितीय घात तक अनिश्चित समीकरणों के हल निकालना भी वे जानते थे। उदाहरण के तौर पर :

$by = ax + c$
तथा $ax^2 + c = y$

उच्चतर घात के समीकरणों के हल निकालने का भी उन्होंने प्रयास किया।

संख्याएँ

बीजगणित के अलावा, प्राचीन सभ्यता का संभवत: सबसे बड़ा योगदान संख्याओं का आविष्कार था। संख्याओं को शब्दों तथा अक्षरों द्वारा दर्शाने की आवश्यकता तब हुई जब मनुष्य के सामने बहुत बड़ी तथा बहुत छोटी संख्याओं की समस्या आई। उदाहरण के तौर पर, खगोल विज्ञान में या फिर मूल्यवान धातुओं को सही-सही तोलने में। हम यह पहले ही बता चुके हैं कि इस काल में व्यापार तथा नौसेना संचालन में विस्तार होने के कारण विज्ञान के इन क्षेत्रों को बढ़ावा मिला। अब मानव अपने व्यापारिक लेन-देन, तारों की संख्याओं और दूरियों अथवा तारों के उदय होने की अवधि को व्यक्त करने के लिए दिनों की संख्या को खड़ी पाइयों से व्यक्त नहीं कर सकता था, जैसा कि हड़प्पा की सभ्यता के समय आम प्रथा थी (चित्र 4.13)।

इस काल में जिन संख्यात्मक अंकन पद्धतियों का प्रयोग किया जाता था उनमें से कुछ अर्थात् खरोष्ठी तथा ब्रह्मी प्रणालियों को तालिका 4.2 में दर्शाया गया है। जहाँ तक खरोष्ठी संख्याओं का संबंध है, वे अशोक, शक (saka), पार्थियन तथा कुषाणों के शिलालेखों में पायी जाती हैं। उनका समय ई.पू. चौथी शताब्दी से लेकर ईसा के बाद दूसरी शताब्दी तक है। इस प्रणाली में आपको केवल 300 तक संख्याएँ मिलेंगी जो 1 से शुरू होकर 10 तक और फिर 10 से 100, 200 तथा 300 तक हैं। मध्यवर्ती संख्याओं को योगात्मक सिद्धांत के अनुसार लिखा जाता था। कुछ उदाहरण नीचे दिये गये हैं :

आज की संख्याओं को : इस प्रकार लिखा जा सकता है :	22 2+20	74 4+70	122 2+20+100	274 4+70+200
खरोष्ठी चिह्न में :	113	X7333	11321	X73332 11

खरोष्ठी संख्याओं का प्रयोग करते हुए आप कुछ अन्य संख्याएँ लिखने का प्रयास कर सकते हैं। है न यह मज़े की बात? ब्राह्मी पद्धति में 20,000 तक की संख्याएँ लिखी जाती थीं। इसमें और भी सूक्ष्म संकेतों का प्रयोग किया जाता था। किंतु ये दोनों पद्धतियाँ बहुत कठिन थीं जबकि इनकी तुलना में दशमलव प्रणाली अधिक आसान है, जो आज प्रयोग की जाती है।

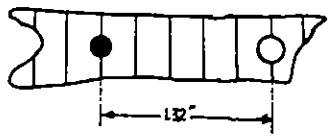

चित्र 4.13 सिंधु घाटी से मिले पैमाने का रेखाचित्र।

तालिका 4.2 खरोष्ठी और ब्राह्मी लिपियों के अंक।

	खरोष्ठी	ब्राह्मी		
	शक पार्थियन कुषाण	अशोक शिलालेख	नानाघाट शिलालेख	नासिक शिलालेख
1	I	I	—	—
2	II	II	=	=
3	III			≡
4	X	+	¥¥	¥ ५
5	IX			५ ५
6	IIX	६६	५	५
7	IIIX		?	7
8	XX			५५
9			?	२
10	?		०००	००
20	3		०	०
30				
40	33			Z
50	?33	७ ०		
60	333		?	
70	?333			X

	खरोष्ठी	ब्राह्मी		
	शक पार्थियन कुषाण	अशोक शिलालेख	नानाघाट शिलालेख	नासिक शिलालेख
80	3333		∞	
90				
100	?I		२०	~
200	?II	५४६	२०	~
300	?III		५	
400			५६	
500				~
700			२०	
1000			T	९
2000				९
3000				९
4000			T४	९४
6000			T९	
8000				९५
10,000			T०	
20,000			T०	

दशमलव या शून्य प्रणाली का सबसे पहला उल्लेख हमें एक गुर्जर अनुदान पत्र (Gurjara grant plate) लेख में 595 ई. में मिलता है, उसके बाद ग्वालियर, महिपाल, बौक आदि के अन्य शिलालेखों में पाते हैं। ऐसा लगता है कि इनका प्रयोग उस समय के तथा बाद के खगोल शास्त्रियों और ज्योतिषियों द्वारा किया गया और उसमें लगातार सुधार किया जाता रहा है। अरबों ने इस पद्धति को अपनाया और पहले की संख्याओं में इतना सुधार किया कि आज इन्हें अरबी संख्यापद या संख्याएँ कहा जाता है।

भारत में, संख्याओं को वस्तुओं, जीवों अथवा विचारों के नाम से व्यक्त किया जाता था। शब्दों के नाम संख्याओं के साथ उनके संबंध पर विचार करने के बाद चुने जाते थे। उदाहरण के तौर पर :

i) सिफर, शून्य या "0" को आकाश, अंबर, शून्य द्वारा व्यक्त किया जाता था।
i) 1 को पृथ्वी के पर्यायवाची शब्दों जैसे– भू, धरा, पृथ्वी, आदि अथवा चंद्रमा के पर्यायवाची शब्दों जैसे इंदु, चंद्र, आदि द्वारा।
ii) 2 को यम, आश्विन (युग्म), पक्ष (पक्षी के दो पंख) या कर (दो हाथ) आदि से।
v) 3 को (त्रि), गुण (त्रि) जगत्, अग्नि, रमा आदि द्वारा।
v) 4 को वेद, समुद्र, आदि से।
vi) 5 को भूतों (तत्वों), इन्द्रियों (स्पर्शेन्द्रियाँ) अथवा सार से व्यक्त किया जाता था।

बड़ी संख्याओं को लिखने का तरीका काफ़ी कठिन था। इसलिए शब्दों को जोड़कर बड़ी संख्याओं को व्यक्त किया जाता था। इस प्रकार संख्या पदों को श्लोकों में बायें से दायें लिखा जाता था।

किंतु जिन संख्याओं को वे दर्शाते हैं उन्हें दायें से बायें लिखा जाता है। उदाहरण के तौर पर, 14,400 की संख्या को इस प्रकार लिखा जाता था :

ख-ख-वेद-समुद्र-सीतारसमय :

जब इन्हें संख्यात्मक रूप में दायें से बायें व्यक्त किया जाता है, तो यह 14400 पढ़ा जाएगा। उसी प्रकार हमने अन्य उदाहरणों को तालिका 4.3 में दिया है। (इस तालिका में 6, 7, 8 और 9 संख्याओं के लिए शब्द देखें।)

तालिका 4.3

	शब्द	संख्याएँ
1	नव-वसु-गुण-रस रस :	66389
2	स्वर-यम-यम-द्वि	2227
3	शून्य-द्वि-पंच-यम	2520
4	वसु-वेद-यम-ख-धारा	.....
5	.....	5379

बोध प्रश्न 4

उपयुक्त संख्या या शब्द लिखकर तालिका 4.3 में खाली स्थानों को भरिए।

आप संभवतः कुछ और अधिक संख्याएँ अपने पूर्वजों की भाषा में लिखना चाहें।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पहली बार एक ऐसी प्रणाली विकसित की जा रही थी, जिससे संख्याओं को लिखित या बोलने की भाषा के रूप में व्यक्त किया जा सकता था।

इस खंड में, हमने 1500 से 2000 वर्ष पूर्व गणितशास्त्र के क्षेत्र में हुई महत्वपूर्ण प्रगति का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न किया। आइये, अब हम देखते हैं कि खगोल विज्ञान के क्षेत्र में क्या प्रभावशाली घटनाएँ घटीं।

4.3.4 खगोल विज्ञान के क्षेत्र में उपलब्धियाँ

यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं है कि गुप्त काल में खगोल-विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई थी, तथापि आविष्कारों और सिद्धांतों का ठीक-ठीक एवं क्रमवार निर्धारण करना मुश्किल है। इस बात का पता लगाना कठिन है कि इस क्षेत्र में भारत एवं ग्रीक के प्राचीन ग्रंथों का कितना प्रभाव पड़ा। ज़्यादातर सूचनाओं का पता बाद के खगोल शास्त्रियों द्वारा रचित भाष्यों या व्याख्याओं से चलता है। ये लोग अपने ग्रंथों को प्राचीन ऋषियों के ग्रंथ बताते थे। इसका कारण यह था कि इनके ग्रंथों को समकालीन विद्वानों द्वारा मान्यता मिल जाए। इस संबंध में कितनी जानकारी प्राप्त थी, इसका पता लगाना इस वजह से और भी मुश्किल हो जाता है कि हमारे वैज्ञानिक कल्पनाओं को तथ्यों से जोड़ देते थे या फिर त्रुटिपूर्ण वैज्ञानिक सिद्धांतों के साथ मिलाकर पेश करते थे (जैसे राहु और केतु)। इसका कारण यह था कि वे समाज में मान्यता प्राप्त करना चाहते थे।

हमने इकाई 3 में देखा कि भारतीय खगोल विज्ञान का मूल वैदिक काल में था। इसका विवरण "सिद्धांत" नामक ग्रंथों में दिया गया है। उस काल के भारतीय खगोल या ज्योतिष विज्ञान में सूर्य चंद्र तथा ग्रहों की स्थिति का ठीक-ठीक ब्यौरा रखा जाता था। किंतु यह कोई तर्कपूर्ण एवं विश्वसनीय सिद्धांत नहीं दे सका जिससे यह पता चलता कि ग्रह मंडल प्रणाली कैसे कार्य करती है।

आर्यभट्ट (476 ई.) गुप्त काल के महान खगोलशास्त्री थे। उन्होंने ग्रह मंडल की गति के सिद्धांत को इस रूप में प्रस्तुत किया जो अधिक विश्वसनीय था तथा समस्याओं का समाधान कर सकता था। उन्होंने सूर्य, चंद्र तथा ग्रहों की गति का अध्ययन करके अपने सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उनका यह पक्का विश्वास था कि पृथ्वी घूमती है और आकाश स्थिर है। उन्होंने ग्रहण लगने का वैज्ञानिक कारण बताया जो इस प्रचलित धारणा के बिलकुल विपरीत था कि "राहु" और "केतु" के कारण ग्रहण लगता है।

त्रिकोणमितीय तालिकाएँ बनाने का श्रेय आर्यभट्ट को जाता है। उन्होंने त्रिकोणमितीय तालिकाओं को ज्यामितीय ढंग से परिकलित (compute) किया और ज्या (sine) तथा कोज्या (cosine) के मानों का प्रयोग अपनी खगोल वैज्ञानिक गणनाओं में किया। इसके अलावा उन्होंने गणितीय तथा ज्यामितीय श्रेणियों (series) के योग के लिए सूत्र बनाये और Σn^2 तथा Σn^3 जैसी श्रेणियों का योग निकाला।

आर्यभट्ट के बाद वराहमिहिर आये (जन्म 505 ई.)। उन्होंने अपने ग्रंथ, बृहतसंहिता में आर्यभट्ट एवं उनसे पहले के खगोल विज्ञान संबंधी निष्कर्षों को संकलित किया। वराहमिहिर के साथ समस्या यह थी कि उन्होंने ज्योतिष का स्तर बढ़ाकर उसे वैज्ञानिक खगोल-विज्ञान के स्तर पर लाने का प्रयास किया। यह इसलिए संभव हुआ क्योंकि नियम बनाने वाले ब्राह्मणों ने उन पर ऐसा करने के लिए दबाव डाला। वराहमिहिर भी ब्राह्मण थे और राज-दरबार में कार्य करते थे। खगोल-विज्ञान पर अपना काम जारी रख सकने के लिए यह जरूरी था कि वे पुरोहितों और राजा का समर्थन प्राप्त करें। उनकी स्थिति शायद दयनीय थी और उन्हें विज्ञान की आवश्यकताओं और ऋषियों के आदेशों के साथ समझौता करना पड़ता था। कारण यह था कि ऋषियों के वचन सत्य एवं न टाले जा सकने वाले समझे जाते थे। अतः उन्होंने ज्योतिष को अपने खगोल विज्ञान संबंधी शोध प्रबंध के तीन प्रमुख घटकों में से एक के रूप में शामिल किया। जहाँ वे एक ओर अपनी जीविका चलाने के लिए राजाओं और राजकुमारों की जन्म कुंडलियाँ बनाते थे, वहीं दूसरी ओर अपनी वैज्ञानिक प्रतिभा का प्रदर्शन करते।

उदाहरण के तौर पर दो ग्रहणों के स्वरूप की चर्चा के बाद उस समय प्रचलित मत के अनुसार तथा अत्यंत वैज्ञानिक आधार पर उन्होंने उन लोगों के प्रति शिकायत की जो इस विषय में नहीं जानते थे। उन्होंने कहा कि आम आदमी हमेशा ही यह कहता आ रहा है कि ग्रहण का कारण राहु है। यदि राहु नहीं दिखाई देता और ग्रहण नहीं लगता तो उस समय ब्राह्मण लोग अनिवार्यतः स्नान नहीं करते।

एक ओर तो जहाँ लोगों को वराहमिहिर से सहानुभूति हो सकती है क्योंकि उन्हें बहुत ही तनाव व कुंठा झेलनी पड़ी वहाँ दूसरी ओर उन्होंने प्राकृतिक घटनाओं को परावैज्ञानिक और अवैज्ञानिक के मेल से व्यक्त करने की परिपाटी चलायी। इससे संभवतः आर्यभट्ट के बाद भारतीय खगोल विज्ञान की उल्लेखनीय प्रगति रुक गयी। क्योंकि शताब्दी बीतने पर भी स्वयं खगोल शास्त्रियों को ही राहु-केतु के सिद्धांत से ग्रहण की स्थिति को स्पष्ट करने में कोई आपत्ति नहीं होती थी। ब्रह्मगुप्त ने (जन्म 598 ई.) जो एक महान् वैज्ञानिक थे, अपने ब्रह्मस्फुत सिद्धांत में घोषणा की कि "कुछ लोग सोचते हैं कि ग्रहण का कारण राहु नहीं है। किंतु यह एक गलत धारणा है क्योंकि वस्तुतः यह राहु ही है जो ग्रहण लगाता है। वेद जो कि ब्रह्मा के मुख से निकले भगवान के ही शब्द हैं, यही बताते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्होंने यह कथन इस बात की पूरी जानकारी के साथ दिया था कि ये आर्यभट्ट,वराहमिहिर तथा श्रीसेन के वैज्ञानिक सिद्धांतों के विरुद्ध जा रहे थे। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि यदि राहु आदि काल्पनिक माने जाते हैं, जैसा कि आर्यभट्ट और वराहमिहिर ने किया था तो उन्हें स्वर्गिक सुखों से वंचित होना पड़ेगा और यह सामान्यतः स्वीकृत धार्मिक सिद्धांत के बाहर हो जाएगा और इसकी कतई अनुमति नहीं हैं"।

हम पाते हैं कि विज्ञान तथा अ-विज्ञान की यह मिलावट जो भारतीय खगोल शास्त्रियों ने आर्यभट्ट के बाद शुरू की, उसके फलस्वरूप भारतीय खगोल विज्ञान के सामने मानो चुनौती नहीं रही। खगोल विज्ञान के स्थान पर ज्योतिष-शास्त्र हावी होने लगा। जो दुनिया में सबसे शक्तिशाली वैज्ञानिक विचारधारा थी, वह राजनीति एवं धर्मान्धता का शिकार बन गयी। जब हम आर्यभट्ट के सुझाव कि पृथ्वी घूमती है और ग्रह स्थिर है पर विचार करते हैं तो यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है। अथर्ववेद ने कर्मकांडो का सहारा लेकर कहा कि पृथ्वी स्थिर थी और जो इस कथन के विरुद्ध गया वह विधर्मी था। आधुनिक ऐतिहासिक अनुसंधान से यह ज़ाहिर होता है कि सभी खगोलशास्त्रियों ने या तो आर्यभट्ट के उपर्युक्त कथन को एकदम नज़रअंदाज़ कर दिया या फिर इसका जानबूझकर गलत अर्थ निकाला। वे अपने ब्राह्मण आचार्यों को यह दिखाना चाहते थे कि वे सच्चे हिंदू हैं जो वेदों में पूर्ण विश्वास करते हैं तथा विश्व को भूकेंद्रिक (geocentric)मानते है। कुछ मतों के अनुसार तो यहाँ तक संभावना है कि सूर्यकेंद्रीय परिकल्पना को मिटा देने के लिए पाण्डुलिपियों में भी जानबूझकर रद्दोबदल किया गया है।

बोध प्रश्न 5

नीचे दी गयी तालिका में कॉलम 1 में कुछ खगोलशास्त्रियों के नाम दिये गये हैं तथा कॉलम 2 में उनके द्वारा दिये कथन हैं। कौन सा कथन किस खगोलशास्त्री से संबंधित है, बताइए।

कॉलम 1	कॉलम 2
क) आर्यभट्ट	i) ग्रहण राहु और केतु द्वारा लगते हैं।
ख) वराहमिहिर	ii) पृथ्वी घूमती है तथा आकाश स्थिर है।
ग) ब्रह्मगुप्त	iii) पृथ्वी स्थिर है तथा सूर्य, चंद्र तथा ग्रह इसके चारों ओर घूमते हैं।
	iv) ग्रहण चंद्रमा पर पृथ्वी की छाया पड़ने के कारण लगता है।

भारतीय विज्ञान का गौरवशाली अध्याय हमेशा के लिये लुप्त नहीं हुआ था हालांकि गुप्त साम्राज्य के ह्रास के बाद इसका पतन आरंभ हो गया, जिसका अब हम संक्षेप में वर्णन करेंगे।

4.3.3 गुप्त साम्राज्य का पतन

ईसा की पांचवी शताब्दी के उत्तरार्ध तक, गुप्त साम्राज्य काफ़ी कमज़ोर हो गया था। हूणों ने उत्तर की ओर से आक्रमण करके न केवल पंजाब और राजस्थान पर अधिकार कर लिया बल्कि पूर्वी मालवा तथा मध्य भारत के भी बड़े भू-भाग पर अपना कब्ज़ा कर लिया था। हूणों के शिलालेख मध्य भारत में प्राप्त हुए हैं। गुप्त राजा जिन राज्यपालों को शासन करने के लिए नियुक्त करते थे, वे प्रायः स्वतंत्र होते थे। ईसा की छठी शताब्दी के शुरू तक उन्होंने अपने अधिकार से ही भूमि के रूप में अनुदान देना शुरू कर दिया। पश्चिमी भारत हाथ से निकल जाने पर व्यापार और वाणिज्य से प्राप्त होने वाला राजस्व गुप्त राजाओं को मिलना बंद हो गया। इससे सेना पर होने वाले खर्च तथा धार्मिक आदि कार्यों के लिए धन की कमी हो रही थी और धार्मिक साधन भी काफ़ी कम हो गये थे। जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था टूटने लगी, वैसे-वैसे शिल्पकला और अन्य वस्तुओं की माँग भी तेज़ी से घटती गयी। नतीजा यह निकला कि कई कुशल कारीगरों ने जीविका चलाने के लिए दूसरे व्यापार अपना लिये। 473 ई. में गुजरात से मालवा को रेशम के बुनकरों का जाना एक ऐसा ही उदाहरण है।

इस प्रकार आंतरिक तथा बाह्य दोनों कारण (जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है) मिल गये और उससे गुप्त साम्राज्य का पतन आरंभ हो गया। टुकड़ों में बँटा यह साम्राज्य अब विज्ञान की प्रगति के लिए सामाजिक एवं बौद्धिक आधार प्रदान करने में असमर्थ हो गया। गुप्त साम्राज्य के पतन से भारतीय समाज अशांति और संघर्ष के एक लंबे दौर से गुजरने लगा। एक मात्र अपवाद दक्षिण भारत का चोल साम्राज्य था, जहाँ तकनीकी और शिल्प एक बार फिर गुप्त साम्राज्य की ही तरह फलने-फूलने लगे। अब हम आपको संक्षेप में बताएँगे कि भारत में इस्लाम के आने तक यहाँ क्या स्थिति थी।

4.4 संघर्ष का युग

750 ई. से 1000 ई. की अवधि में उत्तर-पूर्व में पाल साम्राज्य, उत्तर पश्चिम में प्रतिहार साम्राज्य तथा दक्षिण में राष्ट्रकूटों के बीच अधिकार जमाने के लिए संघर्ष चल रहा था। ये समय-समय पर उत्तर तथा दक्षिण भारत के क्षेत्रों पर भी नियंत्रण करते रहे। नवीं शताब्दी तक, चोल राजाओं ने पल्लवों, चालुक्यों, पांड्यों तथा राष्ट्रकूटों को हराकर दक्षिण भारत में अपनी शक्ति मजबूत कर ली थी।

उत्तर भारत में यह काल ठहराव और पतन का काल था। रोमन तथा ससेनियन साम्राज्यों के साथ भारत का व्यापार काफ़ी समृद्धशाली एवं लाभप्रद था। किंतु इन साम्राज्यों के पतन के कारण देश के व्यापार तथा वाणिज्य को गहरा धक्का लगा। इससे साम्राज्य के अंदर कई छोटे-मोटे रजवाड़े सिर उठाने लगे जो हमेशा अपने को स्वतंत्र घोषित करने की ताक में रहते थे। इन रजवाड़ों ने एक ऐसी अर्थव्यवस्था को जन्म दिया जिसमें ग्राम-समूह आत्मनिर्भर हो गये और इस प्रकार व्यापार को बढ़ावा नहीं मिला।

सासनिद वंश ने पर्शिया साम्राज्य (वर्तमान ईरान) पर सन् 227-637 ई. तक शासन किया।

इसके अलावा जाति-पाँति की प्रथा ने फिर से जड़े जमा लीं, जिसमें ब्राह्मणों के विशेषाधिकारों को तरजीह दी जाती थी तथा शूद्रों को धार्मिक तथा सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया था कुम्हार, बुनकर, सुनार, संगीतज्ञ, नाई, सड़क बनाने वाले तथा इसी प्रकार का अन्य कार्य करने वालों को छोटी जाति का समझा जाता था। बौद्धिक धरातल पर जो भी कोशिश होती उसका

उद्देश्य इस सुदृढ़ जाति-प्रथा को सही सिद्ध करना और उसे बरकरार रखना था। महिलाओं की सामाजिक स्थिति में भी गिरावट आ गयी। उन्हें बौद्धिक दृष्टि से कमज़ोर माना गया तथा वेदों के अध्ययन के अधिकार उन्हें नहीं दिये गये। वैदिक काल में जहाँ लड़कियों की विवाह योग्य आयु 16 वर्ष या 17 वर्ष रखी गयी थी, वहाँ इसे घटाकर 6 से 8 वर्ष कर दिया गया। इस प्रकार उनके व्यक्तिगत विकास का अवसर छीन लिया गया।

किंतु सामान्य रूप से पतन की इस अवस्था में लोगों द्वारा कुछ अच्छे प्रयत्न भी किये गये। आर्यभट्ट- II (लगभग 950 ई.) ने खगोल एवं गणित-शास्त्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। भास्कर-II (1114 ई.) ने अपना प्रसिद्ध गणित-शास्त्र एवं खगोल विज्ञान संबंधी ग्रंथ "सिद्धांत-शिरोमणि" लिखा जो चार खंडों में हैं। उन खंडों के नाम लीलावती, बीजगणित, गणिताध्याय तथा गोलाध्याय हैं (चित्र 4.14)

(२०४) लीलावती ।

न्यासः–मूले पिण्डः २० अग्रे पिण्डः १६ दैर्घ्यम् १०० पिण्डयोगः ३६ पिण्डयोगदलम् १८ दैर्घ्येण १०० संगुणितं जातम् १८०० दारुदारणपथे ४ गुणितं ७२०० पट्टस्वरेषु ५७६ विहृतं जातं करात्मकं गणितं १२$\frac{1}{2}$ ॥

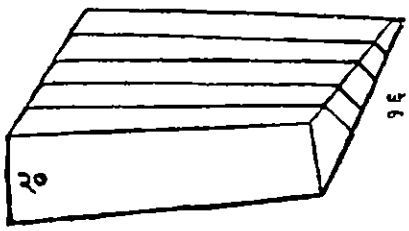

चित्र 4.14 लीलावती के एक पृष्ठ का आधुनिक पुनर्निर्माण जिसमें एक सूत्र दिया गया है। एक लकड़ी के खंड को यदि चार जगहों पर काटा जाएँ तो सभी अनुप्रस्थ काट के कुल क्षेत्रफल की गणना इस सूत्र के द्वारा की जा सकती है।

इसके साथ ही प्राचीन भारत में विज्ञान के विकास की कहानी हम समाप्त करते हैं। यदि आप इस प्रगति के बारे में और जानकारी प्राप्त करना चाहते हों तो आप इस खंड के अंत में बतायी गयी पुस्तकों का अध्ययन कर सकते हैं।

4.5 सारांश

इस इकाई में हमने पढ़ा कि ई.पू. चौथी शताब्दी तक भारत में एक केंद्रीयकृत शक्तिशाली राज्य बन गया था। इस राज्य को न केवल कृषि के लिए भूमि की ज़रूरत थी बल्कि उन तौर-तरीकों की भी ज़रूरत थी जिनसे कृषि की पैदावार में सुधार लाया जा सकता था। उन्हें कृषि के औज़ार बनाने के लिए खनिज साधन-स्रोतों की ज़रूरत तो थी ही, साथ ही साम्राज्य को सुदृढ़ बनाने के लिए रखी जाने वाली सेना के लिए शस्त्र बनाने की भी आवश्यकता थी। इस प्रक्रिया में उन्होंने आदिवासियों को अपने अधीन कर लिया तथा उनकी भूमि पर अपना अधिकार कर लिया। भूमि जीतने और साधन-स्रोतों का अच्छी तरह उपयोग करने के लिए भी उन्हें इन आदिवासियों की मदद की ज़रूरत थी। इसके लिए उन्होंने इन आदिवासियों को अपने साथ मिला लिया और एक नये सांस्कृतिक मेल-जोल की प्रक्रिया आरंभ हुई, जिससे सामाजिक संबंधों में लचीलापन आ गया।

इस काल में बौद्ध तथा जैन धर्मों का उदय हुआ और उनके साथ उनका उदारवादी दर्शन और विचारधारा आई।

इन सबने मिलकर मौर्य साम्राज्य में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास को एक नयी [illegible] विभिन्न तकनीकों एवं शिल्पकलाओं में महत्वपूर्ण प्रगति हुई। अशोक के शासनकाल [illegible] मौर्य साम्राज्य का पतन हो गया।

पहली शती ई.पू. से लेकर दूसरी शती तक का काल दक्षिण भारत में [illegible] के उत्कर्ष का काल था।

- गुप्त काल में केंद्रीय राज्य के स्थान पर स्थानीय प्रशासन आ गया जो अधिक लचीला था। शिल्पकारों तथा व्यापारियों की अपनी अलग-अलग संस्थाएँ थीं और स्थानीय प्रशासन में उनके प्रतिनिधि थे। गुप्त काल में राजा ब्राह्मणों को बड़े पैमाने पर भूमि दान में दिया करते थे, जिसके फलस्वरूप पुरोहित ज़मींदारों का एक नया वर्ग सामने आया। इन सामाजिक बदलावों के कारण स्थानीय स्तर पर पहल करने की प्रवृत्ति पैदा हुई। एक ओर इस प्रक्रिया में कृषि की पैदावार में वृद्धि करने तथा नये शिल्पों एवं तकनीकों को आरंभ करने के लिए प्रोत्साहन तो मिला, किंतु दूसरी ओर स्थानीय आदिवासी किसानों का दर्ज़ा और घट गया।
- गणितशास्त्र और खगोल विज्ञान की महत्वपूर्ण प्रगति हुई जैसा कि आर्यभट्ट जैसे गणितज्ञों एवं खगोलशास्त्र के ग्रंथों से पता चलता है। गुप्तकालीन शिल्पकारों ने लोहे तथा काँस्य में अपनी शिल्पकारी से अपने लिए अलग स्थान बना लिया था। दिल्ली के महरौली नामक स्थान में लगभग 400 ई. के आसपास बना लौह स्तंभ उनकी प्रौद्योगिकी की निपुणता का जीता-जागता सबूत है।
- गुप्त साम्राज्य के पतन के साथ, विज्ञान के विकास में रुकावट आ गयी। इसके बाद, केवल थोड़ी ही प्रगति हो सकी; वह भी व्यक्तिगत प्रयासों के कारण।

4.6 अंत में कुछ प्रश्न

तीन या चार पंक्तियों में संक्षिप्त उत्तर दीजिए।

1) मौर्य तथा गुप्त कालों में राज्य के सामाजिक-राजनीतिक संगठनों के बीच क्या अंतर था?

.....

.....

.....

.....

2) भारत में किस अवैज्ञानिक प्रथा के कारण खगोल विज्ञान का ह्रास हुआ?

.....

.....

.....

.....

3) गुप्त-काल के बाद भारतीय समाज की किन बातों के कारण विज्ञान का पतन हुआ?

.....

.....

.....

.....

4.7 उत्तर

बोध प्रश्न

1) (i), (ii), (iii), (iv), (vi)

2) क) सड़कें बनाना
   ख) हल चलाकर कृषि-कार्य तथा सिंचाई के अनेक साधन
   ग) अनाज की भूसी निकालने, कपास और ऊन की धुनाई तथा सूत की कताई आदि की प्रौद्योगिकी।
   घ) धातु-विज्ञान और धातु-कार्य

3) क) i) राज्य के नियंत्रण में काफ़ी ढील दी गई और व्यक्तिगत पहल को प्रोत्साहित किया जाता था।

ii) वंश की अपेक्षा व्यक्ति की संपत्ति तथा समाज में उसका कार्य अधिक महत्वपूर्ण हो गया था।

iii) कृषि तथा शिल्पकला की वस्तुओं के उत्पादन को महत्व देने के कारण किसान और शूद्र जैसे मेहनतकश मज़दूरों की स्थिति में सुधार हुआ।

ख) (ii), (iii), (v), (vii)

) 10,248, नव-स्वर-गुण-भूत

) क) (ii), (iv)
ख) (iii), (iv)
ग) (i), (iii)

ंत में कुछ प्रश्न

) मौर्य काल में राज्य की शक्ति केंद्रीय थी जबकि गुप्त काल में राज्य का कठोर नियंत्रण कम हो गया और व्यक्तिगत रूप से पहल करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया गया।

) ज्योतिषशास्त्र को खगोल विज्ञान के बराबर स्तर का मानने की अवैज्ञानिक प्रथा।

) i) छोटे-मोटे रजवाड़ों का उदय जिन्होंने आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन दिया तथा व्यापार को हतोत्साहित किया।

ii) जाति-प्रथा सख्त हो गयी और उसने अपनी जड़े जमा लीं।
(आप इस उत्तर को और आगे बढ़ा सकते हैं।)

शब्दावली

अंतरिक्ष युग : ऐसा युग जिसमें अंतरिक्ष के बारे में ज्ञान अर्जित करके मानव जाति के हित में उसका उपयोग किया जाए।
अगेट : गोमेद पत्थर जो आभूषण बनाने के काम आता है।
अर्थशास्त्र : वह शास्त्र जिसमें उत्पादन, वितरण, उपभोग एवं आर्थिक ढाँचे का अध्ययन किया जाता है।
अध्यात्मवादी : आत्मा-परमात्मा संबंधी विचारों को मानने वाला।
अनार्य : आर्य जाति से भिन्न जातियों के लोग।
अपकेंद्रीय बल : केंद्र से बाहर कार्य करने वाला बल।
अयस्क : कच्ची धातु का स्रोत जिससे रासायनिक क्रिया द्वारा धातु को अलग किया जाता है।
अयस्क अपचयन : धातु ऑक्साइडों जैसे अयस्कों को कोयले के साथ जलाकर उनका परिवर्तन करना।
आदि मानव : प्राचीन काल में जंगलों में रहने वाला मनुष्य।
आदिम समाज : समाज की वह प्रारंभिक स्थिति जब मनुष्य ने मिलकर रहना शुरू किया।
आयुर्वेदिक पद्धति : जड़ी-बूटियों द्वारा रोगों का निदान करने की विधि।
आर्य : मनुष्यों की वह प्राचीन भारतीय जाति जो ईसा के हज़ारों वर्ष पहले से सभ्यता के लिए प्रसिद्ध है।
उत्तोलक : माप-तोल का यंत्र।
उपनिवेश : किसी साम्राज्य द्वारा अपने आर्थिक एवं राजनीतिक विकास के लिए किसी अन्य राज्य को अपने अधीन करना।
उपनिवेशवादी : वे शासक जो उपनिवेश में विश्वास रखते हों।
ऊर्जा : किसी कार्य को करने में इस्तेमाल होने वाली शक्ति।
ऋग्वैदिक काल : ऋग्वेद का रचनाकाल (1500-700 ई.पू.)
ओनिक्स : एक प्रकार का कीमती पत्थर।
औद्योगिक युग : वह युग जिसमें उद्योगों का उद्भव और विकास हुआ।
कबीला : कुल, वंश, जाति, व्यक्ति विशेष को नेता मानने वाला जनसमूह।
किण्वन : खमीर तैयार करने की विधि।
खगोल विज्ञान : अंतरिक्ष से सम्बंधित विज्ञान।
खरोष्ठी : एक प्राचीन लिपि जो, फ़ारसी की तरह दायें से बायें की ओर लिखी जाती थी।
चंद्र पंचांग : चंद्रमा के घटने-बढ़ने पर आधारित तिथियों का कलेंडर
चिकित्सा विज्ञान : रोगों के लक्षण जानने और उनके निदान की जानकारी देने वाली शिक्षा।
टोटेम : जनजातीय समूहों के वंश चिह्न।
टोटेमवादी : जनजातीय समूहों के वंश चिह्नों को कायम रखने में विश्वास करने वाला।
तंत्रिका : तंत्रिका उद्दीपन को शरीर के सभी भागों से मस्तिष्क तक ले जाने और ले आने का कार्य करती है।
दार्शनिक : किसी भी विषय पर गूढ़ चिंतन करने वाला, दर्शनशास्त्र को जानने वाला, तत्ववेत्ता।
धमनी : हृदय से रक्त को शरीर के अन्य भागों में ले जाने वाली रक्त नलिका।
धार्मिक अधिरचना : अपने अधिकार क्षेत्र में धर्म के स्वरूप को निश्चित करना।
नगरीकरण : शहर बनने की प्रक्रिया।
नाभिकीय युद्ध : परमाणु अस्त्रों द्वारा होने वाला युद्ध।
परमाणु युग : वह युग जिसमें नाभिकीय ऊर्जा का इस्तेमाल जीवन के अधिकांश क्षेत्रों में होने लगा।
परमाणु शास्त्री : नाभिकीय शिक्षा में दक्ष विद्वान्।
पीलिया : एक रोग जिसमें यकृत (जिगर) में विकार उत्पन्न हो जाता है जिससे शरीर व आँखें पीली पड़ जाती हैं और रोगी को पीले रंग का पेशाब होता है।
प्रेक्षण : गहराई से अवलोकन या निरीक्षण करना।
बूमरेंग : लकड़ी का एक डंडेनुमा अस्त्र।
ब्राह्मी : भारतवर्ष की वह प्राचीन लिपि जिससे नागरी, बंगला आदि आधुनिक लिपियाँ निकली हैं।
भौगोलिक परिस्थितियाँ : पृथ्वी के स्वरूप, जलवायु, उपज, एवं आबादी से संबंधित परिस्थितियाँ।
मधुमेह : एक प्रकार का रोग, जिसमें शर्करा उत्सर्जित या मूत्र के साथ बाहर आती है।

मल द्वार का नाड़ी व्रण : मल द्वार पर कष्टदायक व्रण या घाव जिससे कभी-कभी रक्त-स्राव भी हो सकता है।
मात्रात्मक विज्ञान : वह विज्ञान जो मापन के बारे में ज्ञान कराता है।
मिथक : पौराणिक कथा।
मिश्रधातु : रासायनिक क्रिया द्वारा दो धातुओं को मिलाकर एक धातु बना देना।
यजुर्वेदिक काल : यजुर्वेद का रचनाकाल (700-400 ई.पू.)
यांत्रिकी : मशीन से कार्य करने की विधि।
राहु और केतु : ज्योतिष शास्त्रों द्वारा बताये गये ग्रह।
वनस्पति विज्ञान : वह विज्ञान जिसमें पेड़-पौधों का अध्ययन किया जाता है।
वुशमैन : झाड़ियों में रहने वाली प्राचीन मानव जाति।
शरीरक्रिया विज्ञान : वह विज्ञान जिसमें शरीर में होने वाली चयापचयी रासायनिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।
शरीर रचना विज्ञान : वह विज्ञान जिसमें शरीर की आंतरिक रचना का अध्ययन किया जाता है।
शल्य चिकित्सा : चीर-फाड़ द्वारा रोगों का निदान करने वाली चिकित्सा पद्धति।
शिरा : शरीर के अन्य हिस्सों से रक्त को इकट्ठा करके हृदय में लाने वाली रक्त नलिका।
शिला प्रक्षेपक : शिला को एक स्थान से दूसरे स्थान तक सरकाने वाला।
संकेंद्रित गोले : एक केंद्र पर आधारित अनेक गोले।
संवेदी : बाह्य-आंतरिक प्रभाव के उद्दीपन को मस्तिष्क तक पहुँचाने वाली नसें।
सामंतशाही : वह व्यवस्था जिसमें बड़े ज़मींदार जनता से लगान वसूल करके राजा को 'कर' देते थे।
सीता भूमि : वह उपजाऊ ज़मीन जिसकी जुताई-बुआई सीधे राज्य की देख-रेख में होती थी।
स्लेज : बर्फ़ पर चलने वाली गाड़ी जिसे कुत्तों द्वारा खींचा जाता है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1 प्राचीन भारत, कक्षा 11 के लिए इतिहास की पाठ्य पुस्तक, एन.सी.ई.आर.टी., 1988
2 सभ्यता की कहानी, भाग-1 कक्षा IX-X के लिए अर्जुन देव, एन.सी.ई.आर.टी., 1986
3 सभ्यता की कहानी, भाग-2 कक्षा X के लिए अर्जुन देव, एन.सी.ई.आर.टी., 1986

NOTES

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGFST - 01
विज्ञान और प्रौद्योगिकी में आधार पाठ्यक्रम

खंड

2
आधुनिक विज्ञान का उद्भव

इकाई 5
मध्य युग में विज्ञान 5

इकाई 6
पुनर्जागरण, औद्योगिक क्रान्ति और उसके बाद 26

इकाई 7
औपनिवेशिक तथा आधुनिक भारत में विज्ञान 49

इकाई 8
वैज्ञानिक पद्धति और विज्ञान का विशिष्ट स्वरूप 65

खण्ड 2 आधुनिक विज्ञान का उद्भव

खंड-1 में आपने मानव समाज के उद्भव से लेकर लौह युग तक के एक लंबे दौर में विज्ञान के इतिहास के बारे में पढ़ा। ये सभी बातें हमने विज्ञान से संबंधित एक विशेष सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में बतायी जिसके बारे में आपने इकाई-1 में पढ़ा। हमने यह समझाने की कोशिश की, कि उस युग में विज्ञान और समाज ने एक दूसरे को कैसे प्रभावित किया। हम इस खंड में भी यह कहानी जारी रखेंगे और आधुनिक विज्ञान के उद्भव का वर्णन करेंगे।

आधुनिक विज्ञान के आधार को हम यूरोपीय समाज में पंद्रहवीं सदी के मध्य में हुए क्रांतिकारी परिवर्तनों में खोज सकते हैं। इन परिवर्तनों के कारण अंधकार-युग की अज्ञानता और निराशा समाप्त हो गई और ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हुईं जिनसे विज्ञान तथा उसके उपयोग के बारे में एकदम नया दृष्टिकोण सामने आया। इस परिवर्तन को "वैज्ञानिक और औद्योगिक क्रांति" कहा गया है। लेकिन हम इस खंड की शुरुआत, विज्ञान के अरबों की देन से कर रहे हैं क्योंकि उन्होंने प्राचीन युग की वैज्ञानिक परम्पराओं को जीवित रखा और उन्हें यूरोपवासियों और भारतीयों तक पहुँचाया। कई क्षेत्रों में उन्होंने पहली बार आधुनिक विज्ञान से संबद्ध तर्कसंगत और प्रायोगिक पद्धति का भी उपयोग किया।

इस खंड में हम भारत में मध्य, औपनिवेशिक और आधुनिक युगों में हुई विज्ञान की प्रगति के बारे में बताएँगे और यह समझने की कोशिश करेंगे कि सोलहवीं सदी के बाद भारत वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक प्रयासों में यूरोप से क्यों पिछड़ गया। आज के युग में हम पाते हैं कि समाज में विज्ञान का स्वरूप बहुत जटिल हो गया है। दरअसल विज्ञान का यह स्वरूप बीसवीं सदी में ही बना है। इस सदी में विज्ञान के क्षेत्र में जितना काम हुआ है उतना अभी तक की तमाम सदियों में भी नहीं हुआ था। आज विज्ञान का अपना अलग ज्ञान भंडार है और अपनी विशिष्ट पद्धति है। अगर हम समाज के संदर्भ में आधुनिक विज्ञान को समझना चाहते हैं और विज्ञान को अपने समाज में पूरी तरह से विकसित करके उसका इस्तेमाल करना चाहते हैं तो हमें वैज्ञानिक पद्धति और विज्ञान के विशिष्ट स्वरूप को अच्छी तरह से जानना होगा। इस खंड के इकाई 8 में हम आपको विज्ञान के इन्हीं दो पहलुओं के बारे में बताएँगे। इस खंड को पढ़ते समय आप खंड-1 के उद्देश्य ध्यान में रखें, साथ ही उन उद्देश्यों को मध्य और आधुनिक युग पर भी लागू करें। यानी कि इस खंड को पढ़ने के बाद आप

- मध्य और आधुनिक युग में विज्ञान और तकनीकी के विकास को समझ सकेंगे,
- इस काल में विज्ञान और समाज के आपसी संबंध को और इस संदर्भ में आधुनिक विज्ञान के उद्भव को समझ सकेंगे,
- वैज्ञानिक पद्धति का महत्व समझ सकेंगे और समस्याओं को सुलझाने में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना सकेंगे,
- यह समझ सकेंगे कि विज्ञान वस्तुपरक, सदा विकसित होने वाला, कभी भी पूरा न होने वाला और हठधर्मिता को न मानने वाला सुनियोजित ज्ञान का भंडार है जो बदलाव के लिए तैयार रहता है,
- वैज्ञानिक पद्धति तथा उसके उपयोगों पर आधारित एक वीडियो प्रोग्राम 'वैज्ञानिक पद्धति', का वीडियो-कैसेट आपके अध्ययन केंद्र में उपलब्ध है। यह प्रोग्राम देखना आपके लिए लाभदायक होगा।

इकाई 5 मध्ययुग में विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
5.2 अरब पुनर्जागरण (रेनांसा) अरब विज्ञान
अरब संस्कृति तथा विज्ञान का पतन
5.3 मध्ययुगीन भारत में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी
विज्ञान की उपलब्धियाँ
तकनीकी नवीनताएँ तथा आविष्कार
5.4 भारत में विज्ञान की प्रगति में बाधाएँ
5.5 सारांश
5.6 अंत में कुछ प्रश्न
5.7 उत्तर

5.1 प्रस्तावना

आपने इकाई 3 में पढ़ा कि रोम साम्राज्य के पतन के बाद लगभग 500 वर्षों तक विज्ञान का विकास अधिकतर पूर्वी देशों में हुआ। आपने इकाई 4 में यह भी पढ़ा कि चौथी शताब्दी ई.पू. से पांचवी सदी ईस्वी तक का समय भारत में महान् सांस्कृतिक चेतना का युग था। गुप्त साम्राज्य (320-480 ई०) में भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की खूब उन्नति हुई। किंतु छठी शताब्दी तक भारतीय समाज एक बार फिर जाति प्रथा और धार्मिक रूढ़ियों के पंजे में फंस गया। धीरे-धीरे कठोर सामाजिक संरचना, प्रबल हठधर्मिता और पतन की ओर जा रहे साम्राज्यों के कारण भारतीय समाज में निष्क्रियता आ गयी। इस प्रक्रिया में विज्ञान की प्रगति भी धीमी पड़ गयी।

इस बीच तीसरी और सातवीं शताब्दी ईस्वी के दौरान यूरोप में ईसाई धर्म का उदय हुआ। अपनी प्रारंभिक अवस्था में, ईसाई धर्म के साथ लोकतांत्रिक परंपराएँ जुड़ी थीं और यह बहुत लोकप्रिय था। किंतु, शीघ्र ही रोमन साम्राज्य ने ईसाई चर्चों को अपने अधिकार में ले लिया तथा स्वयं ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। इसके फलस्वरूप, जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे, यूरोप में विज्ञान की प्रगति रुक गयी। जहाँ एक ओर प्राचीन भारतीय तथा रोमन संस्कृतियाँ खत्म हो रही थीं, वहीं दूसरी ओर विश्व की कई संस्कृतियाँ विकसित हो रही थीं। सातवीं शताब्दी में इस्लाम के आ जाने से अरब संस्कृति और विज्ञान को ज़बर्दस्त प्रोत्साहन मिला। यद्यपि इस्लामी संस्कृति का ग्यारहवीं शताब्दी तक पतन शुरू हो चुका था, तथापि इस्लामी विज्ञान व्यर्थ नहीं गया। ग्यारहवीं शताब्दी में जब भारत में इस्लाम धर्म का प्रवेश हुआ, तो ज्ञान का एक अथाह स्रोत भारत के पास आ गया। इस घटना ने मध्ययुगीन भारत में भारतीय विज्ञान को एक प्रकार से नया मोड़ दिया।

इस इकाई में हम लगभग सातवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी के अंत तक विज्ञान के इतिहास की चर्चा करेंगे। हम पहले ईसाई धर्म के इतिहास पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे और तब देखेंगे कि अरब पुनर्जागरण काल और इस्लाम धर्म के आगमन ने अरब विज्ञान के विकास में क्या भूमिका निभायी। हम मध्ययुगीन भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास पर भी ध्यान केंद्रित करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- विज्ञान के क्षेत्र में अरबों के योगदान के बारे में बता सकेंगे;
- मध्ययुगीन भारत में विज्ञान के विकास के स्तर का विवरण देकर उसका मूल्यांकन कर सकेंगे; और
- उन कारणों का विश्लेषण कर सकेंगे जिनसे मध्ययुगीन भारत में विज्ञान की प्रगति में रुकावट आयी।

5.2 अरब पुनर्जागरण (रेनांसा)

हमने इकाई 3 में देखा कि दूसरी शताब्दी के अंत तक रोम साम्राज्य का पतन आरंभ हो गया। इसके पास बहुत बड़ी सेना थी जिससे अर्थव्यवस्था पर बहुत भार पड़ रहा था। उत्पादन में कमी के फलस्वरूप भारी कर लगने शुरू हो गए थे। परिणामस्वरूप सामाजिक ढाँचा अत्यत शोषणपरक हो गया था।

यह कहना काफी ठीक है कि रोमन साम्राज्य के गुलामों और आम जनता के कष्टों और प्रतिरोध के कारण इसाई धर्म का आगमन हुआ। यह कोई संयोग की बात नहीं है कि यह प्रतिरोध पहले यहूदियों में पैदा हुआ जो सर्वाधिक पीड़ित थे। उनके मन में यह भावना इतनी प्रबल थी कि उन्होंने इस दुनिया की शक्तियों के साथ कोई भी समझौता करने से इन्कार कर दिया। ईसाई धर्म की लोकप्रियता इसके मूल में निहित विनम्रता, सहिष्णुता की भावना के साथ-साथ इस अटल निश्चय में थी कि अत्याचारी तथा भ्रष्ट समाज के साथ इनका कोई वास्ता नहीं होगा। इसके फलस्वरूप इन पर धार्मिक अत्याचार हुए जिनसे इन्हें और भी शक्ति और साहस प्राप्त हुआ। ईसाई धर्म सभी लोगों में तेज़ी से फैलता गया। शीघ्र ही यह केवल निम्न वर्ग तक ही सीमित नहीं रह गया। इसके उपदेशों पर उस समय की सामाजिक विचारधारा का प्रभाव पड़ा। कुछ ही शताब्दियों में चर्च ने स्वयं धर्मान्धता एवं हठधर्मिता का शासन स्थापित किया और राज्य के शासन में भागीदार हो गया। छठी शताब्दी तक रोमन साम्राज्य की पूर्वी सीमा पर बसे लोग ईसाई धर्म को विदेशी शत्रुतापूर्ण और अत्याचारी शासक के रूप में मानने लगे।

किन्तु हम पाते हैं कि इन नकारात्मक कारणों में शीघ्र ही एक सकारात्मक कारण भी जुड़ गया। सातवीं शताब्दी में एक नये धर्म 'इस्लाम' का उदय और उसका प्रचार एवं प्रसार हुआ। इस्लाम ने उन सभी विशेषताओं को शामिल किया जो ईसाई धर्म के बहुत नज़दीक और अनुकूल थीं। अपने विश्वबंधुत्व के संदेश, सादे किन्तु सख्त व्यक्तिगत आचरण तथा इसमें विश्वास रखने वाले अनुयायियों के लिए स्वर्ग की निश्चित आशा के साथ यह जल्द ही लोकप्रिय हो गया और इसे जनता का समर्थन मिल गया। इस्लाम का संदेश लेकर सीरिया और ईरान से भूमध्य सागर तक फैले प्रदेश पर विजय की आशा में आये अरबों को स्थानीय जनता से प्रायः बहुत कम प्रतिरोध का सामना करना पड़ता था।

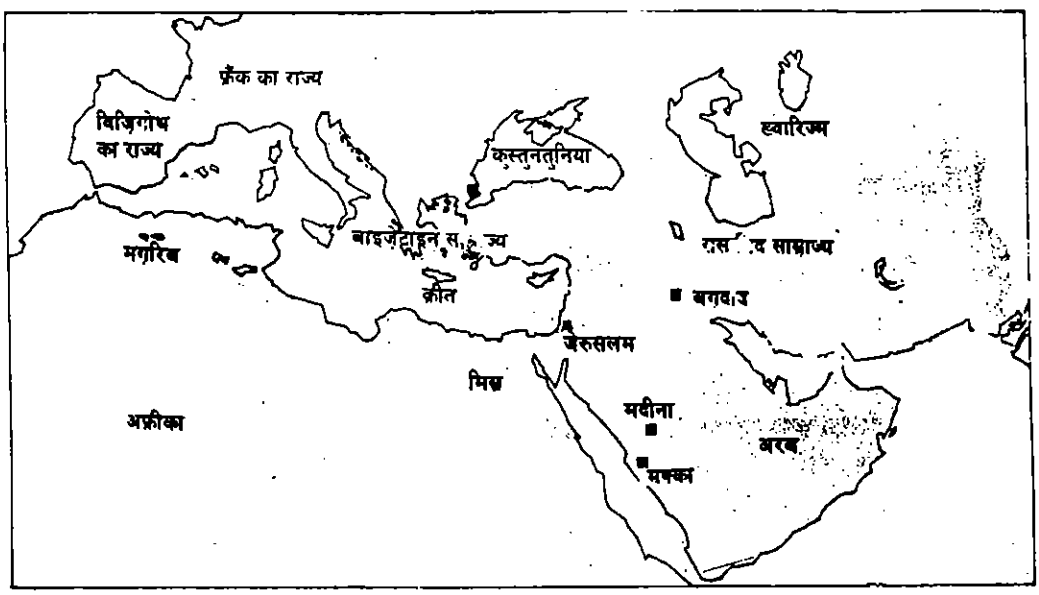

चित्र 5.1 : सन् 750 ई. तक इस्लाम का विस्तार

शीघ्र ही स्पेन से भारत तक फैले बहुत बड़े भू-भाग पर इस्लाम का प्रभाव हो गया (चित्र 5.1)। इस प्रकार बड़े पैमाने पर व्यापार तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान का मार्ग प्रशस्त हो गया। फलते-फूलते व्यापार के कारण वस्तुओं की माँग बढ़ गयी इससे इस्पात, कागज,

रेशम और चीनी मिट्टी (Porcelain) आदि बनाने की नयी तकनीकों के आविष्कार को प्रोत्साहन मिला। इस समय तक ईसाई धर्म को पतनोन्मुख मानकर भ्रष्टाचारी साम्राज्य के रूप में देखा जाने लगा। इसलिए रोमन साम्राज्य के पूर्वी तथा अफ्रीकी भागों के विद्वान और बुद्धिजीवी फ़ारस जाने लगे, क्योंकि तब तक फ़ारस, शिक्षा तथा विद्वता का नया केन्द्र बनता जा रहा था। ये लोग अधिकांशतः अपधर्मी (दूसरे धर्म के लोग) थे इसलिए रूढ़िवादी साम्राज्य के अधीन उन पर जो धार्मिक अत्याचार किए जाते थे उनसे वे मुस्लिम ख़लीफ़ाओं के संरक्षण में सुरक्षित एवं मुक्त थे। 431 ई. में सीरियाई साधु नेस्टर और उसके अनुयायियों को दण्डित किया गया क्योंकि उन्होंने ईसाई धर्मांधता को चुनौती दी थी। वे भाग कर फ़ारस चले गये जहाँ सासानिद राजाओं द्वारा सशक्त संस्कृति को बढ़ावा दिया जा रहा था। उसी प्रकार चर्च के दबाव में ऐलेग्ज़ैंड्रिया के साधु "यूटीचेस" (378-454 ई.) एवं उनके अनुयायियों को मिस्र से भाग कर फ़ारस में शरण लेनी पड़ी। उन लोगों विद्वानों ने गणित शास्त्र एवं खगोल विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अगले भाग में हम यह बताएँगे कि अरब विज्ञान कैसे विकसित हुआ। हम यह भी देखेंगे कि अरबों ने विज्ञान के क्षेत्र में क्या योगदान दिया।

5.2.1 अरब विज्ञान

अरब केंद्रित इस नयी सभ्यता के बारे में महत्वपूर्ण बात यह थी कि वे, अपनी नयी और सशक्त संस्कृति के संदर्भ में, यूनानी शास्त्रीय वैज्ञानिक तथा दार्शनिक परंपराओं की जाँच करने और उन्हें समझने के लिए इच्छुक थे।

अल-मंसूर, अल-मामून, हारुन-अल-रशीद, अल-मुतावाहकिल, अब्बासिद वंश के मुस्लिम ख़लीफ़ा थे। अबीस वंश ने पर्शिया पर सन् 754 से सन् 861 ई. तक शासन किया।

ऐसा इसलिए संभव हुआ क्योंकि रोमन साम्राज्य के प्रसार के साथ-साथ तमाम लिखित दस्तावेज़ उनके पास पहुँचने लगे थे। इसके अलावा, उनके मन में प्राचीन परंपराओं का उत्तराधिकारी होने की प्रबल भावना थी। उन्होंने ज्ञान के भंडार को यूनानी मूल ग्रंथों में ढूँढा। इन्होंने इन लिखित दस्तावेज़ों का अनुवाद किया, उनका मनन किया और फिर उन्हें और आगे विकसित किया। ख़लीफ़ा अल-मामून ने एक अनुवाद ब्यूरो की स्थापना की जिसका नाम दारयेल हिख़मा था। वहाँ महान् विद्वान हुनेन इब्न ईशाक तथा थाबित-इब्न-खुर्रा ने अरस्तू और टॉलमी तथा अन्य बड़े एवं महान यूनानी विद्वानों के अधिकांश ग्रंथों का अरबी में अनुवाद किया। ये विद्वान महान् ख़लीफ़ाओं के संरक्षण में फले-फूले। अल-मंसूर, हारुन अल-रशीद, अल-मामून तथा अल-मुतावाहकिल ऐसे ही ख़लीफ़ा थे। उन्होंने भारतीय औषधि विज्ञान, शल्य चिकित्सा विज्ञान तथा खगोल शास्त्रीय कृतियों का भी अनुवाद किया। अनेक व्यापारी, पर्यटक तथा विद्वान, भारत, यूनान तथा चीन जैसे सुदूर देशों की यात्राएँ करते और वहाँ के विज्ञान की जानकारी लाते। अल बेरूनी (973-1048 ई.) एक ऐसे ही विद्वान थे जो भारत आये।

यह बात दिलचस्प और उल्लेखनीय है कि अरब विद्वानों ने केवल वैज्ञानिक एवं दार्शनिक ग्रंथों को ही अनुवाद के लिए चुना, इतिहास, नाटक या कला को नहीं। शताब्दियों बाद जब यूरोप ने सुरक्षित अरबी ज्ञान के इस भंडार को खोज निकाला तो उन्हें सभी प्राचीन सभ्यताओं के विज्ञान और दर्शन का खजाना प्राप्त हुआ। पर सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी के लिए उन्हें फिर ग्रीक और लेटिन के मूल ग्रंथ देखने पड़े। इस प्रकार विज्ञान तथा मानविकी ने अलग-अलग धाराओं से आधुनिक परंपराओं में प्रवेश किया। संभवतः ज्ञान के इन क्षेत्रों के बीच जो अंतर है, वह कुछ सीमा तक इससे स्पष्ट हो जाता है।

भूमि तथा समुद्री मार्ग से फलते-फूलते व्यापार के अलावा, अरबी विज्ञान की प्रगति का एक कारण यह था कि यह उस भाषा में लिखा जाता था जिसे राजा तथा गुलाम, दोनों ही समान रूप से समझते थे। इसने आम शिल्पकारों एवं विद्वानों के बीच एक सुदृढ़ संपर्क सूत्र स्थापित कर दिया, ऐसा संपर्क सूत्र जो विज्ञान के विकास के लिए प्रेरणा प्रदान करने में कभी असफल नहीं होता।

अरब विज्ञान ने यूनानी विज्ञान की परंपरा को आगे बढ़ाया और साथ ही अन्य सभ्यताओं के विज्ञान को भी अपनाया। फिर भी ऐसा लगता है कि अरब वैज्ञानिकों को इस पारंपरिक विज्ञान में फेरबदल करके उसे बेहतर बनाने की कोई विशेष इच्छा नहीं थी। अरब वैज्ञानिक ग्रंथों में हमें तर्क-वितर्क के दर्शन होते हैं जो प्रायः आधुनिक विज्ञान की विशेषताएँ हैं। किन्तु रहस्यवाद एवं यूनानी विज्ञान और प्रमुख विद्वानों जैसे अरस्तू आदि के प्रति अत्यधिक सम्मान

की भावना इनके मार्ग में बाधक बन गयी। विज्ञान के मुख्य स्तंभ खगोल शास्त्र एवं औषधि विज्ञान थे। इन दोनों को एक सूत्र में बाँधने का काम ज्योतिष ने किया। ज्योतिष चाँद-तारों और ग्रहों की विशाल दुनिया को मनुष्य के अंदर की छोटी-सी दुनिया से जोड़ने का काम करता था। अर्थात् अरब विज्ञान में तर्क के साथ-साथ ज्योतिष की अवैज्ञानिक परंपरा भी जुड़ी रही। हम यहाँ पूर्णतया स्पष्ट करना चाहेंगे कि अल-किंदी, अल-रज़ी, इब्न सीना तथा अल-बरूनी आदि ने ज्योतिष शास्त्र और कीमियागिरी के दावों को मानने से साफ़ तौर पर इंकार कर दिया था।

हमने अब तक अरब विज्ञान की कुछ सामान्य विशेषताओं का वर्णन किया है। शायद आप इनके आधार पर एक बोध प्रश्न का उत्तर देना चाहें।

बोध प्रश्न 1

कॉलम 2 में दिये गये विभिन्न कारणों में से कौन से ऐसे कारण हैं, जिनसे अरब विज्ञान की प्रगति में सहायता मिली अथवा उसमें बाधा पहुँची। उन कथनों के बीच एक लाइन खींचकर निर्देशित कीजिए जो कॉलम 1 तथा 2 में एक दूसरे से मेल खाते हैं।

कॉलम 1	कॉलम 2
क) वे विशेषताएँ जिन्होंने अरब विज्ञान के विकास में सहायता दी।	i) अरब वैज्ञानिक यूनान, भारत तथा चीन की शास्त्रीय संस्कृतियों की सर्वोत्तम वैज्ञानिक परंपराओं को अपनाने के इच्छुक थे। ii) उनमें यूनानी ग्रंथों के प्रति ज़रूरत से ज़्यादा सम्मान था।
ख) अरब विज्ञान की प्रगति में बाधक तत्त्व।	iii) अरबों ने इन सभी देशों की व्यापक रूप से यात्रा की तथा वहाँ से ज्ञान का भंडार अपने साथ ले आये। iv) अरब विज्ञान की भाषा को राजा तथा आम जनता, दोनों समान रूप से समझ सकते थे। v) वे ज्योतिष शास्त्र, कीमियागिरी तथा रहस्यवाद के प्रभाव से पूरी तरह बच नहीं पाये। vi) अरबों का वैज्ञानिक विचारधारा को व्यक्त करने का ढंग तर्क पर आधारित था।

अब हम खगोल शास्त्र, गणित शास्त्र, औषधि विज्ञान, प्रकाश विज्ञान तथा रसायन शास्त्र जैसे विज्ञान के कुछ क्षेत्रों में अरबों द्वारा दिये गये महत्वपूर्ण योगदान के बारे में संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

खगोल विज्ञान तथा गणित शास्त्र

अरबों ने खगोल विज्ञान में यूनानी परंपरा को आगे बढ़ाया। उन्होंने टॉलमी के 'अल्माजेस्ट' का अनुवाद किया और सामने आने वाली धार्मिक रुकावटों के बावजूद अरबी खगोल विज्ञान के प्रेक्षण करते रहे। यद्यपि उन्होंने यूनानी तरीकों में कोई खास वृद्धि नहीं की, फिर भी उन्होंने जो निरंतरता बनाये रखी वह सोहलवीं सदी के खगोल वैज्ञानिकों के लिए अमूल्य सिद्ध हुई।

खगोल विज्ञान की वृद्धि से गणित की भी वृद्धि हुई। गणित में अरब विद्वानों ने भारत की दशमलव संख्या प्रणाली अपनाई और बड़े पैमाने पर उसका इस्तेमाल शुरू किया। यहाँ तक कि गोदामों के कार्यकर्त्ता और व्यापारी भी अपने रोज़ के काम-काज में इन अंकों का इस्तेमाल करने लगे। इस संख्या प्रणाली के बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किए जाने से बहुत-सी

पेचीदा गणनाएँ आसान हो गयीं। इसका गणित को सरल और सामान्य बनाने में वैसा ही असर हुआ जैसा लिखने पर वर्णमाला का हुआ था। अरबों ने बीजगणित और त्रिकोणमिति के हिन्दुस्तानी ग्रंथों का अनुवाद किया और उनका इस्तेमाल अपनी अनेक दैनिक समस्याओं को सुलझाने के लिए किया।

भूगोल

हमने देखा कि अरब महान् पर्यटक थे। अरब विद्वान रूस, मध्य अफ्रीका, भारत तथा चीन तक गये थे। उन्होंने अपनी यात्राओं के सुनियोजित और तार्किक ब्यौरे दिये हैं और नकशे तथा चार्ट बनाये हैं। उनका भूगोल न केवल विवरणात्मक था बल्कि उन्हें आकार और पैमाने का भी कुछ अनुमान था। इस प्रकार उन्होंने एशिया और उत्तरी अफ्रीका के आधुनिक भूगोल की आधारशिला रखी (चित्र 5.2)।

चित्र 5.2 : अरबों द्वारा बनाया गया विश्व मानचित्र।

वैज्ञानिक रसायन शास्त्र

अरबी हकीमों, इत्र बेचने वालों तथा धातु कर्मियों ने रसायन शास्त्र के क्षेत्र में महान् योगदान दिया। इसका मुख्य कारण यह था कि अरब विद्वान औषधियों, लवणों तथा बहुमूल्य धातुओं पर प्रयोगशालाओं में प्रयोग करने में कभी नहीं हिचकिचाते थे। जबकि उससे पहले के यूनानी विद्वान ऐसा नहीं करते थे। अरबों ने मिस्र तथा बेबीलोन की परंपराओं को जारी रखा तथा भारतीय एवं चीनी स्रोतों से व्यापक जानकारी प्राप्त की। इन सबमें उन्होंने अपना मूल्यवान योगदान दिया जिसके फलस्वरूप वैज्ञानिक रसायन शास्त्र के प्रथम विवरण प्राप्त हुए।

अरबों ने पहले से उपलब्ध आसवन उपकरणों में बड़े सुधार किये और उनका उपयोग इत्र बनाने के लिए बड़े पैमाने पर किया। उन्होंने सोडा, फिटकरी (अलम), कसीस (लौह-सल्फेट के रूप में), शोरा (नाइटर), तथा अन्य लवणों का बड़े पैमाने पर उत्पादन शुरू किया। इन लवणों का निर्यात किया जाता था और इनका इस्तेमाल विशेषकर वस्त्र उद्योग में होता था। एक ओर उन्होंने नई तकनीकों में दक्षता प्राप्त की, और दूसरी ओर उन्होंने उन रासायनिक क्रियाओं की तह में पहुँचने की कोशिश की जिससे इन तकनीकों का विकास संभव हुआ। अरबी रसायन शास्त्रियों ने परस्पर क्रिया में भाग लेने वाले दो घटकों की ऋणात्मक तथा धनात्मक प्रकृति का भी निर्धारण किया। पहली बार रासायनिक रूपांतरण पर तर्कपूर्ण ढंग से काम किया गया, जिससे आधुनिक रसायन शास्त्र की नींव पड़ी।

चिकित्सा शास्त्र

अरबों ने चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र में भी यूनानी परंपरा को जारी रखा, लेकिन उन्होंने नये रोगों और औषधियों की जानकारी को बढ़ाया। यह इस्लाम के भौगोलिक विस्तार के कारण संभव हुआ।

चिकित्सकों ने, जो न केवल मुस्लिम थे बल्कि यहूदी भी थे, कई प्रकार के रोगों का अध्ययन किया। उन्होंने स्वास्थ्य पर जलवायु, स्वच्छता तथा खान-पान के प्रभावों का अध्ययन किया। उन्होंने पाक शास्त्र की व्यावहारिक कला पर भी ध्यान दिया।

चित्र 5.3 : अलबरूनी की किताब से लिया गया सिज़ेरियन सेक्शन का सबसे पुराना चित्रण

प्रकाश विज्ञान

रेगिस्तानी तथा उष्ण-कटिबंधीय देशों में आँखों के रोगों की अधिकता के कारण अरबी चिकित्सकों ने आँखों के रोगों का अध्ययन किया। आँखों की शल्य-चिकित्सा के कारण आँखों की बनावट के अध्ययन में दिलचस्पी शुरू हुई जिससे अरबी चिकित्सकों को "डाय-आप्ट्रिक्स" की वास्तविक जानकारी पहली बार मिली। "डाय-आप्ट्रिक्स" प्रकाश विज्ञान की ही एक शाखा है जो लेंस या काँच जैसे पारदर्शी वस्तुओं से गुज़रने वाले प्रकाश के ज्ञान से संबंधित है। इसने आधुनिक प्रकाश विज्ञान की नींव डाली। आँखों के लेंस के सामने क्रिस्टल अथवा काँच के लेंसों का इस्तेमाल करने से वस्तुएँ बड़ी दिखायी पड़ती थीं और लोगों को पढ़ने में आसानी होती थी। खासकर बड़े-बूढ़े लोगों के लिए। इब्न-अल-हैथम (लगभग 1038 ई.) का "प्रकाश विज्ञान कोश" इस विषय पर लिखी गई पहली पुस्तक थी।

बोध प्रश्न 2

निम्नलिखित में से विज्ञान के क्षेत्र में तीन कौन-सी ऐसी घटनाएँ हैं जिनमें अरबों का योगदान है? सही कथनों पर(√) निशान लगाएँ।

क) संख्या-प्रणाली के प्रयोग को बहुत लोकप्रिय बनाया गया।
ख) बारूद की खोज की गयी।
ग) रसायन शास्त्र पर पहली बार तर्कसंगत ढंग से विचार किया गया। लवणों का बड़े पैमाने पर उत्पादन किया गया।
घ) सौर-प्रणाली का सूर्यकेंद्रित नमूना प्रस्तुत किया गया।
ड.) प्रकाश विज्ञान पर सर्वप्रथम वैज्ञानिक ढंग से कार्य किया गया।

ऊपर बतायी गयी कुछ प्रमुख घटनाएँ अरब विज्ञान की सीमाओं तथा उसके महत्व को दर्शाती हैं। बाद में रोमन साम्राज्य के हाथों यूनानी विज्ञान दयनीय अवस्था में पहुँच गया था। अरबों ने उसका उद्धार किया। उन्होंने एक जीवंत तथा प्रगतिशील विज्ञान की बुनियाद रखी। उन्होंने यूनानी गणित शास्त्र, खगोल विज्ञान तथा चिकित्सा विज्ञान को बड़े पैमाने पर फैलाया और उसके लिए उन्होंने फ़ारस, भारत तथा चीन के अनुभवों से लाभ उठाया। इसके अलावा उन्होंने बीजगणित और त्रिकोणमिति की तकनीकें विकसित की तथा प्रकाश विज्ञान और वैज्ञानिक रसायन शास्त्र की नींव डाली। ये विकास कार्य ग्यारहवीं शताब्दी तक जारी रहे। इसके बाद अरब विज्ञान का स्वर्ण युग समाप्त हो गया। हालांकि एवरोस (लगभग 12वीं शताब्दी) इब्न खलदून (लगभग 14वीं शताब्दी) जैसे प्रतिभा संपन्न वैज्ञानिक हुए किन्तु व्यापक आधार वाला यह जीवन्त अभियान अब नहीं रहा। अब हम उन कारणों का विश्लेषण करेंगे जिनकी वजह से अरब संस्कृति का पतन हुआ और साथ ही अरब विज्ञान का भी ह्रास हुआ।

5.2.2 अरब संस्कृति तथा विज्ञान का पतन

आरंभ में विज्ञान का राजाओं, धनी व्यापारियों तथा अभिजात्य वर्ग के साथ जुड़ना बहुत लाभप्रद रहा। परंतु आखिर में यही अरब संस्कृति और विज्ञान की कमज़ोरी सिद्ध हुई। इसके संरक्षण से विज्ञान के विभिन्न पहलुओं जैसे अनुवाद, प्रेक्षण, प्रयोग तथा विचार करने के अवसर प्राप्त हुए। लेकिन इससे अरब विज्ञान आम जनता से दूर हो गया। जनता ने यह सन्देह करना शुरू कर दिया कि विशिष्ट वर्ग के विज्ञान सलाहकार कोई अच्छा काम नहीं कर रहे हैं। इससे आम आदमी आसानी से धार्मिक कट्टरता का शिकार हो गया। इसी संपर्क से विज्ञान का भाग्य राज्यों की शक्ति के साथ बंध कर रह गया। ग्यारहवीं शताब्दी के बाद बाइज़ेनटाइन और इस्लामी साम्राज्य (देखिए चित्र 5.1) आंतरिक रूप से टूटने लगे और अपनी सैन्य तथा आर्थिक आवश्यकताओं के लिए स्थानीय राजाओं पर ज़्यादा से ज़्यादा निर्भर रहने लगे। जिहाद (धर्मयुद्ध) के समय तक (ग्यारहवीं से तेरहवीं शताब्दी के बीच) साम्राज्य स्थानीय सामंतशाही जागीरों में बँट गया, जहाँ किसानों और शिल्पकारों पर निर्दयतापूर्वक दमनचक्र चलाया जाता था। इसके कारण उद्योग संबंधी बाज़ार और नई खोज करने वाली विज्ञान की आवश्यकता का नाश हो गया। पतन तथा ठहराव की इस अवस्था में स्टेपि प्रदेश से नये क्रूर लोग आए। उन्होंने अरब भूमि को रौंद डाला और उनकी संस्कृति का पूरी तरह से गला घोंट दिया।

चर्चों के पुनरुत्थान तथा गहन आन्तरिक धर्मान्धता के कारण विभिन्न यूरोपीय राजाओं के नेतृत्व में 7 धर्मयुद्ध हुए जिनका उद्देश्य अन्य शासकों को अपने अधीन करना तथा ईसाई धर्म के प्रभावों को बढ़ाना था।

अरब विज्ञान की महत्ता इस तथ्य में है कि वह शास्त्रीय काल और आधुनिक विज्ञान के उदय में यूनान, भारत तथा कुछ सीमा तक चीन में होने वाले विकास कार्यों के बीच महत्वपूर्ण संपर्क बनाने में सहायक सिद्ध हुई। जैसा कि हम जानते हैं, आधुनिक विज्ञान का जन्म यूरोप के पुनर्जागरण काल के बाद सोलहवीं शताब्दी में हुआ। पुनर्जागरण काल ने अरबों से प्राप्त शास्त्रीय विज्ञान को क्रांतिकारी ढंग से विकसित किया। इस प्रकार एक नये युग की शुरुआत हुई जिसमें विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की भूमिका प्रमुख थी। ऐसी भूमिका विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ने पहले कभी अदा नहीं की थी। हम इसके बारे में आपको इकाई 6 में बताएंगे।

5.3 मध्ययुगीन भारत में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी

अब हम अपना ध्यान इस ओर देंगे कि मध्ययुग में भारत में क्या कुछ हो रहा था। जैसा कि आपने भाग 5.2.1 में पढ़ा था कि अलबरूनी (973-1048 ई.) ने एक कोने से दूसरे कोने तक भारत की यात्रा की। उन्होंने भारत के लोगों के सामाजिक जीवन, राजनैतिक प्रणाली और धार्मिक विश्वासों का गहराई से अध्ययन किया था। हमें उनके लेखों से भारत के बारे में पर्याप्त सूचना मिलती है। अपने लेखों में उन्होंने ग्यारहवीं शताब्दी के आरंभिक दशक में भारत में हुई वैज्ञानिक प्रगति के स्तर के बारे में विस्तृत विवरण दिया है। उनकी पुस्तकों में भारतीय विज्ञान के क्षेत्र में हुई आरंभिक उन्नति का विवरण भी दिया गया है।

उदाहरण के तौर पर, उन्होंने खगोल विज्ञान के क्षेत्र में भारतीय योगदान का वर्णन किया है और आर्यभट्ट, वराहमिहिर तथा ब्रह्मगुप्त के ग्रंथों का भी वर्णन किया है, जिनके बारे में आप इकाई 4 में भी पढ़ चुके हैं। अलबरूनी के अनुसार, भारतीयों ने कन्नौज, थानेसर तथा श्रीनगर (कश्मीर) जैसे स्थानों के अक्षांशों की संगणना करने का प्रयास किया था (देखिए चित्र 5.4)। देशांतरों की संगणना विभिन्न स्थानों के ग्रहणों के समय के आधार पर की गयी, जैसा कि टॉलमी ने पहले सुझाया था। उनका मुख्य शिरोबिंदु उज्जैन से होकर गुज़रता था।

अलबरूनी बताते हैं कि पदार्थ (matter) के बारे में भारतीय विचारधारा यूनानी विचारधारा से मिलती-जुलती थी। इस विषय में आप भाग 3.4 में पढ़ चुके हैं। अलबरूनी के अनुसार भारतीयों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान दशमलव प्रणाली के प्रयोग में था। जिन संख्यात्मक चिह्नों का प्रयोग भारतीय करते थे, वे अरबी और आज की अंतर्राष्ट्रीय संख्याओं के स्रोत हैं।

अलबरूनी का विवरण मात्र चीजों (स्थितियों) का यथातथ्य वर्णन नहीं था। उन्होंने यह भी विश्लेषण करने का प्रयास किया कि उनका कारण क्या था? उन्होंने महसूस किया कि भारतीय विज्ञान का पतन आरंभ हो चुका था। उन्हें खेद था कि उनके समय में किसी नये

विज्ञान अथवा किसी नये किस्म के अनुसंधान का होना असंभव था। और अब विज्ञान के नाम पर जो शेष रह गया था, वह और कुछ नहीं बल्कि बीते हुए युग के छुटपुट अवशेष थे। उन्होंने उसका कारण विद्वानों के लिए किसी संरक्षण का न होना बताया। प्रसंगवश, यह सब इस ओर संकेत करता है कि भारतीय विज्ञान विशिष्ट वर्ग तक सीमित था। यह उन लोगों तक ही सीमित था जो विज्ञान को मात्र एक बौद्धिक अभ्यास के रूप में अपनाते थे। भारत में विज्ञान का आम आदमी के साथ अथवा उत्पादन की प्रक्रिया से संबंध खत्म हो चुका था। किंतु इस्लाम के भारत में आने के साथ स्थिति में कुछ परिवर्तन आया।

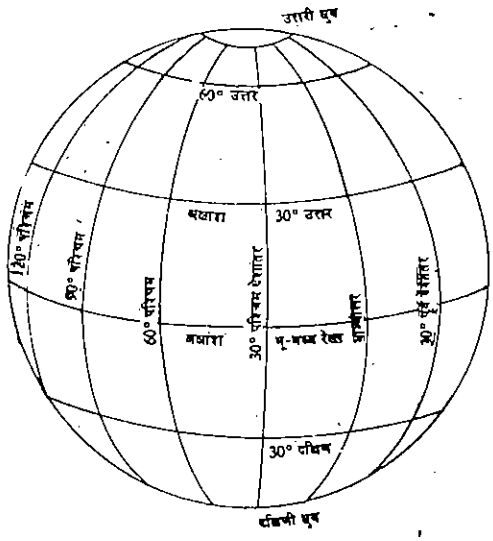

चित्र 5.4 : पृथ्वी के ध्रुवों से गुज़रने वाले काल्पनिक वृत्त को याम्योत्तर वृत्त कहते हैं जो इसे दो बराबर भागों में बाँटता है। बराबर दूरी पर स्थित 12 ऐसे याम्योत्तर वृत्त पृथ्वी को 24 भागों में बाँटते हैं और हर वृत्त ध्रुवों से होकर गुज़रता है। प्रत्येक वृत्त अपने साथ के दूसरे वृत्त से 15° का कोण बनाता है। अंतर्राष्ट्रीय समझौते के अनुसार प्रथम या मुख्य याम्योत्तर वृत्त इंग्लैण्ड में ग्रीनविच से होकर गुज़रता है। मुख्य याम्योत्तर और पृथ्वी पर किसी बिंदु से गुज़रने वाले याम्योत्तर के बीच बनने वाले दो कोणों में से छोटे कोण को उस स्थान का देशांतर (longitude) कहते हैं। किसी भी स्थान के देशांतर को ग्रीनविच के पूर्व या पश्चिम की ओर, जहाँ भी छोटा कोण बने, नापा जाता है। ग्लोब पर भूमध्य रेखा के समानान्तर खींची गयी रेखायें अक्षांश कहलाती हैं। भूमध्य रेखा के उत्तर या दक्षिण में किसी भी स्थान पर अक्षांश के कोण बनते हैं। पृथ्वी पर किसी भी स्थान की स्थिति उसके अक्षांश और देशांतर के द्वारा बतायी जाती है।

इस्लाम भारत में उस समय आया जब इस्लामी सभ्यता की बौद्धिक प्रबलता का दौर प्रायः समाप्त हो रहा था। अलगज़ली के रहस्यवाद के साथ ही, तार्किक दर्शन-शास्त्र के प्रति कड़े प्रतिरोध की भावना विकसित हो चुकी थी। तथापि, अरबों के पास जो ज्ञान का भंडार था, वह उन्हें यूनानी सभ्यता, चीन, तथा भारत, जैसे देशों के सर्वोत्कृष्ट विज्ञान से विरासत के रूप में प्राप्त हुआ था। साथ ही, इसमें व्यापक अरब सभ्यता के अंदर जो नवीनताएँ थीं, वे भी शामिल की गयीं। ज्ञान का वह संपूर्ण भंडार भारत की अपनी धरोहर बन गया; विशेषकर इसलिए कि दिल्ली सुल्तानशाही की स्थापना के बाद भारतीय विद्वानों ने फ़ारसी और अरबी भाषाएँ सीखीं। इसने मध्ययुगीन भारत में विज्ञान के विकास को काफ़ी हद तक प्रभावित किया।

5.3.1 विज्ञान की उपलब्धियाँ

भारतीय विज्ञान और नये आने वाले लोगों द्वारा लाये गये विज्ञान के बीच आपसी संपर्क कुछ समय तक ही सीमित रहा। फिर भी खगोल विज्ञान तथा औषधि विज्ञान को दिल्ली सल्तनत के साथ-साथ मुगल सम्राटों और उनके अभिजात वर्ग से भी बढ़ावा मिला। अब हम आपको बतायेंगे कि मध्ययुगीन भारत में विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में क्या प्रगति हुई।

खगोल विज्ञान तथा भौतिकी विज्ञान

खगोल विज्ञान का इस्तेमाल न केवल कैलेण्डर (पंचांग) बनाने, ग्रहण की तारीखें बताने, समय-निर्धारण करने बल्कि ज्योतिष-शास्त्र के साथ-साथ अन्य कार्यों के लिए भी किया गया। खगोल विज्ञान की आवश्यकता मक्का की दशा निर्धारित करने के लिए भी पड़ी, जिससे मस्जिदों का निर्माण करते समय उन्हें समुचित रूप से उसी सीध में लाया जा सके।

हम पाते हैं कि फिरोजशाह तुगलक (1351-88) ने एक वेधशाला बनवाई जिसमें खास तरह के उपकरण जैसे उन्नतांशमापी (एस्ट्रोलेब) तथा जल-घड़ी आदि लगाये गये (चित्र 5.5)। खगोल विज्ञान में शासकों की दिलचस्पी मुगल काल में भी बनी रही। हुमायूँ के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने अनेक खगोल वैज्ञानिकों को नियुक्त किया और उनकी सहायता से खगोल वैज्ञानिक प्रेक्षण करने का प्रयास किया।

सत्रहवीं शताब्दी में भारत में बनाये गये एस्ट्रोलेब धातु कर्मियों तथा काष्ठकारों के साथ-साथ गणितीय कलाओं की उपलब्धियाँ थीं। इसके साथ ही उन्हें वृत्तीय श्रेणीकरण करने की भी काफ़ी जानकारी थी जिसका प्रभाव हर तरह के मापों (ऐस्ट्रोलेब के गोलों पर बने क्रमबद्ध माप) पर पड़ा।

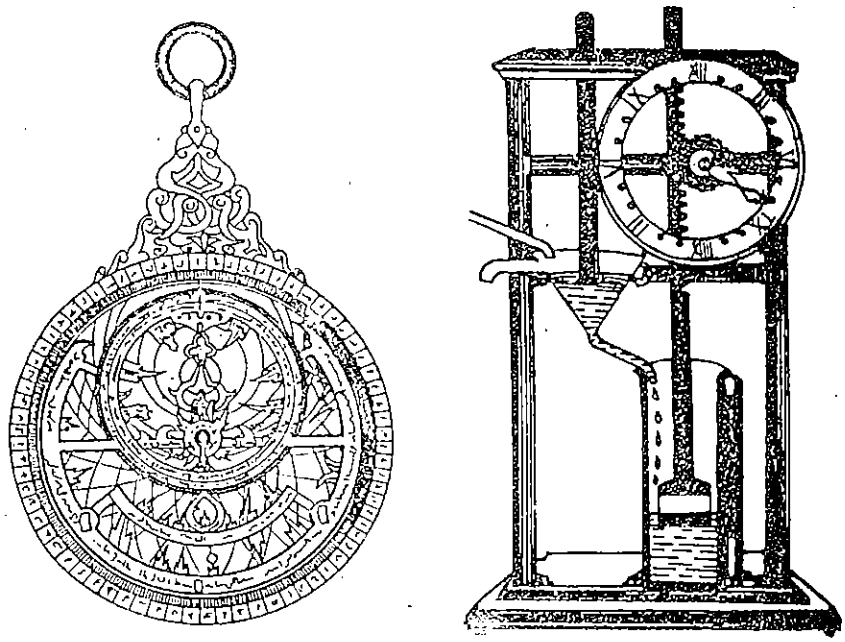

(क) (ख)

चित्र 5.5. : (क) ऐस्ट्रोलेब : गोलाकार एस्ट्रोलेब का अंकित किनारा। यह ऐस्ट्रोलेब छोटे आकार का है और धातु की चकरी, जिसका व्यास 4" से 8" तक होता है, से बना है।
(ख) जल घड़ी : जैसे-जैसे पानी सिलेंडर में बहता है, तिरोंदा ऊपर उठने लगता है, जिसके कारण संकेतक सुई डायल (अंक पट) पर समय दर्शाने लगती है।

इस क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण प्रयास अठारहवीं सदी के आरंभ में किया गया। राजा जय सिंह ने सम्राट मुहम्मद शाह के आश्रय में अनेक स्थानों पर वेधशालाएँ (observatories) बनवायीं, जैसे दिल्ली (चित्र 5.6), जयपुर, उज्जैन, बनारस तथा मथुरा। उन्होंने प्रेक्षण किये जाने वाले उपकरणों पर विशेष ध्यान दिया। यह भी उल्लेखनीय है कि उन्होंने बहुत बड़े आकार के प्रेक्षण-उपकरण बनाये जो समय ज्ञात करने और अक्षांशों का निर्धारण करने में इस्तेमाल किये जाते थे। इन उपकरणों की सहायता से उन्होंने खगोल विज्ञान संबंधी शुद्ध तालिकाएँ बनायीं, पंचांग में सुधार किये और ग्रहण लगने का पूर्वानुमान लगाया।

राजा जयसिंह की खगोल विज्ञान संबंधी तालिकाएँ जिनका नाम "जिज़-ऐ-मुहम्मद शाही" था, जिज़ी-उलुग बेग (1394-1449) नामक पुस्तक से हू ब हू ग्रहण की गयी है। किंतु इनकी संगणनाएँ और आँकड़े उनसे भिन्न थे। फिर भी उस समय में खगोल विज्ञान के सिद्धांतों में टॉलमी की प्रणाली से आगे कोई प्रगति नहीं हुई। वास्तव में, ज्योतिष शास्त्रीय कार्य और जन्मपत्रियाँ बनाना विज्ञान की प्रगति के रास्ते में बाधक बन गये।

अबुल फ़ज़ल (d. 1603) ने शास्त्रीय स्रोतों के आधार पर यह भी दिखाया है कि उन्हें आपेक्षिक घनत्व तथा गति के नियमों की जानकारी थी। यह उनकी पुस्तक आइने-अकबरी जो 1595 में पूरी हुई, के एक पूरे अध्याय में इन विषयों पर दिए गए विवरण से पता चलता है। इसमें इन्होंने आर्कीमिडीज़ के सिद्धांत की अपनी पूरी समझ का परिचय दिया है और यह दिखाया है कि हवा में तथा पानी में वस्तुओं के भार में क्या अंतर होता है। उन्होंने विभिन्न पदार्थों में आणविक व्यवस्था (क्रम) की समस्या का समाधान प्रस्तुत करने की कोशिश की

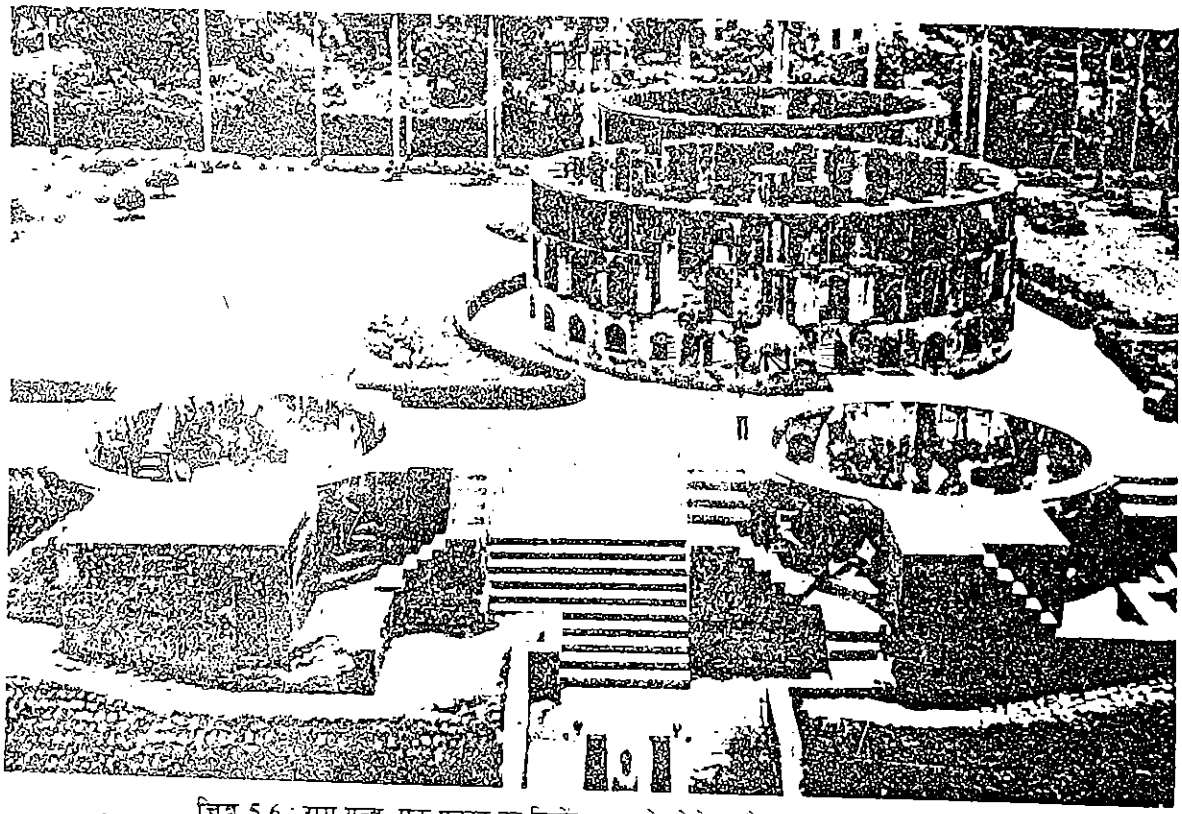

चित्र 5.6 : राम यन्त्र, एक प्रकार का सिलेंडरनुमा ऐस्ट्रोलेब और जय प्रकाश (दायीं ओर नीचे),जंतर-मंतर, दिल्ली।

तथा इसका संबंध आपेक्षिक घनत्व से जोड़ा। उन्होंने अलबरूनी की पुस्तक में से विभिन्न धातुओं और बहुमूल्य पत्थरों के आपेक्षिक घनत्व की तालिका बनायी। आपेक्षिक घनत्व के माप के अनुप्रयोग को व्यावहारिक रूप तब मिला जब अकबर ने इस पद्धति के इस्तेमाल से इमारती लकड़ी की गुणवत्ता (quality) का निर्धारण करने का प्रयास किया। अबुल फज़ल ने अपनी पुस्तक में 72 प्रकार की लकड़ियों का आपेक्षिक घनत्व दिया है।

भूगोल

भूगोल एक और विज्ञान था, जिसका विकास हुआ। ज्योतिष प्रयोगशालाओं ने सही अक्षांश का पता लगाने में मदद की। उस समय मानचित्र बनाने के काम में सबसे ज़्यादा प्रगति तब हुई, जब 1647 में सादिक इस्फ़ानी ने एक विश्वकोष जैसा ग्रंथ लिखा जिसमें विश्व मानचित्रावली भी थी। उनके द्वारा बनाये गये नक्शे, ख़ासकर भारत के नक्शे, में भारत को प्रायद्वीप (peninsula) के रूप मे दर्शाने तथा श्रीलंका को उसके दक्षिणी छोर पर जोड़ने के काम काफ़ी हद तक सही और स्पष्ट थे। नदियों को बहुत कम दिखाया जाता था। भारत में केवल गंगा और यमुना नदियाँ ही दिखाई गई थीं। किन्तु उनके मार्ग बहुत सही दर्शाये गये थे, जबकि भारत के मानचित्रों में समकालीन यूरोपीय ऐसा नहीं करते थे। उन्होंने भौतिक विशेषताओं को भी दर्शाया था, उदाहरण के तौर पर पहाड़ियों को लहरदार लाइनों से दिखाया गया था तथा नदियों एवं समुद्रों को दिखाने के लिए कई रंगों का इस्तेमाल किया गया था। लेकिन सादिक ने रास्तों को दिखाने का प्रयास नहीं किया। इस प्रथा की शुरुआत यूरोप में सन् 1500 ई. में हुई। इस समय तक, भारत को नये विश्व (अमेरिका) की खोज के बारे में पता लग चुका था। अबुल फज़ल ने अपने आइने-अकबरी में नये विश्व के बारे में कुछ टिप्पणी की है।

रसायन शास्त्र

धातु विज्ञान के क्षेत्र में भी हमें कुछ उल्लेखनीय प्रगति दिखायी देती हैं। सोलहवीं शताब्दी के अंत से पहले यहाँ जस्ता धातु को एक प्रक्रिया से अलग किया जाता था जो न तो अरब सभ्यता को ज्ञात थी और न ही यूरोपीय लोगों को। उन्होंने यह कला उन्नीसवीं शताब्दी में सीखी। राजस्थान के ज़ावर नामक स्थल पर पुरातत्व की खुदाई से अब पता चला है कि भारतीय लोगों को पहली शताब्दी में ही जस्ते को विलगाने का तरीका मालूम था (चित्र 5.7)। चीन ने जस्ते को विलगाने का काम नवीं शताब्दी में किया। जस्ते को विलगाने के साथ-साथ

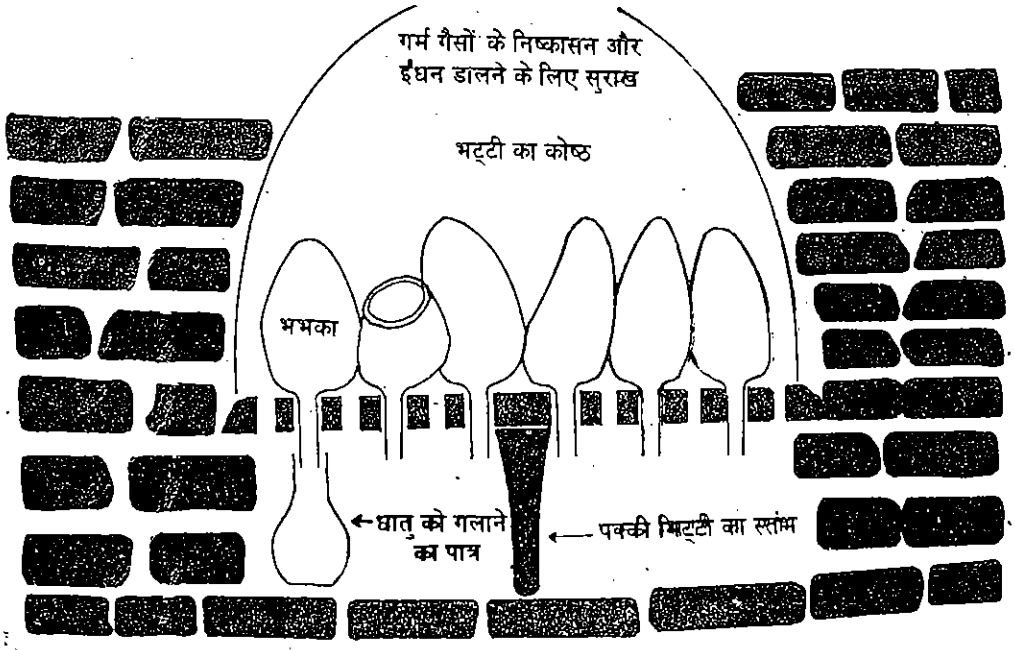

चित्र 5.7 : ज़ावर, राजस्थान में पायी गयी जस्ते के आसवन में इस्तेमाल होने वाली भट्टी की अनुप्रस्थ काट।

एक और उपलब्धि हुई। वह थी पीतल का निर्माण जो ताँबे और जस्ते की मिश्र धातु है। अबुल फज़ल ने विभिन्न किस्म की पीतल प्राप्त करने के लिए जस्ता और ताँबे के तीन अनुपातों का उल्लेख किया है।

अरब जगत् से सीखी गयी ताँबे और पीतल पर टिन के लेपन की विधि मध्ययुगीन भारत में काफ़ी प्रचलित हो गयी एवं ताँबे के बर्तनों का इस्तेमाल काफ़ी हद तक बढ़ गया। टंकाई (soldering) ख़ासकर गोमेद (agate) तथा अन्य भुरभुरे पदार्थों पर सोने की टंकाई का काम इतनी कुशलता से किया जाता था कि यूरोपीय पर्यटकों से उन्हें खूब वाहवाही मिलती थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि भारत ने यूरोप से पहले जमाने वाले मिश्रण (freezing mixture) की खोज कर ली थी। शोरा (पोटेशियम नाइट्रेट) का प्रयोग 1580 ई. के पहले ही पानी को ठंडा रखने के लिए किया जाता था। इस खोज का श्रेय सम्राट अकबर को जाता है।

चिकित्सा विज्ञान

चिकित्सकों एवं शल्य-चिकित्सकों के लिए कुलीन वर्ग के आश्रय की कोई कमी नहीं थी, हालाँकि चिकित्सकों की तुलना में शल्य-चिकित्सकों का उतना ऊँचा स्थान नहीं था।

यूनानी किस्म की चिकित्सा प्रणाली भारत में मुसलमानों के साथ आयी और अभी भी इसका खूब प्रचार-प्रसार है। आशा की जाती थी कि इसके तथा पहले से ही प्रचलित आयुर्वेद की भारतीय पद्धति के बीच पारस्परिक आदान-प्रदान से काफी लाभ होगा। किंतु ये दो पद्धतियाँ अलग-अलग ही रहीं। मियाँ बेहवा (लगभग 1500 ई.) ने चिकित्सा पर "**तिब्बी-सिकंदर शाही**" नामक एक महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की, जो कई आयुर्वेदिक स्रोतों पर आधारित थी और जिनका स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। जहाँगीर के प्रिय शल्य-चिकित्सक मुकर्रब खान ने चिकित्सा पर अपने दो चिकित्सा ग्रंथों के लिए इस पुस्तक के उद्धरण चुने हैं। ये दोनों प्रणालियाँ साथ-साथ चलती रहीं किंतु संभवतः इनके बीच कोई ख़ास आदान-प्रदान नहीं हुआ। सम्राट और कुलीन वर्ग, हकीमों और वैद्यों दोनों को नियुक्त करते थे। अकबर के दरबार में चिकित्सकों की सूची में चार आयुर्वेदिक चिकित्सक थे।

जहाँ तक शल्य चिकित्सा का संबंध है, रक्त-स्राव रोकना तथा अव्यवस्थित हड्डियों को पुनः बिठाना एक आम बात थी। कांगड़ा के शल्य-चिकित्सक उन लोगों की नाक जोड़ने में माहिर थे, जिनकी नाक काट ली जाती थी। चमड़ी के आंशिक प्रत्यारोपण द्वारा वे कृत्रिम नाक भी बना सकते थे। किंतु जहाँ समकालीन पुनर्जागरण के दौरान यूरोप में शरीर रचना अथवा शरीर क्रिया विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण एवं सुव्यवस्थित ढंग से शोध-कार्य किया गया था

उस काल में यहाँ कोई महत्वपूर्ण उपलब्धि नहीं हुई। चूहों के द्वारा प्लेग रोग का प्रसार होता है, इस आशय का प्रेक्षण तो संयोग की बात थी। एक दिलचस्प तकनीक, जिसे लोकप्रिय चिकित्सक अपनाते थे, वह थी चेचक के टीके लगाना, क्योंकि यह रोग 17वीं-18वीं शताब्दी में धीरे-धीरे सारे पश्चिम एशिया तथा भारत में फैल चुका था। किंतु यह तरीका सुरक्षित नहीं था।

मुगल कुलीन-वर्ग भी यूरोपीयों को चिकित्सकों के रूप में नियुक्त करते थे। किंतु उनके ज्ञान का उपयोग कुछ ही व्यक्तियों तक सीमित था, उदाहरण के तौर पर, दानिशमंद खान (लगभग 1660 ई. का एक मुगल) ने फ्रांस के पर्यटक बर्नियर से विलियम हार्वे की रुधिर परिसंचरण (blood circulation) प्रक्रिया समझने का प्रयास किया। बर्नियर ने प्रदर्शन के लिए एक भेड़ पर शल्य क्रिया की। किंतु भारतीय विद्वानों की यूरोपीय चिकित्सा में इस प्रकार की दिलचस्पी कम ही थी। यहाँ तक कि दानिशमंद द्वारा तैयार किये गये यूरोपीय वैज्ञानिक ग्रंथों के अनुवाद भी अब उपलब्ध नहीं हैं।

कुल मिलाकर हम पाते हैं कि मध्ययुगीन भारत में विज्ञान के विकास की गति अपेक्षाकृत धीमी थी। यूरोप में विज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति पर उनकी प्रतिक्रिया पर्याप्त नहीं थीं। वे यूरोपीय विज्ञान को समझने का भी प्रयास नहीं करते थे। यह इस बात से भी स्पष्ट है कि सम्राट जहाँगीर को सर टॉमस रो द्वारा भेंट किया गया एटलस इसलिए वापस कर दिया गया कि जहाँगीर के दरबार में विद्वान उसे समझ नहीं सके थे। उनकी इस असफलता को समझ पाना तब और कठिन हो जाता है, जब हम पाते हैं कि यूरोपीय व्यापारी, पुरोहित, पर्यटक तथा चिकित्सक देश के अधिकांश भागों में पाये जाते थे।

एक कारण यह भी हो सकता है कि शिक्षा का सामाजिक आधार संकीर्ण था, अर्थात् शिक्षा केवल कुछ ही लोगों तक सीमित थी। यह कुछ सीमा तक मुद्रण-कला के अभाव के कारण था। भारत में मुद्रण की शुरुआत पुर्तगालियों द्वारा की गयी किंतु, उनके मुद्रणालयों में प्रकाशित सामग्रियाँ इतनी सुरुचिपूर्ण नहीं होती थीं कि उनकी मुगल दरबार और कुलीन वर्ग द्वारा सराहना की जाती। पुस्तकें रखना केवल धनवानों का विशेषाधिकार था। इस प्रकार ज्ञान का प्रसार रुक गया।

बोध प्रश्न 3

मध्ययुगीन भारत में विज्ञान के क्षेत्र में कम-से-कम पाँच महत्वपूर्ण घटनाएँ बताइए, जिनमें से एक खगोल विज्ञान, एक भूगोल, एक भौतिकी, एक रसायन शास्त्र और एक चिकित्सा के क्षेत्र में हो।

.....

.....

.....

.....

.....

अब तक हमने आपको विज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति के बारे में बताया है। आइए, देखें कि मध्ययुगीन भारत में क्या तकनीकी नवीनताएँ और आविष्कार हो रहे थे।

5.3.2 तकनीकी नवीनताएँ तथा आविष्कार

मध्ययुगीन भारत में प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में काफ़ी सुधार और परिवर्तन हुए हालाँकि ये परिवर्तन अधिकांशतः बाहरी क्षेत्रों से आए, फिर भी, भारत में भी तकनीकी दृष्टि से कुछ नवीनताएँ आयीं। बाहर से प्रेरित इस विस्तार से यह सिद्ध होता है कि तकनीकी युक्तियों (यंत्रों) के प्रयोग का अनुकरण करने, उन्हें लागू करने और उनका विस्तार करने के लिए लोग तैयार रहते थे और वे उसमें समर्थ भी थे। कुल मिलाकर, तकनीकी परिवर्तन के विरोध में कोई भावना दिखायी नहीं देती थी।

अब हम कुछ ऐसे तकनीकी यंत्रों की चर्चा करेंगे जिनका मध्ययुगीन भारत में आविष्कार किया गया था फिर उनमें सुधार किया गया।

गिअरन एक ऐसी युक्ति या यंत्र है, जो क्षैतिज गति (horizontal motion) को ऊर्ध्व गति (Vertical motion) में और ऊर्ध्व गति को क्षैतिज गति में परिवर्तित कर देता है (चित्र 5.8)। यह गति को तेज़ या कम भी करता है। गिअरन का एक रूप स्क्रू की समानांतर चूड़ी है, जिसका जन्म प्राचीन भारत में हुआ। बहुत संभव है कि इसे कम्पूचिया ने 1000 ई. से पहले भारत से प्राप्त किया हो। मध्ययुग में समानांतर चूड़ी कसने की क्रिया का इस्तेमाल लकड़ी की कपास-ओटनी में किया जाता था। यह चीनी को लकड़ी के रोलरों से पीसने के काम में भी लायी जाती थी।

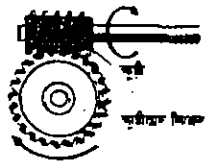

चित्र 5.8 : गिअर चूड़ी (worm gearing) में एक छोटा घुमावदार पेच (चूड़ी) होता है जिसके दाँते बलदार गिअर (गिअर चूड़ी) के खास किस्म के दाँतों में घूमते हैं।

रहट (साक्रिया) के साथ ही समकोणीय पिन-ड्रम गिअरन आयी। यह अरबों से मिली ऐसी युक्ति (यंत्र) है, जिससे पानी को अच्छे तरीके से ऊपर उठाया जा सकता है। भारत के पास पहले से ही पानी ऊपर उठाने की युक्तियाँ थीं, जैसे कि चरखी-प्रणाली (ढेंकली) तथा माला (पॉट-चेन) युक्त रहट (अरघट्टा), अरघट्टा के साथ पिन-ड्रम गिअरन के अनुप्रयोग से वह रहट के नाम से पहचाने जाने वाले यंत्र के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसमें पशुओं को जोत कर गहरे स्तर से लगाकर प्रवाह के रूप में पानी उठाया जा सकता है। गिअर-चक्र और शाफ्ट (धुरा) लकड़ी के बने होते थे। पशुओं द्वारा एक समतल पिन-ड्रम को एक ऊर्ध्वाधर पिन-चक्र के साथ मिलाकर गोलाकार तरीके से घुमाया जाता था। पंद्रहवीं शताब्दी तक पंजाब तथा सिंध में रहट का प्रयोग व्यापक तौर पर किया जाता था। इससे सिंचाई के साधन में सुधार हुआ तथा इससे शायद उस क्षेत्र में कृषि का विस्तार संभव हुआ।

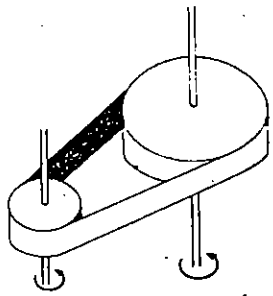

चित्र 5.9 : संचालित पट्टा, जैसा कि चरखे, सिलाई मशीन और कार इंजन के पंखे में पाया जाता है।

पट्टे द्वारा संचालन

ऊर्जा के संचरण के लिए अथवा गति को तेज़ या कम करने के लिए गिअरन की अपेक्षा पट्टे से संचालन का तरीका आसान हैं (चित्र 5.9)। पट्टे से संचालन का तरीका भारत में चर्खे के रूप में आया। चर्खे से कताई की गति लगभग छह गुना तेज़ हो गयी। इससे अवश्य ही सूत और वस्त्र के दाम कम हुए होंगे। सत्रहवीं शताब्दी में चर्खे में क्रैंक हैंडल लगाकर उसमें और सुधार किया गया। हीरे को काटने में भी पट्टे से बरमा चलाने का प्रयोग शुरू हुआ।

बुनाई

पंद्रहवीं शताब्दी से प्राप्त एक शब्दकोश से यह पता चलता है कि बुनाई में गति को नियंत्रित करने के लिए पाँव के पैडल के इस्तेमाल से और अधिक सुधार हुआ (देखें चित्र 5.10)।

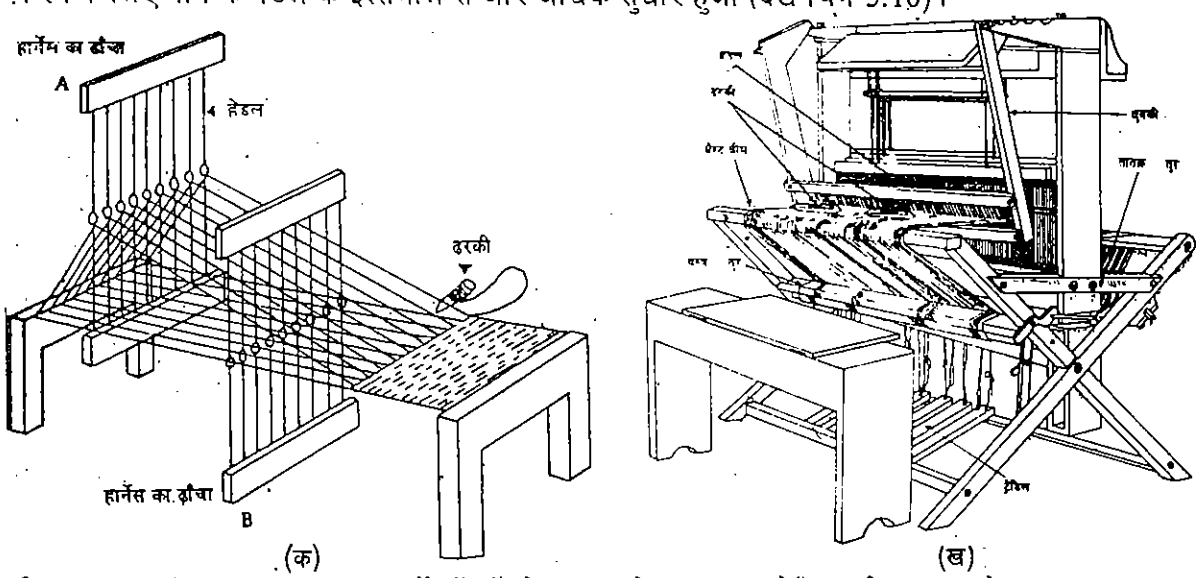

चित्र 5.10 : (क) एक साधारण करघा। हार्नेस "A" को इस तरह से उठाया जाता है कि ढरकी उस पर ताने हुए धागों के नीचे से और साज़ "B" पर ताने हुए धागों के ऊपर से निकाली जाती है। हार्नेसों को आपस में बदल दिया जाता है और ढरकी को "B" के नीचे से और "A" के ऊपर से वापस लाया जाता है।

(ख) पैर द्वारा चालित करघे में ताने हुए धागे एक सिलेंडर, जिसे तुर कहते हैं, पर लपेटे जाते हैं। हर धागा ऊर्ध्वाधर हेडल में से निकाला जाता है। एकान्तर हेडलों को दो समूहों में अलग-अलग कर लिया जाता है जो हार्नेसों से जुड़े होते हैं। जब हेडलों का एक समूह ऊपर उठता है तो दूसरा नीचे चला जाता है। ताना हुआ धागा दो भागों में बँट जाता है और एक शेड (सायबान) बना लेता है जिसमें से ढरकी को निकाला जाता है। हेडलों को आपस में बदल दिया जाता है जिससे दूसरा शेड बन जाता है और ढरकी को उसमें से फिर निकाला जाता है। बुना हुआ कपड़ा एक तुर पर चढ़ा दिया जाता है।

करघों में ट्रैडलों (पैर द्वारा संचालित युक्तियों) के लग जाने से बुनकर अब अपने पैरों का इस्तेमाल हेडलों को बारी-बारी से उठाने में कर सकता था। इस प्रकार उसके हाथ शटलों को आगे-पीछे की ओर फेंकने के लिए स्वतंत्र हो गये थे। इससे बुनाई की गति दुगुनी हो जाती थी।

सत्रहवीं शताब्दी तक रंगाई के बहुरंगी पैटर्न के दोनों तरीकों का इस्तेमाल किया जाने लगा, अर्थात् रंगों को पैटर्न या डिज़ाइन के अनुसार सीमित रखने के लिए प्रतिरोध (रेज़िस्ट) का प्रयोग तथा रंगों को बाँधने वाला रंग-स्थापक (मॉर्डन्ट) का प्रयोग। शायद उसी शताब्दी में भारत में प्रत्यक्ष ब्लॉक-मुद्रण की कला लोकप्रिय हो गयी। इस तकनीक से मुद्रण में समय की काफ़ी बचत होने लगी।

कागज़ का निर्माण

भारत में ग्यारहवीं शताब्दी तक कागज़ का प्रयोग नहीं किया जाता था। ईसा की प्रथम शताब्दी में चीन का यह आविष्कार मुख्यतः ग़ोरी विजेताओं के माध्यम से हिन्दुस्तान पहुँचा। एक बार शुरुआत होने पर इसका निर्माण तेज़ी से होने लगा और चौदहवीं शताब्दी के मध्य तक कागज़ इतना सस्ता हो गया कि इसका इस्तेमाल न केवल लिखने के लिए बल्कि मिठाई-विक्रेताओं द्वारा मिठाई लपेटने के लिए भी किया जाने लगा।

ब्रिजेट और रेमन्ड आर्लचिन पुरातत्ववेत्ता हैं। जोसफ नीढम एक जाने-माने वैज्ञानिक हैं जो विज्ञान के इतिहास और चीनी समाज के बारे में किए गए अपने महत्वपूर्ण कार्यों से जाने जाते हैं।

आसवन (Distillation)

शराब निकालने की तकनीकी जानकारी भी भारत में तेरहवीं शताब्दी में आयी। यद्यपि भारत के प्रसिद्ध रसायन-शास्त्री, श्री पी.सी. रे (1861-1944 ई.) तथा पुरातत्वीय सबूत के आधार पर हाल ही में अल्चिन तथा नीढम ने यह तर्क पेश किया है कि शराब चुआने का काम प्राचीन भारत में लोगों को ज्ञात था, तथापि आसवन की मात्रा बहुत कम होती थी और पद्धति भी उतनी कुशल नहीं थी। तेरहवीं शताब्दी के साथ ही विभिन्न प्रकार की आसवन (शराब के साथ-साथ गुलाब जल चुआने की पद्धति) पद्धतियाँ विकसित हुईं और इसमें कोई संदेह नहीं कि विशुद्ध (आसवित) स्पिरिट बनाने में काफी बढ़ावा मिला।

वास्तुकला

तुर्की द्वारा विजय हासिल करने के बाद, भारत की वास्तुकला की शैली में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। सुल्तानों और उनके सामंतों ने मेहराबों और गुंबजों की माँग की और भारतीय राजगीरों ने उन्हें बनाने में सफलता पायी। इस समय बने हुए प्रथम मेहराब का

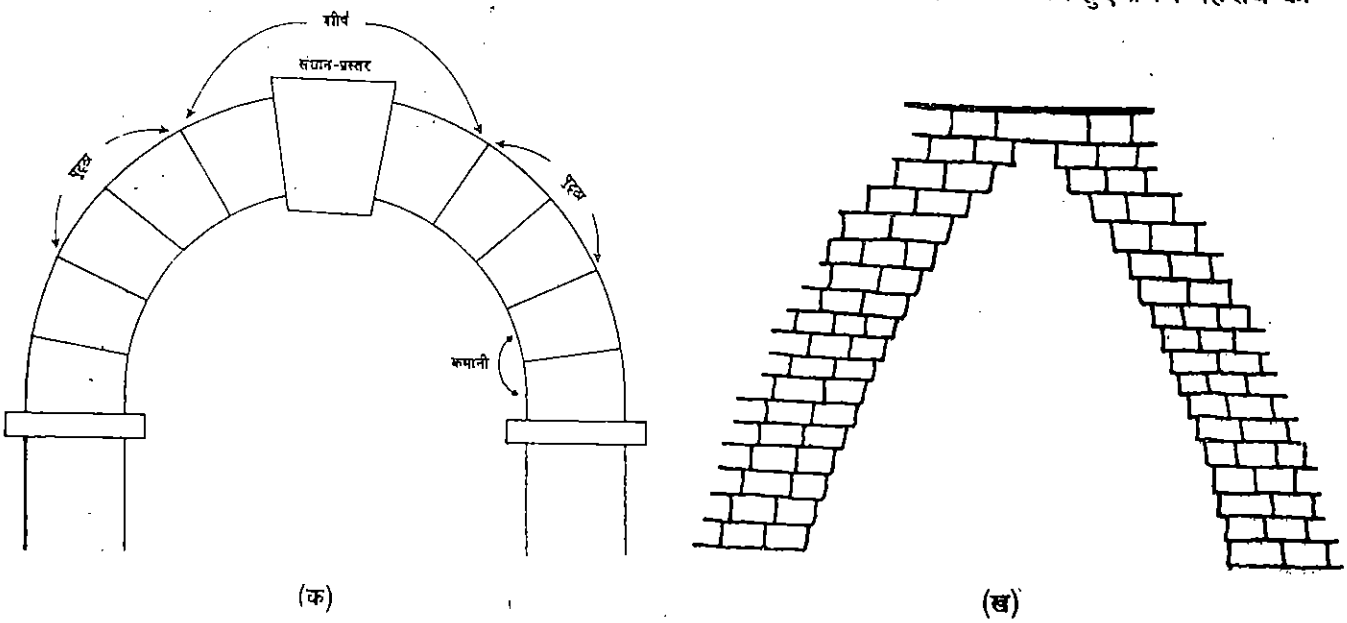

चित्र 5.11 : (क) एक असली मेहराब : इसके निचले हिस्से को कमानी, ऊपरी हिस्से को शीर्ष (क्राउन) और कंधे को पुट्ठा कहते हैं। मेहराब बनाने में सन्धान-प्रस्तर का मूल स्थान है।
(ख) कृत्रिम मेहराब समतल परतों से बनता है। प्रत्येक परत को उससे नीचे वाली परत से अंदर की ओर रखा जाता है। इस तरह, जब दोनों ओर की परतें आपस में मिल जाती हैं तो उनके ऊपर एक समतल परत रख दी जाती है।

उदाहरण 1280 ई. की बनी हुई बलबन की कब्र है। प्रथम गुंबज का उदाहरण "अलाई दरवाजा" है जिसका निर्माण 1305 ई. में हुआ था। भवन-निर्माण की प्रौद्योगिकी में परिवर्तन से चूने के गारे का इस्तेमाल शुरू हुआ और इन दोनों ने मिलकर, धरणिक (trabeate) वास्तुकला को चापाकार (arcuate) वास्तुकला में बदल दिया। असली मेहराब का सिद्धांत शायद प्राचीन भारत को ज्ञात था, किंतु बड़े मेहराब फिर भी नहीं बनाये जा सके थे (चित्र 5.11)।

चूना-गारे के इस्तेमाल से तालाबों के फ़र्शों और दीवारों को पक्का बनाया गया जिससे पानी रिसता नहीं था। इस प्रकार भारत के जगप्रसिद्ध रंग नील के उत्पादन के लिए ज़रूरी जल-निरोध तालाबों और हौज़ों का निर्माण हुआ।

सैन्य प्रौद्योगिकी

सैन्य प्रौद्योगिकी में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। तेरहवीं शताब्दी के पहले ही घुड़सवारों के लिए रस्सी तथा लकड़ी की रकाबों की जानकारी भारत को थी। किंतु, लोहे की बनी रकाबों की शुरुआत शायद गोरी तथा तुर्की बादशाहों द्वारा की गयी थी। इससे घुड़सवारों की लड़ने की क्षमता में काफ़ी सुधार हो गया था। साथ ही, घोड़ों को नाल लगाने से उनकी कार्यकुशलता और भी बढ़ गयी।

तुर्की अपने साथ आड़ी-कमानें (धनुष) लाये (चित्र 5.12)। इनमें धनुष के समकोण पर एक अतिरिक्त नलीनुमा खाँचा होता था, जिसमें तीर फिट किये जाते थे। खाँचे से तीर का निशाना अधिक सही और अचूक बन सकता था। यह खाँचा संभवतः हस्तचालित बंदूक के नाल का प्रारंभिक रूप था।

सैन्य प्रौद्योगिकी में विकास का अगला चरण तोप और बारूद का प्रयोग था। यह नवीन खोज भारत को ऑटोमन साम्राज्य से पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्राप्त हुई और इस साम्राज्य को यह यूरोप से प्राप्त हुई थी।

अकबर के समय तक, शाही-शस्त्रागार में तोड़ेदार बंदूकें और उनका उत्पादन आम बात हो गयी (चित्र 5.13क)। तोड़े की आवश्यकता को ख़त्म करने और बंदूक की नाल को सुदृढ़ करने की दृष्टि से इसमें कई सुधार किये गये। अकबर के शस्त्रागार को एक चक्रदार बंदूक के निर्माण में सफलता मिली (चित्र 5.13ख)। इसमें घोड़ा दबाने से स्प्रिंग के स्वतंत्र होने पर दांतेदार धार वाला चक्र पाइराइट के टुकड़े पर घूमने लगता था जिससे रंजक-पटल (priming pan) में चिन्गारियाँ निकलने लगती थी। सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में यूरोप में व्यापक रूप से इस्तेमाल की जाने वाली चकमक पत्थर कला (flint lock) बंदूक का उपयोग बाद में भारत में भी किया जाने लगा (चित्र 5.13ग)।

बंदूकों की नाल बनाने के लिए बंदूक बनाने वालों के सामने एक समस्या आयी। नाल के अंदर विस्फोट को बर्दाश्त करने के लिए नाल का मज़बूत होना जरूरी था। बंदूक की नली और निशाना साधने की सीध बनाने में बहुत अधिक परिशुद्धता की जरूरत होती थी। अकबर के शस्त्रागार में लोहे की चपटी चादरों को बेलनाकार रोल किया जाता था और किनारों को वैल्ड कर दिया जाता था। उसके बाद नली पर अंदर से काम किया जाता था। यूरोप में अठारहवीं शताब्दी तक इसी तकनीक का प्रयोग होता रहा।

सोलहवीं शताब्दी के अंत तक विश्व में कांसे की सबसे वजनदार तोपें ढालने का श्रेय भारत को जाता है। किंतु यह ज़रूरी नहीं था कि भारी तोपें कार्यकुशल भी हों, क्योंकि उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान तक लाने ले जाने में कठिनाई होती थी और उनमें परिशुद्धता भी कम होती थी। हम पाते हैं कि अकबर ने ऐसी हल्की तोपों के निर्माण पर अधिक ध्यान दिया, जिसे एक आदमी आसानी से खींच सके।

भारतीय सेना में एक और महत्वपूर्ण यंत्र का इस्तेमाल किया जाता था। इसे बाण या रॉकेट कहते थे। यह बांस का बना होता था, जिसमें लोहे के सिलेंडर थे और इन गोलाकार सिलेंडरों के सिरों पर ज्वलनशील सामग्री होती थी। यही वह भारतीय रॉकेट था, जिससे प्रेरित होकर उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में 'कांग्रीव' ने रॉकेटों का आविष्कार किया।

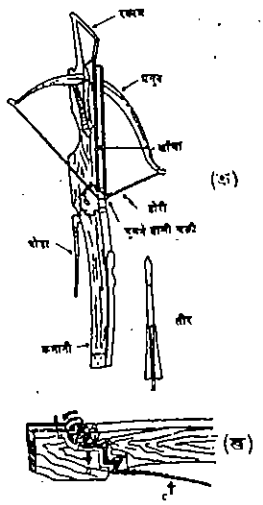

चित्र 5.12 : (क) आड़ी कमान (ख) आड़ी कमान की कार्य प्रणाली। कमान की डोरी पीछे की तरफ खींच कर चक्री में पकड़ लिया जाता है। (A) तीर, को कमानी पर बने खाँचे में रखा जाता है। (B) घोड़े को ऊपर की तरफ दबाने पर (C)छड़ी गिर जाती है (D) जिससे गोल चक्री घूमने लगती है और तीर हवा में तेज़ी से जाता है।

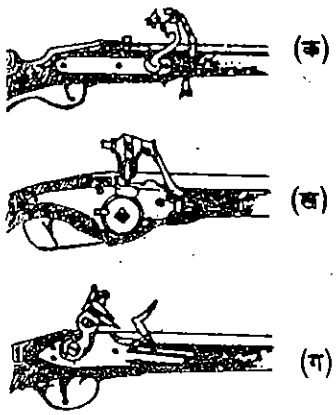

चित्र 5.13 : (क) तोड़ेदार बंदूक के घोड़े को खींचने पर हथौड़े द्वारा जलती हुई डोरी सुराख के अन्दर जाकर बारूद में विस्फोट पैदा करती है। (ख)चक्रदार बंदूक : घोड़ा दबाने से कमानी खुल जाती है। स्टील के चक्र द्वारा चमकदार पत्थर के घर्षण से बारूद में विस्फोट हो जाता है। (ग) पत्थरकला बंदूक : घोड़े को दबाने पर कमानी हथौड़े को नीचे खींच लेती है जिसके सिरे पर लगे चकमक पत्थर या लोहे से उत्पन्न चिंगारियाँ बारूद में आग लगा देती हैं।

धातु के पेंच या स्क्रू

एक अन्य महत्वपूर्ण यंत्र, जिसमें सही उपकरणों तथा मशीनरी बनाने की भारी क्षमता थी, धातु का पेंच (screw) था। धातु के टुकड़ों को आपस में जोड़कर रखने के लिए यूरोप में इसका प्रयोग पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य में होने लगा। यांत्रिकीय दीवार घड़ियों में तो इसका प्रयोग बहुत ही महत्वपूर्ण था। भारत में पेंच का प्रयोग सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक होने लगा था और तब भी यह यूरोप में इस्तेमाल किए जाने वाले पेंच का मुकाबला नहीं करता था। लेथ मशीनों के अभाव में खाँचे नहीं काटे जा सकते थे, इसलिए कीलों के चारों ओर तारों को टांक दिया जाता था, जिससे खाँचों का आभास होता था। खराद लेथों के अभाव में ऐसा करना पड़ता था, जबकि यूरोप में खाँचे बनाने के लिए लेथ मशीनों का प्रयोग किया जाता था। अपनी इसी सीमा के कारण भारतीय पेंच ठीक से फ़िट नहीं बैठता था।

जहाज़ निर्माण

सत्रहवीं शताब्दी में यूरोपीय तकनीकी के कारण पोत-निर्माण उद्योग में भारी परिवर्तन हुए। भारतीय जहाज़ों को यूरोपीय लोग सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक "कबाड़" कहा करते थे। ये बहुत बड़े होते थे और विस्तृत पालों के सहारे से चलते थे। कुछ मामलों में तो नकल मूल से भी आगे निकल गयी। जहाँ एक ओर यूरोपीय जहाज़-निर्माता सादी क़लापट्टी (caulking) किया करते थे, वहाँ दूसरी ओर एक तख्ते से दूसरे तख्ते को कसकर जकड़ने के भारतीय तरीके से और ज्यादा मज़बूती आती थी। भारतीय पोतों के तख्तों पर चूने के मिश्रण का हाथ फेरने से जहाज को समुद्री कीड़ों से बचाने में बहुत सफलता मिली।

किन्तु जहाँ तक जहाज़ों में इस्तेमाल होने वाले उपकरणों का सवाल है, उनमें भारत यूरोप से बहुत पीछे था। भारतीय वैज्ञानिक आधुनिक नौसंचालन , उपकरणों को बनाने में असफल रहे। भारतीय जहाज़ों पर जो मुख्य उपकरण इस्तेमाल किए जाते थे, वे अब भी पुराने थे। बाद में सत्रहवीं शताब्दी में, भारतीय जहाज़ों पर यूरोपीय कप्तानों और नौसंचालकों को नियुक्त किया गया और यह स्वाभाविक ही था कि इन्होंने यूरोप से मंगवाये गये दूरबीनों, क्वाड्रेंटों और अन्य उपकरणों का प्रयोग किया।

कृषि

कृषि भारत का सबसे बड़ा उद्योग था। भारतीय किसान प्राचीन काल से बीजों को कतारों में बोया करते थे। सत्रहवीं शताब्दी में उन्होंने "छिद्ररोपण" शुरू किया, अर्थात् लकड़ियों से जमीन खोदकर छेदों में बीज डालकर बुआई करने लगे। कई क्षेत्रों में वे फसलों के क्रम-परिवर्तन का भी सहारा लेते थे। भारतीयों द्वारा उपजाये ज़ाने वाले अनाजों की संख्या भी काफी अधिक थी। अबुल फ़ज़ल ने खरीफ फ़सल में 50 किस्म के अनाजों और रबी मौसम में 35 किस्म के अनाजों का उल्लेख किया है। फ़सलें अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग थीं। भारतीय किसान का सर्वाधिक उल्लेखनीय गुण यह था कि वह नयी फ़सलें उगाने के लिए हमेशा तैयार रहता था। नये विश्व से सत्रहवीं शताब्दी में जो नयी किस्म की फ़सलें आयीं उनमें तंबाकू तथा मक्का प्रमुख थे। इन फ़सलों को बड़े पैमाने पर उपजाना शुरू कर दिया। पन्द्रहवीं शताब्दी तक बंगाल के किसानों ने भी रेशम का उत्पादन शुरू कर दिया। सत्रहवीं शताब्दी तक बंगाल विश्व में रेशम का निर्यात करने वाले एक बड़े क्षेत्र के रूप में उभर कर सामने आया।

जहाँ तक बागबानी का सवाल है, इसे कुलीन वर्ग के प्रोत्साहन से फलने-फूलने का अवसर मिला। कलमबंध करने के कई तरीके इस्तेमाल किये गये। काश्मीर में मीठी चेरी (sweet cherry) कलमबंध से प्राप्त की गयी। अखरोट का उत्पादन इसी तरीके से अन्य क्षेत्रों में शुरू किया गया। शाहजहाँ के समय में, इसी तकनीक से संतरों की किस्म में काफ़ी सुधार किया गया। पश्चिमी तट पर, पुर्तगालियों ने आमों को कलमबंध करना शुरू किया और इस तरीके से आम की पहली किस्म "अल्फोंसो" (alfonso) पैदा की गयी। आम को क़लमबंध या रोपण करने का तरीक़ा अठारहवीं शताब्दी तक उत्तर भारत में फैल गया था।

संक्षेप में हमने मध्ययुगीन भारत में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में घटी प्रमुख घटनाओं पर एक नज़र डालने की कोशिश की। यदि हम मध्ययुगीन भारत में विज्ञान के विकास के 600 वर्षों की ओर नज़र डालते हैं तो हमारे हाथ केवल निराशा ही लगेगी । खगोल विज्ञान,

चिकित्सा तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में छुटपुट प्रगति हुई। किन्तु यह सब उसी पुराने ढर्रे या उसी नज़रिये से हुआ, जिसे प्रायः "एरिस्टोटेलियन" (अरस्तूवादी) कहा जाता है: यह एक ऐसा संसार था जो यथास्थिति से होकर गुजर रहा था और जो आगे चलकर भी वहीं बना रहेगा; एक ब्रह्मांड, जिसके केंद्र में तो पृथ्वी थी तथा सभी वस्तुएँ पाँच तत्वों अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु से बनी थीं। यूनानी समाज अथवा सामंतवादी ढाँचे में प्रचलित मालिक और गुलाम की अवधारणा इतनी सहज थी कि इसकी लपेट में वास्तविक जगत भी आ गया जहाँ हर वस्तु का स्थान नियत था और वह उसे सौंपे गए कार्य को पूरा करती थी।

किसी भी विषय में नवीनतम जानकारी को शामिल करने का प्रयास नहीं किया गया और समकालीन यूरोप में क्या-क्या खोजें हुई हैं, इनको जानने तक की भी कोशिश नहीं की गई। ऐसी सैद्धान्तिक तथा दार्शनिक समझ विकसित करने की ओर तो और भी कम प्रयास किया गया, जिसमें ज्ञान के हर पहलू का समावेश हो सके। विश्व में जो असाधारण और उल्लेखनीय प्रगति हुई उसमें भी कम ही दिलचस्पी ज़ाहिर की गई, जैसे कि कोपर्निकस की सौर प्रणाली का नमूना, गैलीलियो के कार्य (1610 ई.), गुरुत्वाकर्षण पर न्यूटन की महान् खोज (1665 ई.) अथवा विलियम हार्वे द्वारा रुधिर संचरण (1628 ई.) की खोज तथा छापेखाने का आविष्कार, जिसके फलस्वरूप ज्ञान का भंडार अधिकाधिक व्यक्तियों तक पहुँच सका। या फिर दूरबीन (1600 ई.) तथा सूक्ष्मदर्शी यंत्र (माइक्रोस्कोप) को ही लें। यह बात उल्लेखनीय है कि उस समय स्थापित ज्ञान के कुछ केन्द्र धार्मिक सिद्धांतों का प्रचार एवं प्रसार कर रहे थे, चाहे वह हिंदू धर्म था या मुस्लिम धर्म। या फिर पहले से स्थापित ज्ञान को समझाने में लगे थे। उनका प्रयास नये आयामों को खोजने तथा नई वस्तुओं को विकसित करने की ओर नहीं था।

ऐसा क्यों था? हम इसका विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे कि उस काल में यूरोप की तरह भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास क्यों नहीं हुआ। लेकिन उससे पहले शायद आप नीचे दिये गये बोध प्रश्न को हल करना चाहें।

बोध प्रश्न 4

नीचे दिये गये खाली स्थान में मध्ययुगीन भारत की कम से कम पाँच तकनीकी खोजों के नाम लिखें।

.....

.....

.....

.....

5.4 भारत में विज्ञान की प्रगति में बाधाएँ

अठारहवीं शताब्दी तक, समाज का ढांचा बहुत जटिल हो गया था। इसलिए इस संदर्भ में ज़्यादा सरल बनाये बगैर विज्ञान की चर्चा करना मुश्किल है, क्योंकि इसका जन्म समाज में ही हुआ था और इसने समाज में योगदान दिया। फिर भी सरलीकरण से यदि सही-सही ज्ञान हो जाए और पूरी तस्वीर साफ़-साफ़ सामने आये तो यह अच्छी बात है, क्योंकि इससे हमें विज्ञान और समाज के पारस्परिक संबंधों को समझने की दृष्टि मिलती है।

इस संक्षिप्त चर्चा के बाद आपके मन में यह बात ज़रूर आई होगी कि भारतीय विज्ञान का स्तर वही था जो दूसरे देशों में था। खासकर, लगभग सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक इसका स्तर वही था जो यूरोपीय विज्ञान का था। किंतु यूरोपीय विज्ञान ने अपने विकास का क्रम निरंतर जारी रखा और इस प्रकार हिंदुस्तान को आगे आने वाले समय में काफ़ी पीछे छोड़ दिया। वास्तव में ब्रिटिश लोगों ने इस देश को गुलाम बना लिया और अपने विकसित विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा उद्योग के बलबूते पर इसे अपना उपनिवेश बना लिया। अब यह

सवाल उठता है कि सोलहवीं शताब्दी के यूरोप और भारत में क्या अंतर था। यदि आपको इस प्रश्न का उत्तर ढूंढने में दिलचस्पी है, तो आपको इतिहास का अध्ययन गहराई से करना होगा। किंतु, इसे सरल रूप में कहना चाहें तो हम कहेंगे कि दोनों समाजों में मूल अंतर इनके सामाजिक ढांचे, धार्मिक कट्टरता और बौद्धिक वातावरण में था। आइए, इस पर कुछ विस्तार से विचार करें।

हमने जाना कि ज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति तब होती है जब उस पर मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक प्रकार का दबाव पड़ता है। एक पुरानी कहावत है, "आवश्यकता आविष्कार की जननी है"। ऐसा लगता है कि देश के विभिन्न भागों एवं राज्यों के शासकों के बीच समय-समय पर होने वाले युद्धों के बावजूद भारतीय समाज में उल्लेखनीय स्थिरता थी। जनसंख्या कम थी, भूमि उपजाऊ थी और थोड़ी-सी ज़मीन से ही भारतीय किसान अपने जीवन की आवश्यकताएँ पूरी कर लेते थे। वे अपने लिए भोजन और वस्त्र की व्यवस्था कर लेते थे आज हम जिस प्रकार की भूख और गरीबी देखते हैं, ऐसा उस समय कुछ नहीं था, हालाँकि लोग गरीब थे। आज हमें जो अभाव दिखाई देते हैं, वे अधिकांशतः ब्रिटिश नीति का परिणाम हैं, जो हम पर लादी गयी थी। सामाजिक दशा भी स्थिर थी, जाति प्रथा ने जड़ें जमा ली थीं। धर्म के प्रभाव ने, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, और जाति व्यवस्था ने भाग्य से समझौता करने की प्रवृत्ति तथा सामाजिक वर्गीकरण को बढ़ावा दिया। इस विचार को मान्यता प्राप्त थी कि अनंतकाल से ब्रह्माण्ड में मृत्यु और पुनर्जन्म का कभी न खत्म होने वाला चक्र चलता था जिसमें मौलिक रूप से नया कुछ भी नहीं होता था। उस समय समाज में एक अनोखा संतोष विद्यमान था जिसके कारण न तो नयी तकनीकों के माध्यम से उत्पादन बढ़ाने पर बल दिया जाता था और न ही सामाजिक परिवर्तन पर।

हाथों से परिश्रम करने वालों का ज्ञान के भंडार में कोई योगदान नहीं होता था। और जिन लोगों के पास समय से पीछे पड़ चुका ज्ञान था उन्हें उस ज्ञान को व्यवहार में परखने की कभी आवश्यकता नहीं पड़ी। राज्य या तो आपस में युद्ध किया करते थे या फिर लंबे समय तक शांति कायम रखते थे। यह सोचना स्वाभाविक लगता है कि ऐसे समाज में नये उत्पादों और नयी प्रक्रियाओं के विकास के लिए कोई आग्रह नहीं था। किसी भी समाज में स्थिरता तथा ठहराव का चोलीदामन का संबंध आसानी से हो सकता है। धनी व्यक्तियों को बदलाव की कोई ज़रूरत नहीं थी और गरीबों को बदलाव लाने का कोई अधिकार ही नहीं था।

हम देख चुके हैं कि भारत में जब इस्लाम का प्रभाव लगातार आता रहा तो उसकी प्रवृत्ति ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली आम जनता के जीवन में बाधा पहुँचाने की नहीं थी। उसने उन प्रबल धार्मिक लोकाचारों में हस्तक्षेप नहीं किया जिन पर हिंदुओं का प्रभुत्व था। यही नहीं उसने अपनी उदार विचारधारा से जाति व्यवस्था को भी संरक्षण प्रदान किया जो भारत में अच्छी तरह स्थापित हो चुकी थी। हम पाते हैं कि देश के प्रशासन और सैन्य बलों के स्तर पर दोनों समुदायों के उच्च स्तरीय लोगों में आपसी सहयोग था। मुस्लिम बादशाहों के हिंदू सेनापति भी होते थे और हिंदू राजाओं के मुस्लिम सेनानायक भी होते थे। वे लोग आपस में लड़ते थे अपने-अपने राजाओं की रक्षा भी करते थे। यह स्वाभाविक ही था कि उनमें सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता और दोनों संस्कृतियाँ आपस में मिलतीं। आज जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं, यह विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले हमारे लोगों और भिन्न युगों में बाहर से आकर भारत में बसने वाले लोगों के बीच सदियों की अंतःक्रिया का परिणाम है।

धार्मिक स्तर पर हिंदुओं और मुसलमानों में सहअस्तित्व की भावना थी। यह शायद एक अनिवार्यता थी, क्योंकि मुसलमानों की संख्या कम थी। वास्तव में वे बहुसंख्यक लोगों के साथ कोई झगड़ा मोल ले ही नहीं सकते थे, अगर वे आने वाली कई शताब्दियों तक भारत में अपना शासन करना चाहते थे।

यह सहअस्तित्व इसलिए भी रहा क्योंकि पुरोहितों का लोगों पर अच्छा प्रभाव था और एक दूसरे के धर्म में किसी भी हस्तक्षेप के गंभीर राजनीतिक परिणाम निकल सकते थे। इससे अशांति पैदा हो जाती। अतः वे एक-दूसरे की बातों में दखल नहीं देते थे। इसके अतिरिक्त, दोनों धर्मों के पुरोहित काफी धनीमानी थे और अपनी आर्थिक स्थिति से संतुष्ट थे। दोनों धार्मिक पद्धतियों के अंदर भी कोई सक्रिय विरोध या विवाद नहीं थे और सुधार के लिए कोई

अभियान या आंदोलन भी नहीं था। मध्ययुग में भक्ति तथा सूफ़ी पंथ के आंदोलन अवश्य सामने आये। इन संप्रदायों ने धार्मिक सहिष्णुता का उपदेश दिया और ये जाति प्रथा के कट्टर आलोचक थे। किंतु उनका प्रभाव बहुत व्यापक इसलिए नहीं रहा, क्योंकि उनकी पहुँच ज्यादा लोगों तक नहीं थी।

संभवतः ऐसा मुद्रणकला के अभाव के कारण था। ऐसा कहा जाता है कि जब जहाँगीर को एक मुद्रित पुस्तक भेंट की गयी तो उन्होंने उसे हस्तलिखित पांडुलिपि, जिस पर उन्हें गर्व था, की तुलना में भद्दी और असुंदर बताकर फेंक दिया। शायद उन्हें इस बात का ठीक-से एहसास न था या उनकी विशेष रुचि नहीं थी कि सस्ती पुस्तकें उपलब्ध हो जाने से बड़े पैमाने पर लोगों के जीवन को लाभ पहुँच सकता है। यह सोलहवीं शताब्दी के यूरोप की तुलना में एकदम विपरीत था। यूरोप में छपी हुई सामग्री उपलब्ध होने के कारण उससे सुधारवादी आंदोलन को व्यापक रूप से प्रचार एवं प्रसार का अवसर मिला तथा उसका गहरा प्रभाव पड़ा। इसके बारे में हम इकाई 6 में विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त करेंगे।

भारत में शिक्षा काफ़ी हद तक धार्मिक अध्यापन तक सीमित थी और बौद्धिक वातावरण सोचने के प्रचलित तरीकों को चुनौती देने या नये सिद्धांतों का प्रतिपादन करने के पक्ष में नहीं था। ऐसे वातावरण में शायद ही कोई स्वतंत्र विचार प्रकट करने का साहस कर सकता था। गैलीलियो द्वारा प्रस्तावित एवं प्रदर्शित यह तथ्य कि सूर्य, ब्रह्माण्ड के केंद्र में है, आदि नयी बातों को स्वीकार करना तो और भी मुश्किल था। इसका कारण यह था कि नये सिद्धांत के प्रतिपादन से ईश्वरीय विधान में रुकावट आ सकती थी जिसके अनुसार संपूर्ण सृष्टि में मनुष्य के रहने के स्थान अर्थात् पृथ्वी को एक केंद्रीय स्थान प्राप्त था। वास्तव में, शायद, ज्योतिष शास्त्र को इतना सम्मान प्राप्त था कि उसके चलते थोड़ा बहुत खगोलशास्त्र भी विकसित होता रहा तो भी समाज में उसकी स्थिति पर कोई फ़र्क न पड़ा। इसी तरह कीमियागिरी से अभी भी लोगों को आशा थी कि उसकी किसी न किसी विधि से, भले ही वह रहस्यमय या अतार्किक ही क्यों न हो, सभी धातुओं को सोने में बदला जा सकता था। इसी कीमियागिरी के चलते, लोग थोड़ा बहुत रासायनिक तकनीकों पर भी हाथ आज़मा लेते थे। कट्टरता का बोलबाला था और शाश्वत तथा उद्घाटित सत्य में इतनी आस्था थी कि इससे स्वतंत्र विचार एवं चिंतन को बढ़ावा नहीं मिला और न ही कल्पनाशील और साहसी विचारों को कभी कोई प्रोत्साहन मिला। दूसरे शब्दों में कहें तो विद्वानों के पास सीमित विचार थे जिनमें ज़रूरी नहीं था कि वे कोई परिवर्तन करें और जिन लोगों की सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं थी, जो सामंतशाही व्यवस्था से पीड़ित थे, उनकी शिक्षा तक पहुँच नहीं थी।

यदि ये कारण न होता तो हम यूरोप की अपेक्षा अधिक लाभप्रद स्थिति में थे, क्योंकि अरबी तथा भारतीय विज्ञान की मज़बूत धाराएँ यहाँ साथ-साथ विद्यमान थीं। हमें यूरोप से बहुत आगे होना चाहिए था। सत्रहवीं शताब्दी में यूरोप में अरब लेखकों की अनेक पुस्तकों को पाठ्य पुस्तकों के रूप में पढ़ाया जाता था। उदाहरण के तौर पर, अल-फरगनी द्वारा लिखित "खगोल विज्ञान सार," अल-रज़ी द्वारा लिखित "हॉवी लिबर कोंटीनेंस," इब्न सिना की "कैनन" और एवरोस की "कॉलीजेट" आदि। (ये सभी चिकित्सा शास्त्र की पुस्तकें हैं) ये सभी पुस्तकें भारत में उपलब्ध थीं। इनका इस्तेमाल किया जा सकता था, किंतु दुर्भाग्यवश वैसा नहीं हुआ। 16वीं और 17वीं सदी में यूरोप में कई वैज्ञानिक प्रगतियाँ हुईं। उदाहरण के लिए कोपर्निकस, गैलीलियो और न्यूटन के कार्यों का उल्लेख किया जा सकता है। किंतु भारत में उनका व्यापक प्रभाव नहीं पड़ा। इसका कारण यह था कि तत्कालीन भारतीय वैज्ञानिक इन कार्यों के महत्व को सही रूप में नहीं देख पा रहे थे। इस प्रकार की उदासीनता और लापरवाही तथा उपर्युक्त अन्य कारणों से हम प्रगति की दौड़ में पीछे रह गये।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि एक परंपरावादी, वर्ग विभाजित समाज, जिसमें दोनों धर्मों के कारण बहुत थोड़ा असंतोष और रूढ़िवादिता थी, ने विज्ञान की प्रगति को अनावश्यक समझा। स्वाभाविक था कि ऐसे समाज से वैसी वैज्ञानिक क्रांति लाने की आशा नहीं की जा सकती थी, जैसी कि सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में समकालीन यूरोप में हो रही थी। वैसे यह जीवन की सुंदर वस्तुओं, जैसे कि नाटक तथा संगीत, नृत्य तथा चित्रकला, वास्तुकला एवं काव्य आदि पर अपना ध्यान केंद्रित कर सकता था और इसने किया भी। मध्ययुगीन समाज का कम से कम यही एक उज्ज्वल पक्ष था।

5.5 सारांश

इस इकाई में हमने सातवीं शताब्दी ईस्वी से लेकर लगभग अठारहवीं शताब्दी के इतिहास के लंबे समय को शामिल किया है। भौगोलिक दृष्टि से भी हमने एक बड़ा क्षेत्र शामिल किया है, जिसका विस्तार पश्चिम एशिया, जहाँ अरबी विज्ञान फला-फूला है, से लेकर भारतीय उपमहाद्वीप तक है। इस इकाई में हमने जो भी सीखा है, उसे संक्षेप में इस प्रकार बता सकते हैं।

- हमने देखा कि अरबी विज्ञान ने यूनानी, भारतीय तथा चीनी सभ्यताओं के शास्त्रीय विज्ञान एवं मध्ययुगीन विज्ञान के बीच एक निरंतरता को बनाये रखा। पहली बार विज्ञान के कई क्षेत्रों में तार्किक दृष्टिकोण अपनाया गया, जैसा कि व्यावहारिक समस्याओं का हल खोजने में किया गया। अरब वैज्ञानिक आम जनता में से होते थे, उन्हीं की भाषा भी बोलते थे तथा आम आदमी की समस्याएँ उनकी अपनी समस्याएँ होती थीं। इसके फलस्वरूप व्यावहारिक विज्ञान को बढ़ावा मिला। हमने यह भी देखा है कि लगभग ग्यारहवीं शताब्दी तक अरबी विज्ञान का जोरदार बौद्धिक उत्कर्ष समाप्त हो चला था, जिसके कई कारण थे।

- मध्ययुगीन भारत को ज्ञान का अतुल भंडार प्राप्त करने का लाभ मिला, जो उसे अरबी तथा यूरोपीय संपर्क के कारण प्राप्त हुआ। भारतीयों को तकनीकी दृष्टि से नई खोजों का लाभ मिल सका। कई नई बातों की खोज यहीं हुई थी। किंतु न तो वे अरबों के तार्किक दर्शन को अपना सके और न ही समकालीन यूरोप में हो रहे वैज्ञानिक प्रयासों को समझ सके। इस रवैये की जड़ प्रचलित सामाजिक परिस्थितियों में ढूँढी जा सकती थी। इसके फलस्वरूप भारतीय विज्ञान बिल्कुल पिछड़ गया।

5.6 अंत में कुछ प्रश्न

1) मध्ययुगीन भारत में मुद्रण कला के अभाव में विज्ञान की प्रगति में बाधा कैसे पहुँची? 4-5 पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) नीचे बताये गये पांच सामाजिक कारणों में से कौन से तीन कारण मध्ययुगीन भारत में विज्ञान के विकास में बाधा बने? सही उत्तर पर (√) निशान लगाएँ।

क) समाज में स्थायित्व था। किन्हीं ज़ोरदार सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं का दबाव भी नहीं था जिससे वैज्ञानिक नवीनता को बढ़ावा मिलता। ☐

ख) कला, संगीत, नाटक तथा चित्रकला का खूब विकास हुआ। ☐

ग) हिंदू तथा मुस्लिम धर्मों की पकड़ अपने अनुयायियों पर मजबूत थी। सुधारवादी आंदोलनों ने बहुत कम प्रभाव छोड़ा। ☐

घ) समाज में बुद्धिजीवियों के पास निश्चित विचारधारा थी, जिसे व्यवहार में लाना आवश्यक नहीं था। किसान एवं शिल्पकार विद्याध्ययन करने में असमर्थ थे। ☐

ड.) मुगलों ने वास्तुकला के क्षेत्र में सर्वाधिक योगदान दिया। ☐

3) सामने खाली छोड़े गये स्थान में बताएँ कि मध्ययुगीन भारत में विज्ञान के बारे में निम्नलिखित में से कौन से कथन सही हैं और कौन से गलत।
   क) मध्ययुग भारतीय विज्ञान की प्रगति में सर्वाधिक अंधकारमय काल का सूचक है। ☐
   ख) मध्ययुग के भारतीय विद्वानों ने खगोल विज्ञान एवं चिकित्सा आदि के क्षेत्र में समकालीन पाठ्य पुस्तकों के प्रयोग से ज्ञान के प्रचार एवं प्रसार में कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी। ☐
   ग) विद्वानों के छपे ग्रंथों के उपलब्ध होने से यूरोपीय समाज में परिवर्तन लाने में सुविधा रही। ☐
   घ) भारतीय विज्ञान आम आदमी के जीवन से जुड़ा होने के साथ-साथ उत्पादन प्रक्रियाओं से भी जुड़ा था। ☐
   ड.) भारतीय लोगों ने यूरोपीय लोगों के संपर्क से प्राप्त प्रौद्योगिकी की नकल करने में उल्लेखनीय इच्छा प्रदर्शित की और उसका विस्तृत उपयोग भी किया। ☐

5.7 उत्तर

बोध प्रश्न

1) क) (i), (iii), (iv), (vi)
   ख) (ii), (v)
2) क) ग), ड़)
3) i) राजा जयसिंह ने वेधशालाओं की स्थापना की।
   ii) सादिक इस्फ़ानी द्वारा विश्व एटलस का विकास।
   iii) धातुओं, पत्थरों तथा लकड़ी आदि के आपेक्षिक घनत्व का परिमापन।
   iv) हिमभूत (जमाने वाला) मिश्रण की खोज
   v) चमड़ी के आंशिक प्रत्यारोपण द्वारा कृत्रिम नाक लगाना; चेचक के टीके लगाने की प्रथा।
4). रहट, राकेट, लोहे की रकाबें, तोपें, जहाज़ों के चूलदार तख्ते, ऐस्ट्रोलेब तथा कलमबंध।

अंत में कुछ प्रश्न

1) मुद्रण कला के अभाव का यह प्रभाव पड़ा कि शिक्षा एक सीमित वर्ग के लिए रह गयी। चिकित्सकों को पुस्तकें उपलब्ध नहीं थीं। इस प्रकार सिद्धांत एवं व्यवहार के बीच अंतर दूर नहीं किया जा सका। आप और अधिक व्याख्या कर सकते हैं।
2) (क), (ग), (घ)
3) (क) ग़लत (ख) सही (ग) सही
   (घ) ग़लत (ड.) सही

इकाई 6 पुनर्जागरण, औद्योगिक क्रांति और उसके बाद

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
6.2 मध्ययुगीन यूरोप में विज्ञान और तकनीक
सामंती समाज
मध्ययुगीन अर्थव्यवस्था का रूपांतरण
6.3 पुनर्जागरण (1440-1540)
पुनर्जागरण के दौरान विज्ञान और प्रौद्योगिकी
6.4 पुनर्जागरण के बाद विज्ञान (1540-1760)
यूरोप में विज्ञान का विकास क्यों हुआ
6.5 औद्योगिक क्रांति (1760-1830) और उसके बाद
6.6 सारांश
6.7 अंत में कुछ प्रश्न
6.8 उत्तर

6.1 प्रस्तावना

इकाई 5 में हमने मध्यकाल में अरब देशों व भारत में हुए वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक विकास के संबंध में बताया। अब हम संक्षेप में उस काल के यूरोपीय समाज के संबंध में बताने जा रहे हैं। आपने लौहयुग के यूनानी व रोमन समाजों के बारे में इकाई 3 में पढ़ा है। आप यह भी जानते हैं कि लौहयुगीन समाज में दास प्रथा थी।

प्राचीन काल की दास अर्थव्यवस्था के बाद सामंती व्यवस्था आयी थी जो सत्रहवीं सदी तक बनी रही। सामंती व्यवस्था तकनीक और अर्थव्यवस्था की दृष्टि से दास समाज की अपेक्षा ज़्यादा बिखरी हुई थी। उसने वैज्ञानिक दृष्टिकोण में ज्यादा योगदान नहीं दिया। हालांकि एक छोटे स्तर पर कई नयी उपयोगी तकनीकें प्रकाश में आयीं। ये तकनीकें आम आदमियों द्वारा इस्तेमाल की गयीं जिससे इनका काफ़ी प्रसार हुआ। जैसा कि हम आगे देखेंगे, इन आर्थिक परिवर्तनों के साथ-साथ सामंतवाद पूँजीवाद में बदल गया जिससे यूरोप में आधुनिक विज्ञान का जन्म हुआ।

इकाई 5 में हमने यह जानने की कोशिश की कि भारत में विज्ञान उस तरह से क्यों नहीं फला-फूला, जिस तरह से सोलहवीं शताब्दी के यूरोप में फला-फूला था। इस इकाई में हम यूरोपीय समाज की उन विशेषताओं की चर्चा करेंगे जिन्होंने विज्ञान के विकास में योगदान दिया। हम एक बार फिर ईसा पूर्व पांचवीं सदी से विज्ञान के इतिहास का अध्ययन करेंगे। हम सामंती समाज पर भी संक्षेप में चर्चा करेंगे जिसने पूँजीवाद को जन्म दिया। उसके बाद हम पुनर्जागरण काल और वैज्ञानिक एवं औद्योगिक क्रांति के बारे में बतायेंगे जिससे आधुनिक विज्ञान की शुरुआत होती है। यदि आप यूरोपीय समाज की सामाजिक परिस्थितियों का विस्तृत अध्ययन करना चाहें तो आप 'मानविकी एवं सामाजिक विज्ञानों में आधार पाठ्यक्रम' से संबंधित इकाई 7, 8 और 9 देख सकते हैं। हम देख सकते हैं कि औद्योगिक क्रांति ने न सिर्फ़ कच्चे माल की माँग पैदा की बल्कि तैयार माल को बेचने के लिए बाज़ारों को भी बढ़ावा दिया। इससे भारत समेत पिछड़े हुए देशों को नये औद्योगिक देशों द्वारा उपनिवेश बनाने की शुरुआत हुई। अगली इकाई में हम भारत में औपनिवेशिक राज व स्वतंत्रता के बाद विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास पर चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- यूरोपीय समाज के सामंती काल में हुई विज्ञान व तकनीक की उन्नति के बारे में बता सकेंगे और यह भी समझ पाएंगे कि इनसे सामंती समाज में किस प्रकार परिवर्तन आया।
- पुनर्जागरण द्वारा लाये गये सामाजिक परिवर्तन और उससे हुई विज्ञान व प्रौद्योगिकी की उन्नति को बता सकेंगें।
- पुनर्जागरण काल के बाद की महत्वपूर्ण वैज्ञानिक उन्नति को रेखांकित कर सकेंगे।
- सोलहवीं से अठाहरवीं सदी के बीच के भारतीय व यूरोपीय समाजों की तुलना कर सकेंगे और आधुनिक विज्ञान को जन्म देने वाले उस समय के यूरोपीय समाज का विश्लेषण कर सकेंगे।
- औद्योगिक क्रांति लाने वाले तकनीकी आविष्कारों के परिणाम और उसके बाद हुई प्रमुख वैज्ञानिक प्रगति के बारे में बता सकेंगे।

6.2 मध्ययुगीन यूरोप में विज्ञान और तकनीक

लगभग दूसरी सदी ई.पू. रोमन साम्राज्य के पतन और फ्रेंक्स् (Franks), गोथ्स (Goths), मैगएर्स (Magyars), वंडल्स (Vandals), सलाव्स (Slavs) और अन्य कबीलों के आक्रमणों से यूरोप में ऐसे हालात पैदा हुए कि दास विद्रोह करके अपने को मुक्त करा सकते थे। पर स्वतंत्र होने पर भी वे ज़्यादा कुछ नहीं कर सकते थे क्योंकि उनके पास अन्न उत्पादन के लिए ज़मीन नहीं थी। यद्यपि रोमन लोगों ने पूरे पश्चिमी यरोप पर अधिकार कर लिया था और इंग्लैंड तक पहुँच गये थे (देखें इकाई 3 में चित्र 3.18), पर कृषि योग्य भूमि बहुत कम थी। पश्चिमी यूरोप का ज़्यादातर हिस्सा घने जंगलों से घिरा हुआ था और भूमि भी चिकनी और भारी थी। रोमनों के पास ऐसी भूमि पर खेती करने के लिए तकनीकें नहीं थी। इससे कृषि योग्य भूमि की व्यापक कमी और असंतोष की स्थिति पैदा हो गयी। दूसरे शब्दों में दास समाजों के टूटने की गति को इनके स्वयं के तनावों व अभावों ने बढ़ाया। हम पाते हैं कि पांचवीं सदी के बाद दास ग़ायब होते चले जा रहे थे और उनका स्थान कृषिदास (serfs) ले रहे थे।

दसवीं सदी के आरंभ में एक नई उत्पादन व्यवस्था और नये समाज ने अपने आप को यूरोप में स्थापित कर लिया था। यह सामंती व्यवस्था थी। आइए, देखें कि यह समाज कैसा था और इसमें वैज्ञानिक व तकनीकी उन्नति का स्तर क्या था।

6.2.1 सामंती समाज

सामंती व्यवस्था भूमि पर निर्भर करती थी और गांव इसकी आर्थिक इकाई थे। सामंती अर्थव्यवस्था स्थानीय कृषि उत्पादन और हस्तशिल्प उद्योगों पर निर्भर थी। किसान या कृषिदास भूमि को आपस में बांटकर काम करते थे। पर वे अपने मालिकों को उत्पादन या श्रम का हिस्सा लगान, कर या सामंती सेवा के रूप में देने को बाध्य थे। आमतौर पर एक मालिक के पास एक या एक से अधिक गांव होते थे या अनेक गावों में उसकी जमीन होती थी। कृषिदास अपने मालिकों की सेवा करने को बाध्य थे और उन्हें उस ज़मीन को छोड़कर जाने नहीं दिया जाता था जिसमें वे काम करते थे।

सामंती सेवा की यह बाध्यता, जिसमें शक्ति द्वारा बलपूर्वक काम लिया जाता था या शक्ति के प्रयोग से कर वसूला जाता था, सामंती व्यवस्था की विशेषताएँ हैं। कृषिदास प्राचीन काल के दासों से इस रूप में भिन्न थे कि उनके पास कृषि योग्य भूमि का सुरक्षित पट्टा था। यद्यपि कृषिदास इस तरह दासों की तुलना में आंशिक रूप से स्वतंत्र थे किंतु उनकी स्थिति दासों की तुलना में बहुत बेहतर नहीं थी, हालांकि सामाजिक दबाव कुछ कम हो गये थे। यह सामंती व्यवस्था यूरोप में सत्रहवीं सदी तक बनी रही।

दसवीं सदी से लेकर करीब पंद्रहवीं सदी तक का समय आमतौर पर यूरोप में मध्ययुग कहा जाता है। इस समय में चर्च सभी चीजों का केन्द्र था। इसने सारे ईसाईवाद के लिए शक्ति का

एक आम आधार दिया। यह बौद्धिक तौर पर अपनी बातों को कहने का भी एक माध्यम था। सारी बौद्धिक गतिविधियाँ उन लोगों द्वारा चलाई जाती थीं जो चर्च से संबंध रखते थे। जीवन के सभी क्षेत्रों पर चर्च का अधिकार था। पादरियों को इस तरह का प्रशिक्षण दिया जाता था कि वे अपने धार्मिक विश्वासों की रक्षा करते हुए मिशनरी कार्य कर सकें। सबसे पहले इस तरह की ज़रूरत कैथीड्रल स्कूलों की स्थापना से पूरी हुई। बारहवीं सदी तक ये विश्वविद्यालयों का रूप ले चुके थे। इस काल में पहला विश्वविद्यालय पेरिस (फ्रांस) में 1160 में स्थापित हुआ। इसके बाद आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय 1167 और केम्ब्रिज विश्वविद्यालय 1209 में ब्रिटेन में स्थापित हुए। उसके बाद इटली में पाडुआ (1222), नेपल्स (1224) चेकोस्लोवाकिया में प्राग में (1347) तथा कई अन्य विश्वविद्यालय स्थापित हुए। ये विश्वविद्यालय मुख्यतः पादरियों को प्रशिक्षित करते थे।

ईस्टर ईसाईयों का एक त्यौहार है। यह माना जाता है कि ईसा-मसीह इस दिन अपनी कब्र से बाहर आये थे। यह त्यौहार रविवार को पड़ता है, पर इसकी तारीख हर साल बदल सकती है।

इन संस्थाओं में अध्ययन व्याख्यानों व बहसों के माध्यम से होता था क्योंकि उस समय पुस्तकें बहुत कम उपलब्ध थीं। पाठ्यक्रम में व्याकरण, भाषण कला, तर्क, अंकगणित, ज्यामिति, नक्षत्र विज्ञान, संगीत, दर्शन व धर्मशास्त्र आदि विषय होते थे। व्यवहार में विज्ञान बहुत कम सिखाया जाता था। अंकगणित में केवल अंकों के बारे में सिखाया जाता था। ज्यामिति में युक्लिड की पहली तीन पुस्तकें ही पाठ्यक्रम में थीं। नक्षत्र विज्ञान में केवल कैलेंडर व ईस्टर की तारीख की गणना सिखाई जाती थी। प्रकृति जगत व व्यवहारिक कलाओं से इस शिक्षा का कम ही संपर्क था किंतु ज्ञान के प्रति प्रेम व वाद-विवाद को बढ़ावा दिया जाता था। जैसा कि हम जानते हैं, शिक्षा अपने आप में मानवीय उन्नति का प्रमुख आधार होती है। हालांकि धार्मिक लोगों को एक विशिष्ठ पाठ्यक्रम के तहत प्रशिक्षित किया जाता था और विश्वविद्यालय संकीर्णतावाद के गढ़ बनकर रह गये थे, फिर भी वे दूसरों के सृजनात्मक विचारों के संपर्क में आये, खासकर यूनानी शास्त्रीय विचारों के, और एक हद तक उनका भारतीय व चीनी विचारों से भी संपर्क हुआ। इससे एक ऐसा बौद्धिक वातावरण बना जो विज्ञान की भावी खोजों और विकास के लिए अच्छा साबित हुआ।

लेकिन शिक्षा अभी भी कुछ ही लोगों तक सीमित थी। मध्ययुग में 'वैज्ञानिक' खोज केवल पादरी द्वारा ही की जाती थी और यह एक तरह से धार्मिक विश्वासों की पुष्टि के लिए की जाती थी। विश्वास और तर्क के बीच निरंतर बहस की स्थिति बनी रहती थी पर तर्क का प्रयोग भी आध्यात्मिक विचारों, आध्यात्मिक संदेशों और ईसाई मत के हर पहलू को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने में किया जाता था। अब हम संक्षेप में मध्ययुग की 'वैज्ञानिक प्रगति' के बारे में बताएँगे।

मध्ययुगीन विज्ञान

प्राकृतिक विज्ञानों में मध्ययुग की कुल उपलब्धियों को हम कुछ पंक्तियों में समेट सकते हैं। प्राकृतिक इतिहास और खनिजों पर कुछ टिप्पणियाँ, शिकारी चिड़ियाओं जैसे कि बाज़, उकाब आदि पर एक ग्रंथ, इब्न-अल-हैथम के प्रकाश विज्ञान में कुछ सुधार और अरस्तू के विचारों की कुछ आलोचनाएँ—यही हैं मध्ययुग की मुख्य देन। गणित और खगोल विज्ञान में अरबी बीजगणित व भारतीय अंकों का अध्ययन शुरू हुआ और टॉलमी की अल्माजेस्ट का अनुवाद किया गया। मध्ययुगीन यूरोपीय खगोल वैज्ञानिक, खगोल विज्ञान में अरबों द्वारा किए गये योगदान से ज़्यादा आगे नहीं बढ़ सके, हालांकि उन्होंने कुछ और जानकारियाँ भी दीं। उन्होंने त्रिकोणमिति व कुछ यंत्रों की रचना में योगदान दिया। लेकिन खगोल विज्ञान में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हुआ। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के पादरी और कुलपति रॉबर्ट ग्रोस्टेस्टे (Robert Grossteste, 1168-1253) मध्ययुग के प्रमुख वैज्ञानिक थे जो विज्ञान को धार्मिक सत्यों की पुष्टि का माध्यम समझते थे। उन्होंने प्रकाश पर प्रयोग किये और इसे एक दिव्य ज्योति के रूप में देखा। मध्ययुग में ऐसे कई 'वैज्ञानिक' मौजूद थे।

इससे हट कर सोचने वालों और धार्मिक विश्वासों पर प्रश्न करने वालों को विधर्मी कह कर सज़ा दी जाती थी। यहाँ तक कि इस विचार को भी विधर्मी माना जाता था कि मनुष्य बिना किसी माध्यम के, अर्थात् पादरियों आदि की सहायता के बिना भी ईश्वर तक पहुँच सकता है। इस प्रकार मध्ययुग अंधविश्वास और संकीर्ण चिंतन का काल था। सामंती समाज अपने सामाजिक, आर्थिक और बौद्धिक चरित्र में एक स्थिर समाज था। ऐसी स्थिति में मध्ययुग का विज्ञान के क्षेत्र में सीमित योगदान समझ में आता है। ऐसे समाज से समय से आगे की माँग करना निश्चय ही अन्याय होगा।

फिर भी सामंती समाज का तकनीकी स्तर निश्चय ही लौहयुग के दास समाज से ऊँचा था। वस्तुतः तकनीकी आविष्कारों को प्रोत्साहन मिलना मध्ययुग के आरंभ से शुरू हो गया। इसकी शुरुआत भूमि के बेहतर उपयोग की आवश्यकता से हुई। अब किसान और कामगार पुरानी तकनीकों में सुधार करके उन्हें इस्तेमाल कर सकते थे। मध्ययुग में दासों के न होने व गांवों में कृषि योग्य भूमि के विकास के कारण एक लंबे अरसे तक कामगारों की भारी कमी रही। अंततः मानवीय श्रम के पूरक के रूप में मशीन को खोजा गया। मानवीय श्रम में कमी के कारण पशुओं, हवा और पानी की शक्ति का प्रयोग शुरू हुआ। अतः हम पाते हैं कि मध्ययुगीन यूरोप में तकनीकी विकास काफ़ी ज़्यादा हुआ। यद्यपि इनमें से ज्यादातर पूर्व से, खासकर चीन से, आयी थीं। इससे पहले कि हम इस विकास पर और अधिक चर्चा करें, पहले यह देख लें कि अब तक हमनें क्या सीखा।

बोध प्रश्न 1

निम्नलिखित में से किन कारकों ने तकनीकी विकास की शुरुआत की और कौन-से कारक मध्ययुगीन यूरोपीय समाज में विज्ञान के बहुत कम विकास के लिए ज़िम्मेदार हैं? प्रत्येक कथन के सामने पहले वाले कारकों के लिए (त) और दूसरे वाले कारकों के लिए (वि) लिखें।

i) कृषि योग्य भूमि का विस्तार। ☐
ii) केवल पादरी ही धार्मिक विश्वासों की पुष्टि के लिए वैज्ञानिक खोज करते थे। ☐
iii) दासों के न होने के कारण कामगारों की कमी हुई। ☐
iv) कृषि दासों द्वारा भूमि के बेहतर प्रयोग की आवश्यकता। ☐
v) धार्मिक विश्वासों पर प्रश्न करना या उनके विरुद्ध बोलना अधर्म माना जाता था। ☐

सामंती समाज में तकनीकी विकास

सामंती यूरोप में प्रमुख आविष्कारों जैसे घोड़े का पट्टा, घड़ी, दिशासूचक यंत्र, बारूद, कागज़ और छपाई आदि का विकास नहीं हुआ। इनमें से ज़्यादातर का वर्णन चीन में ईसा पूर्व पहली कुछ शताब्दियों में किया जा चुका था। हमारे लिए इस प्रगति को जानना आवश्यक है क्योंकि यूरोप में इन तकनीकों ने एक क्रांति को गति दी जो सामंती व्यवस्था के पतन का कारण बनी।

(क)

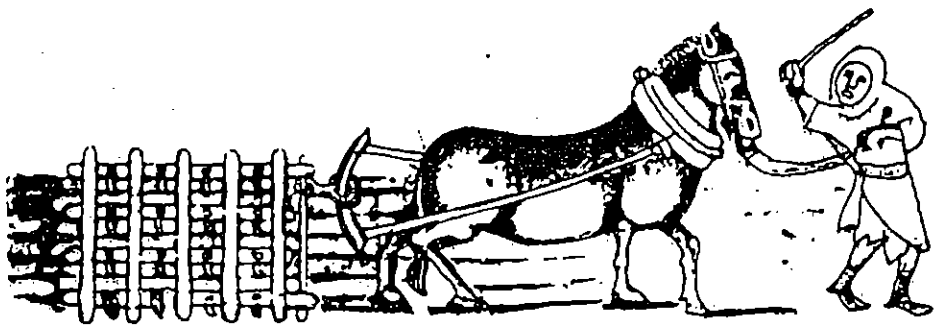

(ख)

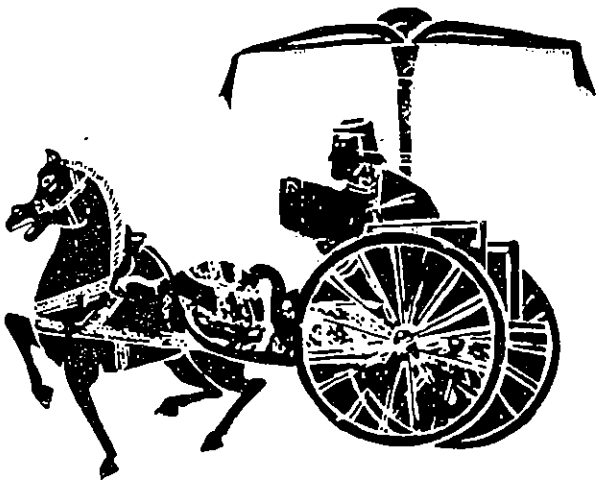

चित्र 6.1 : (क) चौदहवीं सदी में इंग्लैंड में इस्तेमाल होने वाला घोड़े का पट्टा। (ख) सुधरा हुआ घोड़े का पट्टा जिससें घोड़ा आसानी से अधिक सामान खींच सकता था।

शक्ति के प्रयोग के लिए **घोड़े का पट्टा** (horse collar) और **चक्की** (mill) मुख्य साधन थे। घोड़े के पट्टे का आविष्कार सातवीं सदी में चीन में हुआ और यह ग्याहरवीं सदी में यूरोप में पहुँचा। इससे घोड़े की बोझा ढोने व देर तक काम करने की क्षमता बढ़ी। घोड़ों ने जुताई के लिए बैलों का स्थान ले लिया और इस प्रकार कई एकड़ भूमि में खेती करना संभव हुआ। **पनचक्की** का आविष्कार भी प्राचीन काल में हुआ। पर उसका बड़े पैमाने पर प्रयोग मध्ययुग में होने लगा। **पवन चक्की** और **पनचक्की** ने मशीनी कार्य के लिए प्रकृति को नियंत्रित कर लिया। ये चक्कियाँ अनाज, पीसने, तेल निकालने व कृषि में मदद के लिए, कुओं से पानी निकालने के लिए प्रयोग की जा रही थीं। इन्हें भट्ठी में लोहा पिघलाने व लकड़ी काटने के लिए भी इस्तेमाल किया जाता था। चक्कियाँ इतनी लोकप्रिय हो गईं कि एक चक्की और चक्की वाला हर एक सामंत के क्षेत्र में होता था। गांव के लुहारों के लिए पानी और हवा की चक्कियों को बनाना व ठीक करना संभव नहीं था। इस तरह चक्की-मिस्त्रियों का एक व्यवसाय शुरू हो गया जो देश भर में चक्की बनाने व ठीक करने के लिए घूमते रहते थे। ये पहले मिस्त्री थे जो गिअरों (gears) की रचना और उनकी कार्य प्रणाली के बारे में जानते थे। उनका मशीनी घड़ियों के विकास में भी योगदान था।

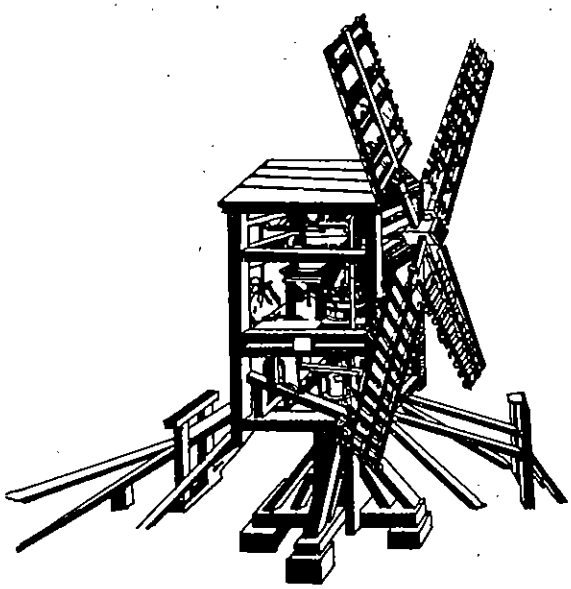

चित्र 6.2 : पवन चक्की।

जहाजरानी में **दिशासूचक** और सबसे पीछे वाली **पतवार**—ये दो आविष्कार हुए जिनका मध्ययुग की समुद्री यात्राओं पर व्यापक असर पड़ा (चित्र 6.3)। पहले समुद्री व्यापार मार्ग विभिन्न देशों के तटों (देखें इकाई 4 में चित्र 4.11) तक ही सीमित थे। इन दोनों आविष्कारों के साथ समुद्री व्यापार, अनुसंधान और यहाँ तक कि युद्ध के लिए भी समुद्री मार्ग पहली बार खुल गये। समुद्र में जहाजरानी के लिए नक्षत्रों व अक्षांशों आदि के लिए सही मानचित्रों का होना जरूरी था। बाद में इनसे खगोल विज्ञान और भूगोल के विकास को प्रोत्साहन मिला। इससे देशांतर की लंबाई को खोजने की समस्या भी पैदा हुई। दिशासूचक तथा जहाजरानी के अन्य यंत्रों की आवश्यकता ने एक नये उद्योग को जन्म दिया।

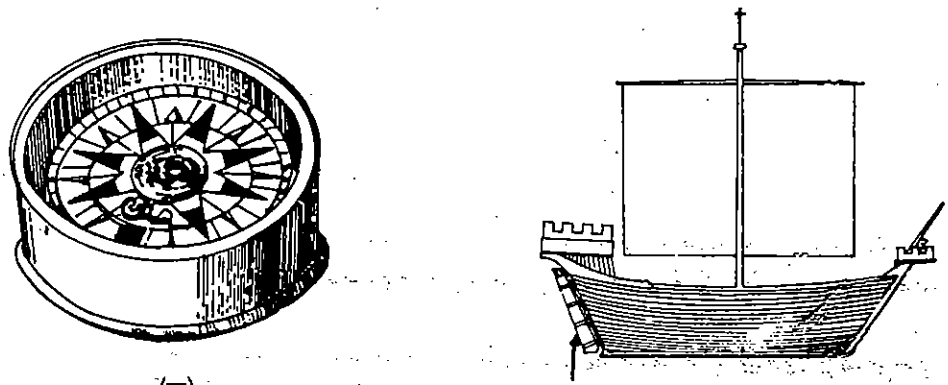

चित्र 6.3 : (क) नाविक का दिशासूचक।
(ख) तेरहवीं सदी की नाव जिसमें पीछे की तरफ की पतवार को दिखाया गया है।

यूरोपीय लोगों ने कुछ अन्य आविष्कारों का प्रयोग करके उनमें सुधार किया। इनमें लेंस व चश्में शामिल हैं। आगे चलकर इससे प्रकाश विज्ञान के अध्ययन को बढ़ावा मिला तथा अब्न-अल-हैथम के प्रकाश विज्ञान सिद्धांत की वृद्धि हुई। चश्मों की माँग से लेंस बनाने वालों व चश्में बनाने वालों के व्यवसाय को बढ़ावा मिला। इत्र और सुगंधित तेलों को तैयार करने की जानकारी पहले ही अरबों से प्राप्त की जा चुकी थी। इसके साथ ही शराब (alcohol) को तैयार किया जाने लगा। शराब की खोज ने पहले वैज्ञानिक उद्योग अर्थात् आसवन यंत्र (distillers) को बढ़ावा दिया और आधुनिक रसायन उद्योग की स्थापना में मदद की।

पूर्व से पश्चिम की ओर आये सभी आविष्कारों में राजनीतिक, आर्थिक और वैज्ञानिक दृष्टि से सबसे ज़्यादा प्रभाव बारूद का पड़ा। तोपों व बंदूकों में बारूद के इस्तेमाल से बड़े पैमाने पर शक्ति का संतुलन बदल गया। विज्ञान में बारूद के निर्माण, इसके धमाके, तोप से गोले के छूटने और उसकी उड़ान ने कई तरह की व्यावहारिक समस्याएँ खड़ी कर दीं। इन समस्याओं के हल और उनकी व्याख्या से मध्ययुगीन वैज्ञानिक सदियों तक जूझते रहे। परिणामस्वरूप बाद में यंत्र व गति संबंधी विज्ञान आये। बारूद तैयार करने के लिए शोरा (नाइटर) को सावधानी से अलग करने व शुद्ध करने की आवश्यकता से घोल और रवे तैयार करने के अध्ययन की शुरुआत हुई। बारूद में विस्फोट के लिए नाइटर ज़रूरी आक्सीजन देता है इसीलिए विस्फोट के लिए आग की तरह वायु की जरूरत नहीं थी। बारूद के विस्फोट के अध्ययन ने दहन यानी जलने की प्रक्रिया को समझने में मदद की। बाद में कुछ प्रयास श्वास प्रक्रिया जिसके द्वारा शरीर में भोजन को ऊर्जा में बदलने के लिए ज़रूरी ऑक्सीजन पहुँचती है, को समझने के लिए भी किये गये। लेकिन इन बातों को समझ पाना उस वक्त इतना आसान नहीं था। इन्होंने मध्ययुगीन रसायनशास्त्रियों की कुशलता को सबसे ज़्यादा परखा।

पूर्वी देशों से आयी दो अन्य तकनीकी जानकारियों का पश्चिमी देशों में अधिक प्रभाव पड़ा। ये **कागज व छपाई** का आविष्कार थीं। शिक्षा के प्रसार के साथ सस्ती लेखन सामग्री की माँग बढ़ी। छालटी (linen) चिथड़े अच्छे स्तर के कागज के निर्माण का आधार बने। कागज अच्छा बना और सस्ता पड़ा। कागज इतनी अधिक मात्रा में उपलब्ध हो गया कि प्रतिलिपियाँ करने वालों की कमी पड़ गयी। इसने छापे की सफलता में योगदान दिया जिसका मूल आविष्कार ग्यारहवीं सदी में चीन में हुआ था।

धातु के बदले जा सकने वाले टाइपों से छपाई का काम सबसे पहले 14वीं सदी में कोरियाई लोगों ने शुरू किया। यूरोप में यह पंद्रहवीं सदी के मध्य में शुरू हुआ और इसका तेज़ी से प्रसार हुआ। सबसे पहले इससे धार्मिक ग्रंथ और बाद में अन्य पुस्तकें भी छापी जाने लगीं। नयी सस्ती छपी हुई किताबों से पढ़ने में रुचि पैदा हुई और शिक्षा के क्षेत्र में लोगों की संख्या बढ़ी। शिक्षा के क्षेत्र में, लोगों की बढ़ती हुई संख्या तकनीकी और वैज्ञानिक परिवर्तनों का माध्यम बनी तथा इसने ही पुनर्जागरण के दौरान सामाजिक परिवर्तन भी किये।

अभी तक हमने पढ़ा कि पंद्रहवीं सदी तक कई छोटे तकनीकी परिवर्तन हो चुके थे। इससे पहले कि हम पुनर्जागरण और औद्योगिक क्रांति के अध्ययन की ओर बढ़ें, हम उत्तर मध्य काल की अर्थव्यवस्था और विचारों पर पड़े इन तकनीकी विकासों के प्रभाव को देखेंगे। यह अध्ययन इसलिए आवश्यक है क्योंकि सामंती समाज के बदलाव के बीज उसके भीतर ही मौजूद थे।

6.2.2 मध्ययुगीन अर्थव्यवस्था में परिवर्तन

नयी तकनीकों से कृषि का उत्पादन काफ़ी बढ़ा। अतः लोगों की आवश्यकता से अधिक उत्पादन होने लगा। बढ़े हुए उत्पादन से बड़े पैमाने पर व्यापार को बढ़ावा मिला जिसमें सुधरे हुए परिवहन के साधनों से मदद मिली। अन्य वस्तुओं जैसे कपड़ा, रसायन, शराब, हथियार और औज़ार बनाने के लिए लोहे के उत्पादन ने उल्लेखनीय रूप से व्यापार को बढ़ाया और इसमें विविधता भी आयी। व्यापार के बढ़ने से उन व्यापारियों को अधिक लाभ हुआ जो कच्चा माल तैयार करने वाले किसानों और शहरी कामगारों से व्यापार करते थे। बढ़े हुए मुनाफे से ज़्यादा माल तैयार करने में व ऐसी फसलों के उत्पादन को बढ़ावा मिला जो बाज़ार में अधिक लाभ के लिये बेची जा सकती थीं। बेहतर तकनीकों, बेहतर

परिवहन माध्यमों और ज़्यादा बाज़ारों के होने से वस्तुओं के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। अतः सामंती व्यवस्था में व्यापार और शहरी उत्पादक अर्थव्यवस्था विकसित हुई। ये परिवर्तन स्थानीय तथा ग्रामीण स्तर पर सामंती अर्थव्यवस्था की आत्मनिर्भरता को तोड़ने में सफल रहे।

यद्यपि ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों द्वारा उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन ग्रामीण व्यवसाय के रूप में किया जाता था तथापि बाज़ारों पर शहरी व्यापारियों का ही अधिकार था। तेरहवीं सदी के मध्य तक व्यापारी इतने धनी और शक्तिशाली हो गये थे कि व्यापार पर उनका एकाधिकार हो गया था। उन्होंने कुछ संघ (guilds) बना लिये थे और वे उनका उपयोग सस्ता माल खरीद कर उसे भारी मुनाफे से बेचने के लिए करने लगे थे। बाज़ारों के बढ़ने के साथ-साथ व्यापारियों में स्वतंत्रता और सुरक्षा से व्यापार करने की इच्छा बढ़ी। वे उन प्रतिबंधों व करों का विरोध करने लगे जो भूपति व सामंत अपने क्षेत्र से गुज़रने वाले माल पर लगाते थे। सत्ता के लिए सामंती ज़मींदारों व नये धनी व्यापारियों में चारों ओर संघर्ष हो रहे थे। धीरे-धीरे व्यापारियों की पकड़ मजबूत हो गयी। पंद्रहवीं सदी तक वे इतने शक्तिशाली हो गये थे कि उन्होंने अर्थव्यवस्था को बदलना शुरू कर दिया। सामंती अर्थव्यवस्था की विशेषता सामंतों द्वारा कृषिदासों से बलपूर्वक कृषि कराना थी। यह व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था में बदल रही थी जिसमें उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन शिल्पियों व किराये के कामगारों द्वारा कराया जाता था और वेतन का प्रचलन हो गया था।

इन आर्थिक, तकनीकी और राजनीतिक परिवर्तनों के साथ चर्च में भी परिवर्तन आए। अब तक चर्च सबसे ज़्यादा शक्तिशाली था। इसका अध्ययन और शिक्षा पर एकाधिकार था। चर्च का राज्य पर अधिकार था और सामंती व्यवस्था को बनाये रखने में उसका बड़ा हाथ था। जैसे-जैसे शहरों में बढ़ते व्यापारियों और कारीगरों से सामंती व्यवस्था के लिए ख़तरा उत्पन्न हुआ, वैसे-वैसे चर्च की शक्ति को भी चुनौती दी जाने लगी। चर्च ने इस तरह के लोगों को नास्तिक कह कर दबाने की कोशिश की। लेकिन मध्ययुग की आखिरी दो शताब्दियों में रोमन चर्च उल्लेखनीय रूप से कमज़ोर हो गया था। राजभवनों में राजा लोग रोम के केंद्रीय शासन के विरुद्ध खड़े होने लगे थे। इसमें व्यापारियों ने उनका समर्थन किया। देश का सामंती वर्ग अभी भी कट्टरपंथी चर्च से जुड़ा हुआ था। अतः चर्च की एकता को ख़तरा होना शुरू हो गया। 1378 और 1418 के दौरान ईसाई चर्च दो या तीन पोप के बीच बंट गया। चर्च की आम परिषद् को ज़्यादा अधिकार दिये गये। चर्च में बड़े पैमाने पर सुधार के आंदोलन शुरू हुए और जल्दी ही पोप और सम्राटों के बीच शक्ति के लिए संघर्ष की स्थिति आ गयी।

यह साफ है कि पंद्रहवीं सदी के आरंभ में यूरोपीय समाज सभी क्षेत्रों में बड़े परिवर्तनों की दहलीज पर था। पुनर्जागरण की बड़े ज़ोर-शोर से तैयारी की स्थिति थी। अगले भाग में हम उन परिवर्तनों के बारे में बताएँगे जो पुनर्जागरण द्वारा आए और यह जानेंगे कि कैसे उन्होंने विज्ञान की प्रगति को आकार दिया। पर क्या इससे पहले आप यह जानना चाहेंगे कि अब तक आपने क्या सीखा?

बोध प्रश्न 2

हम उन कारकों की सूची दे रहे हैं जो सामंती अर्थव्यवस्था के टूटने के लिए ज़िम्मेदार थे। खाली स्थानों को भर कर कथनों को पूरा कीजिए।

i) बेहतर तकनीकों ने ..... का उत्पादन बढ़ाया। परिवहन के बेहतर साधनों और बढ़ते बाज़ारों से ..... में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। इसने सामंती अर्थव्यवस्था की स्थानीय ..... को नष्ट कर दिया।

ii) व्यापारियों के बाज़ारों पर अधिकार और बड़े ..... ने उन्हें बहुत शक्तिशाली बना दिया। उनका संघर्ष ..... से हुआ और धीरे-धीरे वे उसमें सफल हो गये।

iii) उपभोक्ता वस्तुओं से उत्पादन व बिक्री तथा ..... के रूप में भुगतान का प्रचलन बढ़ा और इसने ..... द्वारा बलपूर्वक सेवा पर आधारित कृषि उत्पादन का स्थान ले लिया।

ऊपर हमने पढ़ा कि उत्तर मध्ययुग में बड़े तकनीकी सुधार होने से कृषि व अन्य वस्तुओं का अतिरिक्त उत्पादन होने लगा। इससे व्यापार के तीव्र विस्तार को बढ़ावा मिला, जिसमें जहाजरानी व नौसंचालन में सुधारों से और अधिक वृद्धि हुई। इसकी वजह से सामंती अर्थव्यवस्था में आर्थिक परिवर्तन हुए और एक ऐसी अर्थव्यवस्था सामने आयी जो वस्तु उत्पादन और मुद्रा द्वारा उसके भुगतान पर आधारित थी। इसी के साथ महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन हुआ। वास्तव में इन परिवर्तनों से एक ऐसे आंदोलन की शुरुआत हुई जिसने स्थायी वंशानुगत पद पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को उपभोक्ता वस्तुओं की और मज़दूरी खरीद-फरोख़्त वाली समाज व्यवस्था में बदलने की माँग की। पुनर्जागरण और सुधार इस आंदोलन के दो पहलू हैं। अब हम बताएँगे कि यह आंदोलन कैसा था और संक्षेप में, वैज्ञानिक व तकनीकी विकास पर इसके प्रभाव की जाँच करेंगे।

6.3 पुनर्जागरण (1440-1540)

पुनर्जागरण एक क्रांतिकारी आंदोलन था। इसने अतीत से निश्चित रूप से संबंध तोड़कर एक नये युग की शुरुआत की। इसने मध्ययुग की अर्थव्यवस्था, वस्तुशिल्प, कला और विचारों का त्याग किया। इसका स्थान एक नयी संस्कृति ने लिया जो अपनी अर्थव्यवस्था में पूँजीवादी थी, कला और साहित्य में शास्त्रीय थी तथा प्रकृति के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण लिये थी। अर्थ व्यवस्था में सुधार के कारण अंध युग की निराशा और आस्था के युग बीत जाने पर एक आशा के युग का सूत्रपात हुआ जिसने भौतिक सुखों को महत्व दिया। बदलते हुए सामाजिक परिवेश में पैसा पहले की अपेक्षा ज़्यादा महत्वपूर्ण हो गया। पैसा कमाने का कोई भी तरीका लाभदायक समझा जाता था, जब तक वह चल सके। वह चाहे ईमानदारी से माल तैयार करके कमाया जाए या व्यापार से, नये उपकरणों का आविष्कार करके कमाया जाए या खान खोद कर, विदेशियों को लूट कर कमाया जाए या धन को ब्याज पर देकर।

इन बदली हुई सामाजिक परिस्थितियों में कारीगरों और कलाकारों की स्थिति, प्राचीन व मध्ययुग से बेहतर हो गई। कपड़ा बनाने, बुनाई, बर्तन बनाने, कताई, काँच का सामान बनाने, खदान व धातु के काम आदि की व्यावहारिक कलाओं को सम्मान व महत्व दिया जाने लगा। इसने शिल्पियों के सामाजिक स्तर को बढ़ाया। पर बाद में सत्रहवीं सदी तक व्यापारियों और पूँजीवादियों ने उत्पादन पर अधिक से अधिक नियंत्रण करना शुरू कर दिया। फलस्वरूप कारीगरों और किसानों की स्थिति मज़दूरों जैसी हो गई थी।

पुनर्जागरण यूरोप में मध्य काल और आधुनिक काल के बीच 14वीं शताब्दी में इटली में शुरू हुआ एक आंदोलन था जो 17वीं सदी तक चला। इस समय में मानववादी पुनर्जागरण का बहुत अधिक प्रभाव हुआ जिसके कारण कला और साहित्य विकसित हुए और आधुनिक विज्ञान की शुरुआत हुई।

बौद्धिक स्तर पर यह पुनर्जागरण विद्वानों तथा कलाकारों के एक छोटे से सजग वर्ग द्वारा लाया गया था। यह वर्ग पूरी मध्ययुगीन जीवन शैली और विचारों के विरोध में खड़ा हो गया था। पुनर्जागरण ने शिल्पियों और विद्वानों की परम्पराओं के आपसी संबंध को फिर से स्थापित किया। इस तरह बदली हुई आर्थिक परिस्थितियों में कर्मियों और विचारकों के एक साथ आने से विज्ञान के तीव्र विकास के लिए स्थिति तैयार हो गयी। आइए, देखें इस काल में विज्ञान और प्रौद्योगिकी में क्या क्रांतिकारी परिवर्तन आए।

6.3.1 पुनर्जागरण के दौरान विज्ञान और प्रौद्योगिकी

विज्ञान के इतिहास का यह दौर विवेचन और आलोचना का था। सबसे पहले यूनानियों की प्राचीन विद्या का अध्ययन किया गया और यह विचार-विमर्श का केन्द्र बना। विद्वानों ने न केवल प्लेटो व अरस्तू बल्कि डेमोक्रिटस और आर्किमिडीज़ के विचारों को भी पढ़ा। इसके बाद पुरानी सत्ता के लिए चुनौती की स्थिति आयी। इसी समय कलाओं और तकनीकों का प्रसार हुआ और विज्ञान के विकास के लिए इन्होंने भौतिक साधन उपलब्ध कराए।

कला

समाज में दृश्य कलाओं जैसे चित्रकला व मूर्तिशिल्प का महत्वपूर्ण स्थान हो गया। इन्होंने विज्ञान की प्रगति पर व्यापक प्रभाव डाला। उदाहरण के लिए चित्रकारों के लिए ज्यामिति का ज्ञान होना आवश्यक था ताकि वे तीन आयामी आकृतियों को दो आयामों (two

dimensions) में बना सके। इसके लिए उन्होंने कई यांत्रिक व लेंस जैसे साधनों की सहायता भी ली। यथार्थपरक चित्र बनाने के लिए प्रकृति के विस्तृत अवलोकन की आवश्यकता थी और इस तरह भू-गर्भ शास्त्र और प्राकृतिक इतिहास की नींव पड़ी। इस समय मनुष्यों की शरीर रचना का बहुत ही विस्तृत अध्ययन किया गया।

पुनर्जागरण में कलाकारों, वास्तुशिल्पियों व इंजीनियरों का व्यवसाय अलग-अलग नहीं था। कलाकार नागरिक व सैनिक इंजीनियर भी थे। वे मूर्ति गढ़ सकते थे, बड़े-बड़े मंदिर (cathedral) बना सकते थे, पानी की निकासी के लिए रास्ते बना सकते थे, यहाँ तक कि किसी शहर पर घेराबंदी की रणनीति भी तैयार कर सकते थे। हम जानते हैं कि

(क)

(ख)

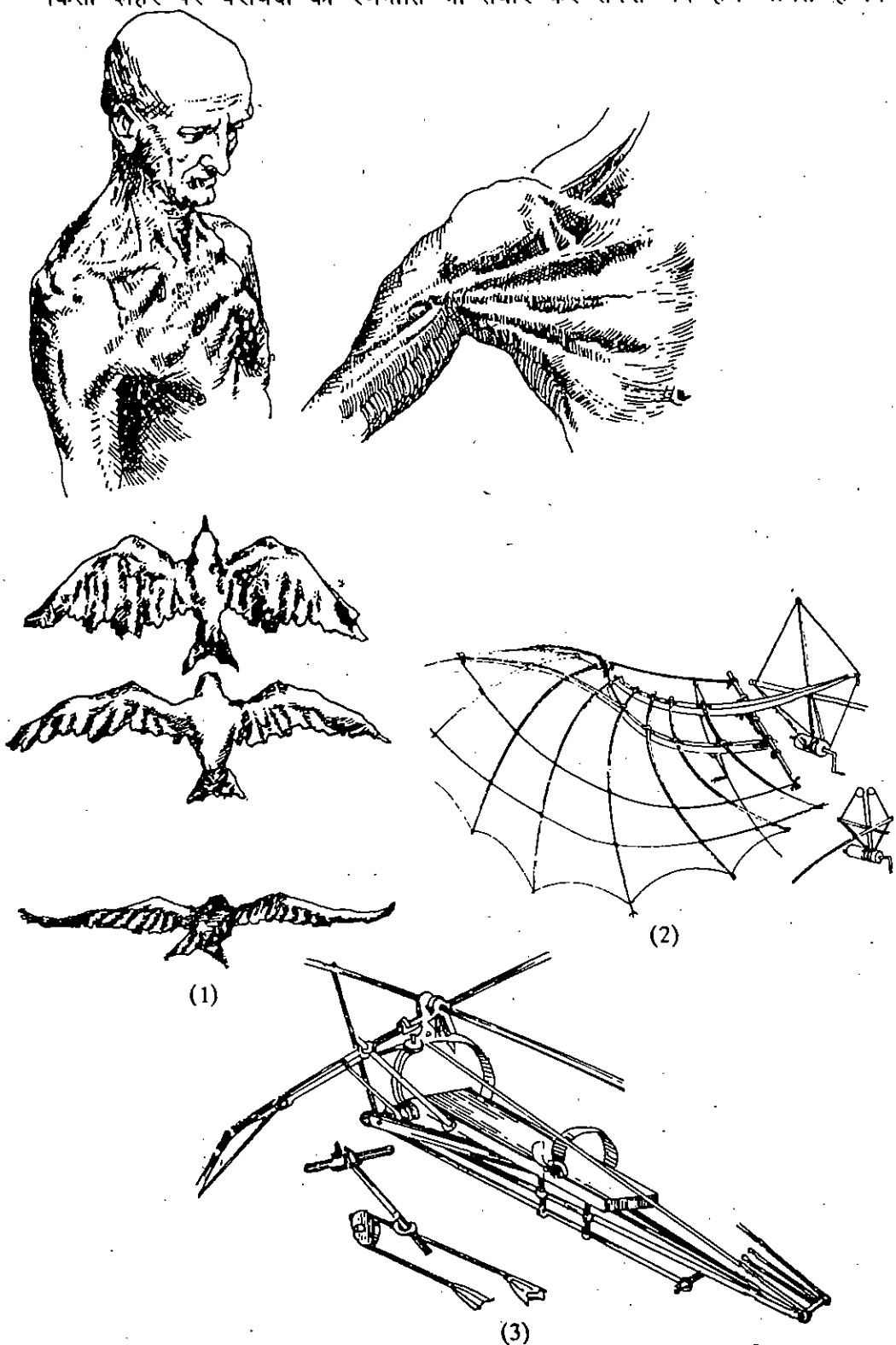

चित्र 6.4 : लियोनार्दो दा विंसी के कार्य : (क) मांसपेशियों का संरचनात्मक अध्ययन (ख) लियोनार्दो ने सबसे पहले उड़ने वाली मशीनों को डिजाइन किया; उसने कई वर्षों तक उड़ते हुए पक्षियों का अध्ययन किया (1)। एक प्रारंभिक उड़न मशीन—हस्त क्रैंक से जुड़ा लकड़ी का पंख। (2) उड़न मशीन। (3)

पुनर्जागरण के महान कलाकार लियोनार्दो द विंसी ने 'मोनालिसा' नामक सुन्दर चित्र की रचना की। उन्होंने मानव शरीर रचना, पेड-पौधों तथा यंत्रों व सैनिक उपकरणों के अध्ययन में काफी योगदान दिया (चित्र 6.4)। उनके रेखांकन इस बात का भी संकेत करते हैं कि वे इमारतें व पुल बनाने वाले धातु कामगारों व कारीगरों के काम के बहुत अच्छे निरीक्षक थे।

औषधि और प्रौद्योगिकी

प्रचलित अंधविश्वासों को सबसे पहले विश्वविद्यालयों के स्वास्थ्य संकायों में, विशेषकर इटली में तोड़ा गया। चिकित्सक लोग कलाकारों, गणितज्ञों, खगोल शास्त्रियों और इंजीनियरों में आसानी से घुलमिल गये। इन संबंधों से यूरोपीय स्वास्थ्य विज्ञान में वर्णनात्मक, शरीर रचनात्मक व यांत्रिक रुझान आया। मानव शरीर की विभिन्न तरीकों द्वारा जाँच करके उसको विच्छेदित किया गया और उसे एक बहुत बड़ी संश्लिष्ट मशीन माना गया। नया शरीर रचना विज्ञान, शरीर क्रिया विज्ञान व रोगशास्त्र प्रत्यक्ष निरीक्षण और प्रयोग पर आधारित था। इस प्रकार तत्वों और पंचभूतों जैसे प्राचीन विचार जो प्रायः हास्यास्पद होते थे और जिनके बारे में आपने इकाई 3 में पढ़ा समाप्त होने लगे।

पुनर्जागरण में प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सबसे ज्यादा प्रगति खदान, धातु विज्ञान और रसायन शास्त्र में हुई धातु की आवश्यकता ने खानें खोदने का रास्ता दिखाया, बढ़ते हुए पूंजीवादी उत्पादनों के साथ खानें बड़े पैमाने पर खोदी जाने लगीं। जैसे-जैसे खानें गहरी होने लगीं पंप व खींचने वाले उपकरण ज़रूरी होते चले गये। इसके बाद एक नई रुचि यांत्रिकी और द्रवचालित (hydraulic) सिद्धांतों में बढ़ी। लोहा, तांबा, जस्ता, बिस्मथ (bismuth), कोबाल्ट (cobalt), आदि धातुओं को पिघलाने, उनको उपयोग में लाने व अलग करने से रसायन शास्त्र के सामान्य सिद्धांत बने जिनमें आक्सीकरण, अपचयन (reduction) आसवीकरण (distillation) व पारा मिश्रित धातु की प्रक्रिया शामिल है। पहली बार धातु के मिश्रणों को औषधि में प्रयोग किया गया। दूसरे अन्य रासायनिक तत्वों जैसे कि फिटकरी व मिट्टी का अध्ययन, कपड़ा व चमड़ा उद्योग में सुधार लाने व बढ़िया बर्तन बनाने के लिए किया गया। पुनर्जागरण के अंत तक रासायनिक प्रयोगशालाओं में भट्टियाँ, भभके, आसवन उपकरण व तुलाएँ ऐसे आकार ले चुके थे जो आधुनिक काल तक लगभग इसी तरह बना रहा (चित्र 6.5)।

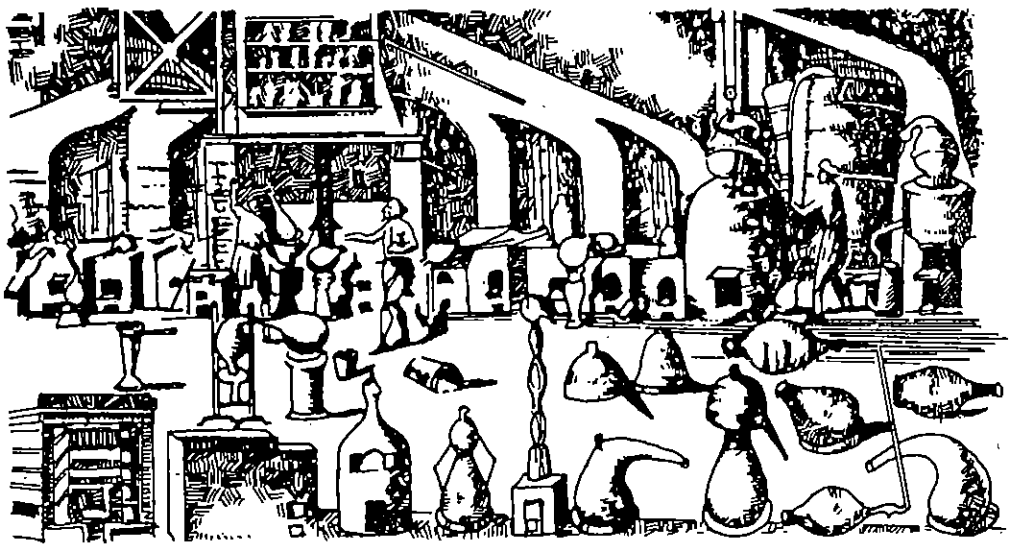

चित्र 6.5 : अठारहवीं सदी के प्रारंभ की एक रसायन प्रयोगशाला।

जहाजरानी और खगोल विज्ञान

जैसा कि हम कह चुके हैं, मध्ययुग के अंत तक भू-मार्गों और जलमार्गों द्वारा व्यापार बड़े पैमाने पर बढ़ रहा था। तुर्कों ने पंद्रहवीं सदी तक ज़मीन के व्यापारिक रास्तों पर एकाधिकार कर लिया था। इसलिए व्यापार के लिए नए समुद्री रास्तों की खोज हुई। बड़ी-बड़ी यात्राएँ की गई। हम पुर्तगाली नाविक वास्को-डि-गामा के बारे में जानते हैं जो अफ्रीका में 'केप ऑफ गुड होप' से होता हुआ 1497 में भारत पहुँचा था। इसी समय अटलांटिक समुद्र के

पश्चिम की ओर भारत पहुँचने की आशा में कोलम्बस द्वारा एक बड़ी रोमांचक यात्रा की गयी। कोलम्बस एक उत्साही, साहसी, पर निर्धन नाविक था, फिर भी वह पुर्तगाली स्पेनिश, ब्रिटिश व फ्रेंच दरबारों से इस यात्रा के लिए सहायता प्राप्त करने में सफल रहा। 1492 में वह एक महाद्वीप पर यह सोचते हुए पहुँचा कि भारत पहुँच गया। बाद में उसे अमेरिका नाम दिया गया। इन यात्राओं के साहस, रोमांच और बहुत बड़े लाभों ने नये जहाजों और जहाजरानी के उपकरणों के निर्माण के लिए भारी उत्साह पैदा किया। खगोल शास्त्र में फिर से गहरी रुचि पैदा हुई।

कोपर्निकस की क्रांति

इन विकासों के दौरान पंद्रहवीं सदी में प्राचीन विचारों की व्यवस्था में सबसे पहले दरार पड़ी। यह कोपर्निकस का योगदान था जिसने पृथ्वी और अन्य ग्रहों के अपनी धुरी पर घूमने का व केंद्र में स्थिर सूर्य के चारों ओर परिक्रमा का स्पष्ट और विस्तृत वर्णन किया था। इस मॉडल से खगोलीय गणनायें आसान व सही हो गई इस सिद्धांत के बारे में अधिक जानकारी आप इकाई 9 में पायेंगे। जैसा आप इकाई 3 व 4 में पढ़ चुके हैं इसके प्रारूप सदियों पहले यूनानी खगोल शास्त्रियों जैसे, अरिस्टारकस (Aristarchus) ने भी बनाये थे। किन्तु इन्हें इसलिए महत्व नहीं दिया गया क्योंकि ये उस समय के प्रचलित विचारों से भिन्न थे। कोपर्निकस का यह काम उनकी मृत्यु के वर्ष 1543 में प्रकाशित हुआ। हालांकि उनकी किताब की ओर कम ही लोगों ने ध्यान दिया और उसके प्रारूप पर कई आपत्तियाँ भी हुई, पर उनके काम ने आगे गैलीलियो को इस विषय पर काम करने के लिए बहुत प्रेरित किया। हम गैलीलियो के काम के बारे में आगे भाग 6.4 में चर्चा करेंगे।

चित्र 6.6 : निकोलस कोपर्निकस

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि वैज्ञानिक क्रांति के पहले चरण में पुराने ढंग का चिंतन अस्वीकृत होता गया। पुराने विचारों को छोड़कर पुनर्जागरण के लोगों ने आने वाली सदी के नये विचारों के लिए रास्ता दिखाया। पुनर्जागरण ने विज्ञान के भावी विकास में उसके व्यावहारिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी माहौल बनाया। यहाँ से विज्ञान व्यापार और युद्ध की ज़रूरत बन गया। बाद में इसका उपयोग उत्पादन, कृषि और औषधि तक में होने लगा।

बोध प्रश्न 3

i) पुनर्जागरण के दौरान हुए पांच महत्वपूर्ण वैज्ञानिक और तकनीकी विकासों की सूची बनाइए।

ii) कोपर्निकस की क्रांति क्या थी ?

.....

.....

.....

.....

.....

6.4 पुनर्जागरण के बाद विज्ञान (1540-1760)

जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, सुधरी हुई तकनीकों और बढ़ते व्यापार के कारण गन्ने की खेती, दासों, सोने, चांदी, मसालों और अन्य वस्तुओं की खोज में कई बड़ी यात्राएँ हुईं। इनमें सबसे ज्यादा दूरगामी प्रभाव कोलम्बस की 1492 में की गई यात्रा का था जिसके परिणामस्वरूप बहुत से यूरोपीय नागरिक अमरिका जाने लगे। वहाँ वे जंगल साफ करके बस गये और अफ्रीकी लोगों का शोषण करके गन्ने और तम्बाकू की खेती शुरू कर दी। अफ्रीकी लोगों को बलपूर्वक ज़हाजों पर लादकर ले जाया गया और गुलामों के रूप में बेच दिया गया। गुलामों के रूप में लोगों की चोरी, बिक्री और शोषण से भयानक पीड़ा जनक स्थितियाँ पैदा हुईं। फिर भी यह सब बेशर्मी से चलता रहा, क्योंकि तब उपनिवेशों से भारी मुनाफा था। पैसा यूरोप में ज़हाजों के निर्माण, खानों और अन्य वस्तुओं के उत्पादन में लगाने के लिए जमा किया जाने लगा।

इस विकास से व्यापारी वर्ग इतना ताकतवर हो गया कि दो तीन सदियों में वह सामंतों और ज़मींदारों को उनके सत्ता क्षेत्रों से हटाने में सफल हो गया। सामाजिक तनाव, किसानों के विद्रोह, धार्मिक युद्ध और नये उपनिवेश प्राप्त करने की दौड़, मध्ययुग के सामंती समाज को 18वीं सदी के पूँजीवादी समाज में बदलने की भूमिका अदा कर रहे थे। प्रमुख उत्पादन के तरीकों के रूप में पूँजीवाद का विकास, प्राकृतिक विज्ञान की नई पद्धति जिसमें प्रयोग और प्रेक्षण शामिल हैं, से जुड़ा है।

सोलहवीं सदी के मध्य से लेकर अठारहवीं सदी के मध्य तक विज्ञान के नवीन प्रेक्षणात्मक, प्रयोगात्मक दृष्टिकोण को पहली बड़ी सफलताएँ मिलीं। इस नयी दृष्टि के साथ विज्ञान और प्रौद्योगिकी के पुनर्जागरण में विकास को 'वैज्ञानिक क्रांति' कहा गया। तकनीक के क्षेत्र में यह काल बिना क्रांतिकारी आविष्कारों के एक सम गति से बढ़ रहा था। लोहे की बढ़ती माँग से नई भट्टी का विकास हुआ। लोहे को पिघलाने के लिए लकड़ी की कमी से कोयले के व्यापक प्रयोग को बढ़ावा मिला। उसके बाद से उद्योग कोयला क्षेत्रों की ओर केंद्रित हो गये। समय के साथ सीमित साधनों की माँग बढ़ी और फिर नये साधनों और नई तकनीकों की खोज होने लगी। इन बातों से नई चीजों और नवीनता के प्रति, जिन्हें अभी तक ओछी नज़र से देखा जाता था, लोगों का रवैया बदलने लगा। आपको याद होगा कि संकीर्ण सामंती समाज में नये विचारों और परिवर्तन का विरोध होता था।

इसी वातावरण में यूरोपीय विज्ञान विकसित हुआ। विज्ञान पढ़ाने का पहला संस्थान ग्रेशम कालेज इंग्लैंड में 1579 में खोला गया। जैसा कि हमने ऊपर देखा कोपर्निकस के क्रांतिकारी सौरमंडल के प्रारूप ने खगोलशास्त्रीय तालिकाओं को सुधारने में बड़ी मदद की। इस सिद्धांत में सिर्फ ग्रहों की कक्षा के सही वर्णन का अभाव था। इस कमी को टाइको ब्राहे (Tycho Brahe 1546-1601) और उसके सहायक योहान कैपलर (Johannes Kepler 1571-1630) ने पूरा किया। ब्राहे ने खास तरह से बने यंत्र की मदद से सितारों और ग्रहों की स्थिति के सही प्रेक्षणों को एक श्रेणी में संग्रहित किया। उसके निष्कर्षों पर कैपलर ने कार्य किया। कैपलर ने पाया कि प्रेक्षणों का वर्णन तभी संभव है जब कक्षाओं को अंडाकार बनाया जाये। इस प्रकार उसने वृत्ताकार कक्षाओं के विचार से भिन्न विचार रखा। कैपलर के ग्रहों की गति से संबंधित नियमों ने पुराने पूर्ण वृत्ताकार गति के यूनानी विचार को भारी आघात पहुँचाया।

इस समय टेलीस्कोप का आविष्कार हुआ जो इस काल का महानतम वैज्ञानिक उपकरण सिद्ध हुआ। पडुआ में भौतिक शास्त्र और सैनिक इंजीनियरिंग के प्रोफेसर गैलीलियो गैलिली (1564-1642) के हाथ में आकर यह विज्ञान में क्रांति का माध्यम बन गया। इसकी मदद से गैलीलियो देख सके कि चंद्रमा पूर्ण गोल आकार का और चिकना नहीं है। उसमें पहाडियाँ और घाटियाँ हैं। उन्होंने यह भी देखा कि बृहस्पति के चारों ओर चार चंद्रमा ठीक कुछ उसी तरह घूम रहे थे, जैसा कि कोपर्निकस ने पृथ्वी के सूर्य के चारों ओर घूमने के बारे में कहा था। 1610 में महीने भर के अंदर उन्होंने (सिडरियस ननटियस)अर्थात् 'सितारों का संदेशवाहक' नाम से अपने प्रेक्षणों की पुस्तक प्रकाशित की। इससे भारी उत्तेजना फैली क्योंकि यह एक तरह से 2000 वर्ष पुराने इस विचार के लिए चुनौती थी कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता है।इसने सृष्टि से संबंधित इस विचार को भी चुनौती दी थी कि पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्य को ईश्वर ने बनाया है, इसलिए सारे ब्रह्माण्ड द्वारा पृथ्वी की परिक्रमा करना स्वाभाविक रूप से विश्वसनीय था।

चित्र 6.7 : गैलीलियो गैलीली

गैलीलियो का एक और विस्तृत कार्य 1632 में "डायलाग कनसर्निंग द टू चीफ सिस्टम्स आफ द वर्ल्ड, द टॉलमिक एंड द कोपर्निकन" (Dialogue concerning the Two Chief Systems of the World, The ptolemaic and Copernican), के नाम से प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने विश्व के बारे में दो प्रमुख प्रणालियों टॉलमी और कोपर्निकस के बारे में चर्चा की थी। यह पुस्तक पोप को समर्पित थी। इसमें उन्होंने टॉलमी के प्राचीन ब्रह्माण्ड विज्ञान की आलोचना की थी और उसका मजाक उड़ाया था। गैलीलियो की इस चुनौती को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सका। पृथ्वी और ग्रहों की गति से संबंधित शैक्षिक विचारों के अलावा और भी बहुत कुछ था जो दांव पर लगा था। यदि एक चुनौती छोड़ भी दी जाती तो अन्य चुनौतियाँ उठ खड़ी होतीं। फलस्वरूप चर्च से संघर्ष शुरू हो गया और गैलीलियो पर मुकदमा चला। उन्हें धिक्कारा गया, और अपने शब्द वापस लेने पर मजबूर किया गया।

गैलीलियो का मुकदमा धार्मिक मतों और विश्लेषित वैज्ञानिक आंकड़ों एवं सिद्धांतों का संघर्ष था। यह संयोग हो सकता है कि जिस वर्ष गैलीलियो की मृत्यु हुई, उसी साल न्यूटन का जन्म हुआ। जैसा कि हम आगे पढ़ेंगे, न्यूटन ने गैलीलियो की वैज्ञानिक परंपरा को चलाये रखा और गति का संपूर्ण वैज्ञानिक सिद्धांत दिया। यह सिद्धांत सभी वस्तुओं पर लागू होता था, चाहे आकाश में ग्रह हो या पृथ्वी पर कोई वस्तु। इन सबसे साबित होता है कि तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में चर्च के लिए वैज्ञानिक परंपरा को दबाना आसान नहीं रह गया था। जबकि पहले गिओर्डानों ब्रूनों (1548-1600) को जला कर मार दिया था और कैम्पनला (1568-1639) को अरस्तू के सर्वमान्य विचारों का विरोध एवं कोपर्निकस के सिद्धांत का समर्थन करने के लिए सालों एक जेल में रखा गया, वहाँ अब गैलीलियो को अपने एक मित्र के महल में कुछ समय के लिए कैद होना पड़ा था। न्यूटन के समय तक चर्च ने विज्ञान में दखल देना लगभग बन्द कर दिया था।

गैलीलियो ने चर्च द्वारा मुकदमा चलाये जाने के बाद दोषी ठहराये जाने पर भी प्रयास जारी रखा। उन्होंने यह बताने की कोशिश की कि कोपर्निकस प्रणाली कैसे सही है। इसके लिए यह बताना आवश्यक था कि पृथ्वी का विपरीत दिशा में घूमना शक्तिशाली हवा पैदा नहीं करता है और कैसे कोई वस्तु हवा में फेंके जाने पर वहीं नहीं रह जाती। इससे किसी वस्तु की गति का गंभीर अध्ययन शुरू हुआ। गैलीलियो सावधानी से किये गये प्रयोगों के आधार पर किसी वस्तु की गति का गणितीय विवरण तैयार करने में सफल रहे। उनके जीवन का यह प्रमुख कार्य 'डायलॉग आन टू न्यू साइन्स' (Dialogue on Two New Sciences) नामक पुस्तक में वर्णित है। गैलीलियो ने सभी प्रचलित विचारों पर सवाल उठाये। उन्होंने ऐसा नये तरीके अर्थात् प्रयोग के तरीके से किया। जब गैलीलियो के प्रयोगों ने अपेक्षित परिणाम नहीं दिये, तब भी उन्होंने उन प्रयोगों को छोड़ा नहीं। इसके बजाय उन्होंने अपने ही तर्कों को फिर से परखा इससे प्रयोगात्मक विज्ञान की नींव पड़ी।

गैलीलियो और कैपलर वस्तुओं की गति का गणितीय विवरण तैयार कर सकते थे क्योंकि वे उस नए गणित के विद्वान थे जिसका पुनर्जागरण के दौरान विकास हो चुका था। अरबों से प्राप्त बीजगणित, ज्यामिति और दशमलव प्रणाली, साथ ही नेपियर (1550-1617) द्वारा तैयार लॉगरिथम ने नक्षत्रों की गणनाओं को आसान कर दिया। चालीस वर्ष बाद न्यूटन ने विश्वव्यापी गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत के साथ कैपलर के प्रेक्षण के नियमों और गैलीलियो के वर्णन को जोड़ा। हम इसके बारे में आगे चर्चा करेंगे।

इस काल में कुछ और वैज्ञानिक विकास हुए। प्रयोगात्मक रूप से पहली बार चुम्बकत्व का अध्ययन हुआ। दूसरा महत्वपूर्ण विकास विलियम हार्वे (1578-1657) द्वारा मानव शरीर में रुधिर संचरण की खोज था। यह गालेन के विचारों से बिल्कुल भिन्न था जिनका वर्णन हम इकाई 3 में कर चुके हैं। एक बिल्कुल नये दृष्टिकोण से मानवीय शरीर की जाँच की गयी जो यंत्रों के पंप और वाल्व के सिद्धांत पर आधारित था। परिणामस्वरूप शरीर रचना विज्ञान और शरीर क्रिया विज्ञान का जन्म हुआ।

सत्रहवीं सदी के उत्तर मध्यकाल में हुए विकासों से आधुनिक विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में अगले पचास वर्षों में गतिविधियों की एक बाढ़-सी आ गयी। इंग्लैंड और फ्रांस की स्थिर सरकारों ने भी इसमें योगदान दिया। उस समय की वैज्ञानिक क्रियाकलापों के ये दो प्रमुख केंद्र थे। ब्रिटेन में व्यापारियों ने ज़मींदारों से समझौता कर लिया जिसमें राजा संवैधानिक शासक बन गया। अर्थव्यवस्था पर व्यापारियों का अधिकार था पर सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि कुशल शिल्पकारों के बीच से उत्पादकों का एक नया वर्ग पैदा हो रहा था। दरबारी और विश्वविद्यालयों के विद्वान जो बीते समय के राजाओं पर निर्भर थे। उनका स्थान स्वतंत्र साधनों वाले लोग ले रहे थे। इनमें ज़्यादातर व्यापारी ज़मींदार, डॉक्टर, वकील और कुछ अन्य लोग थे। इन्होंने विज्ञान के लिए धन दिया। जैसे इनकी संख्या बढ़ी वे विचार-विमर्श और विचारों के आदान-प्रदान के लिए इकट्ठा होने लगे। अतः पहली वैज्ञानिक संस्थाओं के रूप में लंदन के रायल सोसाइटी (1662) और फ्रैंच रायल अकादमी (1666) की स्थापना हुई। इन्होंने अपने समय की तकनीकी समस्याओं जैसे पंपिंग और द्रव-इंजीनियरी, तोपखाने और ज़हाजरानी पर अपने अध्ययन को केंद्रित किया। विज्ञान में पहली बार लगा कि किसी भी वस्तु को उसकी पूरी जाँच करने पर सुधारा जा सकता है।

फिर भी, कुछ क्षेत्रों में विशेष ध्यान दिया गया। इन सबका संबंध सीधे व्यापार और उत्पादन को बढ़ाने की आवश्यकता से था। इसमें सबसे बड़ा क्षेत्र खगोल विज्ञान का था जो समुद्री ज़हाजरानी के लिए ज़रूरी था। अतः न्यूटन ने खगोलशास्त्र के विकास से ब्रह्माण्ड की नयी गणितशास्त्रीय व्याख्या की। विज्ञान की यह एक प्रमुख विजय थी।

सत्रहवीं सदी की सबसे बड़ी विजय यांत्रिकी की एक सार्वभौमिक प्रणाली का विकास था। यह प्रणाली विश्वव्यापी नियमों और सिद्धांतों के आधार पर आकाश में ग्रहों के साथ-साथ पृथ्वी पर पदार्थ की गति की व्याख्या कर सकती थी। उस समय के बड़े-बड़े वैज्ञानिकों, गणितज्ञों, और खगोलशास्त्रियों—गैलीलियो, कैपलर, देकार्त, हुक, हायगेन्स, हेली, और वारेन ने इस यांत्रिकी की प्रणाली को समझने के लिए कार्य किया। अंत में न्यूटन ने इन महान लोगों के कार्य को आधार बनाते हुए ब्रह्माण्डीय गुरुत्वाकर्षण के अपने सिद्धांत को अपनी पुस्तक 'डी फिलॉसाफी नेचुरलिस प्रिंसीपिआ मैथमेटिका' (De Philosophiae Naturalis Principia Mathematica), में सिद्ध किया।

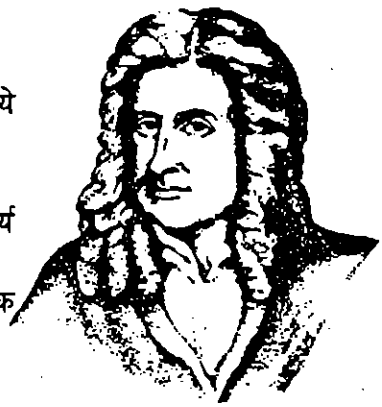

चित्र 6.8 : आइज़क न्यूटन

न्यूटन का सार्वभौम गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत सभी कणों या वस्तुओं पर लागू होता था चाहे ये पृथ्वी पर हों, सूर्य पर हों अथवा ब्रह्माण्ड में कहीं भी विद्यमान हों। न्यूटन की यांत्रिकी में इस ब्रह्मांड की सभी वस्तुओं की गति के बारे में सुसंबद्ध व्याख्या की गयी। न्यूटन की यांत्रिकी द्वारा किसी भी गतिशील वस्तु का मार्ग निर्धारित करना संभव था, यदि उस पर कार्य कर रहे सभी बल मालूम हों। न्यूटन के गति संबंधी नियम अब विश्व भर में सभी विज्ञान पाठ्यक्रम में पढ़ाये जाते हैं। न्यूटन के कार्य का तात्कालिक व्यावहारिक परिणाम यह रहा कि चंद्रमा और ग्रहों की स्थिति को कम से कम प्रेक्षणों द्वारा ज़्यादा सही ढंग से निर्धारित किया जा सकता था। यह विविध यंत्रों के डिजाइन और ढांचों को तैयार करने का भी आधार बना जिन्हें आज प्रयोग किया जाता है और आने वाली कई सदियों तक किया जाएगा।

न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत और उसके खगोलशास्त्र संबंधी योगदान द्वारा अरस्तू की ब्रह्मांड संबंधी धारणाओं को पूरी तरह अस्वीकार कर दिया गया। न्यूटन ने ब्रह्माण्ड का एक गतिशील विचार स्थापित किया जिसमें सभी वस्तुएँ समय के साथ बदल रही थीं। फिर भी उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्न नहीं उठाया। उनकी दुनिया एक साधारण नियम से चालित थी, फिर भी उसे पैदा करने और चलाने के लिए एक दैवीय दखल की आवश्यकता थी। उनके सिद्धांत नें इस बात की व्याख्या नहीं की कि ग्रह एक ही गति से क्यों चलते रहते हैं। उन्होंने स्वयं मान लिया कि यहँ व्यवस्था ईश्वर की इच्छा के कारण थी। न्यूटन ने महसूस किया कि उन्होंने देवीय योजना का उद्घाटन कर दिया था और आगे प्रश्न करने की इच्छा ज़ाहिर नहीं की। न्यूटन के समय तक पुनर्जागरण की आलोचना का दौर पूरा हो चुका था। धर्म और विज्ञान के बीच एक नया समझौता खोजा गया। न्यूटन के कार्य ने इस समझौते को आधार दिया। यह उन्नीसवीं सदी तक बना रहा जब तक डार्विन ने उसे उलट नहीं दिया।

कुछ अन्य विकास भी हुए जैसे प्रकाश विज्ञान के क्षेत्र में और प्रकाश के सिद्धांत का प्रतिपादन, इनका टेलीस्कोप के रूप में खगोल विज्ञान और सूक्ष्मदर्शी के रूप में प्राणी विज्ञान से घनिष्ठ संबंध था। सत्रहवीं सदी के दौरान प्रकाश विज्ञान का विकास पथ-अपवर्तन (refraction) को समझने की कोशिश से हुआ। इसी समय प्रकाश की प्रकृति के संबंध में सिद्धांत प्रतिपादित किये गये। इसी समय वातीय विज्ञान (pneumatics) का अध्ययन हुआ जिसका संबंध गैसों के यांत्रिक गुणों से था क्योंकि इसके साथ निर्वात (vacuum) का अध्ययन करना भी महत्वपूर्ण था। पंप के इस्तेमाल से निर्वात उत्पन्न करने की विधि ने रॉबर्ट बॉयल को वायु का अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। इस अध्ययन के कारण वे गैस नियमों का प्रतिपादन करने में सफल हुए, जो कि एक ऐतिहासिक कार्य था। रॉबर्ट हुक जो बॉयल के सहायक थे, उस समय के महानतम प्रयोगात्मक भौतिक शास्त्री थे। उनकी रुचि यांत्रिकी, भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र और जीव विज्ञान आदि सभी में थी पर वे प्रत्यास्थता (elasticity) पर अपने अध्ययन से ही अधिक जाने गये।
सूक्ष्मदर्शी के आने से जीव विज्ञान के क्षेत्र में भारी प्रगति हुई छोटे जीवों का निरीक्षण व बड़ों की शरीर रचना का सही ज्ञान किया गया। रसायन शास्त्र में फास्फोरस का संयोगवश उत्पादन हुआ और नयी धातुएँ जैसे, बिस्मथ और प्लैटिनम की खोज हुई। नये रसायनों की माँग से रसायन उद्योग का विकास हुआ।

बोध प्रश्न 4

नीचे पुनर्जागरण के बाद के वैज्ञानिकों के नामों की सूची कॉलम 1 में दी गयी है तथा उनके कार्यों की सूची कॉलम 2 में। इनका उचित मेल कीजिए।

कॉलम 1	कॉलम 2
क) टाइको ब्राहे	i) लघुगणक की सूची का विकास किया
ख) योहान कैपलर	ii) ग्रहों की गति के प्रेक्षण किये
ग) गैलीलियो गैलिली	iii) ग्रहों की गति के नियमों की खोज की
घ) जॉन नेपियर	iv) गैस नियमों को बनाया
ङ.) विलियम हार्वे	v) सौर मंडल का सूर्य केंद्रित प्रारूप स्थापित किया वस्तुओं की गति का गणितीय विवरण दिया
च) आइज़क न्यूटन	vi) पदार्थ के लचीले गुणों के नियम को खोजा
छ) राबर्ट बॉयल	vii) रूधिर संचरण की खोज की
ज) राबर्ट हुक	viii) सार्वभौम गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत को प्रतिपादित किया

अतः हम पाते हैं कि वैज्ञानिक क्रांति के इस काल में प्रेक्षण और प्रयोग पर आधारित विज्ञान के प्रति नयी दृष्टि ने बहुत क्षेत्रों जैसे यांत्रिकी, खगोल शास्त्र और जीव विज्ञान में कई नये रास्ते खोले। उन्होंने भावी गतिविधियों के लिए भी वातावरण तैयार किया जिसने आधुनिक विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों को जन्म दिया। उस समय की यूरोपीय सामाजिक परिस्थितियाँ भी विज्ञान के विकास में सहायक थीं। अब हम यूरोपीय समाज के कुछ पहलुओं की चर्चा करेंगे, जिन्होंने विज्ञान के तीव्र विकास में मदद की।

6.4.1 यूरोप में विज्ञान का विकास क्यों हुआ

पंद्रहवीं सदी से लेकर सत्रहवीं सदी के दौरान नये विज्ञान के विकास को देखते हुए हम कह सकते हैं कि विज्ञान का जन्म क्यों, कब और कहाँ हुआ। हमने देखा कि यह उद्योग और व्यापार के पुनर्जन्म के साथ-साथ आया। बढ़ते व्यापार के मुनाफे और सफल यात्राओं से प्राप्त धन को ऐसी गतिविधियों पर लगाया जा रहा था जो एक बौद्धिक वातावरण बना रही थीं। पूँजीवाद के साथ-साथ आधुनिक विज्ञान का जन्म हुआ। सत्रहवीं सदी के व्यापारियों व कुलीन वर्ग ने उत्पादकों के एक लगनशील समूह के लिए मार्ग तैयार किया। इन्होंने परंपरागत तकनीकों का विकास और उपयोग अगली सदी में किया। राजनीति की ही तरह विज्ञान में भी परंपरागत तरीके छोड़ने का अर्थ था, नये व अभी तक अनजाने रास्तों पर चलना। नये वैज्ञानिकों के लिए दुनिया का कोई हिस्सा बहुत दूर नहीं था, कोई काम बहुत साधारण और हीन न था। ये वैज्ञानिक आपस में विचार-विमर्श करते थे, उनके द्वारा स्थापित संस्थाओं और जर्नल (journal) से विज्ञान के विकास में बहुत मदद मिली।

विज्ञान का प्रसार चर्च की आंतरिक गड़बडियों और बिखराव तथा व्यापारी वर्ग और उसकी शक्ति के बढ़ने से भी हुआ। शुरू में चर्च का वैज्ञानिक विचारों के प्रति विरोध ज़्यादा था जैसा कि गैलीलियो के मुकदमे और ब्रूनो को दण्ड दिये जाने से साबित होता है जिसने यह बात कही थी कि हमारी दुनिया की तरह आकाश में और दुनिया भी हो सकती है, पर प्रेक्षणों पर आधारित नये वैज्ञानिक सोच को रोका नहीं जा सकता था।

जैसा कि हम कह चुके हैं, विज्ञान और धर्म के बीच एक समझौता किया गया अतः विज्ञान और धर्म के सह-अस्तित्व के रास्ते और साधन खोजे गये। इसका आधार यह बना कि विज्ञान को उन्हीं विषयों पर काम करना चाहिए जो इन्द्रियों को प्रभावित करते हों पर उसे आध्यात्मिक व सौंदर्यपरक विषयों को एक तरफ छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार एक कृत्रिम विभाजन किया गया जिसे हम आज विज्ञान, सामाजिक विज्ञान कला और मानविकी के रूप में देखते हैं। दूसरी ओर न्यूटन के बाद वैज्ञानिक धर्म के हस्तक्षेप के बिना ज़्यादा स्वतंत्र होकर काम कर सकते थे। हम देख चुके हैं कि वैज्ञानिक संगठन विज्ञान की प्रगति को लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से बनाये जाते थे।

इस युग में विज्ञान की सफलता का कारण यह भी था कि वस्तुओं का उत्पादन करने वाले लोग और उत्पादन में इस्तेमाल होने वाले पदार्थों का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिक मिल जुल

कर काम करते थे। यह इस वजह से हुआ कि भारी मुनाफे का स्रोत होने के कारण शारीरिक श्रम को सामाजिक गौरव मिला। आर्थिक और सामाजिक दुनिया प्राचीन और सामंती वंशानुगत व्यवस्था से एक ऐसी व्यवस्था में बदल गयी जहाँ प्रत्येक मनुष्य समाज में अपना स्थान जानता था। अब यह व्यक्तिगत उद्यम की दुनिया थी जहाँ प्रत्येक मनुष्य को उसके काम के अनुसार पैसा दिया जाता था।

यूरोप में इस सनसनीखेज विकास के दो पहलू थे। उद्योग और उत्पादन के विस्तार के परिणामस्वरूप बाज़ारों की खोज यूरोपीय लोगों को एशिया के कई देशों, अफ्रीका और उत्तर व दक्षिण अमरीका ले गयी। उपनिवेश बने और उनकी समृद्धि के बजाय यूरोप के देशों की समृद्धि बढ़ने लगी जिससे इन यूरोपीय देशों के आम आदमी की माली हालत बेहतर होने लगी । दूसरी ओर उपनिवेशों का यह दुर्भाग्य था कि उनके शिल्प और उद्योग बर्बाद हो गये और प्राकृतिक साधनों का उपयोग शासक देशों के लिए होने लगा। भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का औपनिवेशिक शासन जग ज़ाहिर है। भारत की भारी गरीबी और अभाव के मूल में हमारे देश और जनता का औपनिवेशिक शोषण ही है। हम इसके बारे में आगे इकाई 7 में चर्चा करेंगे।

अब हम अठारहवीं सदी के दूसरे हिस्से में यूरोप की खासकर ब्रिटेन में हुई "औद्योगिक क्रांति" की प्रमुख घटना के बारे में बताएँगे। इसकी शुरुआत बड़े पैमाने पर भाप से चलने वाली मशीनों के इस्तेमाल से हुई। परिणामस्वरूप उत्पादन के साधनों और तरीकों में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। इसके कारण समाज के ढाँचे में भी गंभीर परिवर्तन हुए।

6.5 औद्योगिक क्रांति (1760-1830) और उसके बाद

सबसे पहले हम इस काल के सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के बारे में संक्षेप में विचार करेंगे ताकि विज्ञान के विकास को सही दृष्टिकोण से देखा जा सके। सत्रहवीं सदी से ही नये पूँजीवादी तरीके के उत्पादन की उन्नति के लिए तैयारी हो चुकी थी। उत्पादन, व्यापार और व्यवसाय पर सामंती और शाही प्रतिबंध हट चुके थे। बुर्जुआ वर्ग ने कड़े राजनीतिक, धार्मिक और बौद्धिक संघर्ष के बाद ही पूँजीवादी अर्थव्यवस्था विकसित करने में विजय पायी।

ब्रिटेन में अठारहवीं सदी तक शहरों के मध्यवर्ग के लोग सामंती सीमाओं से पूरी तरह से मुक्त हो चुके थे। वे सारी दुनिया में अपने उत्पादों के लिए बढ़ते बाज़ारों की पूर्ति करने के लिए, उत्पादन से मुनाफा कमाने के लिए उसमें पैसा लगा सकते थे। वह समय महान् तकनीकी आविष्कारों का समय था क्योंकि बहुत से प्रतिबंध हटा दिये गये थे और लाभदायक उद्यमों में पैसा लगाया जा रहा था।

इस प्रकार, हम पाते हैं कि अठारहवीं सदी के मध्य तक वस्तुओं के उत्पादन में धीरे-धीरे होने वाले परिवर्तनों ने एक तीव्र परिवर्तन को जन्म दिया। सोलहवीं और सत्रहवीं सदी के दौरान क्रांति में आए प्रयोगात्मक विज्ञान के नये तरीकों का आम जीवन में प्रसार हो चुका था। उनके उपयोग ने नयी तकनीके ईजाद करने में उत्पादन के साधनों में काफ़ी परिवर्तन कर दिया जिसे हम औद्योगिक क्रान्ति कहते हैं। औद्योगिक क्रांति को शिल्पी आविष्कारों ने रूप दिया। कामगार पहली बार अपनी सीमित इकट्ठी या उधार ली हुई पूँजी के सहारे उत्पादन प्रक्रिया को बदलने और आगे बढ़ाने का दावा रख रहे थे। छोटे शिल्पियों के उत्पादन के ऊपर भी व्यापारियों का अधिकार खत्म हो रहा था।

प्रारंभ में औद्योगिक क्रांति वैज्ञानिक उन्नति का परिणाम नहीं थी। यह मुख्यत: उद्योगों में विकास, खासकर उस समय में प्रमुख उद्योग, वस्त्र उद्योग से आयी। पुराने उद्योग, वस्त्रों की बढ़ती माँग की पूर्ति कर पाने में समर्थ नहीं थे। साथ ही 1750 तक उद्योग एक नये रेशे यानी कपास का इस्तेमाल करने लगे। इससे पहले सूती कपड़े भारत से आयात किये जाते थे। भारत से सूती कपड़ों के आयात के प्रतिबंध के साथ ब्रिटेन में सूती कपड़ों का तेज़ी से उत्पादन बढ़ा। सूत के इस्तेमाल के लिए नई तकनीकों की ज़रूरत पड़ी। सूती उद्योग में ही

मानवीय श्रम के स्थान पर मशीनों को उत्पादन के लिए इस्तेमाल करने के असीमित अवसर थे। इस प्रकार दशकों से हो रहे तकनीकी परिवर्तनों से कई बुनाई और कताई के उपकरणों को लगाने का विचार सामने आया। जैसे ही मशीनों का प्रचलन हुआ, हाथ से किये जाने वाले काम का चलन काफ़ी घट गया (चित्र 6.9)।

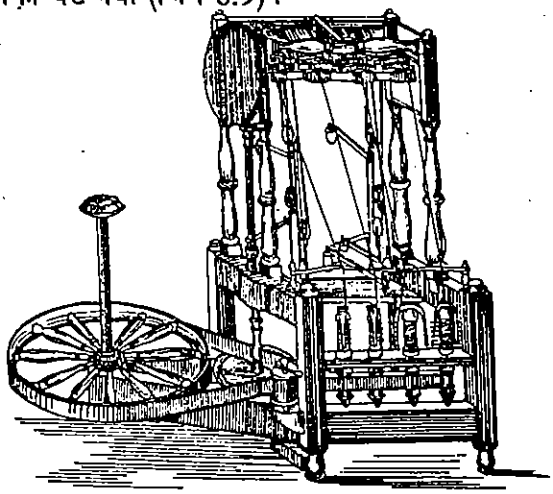

चित्र 6.9 : कताई की एक मशीन जिससे पुराने चरखे की अपेक्षा सूत को तेज़ी से काता जा सकता है और यह सूत मज़बूत होता है। इस मशीन के द्वारा केवल कपास से ही कपड़ा बुना जा सकता है जबकि पहले कपड़ा बुनने के लिए कपास में फ्लैक्स मिलाया जाता था।

वस्त्र उद्योग के कई दूसरे परिणाम भी निकले। वस्त्र उद्योग के लिए मशीनों और रसायनों के बाज़ार से लोहे और रसायन उद्योगों को बढ़ावा मिला। इन सबके लिए कोयले की ज़रूरत थी जिसके लिए खदान और परिवहन के विकास की आवश्यकता पड़ी। नये यांत्रिक उद्योग कोयला क्षेत्रों के आस-पास विकसित हुए। वास्तव में वस्त्र उद्योग में भाप-इंजन की शक्ति के प्रयोग ने ही आधुनिक उद्योगों का विस्तार किया। इसने वस्त्रों के उत्पादन में इतनी क्रांति ला दी कि 20 वर्षों में वस्तु-उत्पादन पाँच गुना हो गया।

मशीनीकरण का विचार दूसरे क्षेत्रों जैसे खदान, धातु विज्ञान और यहाँ तक कि कृषि में भी तेज़ी से फैलने लगा। बहुत जल्दी सारे समाज का ध्यान इसकी विस्फोटक क्षमता की ओर गया। बढ़ते हुए मुनाफे के साथ बाज़ारों की खोज और तेज़ हो गयी। परिवहन और संचार में व्यापार चलाने के लिए बिल्कुल भिन्न नए साधनों को प्राप्त करना ज़रूरी हो गया। भाप इंजन को एक लंबे अरसे से खानों और फैक्टरियों में एक स्थायी उपकरण की तरह प्रयोग किया जाता था। अब उसे रेल में लंबी दूरी तक भारी सामान ढोने के लिए लगा दिया गया। अतः रेलवे ने उद्योग केंद्रों को जोड़ा। उद्योगों के लिए कच्चा माल भाप से चलने वाले जहाज़ों द्वारा दूर-दूर से इकट्ठा किया जाता और तैयार माल को दूर-दूर तक वितरित किया जाता।

अठारहवीं सदी ने जहाँ उत्पादन में सफलता हासिल की, वहीं उन्नीसवीं सदी को संचार के क्षेत्र में सफलता मिली। बिजली का उपयोग बहुत पहले 1737 में कुछ मीलों तक संदेश भेजने के लिए हो चुका था। पर लंबी दूरी के व्यापार-सौदों के लिए यह नितांत आवश्यक हो गया था। यह आवश्यकता 1837 में टेलीग्राफ़ के सफल आविष्कार से पूरी हुई। शहरों और देशों के बीच तार बिछाये जाने लगे। 1866 तक अमेरिका और ब्रिटेन के बीच टेलीग्राफ़ संपर्क के लिए अटलांटिक समुद्र के तल में केबल्स (cables) बिछा दिये गये। औद्योगिक क्रांति के सौ वर्षों के अंदर औद्योगिक शहर बस गये, ग्रामीण क्षेत्रों का स्वरूप बदल गया और इस तरह औद्योगिक शहरों जैसे ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, हॉलैंड, यू.एस.ए आदि में रहने वाले लाखों लोगों के जीवन में परिवर्तन आ गया।

उत्पादन केन्द्र मशीनों के प्रयोग से घरों में न रहकर विशेष रूप से बने परिसरों में पहुँच गये। इन्हें फैक्टरी कहा गया जिससे काम का पुनर्गठन हुआ खासकर "श्रम के विभाजन" में। इसका अर्थ था कि जटिल कामों को कई सरल कामों में बांटा जा सकता था और अपने कार्य स्थल पर एक आदमी, एक या दो सरल कामों को कर सकता था (चित्र 6.10)। फलस्वरूप प्रति व्यक्ति उत्पादन में काफ़ी वृद्धि हुई। किंतु, साथ ही इससे मनुष्य की कड़ी मज़दूरी और काम की नीरसता बढ़ी, मानसिक तौर पर शामिल होने की ज़रूरत घटी और मनुष्य मशीनी तरह से काम करने पर मज़बूर हुए।

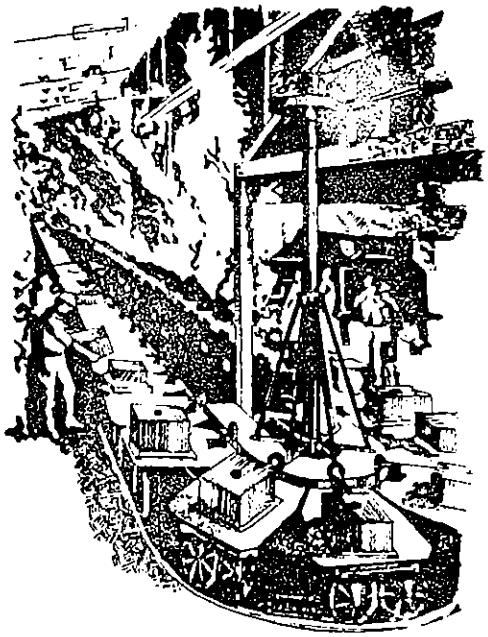

चित्र 6.10 : औद्योगिक उत्पादन जिसमें मज़दूर एक ही तरह के कार्य को बार-बार दोहराता है। इस रेखाचित्र में एक मज़दूर ब्लॉकों को मेजों पर रख रहा है। इन मेजों में पहियें लगे होते हैं और ये पटरी पर फैक्ट्री के ढलाई, गढ़ाई तथा अन्य कमरों में घूमती है।

आजकल यह माना जाता है कि कृषि की तुलना में उद्योगों से प्रति व्यक्ति कई गुना अतिरिक्त उत्पादन हो सकता है। अधिक अतिरिक्त उत्पादन से अधिक मुनाफ़ा होगा। इसलिए पूँजी कई गुना बढ़ती जाती है और इसे अधिक उत्पादन के लिए अधिक मशीनें लगाने में प्रयोग किया जाता है। जो उत्पादन किया जाता है उसे बेचना ही होता है। इसलिए बाज़ार का हमेशा प्रसार होना चाहिए। घरेलू बाज़ार में खरीदार के पास खरीदारी के लिए पैसा होना चाहिए। इससे दुविधा पैदा हो जाती है—मुनाफ़े को ज़्यादा से ज़्यादा बढ़ाना है, पर तब क्या हो कि बढ़े दामों के कारण मज़दूर उत्पादों को खरीद ही न सके? मुनाफे में कामगार का कोई निश्चित हिस्सा तो तय नहीं है। अंततः इस प्रकार की व्यवस्था सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को जन्म देती हैं।

सभी देशों में औद्योगीकरण का प्रारंभिक इतिहास दिखाता है कि तब किस तरह मज़दूरों का शोषण होता था, किस तरह उनकी शक्ति की एक-एक बूंद निचोड़ी जाती थी ताकि मशीनों से भारी मुनाफ़ा कमाया जा सके और किस तरह उन्हें अत्यंत शोचनीय अवस्था में रहना पड़ता था। इन्हीं सब बातों के ख़िलाफ मज़दूरों ने अपनी बेहतरी के लिए संघर्ष शुरू किया और ट्रेड यूनियनों की शुरुआत की। इस औद्योगीकरण का दूसरा पहलू भी था। बढ़े हुए उत्पादन यानी सस्ते उत्पादन के कारण उपनिवेशों के बाज़ारों में औद्योगिक राष्ट्रों का माल भर गया और स्थानीय उद्योग बर्बाद हो गये। जहाँ औद्योगिक माल खप नहीं पाया वहाँ औपनिवेशिक सरकार ने आयातित उत्पादों की बिक्री सुधारने के लिए अपने शासन का प्रयोग किया।

बोध प्रश्न 5

क) निम्नलिखित में से किन तीन तकनीकी आविष्कारों ने औद्योगिक क्रांति की शुरुआत की? सही उत्तरों पर निशान लगाएँ।

i) यांत्रिक घड़ियाँ
ii) कताई और बुनाई के यांत्रिक उपकरण
iii) भाप इंजनों का प्रयोग
iv) टेलीग्राफ़
v) खदान, धातुविज्ञान और कृषि में यांत्रिक उपकरणों का प्रयोग

ख) दिये गये खाने में बताइए कि औद्योगिक क्रांति से संबंधित कौन से कथन सही (स) या गलत (अ) हैं। गलत उत्तर की स्थिति में सही उत्तर भी लिखिए।

i) औद्योगिक शहरों ने ग्रामीण इलाकों को बिल्कुल बदल दिया। ☐

ii) श्रम के विभाजन ने मज़दूरों के लिए काम की बेहतर स्थितियाँ पैदा कीं। ☐

iii) राष्ट्रों के उपनिवेशीकरण का मतलब था कि माल को उपनिवेश राष्ट्रों में बनाया जाता था और औद्योगिक राष्ट्रों में बेचा जाता था। ☐

iv) औद्योगीकरण ने मज़दूरों के शोषण को भी बढ़ाया। ☐

v) टेलीग्राफ को लंबी दूरी तक व्यापार के उद्देश्य से संचार की सुविधा देने के लिए आविष्कृत किया गया।

. . . . . .

. . . . . .

यह कहा जा सकता है कि विज्ञान ने औद्योगिक क्रांति के लिए कोई सीधी भूमिका नहीं निभाई पर प्रौद्योगिकी ने यह भूमिका अवश्य निभायी। साथ ही दूसरी ओर प्रौद्योगिकी संबंधी समझ और डिज़ाइन विज्ञान पर निर्भर थे, विशेषकर न्यूटन के गति, बल, शक्ति और ऊर्जा आदि के विचारों पर। भाप इंजन पूरी औद्योगिक क्रांति का केन्द्र था जिससे कारखाने रेल और जहाज़ चल रहे थे। वह ताप की प्रकृति और दबाव के साथ गैसों के बदलते व्यवहार की सही समझ पर ही आधारित था। अशुद्ध धातुओं को शुद्ध करने व लोहे से मशीन के पुर्ज़ों को ढालने तथा कपड़े की छपाई से रसायन विज्ञान के विकास में वृद्धि हुई। आक्सीजन की खोज (1733-1804) जोसफ प्रीस्टले ने औद्योगिक क्रांति के आस-पास ही की थी। ज्वलन के अपने प्रयोगों के आधार पर फ्रांसीसी वैज्ञानिक अंतोनी लारेंट लेवोइजर (Antonie Laurent Lavoisier 1743-1794) ने रसायन शास्त्र के तार्किक और सैद्धांतिक अध्ययन का प्रारूप तैयार किया। जॉन डॉल्टन (1766-1844) ने कुछ दशक बाद परमाणु सिद्धांत प्रस्तुत किया।

विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में भी प्रगति हुई। औद्योगिक क्रांति के बाद के दशकों में नई खोजों या नियमों की सूची काफी आकर्षक है। इसकी शुरुआत 1770 में खोजे गए दो विद्युत आवेशों (electric charges) के मध्य आकर्षण बल के कूलंब के नियम से होती है। इसी सूची में 18वीं सदी के अंत तक बिजली और रेडियो तरंगों की खोज भी शामिल हैं जिन्होंने विज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। उन्नीसवीं सदी के मध्य में लुई पास्चर की बैक्टीरिया की खोज और इस सिद्धांत से, जिसमें उन्होंने कहा कि रोग कीटाणुओं द्वारा फैलते हैं, औषधि के क्षेत्र में बड़ा प्रोत्साहन मिला। इससे जानवरों में ऐन्थ्रेक्स और मनुष्यों में रेबीज़ जैसे रोगों के प्रतिरोधकों का विकास हुआ पास्चर ने यह भी दिखाया कि इनमें से बहुत से सूक्ष्म जीव खाद्य पदार्थों में रासायनिक परिवर्तन लाते हैं और कुछ विशिष्ट सूक्ष्म जीवों को कुछ उत्पादों जैसे शराब और सिरका तैयार करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। आज यह औद्योगिक सूक्ष्म जीव विज्ञान (industrial microbiology) का आधार है जिसके कारण सस्ती एंटीबॉयोटिक दवाइयाँ उपलब्ध हैं। इसनें बायोगैस, अल्कोहल की शक्ति आदि कुछ पूरक ऊर्जा स्रोतों की खोज के द्वार भी खोले हैं। शायद पास्चर का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह था कि उन्होंने सावधानी से तैयार प्रयोगों के आधार पर जीवन के स्वतः पैदा होने के विचार के विरुद्ध विश्वसनीय प्रमाण दिये। उन्होंने प्रतिपादित किया कि जीवित प्राणी केवल जीवित प्राणी से ही पैदा हो सकता है, निर्जीव पदार्थ से नहीं। आज यह विश्वास करना कठिन है कि उन्नीसवीं सदी तक पूरा समाज और यहाँ तक कि कुछ वैज्ञानिक भी यह मानते थे, कि जीवन निर्जीव पदार्थ से स्वतः उत्पन्न हुआ।

चित्र 6.11 : लुई पास्चर।

उसी समय चार्ल्स डार्विन (1809-82) ने जैविक विकास के बारे में अपने क्रांतिकारी विचारों द्वारा एक प्रमुख योगदान दिया। तब तक यह विश्वास किया जाता था कि प्रत्येक प्रकार का जीव अलग-अलग पैदा हुआ था और सृष्टि के क्रम के अनुसार उसका एक विशिष्ट स्थान था। सावधानी से किये गये प्रेक्षणों और परिश्रम से किए गए शोध के बाद डार्विन ने एक सिद्धांत तैयार किया कि जीव के विभिन्न रूप सरल और आदिम रूपों से विकसित हुए। आप डार्विन के कार्यों के बारे में खंड 3 में पढ़ेंगे। डार्विन के कार्य ने अरस्तू के दर्शन के अंतिम आधार को समाप्त कर दिया और चर्च के साथ इसके मतभेद अभी तक बने हुए हैं।

कुल मिलाकर, हमने अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के दौरान विज्ञान और प्रौद्योगिकी के कुछ प्रमुख विकासों की रूपरेखा खींची। इस काल में पूँजीवाद पूरी तरह विकसित हुआ और इसी के साथ विज्ञान भी आगे बढ़ा। विज्ञान में प्राचीन और मध्ययुग के मिथकों को पूरी तरह

निकाल फेंका गया। इनकी जगह ली प्रेक्षणों और प्रयोगों पर आधारित तर्कपूर्ण विश्लेषण ने। इस तरह विज्ञान के माध्यम से औद्योगिक क्रांति ने नई ऊँचाईयाँ प्राप्त की और यह अन्य यूरोपीय देशों में फैली। आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी औद्योगीकरण के लिए अनिवार्य माने जाते हैं। लेकिन अभी भी उन देशों में औद्योगीकरण नहीं हो पाया है जो औपनिवेशिक शासन से हाल ही में मुक्त हुए हैं।

चित्र 6.12 : चार्ल्स डार्विन।

विज्ञान की शिक्षा अठारहवीं सदी में ही यूरोप के कुछ विश्वविद्यालयों में दी जाने लगी थी। हालांकि इसका बड़े पैमाने पर विस्तार उन्नीसवीं सदी के दौरान हुआ जब कई देशों में वैज्ञानिक अकादमियाँ स्थापित हो चुकी थीं, और वैज्ञानिक शोध यूरोप के कई केंद्रों में जड़ पकड़ चुका था। औद्योगिक क्रांति और विज्ञान का विकास साथ-साथ हुआ और यदि औद्योगिक क्रांति विज्ञान के कुछ गुणों को लिए हुए थी तो विज्ञान भी उस क्रांति के कई लक्षणों को लिए हुए था, जैसा कि हम आगे देखेंगे।

दुर्भाग्यवश, औद्योगिक राष्ट्रों में इन विकासों ने उनके औपनिवेशिक अधिकार को और मजबूत किया। भारत औद्योगिक क्रांति के समय औपनिवेशिक प्रभाव में आया और उसके सभी नकारात्मक प्रभाव यहाँ पड़े। हमारे उद्योग नष्ट हो गये, प्राकृतिक स्रोतों को जहाँ तक संभव हुआ इंग्लैंड भेजा गया और उसने अपने माल को भारतीय बाज़ारों पर थोप दिया। भयंकर गरीबी और सामाजिक बिखराव एक ही समय में आया। हालाँकि विज्ञान का पश्चिम में विकास हो रहा था, पर हमारी शिक्षा और शोध की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। अतः भारत आर्थिक विकास की दौड़ से कम से कम सौ वर्ष पिछड़ गया। चूँकि वैज्ञानिक विकास की अंतर्राष्ट्रीय गति बहुत ही तेज है, संभावित रूप से हम विज्ञान के लिए तब तक पश्चिम पर निर्भर रहेंगे जब तक हम आगे बढ़ने के असाधारण उपाय न करें। इसकी चर्चा हम अगली इकाई में विस्तार से करेंगे।

यह दिलचस्प बात होगी यदि हम आज की दुनिया में विज्ञान, प्रौद्योगिकी और समाज के बीच संबंधों की खोज करें। पर हम विज्ञान और प्रौद्योगिकी की विभिन्न शाखाओं और उनकी भूमिका की चर्चा किए बिना इस तरह की खोज के प्रति न्याय नहीं कर पाएँगे। इस पाठ्यक्रम में आने वाली इकाईयों के द्वारा आप आज की स्थिति को स्वास्थ्य, खाद्य, कृषि और उद्योग की समस्याओं के माध्यम से समझ पायेंगे, जिन्हें वर्तमान सामाजिक संदर्भ में प्रस्तुत किया जाएगा।

6.6 सारांश

इस इकाई में भी हमने करीब ईसा पूर्व पाँचवीं सदी से लेकर उन्नीसवीं सदी तक का एक लंबा काल समेटा है। यह लगातार परिवर्तनों का काल था जिसमें यूरोप में आधुनिक विज्ञान का उद्भव हुआ। आइए देखें, हमने इस इकाई में किन-किन विषयों पर विचार किया।

- मध्यकाल में स्थिर सामंती समाज के संकीर्ण विचारों ने यूरोप में विज्ञान में कोई महत्वपूर्ण विकास नहीं होने दिया। यद्यपि कृषि योग्य भूमि के विस्तार और उसके बेहतर उपयोग करने तथा कामगारों की कमी के कारण कई तकनीकी आविष्कार हुए।
- मशीनीकृत उत्पाद से व्यापार को और उससे उत्पादन को बढ़ावा मिला। धीरे-धीरे किसानों से बलपूर्वक काम लेने पर आधारित वंशानुगत सामंती व्यवस्था का स्थान व्यापारी वर्ग ने ले लिया जिसमें उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन व पैसे द्वारा भुगतान प्रचलित हो गया था।
- पुनर्जागरण का प्रमुख लक्षण पुराने विचारों की आलोचना व उसका परित्याग था। इस काल के वैज्ञानिक विकास में कोपर्निकस की क्रांति महत्वपूर्ण थी।
- पुनर्जागरण के बाद के काल में प्रेक्षण और प्रयोग पर आधारित नये तरीके के विज्ञान का

उद्भव हुआ। इस काल के दौरान विज्ञान में प्रगति के अनेक रास्ते खुले। इसमें गैलीलियो, हार्वे और न्यूटन के कार्यों का योगदान प्रमुख है। इसने कई अन्य क्षेत्रों में आधुनिक विज्ञान के जन्म के लिए वातावरण तैयार किया।

- ग्रेट ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति ने उत्पादन के साधनों में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। सामंती अर्थव्यवस्था का पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में परिवर्तन हो गया। उसके साथ ही सामाजिक ढांचा भी बदल गया। वंशानुगत सामंती व्यवस्था की जगह एक ऐसी व्यवस्था आ गई जिसमें व्यक्ति का उद्यम और आर्थिक स्तर, उसके वंश से अधिक महत्व के थे। आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने इस युग में अपना वास्तविक रूप धारण किया और इसके बाद से पीछे मुड़कर नहीं देखा।

6.7 अंत में कुछ प्रश्न

1) नीचे दिये गये तकनीकी आविष्कारों का वर्णन एक या दो पंक्तियों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक या वैज्ञानिक परिणामों को ध्यान में रखकर कीजिए जिनमें मध्ययुग की अर्थव्यवस्था के रूपांतरण में ये तत्त्व सहायक थे।

   i) घोड़े का पट्टा

   .....

   .....

   ii) पवन चक्की और पन-चक्की

   .....

   .....

   iii) दिशा सूचक और पीछे की पतवार

   .....

   .....

   iv) बारूद

   .....

   .....

   v) कागज़ और छपाई

   .....

   .....

2) विकास की कम से कम ऐसी तीन अवस्थाओं का वर्णन कीजिए जो पुनर्जागरण के समय विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति में सहायक हुए।

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

3) निम्नलिखित सारणी में हमने यूरोपीय और भारतीय समाजों के उन लक्षणों की तुलना की है जो 16वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक विज्ञान के सहायक या अवरोधक रहे हैं। नीचे दिये गये खाली स्थान पर इसके अनुरूप दोनों समाजों के लक्षणों का वर्णन कीजिए। आप भाग 5.4 को एक बार फिर देख सकते हैं।

	यूरोपीय समाज	भारतीय समाज
	वंशानुगत सामंती व्यवस्था ने भारी संघर्ष के बाद एक ऐसे वातावरण के लिए मार्ग प्रशस्त किया जिसमें व्यक्तिगत प्रयास और आर्थिक स्तर को महत्व दिया जाता था। उसने विचारों और कर्म की स्वतंत्रता का रास्ता तैयार किया।	.....
ii)	.....	अपने प्रभाव से कट्टरपंथी धार्मिक लोगों ने सृजनात्मक और आविष्कारक विचारों को समाज में बढ़ने से रोका।
iii)	शारीरिक श्रम ने समाज में अधिक सम्मान प्राप्त किया। कारीगर और दस्तकार लोग वैज्ञानिकों व विचारकों से समानता के स्तर पर मिल सकते थे।	.....
iv)	.....	ज्ञान केवल कुछ लोगों तक ही सीमित था।

4) प्राचीन काल के विज्ञान, सामंतवादी काल के विज्ञान तथा पुनर्जागरण के बाद के विज्ञान में क्या अंतर था ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6.8 उत्तर

बोध प्रश्न

1) i) त ii) वि iii) त iv) त v) वि

2) i) उपभोक्ता वस्तुओं, व्यापार, आत्मनिर्भरता
   ii) मुनाफे, सामंती शासकों
   iii) धन, कृषिदासों

3) i) मनुष्य की शरीर रचना का अध्ययन, तीन आयामी आकृतियों को दो आयामों में प्रस्तुत करना, प्रकृति के विस्तृत प्रेक्षण, खुदायी में पंपिंग और खींचने के उपकरण, नये जहाज़ों का निर्माण व जहाज़रानी के यंत्र, कोपर्निकस की क्रांति
   ii) कोपर्निकस ने सौर मंडल के ऐसे मॉडल का प्रस्ताव रखा जिसमें सूर्य केंद्र में था और पृथ्वी समेत सभी ग्रह उसके चारों ओर घूम रहे थे।

4) क (ii), ख (iii), ग (v), घ (i), ड. (vii), च (viii), छ (iv), ज (vi)

5) क (i) (×) (ii) (√) (iii) (√) (iv) (×) (v) (√)
   ख (i) स (ii) अ (iii) अ (iv) स (v) स

ii) किंतु साथ ही इससे मनुष्य की कड़ी मज़दूरी और नीरसता में वृद्धि हुई, मानसिक तौर पर काम से लगाव में कमी हुई और मनुष्य एक तरह से मशीन बन गया।

iii) औपनिवेशिक देश कच्चे माल की सप्लाई करते थे और औद्योगिकृत देशों की तैयार वस्तुओं के बाज़ार के रूप में काम आते थे।

अंत में कुछ प्रश्न

1) i) कई एकड़ भूमि में कृषि हो सकने की स्थिति से व्यापार के लिए अतिरिक्त कृषि उत्पादन हुआ।

ii) कृषि, लोहा पिघलाने या लकड़ी चीरने और मजदूरों की कमी से पार पाने में मदद की।

iii) लंबी यात्राओं के लिए समुद्री मार्ग खोल दिये जिससे दूर के देशों से व्यापार बढ़ा जिसने खगोलशास्त्र, भूगोल और जहाज़रानी यंत्र बनाने वाले उद्योग के विकास को बढ़ावा दिया।

iv) रसायन विज्ञान, यांत्रिकी और श्वास क्रिया के अध्ययन को बढ़ावा दिया।

v) पढ़ाई-लिखाई के प्रसार में मदद की और लोगों को शिक्षा उपलब्ध कराई।

2) i) जैसे-जैसे व्यावहारिक कलाएँ फलने-फूलने लगीं तकनीशियनों, शिल्पकारों और कलाकारों का स्तर बढ़ा।

ii) विद्वानों ने मध्ययुग के विचारों पर प्रश्नचिह्न लगाया और उन्हें चुनौती दी।

iii) विद्वानों और शिल्पियों के मध्य संबंध फिर स्थापित हुआ।

iv) प्रेक्षण, प्रयोग और गणना का तरीका नये विज्ञान का तरीका बन गया।

3) i) सामाजिक व्यवस्था स्थिर थी। जनता में संतोष व्याप्त और परिवर्तन की कोई मांग नहीं थी।

ii) बदलती सामाजिक स्थितियों में धर्म और विज्ञान के बीच एक समझौता हो गया और सत्रहवीं सदी के बाद धर्म ने विज्ञान में विशेष हस्तक्षेप नहीं किया।

iii) समाज के शिक्षित लोग हाथ से काम करने वाले मजदूरों से संपर्क नहीं रखते थे क्योंकि उन्हें समाज में आदर नहीं दिया जाता था।

iv) छापेखाने में आम जनता को विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बारे में शिक्षा और सूचना उपलब्ध करवाई।

4) प्रारंभ में वैज्ञानिक कार्य सिर्फ दुनिया के बारे में चिंतन पर आधारित थे। पुनर्जागरण के बाद प्रेक्षण, प्रयोग और संगणना के साथ प्रश्न पूछना और इनके आधार पर अपने विचारों को बदल पाने का इरादा, विज्ञान के नये तरीके बन गये।

इकाई 7 औपनिवेशिक तथा आधुनिक भारत में विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
7.2 औपनिवेशिक भारत में विज्ञान
औपनिवेशिक भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान
स्वतंत्रता आंदोलन का प्रभाव
7.3 स्वातंत्र्योत्तर भारत में विज्ञान
7.4 हमने क्या सीखा
7.5 सारांश
7.6 अंत में कुछ प्रश्न
7.7 उत्तर

7.1 प्रस्तावना

इकाई 6 में हम पढ़ चुके हैं कि औद्योगिक क्रांति ने कच्चे माल की तथा तैयार उत्पादों की बिक्री के लिए बाज़ारों की निरंतर बढ़ती हुई माँग को जन्म दिया। नये औद्योगीकृत देशों ने इन बढ़ती हुई माँगों की पूर्ति कई एशियाई और अफ्रीकी देशों में उपनिवेश स्थापित कर सुनिश्चित की। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक ब्रिटेन ने भारत में औपनिवेशिक शासन स्थापित कर लिया था। उपनिवेशवादियों के क्रूर शोषण के कारण विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सुदीर्घ भारतीय परंपरा तथा वैभवपूर्ण सांस्कृतिक धरोहर का जिसके विषय में आप 2 से 5 तक की इकाइयों में पढ़ चुके हैं प्रायः विनाश हो गया। स्वतंत्रता के बाद ही हम अपनी नियति के स्वामी स्वयं बन पाये तथा अपनी जनता की भलाई के लिए हमने जागरूक होकर विज्ञान के उपयोग का निश्चय किया।

इस इकाई में हम भारत के औपनिवेशिक काल तथा स्वातंत्र्योत्तर काल में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करेंगे। साथ ही हम पिछली इकाइयों के आधार पर विज्ञान और समाज से संबद्ध संगत प्रश्नों का विश्लेषण भी करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- औपनिवेशिक भारत में हुए छुटपुट वैज्ञानिक विकास की मुख्य बातें बताते हुए यह विश्लेषण कर पाएँगे कि ये विकास इतने नगण्य क्यों थे,
- स्वाधीनता से पूर्व भारत में विज्ञान के विकास में स्वतंत्रता आंदोलन के प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे,
- स्वतंत्रता के बाद हमारे देश के सामने क्या-क्या समस्याएँ आई और उनका समाधान हम किस प्रकार कर रहे हैं, यह बतला पाएँगे,
- हमारे सामाजिक परिप्रेक्ष्य में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उपयोग से संबद्ध विभिन्न मुद्दों का विवेचन कर पाएँगे।

7.2 औपनिवेशिक भारत में विज्ञान

इकाई 5 और 6 में हम पढ़ चुके हैं कि 16वीं सदी के बाद वैज्ञानिक और तकनीकी विकास में यूरोप भारत से तेज़ी से आगे निकलने लगा। यूरोप में आधुनिक विज्ञान का प्रादुर्भाव

उपनिवेशों में यहाँ एक ओर शिक्षा, विज्ञान और अनुसंधान कार्य को जानबूझ कर पीछे रखा, वहीं दूसरी ओर उन पर यूरोपीय आर्थिक आधिपत्य को सुदृढ़ कर दिया था। हालैंड, पुर्तगाल, फ्रांस, और ग्रेट ब्रिटेन की प्रगतिशील यूरोपीय व्यापारी कंपनियाँ भारत में गहन रूप से राजनीतिक और सैनिक प्रतिद्वंद्विता में उलझ गयीं। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी एक प्रमुख व्यापारिक कंपनी में बदल गयी। अंततः भारतीय उपमहाद्वीप में ब्रिटिश आधिपत्य स्थापित हो गया। शासकों के लिए यह बहुत ही उत्तेजनापूर्ण समय था, एक नये साम्राज्य का निर्माण हो रहा था, और उसके सुदृढ़ होने की प्रक्रिया चल रही थी। उपनिवेशवादी, भारत, इसके लोगों और संसाधनों के विषय में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने को उतावले थे। भारतीय प्रौद्योगिक परंपरा में तथा भारत के प्राकृतिक संसाधनों में जो कुछ भी सर्वोत्तम था तथा उनके स्वामियों के लिए जो सर्वाधिक लाभप्रद हो सकता था, इसकी प्रामाणिक जानकारी उन्होंने दी। उधर ईस्ट इंडिया कंपनी को भी यह समझते देर नहीं लगी कि उसके शासन का समस्त भौतिक आधार विजित क्षेत्रों की भौगोलिक, भू-वैज्ञानिक तथा वनस्पतिक ज्ञान पर निर्भर है। साम्राज्य निर्माण में विज्ञान की भूमिका और महत्ता को उपनिवेशवादियों ने पूर्ण रूप से पहचाना। आइए, देखें औपनिवेशिक काल में भारत में जो थोड़े-बहुत वैज्ञानिक विकास हुए, वे कौन से थे। हम इस बात का विश्लेषण करने की भी कोशिश करेंगे कि इनकी संख्या इतनी कम क्यों थी।

इस काल के प्रारंभिक दौर का एक पहलू यह था कि औपनिवेशिक वैज्ञानिक एक साथ अनेक विषयों पर कार्य करते थे। वस्तुतः वे वनस्पति विज्ञानी, भू-गर्भशास्त्री, भूगोलवेत्ता और शिक्षाविद्, एक साथ सभी कुछ थे। यद्यपि, आँकड़े इकट्ठे करने में प्रत्येक वैज्ञानिक माहिर था तथापि, विश्लेषण और निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए उन्हें ब्रिटेन के महानगरीय वैज्ञानिक संस्थानों पर निर्भर होना पड़ता था, जिन्हें अनेक उपनिवेशों से आँकड़े प्राप्त होते थे। ब्रिटिश लोगों ने वनस्पतिक, भूवैज्ञानिक और भौगोलिक सर्वेक्षण पर धन लगाया क्योंकि उन्हें आशा थी कि इससे उन्हें प्रत्यक्ष और प्रचुर मात्रा में आर्थिक और सैनिक लाभ प्राप्त होंगे। आयुर्विज्ञान और प्राणी विज्ञान से ऐसी कोई आशा न होने के कारण उनकी उपेक्षा कर दी गयी। भौतिक और रसायन विज्ञान में अनुसंधान का तो प्रश्न ही नहीं उठता था क्योंकि इनका संबंध औद्योगिक विकास से था, जिसे प्रोत्साहित नहीं किया जाना था। भारत तो केवल कच्चे माल का एक स्रोत था। भारत को ब्रिटेन में निर्मित वस्तुओं जिनमें कलम की निबों व पेंसिलों से लेकर जूते, कपड़े और दवाइयाँ तक शामिल थीं, के लिए अति उत्तम बाज़ार माना जाता था।

फिर भी, कुछ वैज्ञानिक संस्थाओं और संग्रहालयों की स्थापना एक सकारात्मक कदम था। ब्रिटिश-पूर्व भारत का वैज्ञानिक आधार बहुत कमज़ोर था जिसमें न तो वैज्ञानिक संस्थान ही विद्यमान थे और न ही वैज्ञानिक जानकारी का प्रसार करने वाली कोई पत्रिकाएँ थीं। कलकत्ता स्थित "सुप्रीम कोर्ट" के एक जज विलियम जोन्स तथा नगर के अन्य यूरोपीय बुद्धिजीवियों ने इस बात को अनुभव किया तथा उन्होंने सन् 1784 में कलकत्ता में एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की । यह सोसाइटी शीघ्र ही भारत में होने वाली सभी वैज्ञानिक गतिविधियों का केंद्र बिंदु बन गयी। इसके बाद एग्रीकल्चरल-हार्टिकल्चरल सोसाइटी आफ इंडिया (1817), कलकत्ता मेडिकल एण्ड फ़िज़िकल सोसाइटी (1823), मद्रास लिटरेरी एण्ड साइंटिफ़िक सोसाइटी (1818) तथा रायल एशियाटिक सोसाइटी की बंबई शाखा (1829) की स्थापना हुई। इन सोसाइटियों ने अपनी पत्रिकाओं के माध्यम से बहुमूल्य सेवा प्रदान की। इन पत्रिकाओं का स्तर यूरोपीय पत्रिकाओं के लगभग बराबर था।

जब ब्रिटिश शासनाध्यक्ष ने 1858 में विधिवत् रूप से भारत का प्रशासन संभाला, तब यहाँ की अन्वेषणात्मक गतिविधियों का प्रारंभिक दौर समाप्त हो चुका था। व्यक्तिगत प्रयासों से प्राप्त लाभों को सुसंगठित करने की समस्या अधिक थी। इसके लिए अनेक संस्थाओं की स्थापना की गयी तथा सरकार ने सर्वेक्षण संगठनों का विस्तार भी किया। 1878 में तीन सर्वेक्षण शाखाओं—त्रिकोणमितीय, स्थलाकृतीय (topographical) तथा राजस्व शाखाओं का परस्पर विलय कर दिया गया। इससे पूर्व इन शाखाओं के स्वतंत्र विभाग थे और इनकी अपनी अलग-अलग संवर्ग और संस्थापनाएँ थीं। इन तीनों में से राजस्व सर्वेक्षण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण होना स्वाभाविक था। इसी प्रकार भू-वैज्ञानिक अन्वेषणों को भी उनसे प्राप्त होने वाले प्रत्यक्ष आर्थिक लाभों के कारण, महत्व दिया गया। यद्यपि 1851 में

जियोलाजिकल सर्वे आफ इंडिया (भारतीय भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण) की स्थापना हुई तथापि वनस्पतिक अन्वेषण कार्य को वह संरचनात्मक एकरूपता और सुसंबद्धता प्राप्त नहीं हो सकी, जो "भारतीय भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण" की मुख्य विशेषता थीं।

विभिन्न वैज्ञानिक विभागों और संस्थानों की स्थापना और विकास से एक भिन्न प्रकार के संवर्ग की आवश्यकता उत्पन्न हुई। इनमें सबसे बड़ा और सबसे पुराना संवर्ग इंडियन मेडिकल सर्विस का था, जिसकी स्थापना मुख्य रूप से सेना की सेवा के लिए की गयी थी और इसीलिए इसे बनाये भी रखा गया था। सबसे अधिक असंगठित क्षेत्र कृषि का था। सबसे अधिक राजस्व कृषि से प्राप्त होता था परन्तु इसके सुधार की समस्याएँ इतनी जटिल थीं कि सरकार ने इसे निजी कृषि सोसाइटियों के हाथों में रहने देना ही उचित समझा। बहुत बाद में, 1906 में कहीं जाकर एक भारतीय कृषि सेवा (Indian Agricultural Services) का गठन किया गया। लेकिन वित्तीय एवं प्रशासनिक प्रतिबंधों के कारण यह सेवा एक सुगठित रूप से विकसित नहीं हुई। सैनिक तथा तुरंत आर्थिक महत्व की कुछ शाखाएँ विकसित होने में सफल हुईं। परन्तु कुल मिलाकर यें सभी प्रयास अस्थायी तथा स्थानीय किस्म के थे। सरकार व्यावहारिक नतीजे चाहती थी, न कि शोधपत्र। विभिन्न स्तरों पर लगाये गये कठोर प्रशासनिक नियंत्रणों से यह निश्चित कर दिया गया था कि औपनिवेशिक वैज्ञानिक हमेशा सरकारी धुन पर नाचेंगे।

शिक्षा योजना में विज्ञान को कभी भी उच्च प्राथमिकता नहीं दी गयी। 1813 के शासकीय घोषणा पत्र में ब्रिटिश इंडिया के निवासियों के लिए विज्ञान की शिक्षा को लागू करने तथा उसके विकास की बात कही गयी थी। परन्तु यह एक सुखद इच्छा ही बनकर रह गयी थी। आंशिक रूप में इसका कारण यह भी था कि स्वदेशी शिक्षा पद्धति इस विचार को अपनाने को तैयार नहीं थी। 1835 में मैकाले, न केवल एक विदेशी भाषा, अंग्रेजी, को शिक्षा का माध्यम बनाने में सफल हो गये, अपितु विज्ञान के प्रति उसकी अरुचि के कारण एक ऐसा पाठ्यक्रम बना, जो कि पूरी तरह से साहित्यिक था। इस प्रकार स्कूलों में विज्ञान के प्रवेश में विलंब हुआ। कुछ चिकित्सा विज्ञान और इंजीनियरी संस्थाएँ खोली गयीं थी परंतु ये मुख्यतया ब्रिटिश प्रशिक्षित डॉक्टरों व इंजीनियरों की ही सहायता करती थीं। भारत के प्राचीन विश्वविद्यालय अपने युग के विद्या के महान केंद्र थे और अन्य देशों के विद्वानों को अपनी ओर आकर्षित करते थे। मध्ययुगीन इस्लामी शिक्षा के मशहूर केंद्र भी इसी प्रकार के थे। परंतु ये परंपराएँ जीवित नहीं रह पायीं। 1857 में कलकत्ता, बंबई और मद्रास के विश्वविद्यालयों की स्थापना लगभग लंदन विश्वविद्यालय के पैटर्न पर हुई।

1870 में जाकर कहीं भारतीय विश्वविद्यालयों ने विज्ञान की शिक्षा में कुछ रुचि दिखाना शुरू किया। 1875 में मद्रास विश्वविद्यालय ने मैट्रिक के अपने छात्रों की परीक्षा ब्रिटिश इतिहास में लेने की बजाय भूगोल और प्रारंभिक भौतिकी में लेने का निर्णय लिया। विज्ञान में स्नातक की उपाधि देने वाला पहला विश्वविद्यालय बंबई था। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने अपने बी. ए. के पाठ्यक्रम को दो भागों में बांट दिया—पाठ्यक्रम 'ए' अर्थात् साहित्यिक और पाठ्यक्रम 'बी' अर्थात् विज्ञान। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य, जो हमें अनदेखा नहीं करना चाहिए यह था कि औपनिवेशिक शिक्षा की दिशा छात्रों की मानसिकता को विकसित करके उन्हें जिज्ञासु प्रवृत्ति का बनाने की नहीं थी। इसका झुकाव इस ओर था कि जो कुछ भी सिखाया जाए अथवा पुस्तकों में जो कुछ लिखा है, उसे निष्क्रिय रूप से स्वीकार लेने को प्रोत्साहन दिया जाए। पुस्तकें अंग्रेज़ी में थीं और बहुधा समुद्र पार लिखी और छापी गयी थीं, उनमें ब्रिटिश सभ्यता का चित्रण था। इस प्रकार जो शिक्षा दी जाती थी वो कुल मिला कर शिक्षित व्यक्तियों को अपनी सभ्यता से दूर करती थी। शिक्षा का वातावरण उद्यमहीन तथा ऊपरी आज्ञा, आदेश प्राप्त करने की तत्परता को सुनिश्चित करने वाला था, जैसे कि वास्तव में शासक चाहते थे। शिक्षक और शैक्षिक संस्थायें शासकों के शैक्षिक मॉडल को आदर्श मानते थे और बहुधा उसका अनुकरण करने का यत्न करते थे, यद्यपि वे सर्वथा, भिन्न सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में रह रहे थे।

बोध प्रश्न 1

दिए गए स्थान में लिखिये कि औपनिवेशिक भारत में वैज्ञानिक विकास के विषय में नीचे दिये हुए कथनों में से कौन से सत्य हैं और कौन से असत्य। असत्य कथनों के सही उत्तर लिखिये।

i) भारत के प्राकृतिक संसाधनों का नक्शा बनाने के लिए वनस्पतिक, भू-वैज्ञानिक और भौगोलिक सर्वेक्षण किये गये थे। ☐

ii) भारत में औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने के लिए भौतिकी और रसायन-विज्ञान विषयक शोधकार्य को प्रोत्साहन दिया गया। ☐

iii) कुछ विज्ञान सोसाइटियाँ बनी और उन्होंने वैज्ञानिक जानकारी के प्रचार-प्रसार के लिए कुछ पत्रिकाएँ प्रकाशित कीं। ☐

iv) सेना तथा अन्य ब्रिटिश लोगों की सेवा की दृष्टि से केवल चिकित्सा विज्ञान पर ध्यान दिया गया। ☐

v) कृषि की समस्याओं को हल करने के लिए योजनाबद्ध और सुसंगठित प्रयास किया गया। ☐

vi) अनके विश्वविद्यालयों ने विज्ञान-शिक्षा के पाठ्यक्रम प्रारंभ किये। ☐

vii) स्कूल स्तर पर भी विज्ञान की शिक्षा पर बहुत ध्यान दिया गया। ☐

viii) ब्रिटिश भारत में शिक्षा का प्रयोजन मुक्त जिज्ञासा और सृजनात्मक चिंतन की भावना जागृत करना था। ☐

हम ऊपर देख चुके हैं कि ब्रिटिश शासकों की रुचि भारत में अपने राजनीतिक और आर्थिक आधिपत्य को सुदृढ़ करने में थी। उन्होंने भारतीय संसाधनों का पूरी तरह से उपयोग किया और इस प्रयोजन के लिए केवल नाम मात्र के वैज्ञानिक मूल ढाँचे को खड़ा कर रखा था। फिर भी, भौतिकी, रसायन शास्त्र और कृषि जैसे अन्य क्षेत्रों में, जिनके लिए वैज्ञानिक विकास की आवश्यकता नहीं समझी गयी, कोई ध्यान नहीं दिया गया। औपनिवेशीकरण की इस अवधि में भारत की सांस्कृतिक धरोहर, वैज्ञानिक परंपरा और शिक्षा पद्धति प्रायः नष्ट हो गयी। इनका स्थान दासता की परंपरा और ऐसी शिक्षा ने ले लिया जिसका प्रयोजन आज्ञाकारिता को जन्म देना था, जिज्ञासा की मुक्त और सृजनात्मक भावना को दबाना था।

औपनिवेशिक भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान की भी यही स्थिति थी, जिसकी चर्चा हम अब करने जा रहे हैं।

7.2.1 औपनिवेशिक भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान

उच्चतर वैज्ञानिक शिक्षा के अभाव में वैज्ञानिक अनुसंधान कार्य लंबे समय तक केवल सरकार की ओर से ही होता रहा और इसलिए वह साम्राज्यवादी सत्ता की राजनीतिक नीतियों से ही संबद्ध रहा। औपनिवेशिक वैज्ञानिक से यह उम्मीद की जाती थी कि वह केवल नये आर्थिक संसाधनों की ही तलाश नहीं करेगा, अपितु उनके संपूर्ण उपयोग में भी सहायता करेगा। कृषि के क्षेत्र में, मूलतः बागान-विषयक अनुसंधान कार्य था जो प्रायोगिक फार्मों, नयी-नयी किस्मों की शुरुआत, और नकदी फसलों (cash crops) की विभिन्न समस्याओं से संबद्ध था। ये नकदी फसलें मुख्यतया कपास, नील और चाय की थीं, जिनका ब्रिटेन को निर्यात किया जाना था। कृषि के बाद खनिज संसाधनों का पूरा उपयोग करने के लिए भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण आए। इनका भी कच्चे माल के रूप में निर्यात किया जाना था चिंता का एक अन्य विषय था स्वास्थ्य। सेना, बागान-स्वामियों और उपनिवेशकारियों का अस्तित्व इस पर निर्भर करता था।

कठिन स्थितियों और सरकार के उपेक्षापूर्ण रवैये के बावजूद इस काल में कई मौलिक, वैज्ञानिक शोध कार्य किये गये। रोनाल्ड रास ने मलेरिया और मच्छर से संबंधित विषय पर मौलिक कार्य किया। मैकनमारा ने हैज़े, हैफकिंस ने प्लेग और रोजर्स ने कालाज़ार पर शोध किया। विख्यात चिकित्सा विज्ञानी राबर्ट कॉक हैज़े पर कार्य करने के लिए कलकत्ता आया। बंबई, मद्रास, कूनूर, कसौली और मुक्तेश्वर में जीवाणु-विज्ञानी प्रयोगशालाएँ स्थापित की गयीं। जीवाणु-विज्ञान संबंधी अनुसंधान की दिशा में इस मोह का एक सार्थक परिणाम भी निकला। इससे रोगों की चिकित्सा तथा प्राइवेट प्रेक्टिस का तो विकास हुआ ही, साथ ही

औषधि-उद्योग में बहुत अधिक वृद्धि हुई। लेकिन निरोधक उपायों की उपेक्षा भी हुई, जैसे कि स्वच्छता संबंधी सुधारों, यहाँ तक कि ग्रामों और नगरों को पेय जल की आपूर्ति की भी उपेक्षा की गयी। भारत की संस्थाओं में कार्यरत विदेशी तथा भारतीय वैज्ञानिकों के प्रयासों के माध्यम से अन्य क्षेत्रों में भी सार्थक विकास हुए।

ब्रिटिश गतिविधियों ने स्थानीय जनता में कुछ प्रतिक्रिया भी उत्पन्न की, विशेषतया शिक्षित वर्ग में, जो औपनिवेशिक प्रशासन और अर्थव्यवस्था में नौकरियों की तलाश में थे। कुछ भारतीयों ने शासकीय तौर पर पोषित वैज्ञानिक सभाओं एवं संस्थाओं में भी भाग लिया। फिर भी, वे अपनी अलग पहचान बनाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने अपनी ही संस्थाओं, छात्रवृत्तियों और सुविधाओं की स्थापना की। एमहर्स्ट को लिखे गये राममोहन राय के आवेदन में समुचित वैज्ञानिक शिक्षा की माँग की गई थी। बंबई में बाल गंगाधर शास्त्री और हरिकेशव जी पठारे, दिल्ली में मास्टर रामचंदर, केंद्रीय प्रांत में शुभाजी बापू और ओंकार भट्ट जोशी, और कलकत्ता में अक्षय दत्त भारतीय भाषाओं के माध्यम से आधुनिक विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में जुटे हुए थे।

भूगोल और खगोल विज्ञान को पहला निशाना बनाया गया क्योंकि इन क्षेत्रों में पौराणिक मिथक सर्वाधिक प्रबल माने गये थे। उदाहरण के लिए श्रीमद् भागवत के रचनाकार व्यास ने दूध और सुधा के महासागरों की चर्चा की है। आज भी हिन्दुओं का यह लोकप्रचलित मिथक है और इन लोगों ने पहला प्रहार इन्हीं पर किया। उदाहरण के लिए ओंकार भट्ट ने स्पष्ट किया कि व्यास मात्र एक कवि थे, वैज्ञानिक नहीं। और उन्हें तो केवल आध्यात्मिक विषयों का वर्णन करना था, अतः जो कुछ उनकी कल्पना में आया, उन्होंने लिख दिया। यहाँ तक कि मुख्यतया जीवन के रोमांसों की ओर रुझान रखने वाले उर्दू शायर भी पाश्चात्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी की ओर आकर्षित हुए। उदाहरण के लिए हाली और ग़ालिब ने भाप पाश्चात्य सभ्यता की और कोयले की शक्ति पर आधारित उपलब्धियों की चर्चा की है। अगला तर्कसंगत कदम यह था कि आधुनिक विज्ञान के प्रति निरंतर बढ़ती हुई ललक को कोई संगठनात्मक आधार प्रदान किया जाए।

1864 में, सैय्यद खां ने अलीगढ़ साइंटिफिक सोसाइटी की स्थापना की तथा औद्योगिक और कृषि-उत्पादन में प्रौद्योगिकी का प्रयोग प्रारंभ करने का आह्वान किया। चार वर्ष बाद, सैय्यद इमदाद अली ने "बिहार साइंटिफिक सोसाइटी" की स्थापना की। ये सोसाइटियाँ धीरे-धीरे समाप्त हो गयीं। 1876 में, एम.एल. सरकार ने "सोसाइटी फार द् कल्टीवेशन ऑफ साइंस" की स्थापना की। यह पूरी तरह से भारतीय प्रबंध के अंदर और बिना किसी सरकारी सहायता व आश्रय के कार्य कर रही थी। सरकार की योजना भी बड़ी उच्चाकांक्षी थी। इसका उद्देश्य मूल अन्वेषण के अतिरिक्त विज्ञान को लोकप्रिय भी बनाना था। धीरे-धीरे यह प्रकाश विज्ञान, ध्वनि विज्ञान, प्रकाश-प्रकीर्णन (scattering of light), चुम्बकत्व आदि से संबद्ध अनुसंधान कार्य के महत्वपूर्ण केंद्र में विकसित हो गया। उधर बम्बई में, जमशेदजी टाटा ने भी उच्चतर वैज्ञानिक शिक्षा और अनुसंधान की ऐसी ही एक योजना बनायी। इसी के कारण आगे चलकर 1909 में इंडियन इंस्टीट्यूट आफ साइंस की स्थापना हुई। अतः बीसवीं सदी की ओर बढ़ते हुए भारत में औपनिवेशिक शासन से मुक्ति पाने के लिए आंदोलन के प्रकट होने के कारण विशेष रूप से विज्ञान के प्रति रुझान हुआ। अगले भाग में हम वैज्ञानिक विकासों पर स्वतंत्रता आंदोलन के प्रभाव की चर्चा करेंगे। परंतु आगे के अध्ययन से पहले आइए, देखें, हमने क्या सीखा।

बोध प्रश्न 2

क) नीचे दिये गये स्थान में, एक या दो पंक्तियों में बताइए कि औपनिवेशिक भारत में निम्नलिखित क्षेत्रों में अनुसंधान कार्य को प्रोत्साहन देने का क्या प्रयोजन था?

i) वनस्पति विज्ञान

.....

.....

ii) भू-विज्ञान, भूगोल

.....

.....

iii) चिकित्सा विज्ञान

.....

.....

ख) निम्नलिखित में से कौन से कथन उत्तरवर्ती उन्नीसवीं तथा प्रारंभिक बीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिक विकासों में भारतीयों के योगदान की सही व्याख्या करते हैं।

सही कथन को (√) निशान लगाकर स्पष्ट कीजिए।

i) सोसाइटियों, अनुसंधान तथा शिक्षा संस्थानों की स्थापना के लिए पर्याप्त संगठित प्रयास किये गये। ☐

ii) यहाँ-वहाँ कुछ प्रयास हुए और मूल अन्वेषण कार्य और विज्ञान को लोकप्रिय बनाने को बढ़ावा देने के लिए कुछ संस्थाओं की स्थापना की गयी। ☐

iii) वैज्ञानिक विकास में भारतीय योगदान अपर्याप्त था। ☐

iv) उपर्युक्त में से कोई भी नहीं। ☐

7.2.2 स्वतंत्रता आंदोलन का प्रभाव

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ होते-होते भारतीय समाज में औपनिवेशिक शासन से मुक्ति पाने की छटपटाहट दिखायी देने लगी थी। उनकी राजनीतिक अभिलाषाओं ने जहाँ स्वशासन की माँग को जन्म दिया, वहीं आर्थिक शिकंजे से उत्पन्न कुंठा की अभिव्यक्ति के लिए केवल भारत में बने सामान के उपयोग को बढ़ावा मिला। इस स्वदेशी आन्दोलन ने निम्नलिखित को और अधिक प्रश्रय दिया:

i) राष्ट्रीय वैचारिकता और राष्ट्रीय नियंत्रण के अंतर्गत, विशेषतः विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के संदर्भ में शिक्षा का प्रसार।

ii) देश का औद्योगिकरण।

1904 में 'एसोसिएशन ऑफ द एडवांसमेंट ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल एजुकेशन ऑफ इंडियंस' की स्थापना की गयी। इसका उद्देश्य योग्य छात्रों को विज्ञान पर आधारित उद्योगों का अध्ययन करने के लिए यूरोप, अमरीका और जापान भेजना था।

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, औपनिवेशिक भारत में अनुसंधान की बात तो दूर, उच्चतर अध्ययन के लिए भी उपयुक्त वातावरण नहीं था। भारतीयों को केवल निम्न पदों पर रखा जाता था। यहाँ तक कि जिन लोगों ने विदेशों में भी विशिष्टता पायी थी, उन्हें भी उसी वर्ग और श्रेणी के यूरोपीयों की तुलना में कम वेतन दिया जाता था। विज्ञान में इस भेदभाव से भारतीयों में प्रबल प्रतिक्रिया हुई। प्रथम विख्यात भारतीय भौतिक विज्ञानी जगदीश चन्द्र बोस ने कम वेतन लेने से तीन वर्ष तक इंकार किया। यही नहीं, जब तक रायल सोसाइटी ने बोस को मान्यता नहीं दे दी तब तक कॉलेज प्राधिकारियों ने उन्हें अनुसंधान कार्य के लिए कोई सुविधा देने से इंकार कर दिया और उनके अनुसंधान कार्य को

(क)

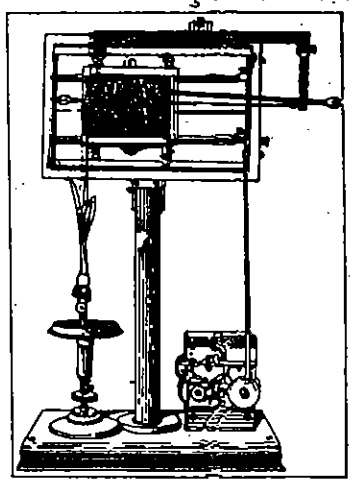

(ख)

चित्र 7.1 (क) जे.सी. बोस, (ख) क्रेस्कोग्राफ जे.सी. बोस द्वारा निर्मित अनेक उपकरणों में से एक है जो पौधों की वृद्धि की गति को 10,000,000 गुणा बढ़ाकर रिकार्ड करता है।

सी विशुद्ध निजी कार्य बतलाया। जगदीश चन्द्र बोस एक और दृष्टि से भी रूढ़ि विरोधी रहे। आधुनिक वैज्ञानिकों में वे पहले ऐसे वैज्ञानिक थे जिन्होंने अनेक विषयों पर अनुसंधान कार्य किया। इस तरह की शुरुआत तो उन्होंने भौतिक विज्ञानी के तौर पर की परंतु उनके विद्युत संबंधी अनुक्रियाओं में उनकी रुचि ने उन्हें पादप क्रिया विज्ञान (Plant Physiology) की ओर मोड़ दिया। महानगरीय वैज्ञानिक मंच पर आने की लड़ाई औपनिवेशिक सरकार की प्रशासनिक असंगतियों के विरुद्ध लड़ाई से किसी प्रकार कम नहीं थी। परंतु बोस जुटे रहे और अन्ततः उनकी जीत हुई।

चित्र 7.2 : आचार्य पी.सी.रे

एक अन्य विख्यात वैज्ञानिक, पी.सी. रे को भी इसी कारण कष्ट उठाना पड़ा। 1888 में इंग्लैंड से रसायन विज्ञान में डॉक्टरेट की उपाधि लेकर लौटने के बाद वह एक साल तक भटकते रहे और अन्ततः उन्हें सहायक प्रोफेसर की अस्थाई नौकरी दी गयी। जीवन भर वे प्रांतीय सेवा में रहे। उधर पी.एन. बोस ने उस समय, (1930) में त्याग पत्र देना बेहतर समझा जब उनकी उपेक्षा करके उनसे दस वर्ष जूनियर टी. हालैंड को भारतीय भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण के निदेशक का पद दे दिया गया।

ये समस्याएँ देश के राजनीतिक मंच पर भी प्रतिबिंबित हुआ करती थीं। अपने तीसरे ही अधिवेशन (1887) में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने तकनीकी शिक्षा के सवाल को उठाया और तब से लेकर प्रतिवर्ष वह इसके संबंध में प्रस्ताव पारित करती रही। के.टी. तेलंग और बी.एन. स्याल ने इस ओर ध्यान दिलाया कि किस प्रकार तकनीकी शिक्षा के नाम पर सरकार केवल घटिया किस्म के व्यावहारिक प्रशिक्षण दे रही है। इंडियन मेडिकल सर्विस की भी कटु आलोचना की गयी। 1893 में कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास किया जिसमें सरकार से कहा गया कि वह उपलब्ध सर्वोत्तम प्रतिभा और विशेषतया स्वदेशी प्रतिभा के लिए चिकित्सा तथा वैज्ञानिक कार्य के क्षेत्र खोलकर भारत में एक विज्ञान-सम्मत चिकित्सा व्यवसाय खड़ा करे। चाहे शिक्षा हो अथवा कृषि या खनन, कांग्रेस ने अपने विस्तृत दायरे में अनेक समस्याओं पर ध्यान दिया।

हम पाते हैं कि इस युग की गतिविधियों की दो मुख्य विशेषताएँ थीं। पहली यह कि स्वदेशी आन्दोलन के समर्थक लगभग सभी प्रमुख लोग जापान को प्रेरणा का मुख्य स्रोत मानते थे। एक एशियाई औद्योगिक देश के रूप में जापान का उभरना और फिर 1904-05 में रूस पर उसकी सैनिक विजय ने भारतीयों की कल्पना को भी जागृत किया। दूसरी विशेषता यह थी कि प्राचीन युग के प्रति उनमें पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती थी। इसका कारण यह हो सकता है कि अपने लुप्त अहं को फिर से प्राप्त करने और अपनी विशिष्टता के आग्रह के लिए सुदूर भूतकाल सहज सहायक होता है। अपनी सांस्कृतिक विरासत की खोज ने वैज्ञानिक पी.एन. बोस को, जिसकी चर्चा की जा चुकी है, तीन खंडों में 'ए हिस्ट्री ऑफ हिन्दू सिविलाइजेशन' (हिन्दू सभ्यता का इतिहास) लिखने को प्रेरित किया। जगदीश चन्द्र बोस ने जो यंत्र बनाये थे, उन्हें संस्कृत नाम दिये, जैसे कि कंचनग्राफ (Kunchanagraph) और सोशुंग्राफ (Soshangraph)। विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में लगे अनेक लेखकों में यह प्रवृत्ति पायी जाती थी कि पाश्चात्य विज्ञान में जो कुछ भी उत्तम है, वह प्राचीन भारत में विज्ञान में भी था। उदाहरण के लिए, रमेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी का डार्विन संबंधी विचार-विमर्श गीता पर आकर समाप्त होता था। बाद में बी.के. सरकार ने विशुद्ध विज्ञान में हिन्दू उपलब्धियों (Hindu Achievements in Exact Science) पर लिखा। ये सभी लोग आधुनिक विज्ञान के औद्योगिक प्रयोग के पक्ष में थे परंतु कुछ सुनिश्चित सांस्कृतिक सीमा रेखाओं का उल्लंघन नहीं करना चाहते थे। उन्होंने यह दिखलाने की चेष्टा की कि भारतीय लोकाचार एवं प्रकृति तथा आधुनिक विज्ञान के मूल्य एवं मानदंड समरूप थे। यह एक अत्यंत कठिन कार्य था। समग्र उपनिवेशीकरण ने स्वदेशी बौद्धिकता और सांस्कृतिक विरासत में अंतर्निहित परिप्रेक्ष्यों के पल्लवित पुष्पित होने की संभावनाओं को निश्चित रूप से कुंठित कर दिया था।

कंचनग्राफ एक प्रकार का उपकरण है जिससे यह पता चलता है कि किस प्रकार पौधा संवेदनों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया संकुचन के द्वारा दिखाता है। सोशुंग्राफ एक प्रकार का उपकरण है जिससे यह जाना जा सकता है कि पौधा पानी या किसी द्रव पदार्थ का अवशोषण किस प्रकार करता है।

से इन प्रयासों का एक उत्साहवर्द्धक प्रभाव भी रहा। 'विश्वविद्यालय अधिनियम 1904' का लाभ उठाते हुए, सर आशुतोष मुखर्जी ने इस दिशा में पहल करते हुए कलकत्ता में 'यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ साईंस' की स्थापना की। उपर्युक्त विश्वविद्यालय अधिनियम विद्यमान विश्वविद्यालयों को यह अनुमति तो देता ही था कि वे कालेजों को अपने से सम्बद्ध

करें, इसके अतिरिक्त वह उन्हें विज्ञान और अनुसंधान की व्यवस्था की भी अनुमति देता था। पी.सी. रे, सी.वी. रमन, एस.एन. बोस और के.एस. कृष्णन जैसे विख्यात वैज्ञानिक वहाँ पढ़ाते थे। हमेशा आर्थिक संकट में रहने वाले इस कालेज ने भौतिकीविदों और रसायनविज्ञानियों का एक ऐसा दल बनाया जिसे अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हुई। इसके विपरीत, अनेक सरकारी वैज्ञानिक संगठन जिनमें ऊँचे-ऊँचे वेतन पाने वाले यूरोपीय नियुक्त थे, कुछ भी नहीं कर पाए।

चित्र 7.3 : सी.वी. रमन जिन्हें नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

जिन लोगों ने भारत को विश्व वैज्ञानिक मानचित्र पर अंकित किया उनमें जे.सी. बोस (जगदीश चंद्र बोस) थे जिन्होंने सिद्ध किया कि जन्तुओं और वनस्पति ऊतकों में ऊष्मा जैसे भिन्न-भन्न प्रकार के उद्दीपनों से विद्युत-अनुक्रियाएँ होती हैं। एस. रामानुजन, जो कि गणित के एक अन्तर्ज्ञानी विभूति थे, पी.सी. रे जिन्होंने अनेक भारतीय विरल खनिजों का विश्लेषण किया तथा स्वदेशी रसायन और औषध उद्योग में 'बंगाल केमिकल एण्ड फार्मास्युटिकल वर्क्स' नामक एक अग्रणी और दिशानिर्धारक संगठन बनाया। सी.वी. रमन ने प्रकाश-प्रकीर्णन (scattering of light) पर अनुसंधान किया जिसके कारण बाद में 1930 में उन्हें नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ। के.एस. कृष्णन ने धातुओं के विद्युत प्रतिरोध पर सैद्धांतिक कार्य किया, मूल कणों के अध्ययन में एस.एन. बोस द्वारा आइन्स्टीन से सहयोग के फलस्वरूप उस विषय का जन्म हुआ जिसे बोस-आइन्स्टीन सांख्यिकी कहा जाता है। डी.एन. वाडिया ने भूविज्ञान (geology) के क्षेत्र में, बीरबल साहनी ने पुरावनस्पति (palaeobotany), पी.सी. महातानोबिस ने सांख्यिकी और शांतिस्वरूप भटनागर ने रसायन शास्त्र के क्षेत्र में कार्य किया। इन वैज्ञानिकों का व्यक्तिगत योगदान तो महान था ही, इसके अतिरिक्त इनका सबसे बड़ा योगदान अध्यापन और अनुसंधान के मार्गदर्शन में था। इनमें से बहुतों ने वैज्ञानिक संस्थानों की स्थापना की। उदाहरण के लिए, बोस इंस्टीट्यूट (1917), शीलाधर इंस्टीट्यूट ऑफ सॉइल साईंस (शीलाधर मृदाविज्ञान संस्थान) (1936), बीरबल साहनी इंस्टीट्यूट ऑफ पेलियोबाटनी (बीरबल साहनी पुरावनस्पति संस्थान) आदि। इनके कारण भारत में वैज्ञानिक गतिविधियों में और भी तेज़ी आयी।

चित्र 7.4 : एस. रामानुजन

शीघ्र ही एक वार्षिक वैज्ञानिक बैठक की आवश्यकता भी अनुभव की जाने लगी, जिससे कि देश भर में फैले हुए विभिन्न विज्ञानकर्मियों को 'सैनिटरी कान्फ्रेंस' अथवा 'द एग्रिकल्चरल कान्फ्रेंस' जैसे विशुद्ध सरकारी और अनियमित किस्म के सम्मेलनों की अपेक्षा और अधिक अच्छी तरह आपसी संपर्क में लाया जा सके। इस भावना ने 1914 में 'इण्डियन साईंस कांग्रेस एसोसिएशन' को जन्म दिया, जिसके उद्देश्य निम्नलिखित थे:

- वैज्ञानिक ज्ञान-प्राप्ति को अधिक सबल प्रेरणा और अधिक क्रमबद्ध दिशा-निर्देश प्रदान करना,
- देश के विभिन्न भागों में स्थित विज्ञान में रुचि लेने वाली संस्थाओं और व्यक्तियों में परस्पर विचार-विमर्श को बढ़ावा देना,
- विशुद्ध और प्रायोगिक विज्ञानों के प्रति सामान्यतया अधिक जागरूकता उत्पन्न करना।

चित्र 7.5 : एस.एन. बोस

तब से लेकर अब तक इण्डियन साईंस कांग्रेस एसोसिएशन के उद्देश्यों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है और यह विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अनेक विषयों का प्रतिनिधित्व करने वाले भारतीय वैज्ञानिकों और प्रौद्योगिकीविदों का सबसे बड़ा संगठन बन गयी है।

प्रथम विश्व युद्ध (1914-18) शुरू होने के उपरांत सरकार को यह लगा कि भारत को वैज्ञानिक और औद्योगिक दृष्टि से अधिक आत्मनिर्भर होना चाहिए। अतः उसने ब्रिटेन पर भारत की वैज्ञानिक और औद्योगिक निर्भरता कम करने के उपायों की जाँच-पड़ताल के लिए 1916 में 'भारतीय औद्योगिक आयोग' (इण्डियन इंडस्ट्रियल कमीशन) की नियुक्ति की। आयोग की सिफ़ारिशों का क्षेत्र बहुत विस्तृत था, जिसमें औद्योगिक विकास के कई पहलुओं का समावेश था। परंतु आयोग की शायद ही किसी सिफ़ारिश को लागू किया गया हो। अन्य अनेक सम्मेलनों और समितियों का भी यह हाल हुआ। भारतीयों ने जब भी नयी संस्थाएँ प्रारम्भ करने अथवा विद्यमान संस्थाओं का विस्तार करने की माँग की, सरकार ने धन की कमी अथवा माँग की अपर्याप्तता का बहाना करके उसे टाल दिया। उपनिवेशी प्रशासन और राष्ट्रवादियों के हितों में आपसी टकराव काफ़ी ज़्यादा था।

बीसवीं सदी के प्रथम चतुर्थांश में हुए विकास पर नज़र डालने पर हम पाते हैं कि इस काल में और अधिक विकास किये जाने पर बहुत बहस हुई। गांधी जी ने कुटीर उद्योगों के संबंध में जब अपना आंदोलन प्रारंभ किया तो इंडियन साइंस कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में तरह-तरह की बोलियाँ सुनाई गईं। उदाहरण के लिए, पी.सी. रे का विचार था कि वैज्ञानिक विकास के लिए प्राथमिक शिक्षा और परंपरागत उद्यागों के माध्यम से हुआ सामान्य विकास एक अनिवार्य शर्त है। किन्तु लोगों की राय उनसे भिन्न थी। एम.एन. शाह और उनका विज्ञान व संस्कृति (साईंस एण्ड कल्चर) ग्रुप आर्थिक विकास की गांधी जी की पद्धति का विरोधी था। वह बड़े उद्योग लगाने के पक्ष में था। रूस में हुए समाजवादी प्रयोगों ने मानव की आर्थिक और भौतिक उन्नति की दृष्टि से विज्ञान के प्रबल सामर्थ्य को उजागर किया था। राष्ट्रीय नेतृत्व भारी उद्योग लगाने और समाजवाद की ओर उन्मुख होने लगा था क्योंकि ये दोनो आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के आधार पर स्थित थे। डॉ. साहा के अनुरोध पर उस समय के कांग्रेस अध्यक्ष सुभाष चंद्र बोस कांग्रेस कार्य-सूची में राष्ट्रीय आयोजन और औद्योगीकरण को सबसे ऊपर रखने के लिए सहमत हो गये।

चित्र 7.6 : बीरबल साहनी

परिणामस्वरूप 1938 में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय योजना समिति (National Planning Committee) का गठन किया गया। इस समिति ने 29 उप-समितियाँ बनायीं जिनमें से अनेक सिंचाई, उद्योग, सार्वजनिक स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे तकनीकी विषय रखे गये थे। तकनीकी शिक्षा उप-समिति एम.एन. साहा की अध्यक्षता में कार्य कर रही थी। इसके अन्य सदस्य थे—बीरबल साहनी, जे.सी. घोष, जे.एन. मुखर्जी, एन.आर. धर, नज़ीर अहमद, शांतिस्वरूप भटनागर और ए.एच. पांड्या। उप-समिति ने यह जानने के लिए विद्यमान संस्थाओं की समीक्षा की कि कर्मियों और उपकरणों का उपलब्ध मूल ढाँचा तकनीकी कर्मी तैयार करने में कहाँ तक समर्थ है?

चित्र 7.7 : एम.एन. साहा।

दूसरा विश्व युद्ध, (1939-45) छिड़ जाने और उसके कारण भारत और इंग्लैंड के बीच के सीधे समुद्री मार्ग में व्यवधान आ जाने से उपनिवेशी सरकार के लिए भारत की औद्योगिक क्षमता और अधिक बढ़ाने की अनुमति देना आवश्यक हो गया था। अतः एक 'केन्द्रीय अनुसंधान संगठन' की स्थापना करने की आवश्यकता महसूस की गयी और इसकी स्थापना के उपरांत अंततः 1942 में 'वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद' की स्थापना हुई। युद्धोत्तर पुनर्निर्माण योजना के अंग के रूप में सरकार ने रायल सोसाइटी के प्रधान ए.वी. हिल को आमंत्रित किया। सन् 1944 में उन्होंने एक रिपोर्ट तैयार की जिसमें भारत में अनुसंधान में बाधक विभिन्न समस्याओं की पहचान की गयी थी। इन घटनाओं से भारतीय वैज्ञानिकों को नीति-निर्धारण और वैज्ञानिक मामलों के प्रबंध के और अधिक अवसर मिले। वस्तुतः स्वाधीन भारत की वैज्ञानिक-नीति तथा समग्र राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के बीज इन्हीं गतिविधियों में तलाशे जा सकते हैं।

इससे पहले कि हम अध्ययन को और आगे बढ़ाएँ, आइए देखें कि हमने अब तक क्या पढ़ा।

बोध प्रश्न 3

भारत में स्वतंत्रता से पूर्व वैज्ञानिक विकास पर स्वतंत्रता आंदोलन के प्रभाव का सार प्रस्तुत करने वाले निम्नलिखित कथनों में खाली स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) ..... आंदोलन से राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुसार विज्ञान की शिक्षा और औद्योगीकरण को बढ़ावा देने की प्रेरणा मिली।

ii) वैयक्तिक तौर पर ..... के अनेक उल्लेखनीय योगदान थे। फिर भी, उपनिवेशी भारत में समग्र रूप में वातावरण, ... और ..... की वृद्धि को प्रोत्साहन प्रदान करने वाला नहीं था।

iii) स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं ने इस बात को समझा और चाहे शिक्षा का क्षेत्र हो, या ..... का, अथवा खनन अथवा ..... का, उन्होंने उसके स्तर को उन्नत करने की माँग की।

iv) स्वतंत्रता आंदोलन जैसे-जैसे गहन होता गया और वैज्ञानिक गतिविधियाँ बढ़ने लगीं, इसके और अधिक विकास के विषय में बहस होने लगी। अन्ततः ..... और राष्ट्रीय ..... का मार्ग चुना गया।

v) विद्यमान मूल ढाँचे की गतिविधियों की समीक्षा करने, समस्याओं की पहचान करने तथा उन्हें सुलझाने के उपाय सुझाने के लिए समितियाँ बनायी गईं। यही सब प्रयास स्वतंत्र भारत का ..... और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के भी

ब्रिटिश सरकार के अधीन भारत की स्थिति का अध्ययन करने पर लगता है कि एक ऐसे विदेशी प्रशासन से, जो एकतरफ़ा व्यापार को प्राथमिकता देता था, यह अपेक्षा करना व्यर्थ था कि वह विज्ञान के विकास में मदद करेगा। ऐसी स्थिति में, प्राकृतिक संसाधनों और व्यावसायिक फसलें उगाने के लिए विज्ञान का विकास किया गया, परंतु अनुसंधान-कार्य का संतुलित विकास नहीं हुआ। जब उद्योग को विकसित नहीं होने दिया गया तो इससे संबंधित विज्ञान भी विकसित नहीं हो पाया। जैसा कि हम इकाई 6 में पढ़ चुके हैं, आविष्कार-परिष्कारपूर्ण विचारों के लिए तथा वैज्ञानिक प्रगति के लिए सामाजिक और आर्थिक जीवन में शक्ति एवं उल्लास का वातावरण होना ज़रूरी होता है। फिर भी, विपरीत परिस्थितियों के बावजूद व्यक्तिगत तौर पर अनेक वैज्ञानिक चमके। समाज को मुक्ति दिलाने और उसे बदलने के लिए छिड़े सामाजिक आंदोलन और संघर्ष के प्रभाव में यह व्यक्तिगत योगदान और भी संभव हुआ। इस तरह, 1947 में भारत के स्वतंत्र होने पर परिस्थिति बदल गयी। आइए, अब स्वातंत्र्योत्तर भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास पर संक्षेप में चर्चा करें।

7.3 स्वातंत्र्योत्तर भारत में विज्ञान

1945 में दूसरे विश्व युद्ध के समाप्त होने तक जर्मनी, इटली और जापान पराजित हो चुके थे और फ्रांस बुरी तरह झंझोड़ा जा चुका था। ब्रिटेन ने भी भारी नुकसान उठाये थे और उसकी अर्थव्यवस्था प्रायः ध्वस्त हो चुकी थी। अतः उपनिवेशवादी शक्तियाँ जिन्होंने विश्व-भर में शासन किया था और चारों तरफ गरीबी, भुखमरी और रोग फैला दिये थे, अब वे कहीं भी लोगों को दबाने की स्थिति में नहीं थे। औपनिवेशिक देशों में निरंतर चलने वाला स्वतंत्रता संघर्ष भी अब काफ़ी तेज़ी पकड़ गया था। परिणाम यह हुआ कि एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका के लगभग सौ से अधिक देश एक के बाद एक आज़ाद हो गये। युद्ध ने पुराने तंत्र को छिन्न-भिन्न कर दिया था और एक नये विश्व का जन्म हुआ था, जिसके सामने बिल्कुल नये किस्म के अवसर और नयी किस्म की समस्याएँ थीं।

नये-नये स्वतंत्र हुए देशों के सामने अपनी अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण की समस्या विकट थी, जिससे जनता की जीवन-दशा को कुछ हद तक सुधारा जा सकता था। दूसरी ओर पुराने शासक देशों को ऐसे तरीके और उपाय सोचने थे जिनसे वे अपने पुराने उपनिवेशों के धन को अपने देश ले जा सकते। उनके व्यापारिक प्रतिष्ठान ऊँचे मुनाफ़े कमाते रहें, इसके लिए ऐसा करना आवश्यक था। इन ऊँचे मुनाफ़ों से वे अपने देश के लोगों के जीवन-स्तर को उसी ऊँचे स्तर पर कायम रख सकते थे, जिसके वे अभ्यस्त हो चुके थे।

इन दोनों ही वर्गों के देशों को खूब सोच-विचार कर विज्ञान और प्रौद्योगिकी का उपयोग करना था। इन दोनों में केवल एक ही अंतर था। वह यह कि ग़रीब देशों को तो ऐसी नितांत साधनहीन स्थिति से काम शुरू करना था जिसमें वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक कार्य करने के लिए न तो कोई संस्थाएँ ही थीं और न कामगर लोग, जबकि उन्नत और विकसित देशों के पास विज्ञान और प्रौद्योगिकी का पहले से भी अधिक सशक्त आधार मौजूद था। विश्व युद्ध के दौरान नाभिकीय विज्ञान और परमाणु बम के विकास पर राडार और संचार में उपयोग के लिए इलेक्ट्रॉनिकी पर तथा हवाई जहाज़ों, पनडुब्बियों और युद्ध के अन्य साधनों के उन्नत डिज़ाइन तैयार करने पर अत्यधिक धन खर्च किया गया था। विज्ञान के अन्य सभी क्षेत्रों मे भी यहाँ पहले से बेहतर स्थिति थी। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के इस सुदृढ़ आधार का लाभ उठाते हुए उन्नत देशों ने इनका उपयोग अपने खोये हुए गौरव और सत्ता को पुनः प्राप्त करने के लिए किया। दूसरे शब्दों में, 'विकास' के लिए हमारा संघर्ष तथा प्रभुत्व और सर्वश्रेष्ठता के लिए उनका संघर्ष एक ही सिक्के के दो पहलू थे। इस अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रमुख भूमिका रही।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन इस बात के प्रति पूर्णतया सजग था कि राजनीतिक स्वतंत्रता, आर्थिक स्वतंत्रता के लिए महत्वपूर्ण साधन है। हमारे नेताओं ने यह भली-भाँति समझ लिया था कि उद्योग और व्यापार संबंधी फ़ैसले विदेशी सरकारों अथवा उनकी व्यापारी कंपनियों के दबावों से अलग होकर केवल उन्हीं को करने होंगे। हमारे आर्थिक विकास जनता के लिए होगें जिससे खाद्य, स्वास्थ्य, आश्रय, शिक्षा और संस्कृति आदि की उनकी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। इसलिए आर्थिक विकास को मात्र संयोग पर या केवल मुनाफ़े का उद्देश्य रखने वाले निजी उद्योग और व्यापार पर नहीं छोड़ा जा सकता था; खासकर इसलिए कि निजी उद्योगों की रुचि हमारी सामाजिक ज़रूरतों के लिए उत्पादन न करके, ऐसा माल बनाने की होती है जिसे बेचकर मुनाफ़ा कमाया जा सके। अत: विकास के प्रति हमारी दृष्टि का एक अनिवार्य अंग ऐसी अर्थव्यवस्था को लाना था जो आर्थिक वृद्धि के साथ-साथ लोगों को अधिक से अधिक संतोष दे सकती।

इस प्रयास में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की बड़ी निर्णायक भूमिका थी और इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति संसद द्वारा 1958 में अपनायी गयी 'वैज्ञानिक नीति संकल्प' में हुई है। इस संकल्प का मसौदा हमारे प्रथम प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू ने बनाया था और उन्होंने ही इसे संसद में विचार-विमर्श के लिए प्रस्तुत किया था। संकल्प के अनुसार, 'आधुनिक युग में, राष्ट्रीय समृद्धि की कुंजी, लोगों की भावनाओं के अतिरिक्त तीन घटकों—प्रौद्योगिकी, कच्चे माल और पूँजी के प्रभावी मेल में निहित होती है, जिनमें से प्रथम संभवतया सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि नयी वैज्ञानिक तकनीकों का सृजन और उनको अपनाया जाना, वास्तव में, प्राकृतिक संसाधनों की कमी को पूरा कर देते हैं तथा पूँजी की माँग को भी कम कर देते हैं। परंतु प्रौद्योगिकी केवल विज्ञान के अध्ययन और उसके अनुप्रयोग से ही विकसित होती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर और विशेषत: इस संकल्प के पारित होने के बाद शिक्षा और अनुसंधान, दोनों में, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का अत्यधिक विस्तार हुआ है। 1947 में स्वतंत्रता-प्राप्ति के समय जो स्थिति थी, उससे आज की स्थिति बहुत ही भिन्न है। आज हमारे पास कुल मिलाकर लगभग 150 विश्वविद्यालय और 5 आई.आई.टी. (भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान) हैं, लगभग 800 इंजीनियरी के और 110 चिकित्सा विज्ञान कालेज हैं, केंद्रीय और प्रादेशिक सरकारों के अधीन कई सौ वैज्ञानिक अनुसंधान प्रयोगशालाएँ हैं तथा इनके अतिरिक्त निजी उद्योगों के अनुसंधान एवं विकास की इकाइयाँ भी हैं। आधुनिक विज्ञान के लगभग सभी क्षेत्रों में अनुसंधान किया जा रहा है। परमाणु ऊर्जा, अंतरिक्ष अनुसंधान तथा कृषि के क्षेत्र में हमारे वैज्ञानिकों की सफलता को सभी जानते हैं।

चालीस वर्ष पहले की तुलना में अनुसंधान कार्य के लिए निर्धारित राशि में भी अत्यधिक वृद्धि हुई है। किन्तु आधुनिक विश्व में सृजनात्मक विज्ञान अथवा परिष्कारात्मक प्रौद्योगिकी में आगे बढ़ने के लिए यही काफ़ी नहीं है। अनुसंधान पर विश्व भर में होने वाले कुल व्यय में, समाजवादी देशों को छोड़कर 98% व्यय विकसित देशों द्वारा अर्थात् पुराने उपनिवेशवादी स्वामियों द्वारा किया जाता है। सभी विकासशील देशों द्वारा मिलकर केवल 2% व्यय किया जाता है। इस सब में भारत का हिस्सा शायद आधा प्रतिशत मात्र ही हो। एक बात और! क्योंकि विकसित देशों के पास बेहतर सुविधाएँ तथा वैज्ञानिक कार्य के लिए बेहतर अवसर उपलब्ध हैं तथा वहाँ जीवन-यापन का स्तर भी अपेक्षाकृत उन्नत है, इसलिए काफ़ी तादाद में हमारे प्रतिभाशाली युवा वैज्ञानिक उन देशों में जा बसते हैं। अत: वे हमारी वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ होते हैं और इस प्रकार राष्ट्रीय विकास में कोई योगदान नहीं दे पाते। इसलिए नयी खोजें और नये आविष्कार, अब भी उन्नत एवं विकसित देशों में ही होते हैं। निकट भविष्य में इस स्थिति में परिवर्तन होने की कोई संभावना नहीं है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के विश्व की एक नयी विशेषता है शस्त्रास्त्रों की होड़। अमरीकियों द्वारा जापान में हिरोशिमा और नागासाकी पर नितांत भिन्न प्रकार के शस्त्र (परमाणु बम) गिराने से यह होड़ शुरू हुई। तब से लेकर अमरीका और सोवियत संघ, दोनों के द्वारा आधुनिक बम विकसित किये गये हैं, जिनमें से प्रत्येक दस लाख टन पुराने विस्फोटक के बराबर है। आज उनके पास ऐसे प्रक्षेपास्त्र (missile) हैं जिनसे पृथ्वी के आधे क्षेत्रफल की दूरी तक प्रहार किया जा सकता है। प्रत्येक आक्रामक शस्त्र के कारण एक नया बचाव तंत्र

ज़रूरी हो गया। अन्य देशों में सैनिक अड्डे प्राप्त करने की होड़ लग गयी। नाभिकीय शस्त्रास्त्रों का एक खतरनाक पहलू यह है कि ये गलती से भी दागे जा सकते हैं और संपूर्ण सभ्यता को नष्ट कर सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि न तो यू.एस.ए. की सुरक्षा में सुधार हुआ है और न ही यू.एस.एस.आर. की। वस्तुतः अनेक देशों को केवल इसलिए इस होड़ में आ जाना पड़ा क्योंकि एक देश के शस्त्रों की बराबरी दूसरे देश को करनी पड़ती थी। अनुमान लगाया गया है कि संसार भर के देश एक साल भर में कुल मिलाकर शस्त्रों पर एक लाख करोड़ रुपया व्यय करते हैं और गरीब विकासशील देश इस राशि का कोई 20% भाग व्यय करते हैं, जिसमें से अधिकांश विकसित देशों की कंपनियों से हथियार खरीदने पर व्यय होता है।

ज़रा कल्पना कीजिए, मानव-श्रम का प्रतिनिधित्व करने वाला इतना अधिक पैसा हर वर्ष बर्बाद होता है। स्वाभाविक है कि विकास के काम आने वाले प्राकृतिक संसाधन 'सुरक्षा' के काम में लगाये जाते हैं। दूसरी ओर, अविकसित देशों के लोग अब भी बहुधा अनपढ़ हैं, जिन्हें भोजन, पानी और चिकित्सा जैसी जीवन की मूल आवश्यकताएँ भी पर्याप्त नहीं मिल पातीं। एक रोचक बात यह है कि शस्त्रों की होड़ के कारण चंद गिनी-चुनी फर्मों ने अथाह मुनाफा कमाया है। इसकी व्यवस्था इस तरह की गयी है कि वे विकासशील देशों के संसाधनों को निचोड़ लें, जिससे पाश्चात्य ऋणों, प्रौद्योगिकी और युद्ध-संबंधी नीतियों पर उनकी निर्भरता बढ़ जाए। हथियार जितने उन्नत होंगे, उतने ही अधिक हम उन्नत देशों पर निर्भर होंगे।

निश्चय ही, न तो यह कोई सुखद स्थिति है और न ही स्थिरतापूर्ण। विज्ञान की शक्ति ऐसी सीमा पर पहुँच गयी है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में बार-बार तालमेल बिठाना पड़ता है और राष्ट्रीय प्रयासों को भी बार-बार नया मोड़ देना पड़ता है ताकि सामान्य लोगों को भी विज्ञान का लाभ पहुँच सके।
आगे दिये बोध प्रश्नों के साथ ही हम इस चर्चा को समाप्त करते हैं।

बोध प्रश्न 4
ऐसे तीन कथनों पर सही का निशान (√) लगाइए जो विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सहायता से अपनी समस्याएँ सुलझाने के हमारे देश के प्रयासों के सूचक हैं।

i) सावधानीपूर्वक निर्धारित विज्ञान नीति को अपनाना। ☐

ii) युवा वैज्ञानिकों को विकसित देशों में जाकर बसने देना। ☐

iii) विज्ञान और प्रौद्योगिकी की शिक्षा और अनुसंधान-कार्य का विस्तार करना। ☐

iv) अनुसंधान कार्य के लिए अधिक धन उपलब्ध कराना। ☐

v) शस्त्र खरीदने में धन लगाना। ☐

7.4 हमने क्या सीखा

खंड 1 और 2 में हमने जो चर्चा की है, उससे हमारे सामाजिक संदर्भ में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उपयोग के विषय में निम्नलिखित बातें सामने आती हैं :

i) ज्ञान एक है और भौतिकी, रसायनशास्त्र, जीव विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, प्रौद्योगिकी, अर्थशास्त्र जैसे इसके विभिन्न रूप घनिष्ठतापूर्वक आपस में जुड़े हैं। हम विज्ञान को सामाजिक विज्ञानों और मानविकी विषयों से अलग करके उनका अध्ययन करने के अभ्यस्त हो गये हैं। ऐसा, ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण हुआ है, जैसा कि हमने भाग 5.2.1 और भाग 6.4.1 में बतलाया है। किन्तु यह हमारी शिक्षा और अनुसंधान पद्धति की एक अवांछनीय विशेषता है। इसी वजह से व्यक्ति को इस बात की पूरी

जानकारी नहीं हो पाती कि विभिन्न रूप कैसे परस्पर, क्रिया-अनुक्रिया करते हैं। विशेषकर यह कि सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को बदलने में विज्ञान कैसे अपनी भूमिका निभाता है तथा सामाजिक-आर्थिक योजनाएँ और नीतियाँ विज्ञान को कैसे प्रभावित करती हैं। वर्षों तक वैज्ञानिक यही मानते रहे कि विज्ञान अपने में बहुत अच्छा है। उनका यह विश्वास तब तक कायम रहा जब तक कि समाजशास्त्रियों ने यह न बतला दिया कि विज्ञान का विनाश के लिए भी उपयोग किया जा सकता है, विज्ञान का उपयोग रोगों को रोकने की बजाय उनको फैलाने में भी किया जा सकता है। हवाई जहाजों और यहाँ तक कि आधुनिक अंतरिक्ष का दुरुपयोग लोगों को आधीन बनाने की लड़ाइयाँ लड़ने और विशाल स्तर पर जन संहार करने के लिए भी किया जा सकता है। विज्ञान तभी अच्छा हो सकता है जब उसे इस रूप में ढाला जाए कि वह मानव की स्थिति के उत्थान और उसमें सुधार लाने के उद्देश्य में सहायक हो सके।

i) इकाई 6 में हमने देखा है कि आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी में अधिकांश विकास पहले पश्चिम यूरोपीय समाज तथा बाद में अमरीका के संदर्भ में तथा उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप हुआ है। हमें कम से कम इस बात की सावधानीपूर्वक जाँच कर लेनी चाहिए कि वहाँ विकसित सभी विचार क्या भारतीय समाज के अनुकूल हैं। उदाहरण के लिए, लगभग सारा मशीनीकरण श्रम की उत्पादकता बढ़ाने के लिए किया गया था। व्यावहारिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि थोड़े लागों से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए मशीनीकरण किया गया। यह दृष्टिकोण श्रम की बचत करने का है और केवल ऐसे देशों के लिए उपयुक्त है जहाँ श्रमिकों की कमी हो, जैसे कि यूरोपीय देशों में। हमारे जैसे अधिक संख्या वाले देश की रोज़गार स्थिति पर मशीनीकरण का क्या प्रभाव होगा? पाश्चात्य देशों में जो कुछ हुआ, उसको हू-ब-हू नकल करना तब तक हमारे पूर्ण हित में नहीं हो सकता, जब तक कि लोगों का रोज़गार और उससे संबंधित उनकी क्रय शक्ति सुनिश्चित नहीं की जाती।

मशीनीकरण और आधुनिकीकरण से उत्पादन की श्रम लागत में कमी आ सकती है और इस प्रकार लाभ की वृद्धि हो सकती है। परन्तु एक ऐसे देश में जहाँ की अधिकांश जनता गरीब है, सामाजिक लागतें असहनीय हो सकती हैं। ज़ाहिर है कि एक सावधानीपूर्ण और सजगतापूर्ण नीति की आवश्यकता है। इसका एक ठोस उदाहरण कृषि है : गैर-यांत्रिक कृषि से सामान्यतया किसानों की खपत से 5 से 10% अधिक अन्न उपजता है जो कि नगरों की आबादी के काम में आता है। मशीनीकरण भूमि की उपज को नहीं बढ़ाता। होता यह है कि कुछ ही लोग, समझिए 5% लोग, आवश्यकता से अधिक उपज कर सकते हैं। किन्तु प्रश्न उठता है कि तब बाकी ग्रामीण जनता क्या करेगी? यदि वे बेरोज़गार रहते हैं तथा ज़्यादा गरीब बना दिये जाते हैं तो वे उपजाए हुए अनाज को भी खरीद नहीं पाएँगे। इसके लिए यह जरूरी है कि रोज़गार के अन्य मार्ग उनके लिए खोले जाएँ। इसका अभिप्राय यह है कि कृषि अथवा उद्योग में किये गये मशीनीकरण से वास्तविक लाभ उठाने के लिए सावधानीपूर्ण और बहुपक्षीय योजनाएँ बनाना आवश्यक है।

ii) एक अन्य विवादास्पद विचार किसी उद्यम, जैसे कि फैक्ट्री की 'दक्षता' का है। जैसा कि हमने इकाई 6 में देखा है, इतिहास बताता है कि फैक्ट्री के स्वामी का एकमात्र उद्देश्य अपने लाभ को ज़्यादा से ज़्यादा बढ़ाना होता है। अतः उसने उत्पादन-तंत्र में होने वाले निवेश और तैयार माल आदि का विश्लेषण किया। उसकी योजना में सामाजिक चिन्ताओं, अपेक्षाओं के लिए कोई स्थान नहीं था। उदाहरण के लिए 'उच्च दक्षता' के आधार पर बनी कुछ फैक्ट्रियों से निकले धुएँ और कालिख ने पर्यावरण में भयानक प्रदूषण उत्पन्न कर दिया है और कई तरह का गंदा बदबूदार अथवा तेज़ाब मिश्रित पानी इन फैक्ट्रियों में से निकल कर उनके चारों ओर जमा होकर सड़ता रहता है। अभी, यद्यपि हम पाश्चात्य देशों जितना औद्योगीकरण नहीं कर पाये हैं, फिर भी हम भारत में ऐसी स्थिति देख सकते हैं। यूरोप अथवा अमरीका में जहाँ औद्योगीकरण बहुत ज़्यादा था, इंग्लैंड में बर्मिंघम और अमरीका में शिकागो तथा डेट्राइट आदि शहर के शहर अनेक बार धुएँ भरे कोहरे से घिरकर काले हो गये थे। इसी प्रकार धरती से बहुत कम मात्रा में पाये जाने वाले खनिजों को खानों से निकाल कर अत्यधिक लाभ पर बेच दिया

गया था बिना इस बात पर ध्यान दिये कि इससे मिट्टी की गुणता में कमी आएगी और वहाँ पाये जाने वाले संसाधनों की कमी हो जाएगी। इसलिए इस तथाकथित 'दक्षता' ने, जो केवल मुनाफा कमाने की भावना से जुड़ी थी, सामाजिक समस्याओं को और भी गंभीर बना दिया। विकसित देशों से आने वाले किसी विचार, दृष्टिकोण अथवा परिभाषा को भली-भाँति परखे बिना हम अपनी समस्याओं को और अधिक जटिल बनाने का जोखिम नहीं उठा सकते।

iv) ऐसे अनेक विचार हैं जिन्हें अपनी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपनाने के पहले परखना और संशोधित करना होगा। एक है 'मात्राजन्य मितव्यय' जिसका अर्थ है, बड़ी मात्रा में वस्तुओं अथवा सामान का उत्पादन करके आप कम लागत से अधिक मुनाफा कमा सकते हैं। यह विचार प्राचीन काल में तो ठीक था, जबकि औद्योगीकृत देशों को बिक्री के लिए मंडियों, विशेषतया उपनिवेशों में तथा निर्यात के लिए बाज़ार अधिक आसानी से उपलब्ध थे। लेकिन आज सामाजिक आवश्यकताओं को, वे चाहे कितनी ही सीमित क्यों न हों, ध्यान में रखना होता है। अपनी ज़रूरतों का ध्यान न रखते हुए, निर्यात के लिए उत्पादन करना कोई वरदान नहीं हो सकता।

v) एक और विचार भी प्रचलित है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं, सिर्फ़ इस्तेमाल करने वाला चाहिए। दुर्भाग्य से यह मान्यता भी भ्रामक है, क्योंकि प्रौद्योगिकी और विज्ञान के अति उन्नत विचारों का उपयोग ऐसी वस्तुएँ बनाने में किया जाता है जो या तो बहुत महँगी बिकती हैं या फिर उनका उपयोग दूसरी किस्म की रियायतें पाने के लिए सौदेबाज़ी करने में होता है। इसके उपकरणों में 'सैनिक उपकरण', 'सुपर कम्प्यूटर' अति विकसित प्रौद्योगिकी आदि का नाम लिया जा सकता है, जिसे विकासशील देशों को देने के लिए कई तरह की शर्तें रखी जाती हैं। आज की दुनिया में प्रौद्योगिकी की गोपनीयताओं को बहुत छिपाकर रखा जाता है। और तो और, विकसित देशों की प्रयोगशालाओं में हुए वैज्ञानिक विकासों, प्रणालियों को भी तब तक छिपाये रखा जाता है, जब तक कि परिस्थितियाँ बाध्य न कर दें।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि उपनिवेशों द्वारा अपनी स्वाधीनता की लड़ाई लड़ चुकने के बाद भी, उपनिवेशी जुआ उनके कंधों से पूरी तरह उतरा नहीं है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी का उपयोग विकसित देश अपने हितों के अनुरूप उन देशों को अपने इशारों पर नचाने वाले साधन के रूप में करते हैं। इस पाठ्यक्रम के अंतिम खंड में हम इस चर्चा को पुनः प्रारंभ करेंगे और यह जानने की कोशिश करेंगे कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी का उपयोग राष्ट्र की भलाई के लिए कैसे किया जाए।

7.5 सारांश

इस इकाई में हमने औपनिवेशिक और स्वातंत्र्योत्तर भारत में विज्ञान में हुए विकासों की चर्चा की हैं। नव औद्योगीकृत देशों ने कच्चे माल तथा अपने तैयार माल को बेचने के लिए बाज़ारों की तलाश में अनेक एशियाई और अफ़्रीकी देशों में अपने उपनिवेश कायम किये। भारत, ब्रिटेन के औपनिवेशिक जुए में हार गया। और इसने भारत में बाद के वैज्ञानिक विकासों को प्रभावित किया। आइए, अब इस इकाई की मुख्य विशेषताओं के सारांश का उल्लेख करें।

- उपनिवेशवादियों को केवल भारत के प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग में रुचि थी। यद्यपि वनस्पति विज्ञान, भूविज्ञान, भूगोल जैसे कुछेक क्षेत्रों में विकास हुए तथापि, भारत की सुदीर्घ वैज्ञानिक परंपरा को नष्ट कर दिया गया। भारतीयों को पिछड़ा हुआ रखने के लिए उपनिवेशवादी स्वामियों ने तमाम सृजनात्मक चिंतन को रोकने की चेष्टा की।
- देश की जनता ने प्रतिक्रियास्वरूप विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए अपनी ही संस्थाओं की स्थापना की। स्वाधीनता आंदोलन ने इस ध्येय को और भी प्रेरणा प्रदान की। कई भारतीय वैज्ञानिकों को उनके कार्य के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता मिली। किन्तु इससे भी

बड़ी बात यह थी कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी का अपने सभी लोगों की भलाई के लिए इस्तेमाल करने की जागरूक विचारधारा का उदय हुआ।

- स्वाधीनता के बाद अपने देश द्वारा अपनायी गयी नीतियों में यह विचारधारा दिखाई देती है। विज्ञान के कारगर उपयोग के लिए अनेक उपाय किये गये। तो भी, अभी ऐसे कई पहलू हैं जिन पर सावधानी से ध्यान देने की ज़रूरत है। इनमें से एक है पाश्चात्य विचारों और दृष्टियों को अपने सामाजिक वातावरण की परवाह किये बिना अपनी समस्याओं पर लागू करना। हमें विकसित देशों के हथकंडों के विरुद्ध भी लड़ना है जो वैज्ञानिक और औद्योगिक जानकारी हमें न देकर हम पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं, हमें शस्त्रों की होड़ में उलझाना चाहते हैं। पाश्चात्य देशों के माप स्तर पर पहुँचने के लिए अभी हमें बहुत कुछ करना है।

7.6 अंत में कुछ प्रश्न

1) चार या पांच पंक्तियों में बताइए कि ब्रिटिश काल के भारत में विज्ञान में इतने कम विकास क्यों हुए?

.....

.....

.....

.....

.....

2) विकसित देशों की भूमिका के किन्हीं दो ऐसे पहलुओं का उल्लेख कीजिए जिनसे विज्ञान और प्रौद्योगिकी में हमारे विकास में रुकावट आयी।

.....

.....

.....

.....

.....

3) आपके अनुसार हमारे सामाजिक संदर्भ में हमारे देश को विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उपयोग के लिए निम्नलिखित में से किन तीन विकल्पों को अपनाना चाहिए। अपने उत्तर पर (√) चिह्न लगाइए।

i) शिक्षा और अनुसंधान कार्य के लिए धन के प्रावधान में वृद्धि करना। ☐

ii) प्रतिभा-पलायन को रोकना, अर्थात् अनुकूल परिस्थितियों का सृजन करते हुए युवा वैज्ञानिकों को विकसित देशों में जाकर बसने से रोकना। ☐

iii) आर्थिक और वैज्ञानिक विकास कार्य को पूर्णतया निजी उद्यमों पर छोड़ देना। ☐

iv) ज्ञान के विभिन्न घटकों और रूपों की समग्र शिक्षा को प्रोत्साहन देना। ☐

v) विकसित देशों के विचारों और व्यवहारों को जाँच-पड़ताल किये बिना अपना लेना। ☐

7.7 उत्तर

1) (i) सत्य (ii) असत्य (iii) सत्य (iv) सत्य
(v) असत्य (vi) सत्य (vii) असत्य (viii) असत्य

(ii), (v), (vii), (viii) यह इसके सर्वथा विपरीत था जैसा कि आप प्रत्येक विषय के पाठ में देख सकते हैं।

2) क) i) ब्रिटेन (यू.के.) को निर्यात के लिए कपास, चाय, नील जैसी नकदी फसलों की नयी किस्मों की काश्त के प्रारंभ किये जाने की समस्याओं को हल करने के लिए।

ii) खनिज और प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग के लिए।

iii) उपनिवेशियों को चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराने के लिए।

ख) ii)

3) i) स्वदेशी

ii) वैज्ञानिकों, विज्ञान, प्रौद्योगिकी

iii) कृषि, चिकित्सा विज्ञान

iv) औद्योगीकरण, आयोजन

v) विज्ञान नीति

4) (i) √ (ii) ✓ (iii) √ (iv) √ (v) ×

अंत में कुछ प्रश्न

1) उपनिवेशवादियों का मुख्य उद्देश्य ब्रिटेन को कच्चे माल की आपूर्ति करने के लिए भारत के प्राकृतिक संसाधनों का पूरा-पूरा उपयोग करना तथा तैयार माल को भारतीय बाज़ार में बेचना था। भारत की वैज्ञानिक और सांस्कृतिक परंपरा की सुरक्षा और भारत की वैज्ञानिक, शैक्षिक अथवा भौतिक उन्नति को प्रोत्साहित करने में उन्हें कोई भी रुचि नहीं थी।

2) i) अविकसित देशों पर अपना प्रभुत्व जताने तथा उन्हें अपनी इच्छानुसार चलाने के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी का उपयोग।

ii) भारी मुनाफ़े के लिए शस्त्रों की होड़ को प्रोत्साहित करना और ग़रीब देशों के ऋणों, प्रौद्योगिकियों और युद्ध संबंधी नीतियों पर निर्भरता बढ़ाना।

3) (i) √ (ii) √ (iii) × (iv) √ (v) ×

इकाई 8 वैज्ञानिक पद्धति और विज्ञान का विशिष्ट स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
8.2 विज्ञान–विविध पहलू
8.3 वैज्ञानिक पद्धति
प्रेक्षण
परिकल्पना
प्रयोग
नियम, मॉडल और सिद्धांत
कुछ उदाहरण
8.4 विज्ञान का विशिष्ट स्वरूप
8.5 वैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा समस्याओं का समाधान
8.6 विज्ञान के बारे में कुछ विचार
8.7 सारांश
8.8 अंत में कुछ प्रश्न
8.9 उत्तर

8.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग में हमारे जीवन का कोई भी ऐसा पहलू नहीं है जो विज्ञान से प्रभावित न होता हो। जहाँ एक ओर विज्ञान तारों और मंदाकिनियों के बारे में हमारी जिज्ञासाओं को शांत करता है वहीं दूसरी ओर उसकी पहुँच हमारे मन की गहराइयों तक है। चाहे ललित कलाएँ हो, इतिहास या समाजशास्त्र, इनमें से कोई भी विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रभाव से अछूते नहीं रह गये हैं। आज वृद्धावस्था और दीर्घजीवन, दुःख और सुख, काम और आराम, युद्ध और शांति आदि अनेक विषयों को विज्ञान के विकास ने नये अर्थ दे दिये हैं।

जैसे-जैसे विज्ञान का हमारे जीवन में प्रभाव बढ़ता गया है वह भौतिकी, रसायनशास्त्र, जीव विज्ञान, और गणित का योग मात्र ही नहीं रह गया है। वह औद्योगिक या कृषि उत्पादन बढ़ाने अथवा बेहतर मशीनों, पदार्थों या औषधियों के आविष्कार करने के तरीकों से ऊपर उठ चुका है।

आज के युग में विज्ञान हमारे विचारों का अभिन्न अंग सोचने-समझने का एक तरीका बन चुका है। अवलोकन और सूक्ष्म दृष्टि, तर्क और अंतर्बोध, योजनाबद्ध कार्य और सृजनात्मक प्रेरणा विज्ञान में सम्मिलित हैं। विज्ञान हमें एक ऐसा दृष्टिकोण देता है जिसके कारण हमें अपनी अज्ञानता का एहसास बराबर रहता है पर साथ ही हम अपने इर्द-गिर्द के रहस्यों को सुलझा सकने की लगातार कोशिश भी करते हैं। विज्ञान हमें एक ऐसी संस्कृति और जीवन-दर्शन प्रदान करता है जो बिना किसी पूर्व धारणा के सत्य की खोज करने में मदद देते हैं।

विज्ञान की वह कौन सी पद्धति है जिससे कोई भी व्यक्ति ज्ञान एकत्रित करता है, उस ज्ञान का विश्लेषण और व्याख्या करता है ताकि वह प्रकृति को और अपने आप को समझ सके?

विज्ञान की क्या विशेषताएँ हैं? उसका क्या स्वरूप है? हमें इन बातों को भली-भाँति समझना चाहिए क्योंकि इनका उपयोग अनेक क्षेत्रों में और अनेक बार, व्यक्तिगत समस्याओं को हल करने में हो सकता है। इस इकाई में हम आपके सामने ये बातें रखेंगे और साथ ही किसी समस्या को सुलझाने के लिए आवश्यक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बारे में भी संक्षेप में बताएँगे। यह इकाई विज्ञान के विभिन्न पहलुओं की सामान्य जानकारी के साथ समाप्त होती है। परंतु चर्चा यहीं समाप्त नहीं हो जाती। इस इकाई में प्रस्तुत विचारों की गूंज आप आने वाली इकाइयों में भी सुनेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- यह बता सकेंगे कि विज्ञान की संरचना क्या है?
- विज्ञान की विशेषताओं के बारे में बता सकेंगे।
- वैज्ञानिक पद्धति और उसके हर पहलू के बारे में बता सकेंगे।
- वैज्ञानिक दृष्टिकोण को समझ सकेंगे और उसके उपयोग से दैनिक जीवन की समस्याओं का हल कर सकेंगे।

8.2 विज्ञान–विविध पहलू

विज्ञान का विकास वैज्ञानिक का व्यक्तिगत लक्ष्य है पर साथ ही यह एक व्यापक सामाजिक लक्ष्य भी है। विज्ञान की प्रगति वैज्ञानिकों की सृजनात्मक कार्यक्षमता पर निर्भर है। पर वैज्ञानिक विकास पर सामाजिक परिस्थितियों और आवश्यकताओं का प्रभाव भी पड़ता है, साथ ही बदले में विज्ञान समाज को प्रभावित करता है। इस प्रकार वह सामाजिक परिवर्तन का एक माध्यम भी है। जीवन और पर्यावरण के प्रति मानवीय दृष्टिकोण पर सदा ही एक ओर आश्चर्य और जिज्ञासा का, और दूसरी ओर जीवन के संघर्ष और अपने कल्याण की भावना का प्रभाव रहा है। इन दोनों बुनियादी प्रवृत्तियों ने मानव विचारों को हमेशा प्रभावित किया है। विज्ञान क्योंकि मानव विचारों व प्रयासों का एक अटूट हिस्सा है, इसलिए वह भी इन दोनों प्रवृत्तियों से प्रभावित रहा है। इनमें से कोई भी प्रवृत्ति किसी भी वैज्ञानिक को काम करने की प्रेरणा दे सकती है। समाज को उन दोनों से लाभ होता है क्योंकि वह इनके माध्यम से संसार को बेहतर तरीके से समझ सकता है और उस पर बेहतर नियंत्रण रख सकता है।

विज्ञान इस अर्थ में आधुनिक है कि वह हर बात को उसी रूप में समझाने का प्रयास करता है जैसे कि वह आज जानी जाती है। पर हम जानते हैं कि विज्ञान का उद्भव उतना ही पुराना है जितनी मानव की पृथ्वी पर उपस्थिति। जबसे मानव आया तभी से विज्ञान की परंपरा चली आ रही है। 'विज्ञान' शब्द के गढ़े जाने अथवा सहज बुद्धि और परंपराओं से अलग एक वैज्ञानिक पद्धति के विकसित होने के बहुत पहले से विज्ञान समाज में मौजूद था। आप पढ़ ही चुके हैं कि इस परंपरा को मानने वाले व्यक्तियों में बाद के कीमियागर ही नहीं, बल्कि ज्योतिषी, पुरोहित, जादूगर और शिल्पी भी शामिल थे। वास्तव में समाजों के ढाँचे और ऐतिहासिक काल के अनुसार, मनुष्य के सामने आने वाले प्रश्न बदलते रहे और उनके प्रति मनुष्य के रुख में बदलाव आता रहा, इसलिए विज्ञान भी बदलता रहा है।

पर विज्ञान है क्या? वह कौन सी दुनिया है जिससे विज्ञान का संबंध है? विज्ञान जिस संसार का वर्णन करता है, जिस ब्रह्माण्ड की खोज करता है, वह प्राकृतिक संसार है जिसे हम अनुभव कर सकते हैं। विज्ञान की इस दुनिया में पृथ्वी, आकाश, अंतरिक्ष, ग्रह, तारे, मंदाकिनियाँ, सजीव प्राणी और निर्जीव वस्तुएँ सभी शामिल हैं। विज्ञान के द्वारा हम प्रकृति के बारे में नित्य नये क्षेत्रों में नये स्तरों पर नये ढंग से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

आप जानना चाहेंगे कि यह जानकारी किस तरह प्राप्त की जाती है? मुख्यतः इंद्रियों द्वारा। लेकिन हमारी इंद्रियों की अपनी कुछ सीमाएँ हैं। जैसे कि हम बहुत छोटी या बहुत दूर स्थित चीज़ों को नहीं देख सकते या फिर हम बहुत धीमी या बहुत तेज़ आवाज़ नहीं सुन पाते, आदि। हमारी और भी कई सीमाएँ हैं। जैसा कि आप चित्र 8.1 में देख सकते हैं, हमारी

इंद्रियाँ अक्सर हमें एकदम सही ज्ञान नहीं करा पातीं। आधुनिक विज्ञान ने हमें अपनी इंद्रियों की अनेकों सीमाओं को लांघने की क्षमता प्रदान की है। मसलन दूरबीन और सूक्ष्मदर्शी जैसे यंत्रों के आविष्कार ने हमें बहुत दूर की और बहुत छोटी चीज़ों को देखने की क्षमता दी है, जिन्हें पहले हम अपनी आँखों से नहीं देख पाते थे।

अब हम परमाणुओं जैसे सूक्ष्म कणों को और बहुत दूर स्थित तारों को भी, जो आँखों से दिखायी नहीं देते, अच्छी तरह देख सकते हैं। वैज्ञानिक उपकरणों की मदद से अब हम ऐसे प्रेक्षण भी कर सकते हैं जो हमारी इंद्रियों के अधीन नहीं हैं। जैसे कि चित्र 8.1 में गिलास 'B' में रखे पानी का ताप थर्मामीटर से नापा जाए तो उसका एक मान मिलेगा, भले ही हमारी अंगुलियों को वह पानी ठंडा या गर्म महसूस होता है। विभिन्न प्रकार की गई 'ध्वनियाँ', नये 'प्रकाश', नये 'अंतरिक्ष' और नये 'संपर्क'—यही तो है नया विज्ञान। प्रकृति के 'दर्शक' के रूप में, अपने आस-पास घटने वाली घटनाओं के साक्षी के रूप में, हमारी स्थिति में बहुत ज़्यादा बदलाव आया है। अपनी इंद्रियों की सामर्थ्य से कहीं अधिक बढ़कर, प्रकृति का प्रेक्षण करने की क्षमता, हमें प्रकृति से निकटता का तथा संसार और अपने को नियंत्रित कर सकने का एहसास दिलाती है।

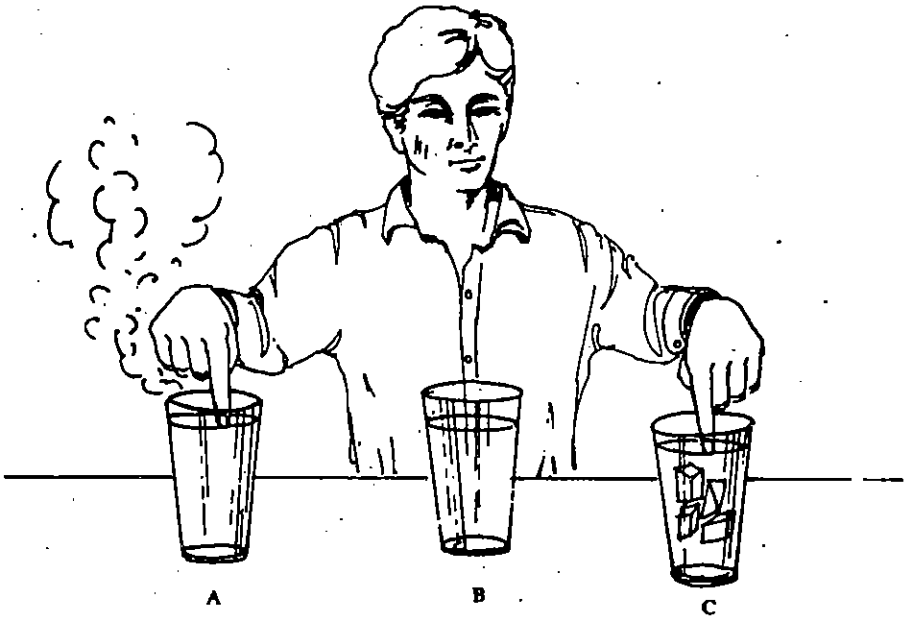

चित्र 8.1 : यदि आप कुछ समय के लिए हाथ की एक अंगुली को गर्म पानी (गिलास A) में तथा दूसरे हाथ की एक अंगुली को ठंडे पानी (गिलास C) में कुछ देर के लिए डालें और फिर दोनों अंगुलियों को गुनगुने पानी (गिलास B) में डालें तो आप दोनों अंगुलियों में अलग-अलग संवेदन महसूस करेंगे। गिलास B का गुनगुना पानी ठंडे पानी से निकाली गई अंगुली के लिए गर्म और गर्म पानी से निकाली गई अंगुली के लिए ठंडा होगा।

विज्ञान हमें अज्ञानता के क्षेत्रों को ज्ञान के क्षेत्रों में बदलने में मदद देता है। नये क्षेत्रों की निरंतर खोज करके हमारे अनुभव को बढ़ाता है। उदाहरण के तौर पर, मनुष्य चंद्रमा पर उतर चुका है और अब खोजबीन के लिए मंगल पर वैज्ञानिक यंत्र उतारने की तैयारियाँ कर रहा है। अब हमारे पास ऐसे साधन हैं जिनसे हम पृथ्वी की आंतरिक संरचना से लेकर मानव मस्तिष्क की संरचना और प्रक्रिया आदि के बारे में जान सकते हैं। जैसे-जैसे नयी-नयी समस्याएँ सामने आतीं हैं वैसे-वैसे हमारे अनुभव का दायरा बढ़ता जाता है।

हमारी बुनियादी ज़रूरतों के अलावा आज के इस जटिल संसार की और भी कई तरह की ज़रूरतें हैं जैसे काम की नीरसता को कम करने के लिए उत्पादन के नये साधनों की, चिकित्सा शिक्षा, संचार, यातायात और मनोरंजन आदि के बेहतर तरीकों की खोज इत्यादि। आदि मानव की खाने और रहने की ज़रूरतों के मुकाबले में ये ज़रूरतें विज्ञान के सामने कहीं ज़्यादा बड़ी चुनौती पेश करती हैं। ये चुनौतियाँ अध्ययन के नये क्षेत्र उजागर करती हैं जो शुरुआत में एकदम स्पष्ट नहीं होते। पर सही तरीकों से किए गये क्रमबद्ध और सुनियोजित अध्ययन द्वारा इन नये क्षेत्रों को समझा जा सकता है।

विज्ञान हमेशा प्राकृतिक संसार के बारे में जानकारी प्राप्त करने की, उसे समझने की कोशिश करता है। मनुष्य हमेशा ही अज्ञात के बारे में अनुमान लगाता रहता है। जब यह अनुमान ज्ञान में बदल जाता है तो वह विज्ञान कहलाने लगता है। अगर हम किसी आँखों देखी घटना को समझ नहीं पाते तो उसे अकसर रहस्यमय बना देते हैं विज्ञान प्राकृतिक

रहस्यों पर से पर्दा उठाता है और तथ्य तथा तर्क के आधार पर उन्हें समझने में हमारी मदद करता है।

आधुनिक समय में विज्ञान का भंडार बहुत अधिक बढ़ गया है। उसमें अनेक क्षेत्र शामिल हैं। अपनी सुविधा के लिए हमने इन क्षेत्रों को जीव विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, रसायनशास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, भौतिकी, खगोल विज्ञान, इंजीनियरी, कृषि विज्ञान आदि में बाँट लिया है पर ये सब एक-दूसरे से जुड़े हैं। उदाहरण के रूप में जीव विज्ञान में कोशिका का अध्ययन किया जाता है जो आगे चलकर परमाणुओं और अणुओं के, जिनसे वह बनी है, अध्ययन तक पहुँचता है। इस तरह से वह रसायनशास्त्र और भौतिकी से जुड़ जाता है। दूसरी ओर, जीव विज्ञान और विशेष रूप से वनस्पति विज्ञान, वानिकी और कृषि विज्ञान से, जलवायु और भूमि से और अंततः भूगोल और भूगर्भशास्त्र से जुड़ा है। इस प्रकार हम पाते हैं कि विज्ञान और अनुभव बुनियादी तौर पर एक दूसरे से संबंधित हैं। आज वैज्ञानिक समस्याओं को हल करने के लिए या तकनीकी प्रगति के लिए, आमतौर पर विभिन्न क्षेत्रों के ज्ञान और अनुभव को एक साथ इस्तेमाल करना पड़ता है। उदाहरण के तौर पर, पर्यावरण के प्रदूषण का लेखा-जोखा लेने और उसका नियंत्रण करने के लिए भौतिकी, रसायन, जीव विज्ञान, गणित, समाजशास्त्र आदि क्षेत्रों के वैज्ञानिकों का सहयोग ज़रूरी है। इसी प्रकार यदि ऊर्जा के कभी न समाप्त होने वाले अन्य स्रोतों जैसे बायोगैस, पवन या सौर ऊर्जा की खोज और उपयोग करना हो तो विभिन्न संबद्ध क्षेत्रों के विशेषज्ञों को साथ मिलकर काम करना होगा। साथ ही, पिछले कुछ दशकों में प्राकृतिक विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के बीच की दूरियाँ समाप्त हो गई हैं। रासायनिक क्रियाएँ, जैविक प्रक्रियाएँ और भौतिक तथ्यों और घटनाओं का अध्ययन एक जैसे तरीकों से किया जाता है और ये एक जैसे सिद्धांतों पर आधारित हैं।

बोध प्रश्न 1

विज्ञान के बारे में निम्नलिखित कथनों में से कौन सा सही है और कौन सा गलत? अपने उत्तर दिये गये खानों में ही दें।

i) विज्ञान प्रकृति का अन्वेषण करने में हमारी मदद करता है और हमारे अनुभव के दायरे को निरंतर बढ़ाता है। ☐

ii) विज्ञान का जगत अनोखा है और हमारे दैनिक अनुभव के साथ उसे कुछ लेना-देना नहीं होता। ☐

iii) विज्ञान के माध्यम से हम प्रकृति को केवल समझ ही नहीं सकते वरन् अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप उसे नियंत्रित भी कर सकते हैं। ☐

iv) प्राकृतिक घटनाओं के बारे में हमारे भय, आश्चर्य और रहस्य को दूर करने के लिए विज्ञान कुछ नहीं करता। ☐

v) विज्ञान हमारी इंद्रियों द्वारा अर्जित किया जाता है। क्योंकि इंद्रियजन्य ज्ञान व्यक्तिपरक होता है इसलिए विज्ञान भी हर व्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न होगा। ☐

8.3 वैज्ञानिक पद्धति

ऊपर हम देख चुके हैं कि विज्ञान प्रकृति को समझने और अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रकृति को नियंत्रित करने का हमारा प्रयास है। हम यह भी देख चुके हैं कि इस प्रयास में हमने बहुत जानकारी इकट्ठी कर ली है और फलस्वरूप विज्ञान का सुनिश्चित और पृथक स्वरूप बन गया है। आइए, अब देखें कि यह ज्ञान किस प्रकार अर्जित किया गया। क्या वैज्ञानिक जानकारी हासिल करने की कोई विशेष विधि है? यदि है, तब वह उस विधि से किस प्रकार भिन्न है जिससे हम साधारणतया अपने आस-पास के संसार को समझते हैं? पहले प्रश्न का उत्तर है "हाँ"। जैसा कि आप इकाई 1 में पढ़ चुके हैं, विज्ञान की एक 'पद्धति', होती है। आप 'प्रेक्षण', 'परिकल्पना', 'प्रयोग', 'सिद्धांत' और 'नियम' जैसे शब्दों से परिचित हो चुके हैं। ये विभिन्न मानसिक और शरीरिक क्रियाएँ हैं जिनसे वैज्ञानिक पद्धति बनती है। आइए, इनमें से प्रत्येक क्रिया को बारीकी से देखें।

8.3.1 प्रेक्षण

हम सब अपने इर्द-गिर्द जो प्रेक्षण करते हैं उससे संसार के बारे में बहुत कुछ सीखते हैं। देखने, सुनने, चखने, छूने और सूंघने से उत्पन्न हमारे दैनिक अनुभव हमारे सहज ज्ञान के अंग बन जाते हैं। उदाहरण के रूप में, हम देखते हैं कि सूर्य पूर्व से निकलता है और पश्चिम में डूबता है, गेंद जब ऊपर फेंकी जाती है तो नीचे ही आती है। किसान खराब बीजों में से बीज अलग करने के लिए सब बीजों को पानी में डालता है। यह तरीका इस प्रेक्षण पर निर्भर है कि अच्छे बीज डूब जाते हैं और खराब बीज तैरते रहते हैं। इसी प्रकार आप यह परखने के लिए कि अंडा सड़ा है या अच्छा, उसे पानी में डाल दें तो देखेंगे कि सड़ा अंडा हमेशा तैरता है। इस प्रकार प्रेक्षण निस्संदेह बहुत उपयोगी होते हैं।

कलाकार भी अपने आस-पास के संसार का प्रेक्षण करने में बहुत दक्ष होते हैं। यही प्रेक्षण, उनके अपने अनुभवों और भावनाओं से प्रभावित होकर एक नये ही रूप में उनकी सृजनात्मक कला में अभिव्यक्त होते हैं। परंतु इन्हें हम वैज्ञानिक प्रेक्षण नहीं कह सकते। विज्ञान के क्षेत्र में यह बहुत महत्वपूर्ण है कि हम इन सामान्य प्रेक्षणों और अनुभवों से परे, यह भी समझने की कोशिश करें कि कोई घटना क्यों और कैसे घटती है। अतएव वैज्ञानिकों को इस बारे में स्पष्ट होना चाहिए कि 'क्या' देखना है और 'कैसे' देखना है। इसके अलावा वैज्ञानिकों द्वारा किए गए ये प्रेक्षण एकदम सही होने चाहिए और जहाँ तक संभव हो उनकी भावनाओं और इच्छाओं का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। विज्ञान सदैव तथ्यों को व्यक्तिपरक अनुभवों से ऊपर रखता है। इन्हीं बातों में एक वैज्ञानिक, कलाकार या सामान्य व्यक्ति से अलग होता है।

ग़लत अथवा अपर्याप्त प्रेक्षणों से उत्पन्न गड़बड़ी की कल्पना हम आसानी से कर सकते हैं। इस बारे में महान वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन ने कहा है कि ग़लत सिद्धांतों से इतनी हानि नहीं होती जितनी ग़लत प्रेक्षणों से अर्थात् अपर्याप्त प्रेक्षण भी उतने ही हानिकारक हो सकते हैं। उदाहरण के रूप में, अनेक वर्षों तक पृथ्वी को ब्रह्मांड का केंद्र मानने वाले खगोलशास्त्री यह कहते रहे कि कोपर्निकस की परिकल्पना सही नहीं हो सकती क्योंकि यदि ऐसा है तो चंद्रमा की तरह ही शुक्र का भी, जो सूर्य और पृथ्वी के बीच स्थित है, घटना-बढ़ना दिखना चाहिए। पर तब ऐसा नहीं देखा जा सका। इसलिए कोपर्निकस के सिद्धांत को ग़लत समझा गया। वास्तव में उस समय के लिहाज़ से देखें तो कोपर्निकस की परिकल्पना के विरुद्ध यह एक ठोस प्रमाण माना जा सकता था। पर यह प्रमाण उस समय आधारहीन सिद्ध हो गया जब लोगों ने दूरबीनों का उपयोग शुरू कर दिया। दूरबीन से शुक्र का घटना-बढ़ना साफ़ दिखाई पड़ने लगा। यह बात हमें उपकरणों की कमियों का एहसास भी दिलाती है।

वैज्ञानिक प्रेक्षण किसी प्राकृतिक घटना के बारे में हो सकते हैं। उदाहरण के रूप में किसी स्थान पर होने वाली वर्षा का पैटर्न जानने के लिए वहाँ कई वर्षों तक, हर महीने होने वाली वर्षा को मापा जा सकता है। इस प्रकार के प्रेक्षण मनुष्य द्वारा बनायी गई प्रक्रियाओं के बारे में भी किए जा सकते हैं। उदाहरणार्थ वर्तमान मशीनों की क्षमता बढ़ाने के लिए या नयी मशीनों का विकास करने के लिए, हमें उनके ढाँचे और कार्य प्रणाली का प्रेक्षण करना पड़ेगा। इसी तरह हम कृत्रिम रेशे या रबर जैसे नये पदार्थों की मज़बूती, टिकाऊपन या अन्य गुणों जैसे अग्निरोधक क्षमता आदि के बारे में प्रेक्षण कर सकते हैं। ये प्रेक्षण सामाजिक घटनाओं के बारे में भी हो सकते हैं। किसी क्षेत्र या समाज के लोगों का सामाजिक-आर्थिक स्तर ज्ञात करने के लिए ऐसे प्रेक्षण किए जा सकते हैं कि उनके पास कितनी ज़मीन है या उनका आर्थिक शैक्षिक और जीवन यापन का स्तर क्या है। ये सब प्रेक्षण व्यवस्थित तरीके से किसी प्राकृतिक अथवा सामाजिक घटना को समझने के लिए किये जाते हैं।

इन सुनियोजित प्रेक्षणों को क्रमबद्ध किया जा सकता है, उन्हें तालिकाओं या लेखाचित्रों में दिखाया जा सकता है और फिर उनका विश्लेषण किया जा सकता है। इन सबका उद्देश्य होता है, बड़ी मात्रा में एकत्रित किए गये तथ्यों में नियमितताओं या पैटर्न की खोज करना। इस प्रकार प्रेक्षणों, आँकड़ों, तथ्यों और चित्रों के आधार पर अनेक प्रश्न उठाये जा सकते हैं। विज्ञान में प्रश्न पूछने का बहुत बड़ा महत्व है। विज्ञान प्रश्न पूछने और उनके उत्तर खोजने से ही प्रगति करता है।

8.3.2 परिकल्पना

वैज्ञानिक पद्धति में अगला कदम है परिकल्पना का निर्माण। परिकल्पना एक ऐसा कथन है जो तर्क के आधार पर अध्ययन की जा रही वस्तुओं, घटनाओं आदि के बारे में किया जाता है। वह उनसे संबंधित प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास होता है। परिकल्पना का एक उदाहरण आप इकाई 1 में पढ़ चुके हैं, मधुमक्खियाँ, फूलों की ओर उनके रंगों, या उनकी सुगंध अथवा दोनों के कारण आकर्षित होती हैं (चित्र 1.4)। अन्य उदाहरण ये हो सकते हैं : पौधों को बढ़ने के लिए सूर्य के प्रकाश की ज़रूरत होती है अथवा कोई वस्तु पृथ्वी से आकर्षित होकर ज़मीन पर गिरती है। परिकल्पना बनाते समय, अध्ययन की जा रही वस्तु/घटना के बारे में सभी ज्ञात प्रेक्षणों को ध्यान में रखा जाता है। परिकल्पना द्वारा हम वस्तु / घटना के बारे में सभी ज्ञात तथ्यों को समझने और अज्ञात पर संभावित तथ्यों के बारे में पहले से कुछ बता पाने का प्रयास करते हैं। हम यह कह सकते हैं कि परिकल्पना तर्क और अनुभव पर आधारित एक अनुमान है। परिकल्पना तैयार करने के लिए हम आगमन (inductive) और निगमन (deductive)दोनों प्रकार के तर्कों का उपयोग कर सकते हैं।

आगमन तर्क से हम क्या समझते हैं? अगर हमारे पास किसी घटना, समूह, वस्तु या परिस्थिति के केवल एक अंश के बारे में प्रत्यक्ष प्रमाण है और तब यदि हम उनके आधार पर उस संपूर्ण घटना, समूह, वस्तु अथवा परिस्थिति के गुण, व्यवहार अथवा अन्य बातों का अनुमान लगाते हैं तो यह तर्क आगमन तर्क कहलाएगा। उदाहरण के तौर पर, अगर हम जानते हैं कि एक दी गई अवधि में किसी देश की आबादी दुगुनी हो गई है तब हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि उतनी ही अवधि में जनसंख्या फिर दुगुनी हो जाएगी। यदि हम बल्ब की रोशनी से पड़ने वाली त्रिकोण, आयत या वृत्त की छायाओं का अध्ययन करें, तो हम यह तर्क कर सकते हैं कि प्रकाश सीधी रेखा में चलता है। आगमन तर्क पर आधारित यह निष्कर्ष सोच-विचार की प्रक्रिया में एक बहुत बड़ा कदम है और एक व्यापक तथा विस्तृत कथन है। आगमन तर्क से ग़लत नतीजे भी निकल सकते हैं। जैसे अपने आस-पास केवल लाल गुलाब ही देखने पर यह निष्कर्ष निकाल लेना कि सभी गुलाब लाल होते हैं, तर्कसंगत नहीं है। आप देख सकते हैं कि इस प्रकार के आगमन कथनों की विश्वसनीयता का स्तर भिन्न-भिन्न हो सकता है। अपर्याप्त प्रमाणों के बल पर आप एकदम निष्कर्षों पर नहीं कूद सकते। इन निष्कर्षों की पुष्टि भी करनी होती है।

निगमन तर्क, आगमन तर्क का विपरीत माना जा सकता है। यहाँ तर्क अधिक स्पष्ट होता है। अगर हमें वस्तुओं घटनाओं या परिस्थितियों के एक संपूर्ण वर्ग के बारे में तथ्य ज्ञात हैं तब हम उसी वर्ग की एक वस्तु, घटना या परिस्थिति विशेष के बारे में तर्कसंगत रूप से निष्कर्ष निगमित (deduce) कर सकते हैं। निगमन के अनेक उदाहरण हो सकते हैं, जैसे गुलाब किसी भी रंग के हो सकते हैं। इसलिए कुछ गुलाब लाल भी हो सकते हैं। सब पक्षियों के पंख होते हैं। इसलिए गौरेया, जो एक पक्षी है, के भी पंख होने चाहिए। रसायनशास्त्र में निगमन तर्क का बहुत उपयोग होता है। उदाहरण के रूप में यदि किसी विशेष समूह के रासायनिक लवण कुछ गुण या व्यवहार दर्शाते हैं तब हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि उस समूह का कोई भी लवण वही गुण या व्यवहार दर्शाएगा। आप कह सकते हैं कि निगमन भी भ्रम पैदा कर सकता है क्योंकि इन उदाहरणों में हम कैसे जानें कि गौरेया एक चिड़िया है या फिर वह लवण उसी समूह का है। इन निगमनों को मानने से पहले हमें ये तथ्य स्थापित करने होंगे।

इस प्रकार तार्किक विश्लेषण हमें अज्ञात से ज्ञात की ओर ले जाता है और इसमें संदेह की गुंजाइश रहती है। इसलिए दोनों प्रकार के तर्कों से निकाली गई परिकल्पनाओं को स्वीकार करने से पहले परखना ज़रूरी होता है। इस प्रकार वैज्ञानिक पद्धति का एक प्रमुख अंग है—परिकल्पनाओं को परखने के लिए उचित प्रयोग करना।

8.3.3 प्रयोग

प्रयोग आधुनिक विज्ञान का एक अनिवार्य अंग है। प्रयोग जानबूझ कर उत्पन्न की गई या कृत्रिम रूप से तैयार की गई वे नियंत्रित परिस्थितियाँ हैं जो विशेषतः प्रेक्षण के लिए बनाई जाती हैं। कभी-कभी इनका उद्देश्य प्रकृति की नकल करना होता है। इसके द्वारा हम जटिल प्राकृतिक घटनाओं को आसान और सिलसिलेवार तरीके से समझ सकते हैं। उदाहरण के तौर पर हममें से अनेक व्यक्तियों ने साईकिल ट्यूब में हवा भरने के लिए साईकिल पम्प का

इस्तेमाल किया होगा। हम पिस्टन को दबाकर ट्यूब में हवा भरते हैं। जैसा कि आप चित्र 8.2 में देख सकते हैं, पिस्टन दबाने से हवा का आयतन कम हो जाता है, जिससे उसका दाब बढ़ जाता है और हवा ट्यूब में चली जाती है। इसी प्रकार यदि हम एक गुब्बारे में थोड़ी-सी हवा भरकर धूप में रख दें तब उसके अंदर की हवा गर्म होकर फैल जाती है और गुब्बारे को फुला देती है। ये उदाहरण हमें बताते हैं कि गैस का आयतन, दाब और ताप, दोनों पर निर्भर करता है।

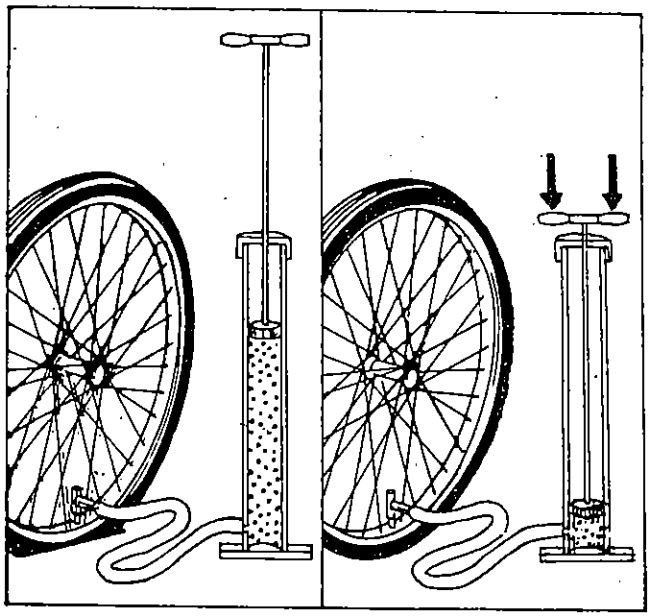

चित्र 8.2 : साईकिल पम्प द्वारा हवा के आयतन को घटाकर उसका दबाव बढ़ाया जाता है।

अब अगर हम यह जानना चाहते हैं कि दाब या ताप के कितने कम या अधिक होने से आयतन में कितना परिवर्तन आता है तब हमें दो भागों में प्रयोग करना पड़ेगा। पहले भाग में हम ताप को स्थिर रख सकते हैं और दाब के घटने-बढ़ने के साथ आयतन में होने वाले परिवर्तनों को देख सकते हैं। दूसरे भाग में हमें गैस को स्थिर दाब पर रखना होगा और बदलते हुए ताप के साथ आयतन के घटने-बढ़ने को देखना होगा। इन प्रयोगों को राबर्ट बॉयल और जे.ए.सी. चार्ल्स ने किया था। उन्होंने क्रमशः दाब और ताप के परिवर्तन के साथ आयतन के परिवर्तन के लिए सही गणितीय संबंध निकाले थे। ये संबध उनके नामों पर 'बॉयल का नियम' और 'चार्ल्स का नियम' कहलाते हैं।

कभी-कभी किसी प्रयोग का उद्देश्य अत्यधिक सुग्राही उपकरणों का उपयोग करके किसी वस्तु या घटना को अधिक ध्यान से देखना भी होता है। उदाहरण के लिए कोशिका की संरचना के सूक्ष्म प्रेक्षण के लिए जैवशास्त्री आजकल इलैक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी का इस्तेमाल करते हैं। कभी-कभी प्रयोग किसी कुटिल उद्देश्य से भी किये जाते हैं। उदाहरण के तौर पर 1945 में जापान के दो शहरों पर परमाणु बम केवल विनाश के लिए ही नहीं वरन् यह अध्ययन करने के लिए भी छोड़े गये थे कि उसके विस्फोट से इमारतें कैसे ढहती हैं, कितनी भयंकर आग लगती है और किस प्रकार रेडियोधर्मी विकिरण मनुष्यों को मारता अथवा नुकसान पहुँचाता है।

कार्य और कारण के संबंध को समझने के लिए भी कई प्रयोग किये जाते हैं। प्रयोगों से अधिकतम सूचनाएँ और सही परिणाम मिल सकें, इसके लिए उन्हें डिज़ाइन करते समय बहुत कौशल और सावधानी की आवश्यकता होती है। इन प्रयोगों के नतीजे किसी खास परिकल्पना को प्रमाणित या अप्रमाणित करते हैं। कभी-कभी प्रयोग के नतीजों को समझाने के लिए किसी परिकल्पना को एकदम अस्वीकृत करके एक नई परिकल्पना गढ़नी पड़ती है। कभी प्रयोग परिकल्पना को संशोधित करने अथवा उसे अधिक सही बनाने के लिए अतिरिक्त तथ्य सामने लाते हैं।

उपकरण

प्रेक्षण और प्रयोग के लिए वैज्ञानिक विभिन्न यंत्रों का उपयोग करते हैं। दूरबीन, सूक्ष्मदर्शी या माइक्रोफ़ोन जैसे उपकरणों से हमारी इंद्रियों द्वारा किये गये प्रेक्षणों की सीमा को बढ़ाया जा सकता है अथवा उन्हें अधिक सटीक बनाया जा सकता है। यंत्रों का उपयोग वैज्ञानिक

वस्तुओं या घटनाओं को नियंत्रित तरीके से ज़रूरत के मुताबिक बदलने के लिए भी करते हैं। उदाहरण के तौर पर द्रवों को शुद्ध करने के लिए आसवन संयंत्रों का, नियत ताप पर जैव वस्तुओं के रखने के लिए इन्क्यूबटरों का, जटिल गणनाओं और औद्योगिक उत्पादों की डिज़ाइनिंग आदि के लिए, बड़ी मात्रा में सूचना, आँकड़े आदि संग्रहित करने के लिए कम्प्यूटरों का उपयोग किया जाता है।

बीती हुई सदियों में, वैज्ञानिकों ने अपने लिए अनेक उपकरण बनाये हैं। उनमें से कुछ तो आम जीवन में इस्तेमाल किये जाने वाले उपकरण हैं, जैसे कि तुला, चिमटी, और छोटे बर्तन (crucible) आदि। वैज्ञानिक द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले अधिकांश उपकरणों का उपयोग बाद में आम जीवन में भी किया जाता है। उदाहरण के लिए टेलीविज़न सैट का मुख्य घटक कैथोड रे ट्यूब नाम का एक वैज्ञानिक उपकरण है जिसका आविष्कार मूलतः इलैक्ट्रॉन का द्रव्यमान ज्ञात करने के लिए किया गया था। आमतौर पर इस्तेमाल किए जाने वाले प्रेशर कुकर भी भाप-सह पात्र (autoclave) का ही एक रूप है। इस उपकरण का इस्तेमाल जैवशास्त्री अधिक दबाव पर भाप द्वारा कीटाणुओं के नाश के लिये करते हैं।

8.3.4 नियम, मॉडल और सिद्धांत

प्रेक्षण और प्रयोगों के परिणाम विज्ञान का एक बहुत बड़ा हिस्सा हैं। पर विज्ञान इन प्रेक्षणों और परिणामों की सूची मात्र नहीं होता। ये परिणाम एक दूसरे से तर्क-संगत सिद्धांत द्वारा अथवा नियम के रूप में जोड़े जाते हैं। सामान्यतः विविध परिस्थितियों में अनेक घटनाओं के बारे में किए गए प्रेक्षणों और प्रयोगों के परिणामों के संबंध को नियम (लॉ) कहते हैं। परिकल्पनाओं को केवल उसी समय 'नियमों' के रूप में स्वीकार किया जाता है जब बड़ी मात्रा में प्रायोगिक प्रमाण उन्हें सही सिद्ध करते हैं और उनका कोई अपवाद मालूम नहीं होता। नियमों के कुछ उदाहरण आगे दिये जा रहे हैं :

i) कैपलर के ग्रहीय गति के नियम, जो ग्रहों के सूर्य के इर्द-गिर्द घूमने के प्रेक्षणों पर आधारित है। इन नियमों के अनुसार :

क) ग्रह सूर्य के इर्द-गिर्द दीर्घवृत्तीय कक्षाओं में परिक्रमा करते हैं और सूर्य दीर्घवृत्त की दो नाभियों (फोकस) में से एक पर स्थित होता है।

ख) एक ग्रह समान समय में समान क्षेत्रफल तय करता है।

ग) किसी ग्रह द्वारा सूर्य की एक परिक्रमा में लिये गए समय का वर्ग, ग्रह की सूर्य से औसत दूरी के घन के आनुपातिक होता है। आप इन नियमों को बेहतर तरीके से समझने के लिए चित्र 8.3 का अध्ययन कर सकते हैं।

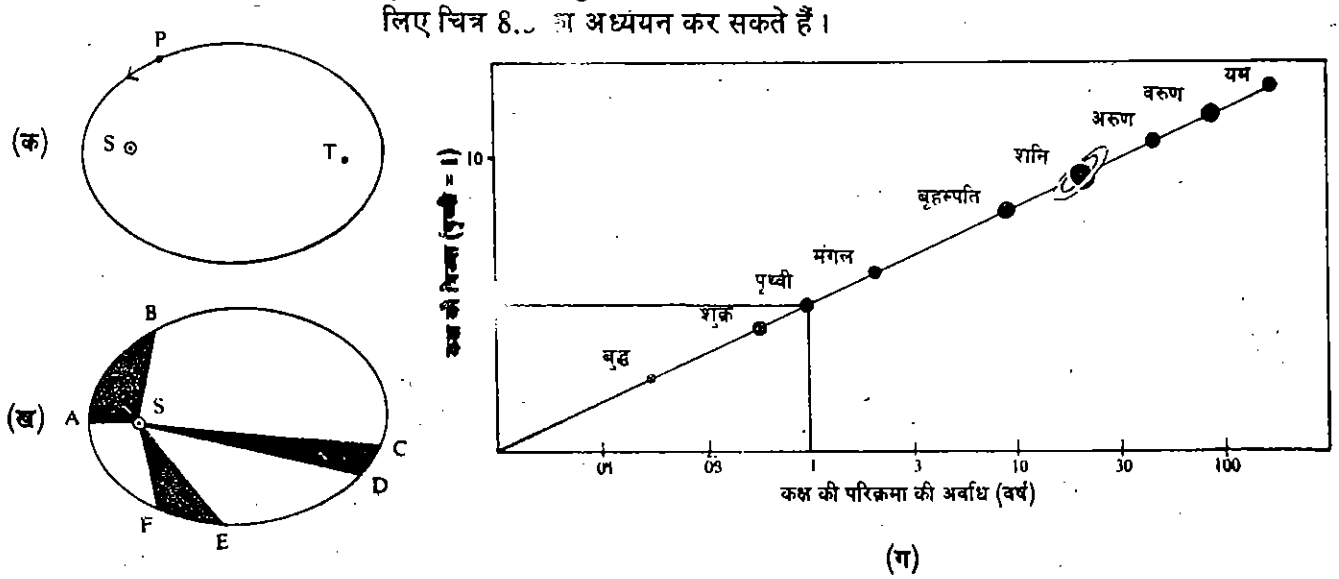

चित्र 8.3 : ग्रहों की गति के संबंध में कैपलर के नियम

क) पहला नियम : ग्रह (P) एक दीर्घवृत्त में घूमता है, जिसके एक फोकस पर सूर्य (S) होता है।

ख) दूसरा नियम : किसी ग्रह को B से A तक की दूरी तय करने में उतना ही समय लगता है जितना F से E तक और D से C तक की दूरी तय करने में लगता है : छायांकित : हिस्से ASB, ESF और CSD सभी बराबर क्षेत्रफल के हैं।

ग) तीसरा नियम : किसी ग्रह की कक्षा के परिमाप और उसके द्वारा सूर्य का एक चक्कर काटने में लगने वाले समय में एक निश्चित गणितीय संबंध है। जो ग्रह सूर्य से जितनी अधिक दूर होगा वह सूर्य की एक परिक्रमा पूरी करने में उतना ही अधिक समय लेगा।

i) रसायनशास्त्र का एक मूलभूत नियम कहता है 'किसी रासायनिक पदार्थ की, उसके शुद्ध रूप में रासायनिक संरचना सदैव एक ही रहती है।' उदाहरण के लिए पानी सदैव हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से बना होता है जो 1:8 के अनुपात में संयुक्त होते हैं। पानी का अणु बनाने के लिए भार के अनुसार एक भाग हाइड्रोजन और आठ भाग ऑक्सीजन संयुक्त होते हैं। यह 'स्थिर रासायनिक संरचना का नियम' कहलाता है।

ii) ऊष्मा अपने आप किसी ठंडे पदार्थ से गर्म पदार्थ की ओर नहीं बहती। यह ऊष्मागतिकी का दूसरा नियम है।

ाप न्यूटन के सार्वभौमिक गरुत्वाकर्षण सिद्धांत को, जिसका संक्षिप्त वर्णन हमने इकाई 6 में क्या था, पहले ही से जानते हैं। यह सिद्धांत बताता है कि दो वस्तुओं के बीच का आकर्षण ल किस प्रकार उनके द्रव्यमानों और उनके बीच की दूरियों पर निर्भर करता है। यह केला कथन न केवल ग्रहों की गतियों को समझाता है बल्कि पृथ्वी पर गेंद की गति को भी मझाता है जो ऊपर फैंके जाने पर सदैव नीचे आ गिरती है। दूसरे शब्दों में यह सिद्धांत भिन्न प्रकार की वस्तुओं की गतियों पर लागू होता है।

ब कभी कोई नियम किसी नये प्रयोग में गलत सिद्ध हो जाता है तब वह नई परिकल्पनाओं, टनाओं या प्रक्रियाओं की खोज करने की प्रेरणा देता है जिससे हम नये प्रयोग में मिली संगतियों को समझ सकें।

ा और शब्द जो वैज्ञानिक विवरणों के दौरान आपको मिलेंगे, वे हैं 'मॉडल' और 'सिद्धांत' heory) आमतौर से वैज्ञानिक उस वस्तु, घटना या स्थिति को, जिसका वे अध्ययन कर हे होते हैं, समझने के लिए उसका एक मॉडल (आदर्श नमूना) बना लेते हैं। मॉडल एक त्रिम रचना है जो उस वास्तविक वस्तु के जिसका अध्ययन किया जा रहा है, गुणों आचरण थवा किसी अन्य लक्षण का प्रतिनिधित्व करती है। उदाहरण के लिए मानव हृदय की रचना और कार्यों का अध्ययन करने के लिए उसे पम्प जैसा मान लिया जाता है। आरंभ में रमाणु का मॉडल चित्र 8.4 (अ) में दिखायी गई संरचना जैसा बनाया गया था। बाद में वह र मंडल की संरचना जैसा माना गया। यह समझा जाता था कि परमाणु का नाभिक सूर्य ा भाँति होता है और उसके इर्द-गिर्द इलैक्ट्रॉन उसी प्रकार परिक्रमा करते हैं जैसे सूर्य के ई-गिर्द ग्रह। आमतौर से किसी स्थिति का निरूपण करने के लिए आप किसी शब्द, चित्र, त्र या संकेत को मॉडल मान लेते हैं। एक मॉडल को उस स्थिति या वस्तु के बारे में, सका वह प्रतिनिधित्व करता है, कुछ सूचनाएँ बतानी चाहिए। मॉडल इसलिए उपयोगी हैं

आप इन मॉडलों को अंतरिक्ष यान, वायुयान आदि के खिलौना मॉडलों या फिर सौर परिवार परमाणु, अणु या डी. एन. ए. आदि के भौतिक मॉडलों जैसा मत समझिए।

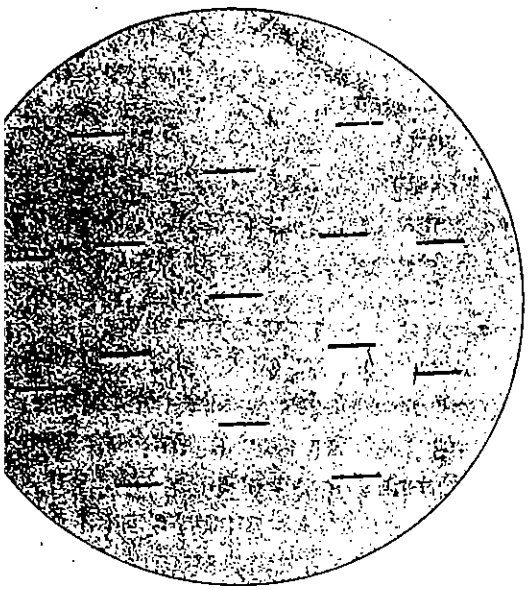

(क)

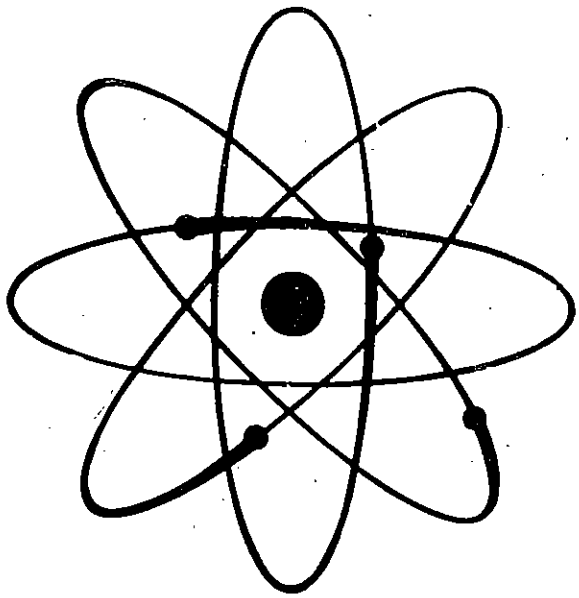

(ख)

त्र 8.4 (क) परमाणु का प्लम पुडिंग मॉडल ऋणात्मक आवेश किशमिश की भाँति धन आवेश वाले गोले जड़े हुए हैं जो छायांकित क्षेत्र द्वारा दिखाया गया है। (ख) सौर परिवार के आधार पर बनाया गया परमाणु मॉडल।

क्योंकि वे एक नई अज्ञात और जटिल वस्तु अथवा स्थिति को सरल और परिचित तरीके से दर्शाते हैं।

सिद्धांत कुछ ऐसे सामान्य कथनों का समूह होता है जो बड़ी संख्या में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं, घटनाओं, परिस्थितियों अथवा प्रणालियों के गुणों और व्यवहार के बारे में सब प्रायोगिक प्रेक्षणों का सही तरीके से विवरण पेश करता है अथवा उन्हें समझाता है। इसी प्रकार, आप डार्विन के विकासवाद सिद्धांत के बारे में पढ़ चुके हैं जो यह बताता है कि सरल जीवों से किस प्रकार विभिन्न किस्मों के जटिल जीवन विकसित हुए है। इकाई 10 में आप तारों के बनने के सिद्धांत और वे कैसे विकसित होते हैं और ख़त्म हो जाते हैं, आदि के बारे पढ़ेगें।

किसी नियम या सिद्धांत से प्रेक्षणों के बारे में भी पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। इस बारे एक प्रसिद्ध उदाहरण है वरुण ग्रह की मौजूदगी का पूर्वानुमान। वर्ष 1845 तक सब ग्रहों के पथों की सही-सही गणना की जा चुकी थी। अरुण के अतिरिक्त सब ग्रह अनुमानित पथों का ही अनुसरण करते पाये गये। तब केम्ब्रिज (इंग्लैंड) में एडम्स ने और पेरिस (फ्रांस) में लेवेरियर ने यह तर्क पेश किया कि अरुण ग्रह के पथ में जो विचलन देखा जाता है वह उसके परे स्थित किसी अज्ञात ग्रह के कारण है। न्यूटन के सार्वभौमिक गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत का उपयोग करके उन्होंने उसके वास्तविक आकार और पथ के पूर्वानुमान लगा लिये। फिर 23 सितंबर 1846 को गाले ने बर्लिन वेधशाला से, वरुण को लगभग उसी स्थिति में देखा जिसका अनुमान पहले लगा लिया गया था। वास्तव में जब किसी नये सिद्धांत की घोषणा की जाती है तब कोई ऐसा प्रयोग सुझाने में, जो नये सिद्धांत को सही सिद्ध करने के प्रमाण जुटा सके, बहुत सावधानी बरती जाती है, क्योंकि प्रयोगों से ही सिद्धांत सही प्रमाणित हो जाते हैं अथवा त्याग दिये जाते हैं।

अब तक की गयी चर्चा का निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि वैज्ञानिक अनुसंधान वास्तव में निम्न कार्यों की एक शृंखला है:

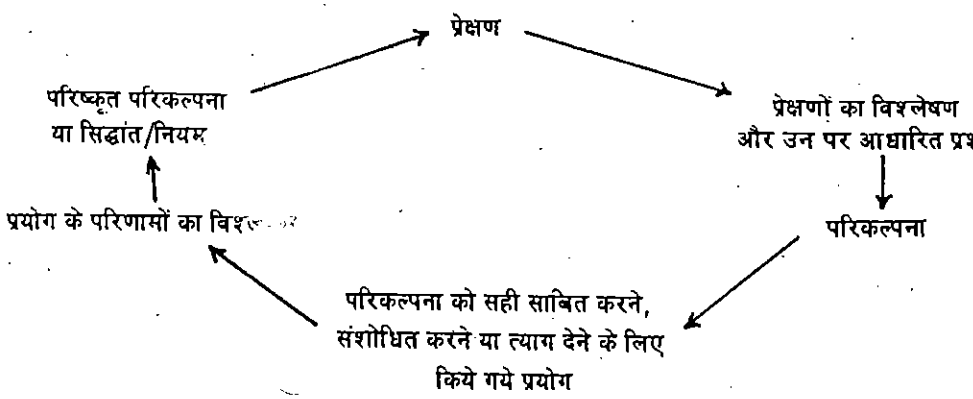

चित्र 8.5 : वैज्ञानिक पद्धति

8.3.5 कुछ उदाहरण

आइए, ऊपर वर्णित वैज्ञानिक पद्धति को स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण लें।

उदाहरण 1

यह एक भली-भाँति ज्ञात वैज्ञानिक तथ्य है कि पौधे सूर्य के प्रकाश, कार्बन डाइऑक्साइड और पानी का उपयोग करके अपना भोजन बनाते हैं और इस क्रिया में ऑक्सीजन मुक्त करते हैं। हम सब जानते हैं कि सूर्य का प्रकाश सात भिन्न-भिन्न रंगों से बना है जिन्हें हम आँखों से देख सकते हैं और जो इंद्रधनुष में भी दिखाई देते हैं। अब हम यह पूछना चाहते हैं कि क्या सब रंगों के प्रकाश भोजन बनाने की प्रक्रिया में समान रूप से प्रभाव डालते हैं या विशेष रंग के प्रकाश का प्रभाव अन्य रंगों की अपेक्षा अधिक होता है?

इस प्रकार इस बारे में निम्नलिखित परिकल्पनाएँ की जा सकती हैं:

i) सभी रंगों के प्रकाश का प्रभाव समान होता है।

ii) किसी रंग विशेष के प्रकाश का प्रभाव अन्य रंगों की अपेक्षा अधिक होता है।

ला चरण इन परिकल्पनाओं की परख के लिए प्रयोग करना है। यह प्रयोग आसानी से
या जा सकता है। हम किसी जलीय पौधे, जैसे हाइड्रिला (Hydrilla) की तीन टहनियाँ
र उन्हें अलग-अलग पानी में डुबो देते हैं और उन्हें बेलजार से ढक देते हैं जैसा कि चित्र
में दिखाया गया है। इसके बाद हम प्रत्येक बेलजार को हरे, पीले और लाल सेलोफेन
ाज़ों से अलग-अलग लपेटकर उन्हें धूप में रख देते हैं। इस प्रकार प्रत्येक टहनी पर
ल एक रंग का प्रकाश पड़ता है। कुछ समय बाद हम देखते हैं कि ऑक्सीजन गैस
बुलों के रूप में पानी से बाहर बेलजार में आ रही है। ऑक्सीजन गैस के बुलबुलों के
लने की दर पौधे की भोजन बनाने की दर को दर्शाती है।

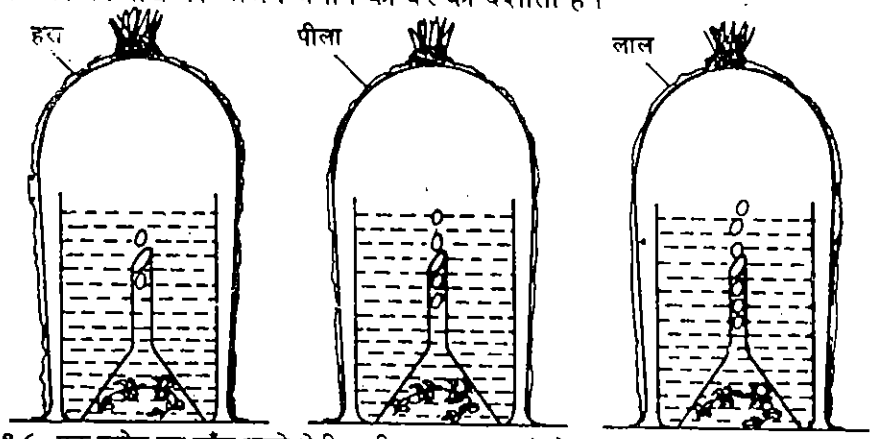

र 8.6 : एक प्रयोग यह जाँच करने के लिए, कि क्या प्रकाश संश्लेषण (Photo Synthesis) के लिए किसी विशेष रंग का प्रकाश अन्य रंगों के प्रकाश की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है?

प्रयोग में ऐसे चार कारक हैं जो बदले जा सकते हैं: तीनों टहनियाँ अलग तरह की हो
ती हैं, प्रकाश के रंग तीनों बेलजारों में पानी तथा कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा अलग
सकती है। किसी एक कारक का प्रभाव जानने के लिए हमें यह देखना होगा कि शेष
क तीनों बेलजारों में समान रहें। इस प्रकार अगर हम विभिन्न रंगों के प्रकाश का प्रभाव
ना चाहते हैं, तो अन्य कारक जैसे टहनियाँ, पानी और कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा
स्थितियों में एक जैसी रहनी चाहिए। हम एक ही पौधे से लगभग एक जैसी टहनियाँ ले
ते हैं और यह मान सकते हैं कि तीनों बेलजारों में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा समान
योंकि तीनों बेलजार एक ही परिमाप के हैं।

यह भी निश्चित कर सकते हैं कि प्रत्येक बेलजार में पानी की मात्रा समान हो। अब हम
संदेह यह कह सकते हैं कि गैस के बुलबुले निकलने की दर, प्रकाश के रंग पर निर्भर
ो है। इस परिस्थिति-विशेष में हम पाते हैं कि यह दर उस टहनी के लिए सबसे अधिक
ो है जिस पर लाल प्रकाश पड़ता है।

प्रकार हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि पौधों के भोजन बनाने के लिए लाल प्रकाश
प्रभाव, हरे या पीले रंग के प्रकाश की अपेक्षा ज़्यादा होता है। यह परिणाम पहली
कल्पना को अस्वीकृत कर देता है और दूसरी के बारे में आंशिक प्रमाण प्रस्तुत करता है।
अपने इस प्रयोग को आगे जारी रख सकते हैं और यह परख कर सकते हैं कि क्या अन्य
जैसे नारंगी, नीला आदि का प्रभाव लाल रंग से ज़्यादा होता है।

हम यह बताना चाहेंगे कि इस प्रयोग को करने का यह एक बहुत सरल तरीका है।
निकों ने अत्यंत परिष्कृत यंत्रों द्वारा नियंत्रित स्थिति में ऐसे कई प्रयोग किये हैं।

हरण 2

ने यह उदाहरण विज्ञान के इतिहास से लिया है। सत्रहवीं शताब्दी में खनिजों और कुआँ
ने वाले लोगों ने यह पाया कि साधारण पम्पों से पानी को लगभग बत्तीस फुट से ऊपर
ना असंभव होता है। गैलीलियो ने सोचा कि पानी का इससे ऊँचा स्तंभ अपना भार वहन
कर पाता पर उनके शिष्य टॉरीसिली (1608-47) ने एक अन्य परिकल्पना प्रस्तुत की
पम्प में पानी वातावरण में वायु के दाब के कारण चढ़ता है। उन्होंने यह तर्क दिया कि
र पम्प में पानी चढ़ने का कारण केवल वायुमंडलीय दाब है, तब अन्य कोई भी द्रव एक
श्चित ऊँचाई तक ही चढ़ेगा। उसके बाद उन्होंने गणना की कि पारे का स्तम्भ तीस इंच

से अधिक नहीं चढ़ेगा। इस गणना को परखने के लिए उन्होंने एक सरल प्रयोग किया। एक डिश में पारा लेकर उसमें काँच की, एक सिरे पर बंद नली को खुले सिरे की ओर से उलट कर खड़ा कर दिया। ऐसा करने पर उन्होंने देखा कि पारा उस नली में तीस इंच से अधिक नहीं चढ़ता है। इससे टॉरीसिली की परिकल्पना सही साबित हुई। इस प्रकार बैरोमीटर का आविष्कार हुआ। यह वायुमंडलीय दाब को मापने का एक उपकरण है।

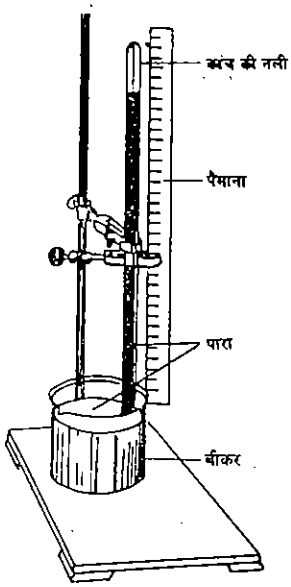

चित्र 8.7 : बैरोमीटर

हमें यह भी मालूम है कि ऊँचे पहाड़ों पर वायुमंडलीय दाब, सागर तल की तुलना में कम होता है। टॉरीसिली की व्याख्या की आगे जाँच एक अन्य वैज्ञानिक पास्कल ने भी की और वे बैरोमीटर को पहाड़ पर ले गये। वहाँ पारे का स्तर गिर गया जिससे यह स्पष्ट हो गया कि ऐसा वहाँ के कम वायुमंडलीय दाब के कारण हुआ। इससे टॉरीसिली की व्याख्या की आगे पुष्टि हुई।

उदाहरण 3

यह उदाहरण रसायनशास्त्र से है। यह देखा जाता है कि अगर हम मोमबत्ती जलाते हैं तो वह प्रकाश देती है, कुछ ऊष्मा देती है और अंत में थोड़ा सा पिघला हुआ मोम बचता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है मानो इस क्रिया में द्रव्य नष्ट हो गया। पर यह सही नहीं है। इस प्रकार की दैनिक क्रियाओं में द्रव्य की एक बहुत छोटी मात्रा (लगभग 10^{-12} ग्राम यानी एक ग्राम के दस खरबवें हिस्से के बराबर मात्रा) ऊर्जा में बदल जाती है। और शेष द्रव्य अन्य रूपों में बदल जाता है। इस बात को हम किस प्रकार परख सकते हैं?

इसके लिए हम एक सरल प्रयोग करते हैं। हम एक डिश में एक छोटी-सी मोमबत्ती रखते हैं, उस में कुछ पानी भरते हैं, उसे बेलजार से ढकते हैं और इस पूरे उपकरण को तोल लेते हैं। फिर हम मोमबत्ती को जलाते हैं और उसे बेलजार में जलने देते हैं। जब वह बुझ जाती है तो हम पूरे उपकरण को ठंडा होने देते हैं और उसे फिर से तोल लेते हैं इसमें हम पाते हैं कि वजन में कोई अंतर नहीं आता यद्यपि थोड़ा मोम जल जाता है। इस जले हुए मोम और बत्ती का क्या हुआ?

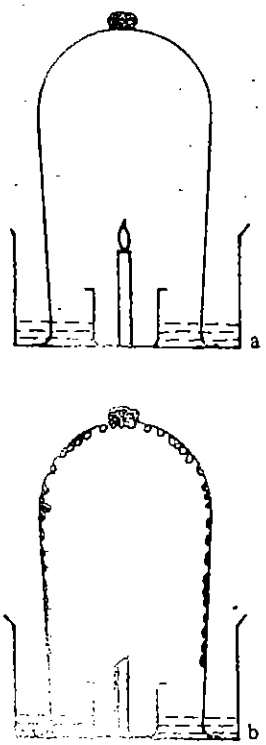

चित्र 8.8 : द्रव्यमान के संरक्षण के लिए नियम का सत्यापन

अगर हम गौर से देखें तो हमें बेलजार की अंदरूनी सतह पर पानी की कुछ बूंदें और कालिख दिखाई देगी। इस क्रिया में बनने वाला एक अन्य पदार्थ है कार्बन डाइऑक्साइड, जिसे हम देख नहीं सकते परंतु डिश में थोड़ा-सा चूने का पानी डालकर उसे परख सकते हैं। ऐसा करने पर हम देखते हैं कि चूने का पानी दूधिया हो जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि चूने के पानी और कार्बन डाइऑक्साइड की क्रिया से एक ऐसा सफेद पदार्थ बनता है जो पानी में घुलता नहीं है। वास्तव में जब मोमबत्ती जलती है तब पानी, कार्बन और कार्बन डाइऑक्साइड बनते हैं और कुछ बिना जला मोम बचा रह जाता है। नष्ट हुए द्रव्य की मात्रा इतनी कम होती है कि उसे आज की कोई भी सुग्राही तुला, जो द्रव्य की 10^{-6} से 10^{-7} ग्राम तक की मात्रा नाप सकती है, नहीं तोल सकती। इसलिए हर दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि द्रव्य की मात्रा बदली नहीं। इस नतीजे को हम रसायनशास्त्र में 'द्रव्य संरक्षण का नियम' कहते हैं।

क्रियाओं का यह क्रम जो चित्र 8.5 में दिखाया गया है काफ़ी व्यापक रूप से अनेक क्षेत्रों में तरह-तरह के अवलोकनों और परिकल्पनाओं के लिये सही है। पर वैज्ञानिक माना जाने के लिए यह ज़रूरी नहीं है कि कोई व्यक्ति हू-ब-हू उसी क्रम में काम करे। यानी एक समस्या लेकर उसके बारे में प्रेक्षण करे, फिर सवाल उठाये, परिकल्पना बनाये, प्रयोग करे आदि अक्सर अनेक वैज्ञानिक अपना अनुसंधान इस क्रम की कुछ ही क्रियाओं तक सीमित रखते हैं। कोई नया वैज्ञानिक इस क्रम में किसी भी चरण पर प्रवेश कर सकता है। उदाहरण के तौर पर कई वैज्ञानिकों ने एक ही पौधे पुदीना (Mentha) पर काम किया और पाया कि उसमें मेंथोल होता है मेंथोल पैपरमिंट, कुछ दंतमंजनों और खांसी की दवाई आदि में इस्तेमाल किया जाता है।

अब वैज्ञानिकों का अन्य दल अध्ययन कर सकता है कि मेन्थोल की उपज बढ़ाने के लिए, पुदीने को किस तरह उगाना चाहिए और अधिकतम पैदावार पाने के लिए उसे कब काटना चाहिए। ये दो दल केवल व्यावहारिक प्रेक्षण और प्रयोग कर रहे हैं। वैज्ञानिकों का तीसरा दल इस सैद्धांतिक पहलू पर काम करना पसंद कर सकता है कि पौधे में मेंथोल किस प्रकार

बनता है। ये तीनों दल अलग-अलग जगहों पर और अलग-अलग समय पर, लगभग स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहे हो सकते हैं यद्यपि वे अपने अनुसंधान के लिए एक दूसरे के परिणामों का इस्तेमाल कर सकते हैं।

या फिर वैज्ञानिकों का कोई दल अनेक वर्षों तक कुछ समस्याएँ लेकर, वैज्ञानिक पद्धति की इस क्रम की कई कड़ियों पर एक साथ काम कर सकता है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि वे पर्यावरण के प्रदूषण की जाँच कर रहे हैं अथवा मानसून की पूर्व सूचना पर अनुसंधान कर रहे हैं। तब वैज्ञानिकों के एक ही दल में से कुछ लोग पवन के वेग, ताप और वायुमंडल की आर्द्रता के बारे में आँकड़े इकट्ठे कर सकते हैं। उसी दल के कुछ वैज्ञानिक इन आँकड़ों के आधार पर एक सैद्धांतिक मॉडल तैयार कर सकते हैं, और अन्य वैज्ञानिक वायुमंडल के कुछ पदार्थों का विस्तृत प्रायोगिक विश्लेषण करके, इस मॉडल को सही या गलत साबित करने में लगे हो सकते हैं।

इस प्रकार हम पाते हैं कि वैज्ञानिक अलग-अलग तरह से अनुसंधान कर सकते हैं। कुछ वैज्ञानिक सूचना, आँकड़े, तथ्य आदि एकत्रित करने में निपुण हो सकते हैं। कुछ प्रयोगों का डिज़ाइन करने में बहुत दक्ष हो सकते हैं पर सैद्धांतिक व्याख्या में नहीं। ऐसे कुछ अत्यंत कुशल सिद्धांतवादी हो सकते हैं जो आधुनिक प्रयोगशाला के सरल उपकरणों को भी न पहचान सकें, पर दूसरे वैज्ञानिकों द्वारा इकट्ठे किये गये तथ्यों के आधार पर तर्क करके नये सिद्धांत दे सकें। इन सभी वैज्ञानिकों का योगदान महत्वपूर्ण होता है। परन्तु, व्यक्तिगत रूप से वैज्ञानिक जो भी अनुसंधान जैसे भी करता है, सिर्फ वही विज्ञान नहीं है। दरअसल विज्ञान सभी वैज्ञानिकों के सामूहिक प्रयास से बनता है।

संक्षेप में वैज्ञानिक पद्धति को बीसवीं सदी के महान वैज्ञानिक आइन्सटीन के शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है 'यदि आप वैज्ञानिक पद्धति के तत्त्वों को जानना चाहते हैं तो उस बात पर ध्यान न दें जो वैज्ञानिक कहता हैं अपितु उस पर ध्यान दें जो वह करता है।' इस परिभाषा में हम यह और जोड़ सकते हैं कि विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित वैज्ञानिकों की बड़ी संख्या को देखें। क्योंकि विज्ञान में विभिन्न किस्मों की बहुत सी क्रियाएँ शामिल होती हैं।

बोध प्रश्न 2

नीचे दिये गये उदाहरण में किसी रोग पर एक औषधि के वैज्ञानिक परीक्षण के बारे में बताया गया है। यह बताएँ कि इनमें से प्रत्येक कथन, चित्र 8.5 में दिखाई गयी वैज्ञानिक पद्धति के क्रम के किस चरण को दर्शाता है। यह कथन ठीक उसी क्रम में नहीं दिये गये हैं। ध्यान से पढ़ें और दिये गये स्थानों पर अपने उत्तर लिखें।

i) कोई रासायनिक पदार्थ (क) दुर्घटनावश, रोग पैदा करनेवाले जीवाणुओं से भरी प्लेट में गिर गया और इससे प्लेट के सभी जीवाणु मर गये। .....

ii) फलां रोग में औषधि 'क' 50 प्रतिशत रोगियों पर कारगर सिद्ध होती है। .....

iii) परिणामों से पता चलता है कि वर्ग 1 के लगभग 30 प्रतिशत रोगियों को उपचार के बाद भी कोई लाभ नहीं मिलता। इसका अर्थ हुआ कि 100 रोगियों में से 70 को उपचार से लाभ होता है। दूसरी ओर वर्ग-2 में 20 प्रतिशत रोगी बिना उपचार के ही ठीक हो जाते हैं। यानि कि रोग मुक्त होने वाले 70 रोगियों में से 20 बिना उपचार के ठीक हो सकते थे। इसलिए यह औषधि, 70 प्रतिशत में से 20 प्रतिशत घटा कर, मात्र 50 प्रतिशत रोगियों के लिए ही प्रभावी है। .....

iv) क्या औषधि 'क' का उपयोग, उन जीवाणुओं द्वारा फैलाये रोग से पीड़ित लोगों के इलाज के लिए किया जा सकता है? हाँ या नहीं में उत्तर दें। .....

.....

v) उसी रोग से पीड़ित चूहों का एक समूह लिया जाता है। उनमें स आधे (वर्ग 1) का औषधि से उपचार किया जाता है और बाकी आधे (वर्ग 2) को कोई दवाई नहीं खिलाई जाती है। पहले वर्ग के चूहों को औषधि की पूर्वनिर्धारित मात्रा दी जाती है। वर्ग 1 के उपचारित चूहों में से जीवित अथवा मरने वाले चूहों की गिनती कर ली जाती है और उनकी वर्ग 2 के बिना दवा खिलाये चूहों से तुलना की जाती है। ठीक होने वाले चूहों की संख्या वर्ग 2 के मुकाबले, वर्ग 1 में कहीं ज़्यादा पाई जाती है। ऐसा

ही परीक्षण पहले गिनीपिग पर और बाद में अलग-अलग जगहों में रहने वाले लोगों पर किया जाता है।

.....

ऊपर दिये गये उदाहरणों में आपने पाया होगा कि विज्ञान विभिन्न प्रकार के अनेक पदार्थों, घटनाओं और स्थितियों का अध्ययन भिन्न-भिन्न तरीकों से करता है। इस अध्ययन से जो विवरण मिलते हैं वे भी अलग-अलग तरह के होते हैं। पर फिर भी विविधता से परिपूर्ण विज्ञान की कुछ ख़ास विशेषताएँ हैं। आइए, अब हम विज्ञान के स्वरूप पर, और उन पहलुओं पर जो उसे अन्य प्रकार के ज्ञान से अलग करते हैं, चर्चा करें। दरअसल विज्ञान की ये विशेषताएँ वस्तुपरक प्रेक्षणों, अवलोकनों और परिकल्पनाओं की पुष्टि के लिए किये गये प्रयोगों से बनी उस वैज्ञानिक पद्धति की ही देन हैं, जिसके बारे में आपने अभी पढ़ा।

8.4 विज्ञान का विशिष्ट स्वरूप

जैसा हमने अब तक पढ़ा है, विज्ञान को शेष मानव प्रयासों से अलग नहीं किया जा सकता। मानव इतिहास के पिछले कुछ हज़ार वर्षों में विज्ञान का बहुत बड़ा भंडार इकट्ठा हो चुका है। ज्ञान के इस अपार भंडार में पिछले कुछ सौ वर्षों में तो बहुत ज़्यादा बढ़ोतरी हुई है। ज्ञान के इस अथाह भंडार में परमाणुओं से भी छोटे कणों से लेकर ग्रह, नक्षत्र और आकाश गंगाओं सहित पूरे ब्रह्माण्ड की जानकारी शामिल है। इसमें पेड़-पौधों और जन्तुओं, स्वास्थ्य और रोग, खाने और दवाओं से लेकर जीवन क्या है, मानव मस्तिष्क कैसे कार्य करता है, विश्व का आदि और अन्त क्या है जैसी कठिन समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

जैसे कि हम पहले बता चुके हैं, विज्ञान का उपयोग हम अपने जीवन की दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने, बेहतर मनोरंजन और तेज़ी से संचार आदि के लिए करते हैं। ऊर्जा का कई रूपों में उपयोग करने में हम सफल हुए हैं। अपने अस्तित्व के लिए पूर्णतः प्रकृति पर आश्रित, ज़मीन से बंधा मानव आज उस स्थिति में पहुँच गया है जहाँ कुछ भी पा लेना असम्भव मालूम नहीं पड़ता। हमने पृथ्वी के चप्पे-चप्पे का, इसके विशाल थल समूह, गहरे सागरों और ऊँचे-ऊँचे पर्वतों का अध्ययन करने की कोशिश की है। अब हमारी दृष्टि अंतरिक्ष की ओर लगी है। हमारा ध्यान सौर परिवार तक ही सीमित नहीं है बल्कि अब उससे भी आगे सुदूर अंतरिक्ष की ओर है। अन्तरिक्ष में हमारी यात्रा एक बृहत बड़ा प्रयास है जो अभी शुरू ही हुआ है।

ऐसे सभी प्रयास विज्ञान के भंडार में और अधिक बढ़ोतरी करते है। इस प्रकार विज्ञान का विकास कभी रुकता नहीं, विज्ञान सदैव गतिशील रहता है। यह एक लगातार चलने वाली, कभी न समाप्त होने वाली प्रक्रिया है। क्योंकि, विज्ञान में ऐसा कोई एक अंतिम सत्य नहीं है जिसके प्राप्त करने के बाद सब वैज्ञानिक अपने काम से रिटायर हो जायें, जैसे नौकरी से रिटायर हो गये हों। विज्ञान की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वह कभी पूरा नहीं होता। इस ज्ञान में हम जितना और जोड़े उतना ही प्रकृति के अज्ञात रहस्यों के बारे में नये सवाल उठते जाते हैं। इस तरह नित नयी सूचनाएँ एकत्रित होती रहती हैं। यदि प्रचलित सिद्धांतों के आधार पर नये रहस्यों को नहीं सुलझाया जा सकता तो नये सिद्धान्त दिये जाते हैं। कोई भी वैज्ञानिक यह दावा नहीं कर सकता कि उसने संबंधित विज्ञान की संपूर्ण जानकारी हासिल कर ली है, वह इस संसार की सभी बातों के बारे में जान गया है।

हमने देखा कि विज्ञान गतिशील है और सदा बढ़ता रहता है। हम यह भी कहेंगे कि विज्ञान अटल नहीं होता। ऐसी कोई बात विज्ञान में शामिल नहीं है जिसको चुनौती न दी जा सकें या जिसके बारे में सवाल न उठाये जा सके। दरअसल सबसे अधिक प्रतिष्ठित वैज्ञानिक वे ही माने जाते है जो प्रमाणों या तथ्यों के आधार पर प्रचलित सिद्धान्तों को बदल देते हैं, संशोधित करते हैं, अधूरा या ग़लत साबित करते हैं। इस अर्थ में विज्ञान अपने आप को हमेशा सुधारने वाला उद्यम है यानी वह सदा परिवर्तन के लिए तैयार रहता है। वैज्ञानिकों द्वारा दी गई कई

परिकल्पनाएँ गलत साबित हो जाती हैं। विज्ञान स्वतन्त्र खोज पर आधारित है। उसका आधार यह है कि किसी भी परिकल्पना की चाहे वह कितनी ही अनोखी क्यों न हो, परख प्रयोग के आधार पर ही होनी चाहिए। इस तरह विज्ञान में हठधर्मिता नहीं है। यह प्रयोग की कसौटी पर खरी न उतरने वाली किसी भी प्रकार की मान्यताओं, भावनाओं अथवा विचारों पर, किसी पूर्वाग्रह का कैदी बनकर, अकारण टिका नहीं रहता। किसी बात को ग़लत सिद्ध करने से भी विज्ञान की प्रगति होती है। विज्ञान में कोई ऐसा महान पुजारी नहीं होता जिसको चुनौती न दी जा सके। विज्ञान में सर्वाधिक अनुपयोगी बात यह समझी जाएगी कि किसी भी बात को हम बिना सवाल किये, बिना प्रयोग द्वारा परखे, आंख मूँद कर मान लें।

वैज्ञानिकों के समुदाय में, कोई भी नई खोज, उपलब्धि अथवा परिभाषा तभी मानी जाती है जब उस पर ध्यान से परीक्षण, विवेचना और पुष्टि कर ली जाए। इस तरह से देखें तो वैज्ञानिक 'सत्य' एकमत से माने गये सत्य ही होते हैं और इसीलिए इनकी हमेशा बदलने की सम्भावना रहती है। पर यह एकमत ध्यानपूर्वक वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण करने के बाद ही बनता है। यदि यह 'सत्य' प्राकृतिक नियमों की कसौटी पर सही उतरता या प्रकृति में कुछ नये तथ्य उजागर होते हैं जो इस 'सत्य' को झुठलाते हैं, तो वैज्ञानिक अपने सिद्धान्तों को बदलने के लिए तैयार रहते हैं।

एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि विज्ञान वस्तुपरक है। यानी अगर सभी सुविधाएँ मौजूद हों तो विज्ञान के प्रयोगों को दोहराया जा सकता है, उनके नतीजों की परख और पुष्टि जितनी बार चाहे की जा सकती है। विज्ञान की यह विशेषता इस बात पर आधारित है कि किसी भी वैज्ञानिक कथन की परख यह है कि वह प्राकृतिक संसार के प्रेक्षणों के अनुकूल होना चाहिए। विज्ञान सत्य तथ्यों को वैज्ञानिक प्रिय विश्वासों के ऊपर रखता है। आम तौर पर माना जाने के लिये सभी नये विचारों को प्रमाणों के मानदण्ड पर खरा उतरना आवश्यक है। नये विचारों के सही सिद्ध होने में कभी-कभी सदियाँ भी लग जाती हैं। अगर कोई वैज्ञानिक सिद्धांत प्रयोग की कसौटी पर खरा नहीं उतरता तो उसे कोई भी चमत्कारी तर्क, उच्च विशेषज्ञों का समर्थन या आकर्षक अपील नहीं मनवा सकते। इकाई 6 में आपने पढ़ा ही है कि तथ्यों को परखने की इसी विशेषता के कारण विज्ञान में अरस्तू के ब्रह्मांड संबंधी विचार ग़लत सिद्ध हुए। विज्ञान के तथ्य वैज्ञानिकों की व्यक्तिगत इच्छाओं या अनिच्छाओं पर निर्भर नहीं होते। वैज्ञानिक प्रयोग और प्रेक्षण भी कितनी ही बार दुहराये जा सकते हैं। इसीलिए वस्तुपरक दृष्टिकोण विज्ञान की एक प्रमुख विशेषता है। विज्ञान कभी भी कुछ चुने हुए लोगों के व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित नहीं होता।

बोध प्रश्न 3

निम्नलिखित में से कौन से दो कथन विज्ञान की विशेषता नहीं बताते? उनके आगे गलत (×) का निशान लगायें। शेष कथनों में उनके आगे लिखें कि वे विज्ञान की कौन सी विशेषताएँ दर्शाते हैं, जिनके बारे में आपने अभी पढ़ा।

i) एक दिन विज्ञान हमें ब्रह्माण्ड के बारे में सम्पूर्ण जानकारी दे सकेगा.....

ii) उन्नीसवीं सदी के रसायनविदों का विश्वास था कि किसी धातु को जलाने पर फलोजिस्टन नाम का पदार्थ उड़ जाता है। लेकिन प्रयोगों से यह पता चला कि जलने के बाद बचे हुए पदार्थ का भार मूल धातु के भार से अधिक था। तब फलोजिस्टन सिद्धांत के मानने वालों ने कहा कि फलोजिस्टन का भार ऋणात्मक हो सकता है यानी किसी चीज़ में से फलोजिस्टान का भार घटाएँ तो उस चीज़ का भार बढ़ जाएगा। बार-बार दुहराये गये प्रयोगों से सिद्ध हुआ कि जलाये जाने पर धातु, ऑक्सीजन गैस से मिलकर, उस धातु का ऑक्साइड बनाती है। इस तरह फलोजिस्टन सिद्धान्त ग़लत सिद्ध हुआ.....

iii) एक प्रसिद्ध खगोल वैज्ञानिक ने घोषणा की कि उसे सुदूर ब्रहमाण्ड में एक नई मंदाकिनी का पता लगा है। वैज्ञानिकों के अन्य दलों ने इस बात की पुष्टि नहीं की, फिर भी उसकी बात सच्ची मानी जाती रही क्योंकि वह अपने क्षेत्र में महान वैज्ञानिक था।.....

iv) हम सभी पाश्चरीकृत (pasteurised) दूध से भली-भाँति परिचित हैं। इसका तात्पर्य यह है कि दूध को ऊँचे ताप तक गर्म करके दूध के जीवाणु खत्म कर दिये गये हैं। पाश्चरीकरण की यह क्रिया लई पाश्चर के एक प्रसिद्ध प्रयोग पर आधारित है।

पाश्चर ने यह दिखाने के लिए कि जीव सड़े गले या अन्य निर्जीव पदार्थों से खुद-ब-खुद पैदा नहीं होते, पानी को उबाला जिससे उसके जीवाणु मर गये। उस पानी को उन्होंने एक परखनली में रखकर सील कर दिया। काफ़ी दिन के उपरान्त उस पानी को सूक्ष्मदर्शी के नीचे देखा गया तो उसमें जीवाणु नहीं पाये गये। यदि पानी में अपने आप ही जीवाणु पैदा हो सकते तो ऐसा कभी नहीं हो सकता था, यानी सूक्ष्मदर्शी द्वारा पानी में जीवाणु दिखने चाहिए थे। अन्य प्रयोगशालाओं में पाश्चर के प्रयोग दुहराये गये और यह साबित हो गया कि जीवन से ही जीवन की उत्पत्ति होती है।

.....

v) उन्नीसवीं सदी के अन्त तक यह माना जाता था कि परमाणु के और छोटे भाग नहीं हो सकते। बीसवीं सदी के आरम्भ में प्रयोगों द्वारा सिद्ध हुआ कि परमाणु इलैक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉनों से मिलकर बना है। गत कुछ वर्षों में अन्य अनेक मूलभूत कणों की खोज की गयी है।

.....

8.5 वैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा समस्याओं का समाधान

ऊपर बताई गई वैज्ञानिक पद्धति और विज्ञान की विशेषताएँ मात्र वैज्ञानिकों तक ही सीमित नहीं हैं। यह समस्याओं के, चाहे वे वैज्ञानिक हों या आर्थिक, सामाजिक अथवा व्यक्तिगत, समाधान के लिए तर्कसंगत विधि है। विज्ञान की ये विशेषताएँ एक मानसिकता को प्रदर्शित करती है जो मूलतः तर्कसंगत है और इसे कोई भी व्यक्ति जिसने इन्हें समझ लिया है, अपना सकता है। इस प्रकार प्रयोगशालाओं की विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए ही नहीं बल्कि दैनिक जीवन की समस्याओं को हल करने के लिए भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है और वास्तव में अपनाया जाना चाहिए।

भले ही हम यह बातें दोहरा रहे हों पर फिर भी हम आपको समस्या के समाधान के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बारे में बताना चाहेंगे। यदि हमारे सामने कोई समस्या आये तब उसके प्रति हमारा मानसिक दृष्टिकोण कैसा होना चाहिए? सबसे पहले तो हमें किसी भावावेश, सनक अथवा ज़िद या किसी पूर्वधारणा के बिना उसके बारे में खुले दिमाग से सोचना चाहिए। उस समस्या के सोचने-समझने में किसी बाहरी दबाव से बचना चाहिए। समस्या के समाधान के लिए क्या पद्धति अपनायी जाए? इसका विश्लेषण करते समय, सभी कोणों से उसे देखना चाहिए, सभी संबद्ध तथ्यों पर विचार करना चाहिए, सभी संबद्ध प्रश्नों के उत्तर और सभी तथ्य एवं आँकड़े, ज्ञात करने चाहिए। संदेह और आशंका वैज्ञानिक दृष्टिकोण के द्योतक हैं। बारीकी से अध्ययन किये बिना किसी भी तथ्य पर आँख मूँद कर विश्वास नहीं कर लेना चाहिए। हमारा विश्लेषण तर्कसंगत और तथ्यपरक सोच पर आधारित होना चाहिए और तभी हम को निष्कर्ष निकालना चाहिए। हमें कभी भी जल्दबाज़ी में किसी नतीजे पर नहीं पहुँचना चाहिए। कम प्रमाणों के आधार पर कभी भी आम राय नहीं बना लेनी चाहिए। ध्यान रहे उस समस्या पर अपने निर्णय को हमें अन्तिम नहीं मान लेना चाहिए। यदि कोई ऐसे नये तथ्य या प्रमाण मिलें जिनसे पूर्व निर्णय ही बदल जाये तो हमें अपने निष्कर्ष बदलने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए। हर बात में हमारा दृष्टिकोण लचीला होना चाहिए और हमें हठधर्मिता नहीं दिखानी चाहिए। यदि हम जीवन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना चाहते हैं, उसे अपना लक्ष्य बनाना चाहते हैं, या यों कहें कि उसे जीवन का एक अंग बनाना चाहते हैं तो कठोर परिश्रम, अनुशासन और ईमानदारी आदि ऐसे गुण हैं जिनको हमें अपनाना होगा।

उपर्युक्त दृष्टिकोण को सही रूप में समझने के लिए यहाँ हम दैनिक जीवन की कुछ घटनाओं का उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। विकास योजनाओं से ऐसी अनेक सामाजिक समस्याएँ सम्बद्ध हैं जिनके समाधान के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक हो जाता है। मान लीजिए हमें रसायन उद्योग के कारखाने के लिए कोई स्थान चुनना है। निर्णय लेते समय तकनीकी पहलुओं के अतिरिक्त सामाजिक तथ्यों पर विचार करना आवश्यक होगा। उदाहरणार्थ, वह

क्षेत्र कितनी घनी आबादी वाला है, हटाये गये लोगों के फिर से बसाने की क्या व्यवस्था है, उद्योग का पर्यावरण पर क्या प्रभाव होगा, उद्योग से उत्पन्न व्यर्थ पदार्थों को कहाँ और कैसे निपटाना होगा, ज़हरीले पदार्थ के हवा में रिस जाने की दशा में उस क्षेत्र की वायु प्रवाह का दिशा अध्ययन, मज़दूरों के रहने की समस्या, किन औद्योगिक सुरक्षा नियमों का पालन करना आवश्यक होगा आदि। किसी भी निर्णय पर पहुँचने से पहले हमें ऐसे सभी तथ्यों पर उचित रूप से विचार कर लेना चाहिए और इनसे पड़ने वाले प्रभाव का वैज्ञानिक अध्ययन कर लेना चाहिए। नहीं तो दिसंबर 1984 की भोपाल गैस त्रासदी जैसी घटनाएँ यहाँ घटती ही रहेंगी। ऐसे कई अन्य उदाहरण हो सकते हैं, जैसे नाभिकीय ऊर्जा संयंत्र, बड़े पनबिजली घरों आदि का निर्माण या ऐसा ही कोई अन्य उद्योग जिसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित सही योजना की आवश्यकता होती है।

सामाजिक विज्ञान में भी इसी दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ कुछ वर्ष पूर्व यह एक आम धारणा थी कि उन छात्रों में असंतोष अधिक होता है जो अपने परिवार में शिक्षा लेने वाली प्रथम पीढ़ी के सदस्य होते हैं यानि जिनके माता-पिता अनपढ़ होते हैं। इस धारणा के परीक्षण के लिए एक अध्ययन किया गया। इस प्रकार के विद्यार्थियों के बारे में विस्तृत आँकड़े इकट्ठे किये गये। जब उनका विश्लेषण किया गया तो यह धारणा ग़लत पायी गई। दैनिक जीवन में भी हम अपने प्रयासों से अधिकतम लाभ लेने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हैं। उदाहरण के लिए यदि आपको शहर के विभिन्न भागों में तीन व्यक्तियों से मिलना है तो आप अपना प्रोग्राम इस तरह से बना सकते हैं जिससे आपके समय और पैसे की बचत हो सके। गृहिणियाँ अक्सर कई दुकानों में सामान की कीमत और गुण देखकर अपनी खरीदारी करती हैं। यदि कोई अच्छी और सस्ती दुकान थोड़ी दूर पर है तो वे अधिक मात्रा में खरीदारी करके कई बार आने-जाने का पैसा और झंझट बचा सकती हैं।

हमारे समाज में विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले, अलग-अलग भाषाएँ बोलने वाले, अलग-अलग धर्मों और सामाजिक प्रथाओं को मानने वाले लोग, आपस में एक-दूसरे से द्वेष-भाव पैदा कर समस्याएँ खड़ी कर देते हैं। कई बार आपने देखा होगा कि लोग बहुत कम सबूतों के आधार पर ही कोई आम राय बना लेते हैं जैसे कि उत्तर भारत के लोग ढीठ होते हैं, दक्षिण भारत के लोग कमज़ोर होते हैं, गोरखा बहादुर होते हैं, पंजाबी बहुत तले और स्वादिष्ट भोजन खाते हैं, अनुसूचित जाति के लोग मंद बुद्धि के होते हैं, ग़रीब लोग बेईमान होते हैं, आदि। यदि हमारा दृष्टिकोण वैज्ञानिक होता है तो ऐसी आम धारणाएँ कभी न बनतीं क्योंकि उपलब्ध प्रमाणों और विश्लेषणों से पता चलता है कि ये धारणायें आमतौर पर सही नहीं हैं। अक्सर किसी क्षेत्र के लोगों में ऐसी बातों पर टकराव हो जाता है जिनका कोई आधार नहीं होता या ये तर्कसंगत नहीं होती। यदि लोग झूठी खबर फैलाने वालों और आपस में घृणा की भावनायें फैलाने वालों की बात पर आँख मूंद कर विश्वास न कर ले तो जगह-जगह जातीय दंगों में होने वाले खून-खराबे और मार-पीट से छुटकारा मिल सकता है। यदि वैज्ञानिक विवेक से काम लिया जाये, और इन घटनाओं के पीछे असमान आर्थिक विकास, जातीय दंगे भड़काने में स्वार्थी तत्त्वों की भूमिका आदि आधारभूत बातों को समझा जाये, तो इस तरह की अपराधिक घटनाओं में कोई शामिल नहीं होना चाहेगा। बल्कि लोग ऐसी परिस्थिति को टालने में सक्रिय भूमिका निभाएँगे।

हमें अपने जीवन में भी समस्याओं के समाधान के लिये वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि लोगों के आपसी सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं तो वे उत्तेजना और भावनाओं में बहने की बजाय, और 'मैं ही सही हूँ और आप गलत हैं' की विचारधारा को छोड़कर आपस में मिल बैठ कर विचार-विमर्श से समस्या का समाधान कर सकते हैं। उसी तरह यदि अपने जीवन के किसी चरण में हम सफल नहीं हो पाते हैं और अपनी समस्याओं से परेशान हैं तो हमें निराश नहीं होना चाहिए और किसी तरह दिल छोटा नहीं करना चाहिए। इसके विपरीत हमें सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिये कि हम कहाँ गलती कर रहे हैं, अपने आप से प्रश्न पूछ कर उनका उत्तर ढूँढना चाहिए और तर्कसंगत रास्ते को अपनाना चाहिए। यदि हम अपने विचार और जीवन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना लें तो हमारे चारों ओर, स्वास्थ्य और पोषण, पर्यावरण आदि से सम्बद्ध अनेक समस्याओं का समाधान हम आसानी से कर सकते हैं।

इस चर्चा का सार यही है कि दैनिक जीवन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने का मतलब है कि

एक ओर हम रूढ़िवादी सिद्धांतों और हठधर्मिता को छोड़ दें और दूसरी ओर निराशा हतोत्साह और पलायन की भावनाओं से छुटकारा पाने में समर्थ हों। हमें नई बातों को जानने की उत्सुकता, विवेकपूर्ण विचार, अपनी क्षमता पर आत्मविश्वास, खुला दिमाग, तर्कसंगत विचार सही मूल्यांकन, लचीलापन और सबसे ऊपर, नम्रता अपनानी चाहिए। यदि हम इन प्रयासों में थोड़ा भी सफल हो गये तो इसका अर्थ यह होगा कि हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण को समझ गये हैं।

बोध प्रश्न 4

निम्नलिखित परिस्थितियों में आप किन बातों को वैज्ञानिक और किन को अवैज्ञानिक मानेंगे। प्रत्येक विवरण के आगे "वै' या "अ" लिखें।

क) अगर कोई व्यक्ति आपके पास आकर यह कहता है कि पिछली रात उसने आकाश से पृथ्वी पर उतरती हुई तेज़ रोशनी देखी थी तब आप,
   i) उसका विश्वास कर लेंगे और अन्य लोगों से कहेंगे कि आपने भी ऐसा प्रकाश देखा.....
   ii) उस व्यक्ति से पूरी पूछ-ताछ करेंगे और सही तथ्य जानने का प्रयास करेंगे.....

ख) आप किसी संस्था में कार्य करते हैं और आपके नीचे काम करने वाला कोई व्यक्ति अपने किसी सहयोगी की शिकायत करता है। तब आप,
   i) उस व्यक्ति को तुरन्त निलम्बित कर देंगे.....
   ii) शिकायत पर कोई ध्यान नहीं देंगे क्योंकि आप उसे पसंद करते हैं.....
   iii) जाँच करेंगे, सभी तथ्य एकत्रित करेंगे और तब निर्णय देंगे.....

ग) आपके परिवार में कोई बच्चा मरणासन्न स्थिति में है। तब आप,
   i) मान लेंगे कि ईश्वर की ऐसी इच्छा है और आप इसके बारे में कुछ नहीं कर सकते.....
   ii) उसे आप किसी जादू-टोने वाले के पास यह सोचकर कि वह उसे ठीक कर सकता है उपचार के लिये ले जाएँगे.....
   iii) बच्चे को सही उपचार के लिए किसी चिकित्सालय ले जाएँगे.....
   iv) रोग के लक्षण बता कर किसी नीम हकीम से दवा ले लेंगे.....

8.6 विज्ञान के बारे में कुछ विचार

यहाँ हमने विज्ञान के बारे में बहुत कुछ कहा है और कई अन्य बातों को आप स्वयं भी जानते होंगे। अब वक्त है कि हम विज्ञान के स्वरूप, वैज्ञानिकों के व्यक्तिगत योगदान और विज्ञान की सीमाओं के बारे में फिर से विचार करें। हमने देखा है कि सम्भवत: कुछ हज़ार वर्षों के कम समय में ही मानव ने ज्ञान का अथाह भंडार बना लिया है। इस ज्ञान ने हमें आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ दिलायी हैं जैसे हवा में उड़ना, चन्द्रमा पर उतरना, बहुत दूर से चित्र प्रेषित करना, कुछ देशों में लोगों की औसत आयु सीमा 70 वर्ष तक बढ़ाना आदि और निश्चित ही इसने मनुष्य को अपने सर्वनाश में भी सक्षम बनाया है। आज लाखों लोग जैसे शिक्षक, इंजीनियर, डॉक्टर, उपकरण बनाने वाले, ज्ञान के इस अथाह भंडार का उपयोग कर रहे हैं।

वैज्ञानिक कार्य का एक अन्य पक्ष है सृजन। नित ही नये ज्ञान की खोज हो रही है। ज्ञान की वृद्धि करने में लाखों लोग लगे हैं चाहे वह ज्ञान ब्रह्माण्ड के बारे में या मूलभूत कणों के गुणों के बारे में या जीवित पदार्थों में जीन और क्रोमोसोम के बारे में हो। ऐसे लोग भी हैं जो बड़े-बड़े उपकरणों से आकाश की छान-बीन कर रहे हैं या छोटे-छोटे कणों का अध्ययन कर रहे हैं और वे भी हैं जो कागज पेंसिल से विभिन्न शोध कार्यों के बड़े-बड़े सिद्धान्तों को सीधे और आसान रूप में प्रस्तुत करने में लगे हैं। यदि पहली किस्म के वैज्ञानिक तर्क और विश्लेषण का सहारा लेते हैं तो सृजन में लगे वैज्ञानिक इसके साथ-साथ विचार शक्ति और

प्रेरणा से काम ले रहे हैं। यह भी सच है कि बहुत से वैज्ञानिक एक साथ दोनों ही कार्यों में लगे हैं क्योंकि इन दोनों के बीच कोई निश्चित रेखा नहीं खींची जा सकती।

हम देख चुके हैं कि अज्ञात को ज्ञात बनाने के लिए वैज्ञानिकों के संघर्ष को वास्तव में सत्य की खोज कहा जा सकता है। यह महसूस करना चाहिए कि शोध के परिणाम सुन्दर हैं, अपनी अभिव्यक्ति में सुन्दर और भविष्य की सम्भावनाओं के रहस्योद्घाटन के लिहाज़ से भी आकर्षक हैं। कुछ दार्शनिकों का भी कहना है कि सत्य और सौंदर्य एक ही चीज़ है। कम से कम विज्ञान के क्षेत्र में यह बात सच है कि बहुत सा सैद्धान्तिक और प्रायोगिक कार्य जिससे अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों का पता चला, किसी समीकरण में सममिति या सुचारुता की खोज से ही आरम्भ हुये थे। एक सृजनात्मक वैज्ञानिक को अपने प्रयोगों में नये परिणाम प्राप्त होने पर या विभिन्न वैज्ञानिक तथ्यों का एक सरल समीकरण द्वारा दर्शनों पर उतना ही रोमाँच मिलता है जितना चित्रकार को नया चित्र बनाकर या संगीतज्ञ को नया राग गढ़ने पर मिलता है। विज्ञान का अनुसरण करने का व्यक्तिगत अनुभव वैज्ञानिक के लिए उतना ही प्रेरणादायक होता है जितना कवि को नयी कविता रचने का।

हमने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि वैज्ञानिक कार्यों में बहुत ज़्यादा भिन्नतायें होती है और विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ भिन्न-भिन्न तकनीकें अपनाते हैं। पर अपनाई जाने वाली भिन्न-भिन्न तकनीकों में बहुत से पहलू एक जैसे होते हैं। इस अर्थ में सम्पूर्ण विज्ञान की एक समान पद्धति होने की बात कही जा सकती है; उस मानसिकता को जो विज्ञान के क्षेत्र में हमें सफलता दिलाती है वैज्ञानिक दृष्टिकोण कह सकते हैं। यही बात भारत में विज्ञान के प्रबल समर्थक पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी कही थी। सामाजिक तथा निजी जीवन के अनेक क्षेत्रों में यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण बहुत उपयोगी है। यदि किन्हीं विशेष पद्धतियों के उपयोग से कोई वैज्ञानिक अभियान सफल हो जाता है या किसी विशेष मानसिक दृष्टिकोण द्वारा समस्याओं का समाधान होता है, तो हमें उन पद्धतियों और दृष्टिकोण को समझकर उनका इस्तेमाल जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी करना चाहिए। हमने यह दिखाने का प्रयास किया है कि वस्तुपरता वैज्ञानिक दृष्टिकोण की एक ऐसी विशेषता है जो हमें अपने पूर्वाग्रह या इच्छा-अनिच्छा थोपे बिना, खुले दिमाग से परिणामों तक पहुँचने में मदद करती है। इसका मतलब यह भी है कि किसी समस्या को सुलझाने में सामाजिक दबाव अथवा किसी बड़े आदमी के मत द्वारा हमारे निर्णय प्रभावित न हों। उदाहरण के लिये मान लीजिए कि मिसाइलों का परीक्षण केन्द्र बनाने के लिए 5000 एकड़ भूमि साफ करानी हो तो वैज्ञानिकों को उस भूमि का उपयोग बदलने से उस क्षेत्र में रहने वाले लोगों और पर्यावरण पर पड़ने वाले परिणामों के अध्ययन के लिए कहा जा सकता है। इस अध्ययन में वैज्ञानिकों को भावनाओं से प्रभावित नहीं होना चाहिए, न ही भूमि के उस उपयोग का अनजाने में समर्थन करना चाहिए, न ही किसी राजनैतिक या उस क्षेत्र के निवासियों के दबाव में आना चाहिए। वैज्ञानिक अध्ययन में वस्तुपरक विश्लेषण के लिए उच्चकोटि की निष्पक्षता आवश्यक है। निश्चय ही इसका अर्थ नहीं कि भूमि के उपयोग का तरीका बदलने के बारे में सोचते समय, मानवीय समस्याओं या वहाँ के निवासियों पर होने वाले कष्टों पर कोई अध्ययन किया ही न जाए। किसी परिणाम पर पहुँचने में इन पर भी ठीक तरह से ध्यान देना बहुत आवश्यक है।

वैज्ञानिक कार्य में हमें लचीला होना चाहिए। यदि पहले अपनाया गया रास्ता सही नहीं बैठता तो दूसरा रास्ता अपनाने और परिवर्तन के लिए हर समय तैयार रहना चाहिए। परिवर्तन जीवन का सार है और वैज्ञानिक दृष्टिकोण वही है जो बदलाव से नहीं घबराता। वास्तव में विज्ञान परिवर्तन का अग्रदूत है और यह उस समाज में फलता-फूलता है जो अंधविश्वासी नहीं होता और बदलाव की खोज में रहता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण में विवेक और तर्क का प्रमुख स्थान होता है क्योंकि वे ही सब विश्लेषणों के आधार होते हैं। परन्तु हर समस्या के समाधान के लिए कल्पना और अनुमान का भी उपयोग किया जाता है।

विज्ञान की कुछ सीमाओं के बारे में जानना भी ज़रूरी है। वैज्ञानिक ज्ञान कभी पूरा नहीं होता और न ही कभी वह संपूर्ण हो सकता है। क्योंकि इस बारे में हमारा अनुभव यह रहा है कि किसी क्षेत्र में अज्ञानता के समाप्त होने और ज्ञान मिलने पर, हमारे सामने नये प्रश्न पैदा हो

जाते हैं या अज्ञान का नया क्षेत्र सामने आ जाता है। उदाहरण के लिए जब यह स्थापित हुआ कि पदार्थ, कणों और रिक्त स्थानों से बने हैं तब हमने परमाणुओं या तत्त्वों की बात की। परमाणुओं के गहन अध्ययन करने पर पाया गया कि वे और छोटे कणों, इलैक्ट्रॉन, प्रोटॉन, और न्यूट्रॉन से बने हैं। और अधिक शोध से इससे भी छोटे कणों का पता चला है।

यह खोज जारी रहती है और विज्ञान का भंडार तेज़ी से बड़ी मात्रा में भरता रहता है। प्रत्येक प्रगति के साथ जानकारी के नये आयाम खुलते जाते हैं। इसीलिए वैज्ञानिक कभी भी रूढ़िवादी नहीं हो सकते : वे हमेशा ही ज्ञान के नये क्षेत्र खोजते रहेंगे। फिर भी किसी भी वैज्ञानिक क्षेत्र में, जो सर्वोत्तम जानकारी है वह विज्ञान के वर्तमान स्वरूप में निहित है। कोई भी यह नहीं कह सकता कि यदि वर्तमान विज्ञान किसी समस्या का समाधान नहीं कर सकता, तो हमें गैर-वैज्ञानिक लोगों की बातों पर विश्वास कर लेना चाहिए। यदि कैंसर का इलाज़ नहीं ढूँढा जा सका है तो कोई नीम हकीम या तांत्रिक भी उसका इलाज नहीं कर सकता। उसकी सीमाओं के बावजूद, विज्ञान में अटल विश्वास, सभ्यता का सूचक है।

हमें यह भी मालूम होना चाहिए कि विज्ञान के अलावा ज्ञान के और भी क्षेत्र हैं—किसी व्यक्ति के विचार, व्यवहार, कल्पनाओं, आकांक्षाओं आदि का ज्ञान। यह वास्तव में उसके शरीर और मस्तिष्क के वैज्ञानिक अध्ययन पर ही आधारित होता है। समूहों और आबादियों में मानव व्यवहार का ज्ञान, इसी तरह इतिहास, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था, अन्तर्राष्ट्रीय मामले आदि का ज्ञान, कुछ और क्षेत्र हैं। एक क्षेत्र का ज्ञान दूसरे क्षेत्र के ज्ञान को प्रभावित करता है। अर्थशास्त्र और अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, विज्ञान और प्रौद्योगिकी को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। इसी तथ्य के कारण एक वैज्ञानिक को विज्ञान के किसी क्षेत्र में विशेषज्ञ होने के साथ-साथ नागरिक होने के नाते अन्य क्षेत्रों जैसे कि समाज विज्ञान, अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र के बारे में भी ज्ञान अर्जित करना चाहिए।

ज्ञान के आयाम विविध और व्यापक हैं और उन्हें समन्वित करके एक दर्शन, विचारधारा या दृष्टिकोण विकसित करने की आवश्यकता है। विज्ञान के सदुपयोग से उन करोड़ों लोगों की समस्याओं का हल खोजा जा सकता है, जो विकसित देशों की पुरानी बस्तियों में रह रहे हैं और कुपोषण, बीमारी, पीने के पानी की कमी, और सफाई की कमी के शिकार हैं, यहाँ तक कि जिनके सिर पर धूप और बारिश से बचने के लिए छत भी नहीं है। लेकिन इसके लिए वैज्ञानिकों में सामाजिक चेतना और प्रगति के लिए परिवर्तन करने की इच्छा का होना आवश्यक है।

कुछ लोगों का मत है कि विज्ञान को 'अध्यात्म' से जोड़ना आवश्यक है। यदि अध्यात्म का अर्थ अच्छे और बुरे, झूठ और सच, सामाजिक न्याय या मात्र लाभ की इच्छा, भ्रष्टाचार और ईमानदारी में फर्क करना है तो इस बात की कोई अवहेलना नहीं कर सकता। परन्तु यदि अध्यात्म का ताप्पर्य अंधविश्वास और रूढ़ियों को मानना या दैवी शक्ति पर विश्वास करना है तो उनका यह कथन निश्चय ही गलत है। विज्ञान अब हमारे जीवन का अटूट हिस्सा बन चुका है और पूर्वाग्रह, अज्ञान और अंधविश्वासों के खिलाफ संघर्ष से हमारे वैज्ञानिक दृष्टिकोण में भी काफी बदलाव आया है।

8.7 सारांश

- इस इकाई में हमने विज्ञान के कुछ पहलुओं की चर्चा की है हमने पाया कि विज्ञान वस्तुपरक है, गतिमान है, परिवर्तनशील है, हठधर्मिता से परे है और कभी पूरा नहीं होता।
- हमनें आपको वैज्ञानिक पद्धति और उसके विभिन्न चरणों जैसे वस्तुपरक प्रेक्षण करना, परिकल्पना बनाना, प्रयोग करना, परिकल्पनाओं की जाँच और सुधार आदि का ब्यौरा दिया है।
- हमने यह भी पढ़ा कि दैनिक जीवन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण कैसे कारगर होता है और इसके उपयोग से हम अपनी सामाजिक और व्यक्तिगत समस्याएँ कैसे सुलझा सकते हैं।

8.8 अंत में कुछ प्रश्न

1) इस चित्र को ध्यान से देखें और दिये गये स्थान में प्रश्नों का उत्तर दें।

i) चित्र 8.9 में केक का कटा हुआ भाग कहाँ है?.....

.....

.....

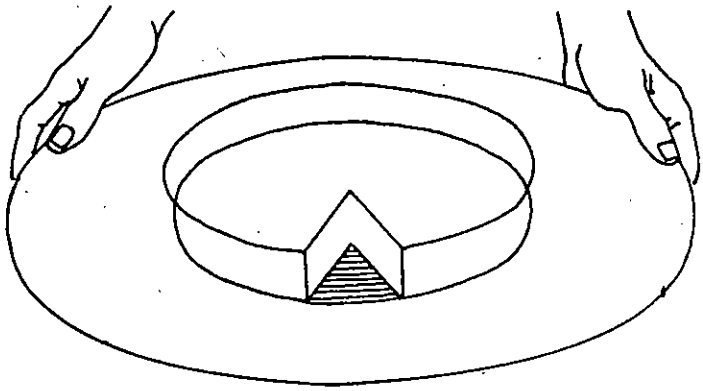

चित्र 8.9 केक का ग़ायब टुकड़ा

ii) चित्र 8.10 में मनुष्य को घोल का स्वाद कैसा लगेगा?.....

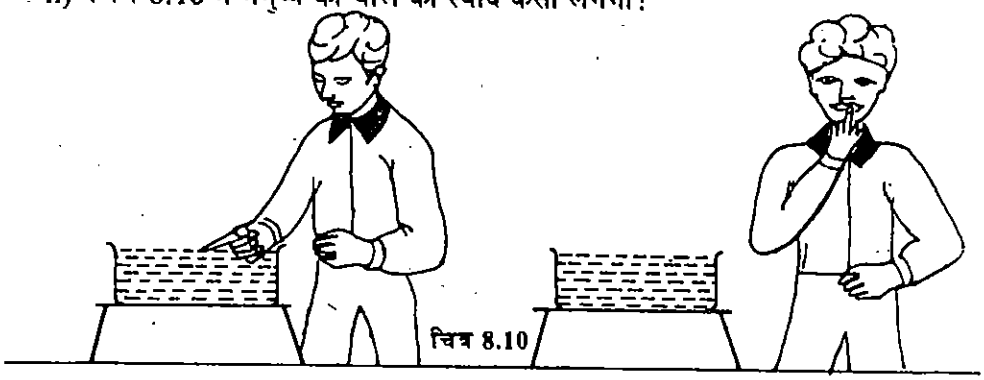

चित्र 8.10

.....

.....

iii) चित्र 8.11 में कौन सी दूरी अधिक है, AB या AC?.....

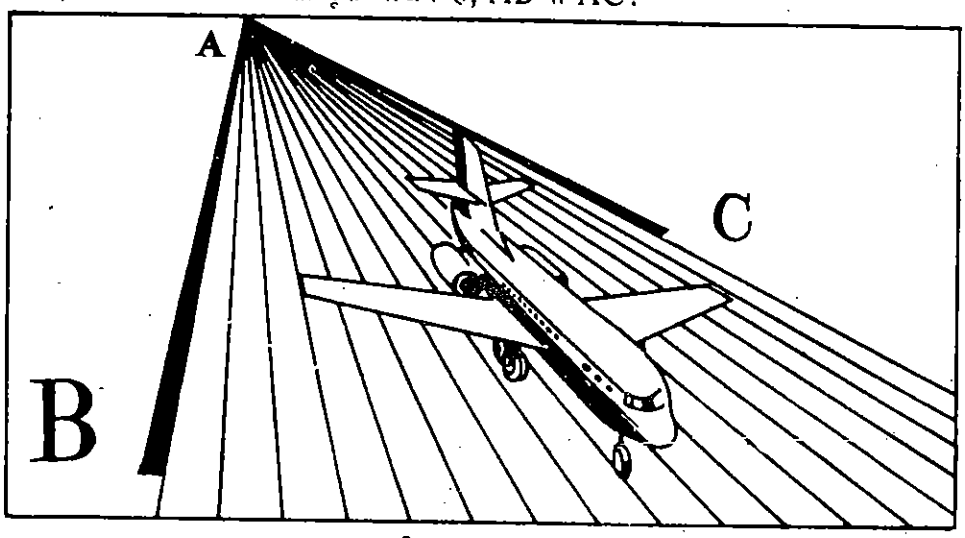

चित्र 8.11

.....

.....

iv) दिये गये चित्र 8.12 में (क) और (ख) परिस्थितियों में , बीज के उगने में क्या अन्तर है?

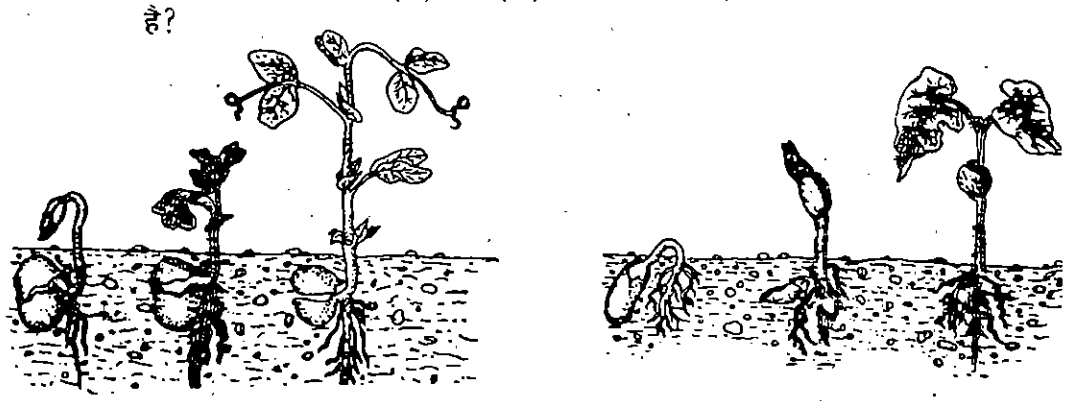

(क) (ख)

चित्र 8.12

.....

.....

2) दिये हुए स्थान में नीचे दिये गये प्रेक्षणों पर आधारित कम से कम एक परिकल्पना का वर्णन कीजिए।

i) कुछ पौधों को बंद अन्धेरे कमरे में रखा गया तो वे कुछ दिन में सड़कर मर गये।

.....

.....

.....

ii) धान उगाने वाले क्षेत्र में कुछ वर्षों के दौरान किये अध्ययन में देखा गया कि जुलाई-अगस्त के महीनों में जब धान की बुआई पूरे ज़ोर पर रहती है उस समय शिशु मृत्यु दर सर्वाधिक होती है। इस अवधि में 40 प्रतिशत या तो मृत शिशु पैदा हुए या पैदा होने के एक माह के अन्दर ही मर गये।

.....

.....

.....

iii) विभिन्न परिस्थितियों में रहने वाले गिरगिटों और पतंगों के रंग अलग-अलग देखे गये हैं।

.....

.....

.....

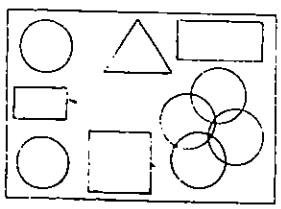

चित्र 8.13

3) i) इस परिकल्पना को परखें कि चित्र 8.13 में सब वृत्त निचले दाहिने कोने में है। अपने परिणाम को लिखें।

.....

.....

.....

ii) इस परिकल्पना को परखने की विधि सुझाइए कि अशिक्षित माताओं के उन माताओं की तुलना में जो स्नातक होती हैं, अधिक बच्चे होते हैं।

....

....

....

4) दिये हुए स्थान में नीचे दिये प्रयोगों से प्राप्त परिणाम लिखें।

i) किसी सफेद फूल की डंठल को दो भागों में बाँटा जाता है। डंठल का आधा भाग लाल रंग के पानी वाले गिलास और दूसरा आधा भाग साफ पानी वाले गिलास में रखा जाता है। चित्र 8.14 के अनुसार रखने पर कुछ घंटे बाद फूल का आधा भाग लाल हो जाता है।

.....

.....

.....

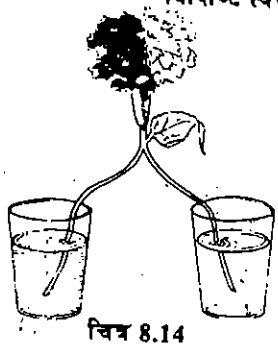

चित्र 8.14

ii) चूहों के एक समूह को निमोनिया फैलने वाले जीवाणु (बैक्टीरिया) के सीरम का टीका लगाया गया तो वे कुछ दिन बाद मर गये। उस सीरम को दुबारा उबालकर फिर से चूहों के एक अन्य समूह पर आजमाया गया; इस समय एक भी चूहा नहीं मरा (चित्र 8.15 देखें)।

.....

.....

.....

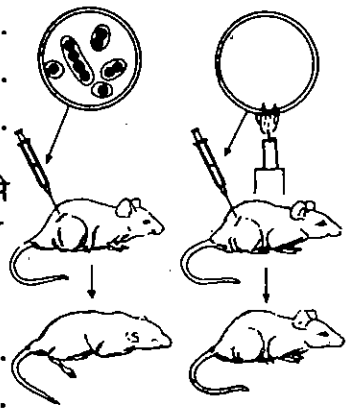

चित्र 8.15

iii) तेल में पकाई सब्ज़ी से यदि हल्दी का दाग कपड़े पर पड़ा हो तो उसको सिर्फ पानी से धो कर सुखाने पर दाग बना रहता है। यदि उस कपड़े को किसी डिटरजेंट साबुन से धो कर छाया में सुखाया जाये तो दाग जाता नहीं, परन्तु तेज़ धूप में सुखाने पर दाग उड़ जाता है।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

8.9 उत्तर

बोध प्रश्न

1) i) सही ii) ग़लत iii) सही iv)ग़लत v) ग़लत
2) i) प्रेक्षण ii) सिद्धांत iii) परिणामों का विश्लेषण iv) प्रश्न और परिकल्पना v) प्रयोग
3) i) × ii) वस्तुपरक और परिवर्तनशील iii) × iv) वस्तुपरक v) अपूर्ण, परिवर्तनशील
4) क) i) अ ii) वै
   ख) i) अ ii) अ iii) वै
   ग) i) अ ii) अ iii) वै iv) अ

अंत में कुछ प्रश्न

1) i) चित्र को उलट कर देखें।
   ii) यह आदमी नहीं बता सकता क्योंकि उसने घोल में डुबोई अंगुली को चखा नहीं;
   iii) दोनों बराबर हैं। आपको नापने पर पता चल जायेगा।
   iv) क) उसमें बीजपत्र मिट्टी के नीचे रहते है; और
   ख) बीजपत्र मिट्टी के ऊपर आ गये हैं।

किसी सफेद फूल की डंठल को दो भागों में बाँटा जाता है। डंठल का आधा भाग होनी चाहिए।

2) i) क) पौधों को उगने के लिए प्रकाश की आवश्यकता होती है।
   ii) क) गर्भवती माताएँ कुपोषित हो सकती हैं।
   ख) माताएँ घुटने मोड़कर और कमर झुका कर धान की रोपाई करती हैं जिसका उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है।
   iii) क) अपने शत्रुओं से रक्षा के लिये गिरगिट और पंतंगे अपने को वातावरण के अनुसार ढाल लेते हैं।
   ख) वातावरण का गिरगिटों और पंतंगों पर प्रभाव पड़ता है।

3) i) अन्य किसी जगह के बजाय नीचे दाहिने कोने में ज़्यादा वृत्त हैं।
   ii) किसी परिणाम पर पहुँचने के लिए भिन्न सामाजिक-आर्थिक समुदाय तथा भिन्न धर्म और जाति की स्नातक और अशिक्षित माताओं के बहुत बड़े समूह लिए जाने चाहिए और उनके बच्चों की संख्या ज्ञात करनी चाहिए। आप इस उत्तर को और आगे बढ़ा सकते हैं।

4) i) गिलास का पानी तनों से होकर फूल की पंखुड़ियों में जाता है।
   ii) सीरम उबालने से निमोनिया के जीवाणु पूरी तरह मर जाते हैं।
   iii) डिटरजेंट साबुन में तेल घुल जाता है। सूर्य की तेज़ रोशनी से कपड़े का धब्बा उड़ जाता है।

शब्दावली

अंतरिक्ष अनुसंधान : सितारों, ग्रहों और उपग्रहों अर्थात् समस्त ब्रह्मांड से संबंधित शोध कार्य।

अमलगमन : पारे के साथ किसी धातु का मिश्रण बनाना।

अक्षांश : भूमध्यरेखा से उत्तर या दक्षिण की ओर किसी बिंदु तक की कोणीय दूरी।

आर्द्रता : हवा में पाये जाने वाली नमी।

आविष्कार : कोई अज्ञात बात खोज निकालना; नयी चीज़ बनाना।

आसवीकरण/आसवन : किसी द्रव को ऊष्मा द्वारा वाष्प में बदलने के बाद वाष्प को फिर ठंडा करके द्रव के रूप में प्राप्त करने की क्रिया को आसवीकरण या आसवन कहते हैं।

ऊर्ध्व गति : पृथ्वी के लंबवर्त दिशा में किसी वस्तु की गति।

एटलस : मानचित्रावली।

एस्ट्रोलेब (उन्नतांशमापी) : सूर्य एवं अन्य ग्रहों की ऊँचाई इत्यादि नापने का यंत्र।

क्वाड्रैंट : ऊँचाई नापने का उपकरण।

कलापट्टी : तख्तों के बीच की संधि को जोड़ना और उनमें जलसह पदार्थ भरकर जहाज़ को जलसह बना देना।

कलमबन्ध : ऐसी क्रिया जिसमें किसी पेड़ या पौधे की टहनी को काट कर दूसरे पेड़ के तने में लगाकर नया पेड़ तैयार किया जाता है।

क्षितिजीय गति : पृथ्वी के समानांतर किसी वस्तु की गति।

कीमियागर : मध्ययुगीन लोग जिनका मुख्य उद्देश्य किसी भी साधारण धातु को सोने में बदलने की प्रक्रिया की खोज करना था।

कैश क्रॉप : नकदी फ़सल जैसे कॉफी, चाय, मसाले इत्यादि।

कोशिका : जीवन की सबसे छोटी इकाई; सभी जीव-जंतु कोशिकीय इकाइयों से बने हैं।

क्रोमोसोम : जीवित कोशिका के नाभिक में धागों के आकार की संरचना जो कई जीन्स से मिल कर बनी है।

कृषिदास : ऐसा व्यक्ति जो अपने मालिक की इच्छानुसार कार्य करता था और वह मुख्यतः खेती का काम करता था।

गुरुत्वाकर्षण : किन्हीं दो वस्तुओं के बीच का आपसी आकर्षण बल, इसी बल के कारण पृथ्वी किसी वस्तु को अपनी ओर खींचती हैं।
चकमक पत्थर : एक तरह का पत्थर जिस पर आघात करने से आग निकलती है। (दियासलाई के आविष्कार के पहले इसी से आग जलाई जाती थी)।
जीन : क्रोमोसोम की इकाई जो किसी व्यक्ति के वंशानुगत गुणों को नियंत्रित करती है।
जीवाणु : सूक्ष्म जीव जो हवा, पानी और मिट्टी में तथा मृत या जीवित रूप में पौधों और अन्य जीवों में मौजूद रहते हैं। कुछ तरह के जीवाणु लाभदायक होते हैं जबकि कुछ जीवाणु रोगों का कारण बनते हैं।
टेलीस्कोप : एक ऐसा उपकरण जिसमें लेंस या दर्पण या दोनों के इस्तेमाल से दूर की वस्तु का प्रतिरूप पास और बड़े आकार का दिखता है।
डायो-आप्टिक्स : प्रकाश के एक माध्यम से दूसरे माध्यम में जाने से संबंधित अध्ययन को डायो-आप्टिक्स कहते हैं।
देशांतर : किसी बिन्दु का देशांतर कोण वह कोण होता है जो उस बिंदु और भौगोलिक ध्रुवों से गुजरने वाली याम्योत्तर रेखा और मानक याम्योत्तर रेखा (जिसका केन्द्र प्रायः ग्रीनविच माना जाता है) के बीच बनता है।
द्रवयांत्रिकी : विज्ञान की वह शाखा जो पानी और अन्य द्रवों के प्रायोगिक इस्तेमाल से संबंधित है।
पनचक्की : पानी से चलने वाली चक्की।
पर्यावरण : किसी समाज या व्यक्ति के आसपास का वातावरण जो प्राकृतिक और सामाजिक परिस्थितियों से मिलकर बनता है।
परमाणु ऊर्जा : परमाणुओं के विखंडन से प्राप्त ऊर्जा।
पूँजीवाद : वह व्यवस्था जिसमें धनियों का वर्ग उत्पादन के साधन पर अधिकार कर श्रमिकों का शोषण करता है।
प्रकाश-प्रकीर्णन : प्रकाश का फैलना।
प्रक्षेपास्त्र : यंत्र चलित रॉकेट जिसमें विस्फोटक हथियार लगा होता है और जो हवा में या पृथ्वी पर स्थित निशानों पर वार कर सकता है।
पाइराइट : तांबे और लोहे के सल्फाइड।
प्रायद्वीप : स्थल का वह भाग जो तीन ओर पानी से घिरा हो और एक ओर स्थल से लगा हो।
मंदाकिनी : ब्रह्मांड में स्थित सितारों के बड़े समूह जिनमें गैस और धूल के बादल होते हैं।
बैरोमीटर : वायुमंडल के दाब को नापने का यंत्र। इसमें मौसम की जानकारी भी पाई जा सकती है।
मिशनरी : वह व्यक्ति जो किसी धर्म विशेष का प्रचार व प्रसार करता है।
लेथ : वह मशीन जिससे चीज़ों को काटकर आकार दिया जाता है।
वेधशाला : ऐसी प्रयोगशाला जहाँ से सूर्य, चाँद, सितारों, ग्रहों और नक्षत्रों को बेहतर तरीके से देखा जा सकता है और उनके बारे में अध्ययन किया जाता है।
सूक्ष्मदर्शी : वह उपकरण जिसकी सहायता से सूक्ष्म वस्तुएँ देखी जा सकती हैं।
सौरमंडल : सूर्य और उसके चारों ओर घूमने वाले ग्रह मिलकर सौरमंडल कहलाते हैं।
त्रिकोणमिती : गणित की वह शाखा जिसमें किसी त्रिकोण के कोणों और भुजाओं का अध्ययन किया जाता है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

मध्यकालीन भारत, भाग-1 कक्षा XI-XII के लिए पाठ्य पुस्तक, सतीश चन्द्र, एन.सी.ई.आर.टी. 1986

मध्यकालीन भारत, भाग-2 कक्षा XI-XII के लिए पाठ्य पुस्तक, सतीश चन्द्र, एन.सी.ई.आर.टी. 1986

सभ्यता की कहानी, भाग-1 कक्षा IX-X के लिए, अर्जुन देव, एन.सी.ई.आर.टी. 1986

सभ्यता की कहानी, भाग-2 कक्षा X के लिए, अर्जुन देव, एन.सी.ई.आर.टी. 1986

Notes

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGFST - 01
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में आधार पाठ्यक्रम

खंड
3
ब्रह्मांड और सृष्टि : प्रारंभ

इकाई 9
ब्रह्मांड का स्वरूप 5

इकाई 10
ब्रह्मांड की खोज 23

इकाई 11
सौर मंडल 40

इकाई 12
जीवन की उत्पत्ति और विकास 60

इकाई 13
मानव का विकास 74

खंड 3 ब्रह्मांड और सृष्टि : प्रारंभ

खंड 1 और 2 में आपने विज्ञान के इतिहास और आधुनिक विज्ञान के उद्भव के बारे में संक्षेप में पढ़ा। इकाई 8 में आपको वैज्ञानिक पद्धति और विज्ञान के विशिष्ट स्वरूप की संक्षिप्त जानकारी मिली। आप समझ गये होंगे कि हमने समाज में विज्ञान की प्रगति के लिए मुख्य रूप से दो तरह की प्रेरणाओं की चर्चा की है। आपने पढ़ा कि एक ओर मनुष्य की सामान्य जिज्ञासा से और दूसरी ओर मनुष्य की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने की कोशिश से समाज में विज्ञान का विकास होता है। इस खंड में हम कुछ ऐसे प्रश्नों के उत्तर देंगे जिनके बारे में मनुष्य की जिज्ञासा तभी से रही है जब से मानव समाज बने। ये प्रश्न ब्रह्मांड और सृष्टि से संबंधित हैं, जैसे कि ब्रह्मांड किससे बना है, यह कितना बड़ा है, इसकी उत्पत्ति कैसे हुई, जीवन का कैसे प्रारम्भ हुआ है? मनुष्य का विकास कैसे हुआ, हम कहाँ हैं, क्या ब्रह्मांड में हम अकेले हैं, आदि।

पिछले कुछ हजार वर्षों से मनुष्य इन प्रश्नों के उत्तर ढूँढता रहा है, फिर भी इन बातों को बीसवीं सदी में ही ज्यादा समझा जा सका है। ऐसा नयी-नयी वैज्ञानिक खोजों के कारण ही हो सका है, जिनसे ब्रह्मांड के विषय में बहुत-सी जानकारी मिली है। इस जानकारी द्वारा वैज्ञानिकों ने ऊपर दिये गये प्रश्नों के उत्तर को तर्क और विवेक के आधार पर समझने की कोशिश की है। ब्रह्मांड और सृष्टि की, तर्क पर आधारित इसी विवेकपूर्ण समझ को हम इस खंड में प्रस्तुत करेंगे। लेकिन ध्यान रहे कि आज भी इन प्रश्नों का संपूर्ण उत्तर हमारे पास नहीं है और यह काम आसान भी नहीं है। पर इन उत्तरों की खोज में हमें प्रकृति की अनेकानेक पहेलियों के बारे में नयी समझ भी मिलती है। जैसे-जैसे हम इन पहेलियों को बूझते हैं, वैसे-वैसे नये सवाल उठ खड़े होते हैं जिनके उत्तर ढूँढने से हमारी समझ और बढ़ती है।

इस खंड के आरंभ में हम यह बताएँगे कि ब्रह्मांड के बारे में हमारी जानकारी समय के साथ-साथ कैसे बदलती रही और आज हम ब्रह्मांड के बारे में क्या कुछ जानते हैं। यानी ब्रह्मांड का स्वरूप क्या है? वह किन घटकों से मिलकर बना है? आदि। फिर हम ब्रह्मांड की खोज करने के विविध तरीकों और इसकी उत्पत्ति तथा विकास के सिद्धांतों का संक्षिप्त विवरण देंगे। हम सौर मंडल की भी विस्तृत जानकारी देंगे। सौर परिवार में हमारी पृथ्वी अनोखी है क्योंकि केवल इसी ग्रह पर जीवन है।

वास्तव में जीवन ब्रह्मांड का एक हिस्सा है और उससे गहराई से जुड़ा है। जहाँ तक हम जानते हैं, जीवन पदार्थ की वह सबसे अधिक जटिल और सुव्यवस्थित संरचना है जो आज तक ब्रह्मांड में पायी गयी है। पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति एक बहुत ही रोचक घटना है और शायद अनोखी भी। पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति कैसे हुई? इसे समझने के लिए पहले हमें यह समझना होगा कि पृथ्वी की उत्पत्ति कैसे हुई, शुरू-शुरू में यह कैसी थी और समय के साथ इसमें क्या-क्या बदलाव आये। उसके बाद आप पढ़ेंगे कि पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति और विकास कैसे हुआ? अंत में हम यह बताएँगे कि बंदर जैसे स्तनपायी जीवों से मनुष्य का विकास कैसे हुआ।

इस खंड को पढ़ने के बाद आप:

- ब्रह्मांड के स्वरूप, उसकी संरचना और घटकों को समझ सकेंगे;
- ब्रह्मांड की खोज के विभिन्न तरीकों का वर्णन कर सकेंगे और यह बता सकेंगे कि पदार्थ के वर्तमान विविध रूप कैसे विकसित हुए हैं;
- यह बता सकेंगे कि सूर्य, पृथ्वी और अन्य ग्रहों का निर्माण कैसे हुआ;
- पृथ्वी की आरंभिक परिस्थितियों का, इस पर जीवन की उत्पत्ति और उसके विकास का वर्णन कर सकेंगे; और
- मनुष्य के विकास के सिद्धांतों और प्रमाणों के बारे में बता सकेंगे।

इस खंड से संबद्ध 'खगोल विज्ञान और ब्रह्मांड' शीर्षक का वीडियो प्रोग्राम देखकर और 'भारत में खगोलीय विकास' 'अंतरिक्षीय दूरियाँ नापना' तथा 'मानव का विकास' नामक ऑडियो प्रोग्राम सुनकर आप ब्रह्मांड और सृष्टि के बारे में अधिक जानकारी पा सकते हैं। यह ऑडियो तथा वीडियो कैसेट आपके अध्ययन केंद्र में उपलब्ध हैं।

इकाई 9 ब्रह्मांड का स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
9.2 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
प्राचीन भू-केन्द्रीय ब्रह्मांड
कोपर्निकस की क्रांति
सूर्य-केन्द्रीय ब्रह्मांड का निराकरण
9.3 भौतिक ब्रह्मांड
अंतरिक्ष दूरियाँ
सौर मंडल
निशाकाश
आकाश गंगा मंदाकिनी
आकाश गंगा मंदाकिनी से परे
9.4 सारांश
9.5 अंत में कुछ प्रश्न
9.6 उत्तर

9.1 प्रस्तावना

इकाई 8 में आपने वैज्ञानिक पद्धति और विज्ञान के विशिष्ट स्वरूप के बारे में पढ़ा। वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग से हम प्रकृति के कई रहस्यों को सुलझा सके हैं, जिसमें से एक है—ब्रह्मांड की उत्पत्ति और विकास। पिछले कुछ हजार वर्षों में हमने ब्रह्मांड के बारे में कई खोजें की हैं। किंतु, अधिकांश आश्चर्यजनक और अप्रत्याशित खोजें हाल ही में, बीसवीं सदी में हुई हैं। आधुनिक विज्ञान ने हमारे सामने एक विस्तृत और प्राचीन ब्रह्मांड की तस्वीर प्रस्तुत की है।

इस इकाई में हम यह समझेंगे कि ब्रह्मांड के बारे में हमारी जानकारी समय के साथ-साथ कैसे बढ़ी और ब्रह्मांड के बारे में हम अब क्या कुछ जानते हैं। संक्षेप में हम यह भी बताएँगे कि भौतिक ब्रह्मांड यानि ब्रह्मांड के घटकों के बारे में नयी जानकारी क्या है। ब्रह्मांड के बारे में हम आज जो कुछ भी जानते हैं, वह विज्ञान द्वारा दिये गये विविध तरीकों से ही संभव हो सका है। इन तरीकों में प्रकाश, ऊष्मा तथा अंतरिक्ष से आने वाली अन्य विकिरणों का विश्लेषण और मानव तथा अंतरिक्ष यानों द्वारा अंतरिक्ष की यात्रा शामिल है। इकाई 10 में हम बताएँगे कि आजकल ब्रह्मांड की खोज के लिए कौन-कौन की विधियाँ अपनायी जाती हैं तथा ब्रह्मांड के बारे में हमारे वर्तमान विचार और संकल्पनाएँ क्या हैं।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- यह वर्णन कर सकेंगे कि ब्रह्मांड के बारे में मनुष्य का ज्ञान प्रागैतिहासिक काल से आधुनिक काल तक समय के साथ कैसे बदला है;
- उन प्रमुख प्रेक्षणों का वर्णन कर सकेंगे जिनके कारण इतिहास के विभिन्न कालों में ब्रह्मांड के बारे में प्रचलित धारणाएँ बिल्कुल बदल गयीं;
- उन घटकों का वर्णन कर सकेंगे जिनसे मिलकर ब्रह्मांड बना है; और
- अपनी मंदाकिनी, आकाश गंगा की कुछ विशेषताओं को बता सकेंगे।

9.2 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

आप इकाई 2 से 6 तक संक्षेप में पढ़ चुके हैं कि ब्रह्मांड के बारे में हमारे पूर्वजों के क्या विचार थे। आप जानते हैं कि आदि मानव का जीवन शिकार और भोजन इकट्ठा करने पर निर्भर था। तरह-तरह के फल, कंद, मूल और जानवर आदि अलग-अलग मौसम में मिलते थे तथा मौसम,

कुछ तारे सूर्य से कुछ समय पूर्व उदय होते हैं या सूर्य के कुछ समय पश्चात् अस्त हो जाते हैं। इनकी समय और स्थिति मौसम के अनुसार बदलती रहती है। यदि कोई कुछ वर्षों तक ध्यानपूर्वक तारों के प्रेक्षण करे और उन्हें रिकार्ड करे तो वह मौसम के बारे में भविष्यवाणी कर सकता है। क्षितिज पर प्रतिदिन सूर्य कहाँ उगता है, यह देखकर जाना जा सकता था कि साल का कौन-सा महीना चल रहा है। इस प्रकार हर उस व्यक्ति के लिए आकाश में एक महत्वपूर्ण कैलेंडर उपलब्ध था जो उसे पढ़ने में रुचि रखता था।

सूर्य और तारों की बदलती गति के साथ-साथ बदलते थे। एक तरह से सूर्य की गति से मौसम, खाद्य पदार्थों और पृथ्वी की ऊष्मा का नियंत्रण होता था। इसी तरह चंद्रमा की गति से ज्वार-भाटा उठता था और कई जानवरों के जीवन-चक्र नियंत्रित होते थे। अतः यह स्वाभाविक था कि आदि मानव सूर्य के निकलने और डूबने, अमावस्या के बाद फिर से नवचंद्र के निकलने और उसके घटने-बढ़ने पर ध्यान देते। क्योंकि जितनी अच्छी तरह वे सूर्य, चंद्रमा और तारों की स्थिति एवं गति को जान पाते उतनी ही अच्छी तरह से यह बता सकते थे कि शिकार के लिए उपयुक्त समय क्या है, लोगों को कब एकत्र किया जाना चाहिए और कब गर्म इलाकों की ओर प्रस्थान किया जाना चाहिए। यानी उनका जीवन काफी हद तक इस बात पर निर्भर था कि वे आकाश में बना कैलेंडर कितनी अच्छी तरह पढ़ सकते थे (पढ़िए, हाशिये की टिप्पणी)।

आदि मानव ऐसा करते थे, इस बात का सबसे प्राचीन प्रमाण है--लगभग 30,000 साल पुरानी कुछ हड्डियाँ, जिन पर चंद्रमा की विभिन्न अवस्थाओं के चित्र बने हैं। फिर भी, आदि मानव की दुनिया बहुत सीमित थी। उनका ब्रह्मांड भूमि का एक छोटा-सा टुकड़ा था, जो संभवतः नदियों,दूरवर्ती पहाड़ियों या नीले सागर से घिरा रहा हो। ऊपर नीला आकाश था जिस पर प्रकाश और ऊष्मा देने वाला देवता सूर्य और मंद रोशनी देने वाला एक छोटा देवता चंद्रमा, सवारी करते थे। चंद्रमा के साथ-साथ अनगिनत चमकीले तारे रात को आसमान की सवारी करते थे। इस छोटे-से ब्रह्मांड के बाहर आदि मानव के लिए सभी कुछ रहस्यमय था।

कृषि के आविष्कार से फसलों को सही मौसम में बोने और काटने की ज़रूरत पड़ी। जैसा कि आप इकाई 2 में पढ़ा चुके हैं कि 2500 ई. पू. से बहुत पहले बेबीलोन और मिस्र के लोगों ने सूर्य, चंद्रमा और तारों की निरंतर गति पर आधारित काफी हद तक सही कैलेंडर बना लिये थे। समय के साथ-साथ मनुष्य का बौद्धिक विकास हुआ। 600 से 400 ई.पू. के दौरान मनुष्य के विचारों में क्रांतिकारी बदलाव आया। विश्व भर के कई समाजों में दार्शनिकों ने ब्रह्मांड को बिना देवताओं के हस्तक्षेप से चलने वाली दुनिया के रूप में समझने की कोशिश की। उन्होंने अपने चारों ओर की दुनिया को देखा और अपने प्रश्नों के तर्कसंगत उत्तर खोजने के प्रयत्न किये। उन्होंने तर्क और विवेक के आधार पर यह समझने की कोशिश की कि सूर्य अलग-अलग जगह से क्यों निकलता है, चंद्रमा के आकार क्यों बदलते हैं, कुछ तारे, जिन्हें बाद में ग्रह कहा गया, अन्य तारों के बीच घूमते हुए क्यों दिखते हैं, क्या इन सब बातों का मनुष्य के लिए कोई महत्व है। पर उनके पास प्रेक्षणों और परीक्षणों के साधन बहुत कम थे। इस वजह से ब्रह्मांड के बारे में उनके सिद्धांत काफी समय तक भूकेंद्रित व्यवस्था से आगे प्रगति नहीं कर पाये। आइए, देखें कि ब्रह्मांड के स्वरूप के बारे में प्राचीन विचार किस प्रकार के थे।

9.2.1 प्राचीन भू-केन्द्रीय ब्रह्मांड

ब्रह्मांड के बारे में मिश्रवासियों और सुमेरिया के लोगों के प्रारंभिक विचार हमें अजीब लग सकते हैं। उनके लिए पृथ्वी चपटी और ठोस थी। मिश्र द्वारा दिये गये ब्रह्मांड के स्वरूप को इकाई 2 के चित्र 2.21 में दिखाया गया है। इसी प्रकार सुमेरियावासियों का ब्रह्मांड था--एक चपटी पृथ्वी जो टिन के बने आसमान से ढकी हुई थी। इन दोनों के बीच चमकते हुए सूर्य, चंद्रमा, ग्रह और तारे थे, जिन पर देवताओं का नियंत्रण था। उनके लिए ब्रह्मांड में प्रमुख स्थान पृथ्वी का था। वास्तव में उनके पास इसके अलावा सोचने का कोई कारण भी नहीं था। उन्होंने सूर्य, चंद्रमा, ग्रहों और तारों को उसी तरह का समझा जिस तरह के वे उन्हें दिखाई पड़े।

पृथ्वी गोल है

चपटी पृथ्वी की धारणा का त्याग यूनानियों ने किया। सबसे पहले 600 वर्ष ई.पू. दार्शनिक थेल्स ने सोचा कि पृथ्वी गोल है। पायथागोरस और उसके अनुयायी भी इस बात को मानते थे। उन्होंने तर्क दिया कि पृथ्वी गोल होगी क्योंकि क्षितिज में जहाज समुद्र में डूबते हुए दिखाई पड़ते थे (देखिए चित्र 9.1) या फिर, चंद्रग्रहण के दौरान चंद्रमा पर पृथ्वी की गोल छाया पड़ती थी।

बोध प्रश्न 1

दिये गये स्थान में संक्षिप्त उत्तर दें।

क) प्राचीन काल के खगोलीय प्रेक्षणों की दैनिक जीवन में क्या उपयोगिता थी?

.....

ख) पायथागोरस और उसके अनुयायियों ने किन प्रेक्षणों के आधार पर बताया कि पृथ्वी गोल है?

.....

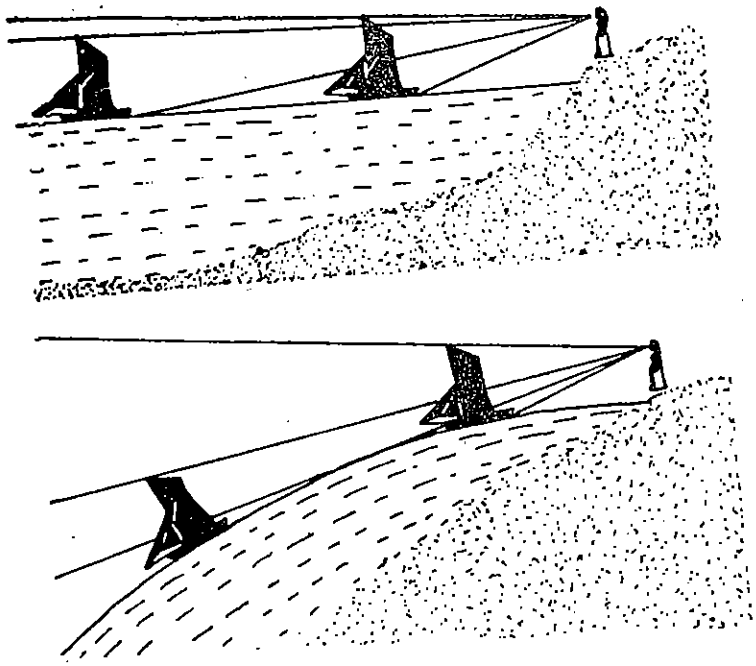

(क)

(ख)

चित्र 9.1 पृथ्वी चपटी नहीं है। (क) यदि पृथ्वी चपटी होती तो दूर जाता जहाज डूबता हुआ दिखायी न पड़ता, सिर्फ दूरी के कारण धुँधला हो जाता; (ख) वास्तव में दूर जाता जहाज क्षितिज में डूबता हुआ दिखाई देता है।

यूनानी खगोलशास्त्रियों ने तारों और तारा मंडलों के भी नक्शे बनाये और तारों की चमक का अनुमान लगाया। उन्होंने ग्रहों की गति का प्रेक्षण किया जो तारों के बीच घूमते दिखाई देते थे। इनमें से कुछ ग्रह जैसे मंगल कभी-कभी पीछे की ओर गति करते हुए दिखाई देते थे। उनके सामने एक समस्या यह भी कि वे पृथ्वी से दूर आकाश में दिखने वाले ग्रहों की वास्तविक गति को कैसे जाने जिससे उन ग्रहों की पृथ्वी से दिखने वाली गति को समझा जा सके। इस समस्या को सुलझाने के लिए यूनानियों ने ब्रह्मांड के जो मॉडल बनाये, अब हम उनके बारे में बताएँगे।

यूनानी भाषा में ग्रह शब्द का अर्थ है घुमक्कड़

टॉलमीय निकाय

यूनानियों द्वारा दिये गये ब्रह्मांड के सैद्धांतिक मॉडल का केंद्र पृथ्वी थी—जो अपनी जगह स्थिर थी। पृथ्वी के चारों ओर सूर्य, चंद्रमा तथा अन्य ग्रह गोलाकार कक्षा में घूमते थे। ब्रह्मांड के इस मॉडल में तारे पृष्ठभूमि में स्थिर थे मानो वे किसी मेले में फोटोग्राफर द्वारा पृष्ठभूमि में लटकाये गये पर्दे पर बने हों। किन्तु क्या यह धारणा हमें अत्यंत स्वाभाविक नहीं लगती? पृथ्वी हमें स्थिर, ठोस, और अचल दिखाई देती है जबकि अन्य पिंड आकाश में उदय और अस्त होते दिखते हैं और तारे लगभग स्थिर दिखते हैं।

यूनानियों द्वारा ग्रहों की गति को दिखाने के लिए बनाये गये अधिकांश मॉडल पूर्ण संकेंद्रित गोलों से बने थे। इन मॉडलों के अनुसार प्रत्येक ग्रह एक अदृश्य वृत्त से जुड़ा रहता था जो पृथ्वी के चारों तरफ अन्य वृत्तों से भिन्न गति से घूमता था। शायद आपको इकाई 3 में चित्र 3.12 में दिखाये गये यूडोक्सस के 27 गोलों से बना मॉडल याद होगा।

टॉलमी ने पहले के कई यूनानी खगोलशास्त्रियों की धारणाओं को एकत्रित करके अपने संग्रह एलमाजेस्ट (almagest) में छपवाया। तेरह भागों के इस ग्रंथ में टॉलमी के अपने विचारों के साथ-साथ अरस्तू, अपोलोनियस और हिपारकस जैसे व्यक्तियों के विचार भी शामिल थे। ब्रह्मांड की इस मिली-जुली तस्वीर को टॉलमी निकाय कहते हैं (देखिए इकाई 3 में चित्र 3.14)।

टॉलमी के मॉडल के कुछ अपवाद भी थे। इन सब में सेमोस (Samos) द्वीप के अरिस्टारकस का तर्क उल्लेखनीय है, जिनके अनुसार पृथ्वी एक ग्रह ही है, जो अन्य ग्रहों की तरह सूर्य के चारों ओर एक कक्षा (orbit) में घूमती है। इस धारणा के अनुसार सूर्य ब्रह्मांड का केंद्र है। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि सूर्य पृथ्वी से काफी बड़ा था और तारे बहुत दूर थे। उनकी यह धारणा काफी सही थी। हम यह नहीं जानते कि वह इन नतीजों पर कैसे पहुँचे। जैसे कि आप इकाई 3 में पढ़ चुके हैं, अरस्तू की विचारधारा के अत्यधिक प्रभाव के कारण इन धारणाओं को अस्वीकृत कर दिया गया था।

इकाई 2 से 4 में आप खगोलशास्त्र के क्षेत्र में भारत में हुए समानान्तर विकास के बारे में पढ़ चुके हैं। पाँचवी सदी में जन्में महान भारतीय खगोलशास्त्री आर्यभट्ट के बारे में आप जानते हैं,

जिनका मत था कि पृथ्वी अपने अक्ष के चारों ओर घूमती है। उन्होंने सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण की भी तर्कसंगत व्याख्या की थी। लेकिन उनके विचार उस समय की भारतीय सामाजिक दशा के कारण अधिक समय तक विद्यमान नहीं रह सके।

बोध प्रश्न 2

बताइए कि निम्नलिखित कथन सत्य (स) हैं या असत्य (अ)। अपने उत्तर रिक्त स्थानों में लिखिए।

क) टॉलमी का विश्वास था कि सूर्य स्थिर है। .....

ख) भू-केंद्रीय मॉडल में पृथ्वी केंद्र में स्थिर थी, और अन्य खगोलीय पिंड उसके चारों ओर वृत्ताकार कक्षा में परिक्रमा करते थे। .....

ग) भू-केंद्रीय मॉडल के अनुसार पृथ्वी स्थिर अवस्था में स्थिर थी, सूर्य, चंद्रमा तथा अन्य ग्रह उसके चारों ओर परिक्रमा करते थे और आसमान में तारे अपनी-अपनी जगह स्थिर थे। .....

घ) भू-केंद्रीय मॉडल का एक अपवाद अरिस्टारकस द्वारा दिया गया मॉडल था जिसके केंद्र में सूर्य स्थित था। .....

टॉलमी द्वारा बनाया गया भू-केंद्रीय ब्रह्मांड का मॉडल 1,000 से भी अधिक वर्षों तक मान्य रहा। यूरोप के पुनर्जागरण के साथ वैज्ञानिकों ने प्रेक्षण और प्रयोग का मार्ग अपनाया। पंद्रहवीं सदी के यूरोपीय खगोलशास्त्रियों ने अनेक वेधशालाएँ बनाईं, टॉलमी के उपकरणों में सुधर किया और नये उपकरण बनाए। जैसा कि होना ही था, उनके प्रेक्षण टॉलमी के मॉडल से मेल नहीं खाते थे। जैसे-जैसे ग्रहों की कक्षा से संबंधित प्रेक्षण ज्यादा सही होते गये, टॉलमी का मॉडल ग़लत साबित होने लगा। पुनर्जागरण ने खगोलशास्त्रियों के लिए प्राचीन यूनानी ज्ञान के बहुत बड़े भंडार के द्वारा खोल दिये। पोलैंड के खगोलशास्त्री निकोलस कोपर्निकस ने काफी समय से अपेक्षित उस सिद्धांत पर ध्यान दिया जिसमें सूर्य को ब्रह्मांड का केंद्र माना गया था। अंततः सन् 1943 में उन्होंने ग्रहों की पृथ्वी से दिखने वाली गति को समझाने के लिए एक परिकल्पना दी, जो उस समय प्रचलित टॉलमी के मॉडल से एकदम अलग थी। इस परिकल्पना की सबसे विशिष्ट बात यह थी कि इसमें पृथ्वी को नहीं बल्कि सूर्य को ब्रह्मांड का केंद्र माना गया था।

9.2.2 कोपर्निकस की क्रांति

कोपर्निकस के मॉडल में सूर्य ब्रह्मांड के केंद्र में स्थित था। बुद्ध,शुक्र अपने चंद्रमा सहित पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति और शनि वृत्ताकार कक्षाओं में सूर्य के चारों ओर घूमते थे। इस मॉडल में भी तारे पृष्ठभूमि में एक गोले पर स्थिर माने गये (देखिए चित्र 9.2)। कोपर्निकस का यह भी विश्वास था कि सभी ग्रहों का आकार एक समान था। ग्रहों की गति को समझने में यह मॉडल टॉलमी के मॉडल जितना ही कारगर साबित हुआ। इस मॉडल का टकराव भू-केंद्रित मॉडल से हुआ और यह तब तक सार्वजनिक रूप से नहीं स्वीकारा गया जब तक गैलीलियो तथा केपलर के कार्य ने इसे सही प्रमाणित नहीं कर दिया।

चित्र 9.2 कोपर्निकस का मॉडल

कोपर्निकस का सूर्य केन्द्रित मॉडल गैलीलियों गैलीली के खगोलीय प्रेक्षणों द्वारा प्रमाणित हुआ। सन् 1609 में गैलीलियों ने अपने स्वनिर्मित छोटे व अपूर्ण दूरबीन का रुख आकाश की ओर किया। उनके प्रेक्षणों द्वारा ब्रह्मांड के विषय में हमारे ज्ञान में क्रांतिकारी परिवर्तन आये। चंद रातों में किये गये प्रेक्षणों से गैलीलियों को इतनी जानकारी मिली कि उससे शांत, परिपूर्ण एवं

सुव्यवस्थित विश्व की प्राचीन तस्वीर छिन्न-भिन्न हो गयी। जैसे कि चंद्रमा एक सपूर्ण और चिकना गोला होने के बजाय असमतल तथा पहाड़ियों और घाटियों से युक्त पाया गया। शनि ग्रह तीन भागों में बँटा हुआ दिखाई पड़ा। उन्होंने चार चंद्रमाओं (उपग्रहों) को बृहस्पति ग्रह के चारों ओर घूमते हुए भी देखा। मानो आकाश में कोपर्निकस के मॉडल का एक छोटा नमूना विद्यमान हो। उन्होंने चंद्रमा की तरह शुक्र ग्रह की विभिन्न कलाएँ भी देखीं। शुक्र की इन कलाओं को टॉलमी निकाय द्वारा नहीं समझा जा सकता था। केवल कोपर्निकस मॉडल द्वारा जिसके अनुसार शुक्र पृथ्वी से सुदूर, सूर्य की परिक्रमा करता था, इस तथ्य को समझा जा सका (देखिए चित्र 9.3 ख)।

ब्रह्मांड के सूर्य केंद्रित मॉडल का उस समय विरोध होने के बावजूद ये प्रेक्षण आखिरकार स्वीकार कर लिये गये, जिसके कारण भू-केंद्रीय मॉडल अस्वीकृत कर दिया गया। पर इस संबंध में एक दिलचस्प बात यह है कि आज भी हमारे आम जीवन में भू-केंद्रित धारणाएँ ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। अरिस्टारकस के लगभग 2,200 वर्षों और गैलीलियो के लगभग 400 वर्षों बाद भी हमें आमतौर पर यही लगता है कि जैसे पृथ्वी घूमती नहीं है। उदाहरण के लिए, आज भी हम सूर्योदय और सूर्यास्त की बात करते हैं।

ब्रह्मांड का स्वरूप

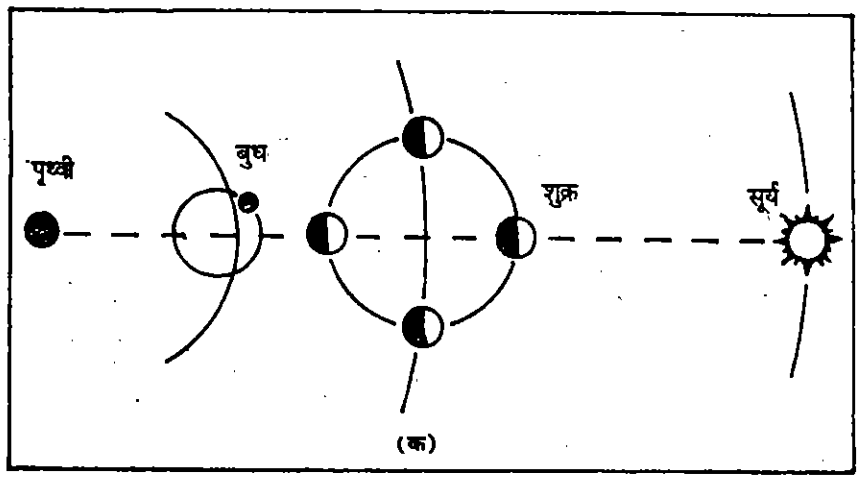

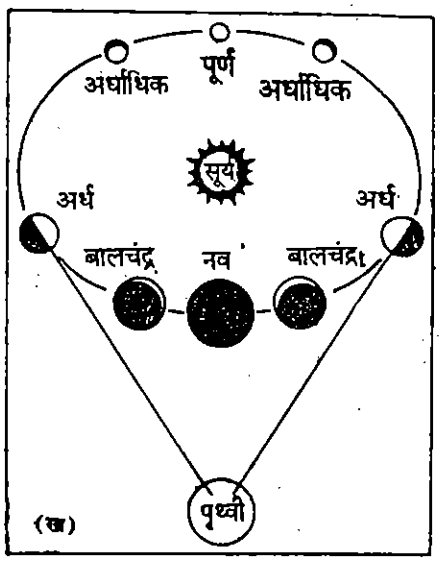

चित्र 9.3 (क) शुक्र की कलाएं टॉलमीय मॉडल द्वारा नहीं समझाई जा सकती।
(ख) शुक्र की कलाएं कोपर्निकस के मॉडल में।

बोध प्रश्न 3

दिये गए स्थान में संक्षिप्त उत्तर लिखें:

क) टॉलमीय मॉडल की अपेक्षा कोपर्निकस का मॉडल ग्रहों की गति का अधिक अच्छे ढंग से वर्णन करने में समर्थ नहीं था। फिर भी, इसे प्रारंभिक सामान्य विरोध के बावजूद क्यों स्वीकार किया गया?

.....

.....

.....

ख) निम्नलिखित में से कौन-से दो प्रेक्षण कोपर्निकस के मॉडल के पक्ष में निर्णयात्मक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं? दिये गये खानों में सही उत्तर के सामने (√) चिह्न लगाएं।

i) सूर्य पूर्व से उदय और पश्चिम से अस्त होता है। ☐
ii) चंद्रमा के समान शुक्र ग्रह की कलाएँ भी दिखती हैं। ☐
iii) शनि ग्रह तीन भागों में बंटा प्रतीत होता है। ☐
iv) अँधेरी किन्तु साफ रात को आकाश में फैली हुई एक सफेद पट्टी देखी जा सकती है। ☐
v) बृहस्पति ग्रह के चारों ओर घूमते हुए चार उपग्रह दिखायी देते हैं। ☐

ग्रहों की गति के संबंध में केपलर के नियम

गैलीलियों के प्रेक्षणों के साथ-साथ सूर्य केंद्रीय मॉडल को लगभग उसी समय किये गये योहान केपलर (Johannes Kepler) के कार्य से भी मान्यता मिली। केपलर जर्मनी के एक खगोलशास्त्री थे, जिन्होंने ग्रहों की गति के सभी प्रेक्षणों को समझा सकने वाले एक मॉडल को बनाने की कोशिश की। उस समय पृथ्वी से दिखने वाली ग्रहों की स्थितियों के सबसे सही प्रेक्षण टाइको ब्राहे (Tycho Brahe) ने किये थे (चित्र 9.4)।

(क)

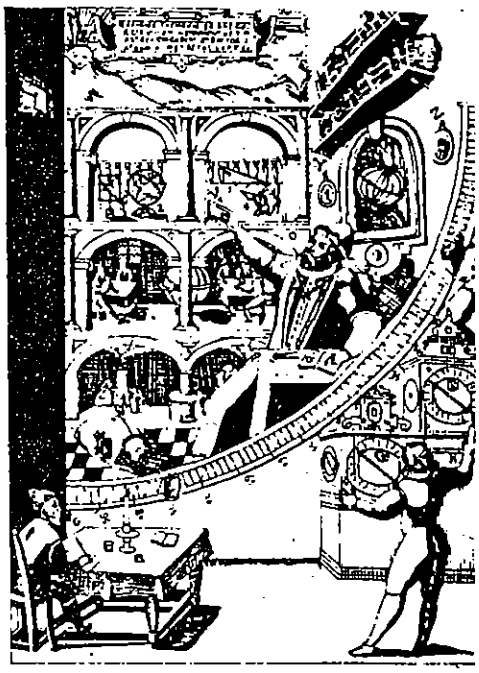

(ख)

चित्र 9 : 4 (क) टाइको ब्राहे; डेनमार्क के उरानीबोर्ग शहर में ब्राहे की वेधशाला में पश्चिमी दीवार में पीतल का विशाल चतुर्थांश के आकार का उद्पकरण (quadrant) स्थित था, जिसके सामने थी दक्षिण की ओर खुलने वाली एक खिड़की। पश्चिमी दीवार में रिक्त स्थान में ब्राहे, उनके कुत्ते और यंत्रों के चित्र बने थे। इस चित्र में, दाहिनी ओर खड़ा एक प्रेक्षक F पर बने छिद्र द्वारा तारे को देख रहा है।

टाइको ने केपलर को अपने साथ काम करने के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने केपलर से मंगल ग्रह का अध्ययन करने को कहा क्योंकि इसकी गति बहुत अनियमित लगती थी और अभी तक के किसी मॉडल द्वारा उसे नहीं समझा जा सका था। दूसरी बात यह थी कि कोपर्निकस के मॉडल के अनुसार ग्रहों की गति हर समय समान रहनी चाहिए। किंतु केपलर ने पाया कि ग्रहों की गति सूर्य से उनकी दूरी के अनुसार बदलती है। कई वर्षों की मेहनत के बाद उन्होंने पाया कि मंगल ग्रह की गति को सिर्फ तभी एकदम सही तरीके से समझा जा सकता था जब यह माना जाये कि वह एक दीर्घ वृत्ताकार कक्षा में सूर्य के चारों ओर घूमता था और सूर्य उसके केंद्रों में से एक था। इस प्रकार वृत्ताकार कक्षा का विचार त्याग दिया गया। अंततः केपलर, ब्राहे के तमाम प्रेक्षणों को ग्रहों की गति के तीन सरल नियमों द्वारा अभिव्यक्त करने में सफल हुए (देखिए चित्र 9.5)। आप इनके बारे में इकाई 8 के भाग 8.3.4 में पढ़ चुके हैं।

इस प्रकार केपलर के नियमों द्वारा सूर्य केंद्रित मॉडल पर लगे इस मुख्य आरोप का खंडन हुआ कि यह मॉडल, ग्रहों के प्रेक्षित मार्ग की सही-सही व्याख्या नहीं कर सकता। इन नियमों ने पायथागोरस और प्लेटो के इस दृष्टिकोण को भी नाकारा जिसके अनुसार ब्रह्मांड में केवल-वृत्ताकार गति ही संभव थी और जिसे बाद में कोपर्निकस ने भी बनाये रखा था। सत्रहवीं सदी के अंत तक ब्रह्मांड का सूर्य केंद्रित मॉडल सामान्य रूप से स्वीकार कर लिया गया। यह बात काफ़ी दिलचस्प है कि पृथ्वी के सूर्य के चारों ओर घूमने का प्रत्यक्ष प्रमाण उस समय मिला जब उसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि तब तक प्रायः सभी लोग यह बात मान चुके थे। आइए देखें कि ये प्रमाण क्या थे।

(क)

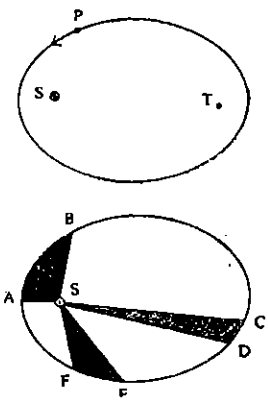

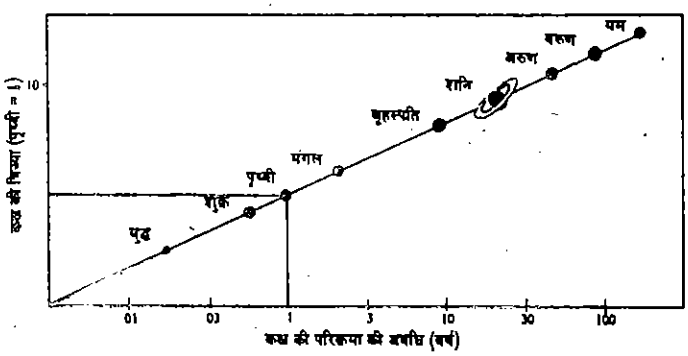

(ख)

चित्र 9.5 (क) योहान केपलर (ख) केपलर के ग्रहों की गति के नियम।

तारकीय लंबन (stellar parallax)

चित्र 9.6 को ध्यान से देखें। यदि पृथ्वी स्थिर हो तो पृथ्वी की स्थिति A, निकटवर्ती तारे C और किसी दिये गये दूरवर्ती तारे को मिलाने वाली रेखा कभी भी नहीं बदलेगी। किंतु, यदि अंतरिक्ष में पृथ्वी की स्थिति बदल जाए और यह A से B तक घूम जाए तो यह रेखा भी बदल जाएगी। इस प्रकार, अधिक दूरी वाले तारों की पृष्ठभूमि में निकटवर्ती तारा C_1 से C_2 की स्थिति में जाता हुआ नजर आएगा क्योंकि पृथ्वी A से B तक पहुँच चुकी होगी। दूरवर्ती तारों की पृष्ठभूमि में निकटवर्ती तारों की इस बदली स्थिति को तारकीय लंबन कहा जाता है। यह परिवर्तन एक निश्चित समय के अंतर पर बार-बार दिखाई देता है। कोई भी निकटवर्ती तारा साल भर में पहले एक ओर चलता दिखाई देता है और फिर उसी रास्ते वापस चलता हुआ दिखता है। यह निश्चित रूप से इसी कारण होता है कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है।

तारे की स्थिति में इस बदलाव का मान बहुत कम, लगभग वृत्तांश के एक विकला (second of an arc) से भी कम होता है। तारकीय लंबन को सबसे पहले सन् 1838 में जर्मनी के एक खगोलशास्त्री फ्रेड्रिक बेसल (Friedrich Bessel) ने मापा। दूरवर्ती तारों के मुकाबले में निकटवर्ती तारे सूर्य की स्थिति में प्रतिदिन लगभग 1° का बदलाव देखा गया है।

वृत्तांश का एक विकला एक कोण के 1/3600 हिस्से के बराबर होता है। यह कोण को नापने की इकाई है। इसे समय की इकाई न समझें।

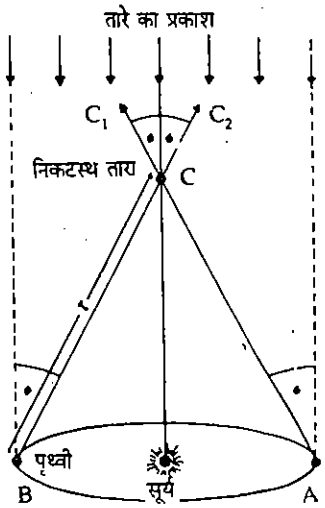

चित्र 9.6 तारकीय लंबन. निकटस्थ तारों की पृथ्वी से दूरी नापने की विधि। दूरी 3.26 प्रकाशवर्ष जहाँ वृत्तांश के विकला में नापा जाता है।

बोध प्रश्न 4

दिये गए स्थान में संक्षिप्त उत्तर लिखें:

क) ग्रहों की कक्षाओं का आकार क्या है?

.....

ख) केपलर के दूसरे और तीसरे नियम को सामान्य भाषा में लिखिए। (संकेत : इकाई 8 देखें)।

.....

.....

ग) किस प्रेक्षण से यह पता चलता है कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है?

.....

.....

.....

तारों पर एक दृष्टि

गैलीलियों द्वारा दूरबीन से की गयी खोजों में यह खोज भी शामिल थी कि आकाश गंगा में, जो आकाश में फैली एक दूधिया पट्टी जैसी दिखती है, बहुत से तारे हैं। उस समय तक यह माना जाता था कि ब्रह्मांड केवल सौर परिवार तक सीमित है। तारे सिर्फ बिंदु के बराबर प्रकाश के स्त्रोत थे। गैलीलियों के बाद के युग में बड़ी और बेहतर दरूबीनों के उपलब्ध होने से सौर परिवार के बचे हुए अन्य ग्रहों अरुण (Uranus), वरुण (Neptune) और यम (Pluto) को खोजा गया और तारों का विस्तार से प्रेक्षण किया गया।

आकाश गंगा का यह नाम इसलिए दिया गया है कि यह आकाश में बहती गंगा नदी जैसी लगती है। हमारे पूर्वज कैसी अनोखी कल्पनाएँ करते थे।

तारों का विस्तारपूर्वक अध्ययन पहले-पहल अंग्रेज खगोलशास्त्री विलियम हर्शेल (William Herschel) (1738-1822) ने किया जिन्होंने इससे पहले अरुण ग्रह की खोज की। हर्शेल ने 1785 में बताया कि तारे सौर परिवार की पृष्ठभूमि (back drop) नहीं थे किंतु असंख्य पृथक पिंड थे। आकाश गंगा का नक्शा सबसे पहले उन्होंने ही बनाया और यह दिखाया कि यह वास्तव में असंख्य तारों से युक्त चपटी चक्री का एक अंग है। उनके मॉडल में सौर परिवार आकाश गंगा मंदाकिनी में स्थित था, जिसमें सम्पूर्ण ब्रह्मांड स्थापित था। उस समय तक शक्तिशाली दूरबीनें मौजूद नहीं थीं। आकाश में बिंदुओं जैसी कुछ वस्तुएँ देखी जा सकती थीं, जो तारे थे। इसके अलावा सफेद धुंधले बादल देखे जा सकते थे, जिन्हें **नीहारिकाएँ** (Nebula) कहा जाता था।

नीहारिका (nebula) शब्द का प्रयोग अब मंदाकिनी में मौजूद गैस और धूल के चमकते हुए बादलों के लिए होता है। मंदाकिनी (galaxy) गैस, धूल, और लाखों करोड़ों सितारों से बनती है। मंदाकिनियाँ तारों के टापू हैं जो विस्तृत आकाश में फैले हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अंतहीन महासागर में टापू या अंतहीन मरुस्थल में मरुद्वीप फैले होते हैं।

इस प्रकार, हमारे बीसवीं शताब्दी में प्रवेश करने तक भी ब्रह्मांड का मॉडल सूर्य केंद्रीय था। हमारा सूर्य आकाश गंगा के केंद्र में था, जो अपने तारों और नीहारिकाओं सहित एक संपूर्ण ब्रह्मांड था। लेकिन सूर्य केंद्रीय मॉडल को त्यागने में अधिक समय नहीं लगा। अब हम संक्षेप में उन प्रेक्षणों की चर्चा करेंगे कि जिनके कारण सूर्य केंद्रीय मॉडल को अस्वीकृत कर दिया गया।

9.2.3 सूर्य-केंद्रीय ब्रह्मांड का निराकरण

सूर्य केंद्रीय मॉडल को तब अस्वीकृत किया गया जब सन् 1918 में एक खगोलशास्त्री हार्लो शैपली (Harlow Shapley) (1885-1972) ने सर्वप्रथम आकाश गंगा मंदाकिनी के परिमाण और आकार का सर्वेक्षण किया। उसने अपने नितांत मौलिक अनुसंधानों के द्वारा यह दिखाया कि

सूर्य आकाश गंगा मंदाकिनी के केंद्र में नहीं है, बल्कि केंद्र से बहुत दूर स्थित है। किंतु यह प्रश्न फिर भी बना रहा कि क्या आकश गंगा मंदाकिनी संपूर्ण ब्रह्मांड थी या नहीं। इसका उत्तर उस समय मिला जब सन् 1924 में एक अन्य महान् खगोलशास्त्री एडविन हबल (Edwin Hubble) (1889-1953) ने यह बताया कि धुंधले बादल जिन्हें एंड्रोमिडा नीहारिका (Andromeda Nebula) कहते थे, आकाश गंगा मंदाकिनी के सदस्य न होकर एक दूसरी मंदाकिनी थी। शीघ्र ही, अन्य मंदाकिनियों का पता लगा लिया गया, किंतु आकाश गंगा मंदाकिनी सबसे बड़ी थी। इससे मनुष्य के अहं को कुछ तसल्ली मिली : यदि हमारी पृथ्वी या सूर्य ब्रह्मांड के केंद्र में नहीं है तो कम से कम हमें सबसे बड़ी मंदाकिनी में रहने का गौरव तो प्राप्त है। पर यह विचार भी ज्यादा समय तक नहीं चल सका। वाल्टर बाद (Walter Baade) (1893-1959) ने ब्रह्मांड संबंधी उस अनेक विवरणों पर नज़र डाली जो हबल से छूट गये थे। उन्होंने यह खोज निकाला कि आकश गंगा मंदाकिनी अन्य मंदाकिनियों की अपेक्षा बड़ी नहीं थी तथा अन्य मंदाकिनियाँ जितना हम समझते थे, उससे कहीं अधिक दूर थीं। आकाश गंगा मंदाकिनी दूसरी असंख्य मंदाकिनियों में से केवल एक थी। कोपर्निकस से जो क्रांति शुरू हुई थी, वह अब पूरी हो चुकी थी। मनुष्य का ब्रह्मांड में कोई विशिष्ट स्थान नहीं रहा। हम इसके केंद्र में नहीं रहे। केवल इतना ही नहीं, यह भी पाया गया कि ब्रह्मांड का न तो कोई केंद्र था और न ही कोई सीमा। वस्तुतः कोपर्निकस के विचारों की महानता इस बात में ज्यादा नहीं है कि उन्होंने क्या किया, बल्कि इस बात में है कि उनके कार्य द्वारा क्या प्रेरणा मिली।

बोध प्रश्न 5

ब्रह्मांड के बारे में मनुष्य का ज्ञान समय के साथ-साथ बदलता रहा है। इस संबंध में नीचे कुछ कथन दिये गये हैं जिनका क्रम सही नहीं है। उपयुक्त कथन के सामने 1 से 7 तक की संख्या लिखते हुए आप इन्हें कालक्रम के अनुसार व्यवस्थित करें।

क) सूर्य संपूर्ण ब्रह्मांड मानी जाने वाली आकाश गंगा मंदाकिनी के केंद्र में नहीं है। .....

ख) ब्रह्मांड का न तो कोई केंद्र है और न ही कोई सीमा। आकाश गंगा मंदाकिनी ब्रह्मांड में फैली असंख्य मंदाकिनियों में से एक है। .....

ग) पृथ्वी चपटी और ठोस है, आकाश सबसे ऊपर है और सूर्य, चंद्रमा तथा तारे उनके मध्य में स्थित हैं। .....

घ) सूर्य ब्रह्मांड के केंद्र में है और ग्रह इसके चारों ओर गोलाकार कक्षाओं में घूमते हैं। .....

ङ) ब्रह्मांड में अन्य मंदाकिनियाँ हैं, किंतु आकाश गंगा मंदाकिनी इसके केंद्र में है। .....

च) पृथ्वी गोलाकार है। यह ब्रह्मांड के केंद्र में है। यह घूमती नहीं है। .....

छ) कुछ नियमों के अनुसार ग्रह सूर्य के चारों ओर दीर्घवृत्ताकार कक्षों में घूमते हैं, किंतु सूर्य ब्रह्मांड के केंद्र में है। .....

अब तक हमने इस बात का संक्षिप्त वर्णन किया कि पिछली चार शताब्दियों में ब्रह्मांड के बारे में मनुष्य का ज्ञान अधिक सही प्रेक्षणों के मिलने से किस प्रकार बदलता रहा। अब हम ब्रह्मांड के स्वरूप के बारे में वर्तमान जानकारी देंगे। आप ब्रह्मांड में पदार्थ के भिन्न-भिन्न रूपों जैसे ग्रहों, तारों, मंदाकिनियों आदि के बारे में भी पढ़ेंगे।

9.3 भौतिक ब्रह्मांड

ब्रह्मांड बहुत विशाल है। पृथ्वी, जिस पर हम रहते हैं, ब्रह्मांड में धूल के एक कण के समान है जो एक छोटी सी मंदाकिनी के दूरवर्ती कोने में एक तारे के चारों ओर घूम रही है। यदि हम इस विशाल अंतरिक्ष में धूल का एक कण हैं, तो हम समय के विस्तार में भी एक क्षण मात्र हैं। ब्रह्मांड बहुत पुराना भी है। अब तक हमारी जानकारी के अनुसार ब्रह्मांड पंद्रह या बीस अरब वर्ष पुराना है, जबकि इस पर मनुष्य का अस्तित्व 20 लाख वर्ष से अधिक पुराना नहीं है। इस विशाल एवं प्राचीन ब्रह्मांड में तरह-तरह के पिण्ड हैं। आइए, अब हम यह समझने की कोशिश करें कि ब्रह्मांड की भौतिक संरचना क्या है? यानी यह किन-किन पिण्डों से बना है और वे ब्रह्मांड में किस तरह फैले हुए हैं। इस भाग में हम ब्रह्मांड की रासायनिक संरचना या अन्य

वरणों पर नही जाएंगे। लेकिन इस बारे में पढ़ने से पहले हम आपको अंतरिक्षीय दूरियों cosmic distances) से परिचित कराएंगे ताकि आप इसकी भौतिक संरचना को अच्छी तरह मझ सकें।

.3.1 अंतरिक्षीय दूरियाँ

दि हम आपसे पूछें कि दिल्ली से कन्याकुमारी तक की दूरी कितनी है, तो आप कहेंगे कि यह गभग 3000 कि.मी. है। इस प्रश्न का उत्तर एक और तरीके से दिया जा सकता है। वह यह है, क इस दूरी को तय करने के लिए एक गाड़ी 50 घंटे लेती है। यदि हमें गाड़ी की औसत गति ालूम हो तो हमें इस दूरी का लगभग सही अंदाजा हो सकता है।

ह्मांड इतना विशाल है कि किलोमीटर जैसी इकाई से इसकी दूरियों को मापना अर्थहीन-सा गता है। इसलिए ब्रह्मांड के पिण्डों के बीच की दूरियाँ "प्रकाश वर्षों" में मापी जाती हैं। **एक काश वर्ष उस दूरी को कहते हैं जो प्रकाश द्वारा एक वर्ष में तय की जाती है।** प्रकाश एक कंड में लगभग 300,000 कि.मी. दूरी तय करता है अर्थात् इसकी गति 3×10^5 कि.मी. प्रति कंड है। इस गति से प्रकाश एक सेकंड में पृथ्वी के सात चक्कर काट सकता है। एक वर्ष में गभग 3×10^7 सेकंड (अर्थात् 3 करोड़ सेकंड) होते है। इस प्रकार प्रकाश द्वारा एक वर्ष में तय ो जाने वाली दूरी लगभग 3.0×10^5 कि.मी. प्रति से. = 3×10^7 से. $\times 9 \times 10^{12}$ कि.मी.। र्थात् लगभग 90 खरब किलोमीटर है।

गति = दरी समय

गति को नापने की इकाई किलोमीटर प्रति सेकंड को संक्षेप में कि.मी./से. लिखा जाता है।

री की इस इकाई को एक प्रकाश वर्ष कहा जाता है। इससे समय नहीं, बल्कि दूरियाँ, विशाल रियाँ मापी जाती हैं। अंतरिक्षीय दूरियां और समय एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। हम समय के बिना तरिक्षीय दूरी के बारे में नहीं सोच सकते। यदि हम किसी मंदाकिनी को जो पृथ्वी से एक अरब काश वर्ष दूर है, देखते हैं तो हम उस के उतने ही वर्षों पूर्व के रूप को देख रहे होते हैं। इस कार प्रकाश वर्ष की इकाईयों में दूरी के द्वारा हमें यह भी पता चलता है कि हम समय में कितना छे देख रहे हैं।

.3.2 सौर मंडल

इए, अब हम आपको ब्रह्मांड की यात्रा पर ले चलते हैं। हम अपने ग्रह पृथ्वी से शुरुआत रते हैं। यह हमारा घर है। पृथ्वी एक जीवंत, हरा-भरा और उपजाऊ ग्रह है, जहां नीला ाकाश, विशाल महासागर, ठंडे जंगल और भरा-पूरा जीवन है। इसकी सतह पर एक ऐसे युमंडल का आवरण है जिसमें हम साँस ले सकते हैं और जो पृथ्वी के तापमान को नियंत्रित रता है।

एक प्रकाश वर्ष का सही मान 9.46×10^{12} किलोमीटर है। यह प्रकाश की गति और एक वर्ष में सेकंड की संख्या के सही मान लेने पर परिकलित किया गया है।

थ्वी अपने अक्ष पर घूमती हुई एक वर्ष में सूर्य की एक परिक्रमा पूरी करती है। पृथ्वी अकेली हीं घूमती। इस यात्रा में चंद्रमा भी उसका साथ देता है जो पृथ्वी की एक परिक्रमा 27.33 दिनों पूरी करता है। किंतु चंद्रमा पर हवा, पानी और जीवन नहीं है। यह एक मृत संसार है। चंद्रमा पृथ्वी एक सुंदर नीले-सफेद गोले जैसी दिखाई देती है।

पृथ्वी लट्टू की भांति अपने अक्ष पर घूमती है। इस क्रिया को क्रमावर्तन (rotation) कहते हैं। जब कोई वस्तु किसी अन्य वस्तु के चारों ओर घूमे, तो उसे परिक्रमा (revolution) कहते हैं। पृथ्वी प्रत्येक 24 घंटों में अपने अक्ष पर एक चक्कर पूरा करती है तथा 365¼ दिनों में सूर्य की एक परिक्रमा पूरी करती है।

र्य के चारों ओर पृथ्वी अकेली नहीं घूमती, इसके साथ आठ अन्य ग्रह और उनके उपग्रह हैं। र्य, नौ ग्रह और उनके उपग्रह, अनेक धूमकेतु और ग्रहिकाओं के मिलने पर सौर परिवार बनता (देखिये चित्र 11.1)। इन सभी ग्रहों के विभिन्न आकार हैं। ये विशालकाय बृहस्पति, से लेकर हमारी पृथ्वी से ग्यारह गुना बड़ा है, छोटे ग्रह यम, जो पृथ्वी के आधे हिस्से से भी छोटा है, ह कई आकारों के हैं। प्रत्येक ग्रह सूर्य से अलग-अलग दूरी पर स्थित है। बुद्ध सूर्य के सबसे कट है और यम सबसे दूर। ये सभी ग्रह एक-दूसरे से भिन्न हैं। इनका विस्तृत अध्ययन हम ाई 11 में करेंगे। आइए, देखें कि सौर परिवार के परे अंतरिक्ष में क्या है।

3.3 निशाकाश

त में आसमान में आपको क्या दिखाई पड़ता है? आसमान का अधिकांश भाग चमकते हुए तारों भरा होता है; चंद्रमा भी दिख सकता है, एक चमकते हुए बिंदु जैसा शुक्र हो सकता है, लाल के बिंदु जैसा मंगल हो सकता है। शुक्र कभी-कभी शाम को सूर्यास्त के बाद दिखाई पड़ता है र कभी-कभी सुबह-सवेरे सूर्योदय के पहले दिखाई पड़ता है। ग्रहों को छोड़कर आसमान में य सभी प्रकाश बिंदु तारे हैं। अगर आसमान साफ रहे तो हम अपने ग्रह पृथ्वी से, रात में ीब 6,000 तारे देख सकते हैं।

तारे एवं तारामंडल

रात्रि का आसमान काफी दिलचस्प है। तारे एक निश्चित नमूने बनाते हुए प्रतीत होते हैं। आपने सप्तर्षि को तो देखा होगा, जिसे अंग्रेजी में बिग डिपर (big dipper) या हल (plough) भी कहते हैं। या तारों के एक बड़े समूह, जिसे ग्रेट बियर (Great Bear) या अर्सा मेजर (Ursa Major) कहते हैं, का एक अंग है। यह आकाश के उत्तरी भाग में दिखाई देता है। हम तारों के समूहों के विभिन्न प्रकार के नमूने देख सकते हैं जैसे शिकारी (the hunters), शेर (the lion), कुत्ता (the dog) तुला (the balance) आदि। आकाश में इन चित्रों का वास्तविक अस्तित्व नहीं होता है। हमारी कल्पना ने इन चित्रों को आसमान में साकार किया है। प्राचीन खगोलशास्त्रियों और तारों का अवलोकन करने वालों ने आकाश में तारों के इन नमूनों की कल्पना की और उनके नाम देवताओं, बहादुरों, वस्तुओं या जानवरों आदि पर रखे जो उनकी कल्पना में इनसे मिलते थे (देखिए चित्र 9.7 क)।

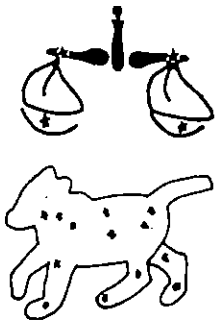

(क)

तारों या तारों के समूहों से बने इन नमूनों को तारामंडल (constellation) कहते हैं। वास्तव में तारामंडल, तारों का एक समूह है जो आकाश में मात्र एक क्षेत्र का निर्धारण करता है। आकाश में एक निश्चित क्षेत्र में अंतरिक्ष की सभी वस्तुएँ एक तारामंडल का निर्माण करती हैं। आकाश को कुल 88 तारामंडलों में बांटा गया है जिनमें से प्रत्येक की एक निश्चित सीमा है। आधुनिक खगोलशास्त्री आकाश के 88 भागों के लिए तारामंडलों के प्राचीन नामों का इस्तेमाल करते हैं। पर वे प्राचीन काल्पनिक चित्रों का इस्तेमाल नहीं करते। चित्र 9.7 (ख) और (ग) में उत्तरी और दक्षिणी गोलार्ध में दिखाई देने वाले चमकीले तारों और तारामंडलों का मानचित्र दिखाया गया है। आप शायद निशाकाश में दिखने वाले तारों और तारामंडलों से परिचित होना चाहें। इनके मानचित्र पत्र-पत्रिकाओं में छपते हैं।

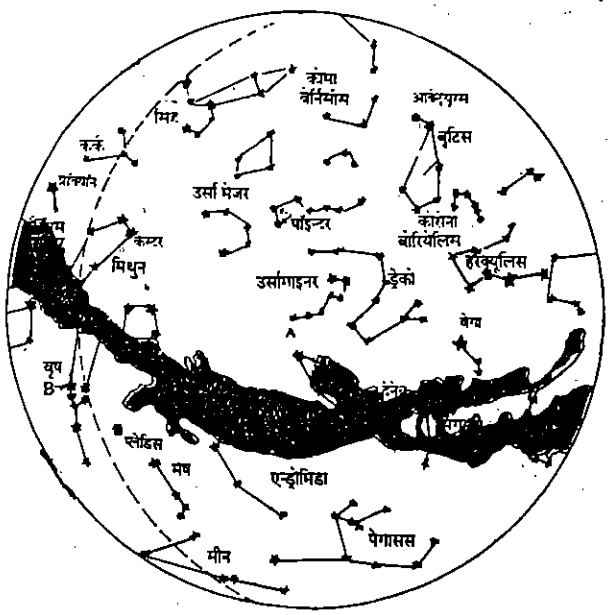

(ख)

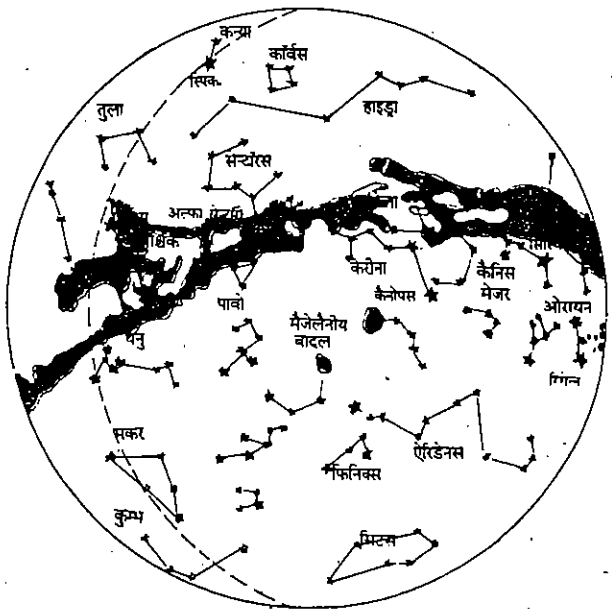

(ग)

चित्र 9.7 (क) अर्सा मेजर और तुला नामक दो तारामंडल; (ख) उत्तरी (1) तथा दक्षिणी (2) गोलार्द्धों से दिखने वाले प्रमुख तारा मंडलों और तारों के नक्शे।

तारों और तारामडलों से अन्वेषकों को सहायता मिलती है। प्राचीन काल में ये समुद्री यात्रा के लिए सहायक होते थे। रात्रि के समय आसमान में तारामंडलों की स्थिति देखने से प्राचीन काल के नाविकों को जहाज के अक्षांश का ज्ञान होता था। आजकल अंतरिक्ष यान तारों और तारामंडलों की मदद से सुदूर अंतरिक्ष में अपना रास्ता ढूँढ़ते हैं। यदि सप्तर्षि मंडल के "संकेतक" या पॉइन्टर कहे जाने वाले अन्तिम दो तारों को मिलाने वाली रेखा को और आगे बढ़ाया जाए तो यह ध्रुव तारे से मिलेगी। यह एक चमकीला तारा है और यह उत्तर में लगभग पृथ्वी के अक्ष के ऊपर स्थित है। इसी कारण यह हमेशा एक स्थान पर स्थिर दिखाई देता है। इसकी स्थिति से भौगोलिक उत्तर दिशा का बोध होता है। अतः ध्रुव तारा प्रारंभिक नाविकों को रात में पथ प्रदर्शन करता था।

जैसे-जैसे पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, विभिन्न तारामंडल वर्ष के भिन्न-भिन्न समय में उदय और अस्त होते रहते हैं। इस प्रकार विभिन्न मौसम में भिन्न-भिन्न तारामंडल दिखाई देते

हैं। इन तारामंडलों की पृष्ठभूमि में यदि ग्रहों की गतिशीलता को देखा जाए तो ऐसा लगता है जैसे कि वर्ष के किसी निश्चित समय में ग्रह तारामंडल में प्रवेश कर रहे हैं या फिर उन्हें छोड़ रहे हैं। ग्रहों और तारों की इस गतिशीलता का उपयोग ज्योतिष में मानव संबंधित घटनाओं की भविष्यवाणियाँ करने में भी हुआ है। हम इस विषय पर इकाई 11 में कुछ और प्रकाश डालेंगे।

बोध प्रश्न 6

क) चित्र 9.9 (ख) में तारों के समूह में सप्तर्षि को पहचानिए।

ख) चित्र 9.9 ख में A और B में से कौन-सा तारा ध्रुव तारा है?

आपने रात्रि के स्वच्छ आसमान में फैली हुई एक चमकीली सफेद पट्टी अवश्य देखी होगी। यही आकाश गंगा है। जैसा कि आपने 9.2.2 में पढ़ा कि गैलीलियो ने सर्वप्रथम इसमें बहुत से तारे देखे थे। यह हमारी मंदाकिनी आकाश गंगा का एक भाग है। मंदाकिनी, गैस, धूल और अरबों तारों का एक विशाल समूह है। ब्रह्माड में ऐसी लाखों मंदाकिनियाँ है। सौर परिवार और अन्य तारे जिन्हें हम देखते हैं आकाश गंगा मंदाकिनी के अंग हैं। आइए, आकाश गंगा मंदाकिनी के बारे में कुछ और जानकारी हासिल करें।

9.3.4 आकाश गंगा मंदाकिनी

निशाकाश में दिखाई देने वाली पट्टी वास्तव में आकाश गंगा मंदाकिनी का एक हिस्सा है। आकाश गंगा मंदाकिनी के अंदर स्थित होनें के कारण हम इसे हिस्सों में ही देख सकते हैं। अन्य बाहरी मंदाकिनियों की तरह हम इसे पूरा नहीं देख सकते। पूरी की पूरी आकाश गंगा मंदाकिनी कैसी दिखेगी और उसकी आकृति क्या होगी, यह बता पाना आसान काम नहीं था। आधुनिक दूरबीनों द्वारा हर दिशा में फैली बहुत-सी मंदाकिनियों को देखकर वैज्ञानिकों ने आकाश गंगा मंदाकिनी के स्वरूप की कल्पना की है। इस कार्य में उन्हें अपनी मंदाकिनी में स्थित तारों के प्रेक्षण, उनकी पृथ्वी से दूरी और गति आदि की जानकारी से भी सहायता मिली है। खगोलशास्त्रियों द्वारा बनाया गया आकाश गंगा मंदाकिनी का प्रारूप चित्र 9.8 ख में दिखाया गया है। क्या यह एक चक्र या ग्रामाफोन रिकार्ड जैसा नहीं दिखता जिसका बीच का हिस्सा उठा हुआ हो?

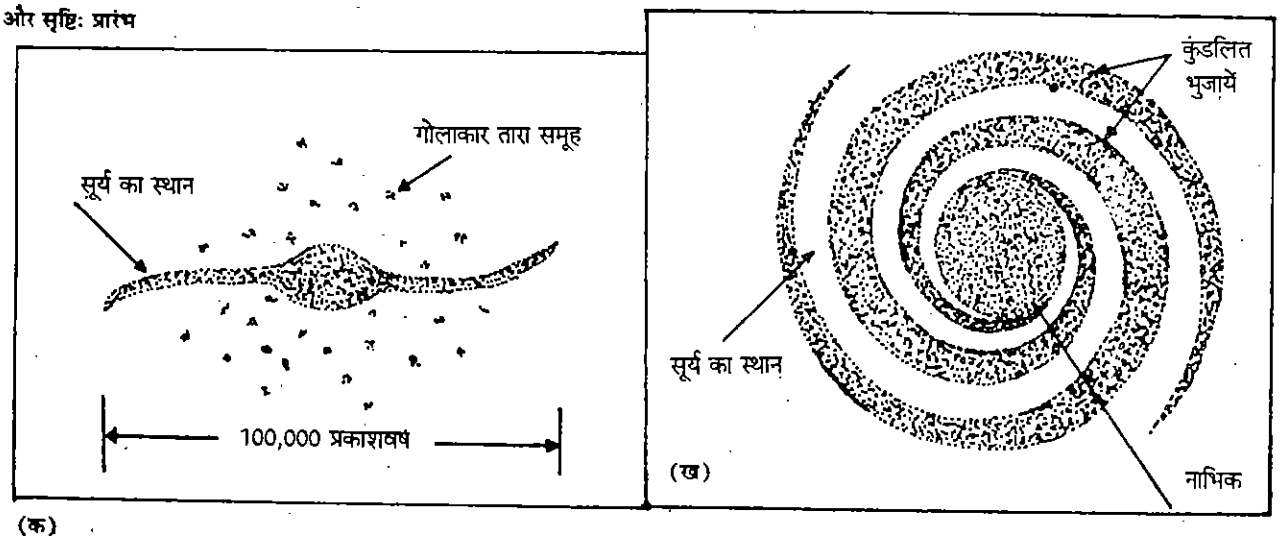

चित्र 9.8 आकाश गंगा मंदाकिनी (क) पार्श्व दृश्य तथा (ख) विहंगम दृश्य।

आकाश गंगा में करीब 100 अरब तारे हैं और उनका फैलाव समान रूप से नहीं है। आप इसका परीक्षण एक साधारण प्रयोग द्वारा कर सकते हैं।

प्रयोग : गत्ते का एक छोटा टुकड़ा लीजिए जिसमें 5 से.मी. भुजा (side) का एक वर्गाकार सुराख हो। इसे एक हाथ की दूरी पर रख कर सुराख में से दिखने वाले तारों की गणना कीजिए। इसी क्रिया को आकाश के विभिन्न हिस्सों में दोहराएँ। आकाश की दिशाओं और हर बार की गयी तारों की गिनती को रिकार्ड कीजिए। क्या ये सब बराबर हैं?

आप यह पायेंगे कि तारों की संख्या कहीं कम और कहीं अधिक है। आकाश गंगा मंदाकिनी के केंद्र में, जो सेजिटेरियस (Sagittarius) तारामंडल में स्थित है, तारों का जमघट है। इसके केंद्र से लगभग 30,000 प्रकाश वर्ष सुदूर में सूर्य स्थित है। ध्यान दीजिए कि जब आप सेजिटेरियस (धनु) तारामंडल के पास आकाश गंगा मंदाकिनी का अवलोकन करते हैं, तब आप मंदाकिनी के

केंद्र में देख रहे होते हैं। जब आप ओरायन (Orion) की तरफ देखते हैं तो सूर्य के निकटतम आकाश गंगा मंदाकिनी के किनारे को देख रहे होते हैं। जैसा कि आप चित्र 9.8 में देख सकते हैं कि आकाश गंगा मंदाकिनी एक चक्र के आकार की है। यदि हम अपनी मंदाकिनी को ऊपर से देखें तो हमें इसका विहंगम दृश्य दिखाई देगा और इसका आकार चित्र 9.8 (ख) जैसा होगा। यदि हम इसे किनारे से देखें तो हमें इसका पार्श्व दृश्य दिखाई देगा और यह 9.8 (क) में दिखाये गये चित्र जैसा होगा।

किनारे से देखे गये दृश्य में आकाश गंगा दो भागों से मिलकर बनी दिखती है : एक चक्र और एक प्रभामण्डल (halo)। चक्र, तारों और धूल तथा गैस के बादलों से, जिन्हें निहारिका (nebula) कहते हैं, बना है। इसका व्यास 100,000 प्रकाश वर्ष है और मोटाई लगभग 5,000 प्रकाश वर्ष है। गैस और तारों का यह समूह मंदाकिनी के केंद्र (जिसे नाभिक भी कहते हैं) के चारों ओर घूमता है। इसका प्रत्येक हिस्सा भिन्न-भिन्न गति से घूमता है। सौर मंडल जो आकाश गंगा के केंद्र से लगभग 30,000 प्रकाश वर्ष दूर है और इसके बाहरी हिस्से में स्थित है, भी मंदाकिनी के केंद्र के चारों ओर घूमता है। 250 किलोमीटर प्रति सेकंड की गति से घूमता हुआ सूर्य लगभग 20 करोड़ वर्षों में आकाश गंगा के केंद्र की एक परिक्रमा पूरी करता है। सूर्य जैसे तारे और अन्य तारों के समूह जिन्हें गांगेय समूह (galactic clusters) कहते हैं, एक साथ मिलकर चक्र के भीतर घूमते हैं। खगोलशास्त्रियों ने चक्र में लगभग 1000 गांगेय समूहों को पहचाना है। ये समूह 10 से लेकर 1,000 तक तारों से बने हैं। आकाश गंगा के चक्र का आकार दो कुंडलीनुमा भुजाओं जैसा है। ये भुजाएं लगभग 2,500 प्रकाश वर्ष चौड़ी हैं। दो समीपस्थ भुजाओं के बीच की दूरी 1500 प्रकाश वर्ष है। ये कुण्डलित भुजाएँ बहुत साफ-साफ दिखाई देती हैं क्योंकि यहीं पर सबसे चकमीले तारे और गैस के बादल पाये जाते हैं। गैस और धूल के काले बादल इन भुजाओं के अन्दरूनी किनारे पर स्थित हैं। चक्र में अन्य तारे किसी व्यवस्थित रूप में नहीं हैं। उदाहरण के रूप में, सूर्य दो कुण्डलित भुजाओं के मध्य में स्थित है। (देखिए चित्र 9.8 ख)।

प्रभामंडल (halo) गोलाकार है और उसका केंद्र मंदाकिनी के नाभिक में स्थित है। प्रभामंडल के केन्द्रीय भाग में अनगिनत तारों का जमघट है जिसके कारण चक्र का नाभिकीय भाग उठा हुआ है (चित्र 9.8 ख)। प्रभामंडल के अन्य भागों में बहुत थोड़ी-सी गैस, दूर-दूर बिखरे हुए तारे और लगभग 120 गोलाकार समूह (globular clusters) पाये जाते हैं। गोलाकार तारा समूह सुगठित गोलाकार मंडल है जिनमें दस हजार से लेकर लाखों तारे पाये जाते हैं। ऐसा देखा गया है कि प्रभामंडल या मंदाकिनी का गोलाकार भाग चक्र के साथ नहीं घूमता।

गोलाकार तारा समूहों के फैलाव के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सूर्य आकाश गंगा मंदाकिनी का केंद्र बिंदु नहीं हो सकता। क्योंकि यदि ऐसा होता तो गोलाकार समूह सूर्य के चारों ओर फैले होते, पर ऐसा नहीं है। अतः हम कह सकते हैं कि सूर्य आकाश गंगा के केंद्र में नहीं है। वास्तव में आकाश गंगा का केंद्र इन गोलाकार समूहों के फैलाव का केंद्र है।

बोध प्रश्न 7

क) आकाश गंगा मंदाकिनी के विषय में दिये गये निम्नलिखित कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) मंदाकिनी ..... का एक समूह होता है। आकाश गंगा मंदाकिनी ब्रह्मांड में स्थित ..... मंदाकिनियों में से एक है।

ii) मंदाकिनी को ऊपर से देखने पर हम इसका ..... देखते हैं और किनारे से देखने पर हम इसका ..... देखते हैं।

iii) किनारे से देखने पर आकाश गंगा मंदाकिनी दो भागों, ... और ..... द्वारा बनी दिखाई देती है।

iv) चक्र (disc) गैस और धूल के बादलों, तारों और ..... से बनता है, जो मंदाकिनी के केंद्र के चारों ओर घूमता है। मंदाकिनी के चक्र की दो ..... कुंडली के रूप में व्यवस्थित होती है। सूर्य इन्हीं भुजाओं के ..... में स्थित है।

v) प्रभामंडल की आकृति ..... है। इसके केंद्र में तारों का एक ..... समूह है। अन्य स्थानों पर यह, ... और ..... से बना है।

vi) एक ..... तारा समूह में 10 से 1,000 तक के लगभग तारे होते हैं। एक ..... समूह 10,000 से लेकर लाखों तारों से बनता है।

vii) मंदाकिनी में गोलाकार समूह ..... में पाये जाते हैं और गांगेय समूह के ..... में पाये जाते हैं।

ख) 10,000 प्रकाश वर्षों को पैमाने पर एक सेंटीमीटर मानकर आकाश गंगा का एक किनारे से दिखने वाला रेखाचित्र खींचिए जिसके चक्र (disc) का व्यास 10 से.मी. हो। इसका चक्र और नाभिक भी दिखाइए। इस आकृति में सूर्य की स्थिति स्पष्ट कीजिए।

9.3.5 आकाश गंगा मंदाकिनी से परे

आइए, अब हम पृथ्वी से दूर आकाश गंगा से परे अंतरिक्ष को जाने। अंतरिक्ष में दूर एक बिंदु पर पहुंचकर हमें प्रकाश धुंधले धागों जैसे आकारों में बिखरा हुआ दिखेगा। ये सब मंदाकिनियाँ हैं। जैसा कि हम भाग 9.3.3 में बता चुके हैं, ये मंदाकिनियाँ अरबों तारों, धूल और गैस के बादलों से बनी हैं। ब्रह्मांड मंदाकिनियों से भरा पड़ा है। इनमें से कुछ अकेली घूमने वाली हैं, और अधिकांश समूहों में घूमती हैं और अंतरिक्ष के गहन अंधकार में निरंतर चलती रहती हैं।

मंदाकिनियों की आकृतियाँ

मंदाकिनियों की आकृतियाँ आमतौर पर तीन तरह की पायी जाती हैं—कुंडलित मंदाकिनियां (spiral galaxies) जैसे कि आकाश गंगा, दीर्घवृत्ताकार मंदाकिनियाँ (elliptical galaxies) तथा असमाकृतिक मंदाकिनियाँ (irregular galaxies) (देखिए चित्र 9.9) पिछले वर्षों में अन्य कई तरह की आकृतियाँ देखी गयी हैं। पर यहां हम उनका वर्णन नहीं करेंगे। दीर्घवृत्ताकार मंदाकिनियों को यह नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि फोटो की प्लेट पर इनकी दीर्घवृत्ताकार आकृति बनती है। साधारणता दीर्घवृत्ताकार मंदाकिनियों में पुराने तारे ही होते हैं और इनमें अधिक गैस या धूल नहीं होती जिससे नये तारे बन सकें। असमाकृतिक मंदाकिनियों की कोई सुसंगत संरचना नहीं होती। कुंडलित और दीर्घवृत्ताकार मंदाकिनियों की संख्या काफी अधिक तथा लगभग एक दूसरे के बराबर है जबकि असमाकृतिक मंदाकिनियां कुल मंदाकिनियों का लगभग दस प्रतिशत है।

इससे पहले कि हम अंतरिक्ष में और आगे बढ़ें आइए, उन मंदाकिनियों पर गौर करें जिन्हें खगोलशास्त्री मंदाकिनियों का स्थानीय समूह (Local Group of Galaxies) कहते हैं। इसकी अनुप्रसी काट (cross section) कई लाख प्रकाश वर्षों की है और यह लगभग बीस मंदाकिनियों से मिलकर बनी है। आकाश गंगा मंदाकिनी की निकटतम मंदाकिनियाँ विशाल एवं छोटी मेजेलेनीय मंदाकिनियाँ हैं जो दक्षिणी गोलार्ध में देखी जा सकती हैं। ये असमाकृतिक मंदाकिनियाँ हैं। एंड्रोमिडा मंदाकिनी लगभग बीस लाख प्रकाश वर्षों की दूरी पर है और इसे आंखों द्वारा बिना

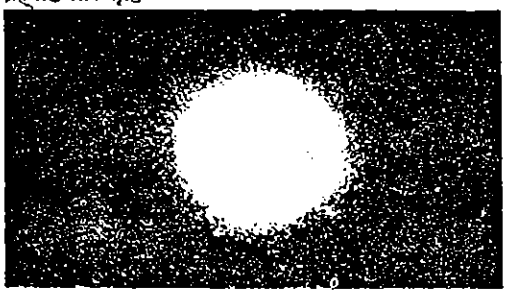

(क)

(ग)

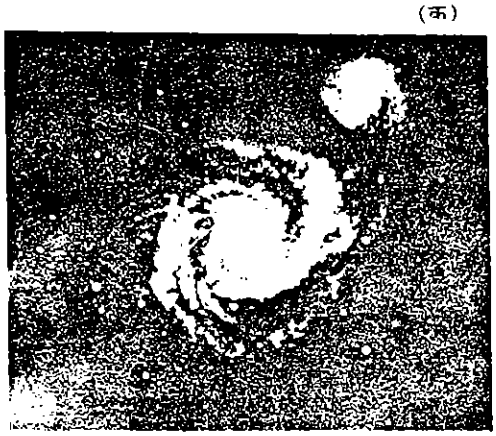

(ख)

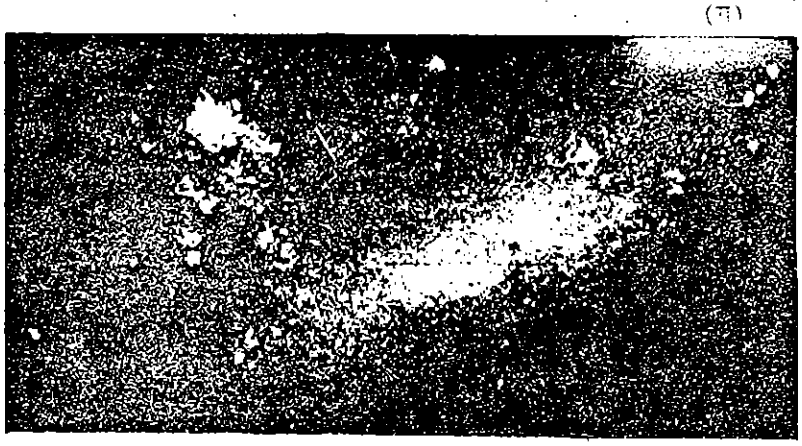

(घ)

चित्र 9.9 विभिन्न आकार की मंदाकिनियाँ। (क) कन्या समूह के केंद्र में स्थित दीर्घ वृत्ताकार M 87 मंदाकिनी जिसका द्रव्यमान 300 अरब सूर्यों के बराबर है और ज्ञात मंदाकिनियों में सबसे ज़्यादा है; (ख) सोम्ब्रेरो मंदाकिनी का पार्श्व दृश्य; (ग) कुंडिलित मंदाकिनी का विहंगम दृश्य; (घ) विषम आकार की मंदाकिनी, बड़ा मैजेलेनीय

किसी सहायता के देखा जा सकता है। यह एक कुंडलित मंदाकिनी है जो हमारी आकाश गंगा से तीन गुना बड़ी और चमकदार है। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते हैं, हम पाते हैं कि मंदाकिनियों के बहुत से समूह (clusters of galaxies) हैं। ब्रह्मांड में इस तरह की कोई सौ अरब मंदाकिनियाँ हैं जो हर तरह के समूह बनाती हैं। कुछ बृहत् समूहों (rich clusters) में मंदाकिनियों की संख्या दस हजार तक है जबकि कुछ अल्प समूहों में केवल कुछेक मंदाकिनियाँ ही हैं। हमारी मंदाकिनी अल्प समूह (poor clusters) का ही एक अंग है। सबसे नजदीकी बृहत् समूह, कन्या (Virgo) है, जो लगभग 7 करोड़ प्रकाश वर्ष की दूरी पर है। यह समूह बहुत बड़े और विषम आकार का है और इसके एक छोर से दूसरे छोर तक की ही दूरी 70 लाख प्रकाश वर्ष की है। मंदाकिनियों की तरह उनके समूह भी कुंडलित, दीर्घवृत्ताकार या विषम आकार के होते हैं।

हाल ही में ब्रह्मांड की भौतिक संरचना की समझ में और वृद्धि हुई है। इस बात का सबूत पाया गया है कि मंदाकिनियों के समूह चाहे वे अल्प या बृहत् हों, मिलकर अति समूह (super clusters) बनाते हैं जिनका व्यास 2 से 3 करोड़ प्रकाश वर्ष तक होता है। ये अति समूह सौ या फिर उससे अधिक मंदाकिनी समूहों से बने होते हैं। मंदाकिनियों का स्थानीय समूह (local group) और कन्या समूह, एक ही अति समूह के अंग हैं। ये अति समूह बहुत हद तक एक जैसे हैं। ये अंतरिक्ष में समान रूप से फैले हुए हैं। इस प्रकार व्यापक रूप से ब्रह्मांड एक समान दिखता है। बड़े पैमाने पर देखा जाए तो ब्रह्मांड की संरचना और संघटन हर जगह एक-सा है और हर दिशा से ब्रह्मांड एक जैसा दिखाई देता है।

ऊपर हमने ब्रह्मांड के जिस संघटन के बारे में बताया है वह स्थायी नहीं है। यह बदलता रहता है। नये तारे और नयी मंदाकिनियाँ बनती रहती हैं। तारे, मंदाकिनियाँ और उनके समूह घूमते रहते हैं। कभी-कभी उनके आपस में टकरा जाने से नयी मंदाकिनियाँ पैदा हो जाती हैं। ये सभी तारे, मंदाकिनियाँ, उनके समूह और अति समूह ब्रह्मांड में घटी प्राचीन घटनाओं की कहानी बताते हैं। इस कहानी को हमने अभी हाल ही में पढ़ना शुरू किया है।

बोध प्रश्न 8

क) ब्रह्मांड को एक व्यवस्था मानिए और अपने ग्रह पृथ्वी को उसकी सबसे छोटी उपव्यवस्था मानिए। तब निम्नलिखित को क्रमानुसार इस तरह से लिखिए कि हर पहले आने वाला निकाय बाद में आने वाले निकाय का एक हिस्सा हो। हर निकाय के आगे उन पिण्डों के नाम लिखिए जिनसे वह बना है।

i) पृथ्वी	i)
ii) आकाश गंगा मंदाकिनी	ii)
iii) अति समूह	iii)
iv) सौर परिवार	iv)
v) मंदाकिनियों के स्थानीय समूह	v)

ख) नीचे दिये गये चित्र में मंदाकिनियों को आकार से पहचानिए।

(i) (ii) (iii)

.....

आइए, अब हम आपको बताएँ कि मंदाकिनियों के बीच का अंतरिक्ष किन चीजों से बना है।

किसी तत्व के सूक्ष्मतम कण को परमाणु कहते हैं। इसके नाभिक में प्रोटॉन और न्यूट्रॉन होते हैं तथा इलेक्ट्रॉन नाभिक के चारों ओर घूमते हैं (देखिए इकाई 8 में चित्र 8.4 ख) एक अणु दो या अधिक परमाणुओं से मिलकर बनता है।

अंतरातारकीय और अंतरामंदाकिनी अंतरिक्ष

हमें ऐसा लगता कि तारों और मंदाकिनियों के बीच का अंतरिक्ष खाली है, पर यह सच नहीं है। मंदाकिनियों में तारों के तथा समूहों में मंदाकिनियों के बीच विशाल अंधकार में गैस और धूल के बादल हैं। ये गैसीय बादल ज्यादातर हाइड्रोजन परमाणुओं से बने हैं और बिना किसी सहायता के केवल आंखों से नहीं देखे जा सकते हैं। केवल आधुनिक खगोलीय उपकरणों द्वारा इन कणों का पता लगाया जा सका है, जिनके बारे में हम अगली इकाई में बताएंगे।

अंतरिक्ष की धूल बड़े-बड़े कणों से बनी है। धूल के ये बादल तभी दिखाई देते हैं, जब ये अपने ऊपर पड़ रहे तारों के प्रकाश को परावर्तित करते हैं (चित्र 9.10)। किसी भी मंदाकिनी में अंतरिक्षीय धूल (cosmic dust) और गैस के बादल तारों के निर्माण में महान् भूमिका निभाते हैं। इसके बारे में आप इकाई 10 में पढ़ेंगे।

(क) (ख)

चित्र 9.10 (क) ओरायन नीहारिका (ख) क्रैब नीहारिका 1054 ईसवी में देखे गये सुपरनोवा का अवशेष।

गैस के बादलों और अंतरिक्षीय धूल में हम विभिन्न किस्म के साधारण अणु जैसे पानी, अमोनिया और कार्बन मोनोआक्साइड आदि पाते हैं। कई तरह के कार्बनिक अणु जैसे मेथैन, मेथेनोल (methanol) जिसे काष्ठज एल्कोहल के नाम से भी जाना जाता है, फार्मिक एसिड (Formic acid), (चींटी या मधुमक्खी के डंक में पाया जाने वाला पदार्थ) तथा कई अन्य अणुओं के अवशेष भी मिलते हैं। कार्बनिक अणु वे पदार्थ हैं जिनसे पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति हुई है। अंतरातारकीय (insterstellar) अंतरिक्ष में इस प्रकार के कार्बनिक अणुओं की अधिकता से पता चलता है कि पृथ्वी के अलावा अन्य स्थानों पर भी जीवन होने की संभावना है, चाहे वह किसी भी रूप में हो। ब्रह्मांड में हम अकेले हों, यह ज़रूरी नहीं है।

कार्ल सगान अमरीका के सुप्रसिद्ध खगोलशास्त्री हैं।

ब्रह्मांड का एक अन्य प्रमुख घटक अंतरिक्ष किरणें (cosmic rays) हैं। अंतरिक्ष किरणें आवेशित (charged) कणों जैसे इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन तथा हीलियम नाभिक (helium nuclei) का एक किरणपुंज होती हैं। ये किरणें आकाश में लगभग प्रकाश की गति के समान मुक्त रूप से घूमती हैं। अंतरिक्ष में ये कण ऊर्जा का एक बहुत बड़ा भंडार है।

आइए, ब्रह्मांड के इस संक्षिप्त अध्ययन को समाप्त करें और देखें कि हमने क्या कुछ समझा। ब्रह्मांड के सभी पदार्थ मंदाकिनियों के बड़े-बड़े अति समूहों (super clusters) में एकत्रित हैं। मंदाकिनियों के प्रत्येक अति समूह का फैलाव 1 से 2 करोड़ प्रकाश वर्षों तक है और प्रत्येक में लाखों मंदाकिनियाँ सम्मिलित हैं। मंदाकिनियाँ बृहत् या अल्प समूहों में एकत्र हैं, इनकी विभिन्न आकृतियाँ हैं और ये विभिन्न तरीकों से अंतरिक्ष में फैली हैं। मंदाकिनियाँ तारों और गैस तथा धूल के बादलों से बनती हैं। तारे समूहों में एकत्र होते हैं या फिर सूर्य की तरह स्वतंत्र हो सकते हैं जिनका सौर मंडल की तरह अपना परिवार (planetary system) होता है। हमारा ग्रह पृथ्वी सौर परिवार का एक अंग है।

क्या ब्रह्मांड की विविधता और विस्तार वास्तव में आश्चर्यचकित करने वाला नहीं लगता? पृथ्वी एक छोटा-सा ग्रह है जो अंतरिक्ष की विशालता और समय की अनंतता में खोया हुआ है। यह विचार हमें हमारे गौण अस्तित्व का आभास दिलाता है कि हम कितने साधारण प्राणी हैं। लेकिन मानव जाति युवा, उत्सुक और बहादुर हैं। हमें अंतरिक्ष और समय में ब्रह्मांड के विस्तार से अभिभूत नहीं होना चाहिए, बल्कि उसे समझना चाहिए। इस इकाई को हम कार्ल सगान (Carl Sagan) के शब्दों द्वारा समाप्त करना चाहेंगे, जो उनकी पुस्तक "कॉसमौस" (Cosmos) (पृ. 1) से लिये गये हैं।

कार्बनिक अणु वे अणु हैं जिनके मूलभूत परमाणु कार्बन और हाइड्रोजन हैं। इन अणुओं में नाइट्रोजन और ऑक्सीजन जैसे अन्य परमाणु भी हो सकते हैं।

"आज जो कुछ है या जो हमेशा था या जो हमेशा रहेगा, वह सब ब्रह्मांड (cosmos) है। ....पिछले कुछ वर्षों में हमने ब्रह्मांड और इसमें अपने स्थान के बारे में अत्यंत आश्चर्यजनक एवं

अनपेक्षित खोजें की हैं, ऐसे अन्वेषण किये हैं जिनका विचार भी आह्लादक है। ये हमें बताते हैं कि मनुष्य हर बात को जानने के लिए उत्सुक है, कि किसी चीज को समझना आनंददायक है, कि जीवन की सुरक्षा के लिए हर बात को जानना जरूरी है। मेरा विश्वास है कि हमारा भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि हम इस ब्रह्मांड को कितनी अच्छी तरह जान जाते हैं जिसमें हमारी स्थिति सुबह के आकाश में तैरने वाले एक धूल कण की भांति है।"

9.4 सारांश

इस इकाई में हमने ब्रह्मांड के स्वरूप को स्पष्ट करने की कोशिश की है तथा यह भी बताया है कि मनुष्य ने जब से अंतरिक्षीय वस्तुओं को देखना शुरू किया तब से लेकर अब तक ब्रह्मांड के संबंध में उसके विचार कैसे बदलते रहे। आइए, संक्षेप में इन सब बातों पर विचार करें।

- प्रागैतिहासिक और कांस्य युग के हमारे पूर्वजों के लिए पृथ्वी ब्रह्मांड के केंद्र में थी। अंतरिक्ष के परे अंधकारमय आकाश उनके लिए एक रहस्य था जो कुछ पारलौकिक शक्तियों से संचालित था।
- यूनानी दार्शनिकों ने प्रेक्षणों और तर्क के आधार पर ब्रह्मांड को समझने का प्रयत्न किया और कई मॉडल बनाये। ये सभी मॉडल ब्रह्मांड से संबंधित टॉलमी के भू-केंद्रीय मॉडल में शामिल कर लिये गये थे।
- गैलीलियों के प्रेक्षणों और बाद में ग्रहों की गति से संबद्ध केपलर के तीन नियमों के आधार पर क्रांतिकारी सूर्य-केन्द्रीय मॉडल बना जो टाइको ब्राहे द्वारा किये गये प्रेक्षणों पर आधारित था।
- इस खोज ने , कि सूर्य आकाश गंगा में लाखों तारों में से एक है और इस मंदाकिनी के केंद्र से बहुत दूर स्थित हैं, सूर्य-केंद्रीय विचार को बदल दिया।
- आज हम ब्रह्मांड के व्यापक स्वरूप से परिचित हैं। सभी ग्रह, तारे, मंदाकिनियाँ, समूह, अतिसमूह एक गतिशील ब्रह्मांड का निर्माण करते हैं जो हमेशा बदलता रहता है।

9.5 अंत में कुछ प्रश्न

1) ब्रह्मांड के संबंध में टॉलमी के मॉडल से अच्छा मॉडल खोजने की क्या आवश्यकता थी? दिये गये स्थान में अपना उत्तर लिखें।

.....

.....

2) चार-पाँच पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए कि गैलीलियों के प्रेक्षणों के कारण टॉलमी के मॉडल का निराकरण कैसे हुआ।

.....

.....

.....

.....

.....

3) उन आधुनिक प्रेक्षणों का क्रमवार विवरण दीजिए जिनके कारण ब्रह्मांड का सूर्य-केंद्रीय मॉडल अस्वीकृत हुआ और ब्रह्मांड संबंधी हमारा वर्तमान ज्ञान बना कि ब्रह्मांड बहुत विशाल है, इसका कोई केंद्र नहीं है और उसकी कोई सीमा नहीं है।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) नीचे दिये गये कौन-से कथन सत्य हैं और कौन-से असत्य ? प्रत्येक कथन के सामने दिये गये खानों में स्पष्ट करें।
   क) आकाश गंगा मंदाकिनी ब्रह्मांड के केंद्र में है। ☐
   ख) अतिसमूहों से भी अधिक दूरियों के पैमाने पर देखने से ब्रह्मांड हर जगह एक जैसा लगता है। ☐
   ग) तारों और मंदाकिनियों के बीच अंतरिक्ष शून्य है। ☐
   घ) हम ब्रह्मांड का किनारा देख सकते हैं। ☐
   ङ) अंतरातारकीय (Interstellar) अंतरिक्ष, गैस के बादलों, धूल और अंतरिक्ष किरणों से भरा है। अंतरातारकीय पदार्थ में कार्बनिक अणु भी पाए गए हैं। ☐
   च) ब्रह्मांड बहुत विशाल है जो अरबों प्रकाश पर्ष दूर तक फैला है। यह बहुत प्राचीन भी है और लगभग 15 से 20 अरब प्रकाश वर्ष पुराना है। ☐

5) नीचे कॉलम 1 में कुछ निकाय दिये गये हैं और कॉलम 2 में उनकी विशेषताएँ। इनका उपयुक्त मिलान तीर के निशान से दर्शाइए।

कॉलम 1	कॉलम 2
क) पृथ्वी	i) मंदाकिनियों के समूह में कुछेक से लेकर हजारों मंदाकिनियाँ होती हैं
ख) सूर्य	ii) तारों का समूह जो एक पैटर्न (pattern) में व्यवस्थित होता है।
ग) तारामंडल	iii) एक छोटा-सा ग्रह है जो सूर्य के चारों ओर घूमता है।
घ) आकाश गंगा मंदाकिनी	iv) कई समूहों का संग्रह, जिसका फैलाव कई लाख प्रकाश वर्ष दूर तक होता है।
ङ) समूह	v) एक तारा है जो आकाश गंगा के केंद्र से काफी दूर स्थित है।
च) अतिसमूह	vi) एक मंदाकिनी है, जिसमें अरबों तारे, धूल और गैस हैं।

9.6 उत्तर

बोध प्रश्न

1) क) मौसम के बदलाव की भविष्यवाणी करना, कैलेंडर बनाना, शिकार के लिए समय निश्चित करना, आदिवासियों को एकत्रित करना, फसल की रोपाई करना, खड़ी फसल को काटना आदि।
   ख) जहाज़ क्षितिज में डूबते हुए से लगते हैं, चंद्रग्रहण के दौरान चंद्रमा पर पृथ्वी की गोलाकार छाया पड़ती है।
2) क) अ, ख) अ, ग) स, घ) स
3) क) गैलीलियों द्वारा किये गये आकाश के प्रेक्षणों द्वारा।
   ख) iii), vi)
4) क) दीर्घवृत्त
   ख) द्वितीय सिद्धांत: ग्रह जब सूर्य के नजदीक होते हैं तो अपनी कक्षा में तेज़ी से घूमते हैं, और जब सूर्य से दूर होते हैं तो अपनी कक्षा में धीरे-धीरे घूमते हैं।
   तृतीय सिद्धांत : कोई ग्रह सूर्य से जितना दूर होता है, वह सूर्य के चारों ओर एक बार

घूमने में उतना ही अधिक समय लेता है।

ग) तारकीय लंबन : यानि छह महीने के अंतराल पर पृथ्वी से देखने पर दूर के तारों की पृष्ठभूमि में नजदीकी तारों का दिखाई देने वाला स्थानांतरण।

5) क) 5 ख) 7 ग) 1 घ) 3 ङ) 6 च) 2 छ) 4

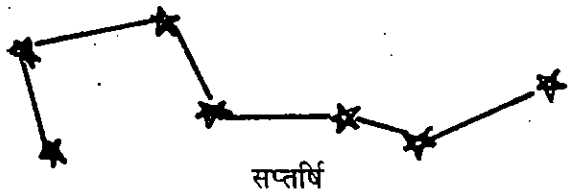

सप्तर्षि

ख) तारा "A" ध्रुव तारा है।

7) क) (i) तारों, गैस और धूल के बादल, अरबों (ii) विहंगम दृश्य (top view), पार्श्व दृश्य (edge on view) (iii) चक्र, प्रभामंडल (iv) तारा समूह, भुजाएँ, मध्य (v) गोलाकार, विशाल, थोड़ी सी गैस, कुछ तारे, गोलाकार तारा समूह (vi) गांगेय,गोलाकार (vii) प्रभामंडल, चक्र।

ख)

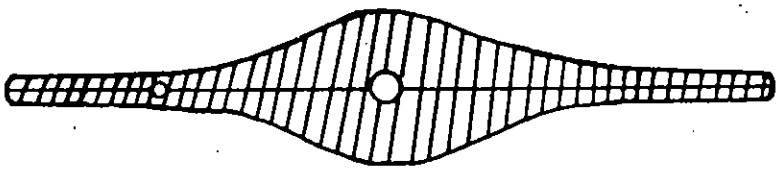

8) क) i), iv), ii), v), iii).
पृथ्वी – सभी जीव जमीन, समुद्र, जंगल आदि
सौर परिवार – सूर्य, ग्रह एवं उनके उपग्रह, ग्रहिकायें और पुच्छल तारे
आकाश गंगा मंदाकिनी – तारे, गैस और धूल के बादल
समूह – मंदाकिनियाँ
अति समूह – मंदाकिनियों के समूह

ख) i) असमाकृतिक ii) दीर्घवृत्ताकार iii) कुंडलित

अंत में कुछ प्रश्न

1) जैसे-जैसे ग्रहों की गति के बारे में प्रेक्षण सही होते गये, टॉलमी द्वारा बनाया गया मॉडल उन्हें समझाने में असमर्थ हो गया।

2) प्रेक्षण करने पर बृहस्पति के इर्द-गिर्द घूमने वाले चंद्रमा (उपग्रह) आकाश में कोपर्निकस के मॉडल का छोटा रूप लगे। दूसरे, टॉलमी के मॉडल द्वारा शुक्र ग्रह की सभी अवस्थाएँ समझाई नहीं जा सकीं। इन प्रेक्षणों को समझाने का एक ही तरीका था कि शुक्र सूर्य के चारों ओर घूमता था जैसा कि चित्र 9.5 में दिखाया गया है।

3) i) सूर्य के अलावा भी कई अन्य तारे थे जो कि सौर परिवार के पृष्ठ पट पर नहीं थे बल्कि विस्तृत अंतरिक्ष में दूर-दूर तक फैले हुए पिंड थे।
ii) सौर परिवार आकाश गंगा मंदाकिनी का, जो कि तारों और गैस तथा धूल के बादलों से बना है, एक हिस्सा था।
iii) सूर्य आकाश गंगा मंदाकिनी के केंद्र में नहीं था।
iv) आकाश गंगा मंदाकिनी के अलावा और मंदाकिनियाँ भी थीं जैसे एंड्रोमिडा मंदाकिनी।
v) आकाश गंगा मंदाकिनी विस्तृत अंतरिक्ष में फैली हुई अनगिनत मंदाकिनियों में से एक थी।
vi) मंदाकिनियाँ एकत्रित होकर समूह बनाती थीं जो कि अंतरिक्ष में फैले हुए विशाल अतिसमूहों का एक हिस्सा थे। इस प्रकार ब्रह्मांड की न तो कोई सीमा थी और न ही कोई केंद्र।

4) क) अ ख) स ग) अ घ) अ ङ) स च) स

5) क) iii ख) v ग) ii घ) vi ङ) i च) iv

इकाई 10 ब्रह्मांड की खोज

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
10.2 ब्रह्मांड का अन्वेषण
दृश्य एवं अदृश्य विकिरण
तारकीय प्रकाश की खोज में
रेडियों तरंगों द्वारा तारों का अध्ययन
आकाश से आने वाले संदेश
अन्तरिक्षीय अभियान
10.3 ब्रह्मांड को समझना
आइए तारों के बारे में जानें
तारे का जीवन चक्र
फैलता हुआ ब्रह्मांड
ब्रह्मांड की उत्पत्ति
10.4 सारांश
10.5 अंत में कुछ प्रश्न
10.6 उत्तर

10.1 प्रस्तावना

इकाई 9 में आपने ब्रह्मांड की संरचना के बारे में संक्षेप में पढ़ा। आप जानते हैं कि ब्रह्मांड का एक निश्चित स्वरूप है। बहुत बड़े पैमाने पर देखने से ब्रह्मांड अतिसमूहों से बना दिखाई देता है। ये अतिसमूह बड़े-बड़े समूहों से बने हैं और एक समूह में कुछेक से लेकर कुछ हजार तक की संख्या में मंदाकिनियाँ होती हैं। मंदाकिनियाँ तारों, गैसीय बादलों और नीहारिकाओं से बनती हैं हमारा अपना तारा सूर्य, आकाश गंगा मंदाकिनी में 100 अरब तारों में से एक साधारण तारा है। नौ ग्रह इसके चारों और घूमते हैं और पृथ्वी उनमें से एक है। यह सब पढ़ते हुए क्या आपने यह नहीं सोचा कि ब्रह्मांड के बारे में हमने ये जानकारियाँ कैसे हासिल कीं? क्योंकि किसी उपकरण की सहायता के बिना हम आकाश में बिखरे हुए कुछ हजार तारों को ही देख पाते हैं।

इस इकाई में हम ब्रह्मांड के विषय में आपकी इस जिज्ञासा को शांत करेंगे। हम उन विविध तकनीकों और उपकरणों के बारे में बताएंगे जिनसे हमें ब्रह्मांड के बारे में यह सब जानकारी मिली। किंतु किसी भी जानकारी का तब तक कोई महत्व नहीं होता जब तक कि व्यवस्थित ढंग से उसका विश्लेषण न कर लिया जाए और उसके बारे में एक समझ विकसित करने में उसका उपयोग न किया जाए। यही दुनिया भर के वैज्ञानिक हर रोज कर रहे हैं। छोटी-छोटी बहुत-सी जानकारियाँ प्राप्त करके वे ब्रह्मांड की रहस्यमय तस्वीर में संगत रंग भरने की कोशिश करते हैं। इस तस्वीर को हम आपको आसान तरीके समझाने की कोशिश करेंगे। जैसे-जैसे हम ब्रह्मांड की खोज करते हैं हमारे सामने कई प्रश्न उत्पन्न होते हैं, जिन्हें हल करना काफी कठिन होता है। फिर भी, संपूर्ण ब्रह्मांड का एक छोटा-सा हिस्सा ऐसा है जिसे हम अपेक्षाकृत बेहतर ढंग से समझते हैं। यह छोटा सा हिस्सा "सौर मंडल" है। इसके बारे में हम आपको अगली इकाई में बताएँगे।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- ब्रह्मांड की खोज करने की विभिन्न खगोलीय पद्धतियों के बारे में बता सकेंगे और यह समझा सकेंगे कि इन पद्धतियों के द्वारा किस प्रकार ब्रह्मांड के बारे में जानकारी हासिल की जाती है;
- तारों के बारे में अब तक के ज्ञान जैसे कि उनकी दूरियाँ, चमक, तापमान, गति आदि के बारे में बता सकेंगे;

- तारों का विकास कैसे होता है इसे आसान तरीके से समझा सकेंगे;
- ब्रह्मांड की उत्पत्ति और विकास के संबंध में प्रचलित सिद्धांतों की प्रमाण सहित व्याख्या कर सकेंगे।

10.2 ब्रह्मांड का अन्वेषण

जे.बी.एस. हाल्डेन (1892-1964) ब्रिटेन के एक जीव वैज्ञानिक थे, जो बाद में भारतीय नागरिक बन गये। उनके कार्य के बारे में आप इकाई 12 में पढ़ेंगे।

"मेरा अपना संदेह है कि ब्रह्मांड सिर्फ उतना ही अद्भुत नहीं है जितना हम सोचते हैं, बल्कि जितना हम सोच रहे हैं, यह उससे कहीं अधिक अद्भुत है।"

प्रसिद्ध वैज्ञानिक हाल्डेन (Haldane) के इस कथन से इस बात का पता चलता है कि ब्रह्मांड के विषय में ज्यादातर लोग क्या सोचते हैं। ब्रह्मांड का अध्ययन एक कठिन विषय है। हम प्रयोगशाला में ब्रह्मांड पर प्रयोग नहीं कर सकते। हम इसकी तुलना किसी दूसरे ब्रह्मांड से भी नहीं कर सकते, क्योंकि ब्रह्मांड केवल एक ही है। हम अंततः इसका एक हिस्सा हैं। इसलिए हम इसके भीतर रह कर ही इसका अध्ययन कर सकते हैं। हम ब्रह्मांड के बाहर जाकर इसका अवलोकन नहीं कर सकते।

तो हम इसका अध्ययन कैसे करते हैं? यहां हमें वैज्ञानिक पद्धति की मदद मिलती है। आपको यह जान लेना चाहिए कि ब्रह्मांड का अध्ययन अपने आप में वैज्ञानिक पद्धति का एक विशिष्ट उदाहरण है, क्योंकि हम इस पर कोई प्रयोग नहीं कर सकते। फिर भी, इसके बारे में हम जो प्रेक्षण करते हैं, उनसे हमें बहुत सी जानकारी प्राप्त होती है। इस जानकारी का विश्लेषण करके हम ज्ञात प्राकृतिक नियमों की मदद से ब्रह्मांड को समझते हैं। वैज्ञानिकों ने इन नियमों के आधार पर ब्रह्मांड के बारे में अनेक सिद्धांत और मॉडल बनाए हैं।

सिद्धांत और मॉडल प्रेक्षणों के आधार पर बनते हैं। आप यह पूछ सकते हैं कि ब्रह्मांड के बारे में क्या प्रेक्षण किए जा सकते हैं और यह कैसे किए जाते हैं। अब हम इन प्रश्नों के उत्तर देंगे। हम उपकरणों और पद्धतियों के मूल सिद्धांतों के बारे में विस्तार से चर्चा नहीं करेंगे। हमारा उद्देश्य आपको उपकरणों और पद्धतियों की विविधता की जानकारी देना है, जो ब्रह्मांड के प्रेक्षणों में प्रयोग की जाती हैं।

ब्रह्मांड के बारे में हमारा अधिकांश ज्ञान प्रकाश, उष्मा और अन्य विकिरणों जैसे रेडियों तरंगों (Radio waves), क्ष-किरणों (X-rays), गामा किरणों (Gamma rays) आदि के अध्ययन पर आधारित है। ये विकिरणें सूर्य तथा अन्य तारों से आती हैं। इन विकिरणों का पृथ्वी पर स्थित और पृथ्वी के चारों ओर भिन्न कक्षाओं में घूमती खगोलीय वेधशालाओं में विशिष्ट उपकरण रख कर पता लगाया जाता है। पिछले कुछ दशकों में पृथ्वी के नजदीक ग्रहों के बारे में अन्वेषण करने में सफलता मिली है। कई लोगों ने चन्द्रमा की यात्रा भी की और वहां से अध्ययन के लिए काफी सामग्री लेकर आए। इस प्रकार ब्रह्मांड के बारे में प्रेक्षण करने और जानकारी हासिल करने के कई तरीके हैं। किंतु इन तरीकों का वर्णन करने से पहले हम आपको अन्तरिक्षीय विकिरणों की कुछ विशेषताएँ बताएँगे जो ब्रह्मांड के रहस्यों को हम तक लाती हैं।

10.2.1 दृश्य एवं अदृश्य विकिरण

प्रकाश जीवन का एक अभिन्न अंग है। इसके बिना हम देख नहीं सकते। रंग प्रकाश की ही देन है। प्रकाश को **दृश्य विकिरण** भी कहा जाता है। प्रकृति में अन्य कई प्रकार के विकिरण है जिन्हें हम नहीं देख सकते। इन्हें **अदृश्य विकिरण** कहते हैं। अवरक्त विकिरणें (infrared rays), पराबैंगनी विकिरणें (Ultraviolet rays), रेडियों तरंगें (Radio waves), क्ष-किरणें (X-rays) और गामा किरणें (Gamma rays) अदृश्य विकिरणों के कुछ उदाहरण हैं। अपने जीवन में हम इन सभी विकिरणों के सम्पर्क में हैं। उदाहरण के लिए, अवरक्त विकिरणें गर्म वस्तुओं जैसे हमारे शरीर, कक्ष तापक (room heater), और दिन की गर्मी के बाद पृथ्वी से निकलती हैं। रैटल साँप अवरक्त विकिरणों को अच्छी तरह से पहचान लेते हैं। पराबैंगनी विकिरणें जीवाणुओं को मार सकती हैं। ये हमारे लिए अदृश्य हैं, किंतु गुंज भक्षिकाएं (bumble bees) इन्हें पहचान लेती हैं। रेडियों तरंगे दूरदर्शन और आकाशवाणी से प्रसारित होती हैं, जिन्हें टी.वी. और रेडियों सेट एंटीना के माध्यम से लेते हैं। इस प्रकार ये दूरसंचार के लिए उपयोगी हैं। इन विकिरणों को चमगादड़ भी पहचान लेते हैं। क्ष-किरणों का प्रयोग चिकित्सा में होता है। गामा किरणों का उपयोग कैंसर के इलाज में होता है और ये नाभिकीय विस्फोटों से भी उत्पन्न होती है।

इन सभी विकिरणों—गामा किरणों, क्ष-किरणों, पराबैंगनी किरणों, प्रकाश अवरक्त किरणों और रेडियों तरंगों का खगोलशास्त्र में बहुत अधिक उपयोग होता है। वास्तव में ये सभी विकिरणें **विद्युत चुंबकीय विकिरण** (electromagnetic radiation) के ही विभिन्न रूप हैं। विद्युत चुंबकीय विकिरण ऊर्जा का एक रूप है। ऊर्जा के अन्य रूपों से भी आप परिचित होंगे। जैसे कि ऊष्मा, ध्वनि या फिर घड़ी की कमानी में संचित यांत्रिक ऊर्जा। आमतौर पर हम सोचते हैं कि विद्युत चुंबकीय विकिरणें तरंगों से बनी हैं जो शून्य में प्रकाश की गति से चलती हैं। तरंगों का सबसे सरल उदाहरण जिसे आप देख सकते हैं, वे हैं किसी तालाब या समुद्र में पानी के तल पर बनी तरंगे या फिर डोरी के कंपन से पैदा होने वाली तरंगें आदि। हवा में लहराते हुए पर्दे पर भी आपने तरंगें देखी होंगी। कुछ लोगों के बाल भी तरंगों जैसे लहरदार होते हैं। तरंगें क्या हैं या विद्युत चुंबकीय तरंगों की विशिष्ट प्रकृति क्या है, इसका हम यहाँ विस्तार से अध्ययन नहीं करेंगे। इनके बारे में अधिक जानकारी के लिए आप इस खंड में बताई गई पुस्तकों का अध्ययन कर सकते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विभिन्न प्रकार की विद्युत चुंबकीय विकिरणें एक समान नहीं होतीं। इनमें क्या अंतर हैं?

विभिन्न विकिरणों की तरंग दैर्घ्य (wave length) भिन्न-भिन्न होती हैं, इसलिए उनमें निहित ऊर्जा भी भिन्न-भिन्न होती है।

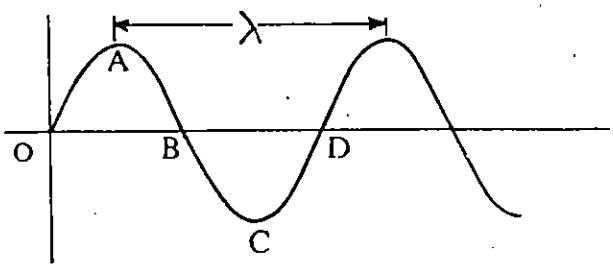

चित्र 10.1 तरंग और उसका तरंग दैर्घ्य

किसी तरंग की तरंग दैर्घ्य (wave length) से हम क्या समझते हैं? इसे समझने के लिए चित्र 10.1 देखिए। एक गतिशील तरंग को दर्शाने का यह आम तरीका है। दो क्रमिक शृंग (crests) या गर्त (troughs) के बीच की दूरी को **तरंग दैर्घ्य** कहते हैं। इसे मीटरों में मापा जाता है। चित्र में OABCD द्वारा दिखाये गये वक्र को एक साईकिल (cycle) कहा जाता है। एक सेकंड में तरंग द्वारा जितनी साईकिल पूरी की जाती है उसे उसकी आवृत्ति (frequency) कहते हैं। इसे साईकिल प्रति सेकंड या हर्ज़ (hertz) में मापा जाता है। तरंग दैर्घ्य λ और आवृत्ति f का गुणनफल तरंग की गति c के बराबर होता है।

चिह्न λ ग्रीक भाषा का अक्षर है जिसे लैम्डा कहा जाता है।

$$\lambda f = c$$

अतः यदि हमें इनमें से किन्हीं दो राशियों का ज्ञान हो तो हम तीसरे की गणना कर सकते हैं। किसी भी तरंग में, जिसकी आवृति f है, निहित ऊर्जा E को निम्नलिखित सूत्र द्वारा दर्शाया जाता है।

$$E = hf = hc/\lambda$$

यहां h एक स्थिरांक है जिसे प्लैंक का स्थिरांक कहा जाता है। इस प्रकार किसी तरंग की जितनी ऊंची आवृत्ति या छोटी तरंग दैर्घ्य होगी वह अंतरिक्ष में उतनी ही अधिक ऊर्जा ले जा सकती है। पराबैंगनी किरणें, क्ष-किरणें और गामा किरणें ऊर्जा का विशाल भंडार हैं, इसलिए इन किरणों से लगातार संपर्क काफ़ी हानिकारक हो सकता है। यह अच्छा ही है कि ये किरणें अधिकतर वायुमंडल के बाहर ही रह जाती हैं। अगर सभी प्रकार की विकिरणों को उनकी तरंग दैर्घ्य के अनुसार क्रमबद्ध किया जाये तो इस क्रम को विद्युत चुंबकीय स्पेक्ट्रम कहते हैं (चित्र 10.2)।

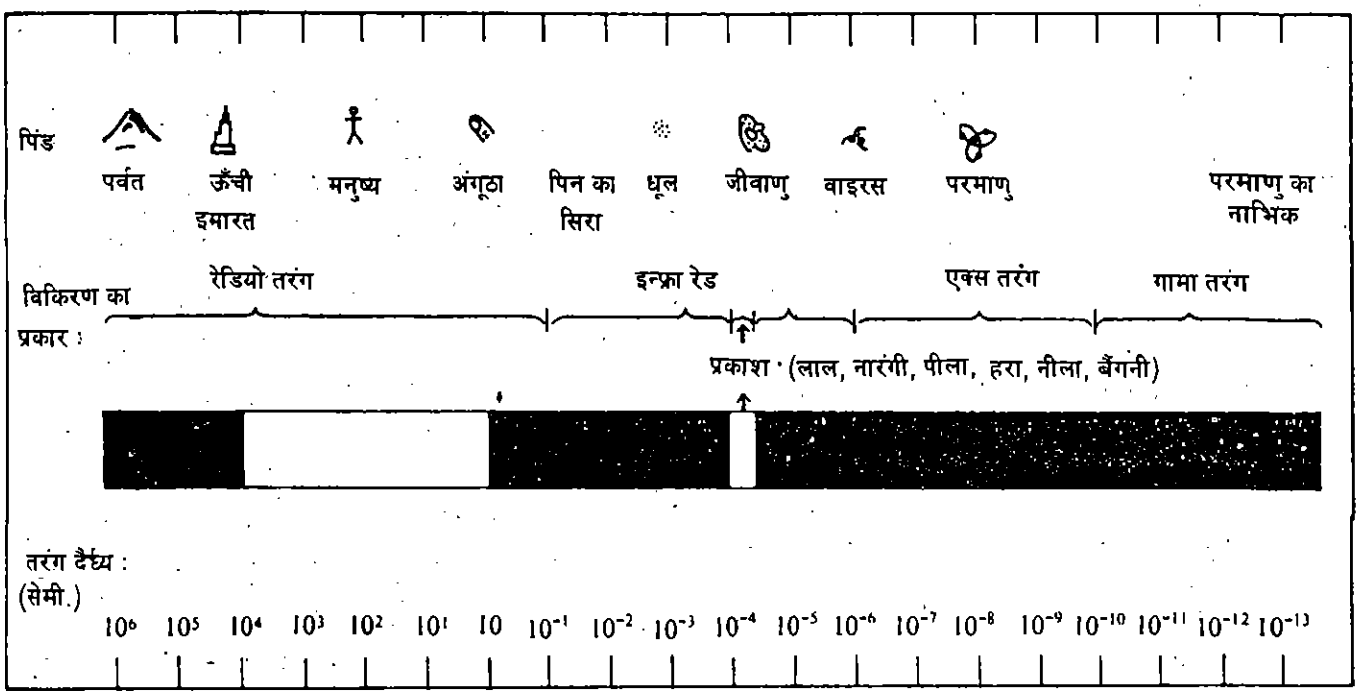

चित्र 10.2 विद्युतचुंबकीय स्पेक्ट्रम। सफेद हिस्से रेडियो तरंगों और प्रकाश तरंगों को दिखाते हैं। प्रकाश तरंगों में बैंगनी रंग (तरंग दैर्घ्य 4×10^{-5} से.मी.) से लाल रंग (तरंग दैर्घ्य 8×10^{-5} से.मी.) तक की तरंगें शामिल हैं। चित्र में दिखाये गये पिंडों का आयम संगत तरंग दैर्घ्यों के आयाम जितना है।

बोध प्रश्न 1

क) मान लीजिए कि आकाशवाणी का प्रसारण किसी दिन इस प्रकार आरंभ होता है: यह आकाशवाणी है। इस समय आप मीडियम वेव (मध्य तरंग) 375 मीटर पर अर्थात् 800 किलो हर्ज़ पर कार्यक्रम सुन रहे हैं। आप तरंग के किस तरंग दैर्घ्य और आवृत्ति पर रेडियों सुन रहे हैं? यह तरंग विद्युत चुंबकीय स्पेक्ट्रम के किस भाग में स्थित हैं?

.....

ख) (क) में दी गयी रेडियों तरंग की गति की गणना कीजिए।

.....

ग) रेडियो प्रसारण के लिए तरंग दैर्घ्य और आवृत्ति के लिए किस परास (range) का उपयोग किया गया है? (आप अपने रेडियों पर अंकित चिह्नों को पढ़ सकते हैं)।

.....

घ) सबसे छोटी तरंग दैर्घ्य की तरंगों को क्या कहते हैं?

.....

ङ) सबसे बड़ी तरंग दैर्घ्य की तरंगों को क्या कहते हैं?

.....

प्रकाश एक ऐसा विकिरण है जिसके प्रति मनुष्य की आंखें संवेदनशील हैं अर्थात् हम दृश्य विकिरण को देख सकते हैं। लेकिन यह विद्युत चुंबकीय स्पेक्ट्रम का एक छोटा-सा भाग है। श्वेत प्रकाश या सूर्य से आने वाले प्रकाश के प्रिज़्म से गुज़रने पर इसके इंद्रधनुषी रंग दिखाई देते हैं, जैसे—बैंगनी, जामुनी, नीला, हरा, पीला, नारंगी और लाल। प्रत्येक रंग के लिए तरंग दैर्घ्यों का एक विस्तार (range) होता है। बैंगनी रंग की तरंग दैर्घ्य सबसे छोटी है और लाल रंग की सबसे बड़ी है। अंतरिक्षीय पिंडों से हर प्रकार तरंग दैर्घ्य वाली किरणें उत्सर्जित होती हैं। दृश्य प्रकाश सूर्य से आने वाली विकिरणों का केवल 40 प्रतिशत होता है। शेष अन्य प्रकार की विकिरणें होती हैं। जब ये सभी विकिरण पृथ्वी पर पड़ती हैं तो प्रकाश और रेडियो तरंगों के अलावा अन्य विकिरणें वायुमंडल में अन्तर्लीन हो जाती हैं। केवल प्रकाश और रेडियो तरंगें ही वायुमंडल को पार करके पृथ्वी की सतह तक पहुंचती हैं। इसलिए ये ब्रह्मांड को जानने के दो स्रोत माने गये हैं। इन स्रोतों के अलावा अन्य तरंग दैर्घ्य की किरणों को केवल वायुमंडल के बाहर से ही देखा जा सकता है।

बोध प्रश्न 2

क) विद्युत चुंबकीय विकिरणों के किस तरंग दैर्ध्य के परास को हम आंखों से देख पाते हैं? बैंगनी और लाल रंग की आवृत्तियों की गणना कीजिए।

.....

ख) नीले और हरे रंगों के विकिरणों में से कौन-सा रंग अधिक ऊर्जा का स्रोत है?

.....

ग) विद्युत चुंबकीय विकिरणों में किन-किन तरंग दैर्ध्यों की किरणों का हम पृथ्वी से पता लगा सकते हैं?

.....

अब जबकि आपको तारों से आने वाली विभिन्न विकिरणों का कुछ ज्ञान हो गया है तो आइए देखें, कि खगोलशास्त्री इन विकिरणों को एकत्रित करने के लिए किन-किन तरीकों का इस्तेमाल करते हैं। इन तारों से आने वाले प्रकाश को एकत्र करने के तरीकों से अपनी बात शुरू करते हैं।

10.2.2 तारकीय प्रकाश की खोज में

किसी भी अंतरिक्षीय पिंड के प्रकाश का अध्ययन करने का सबसे आसान तरीका यह है कि उसे एक दूरबीन द्वारा एकत्र करके फ़ोटोग्राफ़िक फ़िल्म पर रिकार्ड कर लिया जाए। दूरबीन से दूरस्थ तारों के प्रकाश को फ़ोटोग्राफ़िक फ़िल्मों पर काफ़ी लंबे समय तक और कभी कई-कई रातों तक एकत्र किया जाता है। चूंकि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है, इसलिये तारे आसमान में गति करते हुए दिखाई देते हैं। दूरबीन को तारों की गति के साथ-साथ चलाना पड़ता है जिससे कि दोनों की गति समन्वित हो। इस तरह दूरबीन उन तारों पर सधायी जाती है जिनका अध्ययन किया जा रहा है। इस तरह बहुत धुँधले दिखाई देने वाले तारे धीरे-धीरे फ़ोटो की प्लेट पर दिखाई देने लगते हैं। अंतरिक्ष से प्रकाश को एकत्रित करके और उसका अध्ययन करने को **प्रकाशीय खगोल विज्ञान** कहते हैं।

सदियों से खगोलशास्त्री दूरबीनों में सुधार करते रहे हैं। गैलीलियों के ज़माने के छोटे लेन्स आज विशाल दूरबीनों का रूप ले चुके हैं। तीन साधारण काँच के टुकड़े, लेन्स, दर्पण और प्रिज़्म कुछ सौ वर्षों के दौरान मनुष्य के हाथों में अनेक जटिल और शक्तिशाली उपकरणों में बदल गये हैं। क्या हमें मानव मस्तिष्क की इस कुशलता पर विस्मय नहीं होना चाहिए?

आधुनिक टेलीस्कोपों में फ़ोकस करने के लिए इस्तेमाल होने वाले लेंस और दर्पण काफ़ी बड़े होते हैं। खगोलशास्त्री इनके द्वारा बहुत दूर स्थित मंदाकिनियों और धुंधले तारों को भी देख सकते हैं। अब तक का सबसे बड़ा टेलीस्कोप रूस में काकेसस पहाड़ की चोटी पर कार्यरत है। अरिज़ोना, हवाई, आस्ट्रेलिया और चिली के पहाड़ों पर कई बड़े टेलीस्कोप रखे गये हैं। भारत में मुख्य प्रकाशीय वेधशालाएं नैनीताल, गुरुशिखर (माउंट आबू के पास), उदयपुर, जापाल रंगपुर (हैदराबाद के पास), कावालूर और कोडै-कनाल में स्थित हैं। इसके अलावा कई छोटे-छोटे टेलीस्कोपों के द्वारा रात्रि में आकाश का अध्ययन किया जाता है जिससे अंतरिक्ष के बारे में हमारे ज्ञान में वृद्धि होती है।

आकाश से आने वाले प्रकाश के विश्लेषण के अलावा और भी कई तरीके हैं जिनसे ब्रह्माण्ड के बारे में जाना जा सकता है। **रेडियो खगोलिकी** इनमें से एक है। आजकल वैज्ञानिक अंतरिक्षीय पिंडों का बहुत संवेदनशील रेडियो दूरबीनों द्वारा अध्ययन करते हैं। आइए देखें कि यह विधि क्या है।

10.2.3 रेडियो तरंगों द्वारा तारों का अध्ययन

तारों से रेडियो तरंगें निकलती हैं, इस तथ्य की खोज अचानक ही एक इंजीनियर कार्ल जान्सकी ने सन् 1932 में की। उस समय वे अटलांटिक के आर-पार होने वाली टेलीफोन वार्ता में शोर के स्रोत को ढूंढने की कोशिश कर रहे थे। उन्होंने इस समस्या का अध्ययन करने के लिए एक प्रायोगिक रेडियोग्राही (radio receiver) बनाया। यह जानकर कि टेलीफोन वार्ता में होने वाला शोर आकाश गंगा मंदाकिनी से आने वाली रेडियो तरंगों के कारण था, वे आश्चर्यचकित रह गये। यह **रेडियो खगोलिकी विज्ञान**, अर्थात् अंतरिक्षीय पिंडों से आने वाली रेडियो तरंगों द्वारा उनके अध्ययन की, शुरुआत थी। रेडियो खगोलिकी में इस्तेमाल होने वाला मुख्य उपकरण रेडियो टेलीस्कोप है, जो अंतरिक्ष से आने वाली रेडियो तरंगों को एकत्र करता है। भारतीय खगोलशास्त्रियों द्वारा बनाया गया ऊटकमंड में स्थित रेडियो टेलीस्कोप विश्व भर में लगाये गये

अन्य बड़े रेडियो टेलीस्कोपों में से एक है। भारत में लगाये गये अन्य रेडियो टेलीस्कोप गुलमर्ग, अहमदाबाद, गौरी बिदानूर (बेंगलूर के निकट) में स्थित हैं।

जिस तरह हम रेडियो द्वारा अपना मनचाहा स्टेशन सुन सकते हैं उसी तरह रेडियो टेलीस्कोपं द्वारा मनचाही तरंग दैर्ध्य की रेडियो तरंगों को एकत्र किया जा सकता है। रेडियो टेलीस्कोप अदृश्य ब्रह्माण्ड का ही "दृश्य" प्रस्तुत नहीं करता बल्कि प्रकाशीय टेलीस्कोप की तुलना में अधिक गहराई से अंतरिक्ष की खोजबीन कर सकता है। रेडियो तरंगें अंतरिक्ष में धूल भरे बादलों को पार कर सकती हैं, जैसे कि पृथ्वी पर खराब या धुंध भरे मौसम में भी रेडियो सिगनल सुनाई देते हैं। इस प्रकार रेडियो खगोलशास्त्री रेडियो तरंगों द्वारा अंतरिक्ष के उन हिस्सों की तस्वीर भी बना सकते हैं जिन्हें प्रकाशीय टेलीस्कोप से नहीं देखा जा सकता। लेकिन साधारणतया रेडियो टेलीस्कोप एक बार में कुछ ही तरंग दैर्ध्यों को एकत्रित करते हैं।

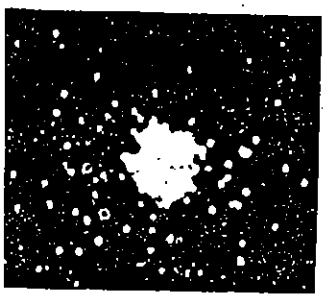

चित्र 10.3

रेडियो टेलीस्कोप द्वारा सैकड़ों अंतरिक्षीय पिंडों की खोज की जा चुकी है जो रेडियो तरंग विसर्जित करते हैं। उनमें से अधिकतर पिंड प्रकाशीय टेलीस्कोप द्वारा भी देखे जा चुके हैं। रेडियो टेलीस्कोप की सहायता से ही पल्सर (pulsar) जैसे अंतरिक्षीय पिंडों की खोज हुई है। पल्सर वे तारे हैं जिनमें एक निश्चित सूक्ष्म अन्तराल के बाद प्रकाश व रेडियो तरंगें निकलती रहती हैं। उदाहरण के तौर पर पृथ्वी से 6,000 प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित कर्क नीहारिका (crab nebula) के मध्य में स्थित पल्सर से एक सेंकड में 30 बार प्रकाश व रेडियो तरंगें निकलती हैं।

कुछ अन्य रेडियो तरंगों के स्रोतों, जैसे 3C273 को, जिनकी खोज रेडियो टेलीस्कोप द्वारा हुई, प्रकाशीय दूरबीन द्वारा देखने पर अलग तरह का पाया गया। उन्हें क्वासन (quasar) कहा गया। क्वासर, जो "क्वासी स्टेलर रेडियो स्रोत" (quasi stellar radio source) का संक्षिप्त रूप है, अरबों प्रकाश वर्ष दूर स्थित तारों जैसे पिंड हैं। सभी क्वासर रेडियो स्रोत नहीं होते। क्वासर से आने वाली विद्युत चुंबकीय तरंगें क्योंकि पृथ्वी तक पहुंचती हैं, इसलिए यह कहा जा सकता है कि इनसे काफी मात्रा में ऊर्जा निकलती है। क्वासर का आकार अपेक्षाकृत छोटा होता है, जिसका फैलाव केवल एक प्रकाश माह का होता है। अर्थात् यदि आप आकाश गंगा मंदाकिनी की कल्पना एक फुटबाल के मैदान के रूप में करें तो क्वासर उसमें स्थित एक धूल कण के समान होगा; किंतु आकाश गंगा मंदाकिनी की तुलना में इससे 100 गुना अधिक ऊर्जा निकलती है।

वैज्ञानिकों ने कई दीर्घवृत्तीय मंदाकिनियों की भी खोज की है जो रेडियो तरंगों की सशक्त स्रोत हैं। इन्हें प्रकाशीय टेलीस्कोप द्वारा देखने पर कोई महत्व नहीं दिया गया था। इन्हें **"रेडियो मंदाकिनियाँ"** कहा जाता है। किसी मंदाकिनी का केंद्र अक्सर रेडियो तरंगों का एक सशक्त स्रोत है। मंदाकिनियों के मध्य भाग में काफी मात्रा में स्थित पदार्थ तथा गैस में तेज गति से हलचल होती रहती है। इस हलचल से रेडियो तरंगें उत्पन्न होती हैं। रेडियो टेलीस्कोप से अंतरातारकीय अंतरिक्ष में कार्बनिक अणुओं के होने का भी पता चला है।

बोध प्रश्न 3

क) रेडियो टेलीस्कोप और प्रकाशीय टेलीस्कोप में चार अन्तर बताइए।

.....

.....

.....

.....

ख) रेडियो दूरबीनों की सहायता से अंतरिक्ष में कौन से नये अन्वेषण हुए?

.....

10.2.4 आकाश से आने वाले संदेश

उल्काओं के बारे में विस्तृत जानकारी इकाई 11 के भाग 11.4.4 में दी गयी है।

हमारे ग्रह पृथ्वी पर आकाश से केवल प्रकाश और रेडियों तरंगें ही नहीं आतीं बल्कि अन्य पिंड जैसे उल्काएं भी समय-समय पर पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करती रहती हैं। ये उल्काएं (meterorites) उन अंतरिक्षीय पिंडों के बारे में बहुत सी जानकारी लाती हैं जिनसे वे टूटकर पृथ्वी पर आती हैं। पृथ्वी पर लगातार अन्तरिक्ष से कास्मिक किरणें (cosmic rays) भी आती हैं। जैसा कि आप पहले पढ़ चुके हैं, ये किरणें इलेक्ट्रॉन प्रोटॉन और हीलियम नाभिकों से बनी हैं और अंतरिक्ष में बहुत तेजी से, लगभग प्रकाश की गति से चलती हैं। इन किरणों की उत्पत्ति और अंतरिक्ष में उनकी गतिशीलता वैज्ञानिकों के लिए अभी तक रहस्य बनी हुई है। इस रहस्य के

सुलझने पर हमें अन्तरातारकीय आकाश के बादलों, तारों और मंदाकिनियों के बारे में भी और अधिक जानकारी मिल सकेगी।

10.2.5 अन्तरिक्षीय अभियान

कभी-कभी पृथ्वी के वायुमंडल की परिस्थितियों से अंतरिक्ष से आने वाले प्रकाश और रेडियों तरंगों में विकृति आ जाती है। उदाहरण के रूप में तूफान से रेडियों तरंगों में बाधा पड़ती है, या बादल प्रकाश को धुंधला करते हैं। तब प्रकाश या रेडियों दूरबीनों द्वारा ब्रह्मांड का अध्ययन नहीं संभव होता। ऐसा न हो तो भी खगोलशास्त्रियों ने आधुनिक विज्ञान और तकनीकी के द्वारा ऐसे कई नये तरीके खोजे हैं जिनसे ब्रह्मांड की खोज की जा सकती है। अब हम इन सबका संक्षिप्त वर्णन करेंगें।

अंतरिक्ष में वेधशालाएँ

अंतरिक्ष युग में आगमन के साथ-साथ टेलीस्कोप और कैमरा से युक्त वेधशालाएँ पृथ्वी के वायुमंडल के बाहर अंतरिक्ष में स्थापित की गयी हैं। वेधशालाएँ अंतरिक्ष में पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए कृत्रिम उपग्रहों के रूप में हो सकती हैं, जैसे कि परिक्रमा करती हुई मानवरहित खगोलीय वेधशालाएँ, स्काईलेब, आइनस्टीन वेधशाला, रेडियोखगोलीय उपग्रह, इन्फ्रा रेड एस्ट्रोनॉमी सैटलाइट (आइ.आर.ए.एस.) आदि। अन्य वेधशालाएँ चंद्रमा और अन्य ग्रहों पर जहां भी अनुकूल परिस्थितियाँ हैं भी स्थापित की गई हैं। ऊँचाई पर उड़ते हुए गुब्बारों, राकेट या हवाई जहाज पर भी प्रेक्षण के लिए उपकरण रखे जा सकते हैं। ये वेधशालाएँ अन्तरिक्षीय पिंडों से आती हुई अवरक्त विकिरणों, परावैंगनी विकिरणों, गामा किरणों और क्ष-किरणों को रिकार्ड कर सकती हैं जो पृथ्वी के वायुमंडल में अन्तर्लीन हो जाती हैं।

पड़ोसी संसार की सैर

जैसे-जैसे अंतरिक्षीय विज्ञान में प्रगति होने लगी, अन्य ग्रहों पर भी अंतरिक्षीय यान भेजना संभव होने लगा। यहां तक कि इंसान और उपकरण चंद्रमा पर भी पहुंच गये। इन अभियानों से सौर परिवार के बारे में बहुत-सी जानकारी मिली है। उदाहरण के रूप में चंद्रमा तक जाने वाले अपोलो मिशन के अंतरिक्ष यात्री चंद्रमा की चट्टानें, मिट्टी के नमूने, और चंद्रमा की सतह की तस्वीरें अपने साथ लाये तथा अध्ययन के लिए चंद्रमा पर बहुत से उपरकरण भी छोड़ आये।

अपने पड़ोसी ग्रहों के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए हमें अंतरिक्ष यानों को सौर परिवार में भेजने में सफलता मिली है। ये अन्तरिक्षीय यान लगभग सभी ग्रहों और उनके मुख्य उपग्रहों तक पहुँच चुके हैं। मंगल तथा शुक्र ग्रहों पर इन्हें सफलतापूर्वक उतारा जा चुका है।

अमरीकी अंतरिक्ष यान पॉयनियर-10 सन् 1983 में वरुण (neptune) ग्रह के कक्ष को पार करके सौर परिवार से बाहर जाने वाला पहला मानव-निर्मित यान था। पृथ्वी से किये गये प्रेक्षणों और इन उपग्रहों द्वारा भेजे गये आँकड़ो की मदद से वैज्ञानिक सौर परिवार की उत्पत्ति और विकास को बेहतर ढंग से समझ सके। सौर परिवार के बारे में प्रेक्षणों से प्राप्त जानकारी, हम आपको इकाई 11 में देंगे।

बोध प्रश्न 4

क) आइन्स्टीन वेधशाला तथा अन्वेषी पायनियर-10 में क्या अंतर है?

.....

.....

.....

ख) पृथ्वी के परे अन्तरिक्षीय वेधशालाएँ और अंतरिक्षीय अन्वेषी के अलावा कौन से अन्य तरीके हैं जिनसे ब्रह्मांड के बारे में जानकारी इकट्ठी की जा सकी है?

.....

.....

हमने यहाँ संक्षेप में विभिन्न उपकरणों के बारे में बताया है जिनके इस्तेमाल से खगोलशास्त्री ब्रह्मांड का प्रेक्षण करते हैं। इन तरीकों की जानकारी देना इसलिए ज़रूरी है कि आप खगोलशास्त्र में प्रेक्षण के महत्व को समझ सकें। ब्रह्मांड हमारी कल्पना से कहीं अधिक रहस्यमय और जटिल है। हम जिन परिकल्पनाओं या सिद्धांतों को बनाते हैं उनकी पुष्टि प्रेक्षणों से

अवश्य होनी चाहिए। यही कारण है कि खगोलशास्त्री दिन-प्रतिदिन प्रेक्षणों के लिए नयी और बेहतर तकनीकों की खोज कर रहे हैं, ताकि अपनी परिकल्पनाओं और सिद्धांतों को सिद्ध करने के लिए ब्रह्मांड के बारे में अधिक से अधिक जानकारी हासिल कर सकें

अब हम आपको कुछ समय के लिए विश्राम करने की सलाह देंगे। आप एक कप चाय या कॉफी पिएँ और अब तक जो पढ़ा है उस पर विचार करें।

10.3 ब्रह्मांड को समझना

अब तक आपने यह पढ़ा कि ब्रहमांड के बारे में किस तरह जानकारी हासिल की जाती है। यह जानकारी मुख्य रूप से अंतरिक्षीय पिंडों के चित्रों के रूप में और उनसे आने वाले प्रकाश के स्पेक्ट्रम (spectrum) के रूप में रिकार्ड की जाती है। अंतरिक्ष से आने वाली अन्य विकिरणें विभिन्न तरीकों से रिकार्ड की जाती हैं, जैसे अंकों की लंबी पट्टी के रूप में और कम्प्यूटर में आदि। इस जानकारी का विश्लेषण और व्याख्या करके ब्रह्मांड तथा इसके घटकों के संबंध में सिद्धांत बनाये जाते हैं।

नयी-नयी खोजों के आधार पर ब्रह्मांड से संबंधित परिकल्पनाओं और सिद्धांतों में हमेशा परिवर्तन होते रहते हैं। कभी-कभी कोई सिद्धांत गलत भी साबित हो सकता है। प्रेक्षण से प्राप्त जानकारियों का भी गलत मतलब निकाला जा सकता है। वास्तव में यह ज़रूरी नहीं है कि कोई भी सिद्धांत ब्रह्माड के बारे में किये गये प्रेक्षणों से शत-प्रतिशत मेल खाता हो। ब्रह्मांड के विषय में एक सही सिद्धांत वही है जो उससे संबंधित प्रेक्षणों के साथ काफी हद तक मेल खाता हो। दूसरी तरफ ब्रह्मांड के विषय में कुछ सिद्धांत केवल अंदाजे से बनाये गये हैं। अब हम आपको कुछ सिद्धांतों और धारणाओं के बारे में बताएँगे जो तारों, मंदाकिनियों और संपूर्ण ब्रह्मांड को बेहतर तरीके से समझाती हैं। आइए, पहले देखें कि प्राप्त जानकारी के आधार पर तारों के बारे में क्या-क्या जाना जा सकता है।

10.3.1 आइए, तारों के बारे में जानें

खगोलशास्त्र में बिंदु जैसे दिखने वाले तारे हमेशा ही कुछ न कुछ प्रश्न उठाते रहे हैं, जैसे कि तारे कहां हैं? उनकी चमक कितनी है? उनका तापमान, आकार और उम्र आदि क्या है? तारे किस चीज से बने हैं? खगोलविज्ञान में हुई प्रगति के कारण खगोलशास्त्री तारकीय प्रकाश को सही रूप में समझ कर ऐसे कुछ प्रश्नों का उत्तर देने में सफल हुए हैं।

तारे कहाँ हैं?

खगोल वैज्ञानिक तारों की दूरी मापने के लिए अनेक तरीकों का इस्तेमाल करते हैं। निकटस्थ तारों की दूरी तारकीय लंबन की विधि से नापी जा सकती हैं (देखिये चित्र 9.6)। अधिक दूरी पर स्थित तारों के लिए अधिक विकसित तरीकों का इस्तेमाल किया जाता है। हम इन विधियों का वर्णन यहाँ विस्तार से नहीं करेंगे। बहुत अधिक दूरी पर स्थित खगोलीय पिंडों की दूरी उनके प्रकाश के स्पेक्ट्रम की रेखाओं के "लाल स्थानान्तरण" द्वारा निकाली जाती है। जब कोई भी दूरस्थ पिंड, जैसे मंदाकिनी, क्वासर आदि, हमसे दूर जाते हैं तो उनके प्रकाश के स्पेक्ट्रम की रेखायें लाल छोर की ओर स्थानान्तरित हो जाती हैं। इस स्थानांतरण को नापा जा सकता है और फिर सूत्रों द्वारा उन पिंडों की दूरी की गणना की जा सकती है। इस पाठक्रम के आडियो प्रोग्राम "अंतरिक्षीय दूरियाँ नापना" में इस विषय पर जानकारी दी गई है।

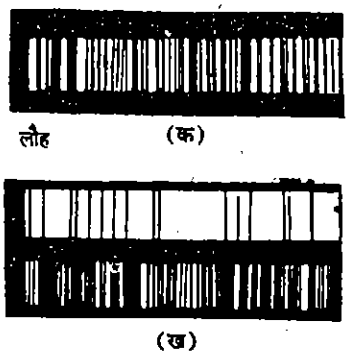

चित्र 10.4 (क) तारे के घटक उसके प्रकाश के स्पेक्ट्रम पर बनी रेखाओं के पैटर्न से पता चलते हैं जो भिन्न तत्वों के लिए भिन्न होती हैं; (ख) स्पेक्ट्रम में पाई जाने वाली रेखाओं की संख्या से तारे के तापमान का पता चलता है। ऊंचे ताप वाले तारों के स्पेक्ट्रम में कम रेखाएं होती हैं।

तारों की पहचान

तारकीय प्रकाश के बारे में सबसे अधिक जानकारी उसके स्पेक्ट्रम (spectrum) से प्राप्त हो सकती है। यदि एक लेंस के आकार के प्रिज्म को किसी टेलीस्कोप के सामने के भाग पर रख दिया जाए तो किसी भी तारे को एक रंगीन स्पेक्ट्रम के रूप में देखा जा सकता है। इस प्रिज्म के फ़ोकल तल (focal plane) पर यदि हम एक फोटोग्राफ़िक फिल्म रखें तो तारकीय प्रकाश के स्पेक्ट्रम को इस फिल्म पर रिकार्ड किया जा सकता है। लेकिन खगोलशास्त्री स्पेक्ट्रम को रंगीन इंद्रधनुष की बजाय चित्र 10.4 में दिखाये गये काले व सफेद पैटर्न जैसा देखते हैं। जिस तरह प्रत्येक व्यक्ति की उँगलियों के निशान अलग होते हैं, इसी तरह प्रत्येक तारे का अपना एक विशेष स्पेक्ट्रम होता है।किसी तारे के स्पेक्ट्रम से यह जाना जा सकता है कि तारा किन तत्वों से बना है? इसका तापमान क्या है, इसकी चमक कितनी है और वह कितनी तेज़ी से गति करता है?

बोध प्रश्न 5

तारकीय प्रकाश के स्पेक्ट्रम के विश्लेषण से कौन-सी चार जानकारियाँ प्राप्त की जा सकती हैं?

.....

.....

तारों की गतिशीलता

तारे आकाश में स्थिर नहीं हैं। वे मंदाकिनियों के अन्दर गतिशील रहते हैं। पृथ्वी की ओर या पृथ्वी से दूर गतिशील तारे की गति को उसकी स्पेक्ट्रमी रेखाओं में हुए स्थानान्तरण द्वारा जाना जाता है। यदि तारा पृथ्वी की ओर जाता है तो उसकी रेखाएं स्पेक्ट्रम में नीले रंग की ओर चली जाती हैं। यदि यह तारा पृथ्वी से दूर जाता है तो उसकी रेखाएं स्पेक्ट्रम से लाल रंग स्थानान्तरित हो जाती हैं। तारों की गति जितनी तेज होती है उनकी स्पेक्ट्रमी रेखाएँ उतनी ही अधिक स्थानांतरित होती हैं।

अब तक आप पढ़ चुके हैं कि ब्रह्मांड में विविध प्रकार के तारे हैं, जैसे नीले, पीले या लाल, छोटे या विशालकाय, स्पन्दन करने वाले या अत्यधिक ऊर्जा प्रदान करने वाले। इनमें से अधिकतर तारे समूहों में होते हैं। लगभग 25 प्रतिशत तारे ही सूर्य की तरह अंतरिक्ष में अकेले घूमते हैं। बाकी बचे तारों में लगभग 33 प्रतिशत तारे युग्म तारे (binary star) हैं और शेष तारे छोटे समूहों में घूमते हैं। युग्म तारा समूह में दो तारे एक दूसरे के चारों ओर परिक्रमा करते हैं। त्रिक् तारा में तीन तारे होते हैं और ये सब एक दूसरे के चारों ओर घूमते हैं या दो तारे मिल कर तीसरे तारे के चारों ओर घूमते हैं। अंतरिक्ष में कुछ दर्जन तारों से बने छोटे अल्प समूहों के साथ-साथ लाखों तारों से बने बड़े गोलाकार तारा समूह भी होते हैं। ये सभी विभिन्न तरीकों से घूमते हैं।

तारों की दूरी, रंग, चमक और गति आदि का अध्ययन करने के बाद खगोलशास्त्रियों और खगोलभौतिक शास्त्रियों का ध्यान अन्य प्रश्नों पर गया, जैसे तारे अपनी वर्तमान अवस्था में कैसे पहुँचे? इन प्रश्नों के उत्तर खोजने से तारों के विकास की एक पूर्ण तस्वीर हमारे सामने आयी है। इस तस्वीर से हमें यह पता चलता है कि कोई तारा कैसे उत्पन्न हुआ, कैसे,विकसित हुआ और उसका अंत कैसे होगा। अब हम तारों की विविधता और उनकी असाधारण किस्मों को, साधारण तारों के जीवन चक्र की विभिन्न अवस्थाओं के रूप में समझ सकते हैं।

परन्तु कुछ सौ वर्षों के दौरान हुए संक्षिप्त प्रेक्षणों से ही तारों के विकास की कहानी जान लेना कैसे संभव हो गया, जबकि किसी तारे को विकसित होने में लाखों, अरबों साल लग जाते हैं। यह कैसे संभव हो सकता है, इसे एक उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है। कल्पना कीजिए कि अंतरिक्ष से एक यात्री पृथ्वी पर एक घंटे के लिए आता है और उतने ही समय में हमारे बारे में जानकारी प्राप्त करना चाहता है। वह एक भीड़-भाड़ वाली जगह में अपने अंतरिक्ष यान की उतारता है और जल्दी ही वहाँ के लोगों की वीडियों फिल्म बना लेता है। यहाँ से जाने के बाद वह इस फिल्म को देखता है और पाता है कि अधिकतर लोग एक जैसे आकार के हैं, पर कुछ काफी छोटे हैं, कुछ इतने छोटे हैं कि उन्हें गोदी में उठाने की आवश्यकता है, कुछ और लोग यद्यपि साधारण आकार के हैं, तथापि लाठी के सहारे झुककर चलते हैं। यह यात्री बुद्धिमान है इसलिए जल्दी ही यह समझ जाता है कि यह वृद्ध होने की प्रक्रिया को देख रहा है। लोग बहुत छोटे आकार में पैदा होते हैं, बड़े होते हैं और जीवन का अधिकांश हिस्सा क्रियाशील वयस्क के रूप में व्यतीत करके अंततः बूढ़े हो जाते हैं। क्योंकि बूढ़े लोगों की संख्या कम है इसलिए वह यात्री यह निष्कर्ष निकालता है कि ये लोग अंत में मर जाते हैं।

खगोलशास्त्रियों के लिए तारों की वही स्थिति है जो अतरिक्ष से आने वाले इस यात्री के लिए पृथ्वी पर स्थित लोगों की है। खगोलशास्त्रियों ने अपेक्षाकृत कम समय में ही लाखों तारों का अवलोकन किया है। उन्होंने तारों के प्रकाश के विस्तृत स्पेक्ट्रम लिये हैं तथा उनकी चमक एवं सतह के तापमान को मापा है। इन सभी जानकारियों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करके उन्होंने तारों के विकास को अच्छी तरह से समझा है। अब हम आपको तारों के विकास की यह कहानी सुनाएँगे

10.3.2 तारे का जीवन-चक्र

यह समझा जाता है कि नया तारा अधिकतर हाइड्रोजन गैस से बना होता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि किसी भी तारे का जन्म अन्तरातारकीय अंतरिक्ष में स्थित हाइड्रोजन गैस के बादलों में होता है। बल्कि अब यह विश्वास किया जाता है कि तारे इन गैस के बने बादलों में ही बनते हैं। कुछ अज्ञात कारणों से ये गैस के बादल सिकुड़ने लगते हैं। गैस के गुरुत्वाकर्षण के

कारण बादलों का सिकुड़ना बढ़ जाता है। एक बार ऐसी क्रिया शुरू हो जाए तो गैस के बादलों का काफी बड़ा हिस्सा इससे प्रभावित होता है। जैसे-जैसे गुरुत्वाकर्षण के कारण बादल संकुचित होते हैं वैसे-वैसे बादलों के अन्दर का दबाव बढ़ जाता है, और केंद्र का तापमान बढ़ जाता है। इस अवस्था को आदितारा (protostar) कहते हैं।

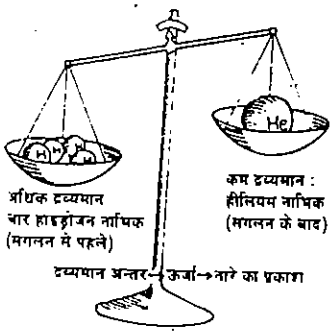

चित्र 10.5 तारों में हो रही परमाणु संगलन प्रक्रिया को दिखाने वाला चित्र।

जब तापमान अधिक (लगभग 40 लाख डिग्री सेंटीग्रेड) हो जाता है तो आदितारा में एक नाभिकीय क्रिया शुरू हो जाती है जिससे हाइड्रोजन नाभिक एक दूसरे के साथ मिलकर हीलियम नाभिक बनाते हैं (देखें चित्र 10.5)। इस क्रिया के कारण अत्यधिक ऊर्जा उत्पन्न होती है। यही ऊर्जा तारे की सतह तक पहुँच कर प्रकाश, ऊष्मा और अन्य प्रकार की विद्युत चुंबकीय विकिरणों के रूप में विकिरित होती है। इस ऊर्जा के कारण बाहर की तरफ लगने वाला एक दबाव उत्पन्न होता है। तारे का सिकुड़ना तभी समाप्त होता है जब आन्तरिक गुरुत्वाकर्षण बल इस विकिरत ऊर्जा द्वारा उत्पन्न बाह्य बल से संतुलित हो जाता है। इस समय तारे का आकार और तापमान स्थिर हो जाता है।

पिछले 5 अरब वर्षों से सूर्य स्थिर अवस्था में है। सूर्य में होने वाली नाभिकीय क्रियाएँ एक सेकंड में लगभग 40 करोड़ टन (4×10^{14} ग्राम) हाइड्रोजन को हीलियम में बदल देती हैं। यह समझा जाता है कि सूर्य अगले 5 अरब वर्षों तक स्थिर अवस्था में बना रहेगा।

जैसे-जैसे तारे के कोर में स्थित हाइड्रोजन ईंधन समाप्त होने लगता है, नाभिकीय क्रियाएँ कम होने लगती हैं और विकिरित ऊर्जा द्वारा उत्पन्न बाह्य बल कम हो जाता है। तारे का आंतरिक गुरुत्वाकर्षण बल इस बाह्य बल से अधिक हो जाता है जिससे तारे का कोर और अधिक सिकुड़ता है।

परन्तु इसके कारण कोर का तापमान बढ़ जाता है। इसी बीच तारे के कोर की बाहरी सतह में भी हाइड्रोजन नाभिक जलने लगते हैं। कोर द्वारा उत्पन्न अधिक ऊष्मा और बाहरी परतों में उत्पन्न ऊष्मा के कारण तारे के बाहरी हिस्से में उबाल तथा फैलाव आने लगता है। तारे का आकार बड़ा हो जाता है तथा इसकी चमक बढ़ जाती है। पर जैसे-जैसे तारे की बाहरी परत उसकी नाभिकीय भट्टी से दूर फैलती जाती है इसका तापमान कम हो जाता है। यह फूला हुआ तारा ठंडा हो जाता है और लाल रंग का दिखने लगता है। यदि यह तारा सूर्य से कई गुणा बड़ा और भारी होता है तो यह आर्द्रा की तरह सुपर रेड जायंट तारा बन जाता है। यदि तारा सूर्य से थोड़ा ही भारी या उसके आकार का होता है तो यह ज़रा-सा फूला हुआ रेड जायंट बन जाता है।

तारे की रेड जायंट अवस्था अपेक्षाकृत छोटी होती है। इस अवस्था में तारा हाइड्रोजन गैस को बहुत तेज़ी से इस्तेमाल करता है जिसके कारण उसके कोर में हीलियम की मात्रा बढ़ जाती है। जैसे-जैसे ईंधन जलता है, कोर का संकुचन बढ़ जाता है और तापमान लगभग 1,000 लाख डिग्री सेंटीग्रेड तक पहुंच जाता है। इस अवस्था में पहुंचने पर तारे के कोर में एक भिन्न किस्म की नाभिकीय क्रिया होती है जिसमें हीलियम नाभिक आपस में मिलकर कार्बन नाभिक बनाते हैं। तारे के जीवन की यह एक अस्थिर अवस्था है, जबकि तारे की दो परतें एक ही समय में ज्वलनशील होती हैं। बाहरी परत में हाइड्रोजन गैस हीलियम में परिवर्तित होती है और भीतरी कोर में हीलियम कार्बन में बदलती है। इस अवस्था के बाद तारे का जीवन उसके कोर के द्रव्यमान (mass) पर निर्भर करता है। अब हम इस प्रक्रिया का संक्षिप्त वर्णन करेंगे।

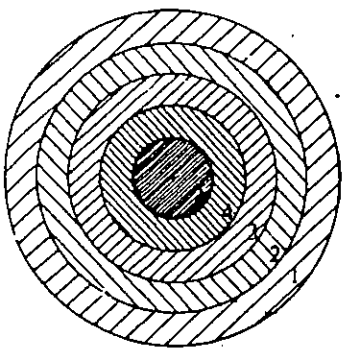

चित्र 10.6 अधिक द्रव्यमान (30 $M_\odot$) वाले तारे के विकास का अंतिम चरण। इस चरण में तारे की विभिन्न संरचना वाली कई परतें होती हैं, जिनके बीच जलते हुए नाभिकीय कोष्ठ होते हैं। ये परतें हाइड्रोजन, हीलियम (1), हीलियम (2), कार्बन, आक्सीजन (3), सिलिकान (4) और लोहे (5), की बनी होती है।

यदि कोर का द्रव्यमान $1.4\ M_\odot$ से कम हो जहां $M_\odot$ सूर्य का द्रव्यमान है, तो कोर का संकुचन उस स्थिति में पहुंच कर रुक जाता है जब उसका आकार लगभग पृथ्वी के बराबर होता है। द्रव्यमान की इस सीमा को अमरीका में बसे प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक एस. चन्द्रशेखर के नाम पर चन्द्रशेखर सीमा कहते हैं। इस प्रकार के तारे को व्हाइट ड्वार्फ़ तारा कहते हैं। पृथ्वी से देखने पर यह बहुत धुँधला और बहुत ही छोटा दिखाई देता है, पर यह सूर्य से भी अधिक गर्म होता है। सिरियस B नाम के व्हाइट ड्वार्फ़ तारे को खगोलशास्त्रियों ने सबसे पहले पहचाना था। यह चमकीले तारे सिरियस का धुँधला साथी है। कभी-कभी कोई व्हाइट ड्वार्फ़ तारा अचानक ही लाखों गुना अधिक तेज़ी से चमक उठता है। इस प्रकार की घटना को नवतारा (nova) कहते हैं। व्हाइट ड्वार्फ़ तारा ठंडा होकर अंततः एक ब्लैक ड्वार्फ़ तारे में बदल जाता है तथा हमारी आंखों से ओझल हो जाता है।

यदि तारे के कोर का द्रव्यमान $1.4\ M_\odot - 3\ M_\odot$ तक है या फिर तारे का द्रव्यमान $8 M_\odot - 15\ M_\odot$ तक है, तो कोर में इतना संकुचन होता है कि उसकी त्रिज्या लगभग 10 कि.मी. रह जाती है और इस प्रकार एक न्यूट्रॉन तारे का जन्म होता है। यदि न्यूट्रॉन तारा बहुत तेजी से घूमता हुआ उत्पन्न होता है तो इससे विद्युत चुंबकीय विकिरणें निकलती हैं जिन्हें खगोलशास्त्री स्पंदन करती हुई

रेडियो तरंगों के रूप मे देखते हैं। इसलिए इन तारों को पल्सर कहते हैं। पल्सर तारा की खोज सन् 1967 में हुई और अब तक 400 पल्सर तारे पहचाने जा चुके है।

अधिक द्रव्यमान वाले तारे के कोर में हीलियम कार्बन में बदल जाता है। फिर भी, तारे की बाहरी परत में हीलियम जलता रहता है। कोर संकुचित होता रहता है और बहुत गर्म हो जाता है जिससे कार्बन नाभिक जलकर ऑक्सीजन नाभिक बनाते हैं। तारे के कोर में स्थित नाभिकीय ईंधन के समाप्त होने के साथ-साथ कोर में संकुचन बढ़ने लगता है, जिससे कोर का तापमान बढ़ जाता है और ईंधन जलने लगता है। इस बीच कोर के चारों ओर कोष्ठ में ईंधन जलता रहता है। इस प्रकार के तारे में कई ज्वलनशील कोष्ठ होते हैं (देखिए चित्र 10.6)। स्थूल तारों में प्रक्रिया कोर में लोहा बनने तक चलती है।

यदि तारे का द्रव्यमान 20 $M_\odot$ से अधिक हो तो इसमें लगातार संकुचन होता रहता है और यह तारा ब्लैक होल बन जाता है। इसका गुरुत्वाकर्षण इतना अधिक होता है कि कोई भी वस्तु, यहाँ तक कि प्रकाश की किरणें भी इससे बाहर नही आ सकतीं। ज़ाहिर है कि हम इस ब्लैक होल को नहीं देख पाते, वास्तव में अभी तक किसी ब्लैक होल को नहीं ढूँढ़ा जा सका है। फिर भी खगोलशास्त्रियों के अनुसार कुछ तारे ब्लैक होल बन सकते हैं। उदाहरण के लिए सिग्नस तारामंडल में एक युग्मतारा है जिसे सिग्नस X1, कहते हैं। इसके एक तारे का द्रव्यमान 33 $M_\odot$ है। ऐसा लगता है कि इस तारे के चारों ओर 16 $M_\odot$ द्रव्यमान वाली एक अदृश्य वस्तु घूमती है। वैज्ञानिकों के अनुसार यह अदृश्य वस्तु एक ब्लैक होल है। कभी-कभी बड़े तारों (जिसके कोर का द्रव्यमान 3 $M_\odot$ से 15 $M_\odot$ तक होता है) में विस्फोट होता है जिससे बहुत अधिक ऊर्जा उत्पन्न होती है। ऐसे विस्फोटों को अधिनवतारा (supernova) कहते हैं। सबसे चमकीले अधिनवतारे से एक मंदाकिनी के बराबर प्रकाश निकलता है और इसकी चमक अरबों सूर्यों की चमक के बराबर हो जाती है। आकाश गंगा में पिछला अधिनवतारा सन् 1604 में देखा गया था।

बोध प्रश्न 6

क) तारे की निम्नलिखित अवस्थाओं को सही क्रम में लिखिए।

i) आदितारा ii) स्थिर तारा iii) गैसीय बादल

.....

ख) गैस के बादलों के सिकुड़ने से क्या होता है? .....

.....

ग) तारों की ऊर्जा का स्त्रोत क्या है? .....

.....

.....

घ) तारा स्थिर अवस्था में कब पहुँचता है? .....

.....

.....

तारों के विकास से संबंधित सभी तथ्य अभी पूरी तरह से ज्ञात नहीं हैं। यह ज़रूरी नहीं कि ऊपर बताये गये क्रम के अनुसार ही तारों की उत्पत्ति और विकास हो। तारे के जीवन-चक्र की अंतिम अवस्थाओं का वर्णन पूरी तरह अनुमान पर आधारित है, इसलिए यह कभी भी बदल सकता है। उदाहरण के लिए, अधिनव तारे के विस्फोट में यह कहना बहुत मुश्किल है कि इस विस्फोट के बाद का जो हिस्सा बचता है वह न्यूट्रॉन तारा या ब्लैक होल बन जाता है या फिर कुछ बचता ही नहीं है। हर बार नये-नये प्रेक्षणों की सहायता से खगोलशास्त्री तारे के जीवन-चक्र को बेहतर ढंग से समझते हैं। तारों को प्रयोगशालाएँ भी कहा जा सकता है जहाँ वैज्ञानिक बहुत-सी प्राकृतिक घटनाओं का अध्ययन करते हैं, जैसे भारी तत्वों का संश्लेषण (synthesis) या अंतरातारकीय बादलों से तारों के जीवन का प्रारंभ। ऐसी ही घटनाओं द्वारा सौर मंडल की उत्पत्ति हुई है।

यह तो आप जानते ही हैं कि तारे मंदाकिनियों के ही अंग हैं। तो क्या मंदाकिनियों की उत्पत्ति भी उसी तरह होती है जिस तरह तारों की उत्पत्ति होती हैं? वैज्ञानिक ऐसा ही सोचते हैं। परन्तु इस संबंध में किसी विश्वसनीय सिद्धांत को पाने के लिए बहुत से प्रेक्षण करने बाकी हैं। किन्तु मंदाकिनियों के अध्ययन से हमें ब्रह्मांड के बारे में इस रोचक बात का पता चलता है कि यह फैल रहा है।

10.3.3 फैलता हुआ ब्रह्मांड

जैसा कि आप भाग 9.2.3 में देख चुके हैं, हबल के प्रेक्षणों से मंदाकिनियों का अस्तित्व सिद्ध हो चुका था। उस समय में उपलब्ध टेलीस्कोपों से जो मंदाकिनियाँ देखी जा सकती थी, उनके नक्शे बनाने के बाद उन्होंने मंदाकिनियों की गति की ओर ध्यान दिया। इसके लिए वे बी.एम. स्लिफर की रहस्यमय रिपोर्ट से प्रभावित हुए। स्लिफर अमेरिका के एक खगोलशास्त्री थे। उन्होंने सन् 1912 में यह खोज की थी कि कई धुँधली नीहारिकाएँ तेज़ गति से घूमती हुई पृथ्वी से दूर हो रहीं थीं। उनकी स्पेक्ट्रमी रेखाएँ लाल छोर की ओर काफी आगे तक स्थानांतरित हो गई थीं जिसे लाल स्थानांतरण (red shift) कहते हैं। यह बात कुछ अजीब सी थी क्योंकि आकाश गंगा मंदाकिनी में तारे काफी कम गति से चलते हैं। कुछ तारे पृथ्वी से दूर जाते मालूम पड़ते हैं और कुछ पृथ्वी की ओर आते हुए दिखते हैं। स्लिफर ने मंदाकिनियों की खोज से करीब दस वर्ष पहले ये प्रेक्षण किये थे। तब यह सोचा गया था कि नीहारिकाएँ हमारी अपनी मंदाकिनी में ही स्थित हैं। वे नहीं समझ पाये कि इन प्रेक्षणों का क्या किया जाए।

परन्तु हबल को तो मालूम था कि ये नीहारिकाएँ मंदाकिनियां हैं, तो उन्होंने अपने सहकर्मी ह्यूमैसन (humason) के साथ मिलकर इनकी गतियों और दूरियों के बीच आपसी संबंध को जानने के लिए व्यवस्थित अध्ययन शुरू किया। इस अध्ययन में उन्होंने जो कुछ पाया वह बहुत दिलचस्प था। संक्षेप में उनके प्रेक्षणों से पता चला कि:

i) सभी मंदाकिनियाँ हमसे दूर जा रही थीं;
ii) जो मंदाकिनी हमसे जितनी अधिक दूरी पर थी उसकी गति उतनी ही तेज़ थी।

हबल की खोज ने एक फैलते हुए ब्रह्मांड की तस्वीर प्रस्तुत की। किन्तु यदि सभी मंदाकिनियां हमसे दूर हटती हुई दिखाई देती हैं, तो क्या हम ब्रह्मांड के केंद्र में स्थित हैं? नहीं। यदि हम किसी अन्य मंदाकिनी में स्थित होते तो भी हमें दूसरी मदाकिनियाँ दूर जाती हुई दिखतीं। आप चित्र 10.7 का अध्ययन करने पर फैलते हुए ब्रह्मांड की तस्वीर को समझ सकते हैं और एक साधारण-सा प्रयोग भी कर सकते हैं।

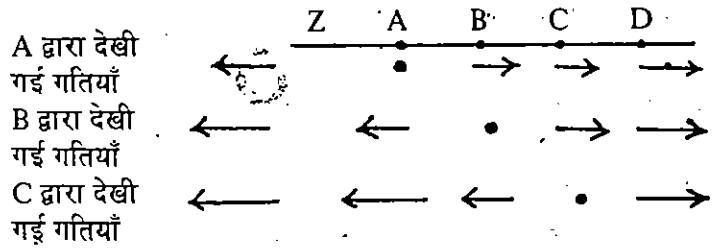

चित्र 10.7 बराबर की दूरी पर स्थित मंदाकिनियाँ Z, A, B, C, आदि का चित्र। A, B या C से नापी गयी मंदाकिनियों की गतियाँ तीर की लंबाई और दिशा से दिखाई गई है। किसी भी मंदाकिनी से देखने पर अन्य कोई भी मंदाकिनी दूर जाती हुई दिखेगी और उसकी गति उनके बीच की दूरी के समानुपाती होगी।

प्रयोग

एक गुब्बारा लेकर उस पर पेन से कुछ बिंदु अंकित करें। गुब्बारे में हवा भर कर उसे फुलायें। एक दूसरे के सापेक्ष इन बिंदुओं की गति के बारे में आप क्या कहेंगे?

क्या आपको लगता है कि जैसे-जैसे गुब्बारे में हवा भरते हैं, वैसे-वैसे गुब्बारे पर अंकित प्रत्येक बिंदु एक दूसरे से अधिकाधिक दूर होता जाता है? लगभग इसी तरह हम मंदाकिनियों की गति की कल्पना कर सकते हैं। लेकिन यह एक बहुत साधारण-सा प्रयोग है। इसमें आप गुब्बारे को बाहर से देख रहे होते हैं जबकि ब्रह्मांड का प्रेक्षण करते समय हम उसके भीतर एक मंदाकिनी में होते हैं। इसका उद्देश्य आपको सिर्फ यह बताना है कि ब्रह्मांड का विस्तार कैसे हो रहा है।

यदि ब्रह्मांड का विस्तार हो रहा है, तो इसका अर्थ है कि लाखों वर्ष पहले ब्रह्मांड बहुत संकुचित था और मंदाकिनियां एक दूसरे के बहुत करीब थीं। क्या आप यह नहीं सोच रहे कि शुरू में ब्रह्मांड कैसा था? किन कारणों से ब्रह्मांड में इतना फैलाव आया? अब हम खगोलशास्त्रियों द्वारा ब्रह्मांड की उत्पत्ति और विकास के संबंध में दिये गये सिद्धांतों का वर्णन करेंगे।

ब्रह्मांड के विशाल आकार, प्रकार, उद्भव और विकास के अध्ययन को कॉस्मोलोजी (cosmology) कहते हैं।

10.3.4 ब्रह्मांड की उत्पत्ति

ब्रह्मांड की उत्पत्ति के संबंध में सबसे महत्वपूर्ण प्रचलित सिद्धांत बिग बैंग (Big Bang) सिद्धात है। इस सिद्धांत के अनुसार ब्रह्मांड की शुरुआत एक बहुत बड़े विस्फोट से हुई। यह कोई ऐसा विस्फोट नहीं था जैसे विस्फोटों से हम परिचित हैं, जो केंद्र से बाहर की ओर फैलते हैं। यह एक

ऐसा विस्फोट था जो एक ही समय पूरे ब्रह्मांड में हुआ था। इस विस्फोट के कारण अत्यंत गर्म और अत्यंत सघन पदार्थ से पूरा अंतरिक्ष भर गया था। यह अंतरिक्ष में किसी पदार्थ का नहीं बल्कि स्वयं अंतरिक्ष का विस्फोट था। पदार्थ का हर कण एक दूसरे से दूर हो गया। आज तक ब्रह्मांड की उत्पत्ति के प्रथम क्षण की तस्वीर खींच पाना असंभव है।

ब्रह्मांड की उत्पत्ति के बाद एक सेकंड के 100वें हिस्से के समय में होने वाली क्रियाओं के संबंध में ही वैज्ञानिक विश्वासपूर्वक कुछ कह सकते हैं। उस क्षण में ब्रह्मांड का तापमान लगभग एक खरब (10^{11}) डिग्री सेंटीग्रेड था। यह सबसे गर्म तारे के केंद्र से भी अधिक गर्म था। ऐसे तापमान पर सामान्य पदार्थ के कोई भी घटक, परमाणु, अणु और यहाँ तक कि परमाणु नाभिक भी एक साथ नहीं रह सकते। विस्फोट में अलग होकर फैलने वाला पदार्थ विविध प्रकार के मूल कणों से बना था। शुरू के ब्रह्मांड में इलेक्ट्रॉन, पॉजिट्रोन और न्यूट्रीनो की अधिकता थी। इसमें कुछ प्रोटॉन और न्यूट्रॉन भी थे। इसके अलावा शेष ब्रह्मांड ऊर्जा से भरा था। यह एक प्रकार का अंतरिक्षीय घोल (cosmic soup) था।

जैसे-जैसे विस्फोट होते गये, पदार्थ और ऊर्जा फैलते गये। ब्रह्मांड का विस्तार हुआ और तापमान कम हो गया। यह तापमान पहले सेकंड के लगभग दसवें हिस्से में 30 अरब (3×10^{10}) डिग्री सेंटीग्रेट, लगभग एक सेकंड के बाद 10 अरब डिग्री, और लगभग चौदह सेकंड के बाद 3 अरब डिग्री तक पहुँच गया। पहले तीन मिनट के अन्त तक ब्रह्मांड का तापमान काफी कम हो गया (लगभग 1 अरब डिग्री सेंटीग्रेड) जिससे प्रोटॉन और न्यूट्रॉन से मिलकर सामान्य नाभिक बनने शुरू हुए। ब्रह्मांड में सबसे पहले भारी हाइड्रोजन के नाभिक बने। प्रत्येक नाभिक एक प्रोटॉन और एक न्यूट्रॉन से बना था। तापमान अभी भी इतना अधिक था कि परमाणु बनते ही विघटित हो जाते थे। यह पदार्थ लगातार फैलता रहा, धीरे-धीरे ठंडा और कम घना होता गया। कई हजार वर्ष बाद यह काफ़ी ठंडा हो गया। अब इसमें हाइड्रोजन और हीलियम के नाभिक इलेक्ट्रॉन से मिलकर इनके परमाणु बनाने लगे थे। शीघ्र ही उत्पन्न गैस ने गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव के कारण छोटे-छोटे पिंडों का स्वरूप ग्रहण करना शुरू कर दिया। अंतत इन पिंडों ने बिग बैंग विस्फोट से लगभग 5 अरब वर्ष बाद घनीभूत होकर वर्तमान ब्रह्मांड की मंदाकिनियों और तारों का निर्माण किया।

ब्रह्मांड की उत्पत्ति के संबंध में एक अन्य सिद्धांत है जिसे स्थायी अवस्था सिद्धांत (steady state theory) के रूप में जाना जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार ब्रह्मांड हमेशा से ही ऐसा था जैसा आज है। जैसे-जैसे यह फैलता है, वैसे-वैसे मंदाकिनियों के बीच की दूरी को पूरा करने के लिए लगातार नये पदार्थ का निर्माण होता है। इस प्रकार, ब्रह्मांड की उत्पत्ति और प्रारंभिक स्थिति की मान्यता को यह कहकर अस्वीकार कर दिया गया कि प्रारंभिक ब्रह्मांड जैसी कोई चीज नहीं थी।

फिर भी, खगोलशास्त्रियों और खगोलभौतिक वैज्ञानिकों ने बिग बैंग सिद्धांत का ही अधिक समर्थन किया। ऐसा क्यों है? इसका कारण प्रेक्षणों पर आधारित वे प्रमाण हैं जो "बिग बैंग" ब्रह्मांड का समर्थन करते हैं।

बिग बैंग के पक्ष में प्रमाण

एक प्रमाण तो ब्रह्मांड के फैलने से मिलता है जिसके विषय में हम पहले बता चुके हैं। फैलते हुए ब्रह्मांड से यह पता चलता है कि ब्रह्मांड कि प्रारंभिक अवस्थाओं में पदार्थ बहुत घने रूप से भरा पड़ा है। इसका प्रमाण दूर स्थित पिंडों, क्वासर्ज (quasars) से भी मिलता है। जब हम 6 से 8 अरब प्रकाश वर्ष दूर स्थित क्वासर्ज को देखते हैं तो वे हमें उसी रूप से दिखाई देते हैं जैसे वे 6 से 8 अरब वर्ष पहले थे। यदि उस युग में ब्रह्मांड अधिक घना था तो उस घनत्व का प्रमाण हमें इन क्वासरों में मिलना चाहिए। इन क्वासरों का घनत्व काफी अधिक है।

बिग बैंग सिद्धांत के पक्ष में अन्य महत्वपूर्ण प्रमाण वैश्विक पृष्ठभूमि विकिरण (cosmic background radiation) से मिलता है। अनेक वर्षों तक खगोलशास्त्री यह विश्वास करते रहे कि यदि बहुत पहले कोई अंतरिक्षीय विस्फोट हुआ था,तो उस प्रक्रिया से उत्पन्न कोई विकिरण अब भी ब्रह्मांड में मौजूद होना चाहिए। यह विकिरण भले ही कमजोर हो, ब्रह्मांड के फैलने और ठंडा होने के कारण भले ही इसकी ऊर्जा समाप्त हो चुकी हो, किन्तु ब्रह्मांड में इसका अस्तित्व तो होना ही चाहिए। वास्तव में, रेडियो खगोलशास्त्रियों ने कुछ अस्पष्ट संकेत, रेडियो शोर (radio noise) खोजे जो लगातार पूरे अंतरिक्ष में विद्यमान हैं। खगोलभौतिक वैज्ञानिकों द्वारा की गयी गणनाओं से पता चलता है कि यह विकिरण जिसे वैश्विक सूक्ष्म तरंग पृष्ठ भूमिक विकिरण (cosmic micro wave background radiation) कहा जाता है, प्राचीन अतीत का अवशेष है, जब ब्रह्मांड, बिग बैंग सिद्धांत के अनुसार, सृष्टि के प्रारंभिक चरण में था।

पिछले दो दशकों में खगोलशास्त्रियों द्वारा की गयी एक अन्य खोज प्रारंभिक तत्वों की अधिकता (primordial abundance of elements) है। अर्थात् सृष्टि के बाद सबसे पहले उत्पन्न तत्व हाइड्रोजन और हीलियम ब्रह्मांड में अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। ब्रह्मांड के विभिन्न भागों से आने वाले प्रकाश का परीक्षण करने पर खगोलशास्त्रियों ने पाया कि प्रत्येक 100 परमाणुओं में से लगभग 93 हाइड्रोजन परमाणु हैं और 7 हीलियम परमाणु हैं। हीलियम से भारी तत्व बहुत ही कम मात्रा में हैं। इससे पता चलता है कि ब्रह्मांड की शुरुआत बिग बैंग विस्फोट से एक बहुत ही गर्म और घनी अवस्था में हुई और फैलने के साथ-साथ यह तेज़ी से ठंडा होता गया। यह गर्म और घनी अवस्था उतने ही समय तक रही जिसमें कुछ हाइड्रोजन संयोजित होकर हीलियम में बदल गयी। किन्तु यह अवस्था अधिक समय तक नहीं रही, जिससे भारी तत्व और अधिक मात्रा में बन जाते। ये तत्व काफी समय बाद अतिविशाल तारों के भीतरी हिस्से में बने।

बोध प्रश्न 7

क) बिग बैंग और स्थायी अवस्था सिद्धांत में अंतर बताइए। .....

.....

ख) ब्रह्मांड की उत्पत्ति के संबंध में निम्नलिखित प्रेक्षणों में से कौन से तीन प्रेक्षण हैं जो बिग बैंग सिद्धांत का समर्थन करते हैं? सही उत्तरों पर (√) चिन्ह लगायें।

i) तारकीय स्पेक्ट्रम (stellar spectrum) में स्पेक्ट्रमी रेखाओं का लाल स्थानांतरण तथा नीला स्थानांतरण (blue shift) होता है।

ii) ब्रह्मांडीय पदार्थ में हाइड्रोजन और हीलियम तत्व बहुत अधिक मात्रा में तथा अन्य भारी तत्व बहुत कम मात्रा में हैं।

iii) मंदाकिनियों से आने वाले प्रकाश के स्पेक्ट्रम में लाल स्थानांतरण दिखाई देता है जिससे यह पता चलता है कि ब्रह्मांड का विस्तार हो रहा है।

iv) पूरे अंतरिक्ष में एक ब्रह्मांडीय विकिरण व्याप्त है।

निष्कर्ष यह है कि हम अपने आपको एक फैलते हुए ब्रह्मांड के बीच पाते हैं जो निरंतर आश्चर्यजनक नियमितता से पहेलियों को जन्म देता रहता है। हरेक प्रश्न का उत्तर हमारे सामने अनेक नये प्रश्न उठा देता है। उदाहरण के लिए, आज ब्रह्मांड का भविष्य हमारे सामने एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। क्या यह हमेशा ऐसे ही फैलता रहेगा? क्या इसका फैलाव कभी खत्म हो जाएगा? यदि हां तो क्या होगा? क्या ब्रह्मांड उसी स्थिति में रह जाएगा या उसमें संकुचन शुरू हो जाएगा? इस प्रकार हम ब्रह्मांड के अध्ययन के लिए स्वयं को विचारों और तकनीकों के विस्फोट के बीच पाते हैं। इस इकाई में हमने आपको ब्रह्मांड के रहस्यमय स्वरूप और इसे समझने के लिए मनुष्य के साहसी प्रयासों की एक झलक देने की कोशिश की है। क्या आपको यह नहीं लगता कि यह संक्षिप्त अंतर्दृष्टि लाभप्रद रही? एडविन हबल के अंतिम आलेख से लिये गये इन शब्दों के साथ ही हम इस इकाई को समाप्त करते हैं:

"हम अपने घर पृथ्वी पर से बहुत दूर तक देखते हैं और उस दुनिया की कल्पना करने का प्रयत्न करते हैं जिसमें हम पैदा हुए हैं। आज हम अंतरिक्ष में बहुत आगे तक पहुंच चुके हैं। हम अपने निकटतम पड़ोस के बारे में काफी कुछ जान चुके हैं। किन्तु जैसे-जैसे दूरी बढ़ती जाती है, हमारा ज्ञान कम होता जाता है ..... अंतिम धुँधले क्षितिज के बारे में किये गये अस्पष्ट प्रेक्षणों से हम कुछ जानकारी हासिल करने की कोशिश करते हैं जो शायद उतनी महत्वपूर्ण सिद्ध न हो। लेकिन यह खोज जारी रहेगी। यह जिज्ञासा इतिहास की अपेक्षा अधिक पुरानी है। इसकी तुष्टि नहीं हो सकी है और इसे दबाया नहीं जा सकता।"

10.4 सारांश

इस इकाई में हमने आधुनिक खगोल विज्ञान में ब्रह्मांड के बारे में सूचनाएँ एकत्र करने वाले उपकरणों और विधियों का संक्षिप्त वर्णन किया है। हमने तारकीय विकास, ब्रह्मांड की उत्पत्ति एवं विकास के संबंध में भी कुछ संकल्पनाओं और सिद्धांतों के बारे में बताया है। आइए, संक्षेप में देखें कि इस इकाई में हमने क्या-कुछ पढ़ा।

- ब्रह्मांड के संबंध में कई तरीकों से जानकारी इकट्ठी की जा सकती है। जैसे कि प्रकाशीय खगोल विज्ञान, रेडियो खगोल विज्ञान, अंतरिक्षीय वेधशालाएँ, अंतरिक्ष अन्वेषी यान इत्यादि।

- ब्रह्माड को समझने के लिए सभी जानकारियों का विश्लेषण और व्याख्या की जाती है तथा उन्हें अभिव्यक्त करने के लिए सिद्धांतों और मॉडलों का निर्माण किया जाता है। ऐसा ही एक सिद्धांत तारकीय विकास (stellar evolution) के बारे में है।
- लाखों मंदाकिनियों से आने वाले तारकीय प्रकाश की स्पेक्ट्रमी रेखाओं के लाल स्थानांतरण से यह सिद्ध हो चुका है कि ब्रह्मांड का फैलाव हो रहा है।
- ब्रह्मांड की उत्पत्ति के संबंध में सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत बिग बैंग सिद्धांत है। इस सिद्धांत के अनुसार ब्रह्मांड का निर्माण एक अतिविशाल विस्फोट से हुआ जो एक ही समय में संपूर्ण अंतरिक्ष में व्याप्त था।
- ब्रह्मांड की उत्पत्ति के संबंध में एक अन्य सिद्धांत स्थायी अवस्था का सिद्धांत है। इसके अनुसार ब्रह्मांड जैसा आज है, हमेशा ऐसा ही था और आगे भी ऐसा ही रहेगा। प्रारंभिक ब्रह्मांड जैसी कोई चीज़ नहीं थी।
- बिग बैंग सिद्धांत के पक्ष में ब्रह्मांड का विस्तार, वैश्विक पृष्ठभूमि विकिरण (cosmic background radiation), प्रारंभिक मूल तत्वों की अधिकता (primordial abundance of elements) आदि प्रमाण दिये जाते हैं।

10.5 अन्त में कुछ प्रश्न

1) कॉलम 1 में खगोलविज्ञान की विभिन्न पद्धतियाँ दी गयी हैं और कॉलम 2 में उनका वर्णन किया गया है। उपयुक्त पद्धति एवं वर्णन का मिलान तीर का निशान खींचकर दर्शाइये।

कॉलम 1	कॉलम 2
क) प्रकाशकीय खगोलविज्ञान	i) पड़ोसी दुनिया में उपकरणों से भरे अंतरिक्ष यान भेजे जाते हैं।
ख) रेडियो खगोलविज्ञान	ii) पृथ्वी के चारों ओर घूमने वाले, चंद्रमा या किसी अन्य ग्रह पर जाने वाले उपग्रहों में उपकरण रखे गये हैं।
ग) अंतरिक्षीय वेधशालाएँ	iii) अंतरिक्ष से आनी वाली उल्काएँ और अंतरिक्ष किरणें भी ब्रह्मांड के बारे में काफ़ी जानकारियाँ लाती है
घ) अंतरिक्ष यान	iv) ग्रहों, तारों और मंदाकिनियों से प्रकाश एकत्र करके उसका विश्लेषण किया जाता है।
ङ) अंतरिक्ष से आने वाले संदेशवाहक	v) ब्रह्मांड में स्थित विभिन्न वस्तुओं से निकलने वाली रेडियो तरंगों को एकत्र करके उनका विश्लेषण किया जाता है।

2) उन तरीकों के नाम लिखिए जिनकी सहायता से खगोलशास्त्री अंतरिक्ष से आने वाली पराबैंगनी किरणों, क्ष-किरणों और गामा किरणों का विश्लेषण कर पाते हैं।

.....

.....

3) क) 25 $M_\odot$, 10 $M_\odot$ और 0.8 $M_\odot$ द्रव्यमान वाले तारे रेड जायंट (red gaint) अवस्था के बाद किस प्रकार विकसित हो सकते हैं?

.....

.....

ख) "नवतारा" (nova) और "अधिनवतारा" (supernova) में अंतर बताइए।

.....

.....

4) बिग बैंग सिद्धांत के अनुसार एक या दो पंक्तियों में ब्रह्मांड की विभिन्न क्षणों पर तत्कालिक स्थिति का वर्णन कीजिए:

i) सृष्टि का प्रथम क्षण .....

.....

ii) बिग बैंग के 1/100 सेंकड बाद .....

.....

iii) बिग बैंग के 3 मिनट बाद .....

.....

iv) बिग बैंग के 10,000 वर्ष बाद .....

.....

v) बिग बैंग के 5 अरब वर्ष बाद .....

.....

10.6 उत्तर

बोध प्रश्न

1) क) 375 मीटर, 800 किलोहर्ज़, रेडियो तरंगों का क्षेत्र
   ख) 3×10^8 मी./से.
   ग) 530 किलोहर्ज़ से 1,605 किलोहर्ज़ मीडियम वेव पर,
   530 किलोहर्ज़ से 220 मेगाहर्ज़ मीडियम वेव तक।
   घ) गामा किरणें
   ङ) कुछ किलोमीटर तक

2) क) 4×10^{-7} मीटर से 8×10^{-7} मीटर तक
   7.5×10^{14} हर्ज़, 3.8×10^{14} हर्ज़
   ख) नीला
   ग) दृश्य और रेडियों तरंगों के क्षेत्र की तरंग दैर्घ्यों का पता लगाया जा सकता है। आप इनके मान लिख सकते हैं।

3) क) i) रेडियो टेलीस्कोप रेडियो तरंगों को एकत्र करके उनका विश्लेषण करते हैं जिससे हमें अदृश्य ब्रह्मांड की जानकारी मिलती है।
   ii) वे बहुत दूर स्थित अंतरिक्षीय पिंडों की खोज कर सकते हैं।
   iii) रेडियो तरंगें धूल के बादलों को पार कर सकती हैं जबकि प्रकाशीय किरणें ऐसा नहीं कर सकतीं।
   iv) रेडियो टेलीस्कोप सीमित तरंग दैर्घ्य की रेडियों तरंगों के लिए बनाये जाते हैं। जबकि प्रकाशीय टेलीस्कोप द्वारा सभी तरंग दैर्घ्यों की प्रकाश किरणों को एक ही समय में एकत्र किया जा सकता है।
   ख) पल्सर रेडियो मंदाकिनियाँ, अंतरातारकीय अंतरिक्ष में कार्बनिक अणु।

4) क) आइंस्टीन वेधशाला एक कृत्रिम उपग्रह है जो पृथ्वी की परिक्रमा करता है। पायनियर-10 एक अंतरिक्ष यान है जो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के बाहर जा चुका है और सौर परिवार की यात्रा कर रहा है।
   ख) राकेट, बहुत ऊँचे उड़ने वाले गुब्बारे और वायुयान में रखे उपकरणों द्वारा।

5) तारों की संरचना, तापमान, चमक और गति।

6) क) गैस के बादल, आदितारा, स्थिर तारा
   ख) जैसे-जैसे गैस के बादल में संकुचन होता है उसके कोर का तापमान बढ़ने लगता है।
   ग) तारे के कोर में जब हाइड्रोजन नाभिक आपस में संगलित होकर हीलियम नाभिक बनाते हैं तो बहुत अधिक ऊर्जा उत्पन्न होती है।
   घ) जब तारे के आंतरिक गुरुत्वाकर्षण बल का उसकी विकिरित ऊर्जा के बाह्य बल से संतुलन हो जाता है तो तारा स्थायी अवस्था में पहुँच जाता है।

7) क) बिग बैंग सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्मांड की शुरुआत एक बहुत बड़े विस्फोट से हुई थी। स्थायी अवस्था सिद्धांत के अनुसार प्रारंभिक ब्रह्मांड कभी नहीं था। यह जैसा आज है, हमेशा ऐसा ही था।

ख) ii), iv), v)।

अंत में कुछ प्रश्न

1) क) iv); ख) v); ग) ii); घ) i); ङ) iii)।
2) अंतरिक्षीय वेधशालाओं, राकेट, गुब्बारों और अंतरिक्ष यानों द्वारा।
3) क) ब्लैक होल, न्यूटॉन तारा या पल्सर, व्हाइट ड्वार्फ़
   ख) व्हाइट् ड्वार्फ तारे की चमक जब अचानक कई गुना बढ़ जाती है तो इस घटना को नवतारा कहते हैं, 3 $M_\odot$ से 15 $M_\odot$ तक द्रव्यमान वाले तारे के विस्फोट को अधिनवतारा कहते हैं।
4) क) i) बिग बैंग में संपूर्ण अंतरिक्ष में एक ही समय में बहुत बड़ा विस्फोट होता है, पदार्थ बिखर कर फैलना शुरू हो जाता है।
   ii) मूल कण जैसे इलेक्ट्रॉन, पोज़ीट्रॉन, न्यूट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रीनों बनतें हैं।
   iii) भारी हाइड्रोजन और हीलियम नाभिक बनते हैं।
   iv) हाइड्रोजन और हीलियम के परमाणु बनते हैं।
   v) तारे और मंदाकिनियाँ बनते हैं।

इकाई 11 सौर मंडल

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
11.2 सौर मंडल : एक सर्वेक्षण
11.3 सूर्य, एक आदर्श तारा
11.4 ग्रह, ग्रहिकाएँ और पुच्छल तारे
बुध–दुर्ग्राह्य ग्रह
शुक्र–बादलों से घिरा ग्रह
मंगल–लाल सतह वाला ग्रह
ग्रहिका पट्टी–सौर मंडल का मलबा
बृहस्पति–एक अनोखा विशाल ग्रह
शनि–वलयों से घिरा ग्रह
दृष्टि की पहुँच से परे के ग्रह
पुच्छल तारों का विशाल बादल
11.5 पृथ्वी–हमारा अपना ग्रह
11.6 सौर मंडल का निर्माण
11.7 कुछ मिथक और भ्रांतियाँ
11.8 सारांश
11.9 अंत में कुछ प्रश्न
11.10 उत्तर

11.1 प्रस्तावना

इकाई 10 में हमने ब्रह्माड की खोज करने के लिए खगोल विज्ञान के कुछ आधुनिक तरीकों के बारे में बताया है। आपने ब्रह्मांड की उत्पत्ति और तारों के विकास के बारे में कुछ सिद्धांत भी पढ़े, जिनके द्वारा हम इन खोजों में मिली जानकारी को समझ सकते हैं। इकाई 10 को पढ़ते हुए आपने यह महसूस किया होगा कि ब्रह्मांड से संबंधित हमारी जानकारी काफी अधूरी है। वास्तव में ब्रह्मांड के बारे में मिली हर नयी जानकारी से बहुत से नये प्रश्न उठ खड़े होते हैं। फिर भी, इस विशाल और प्राचीन ब्रह्मांड का एक छोटा सा हिस्सा है सौर मंडल जिसे हम कुछ हद तक बेहतर ढंग से जानते हैं।

इस इकाई में आप सौर मंडल के बारे में पढ़ेंगे। सौर परिवार से संबंधित नवीनतम जानकारी क्या है, उसके सदस्यों की क्या खास विशेषताएं हैं और सौर परिवार का निर्माण कैसे हुआ, इन सभी बातों को आप समझेंगे। सौर परिवार में अन्य ग्रहों की तुलना में हम पृथ्वी और उसके उपग्रह चन्द्रमा के बारे में ज़्यादा जानते हैं। इसलिए इन दोनों का हम अधिक विस्तार से वर्णन करेंगे।

ग्रहो की गति के बारे में हम अपने पूर्वजों से कहीं ज़्यादा जानते हैं। फिर भी आम तौर पर लोग अपने दैनिक जीवन में ग्रहों के प्रभाव से जुड़ी बहुत-सी गलत धारणाएँ रखते हैं। हम संक्षेप में विश्लेषण करेंगे कि ऐसा क्यों है और यह बताना चाहेंगे कि ऐसी धारणाओं का कोई तर्कपूर्ण आधार नहीं होता। इस इकाई के साथ हम ब्रह्मांड की चर्चा समाप्त करेंगे। इकाई 12 में आप पढ़ेंगे कि जीवन की उत्पत्ति और विकास कैसे हुआ। यह विवरण ब्रह्मांड की कहानी जितना ही रोचक और आकर्षक है।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- सौर मंडल के विभिन्न सदस्यों की, यानि सूर्य, ग्रह, उनके उपग्रह, ग्रहिकाओं और पुच्छल तारों की कुछ प्रमुख विशेषताएँ बता सकेंगे;
- यह समझा सकेंगे कि सौर मंडल का निर्माण कैसे हुआ होगा;
- पृथ्वी की उत्पत्ति और प्रारंभिक अवस्था का वर्णन कर सकेंगे; और

- मानव जीवन पर ग्रहों की गति के प्रभाव से उत्पन्न मिथकों और भ्रांतियों का विश्लेषण कर सकेंगे।

11.2 सौर मंडल : एक सर्वेक्षण

रात में आप आकाश में बहुत से तारे देख सकते हैं, परन्तु दिन में एक ही तारा दिखाई देता है और वह है सूर्य। ऐसा इसलिए नहीं है कि सूर्य कोई अनोखा तारा है, बल्कि इसलिए है कि वह हमारे सबसे निकट है। दूर के अन्य तारों की रोशनी इतनी कम होती है कि वे दिन में सूर्य के प्रकाश में दिख ही नहीं सकते। सूर्य का यह वैभव देखकर ही प्राचीन सभ्यताएँ उसको ब्रह्मांड के "मुखिया" का दर्जा देती थीं। वास्तव में वह केवल अपने परिवार का मुखिया है, जिसे हम सौर मंडल या सौर परिवार के नाम से जानते हैं। इस परिवार में पृथ्वी सहित नौ ग्रह, उनके उपग्रह, ग्रहिकाएँ और पुच्छल तारे हैं। सूर्य से दूरी के हिसाब से यदि हम नौ ग्रहों को रखें तो वे हैं: बुध (Mercury), शुक्र (Venus), पृथ्वी (Earth), मंगल (Mars), बृहस्पति (Jupiter), शनि (Saturn), अरुण (Uranus), वरुण (Neptune) और यम (Pluto) (चित्र 11.1)। बुध और शुक्र के अलावा सभी ग्रहों के चारों और छोटे-बड़े उपग्रह घूमते हैं। सूर्य के चारों ओर बड़ी संख्या में ग्रहिकाएँ और पुच्छल तारे भी घूमते हैं। ये सब मिलकर सौर मंडल या सौर परिवार कहलाते हैं।

सभी ग्रह और ग्रहिकाएँ, और कुछ पुच्छल तारे सूर्य के चारों ओर दीर्घ वृत्ताकार कक्षा में घूमते हैं (देखिए चित्र 11.2)। वे लगभग एक ही तल (orbital plane) में सूर्य की परिक्रमा करते हैं। अगर आप गत्ते के एक टुकड़े पर ग्रहों की कक्षाओं की तस्वीर खींचकर सौर परिवार का एक नमूना बनाएँ तो वह काफी सही होगा। इस नमूने का एक ही अपवाद है– यम की कक्षा, जो कि सौर परिवार के सामान्य तल से लगभग 17 अंश का कोण बनाती है। पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव सौर परिवार की उत्तरी दिशा को निर्धारित करता है। सौर परिवार की उत्तरी दिशा से अगर हम सौर परिवार को देखें तो हमें सभी ग्रह सूर्य के चारों तरफ वामावर्त (anticlockwise) दिशा में घूमते हुए दिखाई पड़ेंगे। ग्रहों और सूर्य के बीच में गुरुत्वाकर्षण बल के कारण ही ग्रह अपनी कक्षा में घूमते हैं। यदि सूर्य अचानक गायब हो जाए तो सभी ग्रह अपनी-अपनी कक्षाओं की स्पर्श रेखाओं की दिशा (tangent) में निकल जाएँगे।

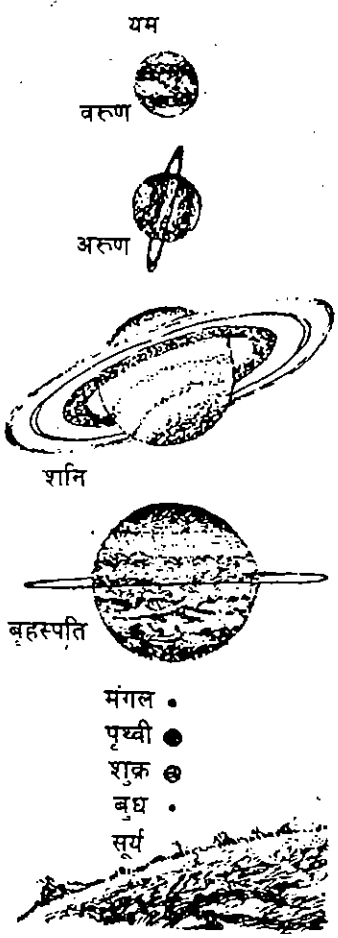

(क)

(ख)

चित्र 11.1 (क) ग्रहों का सापेक्ष आकार दिखाता हुआ सौर मंडल का रेखाचित्र; (ख) सौर मंडल के कुछ सदस्यों के प्रतीक चिन्ह।

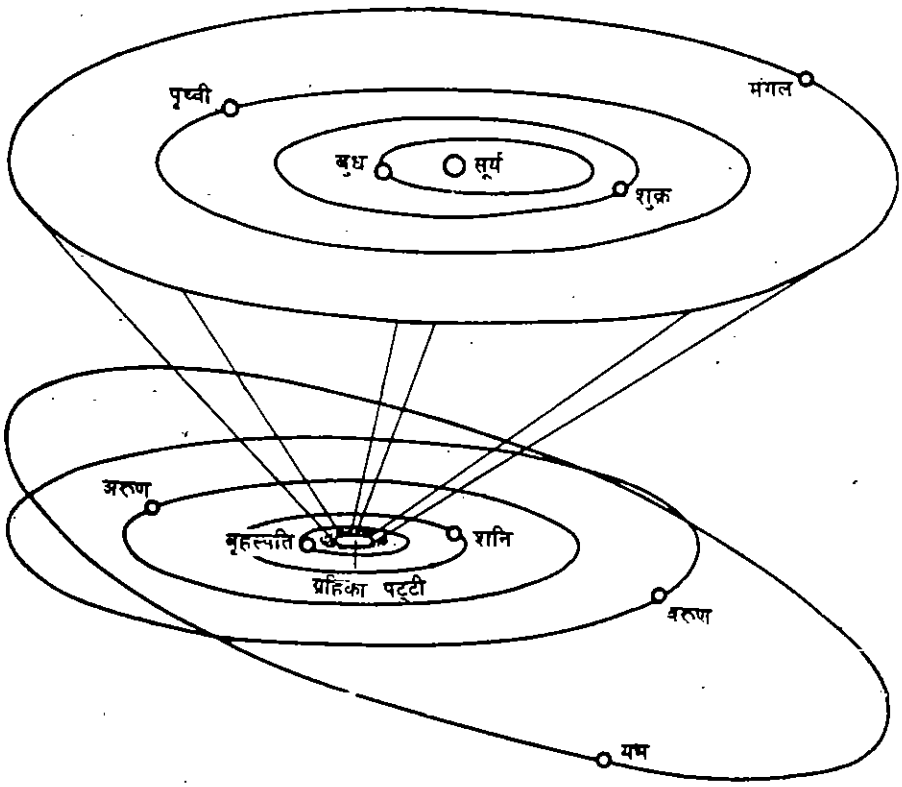

चित्र 11.2 (क) अन्दरूनी ग्रहों और (ख) बाहरी ग्रहों की कक्षाएँ

शुक्र और अरुण के अलावा सभी ग्रह अपने-अपने अक्षों पर वामावर्त दिशा में घूमते हैं, इसलिए पृथ्वी के समान इन सभी ग्रहों पर सूर्य पूर्व से निकलता है और पश्चिम में डूबता है। शुक्र और अरुण अपने अक्षों पर दक्षिणवर्त (clockwise) दिशा में घूमते हैं, इसलिए इन दोनों ग्रहों पर सूर्य पश्चिम से निकलता है और पूर्व में डूबता है। अरुण के अलावा सभी ग्रहों के अक्ष उनकी कक्षाओं के लगभग लम्बवत हैं (देखिए चित्र 11.3)। अरुण का अक्ष उसकी कक्षा के तल में ही है, मानो अरुण उलट गया हो।

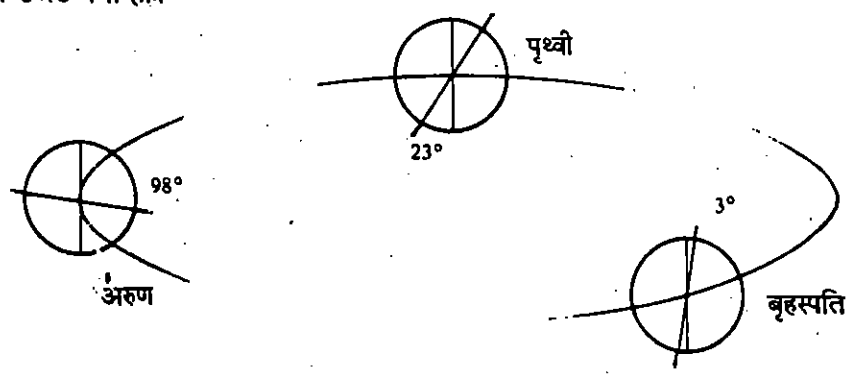

चित्र 11.3 कुछ ग्रहों के घूर्णन अक्ष का लंब से बना कोण।

सूर्य सौर परिवार का प्रमुख सदस्य है। उसका द्रव्यमान 2×10^{33} ग्राम है। यह मान सौर परिवार के संपूर्ण द्रव्यमान का लगभग 99.87 प्रतिशत है। नौ ग्रहों में बृहस्पति और शनि सबसे बड़े हैं और उनका द्रव्यमान सभी ग्रहों के कुल द्रव्यमान का 92 प्रतिशत है। सूर्य की तरह ग्रह अपनी रोशनी स्वयं नहीं पैदा करते। वे अपने ऊपर पड़ने वाली सूर्य की रोशनी को परावर्तित कर देते हैं और इसी कारण चमकते हुए दिखाई देते हैं। किसी भी ग्रह से परावर्तित होने वाली सूर्य की रोशनी का इस बात से सीधा संबंध है कि उस ग्रह का वायुमंडल कितना है और किन तत्वों से मिल कर बना है। वे ग्रह या उपग्रह, जिन पर वायुमंडल नहीं होता, जैसे बुध और चन्द्रमा, कम रोशनी परावर्तित करते हैं। चन्द्रमा की रोशनी हमें इसलिए ज्यादा मालूम होती है क्योंकि वह पृथ्वी से काफ़ी नज़दीक है।

बुध, शुक्र, पृथ्वी और मंगल, सौर परिवार के चार आंतरिक ग्रह हैं और ये सभी पृथ्वी जैसे ग्रह माने जाते हैं। बृहस्पति, शनि, अरुण, वरुण और यम बाहरी ग्रह हैं, जो बृहस्पति जैसे ग्रह माने जाते हैं। इन आंतरिक और बाहरी ग्रहों के गुणों में स्पष्ट अंतर किया जा सकता है। आंतरिक ग्रह सामान्य धातुओं और चट्टानों से बने हैं और इनका औसत घनत्व चार से पाँच ग्राम प्रति घन सेंटी मीटर है। ग्रहिकाओं की संरचना भी आंतरिक ग्रहों के समान है। दूसरी ओर, बाहरी ग्रह अधिकतर गैस और बर्फ के बने हैं और उनका घनत्व एक से दो ग्राम प्रति घन सेंटीमीटर है।

बोध प्रश्न 1

सौर परिवार के सदस्यों की सूची बनाइए।

.....

.....

अब हम सौर मंडल के सभी सदस्यों की विस्तार से चर्चा करेंगे। आइए, सबसे पहले परिवार के मुखिया, सूर्य के बारे में जानें।

11.3 सूर्य, एक आदर्श तारा

हमारी दृष्टि से सूर्य सबसे महत्वपूर्ण तारा है। यही एकमात्र तारा है जो इतना निकट है कि उसका अध्ययन हम विस्तार पूर्वक कर सकते हैं। सूर्य का वैभव कुछ तो उसके बड़े आकार के कारण है। उसका व्यास पृथ्वी के व्यास का लगभग 110 गुना है। सूर्य इतना बड़ा है कि उसमें दस लाख पृथ्वियाँ समा सकती हैं। जैसा कि हम कह चुके हैं, सूर्य का द्रव्यमान लगभग 2×10^{33} ग्राम है जो कि पृथ्वी के द्रव्यमान का तीन लाख गुना है। सूर्य का औसत घनत्व लगभग 1.4 ग्राम प्रति घन सेंटीमीटर है। सूर्य के बारे में जो कुछ आपने इकाई 10 में पढ़ा है, उसे दोहराने के लिए आप निम्नलिखित प्रश्नों को हल कर सकते हैं।

बोध प्रश्न 2

दिये गये स्थान में संक्षिप्त उत्तर लिखिए।

क) सूर्य मुख्यतः किन तत्वों से बना है? .....

ख) सूर्य की ऊर्जा का स्रोत क्या है? .....

ग) कितने वर्षों तक सूर्य में ऊर्जा उत्पन्न होती रहेगी? .....

घ) ऊर्जा का स्रोत समाप्त हो जाने पर सूर्य किन अवस्थाओं से गुजरेगा? .....

यद्यपि हमें सूर्य स्थिर दिखाई देता है, पर ऐसा है नहीं। सूर्य 25 दिन में एक बार अपने अक्ष पर घूमता है। समय-समय पर सूर्य की सतह पर काले धब्बों के समूह दिखाई देते हैं। ये काले धब्बे "सूर्य-कलंक" (sun spots) कहलाते हैं इनकी गति से हमने जाना है कि सूर्य अपने अक्ष पर घूमता है। इस तथ्य को सबसे पहले गैलीलियो ने पहचाना था। वास्तव में "सूर्य कलंक" सूर्य की सतह पर वे क्षेत्र हैं जिनमें पायी जाने वाली गैस आसपास के क्षेत्रों से लगभग एक हज़ार डिग्री सेंटीग्रेड कम ताप पर होती है (चित्र 11.4)। सूर्य कलंकों की संख्या हर ग्यारह साल में बढ़ती और घटती है। एक लंबे अरसे के दौरान कुछ अंतरालों में सूर्य कलंकों की संख्या कम होती है और कुछ अंतरालों में बहुत अधिक होती है।

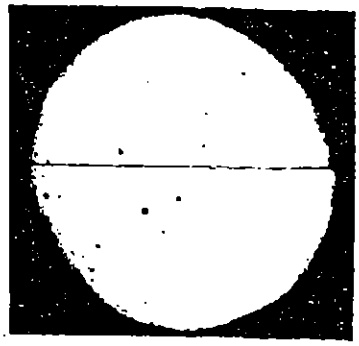

चित्र 11.4 सूर्य के प्रकाश मंडल (फोटो स्फीयर) पर स्थित सूर्यकलंक।

सूर्य की सतहें

सूर्य कई सतहों से मिलकर बना है। सूर्य की जिस सतह को हम देख पाते हैं उसे "प्रकाश मंडल" (photosphere) कहा जाता है। यह वह सतह है जो सूर्य की काया को उसके वायुमंडल से अलग करती है। जब हम सूर्य के व्यास की बात करते हैं तो दरअसल वह प्रकाश मंडल का व्यास होता है। प्रकाश मंडल का तापमान लगभग छह हज़ार सेंटीग्रेड है। सूर्य की आंतरिक सतह को कोर कहते हैं। यहां सूर्य की ऊर्जा उत्पन्न होती है। कोर और प्रकाश मंडल के बीच अन्य कई सतहें होती हैं, जिनका विवरण हम यहां नहीं देंगे। सूर्य की काया के समान सूर्य के वायुमंडल में भी कई सतहें हैं। सूर्य के वायुमंडल की बाहरी सतह को "प्रभा मंडल" (corona) कहते हैं। सामान्यतः प्रकाश मंडल की चमक के कारण प्रभा मंडल को देखा नहीं जा सकता, लेकिन पूर्ण सूर्य ग्रहण के दौरान यह पूरा दिखाई पड़ता है और तब यह बहुत शानदार दिखता है (चित्र 11.5) । प्रभा मंडल पृथ्वी की कक्षा और उससे परे तक भी फैला हुआ है।

चित्र 11.5 पूर्ण सूर्यग्रहण के समय दिखने वाला प्रभामंडल

सौर पवन एवं सौर प्रज्वाल

सूर्य के वायुमंडल से निरंतर इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन की धाराएँ निकलती रहती हैं और पूरे सौर मंडल में फैल जाती हैं। आवेशयुक्त कणों की इन तेज़ी से बहती धाराओं को "सौर पवन" (solar wind) कहते हैं। सौर पवन के रूप में सूर्य के वायुमंडल से प्रति सेंकड लगभग दस लाख टन पदार्थ बाहर की ओर बह जाता है। ये आवेशयुक्त कण जब पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करते हैं तो यहां स्थित परमाणुओं से प्रतिक्रिया करते हैं। इस प्रतिक्रिया के कारण उत्तरी ध्रुव तथा दक्षिणी ध्रुव का पूरा आकाश आलोकित हो उठता है। प्रकृति में प्रकाश का यह प्रदर्शन बहुत ही सुंदर लगता है।

सूर्य की सतह और वायुमंडल पर होने वाली सबसे अधिक सक्रिय गतिविधि को सौर प्रज्वाल (solar flare) कहते हैं जो सूर्य कलंक के आसपास वाले क्षेत्रों में होती है। इस प्रक्रिया में बहुत थोड़े समय में बहुत अधिक ऊर्जा उत्पन्न होती है। सूर्य की सतह की चमक अचानक बढ़ जाती है और साथ ही प्रकाश, रेडियो तरंगे, एक्स-रे जैसी तरंगों और इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन जैसे सौर पदार्थों के रूप में ऊर्जा का बाहर की ओर प्रवाह होता है।

सूर्य हमारा सबसे निकटवर्ती तारा है और हम इसका अध्ययन काफ़ी बारीक़ी से कर सके हैं। हमने यहाँ सूर्य की संरचना और उसमें हो रही कुछ गतिविधियों का चित्रण किया है। सौर परिवार के अन्य सदस्यों के बारे में पढ़ने से पहले आइए, निम्नलिखित प्रश्नों को हल करें।

बोध प्रश्न 3

क) किस प्रेक्षण से पता चलता है कि सूर्य अपने अक्ष पर घूमता है?

.....

ख) सूर्य पर होने वाली विभिन्न गतिविधियों का आभास किन घटनाओं से मिलता है?

.....

11.4 ग्रह, ग्रहिकाएँ और पुच्छल तारे

इस भाग में आप ग्रहों और उनके उपग्रहों, ग्रहिकाओं और पुच्छल तारों के बारे में पढ़ेंगे। हम यहाँ पृथ्वी और चन्द्रमा का वर्णन नहीं करेंगे क्योंकि हम अगले भाग में उनका विस्तृत विवरण देंगे। तालिका 11.1 में हमने उन अंतरिक्षीय यानों की सूची दी है जो अब तक विभिन्न ग्रहों पर भेजे गये हैं। इन यानों से हमें ग्रहों के तापमान, वायुमंडल और उनकी सतह की विशेषताओं के बारे में काफ़ी जानकारी मिली है। यदि आप और विस्तारपूर्वक इनके बारे में जानना चाहें तो आप इस खंड के अंत में बतायी गई पुस्तकों को पढ़ सकते हैं।

तालिका 11.1

ग्रह जिन तक यान गये :	बुद्ध	शुक्र	मंगल	बृहस्पति, शनि, अरुण, वरुण, यम, शनि का उपग्रह टाइटन
अंतरिक्ष यान :	मैरिनर	वेनेरा, मैरिनर, पायनियर-वीनस मिशन	मैरिनर, वाइकिंग, मार्स	वॉयजर, पायनियर
प्रेक्षण : ग्रहों की सतह की विशेषताएँ, वायुमंडल की परिस्थितियाँ, संरचना, रसायनिक तापमान के बारे में।				

11.4.1 बुध– दुर्ग्राह्य ग्रह

बुध जो सूर्य के सबसे निकट है, काफ़ी समय तक हमारे लिए एक रहस्यमय ग्रह बना रहा। सूर्य के प्रकाश की प्रखरता के कारण इसे साफ़ देख पाना बहुत कठिन है। इसलिए भी कि यह बहुत छोटा है। बुध हमें या तो पूर्वी आकाश में प्रातःकालीन ग्रह या पश्चिमी आकाश में सायंकालीन ग्रह के रूप में दिखाई देता है। हालांकि आजकल इस्तेमाल हो रह बड़ी से बड़ी दूरबीन से देखने पर भी बुध हमें उतना साफ़ नहीं दिखता जितना कि चन्द्रमा बिना दूरबीन के दिख जाता है।

बुध की सतह के चित्रों को देखने से पता चलता है कि वहाँ गड्ढे और "सिलवटें" हैं, जिनके बीच में विशाल समतल मैदान है (चित्र 11.6)। बुध पर वायुमंडल नहीं है इस ग्रह की एक सतह का तापमान लगभग 427 डिग्री सेंटीग्रेड है। बुध की सूर्य के विपरीत वाली अँधेरी सतह का तापमान--270 डिग्री सेंटीग्रेड है। उसका कोई उपग्रह भी नहीं है।

सूर्योदय से कुछ ही समय पूर्व दिखने वाले ग्रह को प्रातःकालीन ग्रह और सूर्यास्त के एकदम बाद दिखने वाले ग्रह को सायंकालीन ग्रह कहते हैं।

11.4.2 शुक्र – बादलों से घिरा ग्रह

चार करोड़ किलोमीटर की दूरी पर स्थित शुक्र हमारा निकटतम पड़ोसी ग्रह है। उसकी सतह पर बहुत घने पीले-सफेद रंग के बादल हैं जो सतह से 80 किलोमीटर ऊपर तक फैले हुए हैं (चित्र 11.7)। इस कारण हम उसक सतह को नहीं देख सकते। सूर्य और चन्द्रमा के बाद शुक्र आकाश में तीसरा सबसे चमकीला पिंड है। यह चमकीला इसलिए दिखता है, क्योंकि एक तो यह पृथ्वी के निकट है और दूसरा उस पर स्थित सफेद बादल उस पर गिरने वाले सूर्य के प्रकाश का लगभग 76 प्रतिशत हिस्सा परावर्तित कर देते है। कभी-कभी तो शुक्र इतना चमकीला दिखता है कि यदि पृथ्वी का वायुमंडल शांत हो तो हम उसे दिन में बिना दूरबीन की सहायता से देख सकते हैं। शुक्र को हम सूर्यास्त के लगभग तीन घंटे बाद बहुत अच्छी तरह से देख सकते हैं, अगर वह सायंकालीन ग्रह हो। यदि वह प्रातःकालीन ग्रह हो तो सूर्य उदय होने से लगभग तीन घंटे पहले हम उसे देख सकते हैं। जैसा कि आपने इकाई 9 में पढ़ा है, चन्द्रमा की तरह शुक्र की भी कलाएँ होती है। यदि शुक्र की सभी कलाएँ देखनी हों तो इसके लिए लगभग 20 महीने लगेंगे।

अंतरिक्षीय यानों की खोज से यह पता चलता है कि शुक्र की सतह का तापमान लगभग 480 डिग्री सेंटीग्रेड है, जो बहुत अधिक है। शुक्र का वायुमंडल 96 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड गैस से बना है। वहां सलफ्यूरिक अम्ल के बादल हैं, जिनमें हाइड्रोक्लोरिक अम्ल और हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल का कुछ अंश मिला हुआ है। वायुमंडल में पानी की भाप, नाइट्रोजन, आरगन,

चित्र 11.6 बुध।

चित्र 11.7 शुक्र।

सल्फरडाइऑक्साइड और कार्बन मोनोऑक्साइड गैसों की बहुत थोड़ी मात्रा उपस्थित है। वहां का वायुमंडलीय दाब पृथ्वी के वायुमंडलीय दाब से 90 गुना ज्यादा है। उबलती गर्मी और अत्यधिक दबाव वाला विषैली गैसों से भरा शुक्र ग्रह नर्क जैसा मालूम होता है। शुक्र पर कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता।

शुक्र की सतह पर इतना अधिक तापमान जिस प्रक्रिया के कारण होता है उसे हम "ग्रीन हाउस प्रभाव" कहते हैं। जब सूर्य का प्रकाश उसके बादलों और वायुमंडल से गुज़रकर सतह तक पहुँचता है तो सतह का ताप बढ़ जाता है। ताप बढ़ने पर सतह से अवरक्त विकिरणें निकलती हैं। शुक्र के वायुमंडल में उपस्थित कार्बन डाइऑक्साइड गैस इन अवरक्त विकिरणों को वायुमंडल से बाहर निकलने नहीं देतीं। इस तरह काफ़ी मात्रा में सूर्य की गर्मी शुक्र के वायुमंडल में कैद हो जाती है। बहुत थोड़ी उष्मा ही बाहर निकलती है। फलस्वरूप शुक्र की सतह का तापमान बढ़ जाता है।

अब, जबकि, बादलों से घिरे इस ग्रह के अनेक रहस्यों का पता लगा लिया गया है, तब शुक्र को मानव के रहने योग्य ग्रह बनाने के लिए बहुत से कल्पनाशील विचार रखे गये हैं। इनमें से एक विचार यह है कि, वहाँ छोटे-छोटे जीव छोड़े जाएँ, जो उस ग्रह के वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड गैस का उपभोग करके ऑक्सीजन गैस छोड़ें। जैसे-जैसे समय बीतेगा कार्बन डाइऑक्साइड के कम होने पर ग्रीन हाउस प्रभाव कम हो जाएगा। इससे शुक्र ग्रह की सतह का तापमान कम हो जाएगा। तब पानी की भाप ठंडी होकर बारिश के रूप में गिरेगी जिससे उष्मा को कैद करने वाले बादल छट जाएँगे। इस तरह से जब शुक्र ग्रह के वायुमंडल में ऑक्सीजन बढ़ जाएगी और उसका तापमान कम हो जाएगा तो वहाँ कई प्रकार के प्राणी जीवित रह सकेंगे। शायद कभी वहाँ मनुष्य भी जाकर रह सके। यह बात आज भले ही हमें एक स्वप्न लगे, किन्तु इस विचार में कुछ ऐसी संभावनाएँ हैं कि भविष्य में यह एक वास्तविकता भी बन सकती है।

11.4.3 मंगल – लाल सतह वाला ग्रह

शुक्र के अलावा, मंगल पृथ्वी के सबसे निकट है। यह काफी कुछ पृथ्वी जैसा लगता है। इसके ध्रुवों पर बर्फ की परतें हैं। इसके वायुमंडल में सफेद बादल तैरते हैं और धूल भरी आँधियां चलती हैं। इसकी लाल सतह पर मौसम के साथ-साथ बदलने वाले अनेक पैटर्न बनते-बिगड़ते रहते हैं। इसकी सतह पर विशाल क्षेत्र हैं जिन्हें मारिया (समुद्र) कहा जाता है। मंगल पर भी एक दिन की अवधि 24 घंटे होती है। वहां गर्मी और जाड़े का मौसम भी होता है जिनमें से प्रत्येक की अवधि पृथ्वी के समान ही लगभग छह महीने की होती है। लेकिन इस ग्रह के सूर्य से अधिक दूरी पर होने के कारण वहाँ की गर्मी और जाड़ा पृथ्वी की गर्मी और जाड़े के मुकाबले बहुत अधिक तीव्र होता है।

यह विचार काफ़ी आकर्षक है कि मंगल पर जीवन उपस्थित है। 1877 में इटली के खगोल वैज्ञानिक शियापेरेली (Schiaparelli) ने मगल के चमकदार क्षेत्रों में आड़ी रेखाओं का एक सघन जाल देखा था। उन्होंने उसका नाम केनाली (canali) रखा। इटली भाषा में केनाली शब्द का

अर्थ है– खाँचें या नालियाँ। परन्तु अंग्रेजी भाषा में इस शब्द का अनुवाद किया गया– "कैनाल" यानी "नहर"। तभी से लोग यह सोचते हैं कि इन नहरों को किसने बनाया और कैसे बनाया? क्या मंगल ग्रह पर जीवित प्राणी रहते हैं?

चित्र 11.8 मंगल की सतह।

अब मंगल के चारों ओर कई कृत्रिम उपग्रह भेजे जा चुके हैं। उसकी सतह पर दो स्वचालित प्रयोगशालाएं स्थापित की जा चुकी हैं। पूरे ग्रह का नक्शा अच्छी तरह समझा जा चुका है। मंगल की सतह पर 5 किलोमीटर से लेकर 121 किलोमीटर व्यास वाले कई आकारों के गड्ढे हैं जो उल्का-पिंडो के गिरने से बने हैं (चित्र 11.8)। मंगल पर विशाल ज्वालामुखी भी हैं। वहाँ का सबसे ऊंचा ज्वालामुखी ओलम्पस मोन्स या ओलम्पस पर्वत, एवरेस्ट पर्वत से लगभग तीन गुना ऊंचा है। पर अब वह सक्रिय नहीं है। मंगल की सतह पर गहरे कटक (ridges) और बड़ी-बड़ी घाटियाँ भी हैं। तस्वीरों में द्वीप भी दिखाई पड़ते हैं जो उन जगहों पर बन गये हैं, जहां कभी गड्ढों के किनारों से पानी बहा होगा। वहां नदी के तल भी दिखते हैं, जो लाखों करोड़ों वर्षों से सूखे पड़े हैं। मंगल की सतह की इन विशेषताओं से पता चलता है कि अतीत में वहाँ वायुमंडल और महासागर दोनों ही रहे होंगे। अमरीका द्वारा भेजे गये वाईकिन्ग अंतरिक्षयानों को इस बात के प्रमाण मिले भी हैं कि उस ग्रह पर कभी पानी बहता था और वहां का वायुमंडल अब के वायुमंडल से कहीं अधिक घना था। मंगल की मिट्टी पृथ्वी की मिट्टी जैसी ही प्रमुख रूप से सिलीकेट्स (silicates) से बनी हुई है। लेकिन वहाँ की मिट्टी का लगभग 16 प्रतिशत भाग लोहे के ऑक्साइड से बना है, जिसके कारण सतह का रंग लाल है।

सिलिकेट यौगिक सिलिकन और ऑक्सीजन के परमाणुओं से मिल कर बनते हैं।

मंगल पर वायुमंडलीय दबाव काफ़ी कम है। यह समुद्र तल की सतह से 32 किलोमीटर की ऊँचाई पर पृथ्वी के वायुमंडलीय दबाव के बराबर है। यानी मंगल का वायुमंडल बहुत कम है। यह 95 प्रतिशत कार्बन डाईऑक्साइड से बना है। शेष भाग नाइट्रोजन, आरगन और पानी के वाष्प की थोड़ी सी मात्रा से मिलकर बना है। हाइड्रोजन, ऑक्सीजन और ओज़ोन गैसें भी बहुत थोड़ी मात्रा में पायी गयी हैं। यद्यपि मंगल के वायुमंडल में बर्फ़ के बादल, कार्बन डाईऑक्साइड गैस और लाल रंग की धूल है, फिर भी यह सब इतनी मात्रा में नहीं है कि सूर्य की ऊष्मा को कैद कर सके। इसलिए मंगल एक बहुत ठंडा ग्रह है। उसकी सतह का तापमान दिन में उसकी भूमध्य रेखा के आसपास 21 डिग्री सेंटीग्रेड से 27 डिग्री सेंटीग्रेड तक बढ़ सकता है, लेकिन रात में वह -84 डिग्री सेंटीग्रेड तक घट जाता है। मंगल की वर्तमान परिस्थितियाँ – ठंड, अत्यधिक शुष्कता, तीव्र पराबैंगनी प्रकाश और थोड़ी ऑक्सीजन, जीवन के परिचित रूपों के लिए प्रतिकूल हैं। मंगल पर वाईकिंग यानों द्वारा किये गये प्रेक्षणों में जीवन का कोई चिह्न नहीं मिला।

मंगल के दो उपग्रह हैं। उसके नाम हैं: फोबोस (भय) और डिमोस (आतंक)। फोबोस, जिसका व्यास लगभग 27 किलोमीटर है. मंगल से 9,300 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। 14 किलोमीटर व्यास वाला डिमोस और भी छोटा है और मंगल की सतह से लगभग 24,000 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। मंगल और उसके उपग्रहों के बारे में निकट भविष्य में और भी जानकारी मिलने की उम्मीद है, जब सोवियत यूनियन के अंतरिक्ष यान वहाँ भेजे जाएँगे।

11.4.4 ग्रहिका पट्टी – सौर मंडल का मलबा

मंगल और बृहस्पति की कक्षाओं के बीच लगभग 55 करोड़ किलोमीटर की दूरी है। इस खाली जगह में हज़ारों की संख्या में चट्टानों और धातुओं के बने पिन्ड सूर्य के चारो और घूमते हैं। आकार में यह पिन्ड धूल के कण से लेकर सैकड़ों किलोमीटर व्यास वाले हैं। इन्हें "ग्रहिका" कहा जाता है। यह माना जाता है कि यह मूल रूप से सौर मंडल का वह पदार्थ है जो मिलकर एक ग्रह नहीं बन पाये। सबसे पहली ग्रहिका की खोज सन् 1801 में जिस्सेपी पियाज़ी (Guiseppi Piazzi) नाम के खगोल वैज्ञानिक ने की, जिन्होंने उसका नाम सिरिस (Ceres) रखा। इसका व्यास 960 किलोमीटर है। अब तक हज़ारों की संख्या में ग्रहिकाएँ खोजी जा चुकी हैं।

अधिकांश ग्रहिकाओं के आकार विषम हैं। अंतरिक्ष में यात्रा करते हुए वे अलग-अलग मात्राओं में प्रकाश परावर्तित करती हैं। उनके आकारों से यह महसूस होता है कि वे किसी टक्कर या विस्फोट में बने होंगे। इन ग्रहिकाओं के हज़ारों टुकड़े पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करते हैं, जिससे आकाश में प्रकाश की एक रेखा खिंच जाती है। आकाश में तेज़ी से चलती प्रकाश की इस रेखा को उल्का कहते हैं। पृथ्वी के वायुमंडल में आने वाले कई पिन्ड धूल के कण या छोटे कंकड़ के बराबर होते हैं और उड़ान में नष्ट हो जाते हैं। परन्तु जो बड़े पिन्ड उड़ान में नष्ट नहीं होते और पृथ्वी की सतह से टकराते हैं उन्हें उल्कापिन्ड कहा जाता है। उल्कापिन्ड तो मानो सौर मंडल का टुकड़ा है, जो हमारी प्रयोगशाला में आ गिरा हो। उल्कापिन्ड के रासायनिक विश्लेषण से हमें सौर मंडल के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

अभी तक हमने पृथ्वी और उसके उपग्रह चन्द्रमा के अलावा अन्य पृथ्वी जैसे ग्रहों की विशेषताओं

के बारे में बताया है। अब आप बृहस्पति जैसे ग्रहों और पुच्छल तारों की कुछ विशेषताओं के बारे में पढ़ेंगे। किन्तु इससे पहले निम्नलिखित बोध प्रश्न को हल कर लें तो अच्छा रहेगा।

बोध प्रश्न 4

दिये गये स्थान में संक्षिप्त उत्तर लिखें।

क) शुक्र, बुध और मंगल के मुकाबले में इतना ज्यादा प्रकाश क्यों परावर्तित करता है?

.....

ख) मंगल की वे कौन-सी विशेषताएँ हैं, जिनके कारण वह पृथ्वी जैसा लगता है?

.....

ग) ग्रहिकाओं को सौर मंडल का मलबा क्यों कहते हैं?

.....

घ) उल्का और उल्कापिन्ड में क्या अंतर है?

.....

.....

11.4.5 बृहस्पति – एक अनोखा विशाल ग्रह

बृहस्पति सौर मंडल का सबसे बड़ा ग्रह है। यदि हम पृथ्वी को बृहस्पति की सतह पर रखें तो वह एक थाली पर रखे गये पचास पैसे के सिक्के जितनी दिखाई पड़ेगी। बृहस्पति का भार अन्य आठ ग्रहों के मिले-जुले भार के दो गुना से भी ज़्यादा है। इसके सोलह ज्ञात उपग्रह हैं। बृहस्पति न केवल सबसे बड़ा ग्रह है, बल्कि सबसे सक्रिय भी है। यह अनेक रहस्यों और चौंका देने वाली घटनाओं से भरा पड़ा है। इसके सबसे ऊँचे बादल जमी हुई अमोनिया गैस के बने हुए हैं और उनका तापमान–140 डिग्री सेंटीग्रेड है। यह एक उग्र अशांत वायुमंडल से ढका हुआ है जो हाइड्रोजन और हीलियम से बना है और जिसमें अमोनिया तथा मेथैन गैसों की भी काफ़ी बड़ी मात्रा है। यह वायुमंडल हज़ारों किलोमीटर की गहराई तक फैला हुआ है। धीरे-धीरे अत्यधिक दबाव और तापमान के कारण ये गैसें द्रव में बदल जाती हैं और यह माना जाता है कि ग्रह की सबसे अन्दरूनी सतह द्रव धातु की बनी है। बृहस्पति के केन्द्र में एक छोटी-सी चट्टानों की कोर हैं, जहाँ तापक्रम लगभग 20,000 डिग्री सेंटीग्रेड हो सकता है, जो सूर्य की सतह के तापमान से लगभग तीन गुना अधिक है। इस कोर में लोहा, सिलिकन और अन्य भारी तत्व हो सकते हैं। संरचना की दृष्टि से बृहस्पति अन्य ग्रहों जैसा नहीं है। वह सूर्य जैसा अधिक मालूम पड़ता है।

चित्र 11.9 (क) बृहस्पति, (ख) बृहस्पति का विशाल लाल धब्बा ।

बृहस्पति की सतह की सबसे अधिक अनोखी विशेषता है–एक बहुत बड़ा लाल धब्बा (चित्र 11.9 ख)। यह एक लंबा अंडाकार क्षेत्र है जो इतना बड़ा है कि इसमें बराबर से रखी हुई दो पृथ्वियाँ समा सकती हैं। कभी-कभी इस धब्बे का रंग हल्का गुलाबी हो जाता है और कभी भड़कीला नारंगी-लाल हो जाता है। इस विशाल लाल धब्बे को खगोल वैज्ञानिक काफी समय तक नहीं समझ पाये। बृहस्पति को भेजे गये पॉयनियर और वॉयेजर अंतरिक्ष यानों से पता चला है कि यह लाल धब्बा वास्तव में उसके वायुमंडल में चल रहा एक भीषण बवंडर है।

वास्तव में बृहस्पति गैस और द्रव का बना तेज़ी से घूमने वाला गोला है, जिसकी सतह ठोस नहीं है। बृहस्पति से रेडियो तरंगे भी निकलती हैं। इसकी संरचना, आकार और उपग्रहों की संख्या से ऐसा लगता है कि बृहस्पति कोई ग्रह नहीं है, बल्कि अपने सौर मंडल सहित एक ऐसा तारा है जिसमें अपनी ऊर्जा पैदा करने की क्षमता नहीं है। यह हिसाब लगाया गया है कि यदि बृहस्पति सिर्फ़ दस गुना ज्यादा भारी होता तो वह सूर्य के समान अपनी ऊर्जा स्वयं पैदा करने लगता।

बृहस्पति के चार सबसे बड़े उपग्रह – आयो (IO), यूरोपा (Europa), गेनीमीड (Ganymade) और कैलिस्टो (Callisto), इनकी खोज करने वाले गैलीलियों थे जिनके नाम पर ये गैलीलियन उपग्रह कहलाते हैं। ये अपने आप में अनोखे हैं। 3,240 किलोमीटर व्यास वाला आयो उपग्रह अग्नि के गोले के समान है, जहाँ अक्सर ज्वालामुखी फूटते रहते हैं। आयो के आगे है यूरोपा-व्यास 3,120 किलोमीटर, गेनीमीड-व्यास 4,900 किलोमीटर, कैलिस्टो-व्यास 4,570। ऐसा समझा जाता है कि यूरोपा बर्फ का बना है। गेनीमीड और कैलिस्टो पर बर्फ की एक मोटी परत जमी हुई है। बृहस्पति के शेष उपग्रहों के बारे में अभी कोई खास जानकारी उपलब्ध नहीं है।

अमोनिया के बादलों से घिरा, तीव्र रेडियो तरंगे प्रसारित करता, भीषण बवंडरो वाला यह ग्रह बृहस्पति, जिसके उपग्रह आग या बर्फ के बने है ऐसा ग्रह है जहां जीवन की खोज करना व्यर्थ है। फिर भी, कुछ बातों में आज के बृहस्पति की परिस्थितियाँ उन परिस्थितियों से बहुत भिन्न नहीं हैं जिनमें आज से चार अरब साल पहले पृथ्वी पर जीवन का उदय हुआ था। जीवन के निर्माण के लिए आवश्यक समझे जाने वाले यौगिक जैसे पानी, अमोनिया और मेथैन, बृहस्पति के वायुमंडल में मौजूद हैं। बृहस्पति के बादलों में लगातार बिजली चमकती रहती है। अगर बृहस्पति पर थोड़े भी कार्बनिक अणु मिलें तो इससे इस विचार को बल मिलेगा कि जीवन ब्रहमांड में घटने वाली शायद एक घटना मात्र है।

11.4.6 शनि–वलयों से घिरा ग्रह

छठा ग्रह शनि बिना किसी सहायता के आँख से दिखने वाला अंतिम ग्रह है। अपने वलयों के कारण, जो केवल दूरबीनों से देखे जा सकते हैं यह ग्रह सौर मंडल में सबसे सुंदर और आकर्षक दिखाई पड़ता है (चित्र 11.10) । गैलीलियों ने जब सबसे पहले अपनी दूरबीन से उसे देखा तो उन्हें लगा मानो इस ग्रह के कान हों। वास्तव में ये शनि की भूमध्य रेखा के इर्द-गिर्द लिपटे हुए तीन वलय थे। बृहस्पति के बाद आकार और भार में यही सबसे बड़ा ग्रह है। शनि का तापमान बृहस्पति से कम है। इसके सबसे ऊंचे बादलों का तापमान लगभग--180 डिग्री सेंटीग्रेड है। बृहस्पति की ही तरह शनि भी मुख्यतः हाइड्रोजन और हीलियम से बना है, जिसमें अमोनिया, मेथैन और अन्य यौगिकों की मात्रा लेशपात्र है। इसका औसत घनत्व पानी के घनत्व से भी कम है, यानी यदि हम शनि को एक बहुत बड़े सागर में डाल सकें तो यह उसमें तैरेगा।

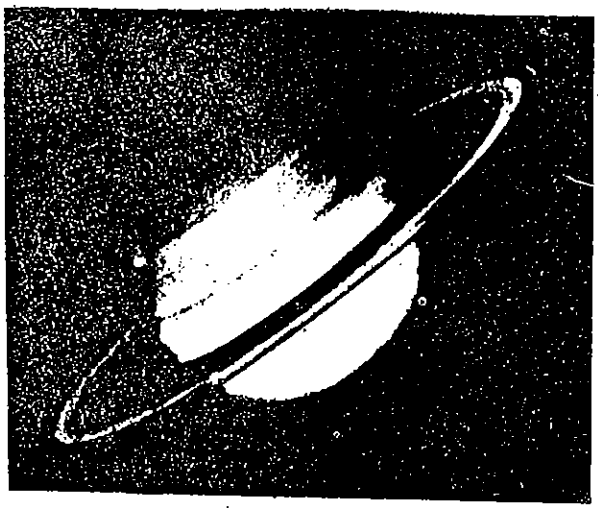

चित्र 11.10 (क) शनि, (ख) शनि के वलय

शनि के वलय अन्य ग्रहों से उसे अलग करते हैं और उसे एक अतुलनीय शोभा देते हैं। वास्तव में ये वलय हज़ारों पास-पास बँधे हुए छोटे-छोटे वलय हैं, जैसे ग्रामोफोन के रिकॉर्ड पर बने हुए खांचे। इन बड़े वलयों के बीच के जो स्थान खाली समझे जाते थे उनमें भी छोटे-छोटे कण पाये गये हैं। सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि एक नया बाहरी वलय दो वलयों से मिलकर बना है जो एक-दूसरे के इर्द-गिर्द ऐसे लिपटे हैं जैसे रस्सी के धागे। ये वलय ठोस पदार्थ के बडे-बड़े टुंकडो से बने हैं, जो शायद बर्फ से ढकी चट्टानें हैं।

शनि के भी कम से कम सोलह उपग्रह हैं, जो इसके वलयों के किनारे पर इसकी परिक्रमा करते हैं। ज्ञात उपग्रहों को पास से देखने पर पता चला है कि वे बर्फीले है और उन पर उल्कापिंडो के आघात के कारण बहुत से गड्ढे बने हुए हैं। शनि का प्रमुख उपग्रह टाइटन (Titan) है, जिसका व्यास 5,800 किलोमीटर है। यह इतना बड़ा है कि अपने आप में ही एक ग्रह बन सकता था। सौर मंडल का यह एकमात्र उपग्रह है जिसका वायुमंडल पृथ्वी के वायुमंडल जितना ही घना है। इसका वायुमंडल 90 प्रतिशत हाइड्रोजन गैस और कार्बनिक यौगिकों, जैसे हाइड्रोजन साइनाइड से मिलकर बना है। परन्तु यह बहुत ठंडा ग्रह है, जिसकी सतह का तापमान--184 डिग्री सेंटीग्रेड है, जहाँ हमारे जैसे जीवन बच नहीं सकते क्योंकि एक तो यह इतना ठंडा है और दूसरे वहाँ हाइड्रोजन साइनाइड जैसे निहायत विषैले पदार्थ हैं।

11.4.7 दृष्टि की पहुँच से परे के ग्रह

दृष्टि की पहुँच से परे शेष तीन ग्रहों – अरुण, वरुण और यम की खोज बाद में हुई।

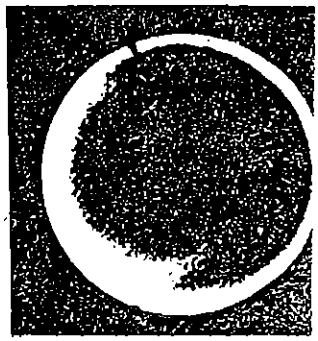

चित्र 11.11 अरुण।

अरुण

बड़ी दूरबीनों से देखने पर अरुण (चित्र 11.11) एक हरे चक्र जैसा दिखाई पड़ता है, जिस पर कुछ अस्पष्ट निशान बने हों। इस ग्रह का हरा रंग इसके बाहरी वायुमंडल में बिखरी हुई मेथैन और अमोनिया के बादलों के कारण होता है। अमोनिया के इन बादलों का तापमान--217 डिग्री सेंटीग्रेड है। बृहस्पति और शनि की तरह अरुण भी हाइड्रोजन, हीलियम और मेथैन जैसी गैसों का बना है। सौर मंडल में अरुण एक अनोखा ग्रह है, क्योंकि इसका अक्ष लम्ब से 98 डिग्री का कोण बनाता है। यानी इसका अक्ष कक्षा के तल में ही है और अरुण का एक ध्रुव कभी-कभी सूर्य की दिशा में रहता है। ऐसा लगता है मानो यह ग्रह सूर्य की ओर लुढ़क गया हो और अपनी कक्षा में एक पहिए की भांति सूर्य के चारों और घूम रहा हो। इस तरह सूर्य की किरणें अरुण के ध्रुव पर पड़ती हैं। अरुण के पंद्रह उपग्रह हैं। 1977 में छोटी-छोटी चट्टानों के बने 9 वलय भी इसके इर्द-गिर्द पाये गये थे।

वरुण

आठवें ग्रह वरुण की खोज 1846 में खगोल वैज्ञानिक योहान गोटफ्रीड गाल्ल (Johann Gottfried Galle) ने की थी। वरुण की खोज की कहानी आप भाग 8.3.4 में पढ़ चुके हैं। यह इतना दूर है कि वरुण से देखने पर सूर्य सिर्फ एक चमकता हुआ बिन्दु मालूम होता है। वरुण के वायुमंडल में मेथैन है, पर अमोनिया नहीं है। इसके बादलों का तापमान लगभग--237 डिग्री सेंटीग्रेड है। वरुण के चारों और घूमने वाला उपग्रह ट्राइटॉन (Triton) सौर मंडल के सबसे बड़े उपग्रहों में से एक है। यह वरुण के चारों ओर दक्षिणवर्त दिशा में घूमता है यानी ग्रह के अपने कक्ष पर घूमने की दिशा के विपरीत। इसका वायुमंडल हाइड्रोजन और मेथैन गैसों का बना हुआ है। इस पर द्रवित नाइट्रोजन का सागर भी हो सकता है। वरुण का एक और छोटा उपग्रह है–नेरिद (Nereid)। 1989 में वॉयेजर-2 वरुण से 35,000 किलोमीटर और ट्राइट्रॉन से 40,000 किलोमीटर दूरी से गुजरेगा। तब हम वरुण और उसके उपग्रहों के बारे में ज्यादा जान पाएँगे।

यम

यम ग्रह का अस्तित्व भी अरुण की कक्षा के विचलन को समझने के लिए सुझाया गया था। वरुण की खोज होने के बाद भी अमरीकी खगोल वैज्ञानिक परसिवल लॉवल (Percival Lowell) ने यह देखा कि अरुण की अपनी कक्षा में गति असामान्य थी वरुण की कक्षा में भी ऐसा ही एक विचलन पाया गया। लॉवल और पिकरिन्ग (Pickering) ने इन विचलनों का कारण समझे जाने वाले एक ग्रह का द्रव्यमान और त्रिज्या के बारे में गणनाएँ की, जिसे उन्होंने ग्रह "एक्स" (X) का नाम दिया। 1916 में यम ग्रह, कक्षा में लगभग उनके द्वारा बतायी गयी जगह पर खोजा गया परन्तु उसका द्रव्यमान काफी कम, लगभग चन्द्रमा के द्रव्यमान के बराबर था। छोटे ठंड और अंधकारपूर्ण ग्रह यम का आकार पृथ्वी के आकार का 1/5 वाँ हिस्सा है। उसकी सतह पर जमी हुई मेथैन की परतें हैं। 1978 में यम का एक उपग्रह खोजा गया और उसका नाम शेरों (Charon) रखा गया। यम के बारे में हमारी जानकारी बहुत अधूरी है।

प्रोफेसर डब्लू. एच. पिकरिंग हार्वर्ड विश्वविद्यालय में भौतिकी के आचार्य थे।

यम की कक्षा और वरुण की कक्षा एक दूसरे को काटती हैं। अन्य किसी भी ग्रह की कक्षाएँ एक-दूसरे को नही काटती और यह समझा जाता है कि शायद यम वरुण का ही एक उपग्रह है जो उसके गुरुत्वाकर्षण से बाहर निकल आया है। यम की खोज होने पर खगोल वैज्ञानिकों ने समझा था कि यही ग्रह "एक्स" है, पर हाल की गणनाओं से पता चलता है कि यम का द्रव्यमान अरुण

की कक्षा में विचलन पैदा करने के लिए बहुत थोड़ा है। इसलिए अभी ग्रह "एक्स" की खोज जारी है।

11.4.8 पुच्छल तारों का विशाल बादल

यम ग्रह के परे सौर मंडल का जो ठंडा बाहरी इलाका है, वहाँ पुच्छल तारों का बना विशाल बादल स्थित है। पुच्छल तारे कभी-कभी सूर्य के इर्द-गिर्द तेज़ी से चक्कर लगाकर चले जाते हैं और उनमें से कुछ दुबारा दिखाई नहीं पड़ते। इन पुच्छल तारों में हमारी विशेष रुचि है क्योंकि ये सौरमंडल के प्रारंभिक इतिहास के अवशेष हैं। जब सौर पदार्थ का मंथन हो रहा था और सूर्य अभी प्रज्ज्वलित हुआ ही था तब उसकी ऊष्मा के कारण सौर पदार्थ के हल्के तत्व सौरर मंडल की बाहरी सीमा में धकेल दिये गये। हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन और कार्बन जैसे हल्के तत्व इकट्ठे होकर कुछ बर्फीली रूई की गेंदनुमा शक्लों में बदल गये और वे अब भी सौर मंडल के बाहरी क्षेत्रों में "बादल" के रूप में तैरते हैं। पुच्छल तारों का यह "बादल" पृथ्वी से, पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी से लगभग 1,00,000 गुना की दूरी पर स्थित है। यह झीना बादल सौर मंडल की हद से परे लगभग कुछ अरब किलोमीटर तक फैला हुआ है, जो कि निकटतम तारे से लगभग आधी दूरी पर है।

पुच्छल तारे मुख्यतः "बर्फ" के बने होते हैं, अर्थात् साधारण बर्फ़ जिसमें जमी हुई मेथैन, कार्बन डाइऑसाइड और अमोनिया गैसें मिली होती हैं। इस बर्फ में धूल के कण भी मिले होते हैं, जिसके कारण वे मटमैले बर्फ़ के गोलों की तरह लगते हैं। इस विशाल बादल में अरबों पुच्छल तारे हैं और वे सूर्य के चारों ओर विशाल कक्षाओं में घूमते हैं। इस बादल में रहते हुए पुच्छल तारे चमकते नहीं हैं। यदा-कदा पास से गुज़रते तारे के गुरुत्वाकर्षण से यह बादल अस्त-व्यस्त हो जाता है। तब कुछ पुच्छल तारे इस बादल से निकलकर अंतरिक्ष में चले जाते हैं और सौर मंडल से बाहर हो जाते हैं, और कुछ सूर्य की ओर चलने लगते हैं।

पृथ्वी से देखा जाए तो सूर्य चन्द्रमा के अलावा आकाश में दिखने वाली सबसे ज़्यादा चमकदार वस्तु पुच्छल तारे हैं। आप शायद जानना चाहेंगे कि मटमैले दिखाई पड़ने वाले बर्फ के गोले, लंबी दुमवाले चमकीले पुच्छल तारों में कैसे बदल जाते हैं? जब कोई पुच्छल तारा सूर्य की ओर चलता है तो उसकी सतह सूर्य की ऊष्मा से गर्म हो जाती है। उसका कुछ जमा हुआ पदार्थ गैस में बदल जाता है और उसके केन्द्र के इर्द-गिर्द तेज़ी से बढ़ता एक बादल बन जाता है, जिसे हम जटा (head) कहते हैं। सूर्य के और करीब जाने पर और अधिक गैस बनती है और यह जटा बड़ी चमकीली हो जाती है। साथ ही धूल और गैस की बनी एक चमकीली दुम सूर्य के प्रकाश और सौर पवन के दबाव के कारण जटा से बाहर धकेल दी जाती है। यह दुम सूर्य की विपरीत दिशा में फैलती है।

यदि पुच्छल तारे सूर्य के बहुत पास से निकलें तो उनकी गति बहुत अधिक बढ़ जाती है, कभी-कभी दस लाख किलोमीटर प्रति घंटे से भी अधिक। तब वे तेज़ गति से अंतरिक्ष की ओर चले जाते हैं। बहुत से पुच्छल तारे विशाल दीर्घ वृत्ताकार कक्षाओं में अंतरिक्ष में अरबों किलोमीटर की दूरी तक चले जाते हैं और वहाँ हजारों साल तक रहते हैं। पर उनमें से कुछ सूर्य के प्रभाव से इतनी आसानी से निकल नहीं पाते हैं। जब वे किसी विशाल ग्रह के पास से गुजरते हैं, खासतौर से बृहस्पति के पास से, तब उनके गुरुत्वाकर्षण के कारण वे सूर्य के चारों ओर छोटी कक्षाओं में घूमने लगते हैं। सबसे प्रसिद्ध पुच्छल तारा है—हैली का पुच्छल तारा, जो हर 74 से79 वर्षों में एक बार वापस आता है। पिछली बार यह 1986 में देखा गया था (चित्र 11.12)।

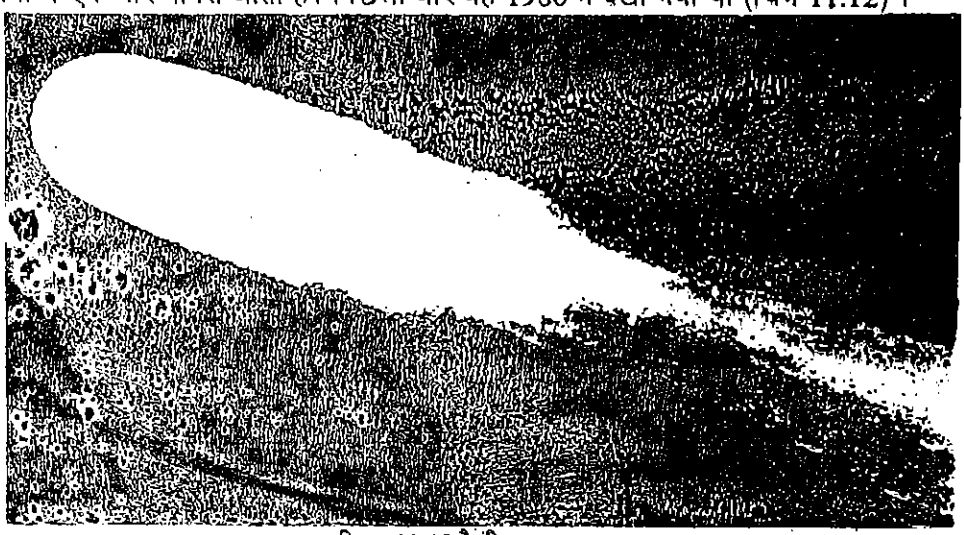

चित्र 11.12 हैली पुच्छल तारा।

कभी-कभी पुच्छल तारों के टुकड़े पृथ्वी पर गिरते हैं, जिससे उल्कापात होता है। बार-बार लौटने वाले पुच्छल तारों में हर बार गैसों का ह्रास होता है। जब उनकी सब बर्फ़ गल जाती है तब वे समाप्त हो जाते हैं और बच जाते हैं छोटे-छोटे कण, जो अंतरिक्ष में फैल जाते हैं और आँखों से नहीं देखे जा सकते।

बोध प्रश्न 5

दिये गये स्थानों में संक्षिप्त उत्तर लिखें।

क) बृहस्पति के किन गुणों के कारण वैज्ञानिकों को यह लगता है कि वह एक तारा है, जो प्रज्ज्वलित नहीं हुआ?

.....

ख) किन विशेषताओं के कारण शनि, बृहस्पतिनुमा ग्रहों में विशिष्ट दिखाई पड़ता है? इस बात से शनि का क़ौन-सा गुण ज़ाहिर होता है कि वह पानी में तैर सकता है?

.....

ग) वरुण और यम की खोज किन प्रेक्षणों के कारण हुई? ग्रह "एक्स" की खोज अभी भी क्यों जारी है?

.....

घ) किसी पुच्छल तारे की ज़टा और पूंछ किन पदार्थों से बनी है?

.....

.....

इस भाग में हमने आपको पृथ्वी और चन्द्रमा के अलावा, सौर परिवार के अन्य सदस्यों के बारे में संक्षिप्त जानकारी दी। आइए, अब हम अपने ग्रह पृथ्वी और उसके उपग्रह चन्द्रमा के बारे में जानें।

11.5 पृथ्वी – हमारा अपना ग्रह

इस बड़े "गेंदनुमा" गोल का, जिस पर हम रहते हैं, हम किस तरह वर्णन करें? अंतरिक्ष से देखने पर यह एक नीला-सफेद गोला मालूम पड़ता है। इस पर उपस्थित पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, बर्फ़ से ढके पर्वत, नीले सागर और सफेद बादल इसे सुंदर छवि प्रदान करते हैं। मनुष्य ने बहुत अच्छी तरह इसका चप्पा-चप्पा खोज डाला है। फिर भी पृथ्वी की जानकारी केवल सतह के कुछ किलोमीटर नीचे तक फैली चट्टानों और पानी के एक पतले आवरण, और ऊपर फैले वायुमंडल तक सीमित है। किन्तु अनेक परोक्ष तरीकों से, जैसे भूकम्प के दौरान पैदा हुई तरंगों के अध्ययन आदि से, वैज्ञानिकों ने बिना देखे और बिना परीक्षण किये पृथ्वी के अंदरूनी हिस्सों की एक तस्वीर बनाई है। यहाँ हम पृथ्वी के बारे में वर्तमान वैज्ञानिक जानकारी का संक्षिप्त विवरण देंगे।

चित्र 11.13 को ध्यान से समझिए और नीचे दिये गये प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 6

क) पृथ्वी और उसके वायुमंडल की सतहों की क्रमानुसार सूची बनाइए, शुरुआत उसके आंतरिक कोर से कीजिए।

.....

.....

ख) वायुमंडल की जिस सतह में हम सांस लेते हैं और पृथ्वी की जिस सतह पर हम रहते हैं, उन्हे क्या कहते हैं?

.....

ग) क्या पृथ्वी का भूपटल समतल है?

.....

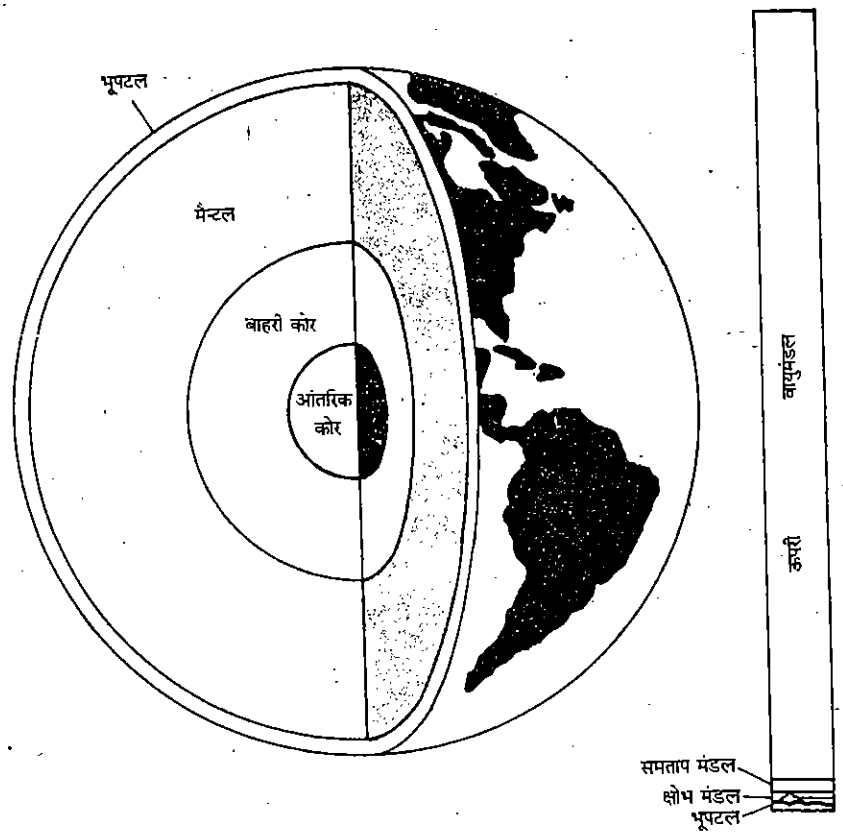

चित्र 11.13 (क) पृथ्वी की अनुप्रस्थ काट जिसमें उसकी संरचना दिखाई गई है; (ख) पृथ्वी का वायुमंडल; (ग) भूपटल समतल नहीं है।

पृथ्वी पर प्रयोगों, जहाज़ों, रॉकेटों और गुब्बारों आदि की मदद से पृथ्वी के वायुमंडल का अच्छी तरह अध्ययन किया गया है। हालाँकि पृथ्वी का वायुमंडल स्पष्ट सतहों में विभाजित नहीं है, फिर भी इसके बारे में ऐसा सोचना इसे समझने में सहायक होता है। पृथ्वी के तल की सबसे नज़दीक सतह का नाम क्षोभमंडल (troposphere) है, जिसमें 78 प्रतिशत नाइट्रोजन और 21 प्रतिशत ऑक्सीजन है। शेष एक प्रतिशत में पानी के वाष्प, कार्बन डाइऑक्साइड, नियोन और आरगन गैसें हैं। इसका औसत तापमान समुद्रतल पर लगभग 16 डिग्री सेंटीग्रेड है और ऊपरी सिरे पर लगभग--16 डिग्री सेंटीग्रेड है। इसके बाद आने वाली सतह समतापमंडल (startosphere) में ओज़ोन के अणु हैं और इसका तापमान--16 डिग्री सेंटीग्रेड से--4 डिग्री सेंटीग्रेड तक है। ओज़ोन की यह सतह सूर्य से आने वाली विनाशकारी पराबैंगनी किरणों को रोक देती है, और इस प्रकार हमारी उनसे सुरक्षा होती है। पृथ्वी के वायुमंडल में उपस्थित कार्बन डाइऑक्साइड ऊष्मा को कैद कर लेती है। इस तरह ग्रीन हाऊस प्रभाव द्वारा पृथ्वी गर्म हो जाती है (देखिए भाग 11.4.2)। अगर ऐसा नहीं होता तो पृथ्वी की सतह का तापमान बहुत कम रहा होता और वह हमेशा बर्फ से ढकी रहती।

अब हम संक्षेप में पृथ्वी के अपने संघटन और संरचना की जानकारी देंगे। इसका भूपटल (crust) समुद्र के नीचे लगभग 10 किलोमीटर मोटा है और महाद्वीपों के नीचे लगभग 65 किलोमीटर मोटा है। अगर आप पृथ्वी को सेब के आकार जैसा सोचे तो उसका पटल सेब की खाल जितना मोटा होगा। इस पटल में प्रमुख तत्व हैं ऑक्सीजन (47.3 प्रतिशत) और सिलीकन (27.7 प्रतिशत)। अल्यूमीनियम, लोहा, कैल्शियम, सोडियम, पोटाशियम और मैगनीशियम जैसे तत्व लगभग 23 प्रतिशत हैं और शेष 2 प्रतिशत अन्य तत्वों से मिलकर बना है। भूपटल वास्तव में पृथ्वी की स्थलमंडल (lithosphere) नामक सतह का ऊपरी हिस्सा है। स्थलमंडल में जो उभार हैं, वे हमें पर्वतों के रूप में दिखाई पड़ते हैं और जो सिलवटें हैं वे सागर के अंदर गहरी खाइयों के रूप में उपस्थित हैं। भूपटल के नीचे पृथ्वी का अधिकांश भाग गर्म और अंशतः पिघला हुआ है।

आइए अब हम संक्षेप में अपने दैनिक जीवन के कुछ अनुभवों की चर्चा करें। उदाहरण के लिए पृथ्वी अपने अक्ष पर 24 घंटों में एक बार घूमती है जिससे यहाँ 24 घंटे की अवधि में दिन और रात होते हैं। पृथ्वी पर मौसम इसलिए बदलते हैं कि पृथ्वी का अक्ष, लम्ब से एक कोण बनाता है। अगर यह अक्ष लम्ब की ही दिशा में होता, जैसा कि कुछ अन्य ग्रहों का है, तब पृथ्वी पर मौसम का यह बदलाव नहीं होता। देखिए चित्र 11.14 (क)।

पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूमने से और सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करने से हमें ऐसा लगता है कि सूर्य, तारे और ग्रह आकाश में गति कर रहे हैं। अन्य अनेक घटनाएँ हैं, जैसे समुद्र में ज्वारभाटा या सूर्य और चंद्र ग्रहण आदि (चित्र 11.14 ख, ग, घ)। ये घटनाएं चन्द्रमा की उपस्थिति के कारण होती हैं जो पृथ्वी का उपग्रह है। आइए, चन्द्रमा के बारे में कुछ और जानकारी हासिल करें।

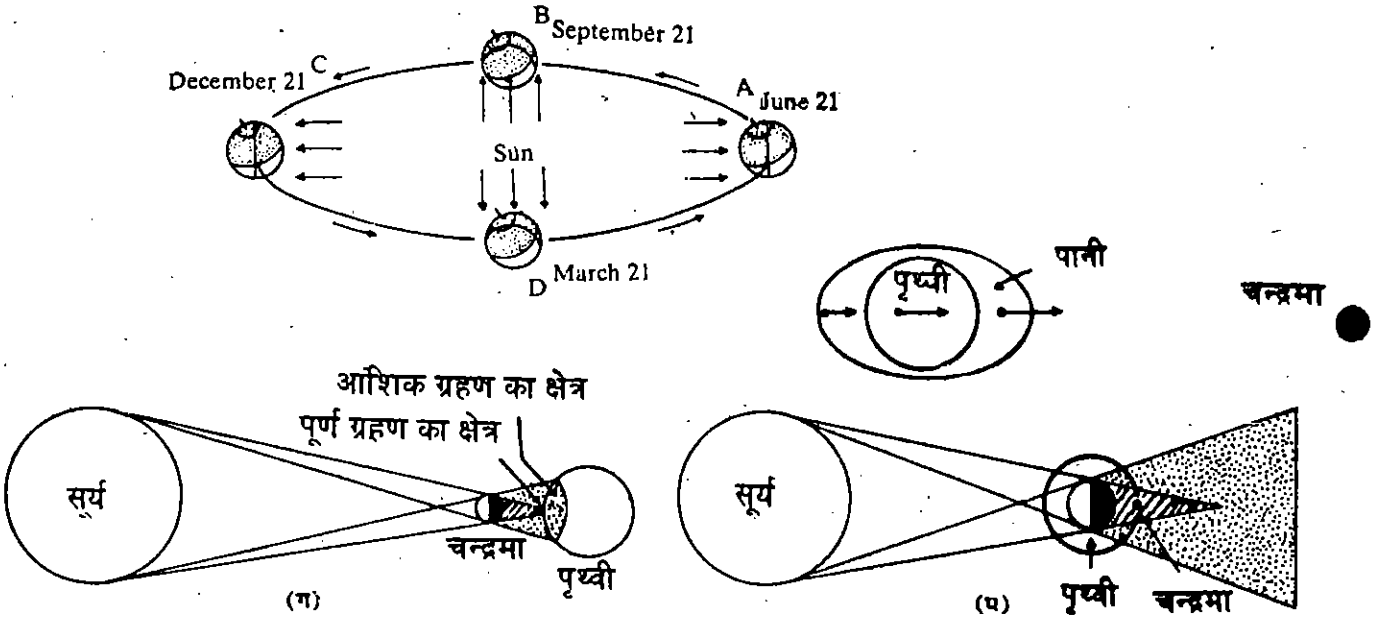

चित्र 11.14 (क) पृथ्वी पर मौसम उसके घूर्णन अक्ष के लंब से झुकाव के कारण बदलते हैं। साल में छह महीने उत्तरी ध्रुव सूर्य की ओर झुका रहता है जिससे सूर्य की किरणें उत्तरी गोलार्द्ध (छायांकित क्षेत्र) में ज़्यादा पड़ती हैं। शेष अवधि में दक्षिणी ध्रुव सूर्य की ओर झुका रहता है और दक्षिणी गोलार्द्ध में ज़्यादा सूर्य की रोशनी पड़ती है। यदि पृथ्वी का अक्ष सौरतल के लम्बवत होता तो यहाँ मौसम नहीं बदलते; (ख) समुद्र में चंद्रमा की उपस्थिति के कारण उत्पन्न ज्वार; (ग) सूर्य ग्रहण, पूर्ण ग्रहण के क्षेत्र में खड़े प्रेक्षक को पूर्ण सूर्यग्रहण दिखेगा और बिंदुवार घेरे में खड़े प्रेक्षक को आंशिक सूर्यग्रहण दिखाई पड़ेगा; (घ) चंद्र ग्रहण।

पृथ्वी का साथी चन्द्रमा

चन्द्रमा के बारे में हम आमतौर पर क्या देखते हैं? यह जब भी रात्रि के आकाश में होता है तो सबसे चमकीला दिखाई पड़ता है। यह घटता बढ़ता रहता है, महीने में एक बार गायब हो जाता है और इसकी एक ही सतह हमेशा पृथ्वी की ओर रहती है। आइए, पहले हम इन प्रेक्षणों को समझें। चन्द्रमा रात में सबसे चमकीला इसलिए दिखाई पड़ता है क्योंकि यह पृथ्वी के सबसे नजदीक है। इसकी कलाएँ हमें इसलिए दिखती हैं क्योंकि यह पृथ्वी की परिक्रमा करता है (देखिए चित्र 11.15 क)। यह पृथ्वी के चारो और 27.33 दिनों में एक बार दीर्घ वृत्ताकार कक्षा में परिक्रमा करता है। उतने ही समय में यह एक बार अपने अक्ष पर घूमता है। इसलिए हमें पृथ्वी से चन्द्रमा की एक ही सतह दिखाई पड़ती है।

चन्द्रमा अंतरिक्ष में स्थित एकमात्र पिंड है, जिस पर मानव रह चुका है, भले ही कुल 13 दिन बहुत थोड़े समय के लिए, वे अंतरिक्ष यात्री अपने साथ चन्द्रमा से चट्टानों और मिट्टी के बहुत से नमूने लाये और चन्द्रमा के बारे में बहुत सी जानकारी भी लाये। चन्द्रमा की सतह पर बड़े-बड़े अँधेरे समतल क्षेत्र हैं, जिन्हें मारिया (समुद्र) कहते हैं, बड़े और छोटे गड्ढे हैं, पर्वत और घाटियाँ हैं। उसकी सतह पर चन्द्रघाटियाँ (rilles) हैं, यानि ऐसे नहरनुमा आकार जो पृथ्वी पर नदी के तल में पानी के कटाव से बन जाते हैं। संकेंद्रित पर्वत शृंखलाओं के बने कुछ गुंबदनुमा आकार भी चन्द्रमा की सतह पर हैं।

चन्द्रमा की चट्टाने और मिट्टी, पृथ्वी की चट्टानों और मिट्टी जैसी ही है। किन्तु चन्द्रमा की चट्टाने अधिक प्राचीन हैं, उनमें कुछ तत्व जैसे टाइटेनियम अधिक मात्रा में मौजूद हैं और कुछ तत्वों, जैसे सोडियम और पोटाशियम का अभाव है। चन्द्रमा की मिट्टी की बनावट महीन गीली रेत जैसी है। हमें न दिखाई पड़ने वाली चन्द्रमा की अँधेरी सतह पर न तो समुद्र है और न ही पर्वत और घाटियाँ (चित्र 11.15 ख)। वहाँ समान रूप से वितरित गड्ढे हैं। चन्द्रमा के उन क्षेत्रों का तापमान जिन पर सूर्य की रोशनी पड़ती है, 130 डिग्री सेंटीग्रेड है और उसके अंधेरे क्षेत्रों का तापमान–170 डिग्री सेंटीग्रेड है। उस पर न तो पानी है और न ही वायुमंडल। लगभग तीन करोड़ वर्ष पहले चन्द्रमा का आंतरिक भाग ठंडा हो गया था और तब से चन्द्रमा में बहुत कम बदलाव

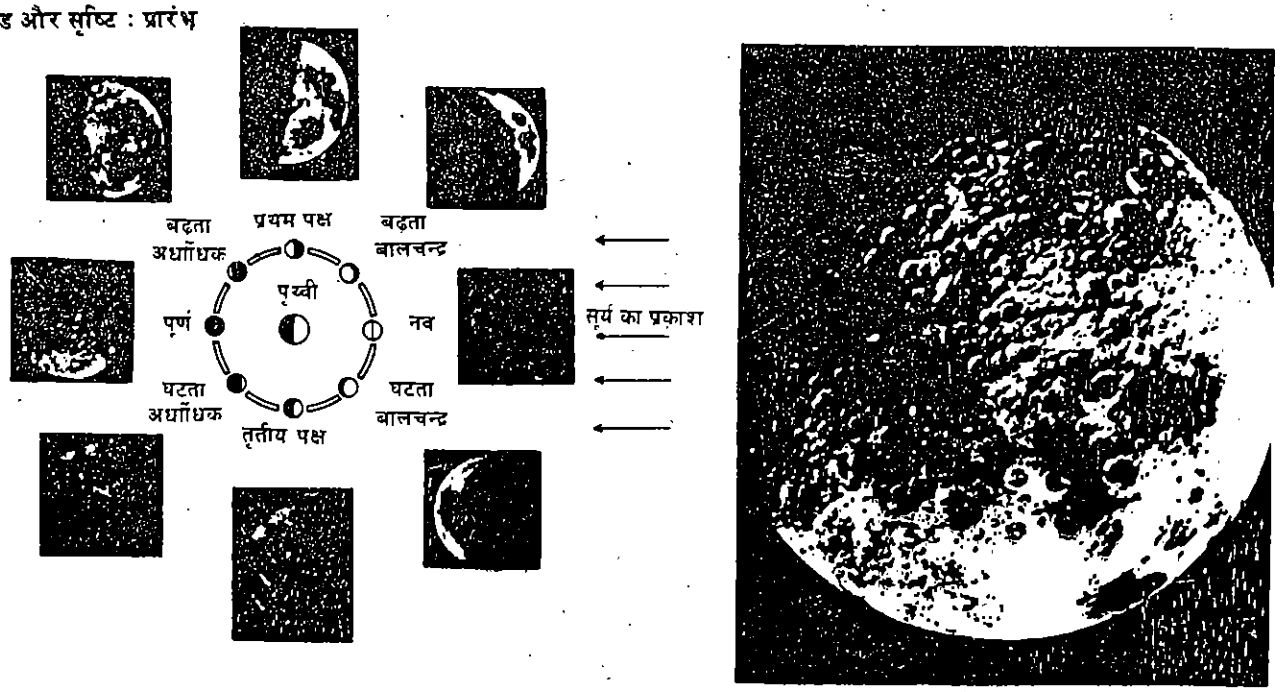

(क) (ख)

चित्र 11.15 (क) चंद्रमा की कलाएं; (ख) चंद्रमा की पृथ्वी से न दिखने वाली सतह।

आया है। हालाँकि चन्द्रमा मृत संसार है, फिर भी इसमें हमारी रुचि है। इसके रहस्यों को अभी तक समझा नहीं गया है और अभी चन्द्रमा की और खोज जारी है।

बोध प्रश्न 7

क) चन्द्रमा को अपने अक्ष पर घूमने में 27.33 दिन लगते हैं और पृथ्वी की ओर चन्द्रमा की हमेशा एक ही सतह रहती है। इसलिए निम्नलिखित में कौन-सी बात सही है। पृथ्वी के चारों ओर चन्द्रमा की एक परिक्रमा में लगा समय :
   i) 29.5 दिन है
   ii) 27.33 दिन है
   iii) चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर नहीं घूमता।

ख) चन्द्रमा मृत संसार क्यों है?

.....

.....

सौर परिवार के बारे में इतनी जानकारी हासिल करने के बाद क्या आपके मन में यह सवाल नहीं आया कि यह कैसे बना और अपनी वर्तमान अवस्था में कैसे पहुँचा? अब हम उस सिद्धांत का विवरण देंगे जो सौर परिवार के बनने के बारे में है और जिसके द्वारा हम सौर परिवार के अधिकतर प्रेक्षणों को अच्छी तरह समझ सकते हैं।

11.6 सौर मंडल का निर्माण

यह सिद्धांत इस अनुमान पर आधारित है कि सूर्य और सभी ग्रह, अंतरिक्ष में स्थित गैस और धूल के एक विशाल बादल से बने हैं (देखिए चित्र 11.6)। किन्हीं कारणों से यह बादल सिकुड़ने लगा। गुरुत्वाकर्षण के कारण इसका संकुचन तेज़ हो गया। (11.16 क) साथ ही यह और तेज़ी से घूमने लगा और चक्र के आकार का हो गया (11.16 ख)। बादल का ज़्यादातर पदार्थ चक्र के केन्द्र की ओर सिकुड़ने लगा और वहां पर एक नया तारा बना, सूर्य। पदार्थ के संकुचन के कारण उसका तापमान बढ़ने लगा और वह अपनी ऊर्जा स्वयं उत्पन्न करने लगा (11.16 ग)। सूर्य के चारों ओर गैस और धूल का बना चक्र घूमता रहा, जिसमें से ग्रह संघनित हुए (11.16 घ)। इस घूमती हुई चकरी में, हल्के तत्व बाहर की ओर फेंक दिये गये और भारी तत्व अंदर की ओर घनीभूत हो गये। जैसे-जैसे सूर्य की ऊर्जा बढ़ी, अंदर के ग्रहों के इर्द-गिर्द गैस का आवरण बाहर

की ओर धकेल दिया गया और सिर्फ़ भारी तत्वों की बनी ठोस कोर शेष बची रह गयी (11.16 ङ) । बाहरी ग्रहों पर इसका कम प्रभाव पड़ा और वे गैसीय बने रहे। अंततः चमकीले तारे के विकिरण ने सौर परिवार की तमाम मुक्त गैस को बाहर धकेल दिया और बाकी बचे सिर्फ़ ग्रह (11.16 च) । इनमें से ठोस ग्रह तारे के पास बचे रहे और तारे से दूर रहे अधिक बड़े और गैस से युक्त ग्रह। इनमें से पृथ्वी का स्थान तीसरा था।

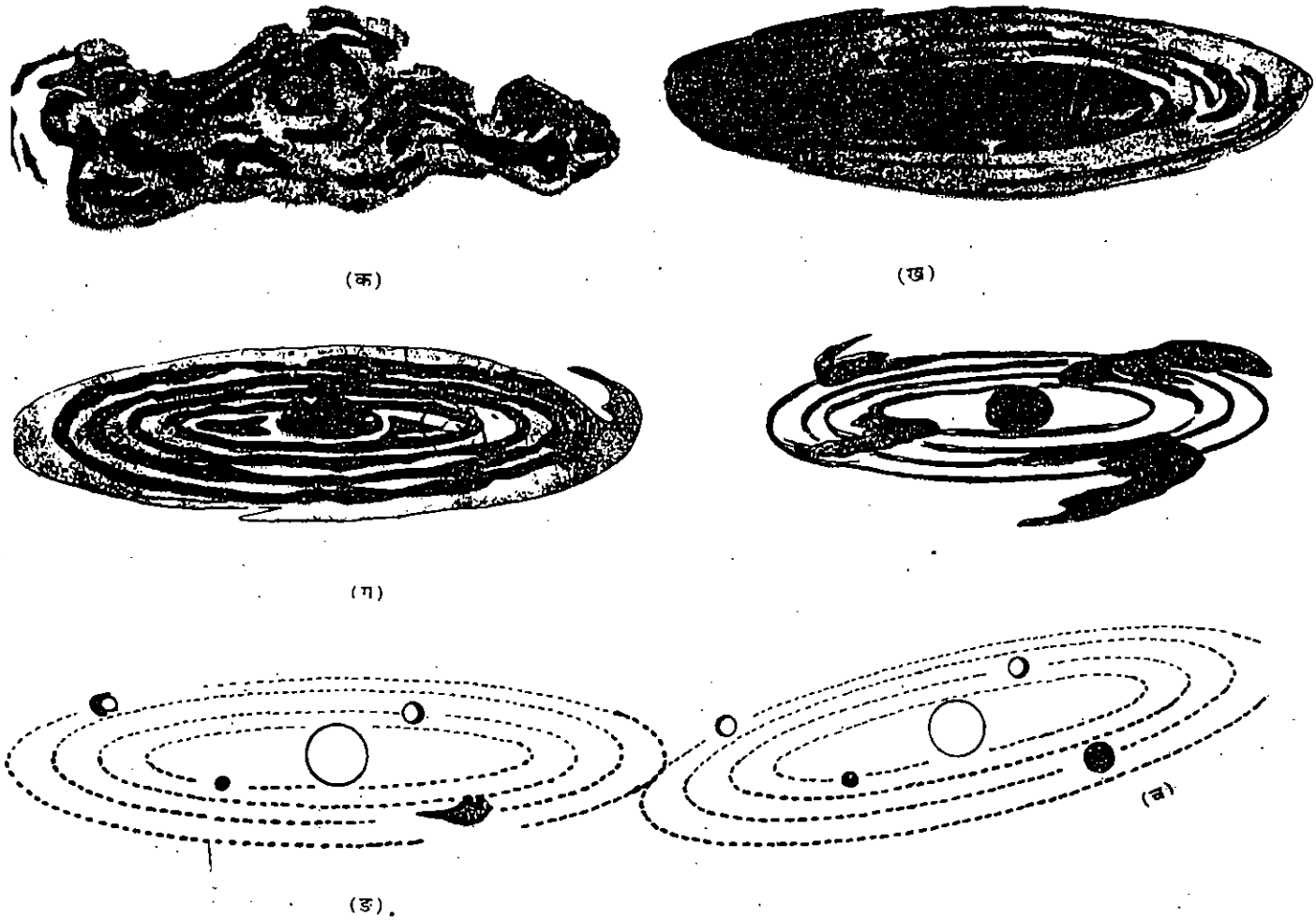

चित्र 11.16 सौरमंडल के निर्माण के सिद्धांत को दिखाता रेखाचित्र।

पृथ्वी का प्रारंभिक इतिहास

पृथ्वी लगभग साढ़े चार अरब वर्ष पहले अपनी उत्पत्ति के बाद से हमेशा विकसित होती रही है और बदलती रही है। पृथ्वी के विकास के शुरू के एक करोड़ वर्षों में, छोटे-छोटे पिंडों के टकराने, गुरुत्वाकर्षण, पदार्थों के सिकुड़ने आदि कारणों की वजह से उसका तापमान बढ़ गया। इसके कारण उसको बनाने वाले तत्व पिघल गये। लोहा अन्य यौगिकों जैसे सिलिकेट्स आदि से पहले ही पिघल गया, क्योंकि वह भारी था और पिघल कर वह केंद्र की ओर इकट्ठा हो गया। इस वजह से हल्के सिलिकेट्स यौगिक सतह की ओर उठ आए जैसे कि स्टोव के ऊपर गर्म हवा उठती है। जैसे-जैसे लोहा पृथ्वी के केंद्र की ओर धंसा, वैसे-वैसे पृथ्वी की सतह में बहुत उतार-चढ़ाव आया, बड़े-बड़े बुलबुले बने, ज्वालामुखी फटे और उन का लावा बहने लगा। उस समय पृथ्वी पर भीषण तूफ़ान भी उठे। अधिकांश लोहा केंद्र में इकट्ठा हो गया और इस तरह कोर का निर्माण हुआ। धीरे-धीरे पृथ्वी का ताप कम हुआ और वह शांत हुई। तब उसकी सतह पर ठोस चट्टानों का एक पतला आवरण बन गया। यह आवरण लिथोस्फियर के ऊपरी हिस्से में प्रारंभिक महाद्वीपों के रूप में इकट्ठा हुआ, मानो वे बड़े-बड़े बेड़े हों। यह प्रारंभिक महाद्वीप अरबों वर्षों तक इधर-उधर चलते रहे। वैज्ञानिक यह मानते हैं कि वे सभी जुड़कर एक बहुत बड़ा महाद्वीप बन गये, जो आज से लगभग बीस करोड़ वर्ष पहले अलग होने लगे. और जिससे आज के महाद्वीप बने (चित्र 11.17) ।

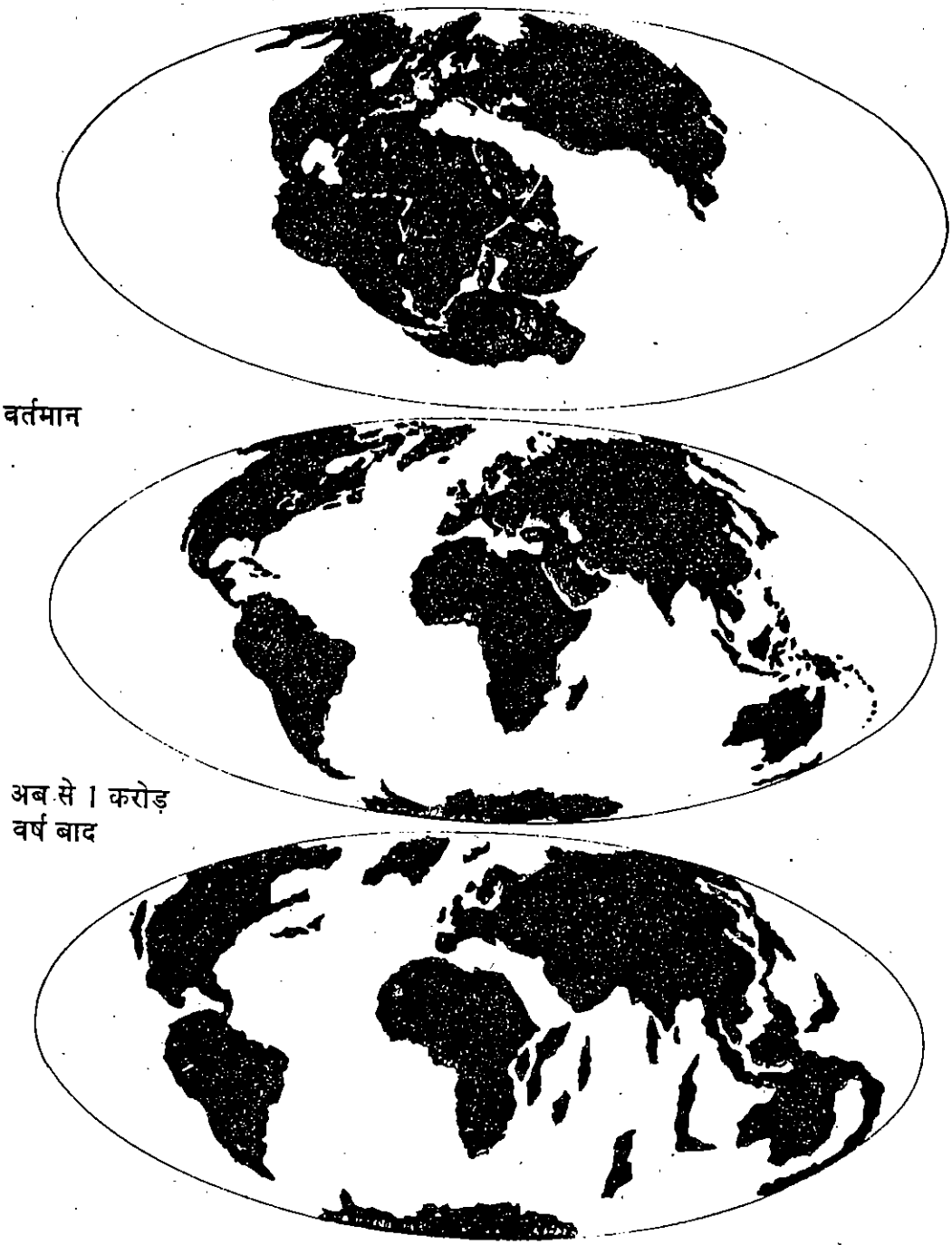

चित्र 11.17 महाद्वीपों की गति।

सूर्य के विकिरण से पृथ्वी की सतह से लगभग सभी गैसें हट गयी थीं। इसलिए शुरू-शुरू में पृथ्वी पर वायुमंडल नहीं था। बाद में पृथ्वी के पिघले हुए पदार्थों और फटते हुए ज्वालामुखियों से पानी की वाष्प, कार्बन डाइऑक्साइड, मेथैन और अमोनिया गैसें निकलीं, जिससे पृथ्वी का प्रारंभिक वायुमंडल बना। सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणों ने पानी के साथ प्रतिक्रिया कर उसे उसके घटकों हाइड्रोजन और ऑक्सीजन में तोड़ दिया। हल्की गैस होने के कारण हाइड्रोजन पृथ्वी के आकर्षण से निकल गयी। ऑक्सीजन गैस की प्रतिक्रिया द्वारा अमोनिया और मेथैन से पानी, नाइट्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड और अन्य यौगिक बने। वायुमंडल की ऊपरी सतह पर ऑक्सीजन के तीन परमाणुओं ने मिलकर ओज़ोन के अणु बनाये, यानी लगभग उसी समय वायुमंडल की ऊपरी सतह पर ओज़ोन की एक तह बन गयी। जैसे-जैसे पृथ्वी और ठंडी हुई, वायुमंडल में उपस्थित पानी की वाष्प संघनित हो गयी और वर्षा के रूप में पृथ्वी पर गिरी जिससे पृथ्वी पर बने बड़े-बड़े गड्ढे भर गये जिनसे विशाल महासागर बने।

ऑक्सीजन का एक साधारण अणु ऑक्सीजन के दो परमाणुओं से मिल कर बनता है।

लगभग चार अरब वर्ष पहले पृथ्वी पर एक और अनोखी प्रक्रिया शुरू हुई यह थी जीवन की शुरुआत। यह भी एक विरोधाभास है कि वही पराबैंगनी किरणें जो आज के अधिकतर जीवित प्राणियों को नष्ट कर सकती हैं, जीवन की उत्पत्ति में सहायक हुई थीं। इस बारे में आप इकाई 12 में विस्तार से पढ़ेंगे।

पृथ्वी का सूर्य से एक विशेष नाता है। सूर्य के बिना पृथ्वी पर जीवन नहीं हो सकता था। सूर्य से प्राप्त हुई ऊर्जा जीवन को चलाने वाली सभी आधारभूत प्रतिक्रियाओं के लिए जिम्मेवार है। साथ ही पृथ्वी की सूर्य से दूरी इतनी ही है कि उसके कारण पृथ्वी पर मौसम कभी भी उग्र नहीं रहा और वह हमारे जीवन के लिए हमेशा से बिल्कुल अनुकूल रहा है। आप इस विशेष संबंध को इकाई 12 और 14 में बेहतर तरीके से समझ पाएँगे।

अभी तक हमने सूर्य, ग्रहों और उनके उपग्रहों, ग्रहिकाओं और पुच्छल तारों के बारे में, और सौर परिवार के निर्माण के बारे में वर्णन किया है। सौर परिवार के बारे में इतना कुछ जान लेने के बाद यह उचित होगा कि हम अपने जीवन पर उनके प्रभाव के बारे में कुछ प्रचलित मिथकों और भ्रांतियों का विश्लेषण करें।

11.7 कुछ मिथक और भ्रांतियाँ

इकाई 2 और 9 में आपने पढ़ा है कि किस तरह हमारे पूर्वज सूर्य और तारों का प्रेक्षण करते थे, और उनकी गति से यह पता लगाते थे कि मौसम किस तरह बदलेंगे, बाढ़ किन दिनों में आएगी आदि। वे यह भी देखते थे कि चन्द्रमा के आकार में दिखने वाले परिवर्तनों की वजह से सागर में ज्वारभाटा आता है। पर सूर्य और चन्द्रमा के अलावा, आकाश में पाँच ग्रह भी दिखते थे। ये थे बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति और शनि। अब अगर सूर्य के कारण गर्मी और सर्दी के मौसम आ सकते थे और चन्द्रमा सागर के पानी को गति दे सकता था तो क्या ग्रहों का पृथ्वी के ऊपर कोई असर नहीं होना चाहिए था?

इस ग़लत किन्तु स्वाभाविक विचार से उभरा ज्योतिष शास्त्र। ऐसे विचार पनपे कि किसी व्यक्ति का भविष्य इस बात पर निर्भर है कि उसके जन्म लेने के क्षण पर ग्रह किस नक्षत्र में उपस्थित थे। यह माना जाने लगा कि राजाओं, राजवंशों और साम्राज्यों का भविष्य ग्रहों की गति से निर्धारित होता है। ज्योतिष ग्रहों की गति को एकदम सही तरीके से समझते थे। उन्हें यह पता रहता था कि मिसाल के तौर पर पिछली बार जब मंगल, सिंह नक्षत्र में प्रवेश कर रहा था तो कौन-सी घटनाएँ हुई थीं। शायद इस बार भी वैसी ही घटनाएँ घटित हों। इस तरह वे राजाओं को यह बताते थे कि कब वे पड़ोसी राज्यों पर हमला करें और कब न करें आदि। यदि युद्ध के देवताओं—शनि और मंगल की स्थिति उन्हें अमंगलकारी मालूम होती, तो वे राजा को सलाह देते थे कि वह अपना युद्ध का इरादा कुछ समय के लिए छोड़ दे। साम्राज्यों को गिराने का एक अच्छा तरीका यह था कि उनके पतन की भविष्यवाणी कर दी जाए। अगर ग्रह राज्यों के भविष्य को निर्धारित कर सकते थे तो क्या वे मनुष्य के जीवन में घटने वाली घटनाओं को नहीं मोड़ सकते थे? इस तरह ज्योतिष शास्त्र प्रेक्षण और गणित पर आधारित शास्त्र और तर्कहीन विचार का एक अजीबो-गरीब संग्रह बन गया। वक्त के साथ-साथ राजाओं ने ज्योतिषयों को महत्व देना शुरू किया। इसके कारण ज्योतिष शास्त्र का प्रभाव बहुत बढ़ गया और आज भी वह सारे संसार में व्याप्त है। किन्तु आज तक यह बिल्कुल भी सिद्ध नहीं हो पाया है कि ग्रहों की गति और पृथ्वी पर रहने वाले प्राणियों के जीवन में कोई कार्य-कारण संबंध है। बल्कि यदि आप प्रचलित ज्योतिष की धारणाओं का बारीकी से विश्लेषण करें तो वे सर्वथा अवैज्ञानिक हैं; दैनिक जीवन की घटनाएँ उन्हें ग़लत साबित करती हैं।

प्रयोग

एक ही दिन के कई अखबारों में भविष्यवाणी वाले कालम को काटकर उनकी तुलना कीजिए।

आप पाएँगे कि हर कतरन में कुछ अलग बात एक गोल-मोल तरीके से कही जाती है। आप यह भी पाएँगे कि आपके जीवन में अगले हफ्ते होने वाली घटनाओं के बारे में उनमें से किसी में भी निश्चित तौर पर कुछ भी नया कहा गया होगा। इसी तरह हमारे समाज में बहुत से अंधविश्वास सूर्य और चन्द्र ग्रहण, पुच्छल तारों आदि के साथ जुड़े हुए है। अब जब आपको सौर परिवार के बारे में कुछ जानकारी मिली है तो हमें उम्मीद है कि आप यह बात समझेंगे कि इन धारणाओं का कोई तर्क और विवेकपूर्ण आधार नहीं है।

11.8 सारांश

- इस इकाई में हमने सौर परिवार के विभिन्न सदस्यों, जैसे सूर्य, ग्रह, उनके उपग्रह, ग्रहिकाओं और पुच्छल तारों की कुछ विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन किया है।

- सौर परिवार का निर्माण और पृथ्वी का प्रारंभिक इतिहास भी वर्णित किया गया है।
- हमने इस बात का विश्लेषण करने की भी कोशिश की है कि किस तरह से मानव जीवन पर ग्रहों के प्रभाव के बारे में बहुत सी भ्रांतियाँ और मिथक उत्पन्न हुए। हमने यह भी बताया है कि इन विचारों का कोई तर्क-संगत आधार नहीं है।

11.9 अंत में कुछ प्रश्न

1) पृथ्वी-समान ग्रहों और बृहस्पति-समान ग्रहों को अलग करने वाले दो गुण लिखिए।

.....

.....

2) शुक्र की सतह का अधिकतम तापमान बुध से अधिक है हालांकि वह सूर्य से अधिक दूरी पर है। ऐसा क्यों है?

.....

.....

3) कुछ पुच्छल तारे सूर्य के निकट कम अन्तराल में क्यों लौट आते हैं?

.....

.....

4) सौर परिवार के निर्माण को दर्शाने वाले निम्नलिखित कथनों को उनके आगे 1 से 4 तक अंक डालकर क्रमानुसार स्पष्ट कीजिए।

   i) जब पदार्थ चक्र के केंद्र की ओर सिकुड़कर इकट्ठा हुआ, तो वहां एक नये तारे, सूर्य का जन्म हुआ।
   ii) आन्तरिक ग्रहों की गैसें बाहर धकेल दी गयीं जिससे वे ठोस रह गये। बाहरी ग्रह गैस के ही बने रहे।
   iii) तारों के बीच अन्तरिक्ष में एक विशाल गैस का घूमता बादल सिकुड़ने लगा और कुछ समय बाद चक्र के आकार का हो गया।
   iv) गैस और धूल के बादल में ग्रह संघनित हो गये और सूर्य के चारों ओर घूमने लगे।

5) प्रारंभिक पृथ्वी और आज की पृथ्वी की तीन विशेषताएँ बताइएँ जो उन्हें भिन्न करती हैं।

.....

.....

11.10 उत्तर

1) सूर्य, नौ ग्रह और उनके उपग्रह, ग्रहिकाएँ और पुच्छल तारे।
2) क) हाइड्रोजन, हीलियम
   ख) हाइड्रोजन नाभिक जुड़कर हीलियम नाभिक बनाते हैं और इस प्रक्रिया में ऊर्जा निकलती है।
   ग) लगभग 5 अरब वर्ष
   घ) यह वहाईट ड्वार्फ़ तारा बन जाएगा और अंततः ब्लैक ड्वार्फ़ तारा बन जाएगा।
3) क) सूर्य का प्रकाश-मंडल पर स्थित सूर्य कलंकों की गति के कारण।
   ख) सूर्यकलंकों का घटना-बढ़ना, सौर पवन और सौर प्रज्वाल
4) क) शुक्र के बादलों के कारण
   ख) 24 घंटे का दिन, बदलते मौसम, ध्रुवों पर उपस्थित बर्फ़, सफ़ेद बादल और वायुमंडल में उड़ती धूल।
   ग) क्योंकि ये सौर पदार्थ के वे टुकड़े हैं जो जुड़ कर ग्रह नहीं बना पाये, मानो वे किसी ढह गयी इमारत का मलबा हो।

घ) उल्कापिंड वे पिंड हैं जो अंतरिक्ष से पृथ्वी की सतह पर टकराते हैं, अंतरिक्ष से जब कोई धूल का कण या अन्य कोई पिंड पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करता है तो प्रकाश की एक रेखा खिंच जाती है जिसे उल्का कहते हैं

5) क) बृहस्पति का आकार, संरचना, घनत्व और उसके उपग्रहों की बड़ी संख्या।
ख) शनि के वलय, शनि का औसत घनत्व पानी के घनत्व से भी कम है।
ग) अरुण का पथ अपनी कक्षा से विचलित होता था। क्योंकि केवल यम की उपस्थिति से अरुण और वरुण के पथ का विचलन नहीं समझा जा सकता।
घ) जटा–बर्फ तथा जमी हुई मेथैन, कार्बन डाइऑक्साइड और अमोनिया; पूंछ – धूल और गैस

6) क) आंतरिक कोर, बाहरी कोर, मैंटल (mantle), पटल (crust) क्षोभमंडल (troposphere), समतापमंडल (stratosphere), ऊपरी वायुमंडल (upper atmosphere)
ख) क्षोभमंडल, पटल (Gust)
ग) नहीं, इस पर पर्वत और खाइयाँ हैं। पानी से भरी खाइयाँ ही सागर है।

7) क) (ii) ख) इस पर न तो वायुमंडल है और न ही पानी कि जीवित प्राणी वहाँ रह सकें।

अंत में कुछ प्रश्न

1) संरचना, घनत्व
2) ग्रीन हाउस प्रभाव। आप इसका विवरण दे सकते हैं।
3) जब पुच्छल तारे किसी बड़े ग्रह, जैसे बृहस्पति या शनि के पास से गुज़रते हैं तो उन ग्रहों के गुरुत्वाकर्षण से उनका पथ बदल जाता है और वह छोटी कक्षाओं में सूर्य के चारों ओर घूमने लगते हैं।
4) i) 2 ii) 4 iii) 1 iv) 3
5) प्रारंभिक पृथ्वी पर बहुत ऊंचा तापमान और तूफ़ानी परिस्थितियाँ थीं, वायुमंडल और जीवन का अभाव था।

इकाई 12 जीवन की उत्पत्ति और विकास

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
12.2 पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति
विशिष्ट सृजन
स्वतः जनन
रासायनिक विकास
मिलर का प्रयोग
12.3 जैविक विकास
12.4 जीवन के प्रति व्यवस्थावादी दृष्टिकोण
जीवन चक्र
काल प्रभावन
12.5 पृथ्वी से परे जीवन
12.6 सारांश
12.7 अंत में कुछ प्रश्न
12.8 उत्तर

12.1 प्रस्तावना

आप पहले पढ़ चुके हैं कि हमारी पृथ्वी का जन्म कब और कैसे हुआ। यह इकाई आपको उस सुदूर अतीत में ले जाती है जब हमारे ग्रह पर कोई जीवन नहीं था। आप यह कल्पना कर सकेंगे कि पृथ्वी पर पौधे और जन्तु किस प्रकार उत्पन्न हुये। निश्चय ही उन घटनाओं की चर्चा करते समय जो करोड़ों या अरबों वर्ष पहले घटी थीं कुछ हद तक कल्पना और अनुमान का सहारा लेना पड़ता है। परंतु अनुमान या अटकल भी बहुत हद तक उपलब्ध प्रमाणों तथा भौतिक विज्ञान के आधारभूत नियमों के अनुसार ही लगाने पड़ते हैं। इससे हमारे ग्रह पर जीवन की उत्पत्ति के बारे में सुझाये गये सिद्धांतों में विश्वास पैदा होता है। इस प्रकार, आज सामान्य मत यह है कि जीवन की उत्पत्ति लगभग 4 अरब वर्ष पूर्व ऐसी स्वतः रासायनिक क्रियाओं से हुई थी जिनके संघटक, जड़ पदार्थों के अणु थे। इस सिद्धांत को इस तथ्य से समर्थन प्राप्त होता है कि पृथ्वी पर सब जीवों की रचना और आणविक संरचना एक जैसी है।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- जीवन की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धांतों और इस विषय में किए गए पास्चर के परीक्षणों के बारे में जान सकेंगे,
- रासायनिक विकास के सिद्धांत और इसके वैज्ञानिक आधारों की चर्चा कर सकेंगे,
- जैवविकास के सिद्धांत और जीवन के विविध रूपों को जान सकेंगे,
- जीवन के व्यवस्थावादी दृष्टिकोण, पुनर्निवेशन, सूचना तथा नियंत्रण की प्रक्रिया को समझ सकेंगे,
- जीवन चक्र तथा काल के प्रभाव को समझ सकेंगे, और
- पृथ्वी से परे जीवन की संभावना का आभास लगा सकेंगे।

12.2 पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति

मनुष्य हमेशा से यह सोचता रहा है कि वह अस्तित्व में किस प्रकार आया, उसे किसने और क्यों बनाया। इस विषय में उसकी उत्सुकता इतनी अधिक थी कि प्रत्येक प्राचीन विचारक, दार्शनिक अथवा "अवतार" ने इन प्रश्नों का कोई न कोई उत्तर देने की कोशिश की और जीवन के सृजन की कोई न कोई विधि बताई।

- प्राचीन यूनानी धारणा के अनुसार जीवन "कॉस्मोज़ोआ" (बाह्य अंतरिक्ष के जीवन) से,

"बीजाणु" (spores) नाम की छोटी इकाइयों के रूप में विभिन्न ग्रहों को स्थानांतरित हुआ था। इन बीजाणुओं पर मोटे अभद्य खोल थे जिसके कारण जल और अन्य आवश्यक घटक इन बीजाणुओं से बाहर नहीं जा सकते थे। ऐसा समझा जाता था कि ताप और नमी की अनुकूल परिस्थितियों में इन बीजाणुओं ने उस समय के निर्जीव ग्रहों में प्रथम जीवन को जन्म दिया। यह विचार जीवन के बीजाणुओं के सार्वभौमिक और अनंत भंडार को मान्यता देता है और इस प्रकार वास्तव में उस प्रश्न, कि सबसे पहले जीवन का निर्माण किस प्रकार हुआ, का उत्तर देने से बच जाता है। यूनानियों या उस समय के किसी व्यक्ति को निश्चय ही यह नहीं मालूम था कि अंतरिक्ष में से यात्रा करने वाले बीजाणुओं को पराबैंगनी और गामा किरणों जैसी हानिकारक विकिरणों का सामना करना पड़ा होगा। इसके अलावा समय-समय पर जीवन की उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न सिद्धांत बनते रहे। इनमें से कुछ तो मात्र काल्पनिक थे और अन्य सिद्धांत कुछ हद तक वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित थे। आइये, इन सिद्धांतों के विषय में हम संक्षेप में पढ़ें।

12.2.1 विशिष्ट सृजन

सब संस्कृतियों के लोगों में प्रचलित एक अन्य मान्यता थी कि जीवन अपने विभिन्न रूपों में, जिनमें मनुष्य भी शामिल था, आज से लगभग 10,000 वर्ष पूर्व, ईश्वरीय आदेश से, एकाएक उत्पन्न हो गया। जीवन के अनगिनत रूप सदा से ही ऐसे थे और बिना परिवर्तन के पीढ़ी-दर पीढ़ी उस समय तक ऐसे चलते रहेंगे जब तक संसार समाप्त नहीं होता। जैसा कि आप आगे पढ़ेंगे, इस प्रकार का विशिष्ट सृजन का सिद्धांत ग़लत है, क्योंकि ऐसे जानवरों के अवशेष खोज लिए गये हैं जो लाखों या उससे भी अधिक वर्षों पहले पृथ्वी पर रहे होगें। वास्तव में अनुसंधानों से पता चला है कि पृथ्वी पर जीवन 3.5 अरब वर्ष पहले भी विद्यमान था। सबसे पहले जीवन सहज रूप में जड़ पदार्थ से पैदा हुआ था और निरंतर होने वाले परिवर्तनों से वह अधिकाधिक जटिल होता गया।

12.2.2 स्वतः जनन

यदि हम अपने इर्द-गिर्द के वातावरण को ध्यान से देंखे तो पायेंगे कि भूसा, मिट्टी, कीचड़, धूल और हर प्रकार के कचरे या सड़ते हुए पदार्थ में बिल-बिलाते और रेंगते जीवों के समूह उपस्थित हैं। इस प्रकार के अवलोकनों ने ही लोगों को यह मानने की प्रेरणा दी कि जीवन जड़ पदार्थों से स्वतः उत्पन्न हो गया था। अरस्तु (384-322 ईसा पूर्व), जो जीव विज्ञान के जन्मदाता के रूप में प्रसिद्ध हैं, का मत था कि केवल कृमि और कीड़े ही नहीं, बल्कि मेंढ़क और चूहे भी कूड़े-कचरे और गीली मिट्टी जैसे उपयुक्त प्रजनन पदार्थों से स्वतः उत्पन्न हो सकते हैं इसलिये हो सकता है कि मनुष्य की उत्पत्ति भी ऐसे ही हुई हो। स्वतः जनन का यह सिद्धांत सन् 1862 में फ्रांस के सूक्ष्म जैव वैज्ञानिक, लुई पास्चर के प्रयोगों से ग़लत सिद्ध हो गया। अरस्तु के सिद्धांतों को ग़लत साबित करना कोई आसान कार्य नहीं था। लुई पास्चर ने अपनी प्रवीणता और प्रायोगिक क्षमता के आधार पर स्वतः जनन के सिद्धांत को ग़लत साबित किया। पास्चर ने अपनी परिकल्पना कि "जीवन से ही जीवन की उत्पत्ति होती है", को जांचने के लिए, फ्रांस की विज्ञान अकादमी (Academy of Science of France) द्वारा अधिकृत प्रसिद्ध जीव वैज्ञानिकों के सामने अपना प्रयोग किया।

इस प्रयोग कि लिए पास्चर ने दो फ्लास्क लिए और उन दोनों को आधा-आधा यीस्ट (Yeast) से भर दिया। इस यीस्ट में थोड़ी से चीनी भी मिली हुई थी। पास्चर ने उन दोनों फ्लास्कों को गर्म किया ताकि उनमें मौज़ूद किसी भी तरह के जीव मरं जाएं। उन्होंने एक फ्लास्क का मुंह बंद कर दिया और दूसरे को हवा के लिए खुला छोड़ दिया। कुछ दिनों बाद यह देखने के लिए कि क्या हुआ, पास्चर ने अपने सभी मित्रों को बुलाया। वैज्ञानिक यह देख कर आश्चर्यचकित रह गए कि बंद फ्लास्क में उस समय भी किसी प्रकार के जीव नहीं थे जबकि खुले हुए फ्लास्क में जीव उत्पन्न हो चुके थे। वास्तव में इनमें से एक बंद फ्लासक अभी भी पेरिस स्थित विज्ञान अकादमी में रखा है। सौ वर्षों से अधिक समय बीत जाने के बाद भी उस फ्लास्क में किसी प्रकार का जीव उत्पन्न नहीं हुआ। फिर भी की नली मुड़ी हुई थी तथा इन फ्लास्कों को खुला रखा (चित्र 12.1) । ऐसे फ्लास्कों में हवा तो जा सकती थी पर किसी भी तरह के जीव इनके अंदर नहीं जा सकते थे। इन फ्लास्कों में किसी भी प्रकार के जीव की उत्पत्ति नहीं हुई।

इस प्रकार पास्चर ने इन साधारण प्रयोगों से यह दिखा दिया कि जीव स्वतः उत्पन्न नहीं होते। पास्चर के अध्ययन से शराब के किण्वन से संबंधित कई समस्याओं को सुलझाने में मदद मिलती है। फ्रांस में उस समय शराब बनाना एक बहुत महत्वपूर्ण उद्योग था और हर समय शराब के खट्टे हो जाने या संदूषित हो जाने का डर बना रहता था। पास्चर ने दिखाया कि यदि शराब बनाते समय उसे कुछ हानिकारक जीवाणुओं से दूर रखा जाए तो शराब खट्टी नहीं होगी।

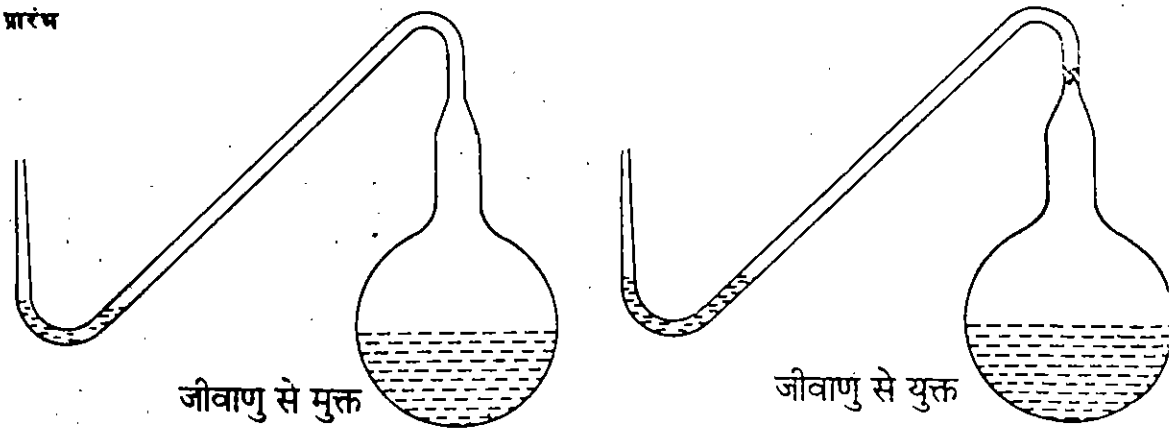

चित्र 12.1 पास्चर ने एक हंसग्रीवा फ्लास्क में यूष (broth) पदार्थ रख कर उबाला। इस फ्लास्क में हवा तो जा सकती थी पर धूल के कण व जीवाणु नहीं जा सकते थे। ठंडा करने पर यूष पदार्थ तब तक जीवाणु रहित रहा जब तक फ्लास्क की गर्दन नहीं तोड़ी गई। पास्चर ने तर्क दिया कि यह प्रयोग सिद्ध करता है कि जीव निर्जीव वस्तुओं से नहीं पैदा हो सकते।

पास्चर के कार्यों से अन्य कई क्षेत्र भी प्रभावित हुए, जैसे कि शल्य चिकित्सा (surgery) । शल्य चिकित्सा से होने वाले घावों और अन्य प्रकार की चोटों में हमेशा ही जीवाणु संक्रमण हो जाता था। यहां तक कि यदि किसी की मृत्यु चोटों या घावों से नहीं होती थी तो वह शल्यक उपकरणों तथा पट्टियों द्वारा हुए जीवाणु संक्रमणों से मर जाता था। पास्चर के कार्य के आधार पर यह धारणा बनी कि यदि घावों को साफ रखा जाए अर्थात् घावों को बीमारी पैदा करने वाले कीटाणुओं से बचाया जाए तो घाव में संक्रमण नहीं होगा और यह जल्दी ही ठीक हो जाएगा।

12.2.3 रासायनिक विकास

यह प्रश्न कि जीवन की उत्पत्ति पहले पहल किस प्रकार आरंभ हुई, अभी तक यह अनुत्तरित था। इस प्रश्न का उत्तर पाने का मतलब है, कि अरबों वर्ष पीछे मुड़ कर देखा जाए और यह कल्पना की जाए कि पृथ्वी पर उस समय क्या स्थिति थी, जब पहले पहल जीवन का उद्भव हुआ। सोवियत जैवरसायनज्ञ ऑपेरिन (1922) और ब्रिटिश जैव वैज्ञानिक हाल्डेन (1928) ने यही करने की कोशिश की । उन्होंने यह बताया कि जीवन जड़ पदार्थों के कार्बनिक अणुओं से उपजा है।

दूसरे शब्दों में जीवन के उद्भव की समस्या को समझने से पहले पृथ्वी पर बनने वाले इन कार्बनिक अणुओं के बारे में जानना जरूरी होगा। विकास के प्रारंभिक चरणों में गर्म, संघनित होती हुई गैसों और पिघले हुए द्रव्य पदार्थों ने मिलकर ऐसे पिंडों का निर्माण किया जिन्हें आज हम चट्टाने कहते हैं। उस समय पृथ्वी एक विशाल कारखाने के रूप में कार्य कर रही थी जिसमें विभिन्न किस्म के यौगिकों का उत्पादन हो रहा था। विभिन्न किस्मों के परमाणुओं और अणुओं के निर्माण के लिए उर्जा स्रोत थे: अंतरिक्षीय किरणें, पराबैंगनी विकिरण, तड़ित बिजली के विसर्जन, रेडियोधर्मिता तथा ज्वालामुखियों और गर्म झरनों की ऊष्मा। सभी प्रकार के अणु अपनी उत्तेजित स्थिति के कारण निरंतर बनते और नष्ट होते रहते थे। वायुमंडल का अपेक्षाकृत हल्की गैसे, जैसे हाइड्रोजन, हीलियम, आक्सीजन और नाइट्रोजन आदि तब तक अंतरिक्ष में जाती रहीं जब तक उनके अणु अन्य तत्वों के साथ संयुक्त होकर द्रव और ठोस में नहीं बदल गये। संयुक्त रूपों में ये गैसें पृथ्वी पर रह सकती थी। खासकर आक्सीजन गैस मुक्त रूप से नहीं रह सकती थी। यह अन्य तत्वों से मिलकर यौगिक बना लेती थी। आक्सीजन और हाइड्रोजन संयुक्त होकर जल वाष्प के रूप में पृथ्वी के वायुमंडल में रही। इसी तरह आक्सीजन ने कैल्शियम और कार्बन से मिलकर चूना पत्थर (कैल्शियम कार्बनेट) बनाया। हाइड्रोजन, नाइट्रोजन और आक्सीजन ने मिलकर अमोनियम नाइट्रेट बनाया। कार्बन और हाइड्रोजन के यौगिकों का भी निर्माण हुआ। कभी-कभी इनके साथ नाइट्रोजन और आक्सीजन भी सम्मिलित हो गये। इस प्रकार के यौगिकों को हम आज कार्बनिक यौगिक कहते हैं।

उस समय पृथ्वी धीरे-धीरे ठंडी होने लगी थी। जैसे ही पृथ्वी काफी ठंडी हो गयी, भाप के द्रवण (condensation) से बहुत तेज़ वर्षा आरंभ हो गयी और लगातार बरसती रही। वर्षा इतनी अधिक मात्रा में हुई कि उससे पृथ्वी के गड्ढे भरते गये और महासागरों का निर्माण हुआ। इन महासागरों के गर्म पानी में आरंभ में विभिन्न प्रकार के कार्बनिक यौगिक काफी मात्रा में मौजूद थे। ये यौगिक वायुमंडल में से वर्षा के साथ मिलकर आ गये थे। गर्म पानी में इन यौगिकों की पारस्परिक क्रियाओं के कारण, और भी अनेक यौगिकों का निर्माण हुआ। पृथ्वी के विकास की इस

अवस्था में पानी को "गर्म तनु घोल" (hot dilute soup) कहा जाता है जिनमें अन्य वस्तुओं के अलावा एमीनो एसिड (amino acid) भी मौजूद थे। ये एमीनो एसिड कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन और आक्सीजन के यौगिक थे, और इन्हीं एमीनो एसिड के अणुओं ने मिलकर कई प्रकार के जटिल प्रोटीन का निर्माण किया। ये प्रोटिन ही जीवन के निर्माण की इकाइयाँ हैं।

जटिल कार्बन अणुओं के इस संचयन से ही संयोगवश आरंभ में अत्यंत सरल, परंतु अपनी प्रतिकृति (replica) बनाने में सक्षम आणविक प्रणाली उत्पन्न हुई। अपनी प्रतिकृति निर्माण करने की क्षमता के कारण इन प्रणालियों को जीवधारी का नाम दिया गया है। सूर्य की घातक पराबैंगनी विकिरणों ने इन जीवित अणुओं को मार दिया होता यदि वे पानी की सुरक्षात्मक सतह के नीचे न रहते। इस प्रकार के आरंभिक जीवों को बहुत सीमित मात्रा में ही भोजन उपलब्ध था क्योंकि भोजन के लिए वे उन कार्बनिक पदार्थों के नीचे डूबने पर ही निर्भर रहते थे, जो पानी को ऊपरी सतहों पर विकिरणों की उपस्थिति में संश्लेषित होते थे। इस प्रकार लाखों वर्षों तक इन जीवधारियों ने विशेष परिस्थितियों में ही जीवनयापन किया। बाद में कुछ संयोजनों से ऐसे जीवों की उत्पत्ति हुई जिनमें क्लोरोफ़िल मौजूद था जिसकी वजह से ये जीवधारी अपना भोजन स्वय प्रकाशसंश्लेषण (photosynthesis) की प्रक्रिया द्वारा बना सकते थे। इस प्रकार के जीवों के जीवित रहने की अधिक संभावना थी। प्रकाशसंश्लेषण के दौरान सूर्य के प्रकाश की सहायता से कार्बन डाइआक्साइड और पानी से शर्करा और स्टार्च जैसे कार्बोहाइड्रेटों का संश्लेषण होता है। इस प्रक्रिया में जीवधारी आक्सीजन छोड़ते हैं। इस प्रकार के जीवों में वृद्धि होने के कारण वायुमंडल में मुक्त आक्सीजन की मात्रा बढ़ गई। जैसा कि आप आगे पढ़ेंगे, इस प्रक्रिया का बाद के घटनाक्रम पर काफ़ी गहरा प्रभाव पड़ा।

अपनी प्रतिकृति बनाने में सक्षम अणु अपने आस-पास के रसायनों से अपनी ही तरह के अणुओं का निर्माण कर सकते हैं।

आक्सीजन पराबैंगनी विकिरणों के साथ क्रिया करके ओज़ोन का निर्माण करती है। ओज़ोन एक ऐसी गैस है जिसमें से पराबैंगनी विकिरणें नहीं गुज़र सकतीं। यह क्रिया पृथ्वी की सतह से 25 कि.मी. की ऊँचाई पर होती है, जिससे वहां संरक्षी ओज़ोन की परत (ozone layer) बन जाती है। इस प्रकार हमें सुखद घटनाओं का एक ऐसा क्रम मिला जिसमें अधिक प्रकाश संश्लेषण से अधिक आक्सीजन का निर्माण हुआ। इससे वायुमंडल में अधिक ओज़ोन बनी और इस ओज़ोन ने पृथ्वी की ओर आने वाली हानिकारक पराबैंगनी विकिरणों को रोक कर पृथ्वी की रक्षा की, जिससे जीवधारी पानी की सतह पर आ सके। जैविक दृष्टि से पृथ्वी के वायुमंडल का आक्सीजनीकरण (oxygenation) बहुत महत्वपूर्ण घटना थी, जिसके फलस्वरूप अधिक जटिल तथा बुद्धिमान जीवधारियों की अंततः उत्पत्ति हो सकी।

पृथ्वी के शुरू के वायुमंडल में मुक्त आक्सीजन नहीं थी तथ कार्बन डाइऑक्साइड, मेथैन अमोनिया, वाष्प आदि अधिक मात्रा में थे। लगभग बीस लाख वर्ष पहले साइनोबैक्टीरिया द्वारा प्रकाशसंश्लेषण की क्रिया से मुक्त आक्सीजन पहली बार वायुमंडल में आई।

12.2.4 मिलर का प्रयोग

पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति के समय की परिस्थितियों को छोटे पैमाने पर प्रयोगशाला में पुनः उत्पन्न करके ऊपर दिये गये सिद्धांत की जाँच की जा सकती है।

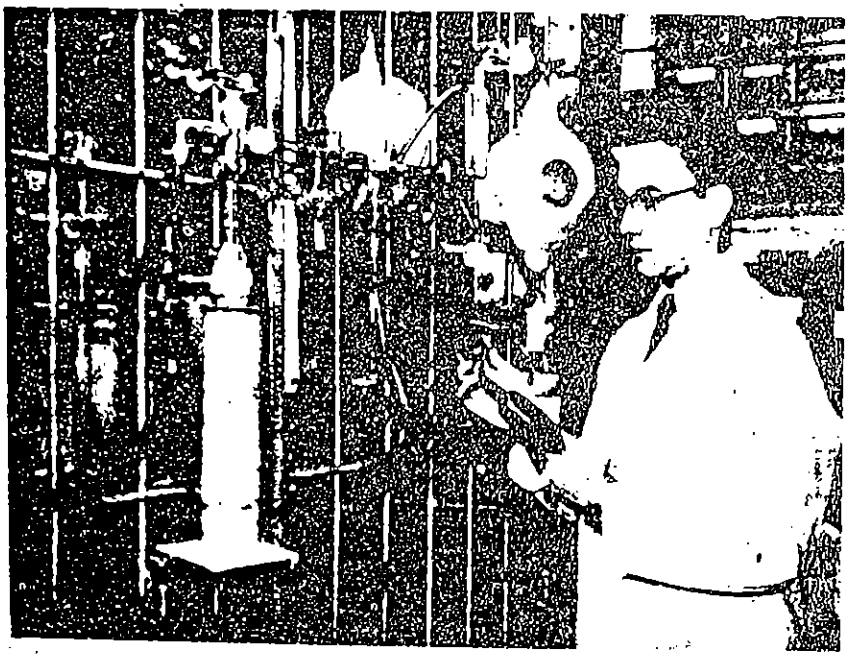

चित्र 12.2 स्टैनले मिलर अपने उपकरणों के साथ, जो पृथ्वी पर जैविक सृष्टि से पहले की परिस्थितियों में एमीनों एसिड का संश्लेषण दर्शाते हैं।

अमरीकी जीववैज्ञानिक मिलर (चित्र 12.2) ने मेथेन, अमोनिया, जल वाष्प और हाइड्रोजन के

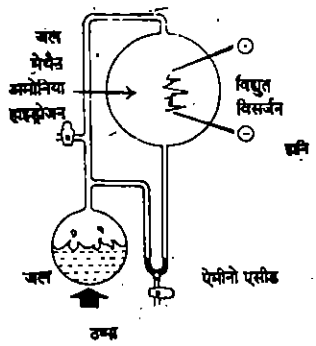

चित्र 12.3 एक प्रतीकात्मक प्रयोग जो आदिकालीन पृथ्वी की परिस्थितियों को दर्शाता है। पानी बन्द उपकरण में गर्म किया जा रहा है, जिसमें मेथैन, अमोनिया और हाइड्रोजन वाष्प अवस्था में हैं, तथा उसमें विद्युत का विसर्जन हो रहा है। कार्बनिक यौगिक यू-ट्यूब ट्रैप में एकत्र होते हैं।

गैसीय मिश्रण को एक बंद फ्लास्क में 80° सेल्सियस पर रखकर उसमें से एक सप्ताह तक विद्युत आवेश विसर्जित किया। यह मिश्रण, यह तापमान तथा उसमें से विद्युत आवेशों का विसर्जन, वे परिस्थितियां हो सकती थीं जो जीवन के उद्भव के पूर्व पृथ्वी पर मौजूद हो सकती थीं। जब एक सप्ताह बाद फ्लास्क के अंदर की वस्तुओं का (चित्र 12.3) परीक्षण किया गया तो उसमें ऐसे एमीनो एसिड पाये गये जो प्रोटीन के निर्माण के लिए ज़रूरी होते हैं। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं प्रोटिन जीवन के निर्माण की इकाई है। जीवन से संबद्ध इन अणुओं के प्रयोगशाला में निर्माण में सफलता मिल जाने से ऑपेरिन-हाल्डेन के रासायनिक विकास के सिद्धांत की विश्वसनीयता बहुत अधिक बढ़ गई। बाद में इस विधि से अनेकों प्रकार के एमीनो एसिड बनाये गये। साथ ही कुछ ऐसी शर्करायें और नाइट्रोजनीय यौगिक (nitrogenous bases) भी प्राप्त किये गये, जो जीवित प्राणियों की इकाई, कोशिका के केंद्रक में पाये जाते हैं। बाद में इसी प्रकार के प्रयोगों से ऐसे विभिन्न यौगिकों के उत्पादन में सफलता मिली जो अनेक किस्म की वसाएँ (fats) तथा महत्वपूर्ण प्राकृतिक पिगमेंट बनाते हैं। इस प्रकार मिलर के प्रयोग से जीवन की उत्पत्ति से संबंधित समस्याओं को समझने और सुलझाने के तरीकों में एक नया मोड़ आया।

अंतरिक्ष में आज भी उसी तरह की रासायनिक क्रियाएं हो रही हैं, जिनके प्रमाण हमें मिलर के प्रयोग से मिलते हैं। सन् 1969 में आस्ट्रेलिया में मार्चिसन के निकट गिरने वाले उल्कापिण्ड का रासायनिक विश्लेषण करने पर उसमें कार्बनिक अणु पाये गये। इन अणुओं के प्रकार और आपेक्षिक अनुपात, मिलर के प्रयोग के अन्त में प्राप्त अणुओं से बहुत मिलते थे। रेडियो खगोलिकी द्वारा भी अंतरातारकीय अंतरिक्ष में मौजूद कार्बनिक अणुओं जैसे मेथेन, एथेन, फॉर्मेल्डीहाइड, ऐसीटिलीन आदि का पता चला है।

बोध प्रश्न 1

i) आगे दी गई तालिका में जीवन की उत्पत्ति से संबंधित कुछ सिद्धात और इन सिद्धांतों की प्रमुख विशेषताएं दी गई है। इन विशेषताओं को संगत सिद्धांतों से मिलाएँ।

सिद्धांत		विशेषता
क) स्वतः जनन का सिद्धांत	1	बाह्य अंतरिक्ष से कॉस्मोज़ोआ या बीजाणुओं का कई ग्रहों पर स्थानांतरण हुआ था।
ख) विशिष्ट सृजन का सिद्धांत	2	ऑपेरिन और हाल्डेन ने अलग-अलग यह विचार प्रस्तुत किया था कि पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति पूर्वनिर्मित जटिल कार्बनिक अणुओं से हुई थी।
ग) रासायनिक विकास का सिद्धांत	3	जीवन के असंख्य रूप ईश्वरीय आदेश से निर्मित हुए थे।
घ) प्राचीन यूनानी धारणा	4	सड़ते हुए भोजन और कार्बनिक पदार्थों से जीव उत्पन्न होते हैं।

ii) नीचे पृथ्वी पर जीवन के विकास के बारे में अपूर्ण कथन दिये गये हैं। इन्हें कोष्ठकों में से उपयुक्त शब्द ढूंढ कर पूरा कीजिए:

क) जीवन के उद्भव से संबद्ध एक सिद्धांत जैसे कि ..... के रासायनिक विकास के सिद्धांत की प्रायोगिक तौर पर पुष्टि की जा सकती है।

ख) मिलर ने मेथेन, अमोनिया, जल वाष्प और हाइड्रोजन के गैसीय मिश्रण को एक ..... फ्लास्क में 80° सेलसियस पर उपचारित किया।

ग) जब फ्लास्क में भरे पदार्थ को जाँचा गया तो उनमें ..... पाये गये जो प्रोटीन के निर्माण के लिए ज़रूरी होते हैं।

घ) प्रयोगशाला में किये गये इसी प्रकार के प्रयोगों में ऐसे विभिन्न ..... के उत्पादन में सफलता मिली जो कई किस्म की वसायें और प्राकृतिक पिगमेंट बनाते हैं।

(यौगिकों, बंद, एमिनो एसिड, ऑपेरिन-हाल्डेन)

12.3 जैविक विकास

पिछले भाग में आपने पढ़ा कि किस प्रकार पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति हुई, आपने यह भी पढ़ा कि जैसे-जैसे पृथ्वी की परिस्थितियों में बदलाव आया, जीवन अधिकाधिक जटिल रूपों में

विकसित होता गया। हम यह मान सकते हैं कि पहली वास्तविक कोशिकाओं के निर्माण के साथ ही जैविक विकास की शुरुआत हुई। ये कुछ इस तरह के जीव रहे होंगे, जिन्हें मुक्त आक्सीजन की ज़रूरत नहीं थी और भोजन के लिए अपने आस-पास के पानी में मौजूद कार्बनिक अणुओं पर निर्भर थे। अंततः इस प्रकार के भोजन में कमी होने के साथ-साथ ऐसी कोशिकाओं की उत्पत्ति हुई होगी जो प्रकाशसंश्लेषण की क्रिया द्वारा कार्बन डाईआक्साइड और प्रकाश की ऊर्जा के उपयोग से अपना भोजन स्वयं बना सकते थे। आज हम एक कोशिकीय (unicellular) पौधों और जन्तुओं से लेकर कई प्रकार के पौधों और मनुष्य सहित कई तरह के जन्तुओं के विविध रूपों से परिचित हैं। आज हमारे ग्रह पर जीवधारियों की लाखों जातियाँ (species) मौजूद हैं। इस बात के प्रमाण हैं कि सभी जीवधारी परस्पर संबंधित हैं, और उच्चतर जीवधारी निम्नतर जीवधारियों से विकसित हुए हैं। इस विषय में हम अगली इकाई—मनुष्य का विकास, में और अधिक पढ़ेंगे। इन लाखों जातियों के बारे में अलग-अलग अध्ययन करना बहुत कठिन कार्य है। इसलिए सभी जीवों का इनके पारस्परिक विकासीय संबंधों (evolutionary relationship) तथा इनके प्रकार और कार्य में समानताओं के आधार पर समूहों में वर्गीकरण करना ज़रूरी है।

आज अधिकतर जीव वैज्ञानिक सभी जीवित प्राणियों के पांच वर्गों या प्राणिजगत को जानते हैं जैसा कि चित्र 12.5 में दिखाया गया है। पहले वर्ग मोनेरा (monera) में सर्वाधिक प्राचीन एककोशिकीय जीव शामिल हैं। शुरू में दो अरब वर्षों तक पृथ्वी पर ये अकेले जीव थे। इन कोशिकाओं में केन्द्रक नहीं होते, तथा ये आजकल बैक्टीरिया और साइनोबैक्टीरिया (इन्हें नीलहरित शैवाल भी कहा जाता है) के रूप में जाने जाते हैं। दूसरे वर्ग, प्रोटिस्टा (protista) का विकास लगभग 1.5 अरब वर्ष पहले हुआ था तथा इसमें ऐसे एककोशिकीय जीव शामिल हैं जिनकी कोशिकाओं में केन्द्रक हैं। शैवाल (algae), प्रोटोज़ोआ (protozoa) तथा आवयक फफूँदी (slime moulds) इसी प्राणिजगत के सदस्य हैं।

आपने वर्षा ऋतु में पेड़ों के नीचे उगी हुई खुमियों (mushrooms) को तो देखा होगा। ये खुमियाँ तथा एककोशिकीय यीस्ट (yeast), कवक (fungus) वर्ग के सदस्य हैं। इन जीवों का एक अलग वर्ग है, क्योंकि सड़े हुए कार्बनिक पदार्थों का भोजन के रूप में इस्तेमाल करने वाले ये सर्वाधिक जटिल जीवों में से हैं। कुछ कवक परजीवी होते हैं, जिनके कारण पौधों, जन्तुओं और मनुष्यों को गम्भीर बीमारियाँ हो जाती हैं, जबकि कुछ अन्य प्रकार के कवकों से हमें सर्वाधिक लाभदायक दवाइयाँ, जिन्हें प्रतिजैविकी (antibiotics) कहते हैं, प्राप्त होती हैं। आपने पेनिसिलीन (penicillins), स्ट्रेप्टोमाइसिन (streptomycin) आदि दवाइयों के बारे में ज़रूर सुना होगा। ये दवाइयाँ कवकों से बनाई जाती हैं।

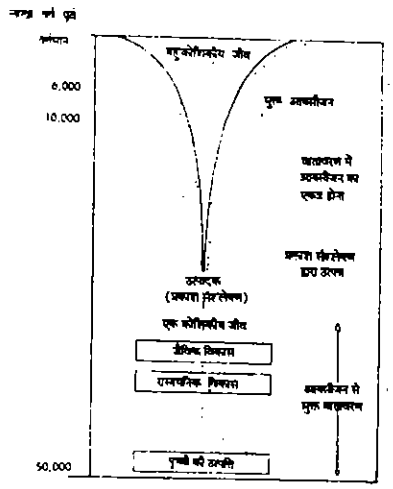

चित्र 12.4 पृथ्वी पर जैविक विकास की विशेष घटनाओं का रेखाचित्रण।

अन्य दोनों वर्गों, पौधों और जन्तुओं का विकास कुछ समय बाद, पृथ्वी के बदलते हुए वातावरण से अनुकूलन (adaptaions) के कारण हुआ। पौधों का विकास लगभग 6,000 लाख वर्ष पहले शुरू हुआ था। अधिकांश पौधों में एक हरा पिगमैंट, क्लोरोफ़िल (chlorophyll) होता है, जो उन्हें प्रकाशसंश्लेषण प्रक्रिया द्वारा अपना भोजन स्वयं बनाने में मदद करता है। इन जीवों की उत्पत्ति सबसे पहले समुद्रों में एककोशिकीय शैवाल के रूप में हुई। इन हरे शैवालों को अनावृतबीजी (gymnosperms) अर्थात् पुष्पविहिन पौधों और आवृतबीजी (angiosperms) अर्थात् पुष्पी पौधों का पूर्वज माना जाता है। आज इन पौधों की विविधता तथा संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हुई है।

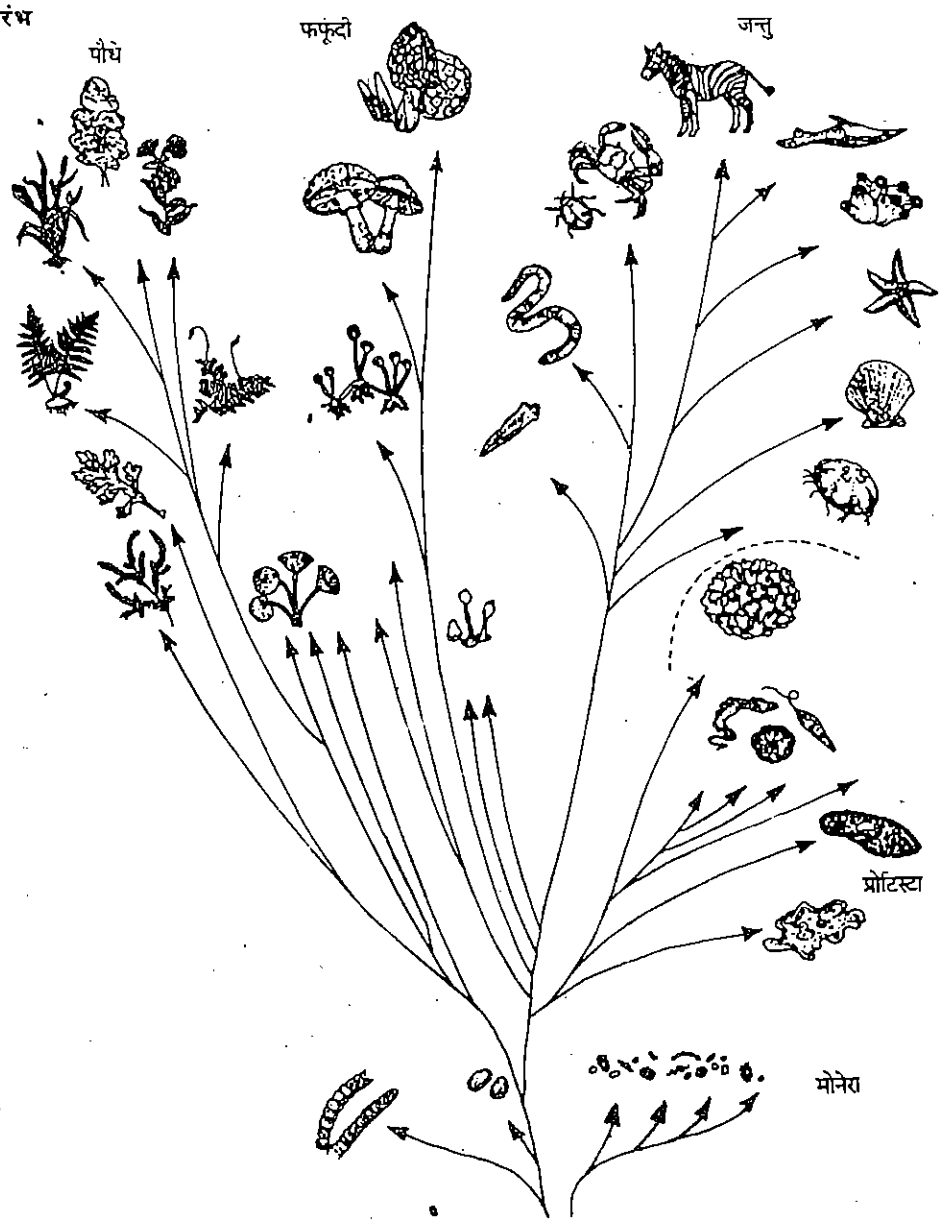

चित्र 12.5 जीवों के पाँच वर्ग या प्राणि जगत।

पौधे ऐसे बहुकोशिकीय (multicellular) जीव हैं, जो अपना भोजन प्रकाशसंश्लेषण प्रक्रिया के द्वारा स्वयं बनाते हैं, जबकि जंतु ऐसे बहुकोशिकीय जीव हैं, जो भोजन के लिए पौधों पर निर्भर रहते हैं। सभी जन्तुओं को दो वर्गों में बाँटा गया है। पहले वर्ग, अकशेरूकी (invertebrate) में वे जन्तु हैं जिनमें रीढ़ की हड्डी (back bone) नहीं होती तथा दूसरे वर्ग कशेरूकी (vertebrate) में वे जन्तु हैं जिनमें रीढ़ की हड्डी होती है। जानवरों के विभिन्न समूहों को उनकी जटिलता के अनुसार क्रमबद्ध किया जा सकता है। कीड़े और कृमि अकशेरूकी हैं, जबकि मछली, मेढ़क, टोड, साँप, पक्षी तथा स्तनपायी जानवर जैसेकि गाय, हिरन, घोड़ा, हाथी और मनुष्य, सभी कशेरूकी वर्ग के सदस्य हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैविक विकास अरबों वर्षों के समय में काफ़ी धीरे-धीरे हुआ। जीवों की विभिन्न तरह की जातियाँ विकसित हुई हैं जिन्होंने स्वयं को वातावरण के अनुकूल बना लिया है।

बोध प्रश्न 2

नीचे पौधों और जीव जन्तुओं की उत्पत्ति और विकास से संबंधित कुछ प्रश्न दिये गये हैं। खाली जगह में इनके उत्तर लिखें।

i) प्रथम कोशिका में किस वस्तु की कमी थी? .....

.....

.....

ii) अपने क्षेत्र में पाये जाने वाले कुछ अनावृतबीजी पड़ों के नाम लिखिए। .....

.....

.....

iii) भोजन के निर्माण के लिए पौधों में कौन सा पिगमेंट पाया जाता है? .....

.....

iv) उन जानवरों को क्या कहते हैं जिनमें गिद्ध की हड्डी होती है? .....

.....

.....

.....

12.4. जीवन के प्रति व्यवस्थावादी दृष्टिकोण

जैसाकि आपने अभी पढ़ा, जीवन साधारण एककोशिकीय बैक्टीरिया (जीवाणु) से लेकर अत्यंत जटिल जीव मनुष्य तक, विभिन्न रूपों में विकसित हुआ। आपको यह बात शायद दिलचस्प लगे कि एक अति साधारण जीव भी विभिन्न जैविक प्रक्रियाओं, जैसे भोजन ग्रहण, उत्सर्जन (excretion), उद्दीपन (stimulus) की प्रतिक्रिया और प्रजनन (reproduction) को कार्यान्वित कर सकता है। यह स्वयं को विभिन्न परिस्थितियों के अनुकूल बना सकता है। आइए देखें कि कोई जीव किस प्रकार ये सभी कार्य करता है।

ये सभी विशेषताएँ जिन्हें हम जीवन का प्रतीक मानते हैं, वास्तव में किसी भी जीव के विभिन्न भागों की समन्वित कार्यप्रणाली है। किसी भी जीव के, चाहे वह पौधा हो या जन्तु, विभिन्न भाग अव्यवस्थित ढंग से नहीं, बल्कि विभिन्न तंत्रों में व्यवस्थित होकर कार्य करते हैं।

तंत्र या व्यवस्था (system) कुछ परस्पर संबंधित भागों का समूह है, जो किसी विशेष कार्य के लिए इस इकाई के रूप में व्यवस्थित है। ये सभी भाग एक साथ मिल-जुल कर कार्य करते हैं तथा संगठित होकर एक इकाई बनाते हैं। एक कार बनाने वाली कंपनी को, जिसका संगठन परिवहन के लिए गाड़ियाँ बनाने के लिए किया गया है, एक व्यवस्था माना जा सकता है। सफल रूप से कार्य करने के लिए कंपनी के सभी भागों, जैसे कि कच्चे माल की खरीद करने वाले विभाग, फैक्टरी प्रबंधक वर्ग और बिक्री विभाग को आपसी तालमेल से कार्य करना पड़ता है। इसी तरह कोई जन्तु या पौधा भी अनेक हिस्सों से मिलकर बना होता है, जो एक निश्चित व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता हैं। उदाहरण के लिए किसी जंतु के शरीर में, भोजन को ग्रहण करने और उसे पचाने वाले भाग, शरीर को आधार देने के लिए अस्थि-पंजर (skeleton) के रूप में व्यवस्थित हड्डियाँ, धमनियों और शिराओं के माध्यम से शरीर के विभिन्न भागों में रक्त का परिसंचरण (circulation) करने वाला हृदय तथा अनेक प्रकार के संकेत प्राप्त करके आदेश देने वाला मस्तिष्क आदि वे भाग हैं जो कि मिलकर शारीरिक व्यवस्था का निर्माण करते हैं।

सभी पौधों और जंतुओं का एक समूह एक दूसरे के द्वारा तथा धरती, वायु और जल आदि द्वारा भी बनाए गए वातावरण में सामूहिक रूप से कार्य करता है। जिस प्रकार जीवन के ये विभिन्न रूप एक दूसरे पर निर्भर हैं, देखकर यह कल्पना करना स्वाभाविक है कि यह पृथ्वी ग्रह अपने आप में एक विशाल व्यवस्था है। दूसरे शब्दों में पृथ्वी पर जीवन और पृथ्वी का वातावरण एक भलीभांति समन्वित व्यवस्था है जिसमें कई तरह की उप व्यवस्थाएँ (sub-system) हैं, जैसे कि, जीवित प्राणी। प्रत्येक उप-व्यवस्था जैसे कि किसी पौधे या जंतु में भी एक अति जटिल बहुकोशिकीय व्यवस्था देखने को मिलेगी। इसी प्रकार औद्योगिकी, कृषि तथा शिक्षा पद्धति को भी समाज में उप-व्यवस्था की तरह माना जा सकता है।

जैविक व्यवस्थाएँ अपने स्वरूप और कार्य को बनाए रखती हैं। उदाहरण के लिए बिल्ली हमेशा ही बिल्ली रहती है। वह शिकार की तलाश में घूमती है और बच्चे भी पैदा करती है, किन्तु उसकी आन्तरिक व्यवस्था स्थिरता से अपना कार्य करती रहती है। कोई भी व्यवस्था अपना यह स्थायित्व को कैसे बनाए रखती है? आइये एक विशेष उदाहरण लें। कोई भी स्त्री या पुरुष अपने आंतरिक स्थायित्व को कैसे बनाए रखते हैं जबकि उनके चारों ओर का वातावरण बदल जाता है। उदाहरण के रूप में वे अपने शरीर का नियत तापमान 37° सैल्सियस कैसे बनाए रखते हैं, या अपने रक्त की संरचना और रक्तचाप कैसे उसी तरह ही बनाए रहते हैं? सभी जीवों के पास एक विशेष का संचालन और नियंत्रण का तंत्र होता है, जो उन्हें विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार अपने

को ढालने में मदद करता है। आप यदि किसी घोंघे (snail) को छुएंगे तो वह अपने खोल में घुस जायेगा। अपने जीवन की रक्षा के लिए यह उसकी सूचना और नियंत्रण पद्धति है। आप अगर धूप में बैठते हैं और आपको गर्मी लगती है तो, पसीना उत्पन्न करने के लिए एक आंतरिक संकेत उत्पन्न होगा और पसीने के वाष्पीकरण के कारण ठंडक पैदा होगी। शरीर का एक नियत तापमान बनाए रखने के लिए यह भी सूचना और नियंत्रण का एक उदाहरण है।

आप पाएंगे कि सभी जीवों में सूचना और नियंत्रण का एक सरल अथवा जटिल तंत्र होता है। इसके बिना किसी भी जीव का एक स्थायी परिस्थिति में अस्तित्व बनाए रखना अथवा जीवित रहना संभव नहीं है।

सूचना और नियंत्रण का सामान्य रूप से अध्ययन करने के लिए साइबरनेटिक्स (cybernetics) नामक एक संपूर्ण विज्ञान का विकास हुआ है। ऐसा इसलिए कि स्थायित्व के साथ कार्य करने के लिए मशीनों को भी सही ढंग से डिज़ाइन करना पड़ता है। आप टेलीविज़न या रेफ्रिजरेटर में इस्तेमाल होने वाले वोल्टेज नियंत्रक (voltage regulator) से ज़रूर परिचित होंगे। यदि किसी समय वोल्टेज, निर्धारित वोल्टेज से बढ़ जाता है तो नियंत्रक उसे स्वयं ही कम कर देता हैं। इस प्रकार टेलीविज़न और रेफ्रिजरेटर को मिलने वाला वोल्टेज स्थायी रहता है।

एक अन्य उदाहरण, भवनों, खासकर दफ्तरों और होटलों को आग से बचाने का है। इस प्रक्रिया के दौरान कमरों के तापमान को एक तकनीक से मापा जाता है, और जब किसी कमरे का तापमान एकाएक बढ़ जाता है तो छत में लगा एक वाल्व खुल जाता है और वहां से पानी का छिड़काव होने लगता है। यह आग से बचने का स्वचालित संरक्षण है। सूचना और नियंत्रण का आधार किसी निर्धारित मान से विचलन का या इसमें आए अन्तर का पता लगाना और उसे दूर करना है। इस अन्तर को दूर करने के लिए इसी से एक संकेत प्राप्त होता है। इस प्रकार सभी स्थायी व्यवस्थाओं में इस अंतर विचलन अथवा त्रुटि का इस्तेमाल निर्धारित मान में उत्पन्न त्रुटि को दूर करने के लिए किया जाता है। इसे पुनर्निवेशन व्यवस्था कहा जाता है, अर्थात् नियंत्रण में त्रुटि के पुनर्निवेशन से त्रुटि को कम या दूर किया जाता है।

सभी जीवों में स्वयं को वातावरण के अनुकूल नियंत्रित करने की एक अनोखी क्षमता होती है। बाहरी परिस्थितियों में परिवर्तनों के बावजूद ये अपने सामान्य बाह्य और आंतरिक स्वरूप को बनाए रखते हैं। इस स्थायित्व की स्थिति को, जो जीवन के लिए बहुत महत्वपूर्ण है, समस्थापन (homeostasis) कहते हैं।

हम आपको मानव के शरीर में विद्यमान इस तरह के एक पुनर्निवेश तंत्र या व्यवस्था का उदाहरण देंगे, जो कि रक्त में जल की सही मात्रा बनाए रखता है (चित्र 12.6)। हमारे शरीर में गुर्दे पानी की मात्रा को नियंत्रित करते हैं। गुर्दों की नलिकाओं द्वारा पानी पुनः अवशोषित कर लिया जाता है, जिससे कि पेशाब के रूप में पानी की हानि को रोका जा सके। पानी का यह

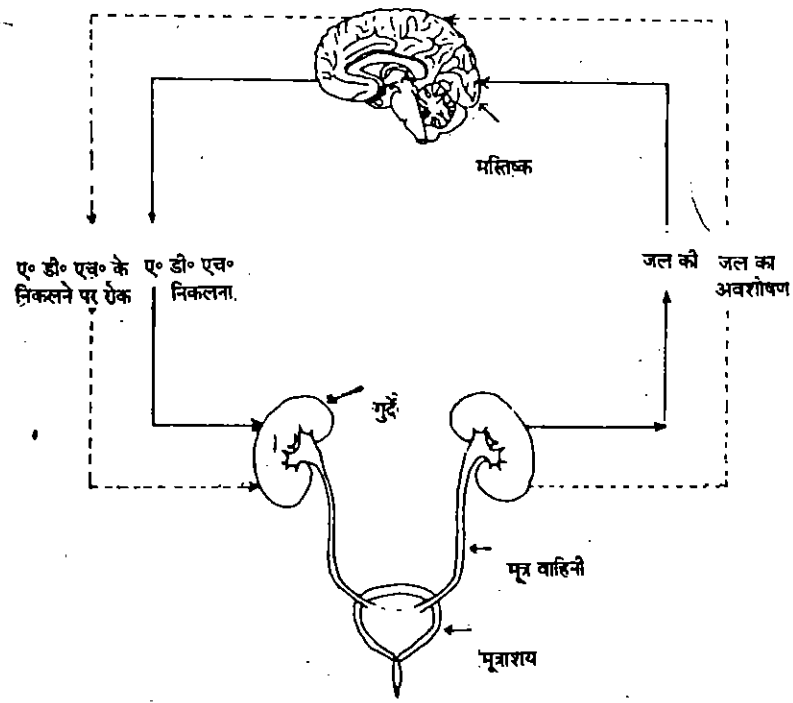

चित्र 12.6 पुनर्निवेशन की प्रक्रिया जो गुर्दे से जल की हानि को रोकती है।

अवशोषण एक रसायन के द्वारा नियंत्रित होता है, जिसे प्रतिमूत्रल हार्मोन अथवा ए डी एच (एन्टी-डायूरेटिक हार्मोन) कहा जाता है। इस रसायन का उत्पादन मस्तिष्क के अग्र भाग में विशेष तंत्रिका कोशिकाओं द्वारा किया जाता है। गर्मियों में अधिक पसीने के कारण यदि शरीर से पानी की अधिक हानि होती है, तो रक्त में पानी की कमी हो जाती है और उसकी सांद्रता (concentration) में परिवर्तन हो जाता है। ऐसा होते ही मस्तिष्क को ए डी एच नामक इस विशेष रसायन का अधिक उत्पादन करने का संकेत प्राप्त होता है, जो कि गुर्दों में जल के अवशोषण को बढ़ा देता है और मूत्र के उत्सर्जन को कम कर देता है। यह अवशोषित पानी रक्त में पहुँचकर उसकी सांद्रता को फिर से सामान्य बना देता है।

बोध प्रश्न 3

निम्नलिखित कथन जीवन तंत्रों (व्यवस्थाओं) के विषय में हैं। कोष्ठकों में दिये गये शब्दों के उपयोग से रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) किसी ..... के, चाहे वह पौधे हों या जंतु, विभिन्न भाग अव्यवस्थित ढंग से नहीं बल्कि ..... के रूप में व्यवस्थित हैं।
ii) सभी जीवों में एक प्रकार का ..... तथा ..... का तंत्र होता है।
iii) साइबरनेटिक्स वह विज्ञान है जिसमें सामान्य ..... से सूचना और नियंत्रण का अध्ययन किया जाता है।
iv) गुर्दे हमारे शरीर में जल की मात्रा को नियंत्रित करने अथवा जल की ..... को रोकने में समर्थ होते है।
ये मस्तिष्क को ..... नामक विशेष रसायन का उत्पादन करने का संकेत भेजते हैं, जो ..... में जल का अवशोषण बढ़ा देता है और मूत्र के उत्सर्जन को कम कर देता

(ए डी एच, जीव रूप हानि सूचना नियत्रण, गुर्दों, तंत्र)

12.4.1 जीवन चक्र

जीवों के विभिन्न भाग तंत्रों के रूप में व्यवस्थित हैं, जो इसके आंतरिक स्वरूप को संपूर्ण जीवनकाल तक बनाए रखते हैं। जीवविज्ञान में यह एक बहुत महत्वपूर्ण धारणा है। परन्तु प्रश्न यह है कि यह व्यवस्था किस प्रकार बनी?

अपने जीवनकाल में कोई भी जीव कुछ परिचित अवस्थाओं——जैसे कि, जन्म, वृद्धि, प्रजनन और मृत्यु से गुज़रता है। हम अपने चारों तरफ बीजों से अंकुरित होते हुए, बढ़ते हुए, फलते हुए और अंततः सूखते हुए पौधों को देखते हैं। बच्चे पैदा होते हैं, जवान होते हैं, शादी करते हैं, अपने बच्चे पैदा करते हैं, बूढ़े होते हैं, मर जाते हैं। इस घटनाक्रम को, जो जीव के पैदा होने के समय से लेकर मृत्यु के समय तक चलता है, जीवन चक्र कहते हैं।

माता, पिता मर जाते हैं और फिर कभी दिखाई नहीं देते। परन्तु पीढ़ी दर पीढ़ी संतति इसी जीवन चक्र को दोहराती रहती है। यह पीढ़ियों की निरंतरता प्रजनन द्वारा ही संभव है। आदिम जीव, जैसे बैक्टीरिया, शैवाल, प्रोटोज़ोआ आदि में प्रजनन, एककोशिकीय जनक के साधारण विभाजन द्वारा लगभग बराबर आकार की छोटी-छोटी कोशिकाओं में होता है। ये कोशिकाएँ जनक कोशिका के आकार के बराबर विकसित हो जाती हैं। कुछ जीवों में एक छोटी सी कलिका या आँख (bud) पैदा होती है, जो उनके शरीर से अलग होकर एक दूसरे जीव में विकसित हो जाती है। कुछ निम्नतर जन्तुओं में जनक का शरीर कई भागों में विभाजित हो जाता है, और प्रत्येक भाग एक संपूर्ण जीव के रूप में विकसित हो जाता है।

ऊपर बताई गई सभी प्रक्रियाओं में एक विशेषता यह है कि केवल एक जनक ही प्रजनन क्रिया में भाग लेता है और सभी संताने एक जैसी होती है। प्रजनन क इस तरीके को अलैंगिक प्रजनन (asexual reproduction) कहते हैं। दिलचस्प बात यह है कि अलैंगिक प्रजनन केवल निम्नतर जन्तुओं में तथा कुछ तरह के पौधों में ही होता है। इंसान ने अपने फायदे के लिए इसका उपयोग वनस्पति प्रजनन (बागवानी) या हार्टिकल्चर में किया है। उदाहरण के लिए किसी भी गुलाब के पेड़ की टहनी को काट कर, उसे अलग से उगाया जाए तो गुलाब का एक नया पौधा तैयार हो जाता है। इस तरीके से आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण पौधें जैसे नींबू जाति के कई फल, नींबू, और संतरे आदि की कई किस्में तैयार की जाती हैं। ऐसा देखा गया है कि इस प्रकार से तैयार किए गए पौधे जल्दी परिपक्व हो जाते हैं और उनमें फल भी उन पेड़ों की अपेक्षा जल्दी लगते हैं, जो बीजों द्वारा उगाये जाते हैं।

विकास जैसा कि अब हम जानते हैं, व्यक्तिगत परिवर्तनों पर निर्भर होता है। ये परिवर्तन

आनुवंशिकता (heredity) और वातावरण में पारस्परिक क्रिया के कारण होते हैं। ये परिवर्तन लैंगिक प्रजनन की प्रक्रिया द्वारा जिसमें दो जनकों का सहयोग होता है, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को विरासत में मिलते हैं। अधिकांश पौधे और जन्तु लैंगिक प्रजनन द्वारा ही संतान उत्पन्न करते हैं। इस प्रक्रिया में नर जनक एक विशेष प्रकार की कोशिका का निर्माण करता है, जिसे शुक्राणु (sperm) कहते हैं और मादा जनक में अण्डाणु (ovum or egg) बनता है। ये दोनों कोशिकायें जो युग्मक (gamete) भी कहलाती हैं, शरीर की अन्य कोशिकाओं से भिन्न होती हैं और उनमें क्रोमोसोम्स (chromosomes) की संख्या अन्य कोशिकाओं की अपेक्षा आधी होती है। क्रोमोसोम एक रासायनिक संरचना है जिसमें सभी जीवन क्रियाओं के बारे में सूचना निहित रहती है। ये दोनों कोशिकायें (शुक्राणु और अण्डाणु) निषेचन (fertilization) द्वारा मिलकर एक नयी कोशिका बनाती हैं जिसे युग्मनज (zygote) कहते हैं (साधारणयता युग्मनज से कई कोशिकीय जीव में बदलने की प्रक्रिया सभी पौधों एवं जन्तुओं में एक जैसी होती है। विकास की पहली अवस्था में एक कोशकीय युग्मनज विभाजित होता है, फिर यह विभाजन आपस में जुड़ी हुयी एक कोशिका से दूसरी कोशिका तक चलता रहता है)। ये कोशिकायें अंततः कई तरह के अंग बनाने की विशेषताएँ प्राप्त कर लेती है। उदाहरण के लिए विकास प्रक्रिया के दौरान कुछ कोशिकाएँ विशेष आकार लेकर यकृत (liver) का निर्माण करती हैं। ये कोशिका कई कोशिकाओं में विभाजित होकर लाखों कोशिकाओं को जन्म देती हैं. जिससे यकृत का निर्माण होता है। इसी प्रकार कोशिकाएँ विशेष रूप ग्रहण करके जीवों के जटिल मस्तिष्क का निर्माण करती हैं। इसी तरह से जीवों के शरीर के सभी भागों का निर्माण होता है। जीव जब परिपक्वता ग्रहण कर लेता है, तब समय के साथ-साथ काल प्रभावन (aging) शुरू होता है।

12.4.2 काल प्रभावन

काल प्रभावन (aging) का सीधा सरल अर्थ बूढ़ा होने की प्रक्रिया अथवा शरीर की कोशिकाओं और अंगों की संरचना तथा कार्य में लगातार क्षीणता आने की प्रक्रिया है।

काल प्रभावन किसी भी जीव के जीवन चक्र का अभिन्न अंग है। कोई जीव या व्यक्ति यदि किसी घातक दुर्घटना का शिकार नहीं होता या किसी अन्य जीव का आहार नहीं बनता या किसी मारक रोग से पीड़ित नहीं भी होता, तो भी काल प्रभावन (बुढ़ापे) के परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो जाती है। मनुष्य में काल प्रभावन के लक्षणों से हम सभी भलीभाँति परिचित हैं। इनमें से कुछ लक्षण, शुष्क व झुर्रीदार त्वचा, भंगुर हड्डियाँ, रक्त परिसंचरण की कमी और दुबला पतला और कुम्हलाया शरीर आदि हैं, जो कोशिकाओं में हो रहे परिवर्तनों और कोशिकाओं के विभाजन होने की क्षमता के नष्ट हो जाने का परिणाम हैं।

एक जीवन काल में करोड़ों कोशिकाएँ नष्ट हो जाती हैं और कोशिका-विभाजन (cell division) की प्रक्रिया से नई कोशिकाएँ उनका स्थान ले लेती हैं। जब नष्ट होने वाली कोशिकाओं की संख्या नई कोशिकाओं से अधिक हो जाती है तो बुढ़ापा आने लगता है। कोशिकाओं की विभाजित होने की क्षमता निश्चित होती है तथा प्रत्येक जीव के लिए यह अलग-अलग विशेषता लिये हुए होती है। इसी बात से यह समझा जा सकता है, कि कुछ जन्तु तीव्र गति से बूढ़े क्यों होते हैं और उनकी जीवन-अवधि अपेक्षाकृत क्यों कम होती है।

शरीर के विभिन्न अंगों को कोशिकाओं के विभाजन की दर भी अलग-अलग होती है। मनुष्यों में त्वचा की संरचना करने वाली कोशिकाएँ निरतर नष्ट और पुनर्निमित होती रहती हैं, जबकि मस्तिष्क का निर्माण करने वाली कोशिकाओं में जन्म के 5-6 साल के बाद से ही विभाजन होना बिल्कुल बंद हो जाता है। इस प्रकार एक ही व्यक्ति में विभिन्न किस्म की कोशिकाओं में अलग-अलग दर से काल प्रभावन होता है।

पिछले कुछ वर्षों में काल प्रभावन के अध्ययन तथा इस विचार पर कि इसकी गति को किस प्रकार कम किया जाए, काफी ध्यान दिया गया है। यदि यह संभव हो गया तो हम मानसिक और शारीरिक रूप से बहुत समय तक सक्रिय रह सकेंगे। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं होगी? रक्त के मंद परिसंचार तथा अन्य शिथिल शारीरिक प्रक्रियाओं को कुछ हद तक ठीक करने वाले शारीरिक व्यायामों से इनमें सहायता मिलती है। काल प्रभावन की गति को कम करने वाली औषधियों के विषय में भी कई अनुसंधान हो रहे हैं।

बोध प्रश्न 4

दिए गए स्थान पर सही उत्तर पर निशान लगाइए।

i) अलैंगिक प्रजनन निम्नलिखित के सहयोग से होता है

क) माता-पिता दोनों ( )

ख) माता-पिता में से एक ( )

ii) लैंगिक प्रजनन की प्रक्रिया में युग्मकों के निर्माण में
   क) क्रोमोसोम्स की संख्या दुगुनी हो जाती है ( )
   ख) क्रोमोसोम्स की संख्या घटकर आधी हो जाती है ( )
   ग) क्रोमोसोम्स की संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होता ( )

iii) काल प्रभावन का कारण है
   क) मस्तिष्क कोशिकाओं की वृद्धि की प्रक्रिया में क्षीणता ( )
   ख) त्वचा में झुर्रियाँ पड़ जाना ( )
   ग) कोशिकाओं की कार्यक्षमता में क्षीणता ( )
   घ) शरीर की सभी कोशिकाओं और अंगों की संरचना तथा कार्यक्षमता में क्षीणता ( )

12.5 पृथ्वी से परे जीवन

जिस प्रकार हम पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति के बारे में उत्सुक हैं, उसी तरह से हमने यह जानने का भी प्रयास किया है कि क्या सौर मंडल अथवा ब्रह्मांड के अन्य भागों पर जीवन (extra terrestrial life) की संभावना है? हाल के वर्षों में अंतरिक्ष यानों द्वारा किये गये अन्वेषणों तथा पृथ्वी से किये गये प्रेक्षणों ने हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाया है कि सम्पूर्ण सौर मंडल में शायद पृथ्वी ही ऐसी जगह है जहां जीवन मौजूद है। अन्य ग्रह सूर्य से ऐसी दूरियों पर स्थित है कि जीवन के अस्तित्व के लिये या तो वे बहुत गर्म हैं अथवा बहुत ठंडे। केवल मंगल ग्रह पर जीवन होने की संभावना हो सकती है। अंतरिक्ष खोजी वाइकिंग ने मंगल ग्रह पर जीवन की उपस्थिति का पता लगाने के लिए वहाँ की कुछ चट्टानों और मिट्टी के नमूनों को एकत्र करके उनका विश्लेषण किया है (चित्र 12.7)। परन्तु अभी तक इस ग्रह पर वर्तमान या भूतकाल में जीवन की उपस्थिति का कोई ठोस प्रमाण नहीं मिला है।

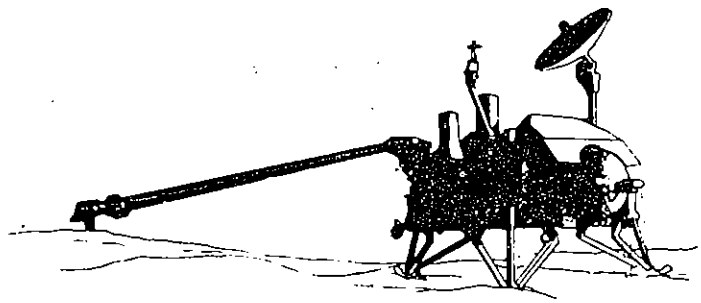

चित्र 12.7 वाईकिंग लैन्डर, जो मंगल ग्रह की चट्टान और मिट्टी का विश्लेषण करता है।

मानव अब सौर मंडल से परे जीवन की खोज कर रहा है। वर्तमान में इसके दो तरीके उपलब्ध हैं: एक यह है कि ब्रह्माण्ड में मनुष्य को अथवा ऐसे उपकरण भेजकर जीवन के अस्तित्व के लिए तारों की सतह की छानबीन की जाए और दूसरा यह कि उन संकेतों को सुना जाए तो बाह्य अंतरिक्ष से रेडियो तरंगों के रूप में आते हैं। अपने वर्तमान तकनीकी ज्ञान के आधार पर हम पहले तरीके से सौर मंडल के परे नहीं जा सकते। और दूसरा तरीका इस बात पर आधारित है कि ब्रह्माण्ड में ऐसी सभ्यताएं मौजूद हो सकती हैं, जो तकनीकी स्तर पर हमारी जैसी या हम से कहीं अधिक विकसित हों, जिससे कि हम उन से रेडियो संकेतों द्वारा संपर्क स्थापित कर सकते हैं। अब तक हमें इस क्षेत्र में सफलता नहीं मिली है। परन्तु ऐसा संभव हो सकता हैं कि हमारी मंदाकिनी, जो सम्पूर्ण रूप से धूल, गैस और तारों की व्यवस्था है तथा जिसमें हमारा सूर्य परिक्रमा कर रहा है, कई पुरानी पर अत्यधिक विकसित सभ्याताओं के बीच हुए संकेतों के आदान-प्रदान से भरी हो, जो उन तकनीकों द्वारा भेजे गए है जिनकी खोज अभी तक पृथ्वी पर नहीं हुई है। इसीलिए शायद हम इन संकेतों को एकदम ही ग्रहण नहीं कर पाते हैं। हाल ही में इस बात का उल्लेख किया गया है कि खगोलशास्त्रियों ने सूर्य की तरह ही कुछ अन्य तारों की खोज की है, जिनके अपने ग्रह हैं। यदि यह बात सत्य साबित हुई तब ब्रह्माण्ड में ऐसे लाखों ग्रहीय मंडल होंगे जिन पर जीवन के अस्तित्व की संभावना हो सकती है।

12.6 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा :

- पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति के विषय में दिए गए विभिन्न सिद्धांत तथा पास्चर के अच्छी तरह से डिजाइन किए गए प्रयोग के आधार पर किस तरह से यह सिद्ध हुआ कि "जीवन से ही जीवन" की उत्पत्ति होती है।
- ऑपेरिन-हाल्डेन ने रासायनिक विकास का सिद्धांत दिया और मिलर के प्रयोग से उसकी पुष्टि हुई।
- किस प्रकार पहली कोशिका के बनने के साथ-साथ ही जैविक विकास प्रारभ हुआ तथा प्रकाशसंश्लेषण प्रक्रिया द्वारा मुक्त आक्सीजन बनी और वायुमंडल में ओज़ोन की परत का निर्माण हुआ। वायुमंडल में हुए इन परिवर्तनों के कारण ही विविध प्रकार के पौधों और जन्तुओं की उत्पत्ति पृथ्वी पर संभव हो सकी।
- जीवन का व्यवस्थावादी दृष्टिकोण तथा जीवों की बदलते हुए वातावरण के अनुकूलन अपने स्वरूप और कार्यशीलता को बनाए रखने की क्षमता।
- जीवन चक्र या जन्म से लेकर मृत्यु तक की, किसी जीव की विभिन्न अवस्थायें तथा काल प्रभावन।

12.7 अंत में कुछ प्रश्न

1) लुई पास्चर के अनुसंधानों ने जीवन के स्वत: जनन सिद्धांत को किस प्रकार गलत सिद्ध किया?

.....

.....

.....

.....

2) जीवन की उत्पत्ति के पुराने सिद्धांतों पर मिलर के प्रयोग से हुए प्रभावों की संक्षेप में व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

3) क्या किसी जीव की सामान्य अवस्था में हुए विचलन को दूर किया जा सकता है? संक्षेप में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

4) क्या पृथ्वी से परे जीवन के बारे में जानने के लिए कुछ तरीके उपलब्ध हैं? यदि हाँ, तो वे क्या हैं।

.....

.....

.....

.....

12.8 उत्तर

बोध प्रश्न

1) i) क-4, ख-3, ग-2, घ-1
   ii) क) ऑपेरिन-हाल्डेन ख) बन्द
   ग) एमीनो एसिड घ) यौगिकों
2) i) केन्द्रक ii) साइकैस और चीड़ के पेड़
   iii) क्लोरोफ़िल iv) कशेरूकी
3) i) जीव, तंत्र ii) सूचना, नियंत्रण
   iii) तरीके iv) हानि, ए डी एच, गुर्दे
4) i) ख ii) ख iii) घ

अंत में कुछ प्रश्न

1) पास्चर ने अपने प्रयोगों से यह सिद्ध किया कि सड़ते हुए भोजन और कार्बनिक पदार्थों से जीवधारी उत्पन्न नहीं होते बल्कि सड़ने और किण्वन की क्रियाएँ सूक्ष्म जीवों के कारण होती है।
2) मिलर ने इथेन, अमोनिया, जल वाष्प और हाइड्रोजन के मिश्रण को एक बंद फ्लास्क में रख कर 80^0 से. पर उसमें एक सप्ताह तक विद्युत का विसर्जन किया। यह परिस्थितियाँ पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति के समय मौजूद थीं। इस प्रकार बने पदार्थों के विश्लेषण से पता चला कि ये जीवों में पाये जाने वाले कार्बनिक यौगिक के जैसे थे। इस प्रयोग से ऑपेरिन-हाल्डेन के रासायनिक विकास के सिद्धांत की पुष्टि हुई।
3) जीवधारी में एक ऐसी कार्य प्रणाली होती है जिसके द्वारा ये अपनी सामान्य अवस्था में हुए विचलन का पता लगाकर पुनर्निवेशन द्वारा उसे दूर कर देते हैं।
4) अन्य ग्रह, सूर्य से तथा एक दूसरे से इतनी दूर हैं कि इन ग्रहों से विशेष उपकरणों द्वारा संकेत प्राप्त करने के लिए मनुष्य के पास आज केवल दो ही तरीके हैं। ये तरीके, अंतरिक्ष में मानव नियंत्रित या स्वचालित अंतरिक्षयान भेजना. या विशेष उपकरणों द्वारा बाह्य अंतरिक्ष से आने वाले संकेतों को ग्रहण करना।

इकाई 13 मानव का विकास

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
13.2 विकास के सिद्धांत
डार्विन और प्राकृतिक वरण
मानव विकास
प्राइमेट कुल परम्परा
13.3 मानव विकास के प्रमाण
जीवाश्मीय प्रमाण
पुरातत्वीय प्रमाण
मानवशास्त्रीय प्रमाण
जीवरासायनिक प्रमाण
अतीत का निर्धारण
13.4 सारांश
13.5 अन्त में कुछ प्रश्न
13.6 उत्तर

13.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने पढ़ा कि पृथ्वी ग्रह के जीवन का पोषण करने लायक ठंडा हो जाने पर जीव कैसे उत्पन्न हुए। इस इकाई में हम विकास के सिद्धांतों के बारे में पढ़ेंगे। हम विशेष तौर से मानव के विकास के विषय में पढ़ेंगे। मानव की अनेक विशेषताएँ जैसे कि अति उन्नत बुद्धि, सीधे खड़ा होकर चलना और उसका सामाजिक होना, उसे बन्दरों और कपियों जैसे अन्य स्तनपायियों से अलग करती हैं।

यहाँ हमने जीवाश्मों के अध्ययन, मानवशास्त्र के अध्ययन, जैसे कि उसके समाजों, उसके रीति-रिवाजों और उसकी संरचना, जन्तु के रूप में उसके विकास तथा कोशिकीय एवं जैविक बृहत् अणुओं के अध्ययन के आधार पर मानव की उत्पत्ति की प्रक्रिया को दोहराने की कोशिश की है।

चित्र 13.1 लामार्क 1744-1829) फ्रांस के एक प्रकृतिक वैज्ञानिक एवं डार्विन के अग्रक थे। लामार्क विकासवादी परिवर्तनों में विश्वास करते थे, परन्तु वह सोचते थे कि ये परिवर्तन जन्तुओं में वातावरण से अनुकूलन के कारण होते थे और विरासत में आने वाली पीढ़ियों को मिल जाते थे।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- प्राकृतिक वरण पर आधारित डार्विन द्वारा दिया गया विकास का सिद्धांत बता सकेंगे;
- मानव विकास की विभिन्न अवस्थाएँ समझा सकेंगे;
- जीवाश्मीय विज्ञान, पुरातत्व विज्ञान, मानव विकास तथा जीव रसायन जैसे विषयों द्वारा प्राप्त मानव विकास से संबंधित प्रमाण बता सकेंगे;
- यह समझा सकेंगे कि पौधों और जन्तुओं के जीवाश्मों की आयु किस तरह निर्धारित की जाती है।

13.2 विकास के सिद्धांत

उन्नीसवीं सदी के शुरुआत में ही विशिष्ट सृजन के सिद्धांत से वैज्ञानिकों का विश्वास उठने लगा था और जीवों के विविध रूपों के विकास को समझने के लिए विभिन्न प्रयास होने लगे। उदाहरण के रूप में एक फ्रांसीसी प्रकृतिवैज्ञानिक लामार्क (चित्र 13.1) का यह विश्वास था कि सभी जीव अपने वातावरण के अनुसार स्वयं को ढालने के लिए, आवश्यकतानुसार अपने अंगों का इस्तेमाल करते थे। लगातार इस्तेमाल से ये अंग विकसित हो जाते थे। यदि वातावरण में कोई परिवर्तन होता था तो उसके अनुसार जीवों के अंगों में भी बदलाव आ जाता था। यह परिवर्तन एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को विरासत में मिल जाते थे।

जिराफ़ ऐसी जगह रहता था जहाँ पेड़ ऊँचे होते थे। पत्ते खाने के लिए जिराफ़ को अपनी गर्दन को ऊँचा खींचना पड़ता था। इसीलिए उनकी गर्दन लम्बी हो गई और यह विशेषता उनके वंशजों को विरासत में मिली। इस सिद्धांत को वैज्ञानिकों का कोई ख़ास समर्थन नहीं मिला। उदाहरण के रूप में इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि यदि किसी कुत्ते को कुछ विशेष प्रकार के कार्य करने के लिए शिक्षित किया जाए तो उसका यह गुण उसकी अगली पीढ़ी को हस्तांरित हो जाता है, या फिर किसी वैज्ञानिक की कार्य कुशलता उसके बच्चों में भी पायी जाए।

चित्र 13.2 चार्ल्स डार्विन ने बहुत सी वैज्ञानिक खोजें की जिसके फलस्वरूप उन्होंने 1859 में "ओरिजिन आफ़ स्पीशीज़" नामक पुस्तक लिखी, जिसे बहुत ख्याति मिली।

13.2.1 डार्विन और प्राकृतिक वरण

ब्रिटिश प्रकृति वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन (1809-1882, चित्र 13.2) ने 1859 में अपनी विशिष्ट पुस्तक "द ऑरिजन ऑफ स्पीशीज़" में जैविक विकास की व्याख्या की। विश्व का चक्कर लगाने वाले पाल जहाज़ एच.एम.एस. बीगल (चित्र 13.3) पर डार्विन ने 22 वर्ष की आयु में अपने प्रेक्षण आरंभ किये। उन्होंने समुद्र की इस साहसिक यात्रा में 5 वर्ष बिताए। इस अवधि में वे अंधमहासागर के कई द्वीपों, दक्षिण अमेरिका के कुछ तटीय भागों तथा दक्षिण प्रशांतसागर के कुछ द्वीपों, जिनमें गैलोपेगॉस द्वीप सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, में गये थे। इस यात्रा के दौरान डार्विन को अपने मूल स्थान से एकदम भिन्न किस्म के पौधों और जन्तुओं वाले क्षेत्र को काफ़ी समय तक देखने का अवसर मिला। वहां से उन्होंने बहुत सारी सामग्री एकत्र करके उसे परिक्षित रखा। अपनी पूरी यात्रा के दौरान उन्होंने इन पर विस्तृत टिप्पणियाँ भी लिखीं।

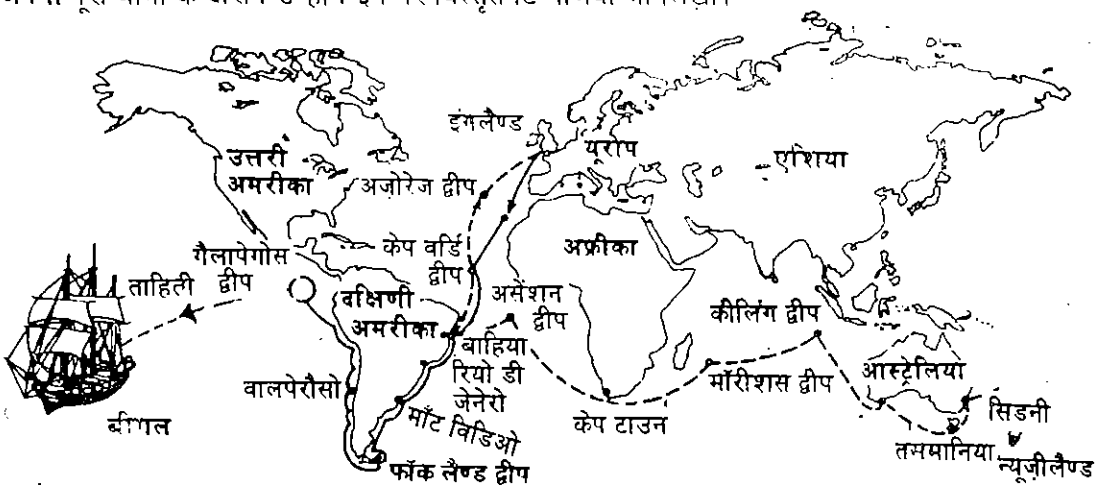

चित्र 13.3 : सम्पूर्ण विश्व (1831-1836) का भ्रमण करने वाले एच.एम.एस. बीगल (समुद्री जहाज़) का रास्ता। (------) चार्ल्स डार्विन की वापसी यात्रा को दर्शाती है।

वापस इंगलैण्ड पहुंच कर उन्होंने करीब 22 वर्ष अपने इस संग्रह की जाँच करने तथा इस प्रश्न पर कि विभिन्न जातियों (species) का विकास किस प्रकार हुआ होगा, विचार करने में बिताए। उन्होंने तीन महत्वपूर्ण क्षेत्रों: चट्टानों में मिले पिछले युगों के जीवाश्म (fossil) और जीवों की छापें (imprints); संसार भर में जन्तुओं और पौधों के वितरण, और उन्नीसवीं सदी में पशुधन (live stock); तथा कुत्तों व कबूतरों की नस्लों में सुधार के सिलसिले में होने वाले प्रयोगों के अध्ययन से प्रमाण एकत्र किये। विकास की क्रियाविधि को समझने के लिए प्राकृतिक वरण सिद्धांत डार्विन की महान देन थी। लगभग उसी समय ब्रिटेन के प्रकृतिवैज्ञानिक अलफ्रेड रसल वैलेस ने भी विकास के सिद्धांत पर स्वतंत्र रूप से कार्य किया। दोनों वैज्ञानिकों द्वारा किया गया कार्य सम्मिलित रूप से सन् 1858 में "लीनियन सोसाइटी ऑफ लंदन" में प्रस्तुत किया गया। डार्विन का सिद्धांत दो प्रेक्षणों पर आधारित था। पहला, पुनर्जनन करने के लिए, जितने जीव जीवित रहते, उससे कहीं अधिक जीव पैदा होते हैं। क्योंकि वातावरण में भ्रूण पोषण के लिए साधन सीमित हैं, जीवन की संख्या अधिक होने से उनमें अस्तित्व के लिए संघर्ष होता है तथा अन्ततः योग्यतम ही उत्तरजीवी होता है। पौधों और जन्तुओं की विभिन्न जातियों में आपस में तथा एक दूसरे से खाद्य पदार्थ, जल, वायु, प्रकाश अर्थात् हर वस्तु के लिए जो उत्तरजीवी होने और प्रजनन करने के लिए आवश्यक होती है, के लिए संघर्ष होता है। दूसरा प्रेक्षण यह है कि सन्तान, अर्थात् बच्चे अपने माँ-बाप से तथा आपस में भी एक दूसरे से वंशानुक्रम में भिन्न होते हैं, जिसे हम आज आनुवंशिक विभिन्नता (genetic variation) कहते हैं। डार्विन का कहना था कि इन विभिन्नताओं के कारण ही विकासीय परिवर्तन होते हैं। डार्विन के अनुसार किसी भी समूह के वे जीव जो अपने विशेष गुणों के कारण स्वयं को अपने वातावरण के अनुसार ढाल लेते हैं, उत्तरजीवी होते हैं तथा प्रजनन करते हैं। जिन जीवों में ये विशेष गुण नहीं होते, उनके उत्तरजीवी होने की संभावना बहुत कम रहती है। बदलते हुए वातावरण में प्रकृति उपयोगी परिवर्तनों का वरण कर लेती है। डार्विन ने इसे प्राकृतिक वरण कहा।

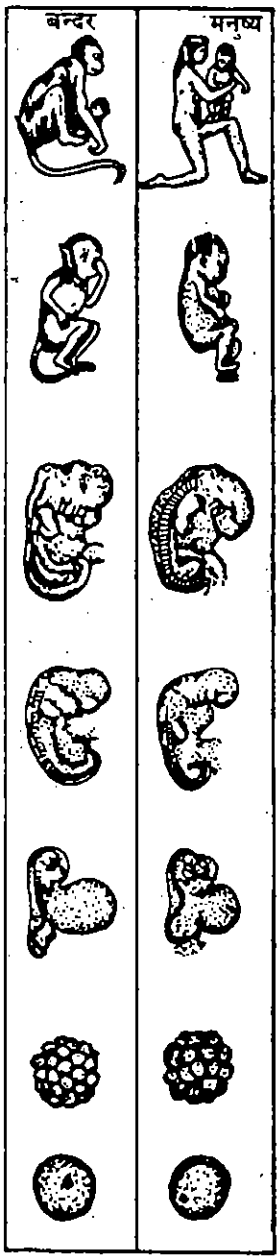

चित्र 13.4 मनुष्य एवं बन्दर के भ्रूणीय विकास में समानताएँ।

प्राकृतिक वरण पर आधारित डार्विन द्वारा दिया गया विकास का सिद्धांत एक वैज्ञानिक सिद्धांत है। डार्विन ने अपने प्रेक्षणों तथा पहले से मौजूद अन्य जानकारियों के आधार पर यह सिद्धांत प्रतिपादित किया। विश्लेषणों के द्वारा डार्विन ने केवल विकास के सिद्धांत का निर्माण ही नहीं किया, बल्कि ऐसी क्रियाविधि के विषय में भी बताया जिससे विकासीय परिवर्तन होते हैं। फिर भी जीवधारियों के बारे में हुए नए तथ्यों की खोज के साथ-साथ सभी वैज्ञानिकों की तरह डार्विन के विकास के सिद्धांत में काफी विस्तार हुआ है।

डार्विन के अपने जीवन काल में उनके जैविक विकास के सिद्धांत को अधिकतर लोगों ने, विशेषकर चर्च ने अस्वीकृत कर दिया था। क्योंकि यह सिद्धांत विशिष्ट सृजन की धारणा के विरुद्ध था। वास्तव में डार्विन के इन विचारों के कारण ही उनकी कड़ी आलोचना हुई। लेकिन उन्हें वैज्ञानिकों का समर्थन मिला। कुछ वर्षों तक इस विषय पर वाद-विवाद चलता रहा और भी यह वैज्ञानिकों और धर्म अनुयायियों के बीच विवाद का विषय बना हुआ है।

13.2.2 मानव विकास

चार्ल्स डार्विन ने हालाँकि अपनी पुस्तक "ऑरोजिन ऑफ स्पीशीज़" में सामान्यत: पौधों और जन्तुओं के विकास की क्रियाविधि के बारे में बताया था, उसमें भी उन्होंने मानव की उत्पत्ति के बारे में अनुमान लगाया। चार वर्ष बाद डार्विन ने एक किताब "डिसेन्ट ऑफ मैन" प्रकाशित की जिसमें उन्होंने कहा कि अन्य जन्तुओं की तरह मानव का पहले से मौजूद जीवों से विकास हुआ है।

डार्विन मानव और अफ्रीकी कपि—जैसे चिम्पैन्ज़ी और गोरिला की शारीरिक संरचनाओं की समानता से अधिक प्रभावित हुए। इसके आधार पर उन्होंने मानव की उत्पत्ति के संबंध में अनुमान लगाए। उन्हीं के शब्दों में "विश्व के प्रत्येक बड़े क्षेत्र में जीवित स्तनपायियों का उसी क्षेत्र की विलुप्त जातियों से निकट का संबंध है। इसलिए इस बात की संभावना है कि अफ्रीका में पहले ऐसे कपि रहे होंगे जिनका गोरिला और चिम्पैंज़ी से निकट का संबंध था। क्योंकि यह दोनों जातियाँ अब मानव के बहुत नज़दीक हैं, इस बात की प्रबल संभावना है कि हमारे प्रारंभिक पूर्वज अफ्रीकी महाद्वीप में रहते रहे होंगे।"

डार्विन ने देखा कि विभिन्न जीवों के भ्रूण (embryo) लगभग समान अवस्थाओं से होकर गुज़रते हैं (चित्र 13.4)। फिर भी प्रारंभिक विकास के समय की घटनाओं के काल में थोड़ा सा भी अन्तर होने से प्रौढ़ जीव में काफी फर्क आ सकता है। उदाहरण के लिए, प्रौढ़ मानव कई प्रकार से कपि के बच्चे जैसे लगते हैं। उनका छोटा चेहरा और खोपड़ी का गोलाकार हड्डी जिसमें मस्तिष्क होता है, इस बात के सूचक हैं। मानव विकास में मस्तिष्क की वृद्धि एक निर्णायक कदम था। यह इस बात से स्पष्ट होता है कि कपि की अपेक्षा मानव के पूर्वजों के भ्रूण के विकास की अवधि ज्यादा होने लगी। परन्तु मानव के मस्तिष्क का विकास जन्म के समय ही रुक जाने के बजाय बच्चों में काफी समय तक होता रहता है, जिसके कारण अपेक्षाकृत काफी बड़े और अधिक जटिल मस्तिष्क का निर्माण होता है।

13.2.3 प्राइमेट कुल परंपरा

मानव, जन्तुओं के उस समूह से संबंधित है जिसे स्तनपायी कहा जाता है। स्तनपायी, जन्तुओं के अन्य समूहों से भिन्न होते हैं, क्योंकि इनमें बाल, और दूध उत्पन्न करने वाली स्तनग्रंथियाँ होती हैं। सभी स्तनपायियों को उनके आपसी अन्तर के आधार पर छोटे-छोटे समूहों अर्थात् आर्डर (order) में वर्गीकृत किया गया है। "प्राइमेट" आर्डर के सदस्य जो अब मानव, बन्दर और कपि आदि हैं, विकास की प्रारंभिक अवस्था में निशाचर थे अर्थात् वे रात के समय क्रियाशील होते थे। ये जन्तु कीट-भक्षी थे तथा पेड़ों पर रहते थे (चित्र 13.5)। पेड़ों की शाखाओं और टहनियों से लटके हुए ये जन्तु कीड़ों को खाते थे। इन दोनों विशेषताओं के कारण प्राइमेट में कुछ महत्वपूर्ण अनुकूलन (adaptation) हुए। इन जन्तुओं के हाथों की संरचना में बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। अँगूठा प्रतिस्थापनीय (opposable) हो गया, अर्थात् ग्रह उँगलियों को मिलाकर शिकार को पकड़ने में मदद करने लगा। पंजों के बजाय नाखूनों से युक्त संवेदनशील उँगलियों का विकास हुआ। नेत्र गर्तिकाएँ (eye sockets) सिर के सामने की तरफ आ गईं जिससे प्राइमेट बेहतर ढंग से देखने लगे तथा दूरी का सही अनुमान लगाने की उनकी क्षमता बढ़ गई।

निरन्तर होने वाले परिवर्तनों तथा महत्वपूर्ण अनुकूलनों से बड़े आकारों के प्राइमेट विकसित हुए, जो दिनचर थे अर्थात् वे दिन में क्रियाशील रहते थे। वे वनस्पति भोजन, जैसे कि पत्ते और फल खाने लगे थे। बन्दरों और कपियों के उद्भव ने इन अनुकूलनों को और भी अधिक विकसित किया। उँगलियों के पोरों का संवेदनशील होना और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया था। क्योंकि पके हुए फलों को देखने के बजाय छूकर ज्यादा अच्छी तरह से पहचाना जा सकता है।

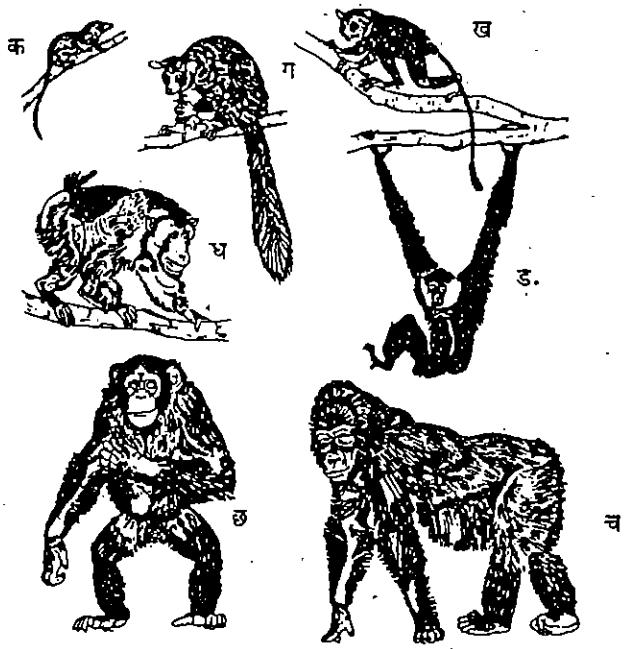

चित्र 13.5 वृक्ष छछूंदर एवं विकसित प्राइमेट कुल के कुछ सदस्य लेम्यूर (ख), टार्सियर (ग) बंदर (घ), गिबन (क), चिम्पैंज़ी (च) गोरिला (छ)

कपि डालियों पर चलने की बजाय अपनी लम्बी भुजाओं से डालियों से लटक कर चलने लगे (चित्र 13.5 ङ) । उनके कूल्हे इस प्रकार की गति में सहायक हुए। कभी-कभी ये कपि ज़मीन पर द्विपाद की तरह (biped) अर्थात् दो पैरों पर चलते हैं। छोटे-छोटे कदमों और झूमती हुई सी यह चाल चाहे कुछ अटपटी ही लगे, परन्तु है दो पैरों की चाल। खोपड़ी और रीढ़ की हड्डी में हुए परिवर्तनों से सीधी खड़ी स्थिति को काफी मदद मिली (चित्र 13.6) । प्राइमेट के हृदय, फेफड़े और उदर के अन्य अंग शरीर में जिस प्रकार स्थित होते हैं वह चौपाये जानवरों से भिन्न है।

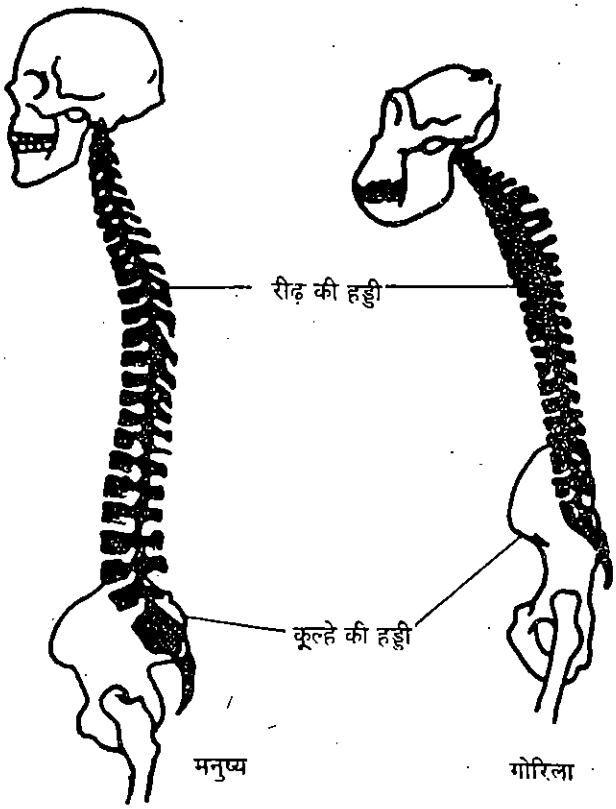

चित्र 13.6 खोपड़ी, रीढ़ एवं कूल्हे की हड्डियों में तुलना।

बोध प्रश्न 1

क) निम्नलिखित में कौन सा कथन सत्य है और कौन सा असत्य।

i) लामार्क ने पाया कि विभिन्न जीवों के भ्रूण एक जैसी अवस्थाओं से होकर गुजरते हैं,

क

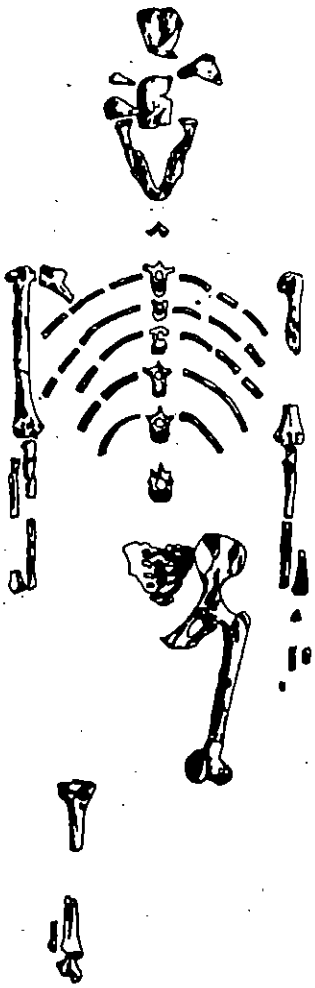

ख

चित्र 13.7 (क) पूर्वी एवं दक्षिणी अफ्रीका का मानचित्र जिसमें प्रारंभिक होमोनिड के पाये जाने के स्थान को दर्शाया गया है। (ख) डॉ. डोनाल्ड जोहान्सन को सुदूर इथोपिया के एक क्षेत्र से एक बीस वर्षीया होमोनिड का अस्थि-पंजर मिला जो 30 लाख वर्ष पहले रहती थी। इस जीवाश्म को "लूसी" का नाम दिया गया है।

जो दर्शाता है कि अन्य प्रकार के जीवों की तरह मानव भी बन्दरों और कपियों जैसे जन्तुओं का वंशज है। ( )

ii) दूरी का सही अनुमान लगाने की उपयुक्त क्षमता पाने की ज़रूरत ने प्रारंभिक प्राइमेट्स में नेत्र गर्तिकाओं को सिर के सामने की ओर पुनर्स्थापित कराया। ( )

ख) दिए गए स्थान में निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त अत्तर दीजिए।

i) डार्विन ने अपनी यात्रा के दौरान, एच.एम.एस. बीगल जहाज़ पर किस प्रकार की जानकारी एकत्र की?

.....

.....

.....

ii) स्तनपायी अन्य जीवों से किस प्रकार भिन्न होते हैं?

.....

.....

.....

iii) कौन से जन्तु कीट-भक्षी होते हैं?

.....

.....

iv) उन स्तनपायियों के नाम बताइए जो पेड़ों की शाखाओं से नीचे लटक कर चलते हैं?

.....

.....

13.3 मानव विकास के प्रमाण

हमनें अभी पढ़ा कि द्विपादों में किस प्रकार तरह-तरह के अनुकूलन हुए। मनुष्य के सम्पूर्ण विकास होने से पहले और बहुत से परिवर्तन होने बाकी थे। आप इन परिवर्तनों के बारे में और आधुनिक मानव (होमो सेपियंस) के विकास के समर्थन में दिए गए विभिन्न प्रमाणों के विषय में जानना चाहेंगे। जब किसी सिद्धांत की परिकल्पना होती है तो हम ऐसे प्रमाणों को ढूँढ़ते हैं जिनसें उस विचारधारा को समर्थन प्राप्त हो। यह बात मूलरूप से विकास के सभी सिद्धांतों तथा हमारे अपनी जाति के विकास पर लागू होती है। कई जगहों से मिले प्रमाणों के आधार पर इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया जा सकता है। ये प्रमाण हमें जन्तुओं के जीवाश्मो से, प्राइमेट तथा अन्य जन्तुओं के विकसित होते हुए भ्रूणों में पाई जाने वाली समानता से, पुरातन काल के पुरातात्विक अवशेषों और उनके काल निर्धारण आदि से एवं हाल ही के जीव-रसायनिक तरीकों से मिलते हैं। प्रारंभिक मानव द्वारा की गई गुफ़ा की चित्रकारी और दूसरें शिल्प तथ्य उनके सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को दर्शाते हैं।

13.3.1 जीवाश्मीय प्रभाव

जीवाश्म विज्ञान, भूविज्ञान की एक शाखा है, जो मुख्यत: करोड़ों वर्ष पहले या भूवैज्ञानिक कल्पों (geological periods) में रहने वाले पौधों और जन्तु जीवन के अध्ययन से संबंधित है। इसका अध्ययन विषय, आदिकाल से पृथ्वी पर रहने वाले पेड़ पौधे (वनस्पति जगत) तथा जीव जन्तु (प्राणि जगत) है। इन जीवों के अस्तित्व के प्रमाण हमें चट्टानों (rocks) में दबे रह गये अस्थिपंजरों या हड्डियों के रूप में मिलते हैं, जिन्हें हम जीवाश्म कहते हैं। जीवाश्मों के अध्ययन से मानव विकास के बहुत ही महत्वपूर्ण प्रमाण मिले हैं।

कभी-कभी किसी जन्तु का दबा हुआ शव और कंकाल पूरी तरह से विघटित हो जाता है। यदि उस के आसपास का पदार्थ कुछ दृढ़ होता है तो उस स्थान पर एक कोटर सा बन जाता है, जिसकी रूपरेखा बिल्कुल विलुप्त हो जाने वाली संरचनाओं जैसी होती है। इस प्रकार के कोटर को सांचा या मोल्ड (mould) कहा जाता है। छाप (impression) मोल्ड की तरह ही होते हैं। विलुप्त होती वस्तुएँ या शरीर के अंग अपने चारों तरफ़ के पदार्थ पर साँचों के समान ही कभी-कभी छाप

छोड़ जाते हैं। यह छाप तभी बनती है, जब वस्तु के आस-पास का पदार्थ नर्म होता है। यह वैसे ही है जैसे मिट्टी या लावा में पैरों के निशान बनना। विलुप्त जन्तुओं के पैरों के निशान भी वस्तुतः ऐसी छाप छोड़ जाते हैं, जिनसे निशान बनाने वाले जन्तुओं के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। यहा यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि प्रारंभिक मानव के जीवाश्म आम तौर पर खंडित और अपूर्ण रूप में पाये गये हैं। क्योंकि मानव ने केवल पिछले पचास हजार वर्षों से ही मृतकों को दफनाना शुरू किया है, जो अब हमें जीवाश्मों के रूप में बेहतर स्थिति में मिल रहे हैं और अधिक जानकारी देते हैं। इससे पहले के काल में हड्डियों के टुकड़े अक्सर सम्पूर्ण कंकाल रचना की कल्पना के आधार होते हैं। जीवाश्म भंडारों का मिलना संयोग भी है और जान बूझकर पृथ्वी के कुछ क्षेत्रों में की गई खुदाई का परिणाम भी है।

प्रथम होमोनिड : प्रथम मानव जीवाश्म

प्रारंभिक मानव या होमोनिड (homonid) (चित्र 13.7) के अवशेष पूर्वी अफ्रीका के दो अलग-अलग स्थानों से प्राप्त हुए हैं। तीस लाख से छत्तीस लाख वर्ष पहले रहने वाले व्यक्तियों के कई सौ जीवाश्म केवल इथोपिया से ही प्राप्त हुए हैं। दूसरा स्थान तंज़ानिया में है, जहां 37.5 लाख वर्ष पूर्व तीन होमोनिडो द्वारा 20 मीटर दूरी तक बनाये गये पैरों के निशान मिले हैं। यह कहा जा सकता है कि प्रारंभिक होमोनिड के मानव जैसे शरीर पर कपि का सिर लगा हुआ था।

होमोनिड के जीवाश्मों में कुछ लक्षण ऐसे थे, जिससे उन्हें सुनिश्चित रूप से मानव का पूर्वज माना जा सकता है। इसके स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि वे दो पैरों पर चलते थे, किन्तु उनमें ऐसे बहुत सारे आदिम लक्षण थे जिससे उनको पेड़ों पर रहने वाले कपि जैसे पूर्वज के समीप रखा जा सकता है।

औस्ट्रेलोपिथिकस : परिवर्ती मानव रूप

बीस लाख वर्ष पहले अफ्रीका में कई होमोनिड रहते थे। उनमें से एक था औस्ट्रेलोपिथकस (Australopithecus) (चित्र 13.8) औस्ट्रेलोपिथकस के जो जीवाश्म दक्षिण और पूर्वी अफ्रीका में मिले हैं, उनसे पता चलता है कि इनके मस्तिष्क अपेक्षाकृत छोटे थे और खोपड़ी की हड्डियाँ कपि की तरह ही थीं, पर उनके चेहरे कपियों की अपेक्षा छोटे थे। उनके दन्तवल्कों (teeth enamel) से पता चलता है कि औस्ट्रेलोपिथकस मुख्यतः फल ही खाते थे। उनके दो पैरों पर चलने का प्रमाण प्रब ा है, क्योंकि उन की रीढ़ की हड्डी के वक्र होमोनिड के समान ही है। उनके कूल्हों की हडिडयाँ, जो एक प्रकार का अस्थि पंजर है, जिसमें टाँगें जुड़ती हैं, कपियों के कूल्हों की हड्डियों की अपेक्षा छोटी हैं। फिर भी ये उतनी छोटी नहीं हैं जितनी कि आधुनिक मानव में होती हैं।

होमो हेबिलिस : प्रथम औज़ार निर्माता

मानव विकास में मस्तिष्क के आकार में विकास एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू था। मस्तिष्क का यह विकास अब तक उपलब्ध जीवाश्मों के आकड़ों के अनुसार लगभग 20 लाख वर्ष पहले आरंभ हुआ था। पूर्वी अफ्रीका के निक्षेपों (deposits) में मिले कुछ अवशेषों में मस्तिष्क की धारिता (brain capacity) 659 घन से. मी से अधिक और 800 घन से. मी. के आस-पास है। उन अवशेषों को प्रथम मानव का प्रतिनिधि माना जाता है इन्हें हम होमो हेबिलिस (Homo habilis) कहते हैं। होमो हेबिलिस वह मानव था जिसने अपने हाथों का इस्तेमाल विभिन्न कार्यों के लिए शुरू कर दिया था। होमो हेबिलिस मानव सीधा तन कर चलता था। उसके हाथों की हड्डियाँ, जो कि आधुनिक मानव की विशेषताएँ दर्शाती हैं, कुछ जगहों से मुड़ी हुई तथा आधुनिक मानव होमो सेपियंस से ज़्यादा मज़बूत थीं। टाँगों और पैरों की हड्डियाँ, कपियों और आधुनिक मानव दोनों से मिलती हैं, परन्तु देखा जाए तो ये हड्डियाँ, कपियों की अपेक्षा आधुनिक मानव की हड्डियों के अधिक समीप हैं। उनकी टाँगें और पैर, दो पैरों से चलने वाले अभ्यस्थ जन्तुओं की तरह थे। होमो हेबिलिस के जीवाश्मों और पत्थरों के अपरिष्कृत औज़ारों का एक साथ पाया जाना यह दर्शाता है कि वे औज़ारों का उपयोग करते थे। ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता है कि ये होमोनिड मांस खाते थे।

होमो इरेक्टस

होमो इरेक्टस (Homo erecuts), अर्थात् सीधे खड़े होकर चलने वाले मानव का लगभग 16 लाख वर्ष पहले विकास हुआ और यह 10 लाख वर्ष तक होमो सेपियंस के विकास होने तक रहा। होमो इरेक्टस का मस्तिष्क बड़ा था (चित्र 13.9) जिसकी धारिता लगभग 800 से 900 घन से. मी थी। होमो इरेक्टस के जीवाश्म समस्त अफ्रीका यूरोप, और एशिया में पाए गए हैं। यह जानवरों का शिकार करता था और मांस खाता था। इस बात का प्रमाण उसके द्वारा इस्तेमाल

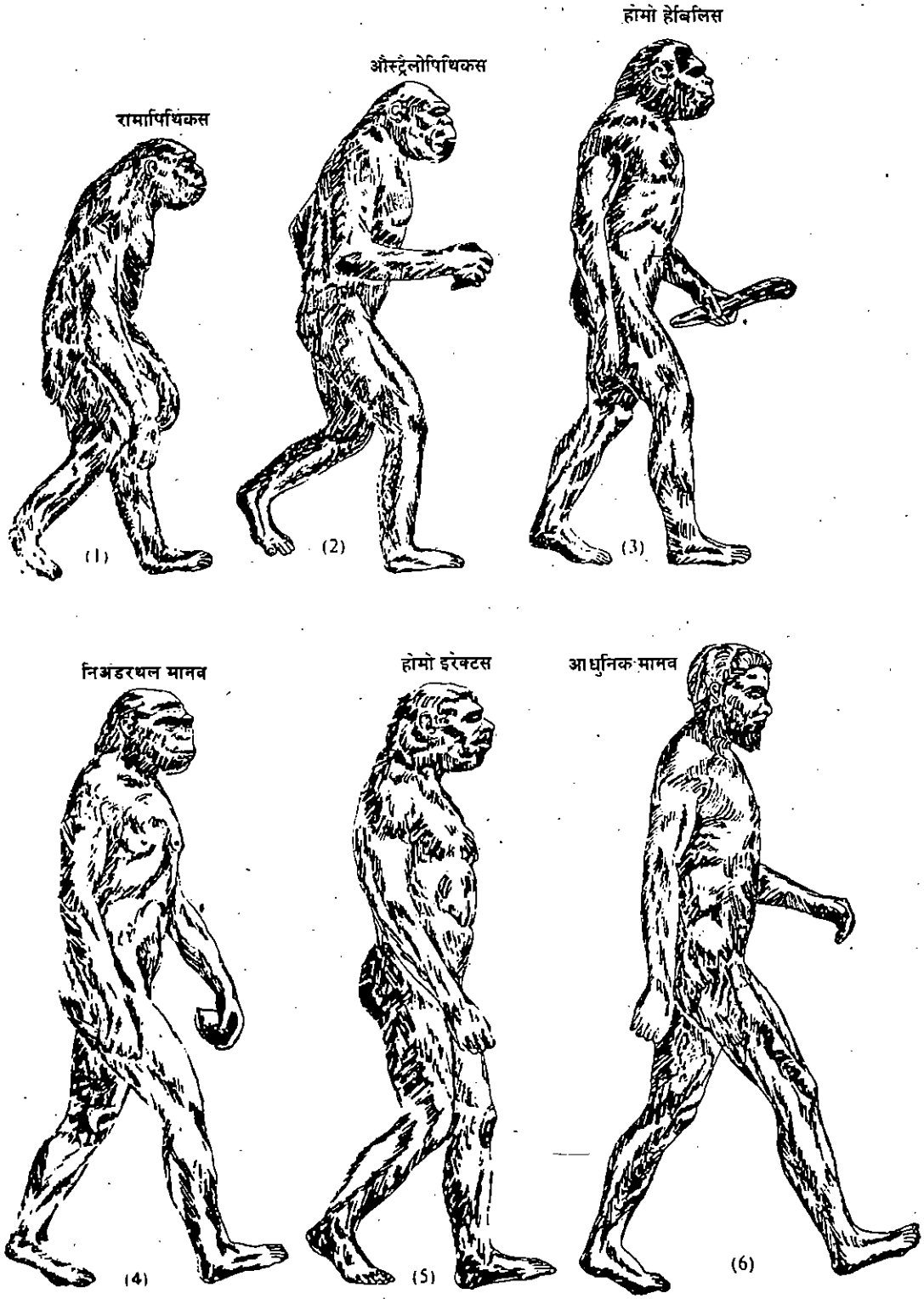

चित्र 13.8 प्रारंभिक मानव का कलाकार द्वारा चित्रण।

किए जाने वाले पत्थरों के औज़ार और उन जानवरों की हड्डियों पर मिले इन औज़ारों के निशान हैं, जो उनके रहने के स्थानों के नज़दीक से पाए गए हैं।

प्रमाणों के आधार पर ऐसा कहा जा सकता है कि होमो इरेक्टस का जीवन काफी कठिन रहा होगा। एक बुद्धिमान और सामाजिक तौर पर क्रियाशील व्यक्ति होने के कारण उसे बहुत कुछ करना पड़ा होगा। इस बात की कल्पना की जा सकती है कि उस समय बोलचाल की जटिल भाषा का जन्म हुआ होगा। परन्तु इस विषय में कोई प्रागैतिहासिक अभिलेख नहीं मिला है।

निअंडरथल मानव

ये पहले जीवाश्म थे जो काफी हद तक मनुष्य की तरह थे। निअडरथल मानव (Neanderthal-man) 1,00,000 वर्ष पहले से लेकर 40,000 वर्ष या 35,000 वर्ष पहले पश्चिमी यूरोप से लेकर पूर्वी और मध्य एशिया तक में फैले हुए थे। निअडरथल और आधुनिक मानव की संरचनाओं में कुछ असाधारण भिन्नताएँ हैं। निअंडरथल मानवों की संस्थिति (posture), उनकी गतिविधियाँ और उनका कौशल बिल्कुल आधुनिक मानव जैसा ही था पर उनका अस्थिपंजर अधिक सशक्त था। निअडरथल मानव का मस्तिष्क (चित्र 13.9) औसत रूप से आधुनिक मानव के मस्तिष्क से कुछ बड़ा, करीब-करीब 1400 घन से मी था। यह बड़ा मस्तिष्क निअंडरथल मानव की हृष्ट-पुष्ट मांसपेशियों के अनुकूल था। निअंडरथल मानव (चित्र 13.8) निपुण शिकारी एवं कुशल औज़ार बनाने वाले थे तथा अपने शरीर की रक्षा के लिए खालों का उपयोग करते थे। मानव के इतिहास में पहली बार रीति के अनुसार मुर्दे का दफ़नाना शुरू हो गया था।

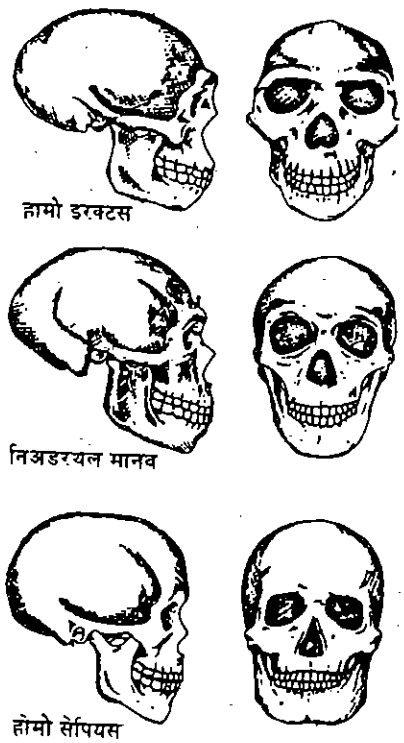

चित्र 13.9 निअंडरथल में होमो इरेक्टस एवं होमो सेपियंस, के कुछ लक्षण पाये जाते हैं। निअंडरथल के बड़े मस्तिष्क को जो होमो सेपियंस के अपेक्षाकृत बड़ा है, आधुनिक लक्षण माना जाता है।

होमो सेपियंस-आधुनिक मानव

होमो सेपियंस (Homo sapiens) के कई जीवाश्मों की खोज से यह ज्ञात होता है कि आधुनिक मानव (चित्र 13.8, 13.9) की उत्पत्ति अफ़्रीका में हुई और वे मध्य पूर्व के रास्ते से सारे संसार में फैल गये। लगभग 40,000 वर्ष पूर्व पाषाण युग का आधुनिक मानव आज के मानव से अधिक हृष्ट पुष्ट व मज़बूत था।

13.3.2 पुरातत्वीय प्रमाण

मानव के, विशेषकर प्रागैतिहासिक काल के पुरावशेषों के अध्ययन को पुरातत्व विज्ञान कहा जाता है। मानव का जैविक और सांस्कृतिक विकास साथ-साथ हुआ, इसलिए इन दोनों ने एक दूसरे को प्रभावित किया मानव के शारीरिक अवशेषों के समान उनके सांस्कृतिक अवशेष भी प्राचीन निक्षेपों में दबे पड़े हैं। प्रायः दोनों प्रकार के प्रमाण चट्टानों की एक ही परतों में एक साथ पाये गये हैं। समय के साथ उस के मस्तिष्क की धारिता में वृद्धि और शारीरिक अंगों में विकास हुआ और साथ ही साथ मानव की संस्कृति में भी बहुत अधिक विविधता और जटिलता आती गई। औज़ार बनाने के लिए उसने नई-नई चीज़ों का इस्तेमाल करना सीखा तथा उनमें सुधार करने की नई-नई तकनीकें विकसित की। औज़ारों के इस्तेमाल से खाद्य पदार्थ अधिक मात्रा में उपलब्ध होने लगे जिससे बस्तियों में आपसी सहयोग बढ़ने लगा। कई जगहों पर पाये गये पुरावशेषों से पता चलता है कि ये मानव मुख्यतः रेंडियर का मास खाते थे।

13.3.3 मानवशास्त्रीय प्रमाण

आधुनिक मानव का उदय उस समय हुआ जब पृथ्वी बहुत ठंडे एवं बर्फीले दौर से गुज़र रही थी, जिसे हिमयुग कहा जाता है। यह हिमयुग लगभग 75,000 वर्ष पहले आरंभ हुआ और लगभग 10,000 वर्ष पहले समाप्त हुआ। हिमयुग लगभग 18,000 वर्ष पहले अपने चरम उत्कर्ष पर था। यह वही समय था जब कि प्रागैतिहासिक काल में कला का विकास हो रहा था, जिसका प्रमाण हमें गुफ़ाओं की दीवारों पर और चट्टानों पर बने रंगीन चित्रों से मिलता है। इसी युग के हड्डी और हाथी दांत के गढ़े हुए कई हज़ार टुकड़े भी प्राप्त हुए हैं। वस्तुतः बहुत से चित्र ऐसे जानवरों के हैं जिन्हें हम पहचान सकते हैं। मुख्यतः रेंडियर और बाइसन जन्तुओं के चित्र बहुत अधिक संख्या में मिले हैं। जबकि यह आश्चर्य की बात है कि मनुष्य का कोई भी चित्र नहीं मिला है।

कृषि के संबंध में आम धारणा यह है कि अंतिम हिमयुग के अंत में लगभग 10,000 वर्ष पहले मानव के रहने के तौर-तरीकों में एक महत्वपूर्ण विश्वव्यापी परिवर्तन आया। वे शिकार करने और खाद्य पदार्थ इकट्ठा करने वाला खानाबदोश जीवन बिताने की बजाय, बस्तियों मे रह कर अन्न उत्पादन करने लगे। उनकी इस खोज ने, कि अनाज के दाने छिड़क देने से फसल उत्पन्न होती है और अधिक अन्न मिलता है, उनके सामाजिक जीवन को निश्चय ही बहुत अधिक प्रभावित किया होगा। स्थायी आवासी हो जाने के कारण संभवतः जनसंख्या की वृद्धि हुई और साथ ही साथ उनके फ़ुर्सत के समय को व्यतीत करने के लिए संगीत और नृत्य का भी विकास हुआ। भाषा और संचार के विकास के साधन विकसित होने के साथ-साथ प्रकृति के विषय में सोच-विचार करने की उनकी क्षमता में भी विकास हुआ होगा।

13.3.4 जीवरासायनिक प्रमाण

जैसा कि हमने भाग 13.2 में पढ़ा, डार्विन की मान्यता थी कि मनुष्यों और बड़े कपियों के कई शारीरिक लक्षण समान थे, जिससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य और कपि एक ही समूह के वशज थे। डार्विन का यह निष्कर्ष जीवाश्मों के अध्ययन और शारीरिक समानताओं पर आधारित था जिनका उन्होंने सर्वेक्षण किया। अब एक शताब्दी बाद प्रोटीन और आनुवंशिकी साम्रगी, डी.एन.ए. (DNA) के जीवारासायनिक प्रमाण से पता चलता है कि जैसे-जैसे विकास होता है वैसे जातियों में भिन्नता आने लगती है, और इस वजह से इनके प्रोटीन और डी.एन.ए. की संरचना में परिवर्तन आ जाते हैं। अलगाव का समय जितना ही ज्यादा होगा परिवर्तन उतने ही ज़्यादा होंगे। ये परिवर्तन प्रतिशत आनुवंशिक दूरी के रूप दिये जाते हैं और इससे दो जातियों के डी.एन.ए. के सापेक्ष अंतर का पता चलता है। अफ़्रीकी कपि और मानवों के प्रोटीन के तुलनात्मक अध्ययन से यह पता चलता है कि चिम्पैंज़ी, गोरिला और मनुष्य एक दूसरे के बहुत करीब के संबंधी हैं। जबकि एशियन कपि जैसे कि गिबन औरंगुटान इन तीनों के दूर के संबंधी हैं। (चित्र 13.10)

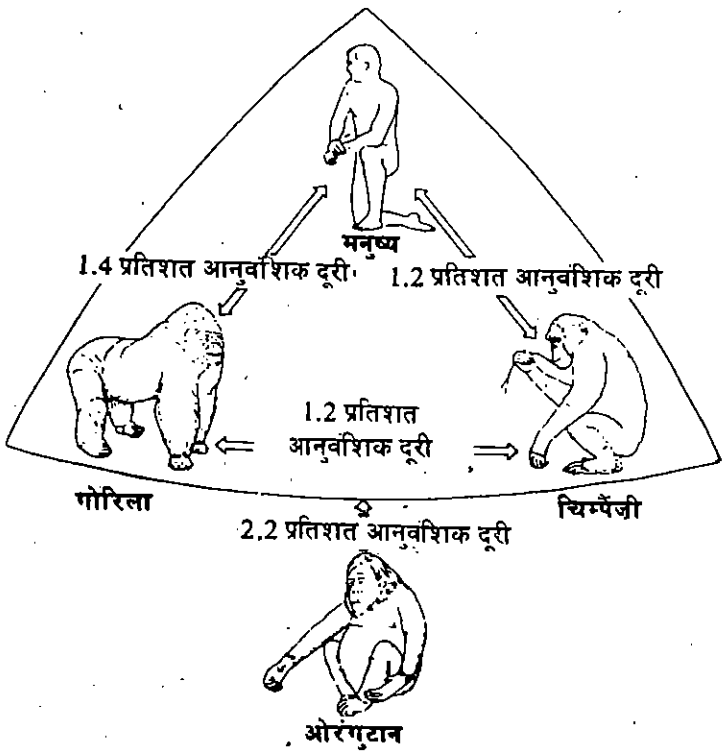

चित्र 13.10 मनुष्यों एवं कपियों में आनुवंशिक दूरी।

एक बार एशियन और अफ़्रीकी कपियों में संबंध स्थापित हो जाने पर यह सोचा गया कि होमोनिड का विकास लगभग 150 लाख वर्ष पूर्व कपियों से हुआ। जीवरासायनिक प्रमाणों से यह पता चलता है कि कपि और मनुष्य लगभग 50 लाख वर्ष पूर्व अलग हुए, सबसे पहले गोरिला अलग हुआ और अलगाव से पहले चिम्पैंज़ी और मनुष्य के पूर्वज एक ही थे (चित्र 13.8)। एक समय में एशिया, यूरोप और अफ़्रीका में पाया गया जीवाश्म रामापिथिकस (Ramapithecus) आधुनिक मानव जातियों के बहुत करीब समझा जाता था। लेकिन जीवरासायनिक प्रमाण के आधार पर अब यह ज्ञात हो गया है कि इसे होमोनिड नहीं माना जा सकता क्योंकि यह एशियाई बंदरों के होमोनिड से अलग होने से पहले ही मौजूद था। यही बात सिवापिथिकस इंडिकस (Sivapithecus indicus) जीवाश्म के विषय में भी कही जा सकती है। ऐसा जीवाश्म 1980 में पाकिस्तान के पश्चिमी हिमालय की तराइयों में भी पाया गया था।

बोध प्रश्न 2

विकास के संबंध में कॉलम 1 में दिये गये प्रमाणों का कॉलम 2 में दिये गये कथनों से मिलान कीजिए।

कॉलम 1	कॉलम 2
जीव रासायनिक	i) समय के साथ तथा मनुष्य के मस्तिष्क की धारिता में वृद्धि और अन्य शारीरिक अंगों के विकास होने के साथ-साथ उसकी संस्कृतियों में भी अधिकाधिक विविधता और जटिलता आती गई।
जीवाश्मीय	ii) मानव विकास के संबंध में सबसे पहली मान्यता को प्रोटीन तथा डी.एन.ए. के रासायनिक अध्ययनों का समर्थन मिला, जिससे पता चला कि चिम्पैंज़ी, गोरिला और मनुष्य में घनिष्ठ संबंध था।
मानवशास्त्रीय	iii) एक अर्धजीवाश्म "लूसी", इथोपिया के एक स्थान से पायी गयी है, जिससे पता चलता है कि वह दो पैरों पर अच्छी तरह चलती थी, हालाँकि उसके मस्तिष्क का आकार कम था।
पुरातत्वीय	iv) प्रागैतिहासिक युग के हड्डी और हाथी दाँत के हज़ारों गढ़े हुए टुकड़े मिले हैं।

13.3.5 अतीत का निर्धारण

आप यह सोच कर हैरान हो रहे होंगे कि हम यह कैसे बता सकते हैं कि कोई चट्टान 10 लाख वर्ष पुरानी है, अथवा यह कि कोई जीवाश्म 50 लाख वर्ष पुराना है। उदाहरण के लिए हम अरबों वर्षों के विभिन्न भूवैज्ञानिक कल्पों (geological periods) की अवधि का अनुमान कैसे लगाते हैं? शुरू में ये अनुमान मुख्य रूप से पत्थरों और चट्टानों के निक्षेपण (deposition) जैसी भूवैज्ञानिक प्रक्रियाओं की दरों पर आधारित थे। क्योंकि चट्टानों की अनेक परतों की उत्पत्ति समुद्र में और नदियों के मुहाने पर हुई, इसलिए किसी चट्टान की परतों को बनने में कितना समय लगता है, इसका अनुमान आजकल की नदियों द्वारा समुद्र में तलछट (sediments) छोड़ने की दर को नाप कर लगाया जा सकता है।

रेडियोधर्मिता के ज्ञान में विकास होने के साथ-साथ जीवाश्मों और कुछ ख़ास किस्मों की चट्टानों का सही काल निर्धारण करना संभव हो गया है। कुछ उपकरणों के इस्तेमाल से रेडियोधर्मी वस्तुओं का आसानी से पता लगाया जा सकता है। इस प्रकार की वस्तुओं में रेडियोधर्मी समस्थानिक (isotopes) एक प्रकार की घड़ियाँ हैं, जो एक समान गति से गैर रेडियोधर्मी रूप में बदल जाती हैं। यदि यह गति ज्ञात हो जाए तो चट्टानों या जीवाश्मों के निर्माण में लगे समय का उनमें मौजूद रेडियोधर्मी और गैर रेडियोधर्मी समस्थानिकों की मात्राओं को नाप कर सही अनुमान लगाया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर यूरेनियम, सीसा (lead) के समस्थानिकों में बदल जाता है जो कि रेडियोधर्मी नहीं होते हैं। इसलिए यूरेनियम से युक्त चट्टानों की आयु का उनमें मौजूद यूरेनियम और सीसे की मात्राओं के अनुपात की तुलना करने से पता चल सकता है (चित्र 13.11)।

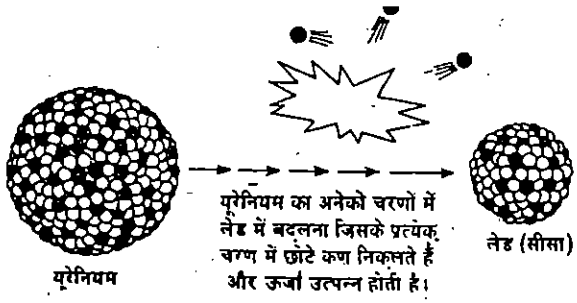

चित्र 13.11 **रेडियोधर्मी परमाणु के नाभिक अस्थाई होते हैं। जब ये नाभिक टूटते या क्षय होते हैं तो उनमें से विशेष प्रकार के कण या किरणें निकलती हैं और अन्ततः इस रेडियोधर्मिता के कारण दूसरी तरह के परमाणु बन जाते हैं।**

जीवाश्मों की आयु का अनुमान लगाने के लिए आम तौर पर आजकल रेडियो कार्बन द्वारा काल निर्धारण की विधि का इस्तेमाल किया जाता है। कार्बन के रेडियोधर्मी समस्थानिक को कार्बन-14 कहा जाता है। क्योंकि कार्बन-14 रासायनिक तौर पर साधारण कार्बन जैसा ही है, इसलिए पौधे और जन्तु, कार्बन के इन दोनों रूपों को उसी अनुपात में अवशोषित करते हैं, जिस अनुपात में ये वायुमण्डल में कार्बन डाइआक्साइड के रूप में मौजूद होते हैं। पौधे अपना भोजन बनाने के लिए इसी कार्बन डाइआक्साइड का इस्तेमाल करते हैं और जन्तु इन पौधों को खाते हैं। इसलिए जब तक पौधे या जन्तु जीवित रहते हैं, इनमें कार्बन-14 का अनुपात वायुमण्डल में कार्बन के अनुपात के बराबर ही रहता है। परन्तु जैसे ही ये मर जाते हैं, प्रकाशसंश्लेषण और भोजन लेना बन्द हो जाने के कारण उनमें कार्बन का प्रवेश भी बन्द हो जाता है। मरने के बाद इन के शरीर में मौजूद कार्बन-14, स्थिर गति से साधारण कार्बन में परिवर्तित होने लगता है। इसलिए किसी जीवाश्म में कार्बन-14 के अणुओं की संख्या जितनी कम होगी उतना ही अधिक वह पुराना होगा। इस प्रकार यदि हम प्राचीन काल की किसी लकड़ी या हड्डी में मौजूद कार्बन-14 की मात्रा नापें तो हमें उस वस्तु की आयु का सही अंदाजा हो सकता है। जिन वस्तुओं की आयु पहले से मालूम है उन पर कार्बन-14 विधि का प्रयोग करके इसकी विधि की परिशुद्धता को परखने के बाद किसी वस्तु की आयु का पता लगाने के लिए इसका इस्तेमाल किया जाता है।

कार्बन-14 विधि का उपयोग केवल उन्हीं कार्बनिक वस्तुओं के लिए किया जा सकता है जिनमें अब भी कार्बन मौजूद है। इसका उपयोग उन जीवाश्मों के लिए नहीं किया जा सकता जिनके कार्बनिक पदार्थों का पूर्ण रूप से ह्रास हो चुका है। ऐसी स्थिति में जीवाश्म की आयु का अनुमान उसमें मौजूद रेडियोधर्मी तत्वों जैसे फ्लोरीन या फास्फोरस से लगाया जाता है।

बोध प्रश्न 3

निम्नलिखित रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) जीवाश्मों और कुछ प्रकार की चट्टानों का सही काल निर्धारण ..... के ज्ञान के विकास से संभव हो सका।

ii) रेडियोधर्मी समस्थानिक के गैर-रेडियोधर्मी समस्थानिक में बदलने की दर से ..... की आयु का अनुमान लगाया जा सकता है।

iii) रेडियो-कार्बन द्वारा काल निर्धारण की विधि का प्रयोग उन जैविक पदार्थों के लिए किया जाता है जिनमें ..... मौजूद होता है।

iv) किसी जीवाश्म की आयु जिसमें सभी जैविक पदार्थों का ह्रास हो गया हो, का अनुमान ..... के रेडियोधर्मी समस्थानिकों की सहायता से लगाया जा सकता है।

13.4 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा :

- डार्विन के प्राकृतिक वरण के सिद्धांत के अनुसार सबसे अधिक अनुकूलित जीव ही उत्तरजीवी होता है क्योंकि उसे विरासत में ऐसे विशेष गुण मिले हैं जिनमें उसकी उपयुक्तता निहित है।
- जीवाश्मीय, पुरातत्वीय एवं मानवशास्त्रीय प्रमाणों तथा प्रोटीन एवं आनुवंशिक पदार्थों के अध्ययन से पता चलता है कि आज के कपि और मनुष्य के पूर्वज लगभग 50 लाख वर्ष पहले तक एक थे।
- चट्टानों, जीवाश्मों और पुरातत्वीय अवशेषों की आयु का अनुमान उनमें मौजूद विभिन्न तत्वों के रेडियोधर्मी और गैर-रेडियोधर्मी समस्थानिकों की मात्राओं का निर्धारण करके लगाया जा सकता है।

13.5 अन्त में कुछ प्रश्न

1) डार्विन का सिद्धांत किस विषय के बारे में बताता है?

.....

.....

2) जीवाश्मविज्ञान और पुरातत्वविज्ञान में अंतर बताइए।

.....

.....

3) किसी जीवाश्म की आयु का निर्धारण कैसे किया जाता है?

.....

.....

4) प्राचीन काल के पौधों, जन्तुओं, मनुष्यों और उस समय की वस्तुओं के अवशेषों की आयु का पता कैसे लगाया जाता है?

.....

.....

5) चित्र 13.12 के भाग क और ख में दर्शायें गये विकास से संबंधित दो सिद्धांतों का अध्ययन कीजिए और निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दीजिए।
   i) उन दो वैज्ञानिकों के नाम लिखिए जिन्होंने इन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया।
   ii) इन दोनों में से किस सिद्धांत को वर्तमान आँकड़ों और विकास से संबंधित प्रमाणों का समर्थन प्राप्त है।

क)

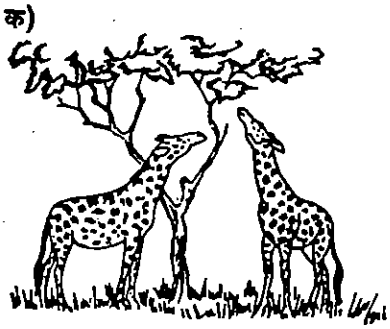

प्रारंभिक दौर में संभवतः जिराफ़ की गर्दन छोटी होती थी जिसके कारण भोजन तक पहुँचने के लिए उसे अपनी गर्दन खींचनी पड़ती थी।

ख)

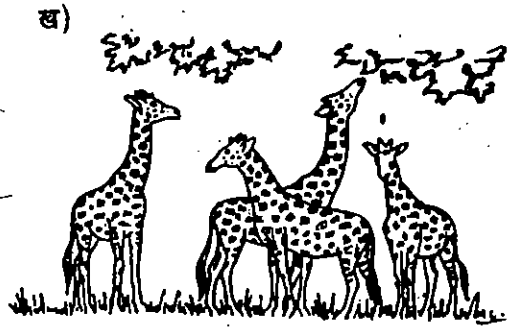

संभवतः प्रारंभिक दौर में जिराफ़ की गर्दन विभिन्न लम्बाइयों की हुआ करती थीं।

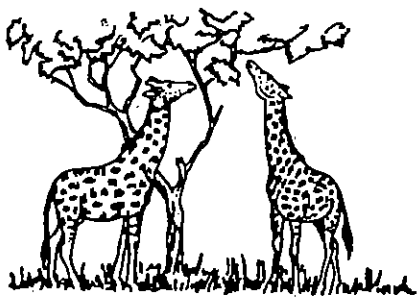

उनकी संतानों की गर्दनें अपेक्षाकृत थोड़ी लम्बी थीं पर फिर भी भोजन तक पहुँचने के लिए इन्हें अपनी गर्दन खींचनी पड़ती थी।

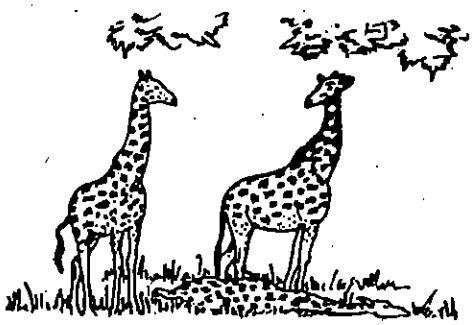

प्रतियोगिता एवं प्राकृतिक वरण के कारण लम्बी गर्दन वाले जिराफ़ और उनकी संताने ही उत्तरजीवी हो सकीं।

चित्र 13.12

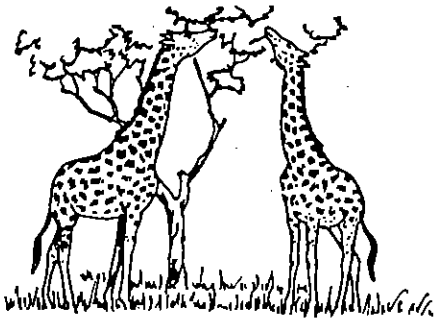

इस प्रकार कई पीढ़ियों बाद आज के जिराफ़ की गर्दन लम्बी हो गई है।

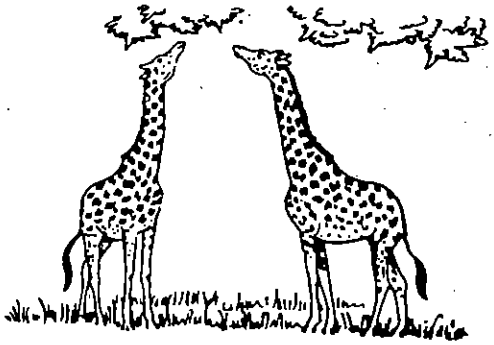

अंततः केवल लम्बी गर्दन वाले जिराफ़ इस प्रतियोगिता में जीवित रह सके।

13.6 उत्तर

बोध प्रश्न

1) क) i) असत्य
   ii) सत्य
   ख) i) अपनी यात्रा के दौरान डार्विन ने विभिन्न पौधों और जन्तुओं को एकत्र करके परिरक्षित किया और उनके बारे में विस्तार से टिप्पणियाँ तैयार कीं।
   ii) स्तनपायी ज़ीवों के शरीर पर स्तनग्रंथियाँ और बाल होते हैं जबकि अन्य जीवों में ये विशेषताएँ नहीं होतीं।
   iii) प्रारंभिक प्राइमेट्स
   iv) कपि

2) i) पुरातत्वीय
   ii) जीवरासायनिक
   iii) जीवाश्मीय
   iv) मानवशास्त्रीय

3) i) रेडियोधर्मिता
   ii) जीवाश्म
   iii) कार्बन
   iv) फ्लोरीन या फ़ास्फ़ोरस

अन्त में कुछ प्रश्न

1) डार्विन का सिद्धांत ऐसे जीवों की उत्तरजीविता के विषय में हैं जिन्होंने स्वयं को वातावरण के सबसे अधिक अनुकूल बना लिया। इस अनुकूलता के लिए उन्हें विरासत में ऐसे विशेष गुण मिले हैं जिनमें उनकी उपयुक्तता निहित होती है।
2) जीवाश्म विज्ञान, प्रागैतिहासिक काल के जन्तुओं और पौधों के जीवाश्मों से संबंधित है, जबकि पुरातत्व विज्ञान में मानव पुरावशेषों, खासकर प्रागैतिहासिक काल के अवशेषों का अध्ययन किया जाता है।
3) कार्बन-14 विधि का उपयोग उन वस्तुओं के लिए होता है जिनमें कार्बन मौजूद होता है। इस विधि का उपयोग ऐसे जीवाश्मों के लिए नहीं हो सकता जिनसे सभी कार्बनिक पदार्थों का ह्रास हो जाता है। इस प्रकार ऐसे जीवाश्म बनने के दौरान हड्डियों द्वारा फ़्लोरीन के समाविष्ट करने की दर से जीवाश्मों की आयु का अनुमान लगाया जा सकता है।
4) प्राचीन काल की लकड़ी, हड्डियों आदि की आयु का निर्धारण कार्बन-14 विधि के इस्तेमाल से किया जा सकता है।
5) i) क) लामार्क
   ख) डार्विन
   ii) केवल डार्विन के प्राकृतिक वरण सिद्धांत को वर्तमान आँकड़ों का समर्थन प्राप्त है।

शब्दावली

अंतरातारकीय अंतरिक्ष : तारों के बीच का अंतरिक्ष।
अणु : दो या दो से अधिक परमाणुओं का संयोग अणु कहलाता है।
अनावृत बीजी : उच्च श्रेणी के पौधे जिनके बीजों पर बाह्य आवरण नहीं होता।
अवरक्त किरणें : ऐसी किरणें जिनकी तरंग दैर्घ्य स्पेक्ट्रम में दिखाई देने वाली लाल किरणों की तरंग दैर्घ्य से अधिक होता है।
आनुवंशिक : ऐसी प्रक्रिया जिससे माता-पिता के वंशानुगत गुण उनके बच्चों को मिलते हैं।
आवृत बीजी : उच्च श्रेणी के पौधे जिनके बीज आवरण से घिरे होते हैं।
कक्षा : अंतरिक्षीय पिन्डों का परिक्रमा करने का पथ।
केन्द्रक : जीवधारियों की कोशिकाओं का केन्द्रीय भाग जिसमें क्रोमोसोम्स होते हैं।
कोर : किसी भी अंतरिक्षीय पिन्ड या ग्रह का केन्द्रीय भाग।
कोशिका : जीवन की सबसे छोटी इकाई।
क्रोमोसोम : यह कोशिका के केन्द्रक में स्थित धागेनुमा आकार का होता है जिस पर वंशानुगत गुणों का निर्धारण करने वाले जीन (gene) होते हैं।
क्लोरोफ़िल : पेड़-पौधों मे पाया जाने वाला हरे रंग का पिगमैंट जिसकी मदद से पेड़-पौधे अपना भोजन स्वयं बना सकते हैं।
क्वासर : बहुत दूर स्थित अन्तरिक्षीय पिन्ड, जो बहुत ज्यादा ऊर्जा छोड़ता है।
ग्रहिका : एक छोटा पिन्ड जो सूर्य के चारों तरफ घूमता है।
जीव रसायन : जीवों के विषय में रासायनिक अध्ययन।
जीवाश्म : प्रागैतिहासिक काल के पृथ्वी में दबे हुये पौधों और जन्तुओं के कुछ अंग, निशान और छापें जो अब चट्टानों के समान हैं।
ज्योतिषशास्त्र : सूर्य, ग्रहों चन्द्रमा और तारों की स्थिति का मनुष्य पर संभावित प्रभाव से संबंधित अध्ययन।
तंत्र : ऐसे अंगों का समूह, जो मिल कर किसी एक कार्य को करते हैं।
तत्व :साधारणतम पदार्थ जैसे कि आक्सीजन, कार्बन आदि जो रासायनिक क्रिया द्वारा खंडित नहीं हो सकते।
तरंग दैर्घ्य : किसी तरंग के दो क्रमिक शृंग या फिर दो क्रमिक गर्त के बीच की दूरी।
तारकीय लम्बन : सूर्य की पृथ्वी द्वारा परिक्रमा के कारण दूर स्थित तारों की पृष्ठभूमि में दिखाई देने वाला स्थानांतरण।
द्रवण : वह प्रक्रिया जिसके द्वारा वाष्प ठंडा होकर द्रव बनता है।
नाभिक : परमाणु का केंद्रीय भाग जिसमें प्रोटॉन एवं न्यूट्रॉन नामक कण होते हैं।
निक्षेपन : मिट्टी की परतों के जमाव से चट्टानों का बनना।
निषेचन : दो भिन्न लैंगिक युग्मकों के संयोजन की प्रक्रिया।
नीहारिका : अंतरातारकीय अंतरिक्ष में धूल के बादल।
परमाणु : किसी भी तत्व का सूक्ष्मतम कण, जिसमें उस तत्व के गुण निहित होते हैं।
पराबैंगनी किरणें : सूर्य प्रकाश एवं मर्करी वेपर लैंप से निकलने वाली अदृश्य किरणें जिनकी तरंग दैर्घ्य बैंगनी रंग की तरंग दैर्घ्य से कम होती है।
पल्सर : ऐसे पिंड जो छोटे स्पंद की रेडियो तरंगें छोड़ते हैं जैसे कि बहुत तेजी से घूमता हुआ न्यूट्रॉन तारा।
पशुधन : मनुष्य के लाभ के लिए विभिन्न जन्तुओं जैसे मवेशी, भेड़, सूअर, आदि का पालन।
प्रकाशसंश्लेषण : सूर्य के प्रकाश की ऊर्जा की मदद से पेड़-पौधों में क्लोरोफिल द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड और पानी से पोषकों का निर्माण।
प्रजनन : जीवधारियों का वह गुण जिससे वे संतान उत्पन्न करके अपने वंश को बढ़ाते हैं।
प्राइमेट : स्तनधारियों का सबसे उच्च वर्ग, जिसके अन्तर्गत मनुष्य, कपि, बन्दर, लेमर आदि शामिल हैं।
प्रोटीन : शरीर के निर्माण के लिए ज़रूरी अवयव जो स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है तथा दूध, अंडा और मांस आदि से प्राप्त होते है।
बीजाणु : ये एक कोशिकीय या बहुकोशिकीय होते हैं जिनसे माँस, कवक आदि जैसे पौधों की पुनरुत्पत्ति होती है।
ब्लैक होल : विशाल तारे के विकास की अंतिम स्थिति।
ब्लैक ड्वार्फ़ : व्हाइट ड्वार्फ़ तारे के विकास का अंतिम चरण।
डी एन ए : न्यूक्लोटाइड से बने जटिल जैविक बहुलक जो आनुवंशिक गुणों को संचित एवं हस्तांतरित करते हैं।

यीस्ट (खमीर) : एक कोशिकीय जीव जो किण्वन की प्रक्रिया में मदद करते हैं।
रेड जायंट : एक बहुत विशाल एवं ठंडा तारा।
रेडियोधर्मी : यूरेनियम और रेडियम जैसी धातुयें, जिनके परमाणुओं के टूटने से विद्युत किरणें निकलती हैं, जो अपारदर्शी वस्तुओं का भेदन कर सकती हैं और विद्युतीय प्रभाव डाल सकती हैं।
लाल स्थानांतरण : किसी पिण्ड की स्पेक्ट्रमी रेखाओं में लाल छोर की तरफ स्थानांतरण जो प्रेक्षक से दूर जाने के कारण होता है।
वाष्पीकरण : द्रव के भाप बनने की प्रक्रिया को वाष्पीकरण कहते हैं।
विकिरण : ऊर्जा, उष्मा आदि का तरंगों के रूप में निकलना।
विद्युत चुंबकीय विकिरण : एक विशेष प्रकार की ऊर्जा जो निर्वात से गुज़र सकती है, जैसे प्रकाश।
व्हाइट ड्वार्फ़ : बहुत गर्म, सघन और छोटा–तारा।
समस्थानिक : किसी तत्व के परमाणु जिसके नाभिक का भार उसी तत्व के दूसरे परमाणुओं से भिन्न होता है, पर रासायनिक तौर पर ये सभी परमाणु समान होते हैं जैसे कि भारी हाइड्रोजन, कार्बन-14 (heavy hydrogen, carbon-14) ।
समस्थापन : आंतरिक स्वरूप बनाए रखने की क्षमता।
स्तनपायी : वह जन्तु जिनके शरीर पर बाल एवं स्तन ग्रन्थियाँ होती हैं।
स्पीशीज़ : विभिन्न जीवों की विभिन्न जातियाँ।
हार्मोन : हार्मोन अंतःस्रावी ग्रन्थियों से रक्त में प्रवाहित होता है और शरीर के अंगों एवं अतःस्रावी ग्रन्थियों को उद्दीपित करता है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

ब्रहमांड दर्शन, डा. छोटूभाई सुथार, ज्ञान गंगोत्री ग्रंथश्रेणी-विज्ञान विद्या शाखा, 1968
भौतिकी, भाग-1, कक्षा IX के लिए पाठ्यपुस्तक, एन.सी.ई.आर.टी, 1985
भौतिकी, भाग-2, कक्षा X के लिए पाठ्यपुस्तक, एन.सी.ई.आर.टी, 1985
कृत्रिम उपग्रह और विश्व, प्रो. ललित किशोर सिंह, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1972
आधारिक जीव विज्ञान, भाग-2 कक्षा X के लिए पाठ्यपुस्तक, एन.सी.ई.आर.टी. 1986
सैद्धान्तिक प्राणिविज्ञान, डा. सिलवेस्टर जॉनसन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी 1976
जैव विकास, आर.एस. लल, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी 1973

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGFST - 01

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में आधार पाठ्यक्रम

खण्ड 4

कृषि, पोषण और स्वास्थ्य

इकाई 19
भोजन और कृषि 5

इकाई 20
वैज्ञानिक संभावनाएँ और सामाजिक वास्तविकताएँ 26

इकाई 21
भोजन एवं पोषण 39

इकाई 22
स्वास्थ्य और रोग 57

खंड 5 कृषि, पोषण और स्वास्थ्य

पिछले चार खंडों में आपने विज्ञान के इतिहास से लेकर पृथ्वी की उत्पत्ति, जीवों की उत्पत्ति तथा पर्यावरण और पारिस्थितिकी के कई विषयों का अध्ययन किया है। इस खंड में आप यह अध्ययन करेंगे कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी किस तरह कृषि में सुधार लाने में हमारी सहायता कर सकते हैं, जिससे सारे नागरिकों के लिए पर्याप्त अन्न का उत्पादन किया जा सके। साथ ही हम उचित पोषण और स्वास्थ्य रक्षा के उपयुक्त उपायों की भी चर्चा करेंगे।

इस खंड की पहली दो इकाइयों में भारतीय परिप्रेक्ष्य में कृषि के महत्वपूर्ण पहलुओं की चर्चा है। कृषि के लिए आवश्यक संसाधन, फ़सलों के प्रकार, कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक और तकनीकी प्रयास आदि का हम अध्ययन करेंगे। इस बात की भी चर्चा करेंगे कि अन्न उत्पादन के अन्य स्रोत क्या हैं और इस क्षेत्र में क्या प्रगति हुई है। हमारे देश में कुछ ऐसे क्षेत्र हैं, जहाँ फ़सल उगाने के लिए आवश्यक सुविधाओं की कमी है। हम देखेंगे किस तरह विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के प्रयासों से इन क्षेत्रों में कृषि उत्पादन की क्षमता बढ़ गयी है।

आज के युग में कृषि एक जटिल, वैज्ञानिक क्रिया है। इस क्षेत्र में बहुत यंत्रीकरण हुआ है, पर्याप्त सिंचाई व्यवस्था, उर्वरकों तथा कीटनाशकों के उपयोग आदि में वृद्धि हुई है। इनसे कृषि उत्पादन अवश्य बढ़ा है, साथ ही आधुनिक प्रौद्योगिकी के उपयोग के कारण कुछ समस्याएँ भी पैदा हुई हैं, जिनकी हम इस खंड में चर्चा करेंगे। चर्चा के अंत में हम कृषि में जैव प्रौद्योगिकी के प्रयोग का वर्णन करेंगे।

पर्याप्त अन्न उत्पादन एक सामाजिक आवश्यकता है, देश के कल्याण का सूचक है। लेकिन सही अर्थों में स्वास्थ्य की दृष्टि से, अन्न की मात्रा से अधिक, भोजन का स्तर अधिक महत्वपूर्ण है। इसी सिलसिले में इस खंड में आगे पोषण की चर्चा करेंगे।

जीवन भर स्वस्थ रहने के लिए, शरीर के लिए पोषण की अत्यंत आवश्यकता है। अधिकतर भारतीयों के भोजन में मुख्य रूप से चावल, गेहूँ, ज्वार, बाजरा जैसे अनाज ही शामिल हैं। इस भोजन में प्रोटीन, विटामिन और खनिजों की कमी है। भोजन के तत्वों के अभाव से उत्पन्न कई बीमारियाँ (खास तौर से प्रोटीन-कैलौरी की कमी से उत्पन्न कुपोषण) पैदा हो जाती हैं। हमारे देश में स्कूल जाने की उम्र के पहले ही लाखों बच्चों को ये बीमारियाँ हो जाती हैं। कुपोषण केवल गरीबों में ही नहीं है, बल्कि संतुलित भोजन के महत्व की जानकारी न होने के कारण समाज के समृद्ध वर्गों में भी पाया जाता है। इसलिए हमारे देश में कुपोषण से पैदा होने वाली बीमारियों से बचाव और नीरोग रहने के लिए पोषाहार की जानकारी ज़रूरी है।

केवल कुपोषण से ही बीमारियाँ नहीं होतीं, बल्कि बीमारियों के और कई कारण हैं। व्यक्ति और उसके वातावरण के बीच के जटिल संबंध से बीमारी पैदा होती है। हवा, पानी, आवास और सफ़ाई की स्थिति आदि पर्यावरण के तत्व न केवल व्यक्ति के, बल्कि पूरे समाज के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। हम जिस तरह के वातावरण में रहते हैं, उससे पैदा हुए शारीरिक और मानसिक तनावों का हमारे स्वास्थ्य पर गहरा असर पड़ता है। इसलिए बीमारी से बचाव और नीरोग रहने के लिए कुछ उपाय ज़रूरी हैं। इस संदर्भ में आजकल की स्थिति संतोषजनक नहीं है और शहरी और ग्रामीण अंचलों में उपलब्ध स्वास्थ्य सुविधाओं में बहुत अंतर है। इस देश में स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार के लिए क्या किया जाना चाहिए, इसकी चर्चा हम करेंगे।

उद्देश्य

इस खंड को पढ़ने के बाद आप :

- खेती से जुड़े हुए कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों को जान सकेंगे।
- अलग-अलग फ़सलों की उपज और खाद्य के अन्य स्रोतों के विकास के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई प्रगति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- आधुनिक खेती से जुड़ी हुई समस्याओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- शरीर को नीरोग रखने और पोषाहार की कमी से पैदा हुई बीमारियों से बचाव के लिए आवश्यक अच्छी खुराक की जानकारी ले सकेंगे।
- पिछली दो शताब्दियों में संक्रामक रोगों के नियंत्रण और उन्मूलन में हुई वैज्ञानिक प्रगति को समझ सकेंगे।
- संक्रामक बीमारियों की रोक-थाम के उपायों को जान सकेंगे।

इकाई 19 भोजन और कृषि

इकाई की रूपरेखा

19.1 प्रस्तावना

उद्देश्य

19.2 भारत में कृषि—जीवन की एक पद्धति

19.3 कृषि के मूलभूत साधन

सूर्य का प्रकाश

मृदा

जल

19.4 वनस्पति और पशु —भारत की संपदा

19.5 हमारे कृषि उत्पादन में वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति

अन्न और ज्वार, बाजरा

दालें और सोयाबीन

तिलहन

शर्करा फ़सलें

रेशेदार फ़सलें

रोपण फ़सलें

आलू तथा अन्य कन्द फ़सलें

फल और सब्ज़ियाँ

कृषि-वानिकी

19.6 कृषि-तकनीकें

फ़सलों की व्यवस्था

उर्वरकों का निवेश

फ़सल संरक्षण

19.7 पशुधन

मवेशी

भेड़ और बकरियाँ

सुअर

19.8 मुर्गी पालन

19.9 मछली-पालन उद्योग

सामुद्रिक मात्स्यकी

अन्तः स्थलीय मात्स्यकी

19.10 सारांश

19.11 अन्त में कुछ प्रश्न

19.12 उत्तर

19.1 प्रस्तावना

ाप खण्ड 1 में पढ़ चुके हैं कि भोजन ने मानवीय समाज को, भूतकाल में, काफी हद तक प्रभावित किया है। कृषि के आगमन ; बाद ही, मनुष्य लगातार भोजन-उपलब्धि के विषय में निश्चिन्त हो सका तथा उसका खानाबदोश जीवन समाप्त हुआ। इस काई में हम कृषि के विविध मूलभूत पक्षों और भोजन को निर्मित करने वाले विभिन्न उत्पादों का अध्ययन करेंगे।

काई 2, भाग 2.3 में कृषि और सभ्यता की उत्पत्ति का संक्षिप्त उल्लेख हुआ है। शायद आप उस भाग पर पुनः एक सरसरी ष्टि डालना चाहेंगे। ऐसा कर चुकने के उपरान्त, आइये अब भोजन और कृषि के विषय में बातचीत करें। आपको इस इकाई अनेक गणितीय आंकड़े मिलेंगे। यह आवश्यक नहीं कि आप सभी को याद रखें। वास्तव में, ये आंकड़े आपको सम्पूर्ण थति का एक व्यापक और अधिक वास्तविक रूपाकार समझाने के लिए दिए गए हैं।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त, आप :

- कृषि के मूलभूत संसाधनों की व्याख्या कर सकेंगे।
- हमारी फ़सलों के उत्पादन में हुई विभिन्न वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति को जान सकेंगे।
- विभिन्न कृषि-तकनीकों की चर्चा कर सकेंगे।
- वैकल्पिक खाद्य-साधनों तथा उनके उत्पादन में हुई प्रगति को स्पष्ट कर सकेंगे।
- समझ पायेंगे कि कृषि में उन्नति वैज्ञानिक और तकनीकी निवेश के कारण हुई है।

19.2 भारत में कृषि—जीवन की एक पद्धति

कृषि, भारतीय अर्थव्यवस्था की आधारशिला है। भारत की 24.5 करोड़ श्रम शक्ति में से, 1981 में (अन्तिम उपलब्ध संख्या) 9.3 करोड़ खेती करने वाले थे तथा 5.6 करोड़ खेतिहर मज़दूर थे। सम्मिलित रूप से वे हमारी श्रम शक्ति के 60 प्रतिशत भाग बनाते थे। इन 15 करोड़ लोगों के लिए कृषि, प्रमुख व्यवसाय ही नहीं, जीविका भी है।

हमारे पास कुल 32.8 करोड़ हेक्टेयर का भौगोलिक क्षेत्र है। खेती के अन्तर्गत वास्तविक क्षेत्र 14.2 करोड़ हेक्टेयर है तथा प्रायः 3.1 करोड़ हेक्टेयर को कई बार जोता जाता है, जिससे कुल उपजाऊ क्षेत्र 17.2 करोड़ हैक्टेयर हो जाता है। वन-भूमि लगभग 6.7 करोड़ हैक्टेयर है।

वर्तमान मूल्यों पर, 173200 करोड़ रुपए के हमारे कुल वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन में कृषि की 57066 करोड़ रुपए, वानिकी की 1597 करोड़ रुपए तथा मछली-पालन उद्योग की 1443 करोड़ रुपये की हिस्सेदारी है। अतः हमारे कृषक और खेतिहर मज़दूर, जो श्रम शक्ति के 61 प्रतिशत भाग को निर्मित करते हैं, हमारे कुल वास्तविक राष्ट्रीय उत्पाद में 35 प्रतिशत के भागीदार हैं। इन आंकड़ों को पढ़ते हुए, हमें निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए :

i) हमारे अधिकांश कृषक निर्धन हैं। यदि हमारे 'गरीबी हटाओ' कार्यक्रमों को कुछ सफलता मिल सकी, तभी हमारे कृषकों के पास कृषि को एक गतिशील उद्यम बनाने के लिए पर्याप्त साधन हो सकेंगे।

ii) आने वाले समय में लागू होने वाली, हमारी कृषि तकनीकें और नीतियाँ इतनी श्रम-सघन होनी चाहिए, जिनसे कृषि में जुटी हमारी व्यापक श्रम शक्ति को कार्य मिल सके। श्रम को कम करने वाली किसी प्रबल तकनीक की शुरुआत, अधिकांश कृषि-श्रमिकों को बेकार कर देगी और सामाजिक असन्तोष को जन्म देगी।

अतः आपने देख लिया कि हमारे देश में कृषि, हमारी जनशक्ति के एक बड़े भाग को कार्यरत रखती है तथा उन्हें आर्थिक सुरक्षा प्रदान करती है। आइये अब हम कृषि के मुख्य साधनों का अध्ययन करें।

19.3 कृषि के मूलभूत साधन

फ़सलों, पशुजाति तथा मानवीय प्रयत्नों की विशाल विविधता के अतिरिक्त कृषि के लिए मूलभूत साधन हैं — सूर्य का प्रकाश, मृदा और जल। अब हम इनकी एक के बाद एक चर्चा करेंगे।

19.3.1 सूर्य का प्रकाश

आप पहले ही जानते हैं कि पौधे भोजन तभी बना सकते हैं, जब सूर्य की रोशनी उपलब्ध हो। दिन के बारह घण्टों में पृथ्वी पर प्रति वर्ग सेंटीमीटर में, सामान्यतः 500 किलो कैलोरी की सूर्य विकिरण प्राप्त होती है। इनमें से पौधे केवल 222 किलो कैलोरी, प्रकाश-संश्लेषण के लिए प्रयोग करते हैं। सैद्धान्तिक रूप से, एक वर्ष में प्रति हैक्टेयर 140 टन फ़सल प्राप्त करना संभव है, यदि पानी, कार्बनडाइऑक्साइड तथा अन्य पोषण प्रर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो। फिर भी व्यावहारिक रूप में, एक वर्ष में प्रति हैक्टेयर प्राप्त अभी तक की सर्वाधिक फसल केवल 25 टन अन्न ही थी। मानसून के दौरान, जब सबसे अधिक वर्षा होती है, अधिकतर समय आकाश बादलों से ढका रहता है, जिससे सूर्य का प्रकाश ठीक से नहीं मिलता है। गर्मियों में सर्वाधिक सूर्य की रोशनी मिलती है, पर दुर्भाग्यवश इसी समय पानी बहुत कम होता है। ऐसी परिस्थितियों में, मानसून के दौरान पड़नेवाली बारिश के अधिक जल को निचली सतह (देखिये चित्र 19.1) के क्षेत्रों में संग्रह-टैंकों में एकत्र कर लेना चाहिए। फिर गर्मियों में, जब सिंचाई की अधिक आवश्यकता हो, तो इस एकत्रित पानी का इस्तेमाल करना चाहिए। इसमें सम्पूर्ण गाँव या खण्ड के सम्मिलित सामूहिक प्रयत्न की आवश्यकता है, क्योंकि संग्रहकर्ता टैंकों का निर्माण व्यक्तिगत रूप से कृषकों के बूते से बाहर है। हाँ, सर्दी वर्ष की सर्वश्रेष्ठ ऋतु है, क्योंकि इसमें सूर्य की रोशनी तथा नमी, दोनों पर्याप्त मात्रा में बनी रहती हैं।

चित्र 19.1 : एक संग्रह टैंक जिसमें वर्षा का पानी इकट्ठा होता है।

9.3.2 मृदा

ऊपरी मृदा की एक सेंटीमीटर तह बनाने में प्रकृति को पचास वर्ष से अधिक समय लगता है। परन्तु प्रति वर्ष वायु, जल और मनुष्य की लापरवाही के कारण 600 करोड़ टन से भी अधिक मृदा, नाइट्रोजन और पोटेशियम जैसे पोषणों, प्रति .26 करोड़ टन और .33 करोड़ टन फास्फोरस, के साथ बह जाती है। मिट्टी बहने से रोकने का सर्वोत्तम उपाय है वृक्षों और घास से ज़मीन को आवरण प्रदान करना। पर ऐसे क्षेत्रों में, जहाँ भूमि पर फ़सल उगाने की अधिक आवश्यकता है, ऐसा सरलता से नहीं हो पाता तो हमें परिरेखा-बन्ध और खड्ड बन्द करने का सहारा वैज्ञानिक रीति से लेना होगा, बाद में क्षेत्र-बन्धों पर वृक्ष और झाड़ियाँ लगाने से हरी खाद बनायी जा सकती है, लगाना होगा। हमारे देश में प्रायः प्रयुक्त होने वाली हरी खाद की फसलें हैं : सन, ज्वार, लोबिया, चना और मूंग-मसूर।

यद्यपि इतिहास साक्षी है कि मिट्टी के अनुचित प्रयोग के कारण सभ्यताएँ लुप्त हो गई हैं, तथापि हम करोड़ों टन उत्तम मिट्टी, ईंटें बनाने और सड़क बिछाने के लिए ले लेते हैं। इस व्यर्थ के उपयोग को बहुत कम कर देना चाहिए। ईंटें और सड़कें बनाने के लिए किसी वैकल्पिक और अधिक समय तक चलने वाली सामग्री का उपयोग करने से ऐसा हो पाएगा।

क्या आप जानते हैं कि आज जन्मे प्रत्येक व्यक्ति को 0.4 हैक्टेयर भूमि खाद्य उत्पादन के लिए तथा 0.08 हैक्टेयर भूमि, घर, सड़कें, जलनिकास, ऊर्जा आपूर्ति और अन्य आवश्यकताओं के लिए चाहिए। आजकल हमारे देश में एक व्यक्ति को 0.33 हैक्टेयर से भी कम कृषि भूमि मिलती है जो निर्धारित सीमा से कहीं कम है। अब समय आ गया है कि मृदा के मूल्य और भूमि पर वैज्ञानिक प्रयोग के महत्व के प्रति एक देशव्यापी चेतना उत्पन्न की जाए। हमें यह समझ लेना चाहिए कि मृदा की उपेक्षा करने से हमारा भविष्य संकट में पड़ जाएगा।

आइये अब अपने देश में पाई जाने वाली भिन्न-भिन्न प्रकार की मृदा को देखें। भारतीय मृदा को पच्चीस विभिन्न वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। सुगमता के लिए, उन्हें नीचे इटैलिक्स में दिए गए दस बड़े वर्गों में रखा जा सकता है। अनाजों के रूप में उनकी उच्चतम क्षमता 457.2 करोड़ टन अनाज की अनुमानित की गई है। हमारी ***जलोढ़ मृदा*** *(alluvial soil)* 53.6 करोड़ टन, ***काली मिट्टी*** 123.6 करोड़ टन, ***लाल और पीली मिट्टी*** 6.9 करोड़ टन, ***लाल मिट्टी*** 53 करोड़ टन तथा ***तटीय और द्वीपमुख जलोढ़ मृदा*** 41.3 करोड़ टन अनाज के रूप में उत्पन्न कर सकती है। ***धूरी, मरुस्थल, रेगिस्तानी, पहाड़ी और पर्वतीय*** भूमि और 7.6 करोड़ टन उत्पन्न कर सकती है।

हम पाते हैं कि हमें मिट्टियों की व्यापक किस्में प्रदत्त हैं। मिट्टी में फ़सलें या अन्य पौधे उगाने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि हम जो पौधे उगाने जा रहे हैं, उसके लिए मिट्टी अनुकूल है या नहीं। मिट्टी के पोषक और बाह्य गुणों का परीक्षण, फ़सलों की आवश्यकताओं को पूरा कर सकने के लिये किया जाना चाहिये। ये सभी कदम बहुत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि यदि मिट्टी सही किस्म की नहीं है तो फ़सल न केवल घटिया होगी अपितु मिट्टी भी खराब हो जाएगी।

9.3.3 जल

देश की कृषि का एक प्रमुख कारक, जल की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, उसका बारिश पर निर्भर करना है। हमारे कुल 14.2 करोड़ हैक्टेयर बोए गए क्षेत्र में से सींचा गया कुल क्षेत्र केवल 4 करोड़ हैक्टेयर है। शेष बारिश पर ही निर्भर है।

भारतीय कृषि को कभी-कभी मानसून को दाँव पर रखकर खेले गए जुए की संज्ञा दी जाती है। इस कथन में कुछ सच्चाई भी है। एशिया के दक्षिणपूर्व की मानसून पट्टी पर स्थित हमारे देश में, बारिश न तो एकसार होती है और ना ही पूरे वर्ष में ठीक-से बँटकर होती है, जिससे वर्षा पर निर्भर फ़सलें ही समुचित रूप से विकसित हो सकती हैं। आपको ज्ञात ही होगा कि हमारे देश

परिरेखा बन्ध — यह खेतों में बनाई गई मिट्टी की मेड़ को प्रदर्शित करता है।

खड्ड बन्द—झाड़ियाँ, मिट्टी, बालू के बोरे आदि को खेतों में बनी पानी की नालियों में बहते हुए पानी की गति को रोकने के लिए रखा जाता है। यह गतिशील पानी में बहते हुए अच्छी मृदा के अंशों को स्थायी करता है तथा मिट्टी में पानी के रिसाव को बढ़ाता है।

के अधिकांश भागों में वार्षिक वर्षा 3 महीने से भी कम समय में हो जाती है और शेष वर्ष शुष्क रहता है। परन्तु राजस्थान जैसे इलाकों में 3 दिन की बारिश के पश्चात् 3 वर्षों का सूखा भी पड़ सकता है। प्रतिवर्ष, हमारे देश के एक या दूसरे भाग में सूखा या बाढ़ की स्थिति तो आम-सी बात हो गई है, जिससे हमारी अर्थव्यवस्था को भी हानि पहुँचती है। अनन्त काल से भारतीय. वर्षा से परिचित हैं। महाभारत में ऐसे अकाल का उल्लेख आता है जिससे लोगों को भीषण कष्ट भोगना पड़ा। हड़प्पा सभ्यता के विशाल खलिहान, (देखिए चित्र 19.2) इस बात के संकेत हैं कि न केवल उस समय कृषि की बहुतायत थी, बल्कि अकाल के (कमी के) वर्षों में प्रयोग करने के लिए अन्न को भारी मात्रा में संग्रह करने की भी आवश्यकता थी। 1987 में, हाल में, हमें इसी सदी का भीषणतम सूखा भोगना पड़ा, पर पर्याप्त अन्न भण्डारों के कारण हम इस कठिन काल में कष्टों की अपेक्षा केवल चिन्ताजनक स्थिति से गुज़रकर रह गए। हाल ही में अंकित इतिहास के अनुसार 1877, 1899 और 1918 प्रमुखतः देशव्यापी सूखे के और 1878, 1892 एवं 1912 बहुव्यापी बाढ़ के वर्ष रहे हैं। सामान्यतः प्रति चार वर्षों में एक बार हम देश के विभिन्न भाग (भागों) में सूखे का और प्रति बीस वर्षों में एक बार देशव्यापी सूखे का सामना करते हैं। फिर भी, अकाल और बाढ़ के होने का कोई नियमित समय नहीं है। चूंकि हम देश की भौगोलिक स्थिति को नहीं बदल सकते, हमें अनियमित मानसून के साथ जीना सीखना होगा।

औसतन, वर्ष में 37 करोड़ हैक्टेयर मीटर वर्षा हमें प्राप्त होती है, (1 हैक्टेयर-मीटर वर्षा 10,000 क्यूबिक मीटर के बराबर है)। देश के अधिकांश भागों की कुल वर्षा के अस्सी प्रतिशत का कारण दक्षिण-पश्चिमी मानसून हैं। अनुमानतः 8 करोड़ हैक्टेयर मीटर जल मिट्टी में जज़्ब हो जाता है जिसमें से करीब आधा ऊपरी मिट्टी की पर्त में रहता है और पौधों के विकास में सहायक होता है। शेष जल वर्ष भर में भूमि में जज़्ब होता है, और भूमिगत जल का निर्माण करता है। इसमें से प्रायः तीन चौथाई जल पुनः फ़सलों के विकास में प्रयोग में लाया जा सकता है। फिर भी, वर्तमान समय में हम केवल इसका एक चौथाई ही प्रयोग कर रहे हैं। यहाँ हम ध्यान दिलाना चाहेंगे कि भूमिगत जल का प्रयोग समुचित परीक्षण के पश्चात् ही करना चाहिए। कुछ स्थानों पर, भूमि में नमकीन कोष होते हैं, जो भूमिगत जल में घुल जाते हैं। जब जल बाहर निकाला जाता है तो ये भी बाहर आ जाते हैं, और भूमि को उपजाऊ नहीं रहने देते।

आपने अभी देखा कि हमारे देश के इन मूल साधनों में पर्याप्त वैभिन्न्य है। अगले प्रभाग में बोध प्रश्न 1 हल करने के बाद हम भारत में पाए जाने वाले आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण कुछ पौधों और उपयोगी पशुओं के विषय में जानेंगे। हम यह भी देख पाएँगे कि वे हमारे देश में ही थे या कहीं बाहर से लाए गए हैं।

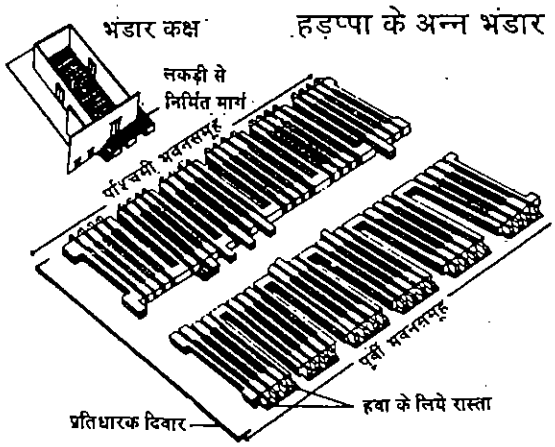

चित्र 19.2 : हड़प्पा युग के खलिहान

बोध प्रश्न 1

क) भारत को कृषि प्रधान देश क्यों कहा जाता है? अपने उत्तर के समर्थन में दो या तीन कारण दीजिए।

.....

.....

.....

ख) नीचे दिये गये शब्दों में से चुन कर सही शब्द भरिये।

i) देश की सम्पूर्ण वर्षा का लगभग 80 प्रतिशत वर्षा ..... मानसून के कारण होती है।

ii) सम्पूर्ण सूर्य प्रकाश, जो पृथ्वी पर प्राप्त होता है, उसका ..... से कम प्रकाश संश्लेषण में पौधों द्वारा उपयोग कर लिया जाता है।

iii) मृदा अपरदन के कारण हम केवल मिट्टी ही नहीं खोते बल्कि हम ..... को भी खो देते हैं।

iv) ..... किस्म की मिट्टी में अन्य नौ वर्ग की मिट्टियों की अपेक्षा सबसे ज्यादा उत्पादक क्षमता होती है।

v) हमारी अधिकतर कृषि भूमि वर्षा के पानी पर निर्भर है और केवल ..... प्रतिशत भाग ही सींचा जाता है।

(जलोढ़, दक्षिण-पश्चिम, अट्ठाइस, पोषकों, आधे)

19.4 वनस्पति और पशु—भारत की संपदा

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि 20,000 से भी अधिक पौधों की प्रजातियाँ हमारे देश में हैं, यह संख्या अधिक विशाल भूमि वाले देशों में पाये जाने वाले पौधों की संख्या से कहीं ज्यादा है। इसका कारण भारत की मिट्टी और जलवायु में पाई जाने वाली बहुत ज्यादा विविधता है। 20,000 किस्मों में से 500 का प्रयोग किसी-न-किसी रूप में होता है और सजावटी पौधे, झाड़ियों और जड़ी बूटियों के अतिरिक्त 250 किस्में ऐसी हैं जो अभी उगाई जा रही हैं। इन उपजाई गई किस्मों में से करीब 35 पहले भारत तथा समीपवर्ती राष्ट्रों द्वारा लगायी गईं। इनके अन्तर्गत चावल, मामूली बाजरा, रतालू, कचालू, दालें, सेम, सरसों, एशियाई रूई, जूट, सन हेम्प (sunnhemp), मेस्टा (mesta), अम्बारी, बैंगन, पालक, खीरा, कोंहड़े की एक विशिष्ट किस्म, काली मिर्च, लम्बी मिर्च, दालचीनी, अदरक, हल्दी, इलायची, भांग, आम, केला, नींबू-वंश के फल, कटहल, खजूर, इमली, आमला, बेर, कैथ, फालसा, जामुन तथा अनेक औषधियुक्त पौधे आ जाते हैं।

चित्र 19.3 : हड़प्पा युग का कूबड़रहित मवेशी, सामने रखा खाने का पात्र इंगित करता है कि पशु पालतू है।

पशुओं में कूबड़ वाले मवेशी और तटीय भैंसें भारत मूल के हैं। पालतू कूबड़रहित गोधन के मूल चित्र हड़प्पा युग (2400 ईसा पूर्व) की मुद्राओं पर, गुजरात और राजस्थान में मिले (देखिए चित्र 19.3)। 2450 ईसा पूर्व जोते गए प्रारम्भिक खेत, कालीबंगन, राजस्थान में पाए गए। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि समस्त विश्व के कुक्कुट-पालन का प्रारम्भ मध्यप्रदेश के लाल जंगली मुर्गे (देखिए चित्र 19.4) से हुआ।

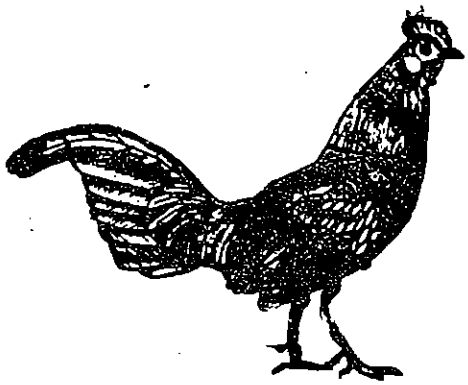

चित्र 19.4 : लाल जंगली मुर्गा *(Gallus gallus)*,

जितने पौधे या पशु हमारे देश में प्रयुक्त होते हैं, सभी यहाँ के वासी नहीं। इनमें से कुछ विश्व के विभिन्न भागों से यहाँ लाए गए। चूँकि प्राचीनकाल से ही भारत के अन्य देशों से व्यापार-सम्बन्ध थे अतः एक बड़ी संख्या में उपयोगी पौधे और पालतू पशु पूर्व और पश्चिम देशों से ही यहाँ लाए गए। पश्चिमी एशिया से जो पौधे यहाँ लाए और विकसित किए गए वे जौ, गेहूँ, मसूर, मटर, बड़ी सेम, प्याज़, लहसुन, चुकंदर, गाजर, मूली, सौंफ, धनिया, जीरा, ऐल्फाल्फा, अलसी, बेलाडोना (धतूरा), पोस्ता, कृष्ण सिलियम (black-psyllium), लीकोरिस (licorice) और फाक्सम्लव (Foxglove) अफ्रीका से ज्वार, बाजरा, आंगुल्य-बाजरा, लोबिया, रेंडी, तिल, भिंडी, गिनिघास (guinea-grass) हस्तीघास (elephant grass), और कॉफ़ी आए। इसी प्रकार चीन से प्रोसो बाजरा, सोयाबीन, तुंग, चरबी, लोकाट, लीची, आड़ू, खुबानी, अखरोट और चाय लाए गए। दक्षिणपूर्व एशिया तथा पैसिफिक द्वीपों से कटहल की एक किस्म विलिम्बी, कैरम्बोला, चूना, नींबू, मीठा संतरा, खट्टा संतरा, गलगल, छोटा संतरा, मैंगोस्टीन (mangosteen), नारियल, साबूदाना, शर्करा खजूर, सुपारी, पान और मेंहदी लाए गए। नए संसार अर्थात् अमेरिका से आए — भुट्टा, आलू, तम्बाकू, शकरकन्द, अरारोट, टमाटर, मिर्च, काशीफल, पपीता, अमरूद, शरीफ़ा, मूंगफली, अमेरिकी रूई, रबड़, सूरजमुखी, अंगूर, कद्दू और चिरायता। जब ये पौधे हमारी भूमि तक पहुँचे तो यहाँ की विविध मिट्टियों और जलवायु में शीघ्र रच-बस गए। यहाँ तक कि अपने मूल देश की अपेक्षा और भी अच्छी तरह से उगे।

इनमें से गेहूँ और अनेक दालों जैसे कुछ पौधे, तब से हमारी भोजन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बड़ी मात्रा में उगाए जाते हैं। चूंकि ये पौधे हमारे यहाँ विभिन्न परिस्थितियों में उगाए जाते हैं, इनसे अधिक पैदावार लेने के लिए उनमें निश्चित सुधार करना आवश्यक है। हमारे कृषि वैज्ञानिकों द्वारा रोगों का मुकाबला करने की शक्ति, अधिक फ़सल देनेवाली किस्में उगाना आदि जैसे कुछ सुधार भी हुए हैं। अगले भाग में हम, हमारे अन्न, ज्वार, तिलहन, दालों और अन्य अनेक फ़सलों में हुई प्रगति की चर्चा करेंगे।

19.5 हमारे कृषि उत्पादन में वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति

हाल के वर्षों में हमारे कृषि-उत्पादन में उल्लेखनीय बढ़ोत्तरी हुई है। इसका एक महत्वपूर्ण उत्तरदायी कारण है, वैज्ञानिकों द्वारा पौधों के आनुवंशिक ढांचे में लाया गया परिवर्तन, जैसे पौधों का छोटा और घना होना अथवा उनकी विकासात्मक लयबद्धता (उदाहरणार्थ, जब पौधों में फूल आएँ)। आइये देखें, इसका क्या अर्थ है। मान लें कि एक ऐसा पौधा है जो वर्ष के किसी विशेष समय में अनुकूलतम उपज देता है। आनुवंशिक परिचालन द्वारा वैज्ञानिकों ने यह संभव कर दिया है कि उसे वर्ष के किसी भी समय में लाभप्रद फ़सल के लिये उगाया जा सके। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। आपको शायद ही याद हो, पर आपके माता-पिता आपको अवश्य बता सकते हैं कि कुछ वर्ष पहले आलू, लोबिया, सेम जैसे पौधे वर्ष के केवल कुछ महीनों के लिये ही स्थानीय बाज़ारों में उपलब्ध थे। पर अब, उन्हें सम्पूर्ण वर्ष में कभी भी प्राप्त किया जा सकता है। इसका कारण उनकी विकासात्मक गति में लाया गया परिवर्तन है।

19.5.1 अन्न और ज्वार, बाजरा

दक्षिण-पश्चिमी मानसून के दौरान उगाई जाने वाली फ़सलें, खरीफ़-फ़सलें कही जाती हैं। उत्तर भारत में, जहाँ मौसम भिन्न होते हैं, यह समय जुलाई से अक्तूबर का है। मानसून-पश्च उपज अर्थात् अक्तूबर से मार्च के मध्य उगाई जाने वाली उपज रबी फ़सल है। खरीफ़ फ़सलों में चावल, मकई, ज्वार, बाजरा, रागी और अन्य मोटे अन्न आ जाते हैं। दूसरी ओर गेहूँ, जौ, जई, राई तथा ट्रिटिकेल (गेहूँ) रबी फसलों के उदाहरण हैं।

चावल देश का प्रमुख अन्न है जो प्रायः 80 प्रतिशत क्षेत्र में उगाया जाता है। भाग 19.4 में आपने पढ़ा कि हमारे देश में सबसे पहले उगाये जाने वाले पौधों में से चावल भी एक था। 1950 के मध्य तक उपजाई जाने वाली चावल की किस्में लम्बी और कमज़ोर तनों वाली थीं। ऐसे पौधे सूर्य की रोशनी तथा अन्य पोषकों का उपयोग कुशलतापूर्वक नहीं कर सकते थे और ढीले पुष्पगुच्छों (panicles) पर बहुत कम दाने उत्पन्न कर सकते थे। (देखिए चित्र 19.5क) इसके विपरीत, आज, ज़्यादा उपजाऊ किस्में छोटी हैं, मजबूत शाखायुक्त हैं और बहुत बड़ी मात्रा में तलशाखा (tillers) उत्पन्न करती है। ये पौधे खाद से लाभान्वित होते हैं तथा दानों से लदे सघन पुष्प गुच्छ उत्पन्न करते हैं। फ्लैग पत्ते (गुच्छ से एकदम नीचे के पत्ते) सीधे खड़े रहते हैं (देखिए चित्र 19.5ख) और फ़सल कटने तक हरे रहकर भोजन उत्पन्न करते रहते हैं तथा दानों के भराव के लिए उसे भेजते रहते हैं। अधिकांश नई किस्में मौसम में बँधी नहीं रहतीं, अतः वर्ष में किसी भी समय उगाई जा सकती हैं। वे किसी भी अन्य फ़सल से गर्मियों, सर्दियों या वर्षा ऋतु में परिवर्तन क्रम में उग सकती हैं।

इस महत्वपूर्ण जानकारी के परिणामस्वरूप चावल का उत्पादन 2.5 करोड़ टन 1954-55 से बढ़कर 5.9 करोड़ टन 1984-85 में हो गया। प्रति हैक्टेयर फ़सल के हिसाब से यह 820 किलो से 1425 किलो हो गया। यद्यपि इस काल में जनसंख्या 39 करोड़ से करीब 75.1 करोड़ तक बढ़ी, तथापि प्रति व्यक्ति चावल की कुल उपलब्धि भी 159 ग्राम से बढ़कर 207 ग्राम प्रतिदिन हो गई।

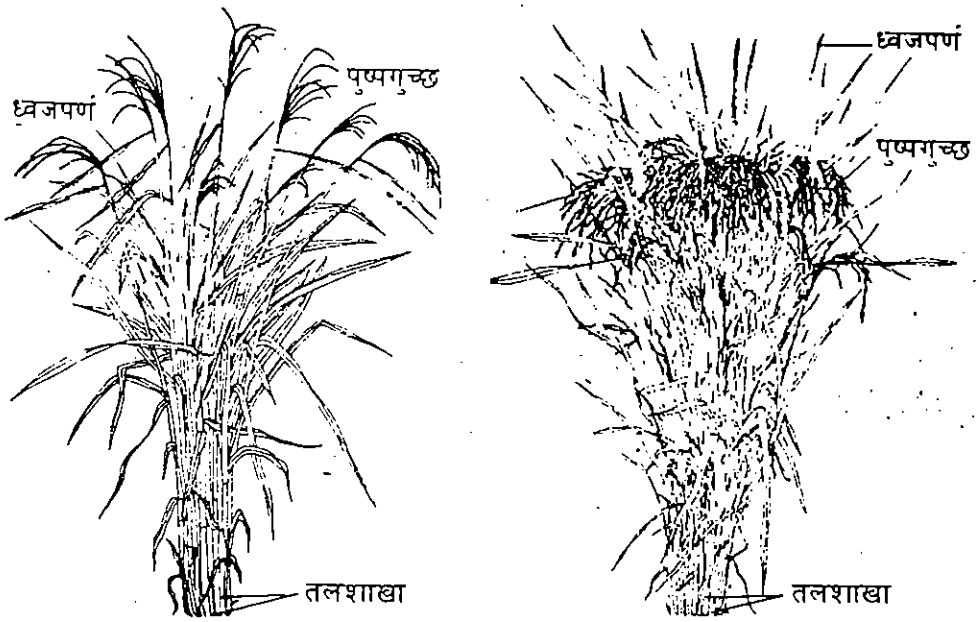

क ख

चित्र 19.5 : क) पुरानी बिना सुधरी हुई चावल की किस्म ख) सुधरी हुई किस्म

हमारी सर्वाधिक महत्वपूर्ण रबी फ़सल, गेहूँ, की कथा इससे भी ज्यादा चमकत्कारिक है। उसी अवधि में प्रति हैक्टेयर फ़सल का उत्पादन827 किलो से 1873 किलो हो गई। इस उल्लेखनीय वृद्धि ने सम्पूर्ण देश के कृषि जगत में क्रांति ला दी है। इसे 'हरित क्रान्ति' भी कहा जाता है। हमारी जनसंख्या में वृद्धि होने पर भी, गेहूँ की प्रति-व्यक्ति उपलब्धि 80 ग्राम से 130 ग्राम तक पहुँच गई है।

उच्च उत्पादक किस्मों से, कुछ क्षेत्र जहाँ पारम्परिक रूप से मोटा अनाज उगाया जाता था, वहाँ चावल और गेहूँ की फ़सलें उगाई जाने लगीं। इसलिए, मोटे अनाज का क्षेत्र, 1958-59 में 4.47 करोड़ हैक्टेयर से घटकर 1984-85 में 3.92 करोड़ हैक्टेयर हो गया। फिर भी, उसी समय के दौरान मोटे अनाज की उपज 2.32 करोड़ टन से बढ़कर 3.12 करोड़ टन हो गई। इसका प्रमुख कारण मोटे अनाज में नई सुधरी हुई किस्मों का प्रयोग है।

मोटे अनाज को बाजरा भी कहा जाता है, उदाहरणतः बाजरा, इटली का बाजरा, ज्वार और आंगुल्य बाजरा तथा अन्य छोटे अनाज।

नई सुधरी हुई पौधों की किस्मों की संकल्पना, अन्य अनेक फसलों तक भी पहुँचाई जा रही है। पौधों के विकासात्मक इतिहास के आधार पर तथा आंकड़ों के विश्लेषण का प्रयोग करते हुए वैज्ञानिक अब आदर्श किस्में, अर्थात् ढांचे और वांछित शरीर क्रियात्मक तथा जैवरासायनिक गुणों से युक्त पौधे निर्मित करते हैं। वैज्ञानिक, उपलब्ध जननद्रव्यों (germ plasm) की व्यापक किस्मों से छाँटकर अनुकूल गुण चुनते हैं। फिर वे एक किस्म में यथासंभव, वांछित गुणों का समावेश करने का प्रयत्न करते हैं जिससे हमें उन सभी वांछित गुणों से युक्त किस्म प्राप्त हो।

19.5.2 दालें और सोयाबीन

दालों को हमारी जनता के भोजन में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ये प्रोटीन का उत्कृष्ट स्रोत हैं। ये मुख्यतः शाकाहारी उपभोक्ताओं की एक बड़ी संख्या की आवश्यकताओं को पूर्ण करती हैं। हमारी जनसंख्या के कमज़ोर वर्गों में से अधिकांश, अण्डे और अन्य पशु उत्पादनों के उत्तम प्रोटीन स्रोत का व्यय वहन नहीं कर सकते हैं। दालें मवेशियों के भोजन के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। दालें (legume) फलियों वाले पौधे हैं और आप जानते हैं कि भूमि को उर्वरक बनाए रखने में दालों की एक अहम् भूमिका है (देखिए इकाई 14)।

आइये अब उन दालों की चर्चा करें, जिनका हम सामान्यतः इस देश में प्रयोग करते हैं। अरहर एक अति सामान्य रूप से प्रयुक्त होने वाली दाल है। इसकी कुछ किस्में बहुत से पत्तों और शाखाओं से युक्त है तथा इनमें फली और दाने बहुत कम हैं। इन्हें अब अधिक सघन, व्यवस्थित और अधिक फलियों तथा बीजों से युक्त पौधों से बदला जा रहा है। जहाँ पहले किस्में 300 दिन से भी अधिक समय में कटने की स्थिति तक पहुँचती थीं वहाँ कई वर्तमान किस्में 150 दिनों से भी कम समय में इस स्थिति तक पहुँच जाती हैं। चिक पी (चने) के ज़मीन के समानान्तर फैले हुए पौधे के प्रकार को सीधे खड़े हुए तने, अनेकों शाखा वाले प्रकार में परिवर्तित कर दिया गया है, जिसमें ऊपर से नीचे तक फलियाँ लगती हैं। विकासात्मक गति में परिवर्तन के कारण सर्दियों और गर्मियों में मूंग और उड़द उगाना संभव हो गया है। इस परिवर्तन ने मैदानी इलाकों में राजमा उगाना भी संभव कर दिया है जो अभी तक असंभव था।

एक बात जिसका हम यहाँ उल्लेख करना चाहेंगे, वह यह है कि दालों की उपज में, किस्मों की विविधता की अपेक्षा फ़सलों की व्यवस्था अधिक महत्वपूर्ण है। बोने में एक पक्ष की देरी का अर्थ भरपूर फ़सल और एकदम फ़सल-व्यर्थता के बीच का अन्तर हो सकता है। फ़सलों की सही समय पर मात्र एक सिंचाई व्यापक फ़सल वृद्धि का कारण बन सकती है। दालों की फ़सलों की जड़ों में ग्रंथिकाएँ होती हैं जो बैक्टीरिया को शरण देती हैं और वे वातावरण से नाइट्रोजन स्थिरीकरण करते हैं। परिणामस्वरूप, उनकी नाइट्रोजन आवश्यकताएँ कम हैं। परन्तु उन्हें फ़ॉस्फ़ेट की पर्याप्त मात्राएँ भूमि परीक्षण के बाद ही दी जानी चाहिए। अन्य अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व हैं : उत्तम पौधों की पैदावार, स्वस्थ फ़सल और आवश्यकता पर ही रसायनों का प्रयोग, जिससे फलियों को छेदनेवाले कीटाणुओं की रोक-थाम की जा सके। दुर्भाग्यवश, उच्च उत्पादक बीजों की तुलना में व्यवस्थापक तकनीक की किसानों को जानकारी नहीं मिली है। परिणामस्वरूप, दालों के उत्पादन में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई। 1986-87 में दालों का हमारा कुल उत्पादन 1954-55 में 1.1 करोड़ टन की तुलना में 1.2 करोड़ टन था। इसी बीच हमारी जनसंख्या में इतनी वृद्धि हुई है कि दालों की प्रति व्यक्ति उपलब्धि आज कम हो गई है। वर्तमान में यह 40 ग्राम से भी कम है (1954-55 में 64 ग्राम की तुलना में), जो विश्व स्वास्थ्य संस्थान द्वारा प्रस्तावित 80 ग्राम प्रतिदिन की न्यूनतम आवश्यकता के विरुद्ध है। यह एक विकट स्थिति है, क्योंकि हमारे यहाँ बढ़ते हुए बच्चे बड़ी संख्या में हैं, जिन्हें पर्याप्त मांसपेशियों के विकास के लिए भोजन में दालों की आवश्यकता है। प्रोटीन कुपोषण न केवल शारीरिक विकास को विकृत करता है, अपितु बढ़ते हुए बच्चों के मानसिक विकास पर भी विपरीत प्रभाव डालता है।

इस संदर्भ में हमारे देश में सोयाबीन की उपज को लोकप्रिय बनाने की नितान्त आवश्यकता है, अरहर की 22.3 ग्राम प्रोटीन की तुलना में, सोयाबीन में प्रति सौ ग्राम दानों में 43.2 ग्राम प्रोटीन है। पूरे भारत में किए गए परीक्षणों के आधार पर यह स्पष्ट है कि प्रति हैक्टेयर सोयाबीन की फ़सल 29.6 क्विंटल दाने हैं, जबकि अरहर की फ़सल, समान स्थितियों में केवल 16.60 क्विंटल है। प्रोटीन-समृद्ध सोयाबीन के दाने में 19.5 प्रतिशत तेल भी है और संसार के खाद्य तेल उत्पादनों में यह ऊपरी स्थान रखता है। सोयाबीन को ऊँचे क्षेत्र पर चावल के मेढ़ पर और सह उपज के रूप में कपास, मकई, आंगुल्य बाजरा तथा अरहर के साथ उगाया जा सकता है। इसे पूरे देश में उगाया जा सकता है। ऐसा देखा गया है कि विशेषकर ठण्डे पहाड़ी इलाकों में सोयाबीन की किस्म बेहतर है। इस प्रकार सोयाबीन भारत के लिए वरदान बन सकता है। यद्यपि, इस समय अधिकांशतः यह फ़सल मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश में उगाई जाती है, परन्तु इसकी फ़सल अत्यधिक रूप से बढ़ जाएगी, यदि हम लोगों को इससे प्राप्त लाभों से परिचित करा दें और क्रय-विक्रय की सुविधा भी बढ़ा दें।

19.5.3 तिलहन

हमारे देश की पारम्परिक तिलहन फ़सलें हैं : मूंगफली, तिल, राई, रेंडी, सरसों, अलसी और कुसुंभ। इस सूची में नई फ़सलें सोयाबीन, सूरजमुखी तथा तेल वाले ताड़ को भी जुड़ना चाहिए। जो वनस्पति तेल हम प्रयुक्त करते हैं, वे न केवल पारम्परिक तेलबीज वाली फ़सलों से निकाले जाते हैं अपितु कपास के बीजों, चावल के चोकर, मकई तथा अनेक अन्य तेल युक्त जड़ी बूटियों, झाड़ियों और वृक्षों से भी प्राप्त होते हैं।

यद्यपि 1963-64 में हमारी विदेशी मुद्रा की आय में तिलहन की 7 प्रतिशत की भागीदारी थी, तथापि हमारा तिलहन उत्पादन सही अर्थों में उच्चस्तरीय नहीं रहा। तिलहन की हमारी प्रति व्यक्ति उपलब्धि 1955-56 में 2.5 किलो से 1984-85 में 5.5 किलो तक बढ़ी। इसी समय वनस्पति तेलों का उत्पादन भी प्रति व्यक्ति 0.7 किलो से 1.2 किलो तक बढ़ा। परन्तु तब भी एक दिन में एक व्यक्ति को तेलों और वसा की प्राप्ति केवल 15 ग्राम के करीब है, जो प्रस्तावित 30 ग्राम के स्तर से आधी है। यद्यपि संतुलित भोजन के लिए वसा एक अनिवार्य पदार्थ है, तथापि पारम्परिक रूप से हमारे खाद्य में इसने कम महत्व का ही स्थान प्राप्त किया है। इस बिगड़ी हुई पद्धति में तुरन्त सुधार होना चाहिए, क्योंकि भारत में कुपोषण प्रबल है।

सदियों से, तिलहन फ़सलों की खेती सीमांत और उपसीमांत भूमि में की जाती है जिसमें पोषण और जल आपूर्ति दोनों की कमी होती है। परिणामस्वरूप, हमारी अधिकतर तिलहन किस्में वे हैं, जो प्रतिकूल स्थितियों में भी बची रहती हैं, पर उत्पादन बहुत कम होता है। अब, उच्च उत्पादक फ़सलों को दे सकने वाली किस्मों के विकास द्वारा और उपज के बेहतर संसाधनों द्वारा स्थिति में सुधार लाया जा रहा है।

मूंगफली हमारी सर्वाधिक महत्वपूर्ण तिलहन फ़सल है। हमारा प्राथमिक लक्ष्य प्रति हैक्टेयर करीब 4 टन फली उत्पादित करना होना चाहिए, जिससे करीब एक टन तेल की प्राप्ति होगी। मूंगफली में और साथ-साथ सरसों, तोरिया, रेंडी और कुसुंभ में हमारे पास ऐसी किस्में हैं जो इस लक्ष्य से भी अधिक आगे जा सकती हैं।

स्वस्थ बीजों से भरपूर फलियों का प्रयोग, प्रति हैक्टेयर अनुकूलतम पौधों की पैदावार, वक्त पर बुवाई, फ़सल विकास की महत्वपूर्ण स्थिति में कम से कम एक बार सिंचाई तथा फ़सलों की आवश्यकता के अनुरूप उर्वरकों का प्रयोग हमें उच्चतम प्राप्तव्य फ़सलों के 80 प्रतिशत से भी अधिक दे पाएगा। अन्य सहायक तत्व हैं : सामयिक अपतृण नियंत्रण, पौधों के संरक्षण साधनों का आवश्यकतानुरूप प्रयोग और फ़सल कटने के पश्चात् होने वाले नुकसानों की रोक-थाम। बीजों से तेल निकालने की अकुशल ग्रामस्तरीय रीतियों को भी आधुनिक बनाने की काफ़ी गुंजाइश है। यही नहीं, हमारा कौशल उन्हें अन्य फ़सलों के साथ परिवर्तन-क्रम में उपजाने का भी होना चाहिए। अच्छी मिट्टी और सुनिश्चित वर्षा वाले क्षेत्रों में ऐसा किया जा सकता है और कम मात्रा में होने वाली वर्षा के क्षेत्रों में अच्छी व्यवस्था द्वारा उनकी फ़सलों को स्थिरता प्रदान की जा सकती है।

19.5.4 शर्करा फ़सलें

उत्कृष्ट कोटि के गन्ना-उत्पादन में भारत की सुनिश्चित परम्परा है। 25 से अधिक देशों में, भारत में उत्पन्न गन्ने की किस्में पैदा की जाती हैं, जिनमें विश्व-स्तर पर लोकप्रिय एन.सी.ओ. 310 किस्म भी सम्मिलित है। हमारे देश के मौसम में विभिन्नता के कारण गन्ने की फ़सलों और उनके उत्पादन में भी अधिक विभिन्नता प्रगट होती है। जिन क्षेत्रों में उत्पादन क्षमता ऊँची है, वहीं हमारा प्रयत्न अधिक गन्ना उपजाने का होना चाहिए। हमारे पास वसन्त और सर्दियों में बोई जाने वाली अनेक अच्छी किस्में हैं। अगर इन किस्मों को ठीक तरीके व तकनीक से बोया जाये तो हम इतना गन्ना उत्पन्न कर सकते हैं कि सारे साल गन्ना मिल को व्यस्त रख सकें।

वास्तव में आवश्यकता लाभकर मूल्य पर, उनकी फ़सल के निश्चित रूप से बिक जाने की आश्वस्ति की है। यह आश्वस्ति गन्ना मिलों तथा सहकारी संस्थाओं द्वारा मिलनी चाहिए। उन्हें उर्वरकों और फसल रक्षण साधन इत्यादि के रूप में इन कृषकों को सामयिक निवेश भी देते रहना चाहिए। 1960 के दशक में भारत में एक अन्य शर्करा-उपजाऊ फ़सल चुकन्दर का उत्पादन प्रारम्भ हुआ। सोडियम की बहुत भारी मात्रा से युक्त मिट्टी, जहाँ और कोई फ़सल लाभप्रद रूप में नहीं उगाई जा सकती, इनको उगाने का श्रेष्ठ क्षेत्र है। चुकन्दर ऐसी मिट्टी के अतिशय सोडियम को दूर कर देता है और ऐसी मिट्टी की संरचना को सुधारता है।

हमारी उत्तरोत्तर बढ़ती जनसंख्या के बावजूद हमारी प्रति व्यक्ति गन्ना उपलब्धि 1960-61 में 4.7 किलो से बढ़कर 1984-85 में 10.7 किलो हो गई।

19.5.5 रेशेदार फ़सलें

रेशेदार फ़सलों की सूची में, कपास सर्वोपरि है। वस्तुतः भारत प्रथम देश है, जिसने संकर कपास का विकास किया है। आज हमारे पास न केवल दीर्घ रेशावर्ग (देखिए चित्र 19.6) अपितु मध्यम और लघु रेशा श्रेणियों में भी अलग-अलग किस्में हैं, जिनकी ग्रामीण भारत में भारी मांग है। हमारी शोध उपलब्धियों के बावजूद, सूती कपड़े की उपलब्धि 1960-61 में 13.8 मीटर प्रति व्यक्ति से घटकर 1984-85 में 10.6 मीटर रह गई है। समान काल के दौरान संश्लेषित कपड़ों में 1.2 मीटर प्रति व्यक्ति से 3.9 मीटर प्रति व्यक्ति बढ़ोत्तरी ने भी इस अवसान को बन्द नहीं किया। यह देखकर बहुत कष्ट होता है कि आज एक औसत भारतीय ढाई दशक पूर्व के भारतीय से कम कपड़ा उपलब्ध है, यद्यपि आज कपास उपज का हमारा क्षेत्र और हमारी कपड़ा मिलें विश्व में सबसे ज्यादा है। चूंकि हम उपज के अन्तर्गत अधिक भूमि नहीं ला सकते, अन्य फ़सलों के परिवर्तन क्रम में उगती कपास को पर्याप्त कीटाणु-नियंत्रण तथा फ़सल व्यवस्था के माध्यम से विशिष्ट स्थान प्राप्त होना चाहिए।

चित्र 19.6 : संकर एल.आर.ए. 5166 कपास

भारी वर्षा क्षेत्रों में जूट का उत्पादन होता है। 1980-81 में भारत ने 399.1 करोड़ रुपए मूल्य की जूट-निर्मित वस्तुओं का 558000 टन निर्यात किया। पुलिना बनाने, संग्रह और यातायात साधनों के विश्वव्यापी परिवर्तनों के कारण, 1984-85 में निर्यात घटकर 160,000 टन ही रह गया। फिर भी देश के भीतर जूट-उत्पादनों की अच्छी मांग है। अतः हमारे वैज्ञानिकों ने जूट की उन किस्मों का विकास किया है जो चावल, गेहूँ, आलू और मूंग के साथ परिवर्तन-क्रम में उपजायी जा सकती हैं।

19.5.6 रोपण फ़सलें

चाय, कॉफी, कोको, रबड़, नारियल, अखरोट, काजू, इलायची, काली मिर्च तथा अन्य सम्बद्ध मसाले बगीचे के स्तर पर लगाए जाते हैं तथा उनके उत्पादन की देश में तथा देश के बाहर अच्छी मांग है। हमारे वैज्ञानिकों ने बहु-पंक्तिबद्ध उपज (देखिए चित्र 19.7) के लिए तकनीकों का विकास किया है, जिससे ऐसे बागों और उद्यानों में उपलब्ध स्थान का अधिक लाभ उठाया

जा सके। उदाहरण के लिए काली मिर्च को नारियल और अखरोट वृक्षों के तनों के साथ उगाया जा सकता है और वृक्षों के अंतरालों के मध्य अनानास, चाराफली तथा घासें उगाई जा सकती हैं। इस प्रकार की बहु पंक्तिबद्ध उपज से प्रति इकाई क्षेत्र का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

चित्र 19.7 : बहु-पंक्तिबद्ध उपज, लम्बे नारियल वृक्ष सबसे पीछे हैं, बीच के स्तर में कोको के पेड़ हैं। फिर तीसरे स्तर में अनानास के पेड़ हैं।

19.5.7 आलू तथा अन्य कन्द फ़सलें

आलू कन्द बीजों से उपजता है, जिसे स्वस्थ फसल उगाने के लिए कीटाणु रहित रखना चाहिए। अभी तक, स्वस्थ कन्दमूल केवल उन पहाड़ी इलाकों में उगाए जा रहे थे, जो विषाणु रोग फैलाने वाले एफिड (Aphid) कीटों से विमुक्त थे। विस्तृत समयबद्ध अध्ययन द्वारा हमारे वैज्ञानिकों ने वर्ष के ऐसे अलग-अलग समयों की पहचान की है, जब हमारे देश के विभिन्न भाग, संक्रामक बीमारी फैलाने वाले एफिड से मुक्त होते हैं। अनुकूल किस्मों के विकास से, अब सभी कन्द मूल उपजाने वाले क्षेत्र एफिड से मुक्त समय में स्वस्थ कन्द बीज उपजा सकते हैं।

आलू की फ़सल कन्द बीजों के कटे टुकड़ों से परम्परागत रीति से उगाई जाती है जो महँगा तरीका है और आलू की उपज को महँगा बनाने का कारण भी है। हाल में, वैज्ञानिकों ने आलू बीजों को उगाने के लिए प्रायः वैसी ही तकनीक का विकास किया है, जिस विधि से टमाटर या बैंगन उपजाए जाते हैं। सुधार होने पर, यह तकनीक पोषकों से भरपूर इस फ़सल के उपज-मूल्य को काफ़ी घटा सकेगी।

क़सावा (मूल), शकरकन्द, डाइआस्कोरिया (Dioscorea) तथा अन्य विविध प्रकार के रतालू कमज़ोर वर्ग के लोगों में विशेष रूप से महत्वपूर्ण भोजन-स्रोत हैं। यद्यपि हमारे विकास कार्यक्रमों की सफलता के पश्चात् कुछ उपभोक्ता अनाजों की ओर मुड़ सकते हैं, तथापि कन्द फ़सलें हमारे कृषि-अर्थशास्त्र के लिए महत्वपूर्ण बनी रहेंगी, क्योंकि वे भोजन के रूप में कैलोरी प्राप्त करने का एक सस्ता साधन हैं और ऐसी भूमि पर भी उगाई जा सकती हैं, जहां अन्य फ़सलें न उग सकें।

19.5.8 फल और सब्ज़ियाँ

0.2 करोड़ हैक्टेयर भूमि से हम 1.5 करोड़ टन फल और 0.1 करोड़ हैक्टेयर भूमि से 0.9 करोड़ टन सब्ज़ियाँ वर्ष भर में उत्पन्न करते हैं। हमारा प्रत्येक दिन का प्रति व्यक्ति उपभोग केवल 60 ग्राम फल और 75 ग्राम सब्ज़ियाँ हैं, जो क्रमशः न्यूनतम प्रस्तावित 85 ग्राम और 200 ग्राम से बहुत कम है।

फिर भी, अन्न में आत्म-निर्भरता के प्राथमिक दौर के उपरान्त शोधकार्य को उद्यानकृषि के क्षेत्र में बढ़ाया गया और पिछले दो दशक उच्चकोटि की उपजाऊ फ़सलों तथा बेहतर गुण युक्त उत्पाद के महत्वपूर्ण विकास के साक्षी हैं। हाल ही में भोजन संसाधन के लिए एक तकनीकी संस्थान बनाया गया है तथा एक मंत्रालय की स्थापना की गई है, जो सुदूरगामी यातायात की उत्कृष्ट उपलब्ध तकनीक, पुलिन्दे बनाने, फलों, सब्जियों तथा अल्प चर्बी और भारी प्रोटीनयुक्त मशरूम (कुकुरमुत्ता) के संसाधन और डिब्बाबन्दी का कार्य करेंगे। इससे रोज़मर्रा के भोजन के इन महत्वपूर्ण अंशों को गृहिणियों को सहज सुलभ कराया जा सकेगा।

फल और सब्ज़ियाँ मौसमी उत्पादन हैं। बहुतायत में उत्पादित किए जाने पर वे बाज़ार में भरमार कर देते हैं, जिससे दाम कम हो जाते हैं। कभी-कभी ये खराब या सूख जाते हैं। डिब्बाबन्दी और रस निकालना ऐसे तरीके हैं जिनसे किसान को उचित लाभ मिल सकता है और खरीदार की जरूरतें पूरी हो सकती हैं।

19.5.9 कृषि-वानिकी

जंगलों की सफाई के परिणामस्वरूप जिससे भूमि को अन्य उपयोग में लाया जा सके या पेड़ों को काट कर लकड़ियों को मकान बनाने के लिए या अन्य उपभोग जैसे बक्से बनाने आदि से धरती पर जंगलों का आवरण तीव्र गति से कम हो गया। वर्तमान समय में, प्रस्तावित 33 प्रतिशत न्यूनतम भौगोलिक क्षेत्र के स्थान पर वन केवल 22 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र ही घेरते हैं। कुंजवन और ईंधन वृक्ष इतनी तीव्रता से मिट रहे हैं कि आश्चर्य होता है क्या कभी शीघ्र ही ऐसा दिन आएगा, जब खाने के लिए पर्याप्त भोजन होगा, पर पकाने के लिए पर्याप्त ईंधन न होगा। 1960 से 1984 में ईंधन के मूल्य 65 प्रतिशत तक चढ़ गए। इस स्थिति ने वैज्ञानिकों को सचेत किया है कि वे ऐसे वृक्ष लगाने की संभावनाओं पर विचार करें जो लकड़ी और अनाज साथ-साथ दे सकें। पर सभी वृक्ष और फ़सलें एक-दूसरे की अधिकतम उत्पादन क्षमता पर बुरा प्रभाव डाल सकते हैं। फिर भी, वृक्ष हरियाली के अभाव को अंशतः भी पूर्ण करने के लिए उत्पादन का कुछ बलिदान भी अपरिहार्य समझा जा रहा है।

गंगावर्ती मैदानों में, गेहूँ या तोरिया रबी में, तथा तिल या बाजरा फ़सलें खरीफ़ में, सुबाबुल *(Leucana latisiliqua)* वृक्षों के बीच के स्थान में उगाई जा सकती है। उष्णकटिबंधी क्षेत्रों में पहले दो वर्षों में कैसुएरिना *(Casuarina)* फ़सलों के अनुकूल हैं। इसके पश्चात् छिछली जड़ों वाले चारा कुट्टी तथा लोबिया बेहतर चलते हैं। नम और उपनम क्षेत्रों में बबूल *(Acacia auriculifomis)* के साथ मकई का उपज मेल और चारे के लिए स्टाइलोसेन्थस स्टाइलॉस *(Stylosanthes stylus)* का यूकेलिप्टस के साथ उपज मेल उचित रहता है।

किसी-न-किसी कारण से अप्रयुक्त 6.09 करोड़ हैक्टेयर भूमि पर वृक्ष उगाने की हमें बहुत सुविधा है। गाँवों के साथ जाती सड़कों के अधिकतर किनारों पर भी ईंधन की लकड़ी के लिये वृक्ष उगाए जा सकते हैं।

आपने अभी पढ़ा कि हमारी फ़सलों में सुधार लाने से बेहतर और स्वस्थ पौधे विकसित हुए हैं जिनकी उपज अच्छी है। यहाँ हम बता देना चाहेंगे कि केवल परिष्कृत बीजों के प्रयोग द्वारा ही अच्छी फ़सल नहीं मिल जाती। फसल व्यवस्था, उर्वरक-प्रयोग तथा कीटाणुनाशकों का प्रयोग भी उतना ही महत्वपूर्ण है। आइये, अगले भाग में इन तत्वों का विवेचन करें। पर इससे पहले बोध प्रश्न 2 हल करें।

बोध प्रश्न 2

नीचे दिये गये शब्दों में से सही शब्द चुन कर भरिये।

i) ..... और ..... की विविधता ही हमारे देश में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार की जातियों के पौधों के लिये जिम्मेदार है।

ii) सारे संसार के मुर्गी पालन के उद्भव का इतिहास लाल जंगली मुर्गे में ढूंढा जा सकता है जो ..... में पाया जाता है।

iii) ..... हमारी मुख्य खरीफ़ फ़सल है, जबकि ..... मुख्य रबी की फ़सल है।

iv) पौधों के विकासात्मक इतिहास का अध्ययन करने के पश्चात्, तथा आंकड़ों के विश्लेषण का प्रयोग करते हुए कृषि वैज्ञानिक ..... अर्थात् आदर्श ढाँचा और वांछित शरीर क्रियात्मक तथा जैवरासायनी गुणों से युक्त पौधे निर्मित करते हैं।

v) दालों के उगाने में कृषि व्यवस्था ..... से ज्यादा महत्वपूर्ण है।

vi) पिछले कई सालों से तिलहन उन क्षेत्रों में उगाए जाते हैं जो ..... और ..... में कम होते हैं इससे पौधे कठोर और ..... फली वाले होते हैं।

vii) ..... एक महत्वपूर्ण शक्कर उत्पादन फसल है और जिसे लाभकारी रूप से उस भूमि पर उगाया जा सकता है जिसमें सोडियम अधिक होता है।

viii) प्रथम संकर कपास का उत्पादन करने का श्रेय ..... कृषि वैज्ञानिकों को जाता है।

ix) रोपण फ़सल के उपयुक्त मिश्रण को लाभकारी तरीके से ..... पंक्तिबद्ध उपज के रूप में प्राप्त कर सकते हैं।

x) आलू के उत्पादन में सबसे ज्यादा पैसा स्वस्थ आलू ..... को बनाने में लगता है।

xi) ....., ..., ..., आदि कुछ तरीके हैं, जो उन किसानों को लाभ पहुँचा सकते हैं जो फलों का उत्पादन बड़े पैमाने पर करते हैं।

xii) ....., ..., ... और ..... कुछ ईंधन के रूप में काम आने वाले पेड़ हैं जिनका हमारे देश में अत्यधिक उपयोग है।

(सुखाना, सुबाबुल, कन्द-बीज, डिब्बाबन्दी, भारतीय, चुकन्दर, बहु, कैसुएरिना, रस निकालना, स्टाइलॉस, गेहूँ, बीज की किस्में, भारत, आदर्श किस्में, मृदा, पोषकों, युकेलिप्टस, जल-आपूर्ति, चावल, जलवायु, कम)

19.6 कृषि-तकनीकें

19.6.1 फ़सलों की व्यवस्था

चूंकि हम अपने उपजाऊ क्षेत्र को नहीं फैला सकते, अतः बढ़ती हुई खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने की एकमात्र विधि यह है कि उसी भूमि के टुकड़े पर, वर्ष में दो या अधिक फ़सल उगाई जाएँ। ऐसे श्रम-सघन, बहुउपज व्यवहार से न केवल ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक नौकरियाँ बढ़ेंगी अपितु हमारी खाद्य अपेक्षाएँ भी पूरी हो सकेंगी। रिले-फ़सल (relay-cropping) व्यवस्था में, पिछली फ़सल कटने से पूर्व अगली फ़सल बो दी जाती है। एक फ़सल को दी गई अंतिम सिंचाई-सुविधा अगली फ़सल के लिए भी पूर्वसिंचन का काम करती है। इससे जल का बचाव होता है। मिश्रित उपज में चना और सरसों जैसी अनुकूल उपज गेहूँ के साथ मिश्रित की जा सकती हैं। अरहर, मूंग, मूंगफली, सोयाबीन तथा लोबिया, ज्वार, मकई, गन्ना तथा कपास की पंक्तियों के मध्य रोपे जा सकते हैं। वैज्ञानिक प्रस्तावनाओं के अनुरूप, ऐसी अन्तर्फ़सलीय व्यवस्था से उच्च उत्पादन तो होता ही है तथा अधिक व्यवसाय सुविधाएँ भी उत्पन्न होती हैं।

19.6.2 उर्वरकों का निवेश

नाइट्रोजन, फ़ास्फ़ोरस तथा पोटेशियम वे मुख्य पोषक हैं, जिनकी पौधों को आवश्यकता पड़ती है। इसके अतिरिक्त स्वस्थ विकास के लिए पौधों को कम मात्रा में, ज़िन्क (जस्ता), लोहा, मैंगनीज़, बोरोन, मॉलिब्डेनम तथा कोबाल्ट की भी आवश्यकता पड़ती है। इनमें से किसी भी तत्व का अभाव, अन्य सभी पोषक पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने पर भी उपज को कम करता है। साथ ही, इन पोषकों की अतिशय उपस्थिति भी पौधों के लिए विषाक्त हो सकती है।

अनाज को फ़ास्फ़ोरस और पोटाश से अधिक नाइट्रोजन चाहिए। परन्तु दालें, जिनकी जड़-ग्रन्थिकाएँ बैक्टीरिया को शरण देती हैं और जो वातावरण से सीधे नाइट्रोजन लेते हैं, उन्हें केवल फ़ास्फ़ोरस की ही पर्याप्त मात्रा चाहिए। जैसा पहले कहा जा चुका है, पोषकों की आवश्यकता न केवल फ़सलों में बल्कि, मिट्टी की किस्मों में भी अलग-अलग होती है।

अतः यह आवश्यक है कि मिट्टी का परीक्षण किया जाए और फ़सलों की आवश्यकतानुसार पोषकों की मात्रा को डाला जाए। व्यावसायिक रूप से उपलब्ध उर्वरक मिश्रण, जैसे नाइट्रोजन, फ़ास्फ़ोरस और पोटेशियम उर्वरक मिश्रणों की 120 : 60 : 40 की दर में सामान्यतः प्रयुक्ति प्रायः बहुत व्यर्थ होती है और फ़सल को घटा भी सकती है। उर्वरक प्रयोग का समय तथा गहराई भी महत्वपूर्ण है। शोधकार्य से सिद्ध हुआ है कि जल उपलब्ध होने पर अधिकांश कृषक अपनी फ़सलों का अतिसिंचन कर देते हैं। परिणामतः न केवल पानी (एक मूल्यवान निवेश) व्यर्थ होता है, अपितु फ़सल भी बिगड़ जाती है। अतः अनुकूल फ़सल प्राप्ति के लिए फ़सल किस्मों के साथ ही फ़सल व्यवस्था का भी महत्व है।

19.6.3 फ़सल संरक्षण

खेतों तथा खलिहानों में अनाज को कीड़ों (जिनमें अनेक प्रकार के कीटाणु आ जाते हैं), रोग, घासपात, चूहों तथा पक्षियो द्वारा विशेष हानि पहुँचती है। मनुष्य के अस्तित्व से भी पूर्व से ये विद्यमान थे। उन्हें निरोधक रीतियों के विकास से अथवा प्रभावकारी कीटाणु निवारकों के प्रयोग से पूरी तरह हटाना संभव नहीं, क्योंकि ये कीड़े संघर्षशील हैं और इन्सान द्वारा अपने मिटाने के प्रयत्नों का उन्होंने कड़ा मुकाबला किया है। हमारे लिए सबसे अच्छा तरीका है कीड़ों की एकीकृत व्यवस्था का आश्रय लेना, जो कीड़ों के कारण होने वाले नुकसान को बहुत कम कर देती है। कीड़ों की एकीकृत व्यवस्था तभी प्रभावशाली होगी, जब हम कीटाणुओं की वृद्धि जहाँ अधिक हो, ऐसे इलाकों में निरोधक किस्मों का विकास करें और यह निश्चित करें कि क्रमवार लगी हुई फ़सलों में एक ही जैसे कीड़े तो नहीं लगते, जैविक नियंत्रण का आश्रय लें, दूसरे शब्दों में कीड़ों पर आक्रमण करने वाले प्राकृतिक शत्रुओं को छूट दें। कीटाणुनिवारक औषधियों का आवश्यकतानुरूप प्रयोग तभी करें, जब कीड़ों की संख्या परम सीमा तक पहुँच चुकी हो। सम्पूर्ण गाँव या खण्ड में कीड़ों पर नियंत्रण के लि समवर्गीय सहकारी कदम उठाएँ।

कीड़ों के विरुद्ध युद्ध इतना लम्बा खिंचने वाला और कठिन है कि किसान प्रायः थोड़े-थोड़े अन्तर पर बहुत भारी मात्रा में कीड़ानिवारक औषधियों का प्रयोग कर देते हैं। यह एक खतरनाक प्रक्रिया है। निवारक औषधियों की अतिशय मात्रा हानिकारक अवशेष छोड़ जाती है (इकाई 16 का भाग 16.2 भी देखें), जो प्रत्यक्षतः अथवा उपयोग किये गये कृषि उत्पादों के माध्यम से या पौधों पर जीवित पशुओं के दुग्ध के द्वारा मनुष्य शरीर तक पहुँच जाते हैं। अतः यह आवश्यक है कि रोगनिवारक औषधियाँ, हानिरहित प्रस्तावित मात्रा में ही प्रयुक्त की जाएँ।

बोध प्रश्न 3

कॉलम 1 में दिये गये शब्दों का मिलान कॉलम 2 में दी गई व्याख्या से कीजिये और सही संख्या को कॉलम 1 में दिये गये कोष्ठक में लिखिये।

	कॉलम 1			कॉलम 2
1	रिले फ़सल व्यवस्था	( )	1	पोटाशियम और फ़ास्फ़ोरस से ज्यादा नाइट्रोजन चाहिये।
2	फ़सल सुरक्षा	( )	2	अनुकूल फ़सलों को एक साथ लगाना चाहिये।
3	अनाज	( )	3	नाइट्रोजन, निश्चित मात्रा में फ़ास्फ़ोरस और पोटाशियम तीनों होते हैं।
4	मिश्रित फ़सल	( )	4	कीड़ों की एकीकृत व्यवस्था
5	व्यावसायिक रूप से उपलब्ध उर्वरक मिश्रण	( )	5	फ़सल काटने से पहले दूसरी फ़सल लगा दी जाती है।

अभी तक आपने हमारी फ़सलों से सम्बन्धित कृषि के विभिन्न पक्षों के विषय में पढ़ा। आइए, अब हम वैकल्पिक भोजन स्रोतों के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त करें।

19.7 पशुधन

पशुधन द्वारा हमें दूध, मांस, अण्डे, ऊन, चमड़ा और अन्य-उत्पाद, आदि मिलते हैं। हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में प्रतिवर्ष इनका योगदान प्रायः 2000 करोड़ रुपए है। व्यवहारतः गाँव का प्रत्येक परिवार पालतू पशु रखता है जो ग्रामीणों की आजीविका और आय का मुख्य साधन है। गाय, बैल, भैंसों, सांडों, भेड़ों, बकरियों, सुअर या मुर्गियों की संख्या प्रायः ग्रामीण परिवार के आर्थिक स्तर की सूचक है।

मवेशी हमारे कृषिकर्म और यातायात के लिये शक्ति के मुख्य आधार हैं। हमारे गाँवों के छितरे हुए खेतों के कारण खेत यंत्रीकरण केवल हमारी आवश्यकताओं की सीमाओं को ही छू पाता है। सामयिक कार्यों में जब हम कृषि-कौशल के परिष्कार में असफल रहते हैं तो उसका मूल कारण ऊर्जा की अपर्याप्तता है। हमारे पशुधन द्वारा प्रदत्त कर्षण शक्ति के अभाव में भारतीय कृषि में रुकाव आ जाएगा।

आज भारत के पास करीब 18.5 करोड़ पशु, 6.1 करोड़ भैंसें, 4.5 करोड़ भेड़ें, 9.7 करोड़ बकरियाँ, 0.1 करोड़ घोड़े और टट्टू, 0.1 करोड़ ऊँट, 0.1 करोड़ अन्य मवेशी तथा 15.6 करोड़ कुक्कुट (मुर्गे, बत्तख, बटेर, तीतर, चिड़ियाँ इत्यादि) हैं। 1984-85 में उन्होंने 4.0 करोड़ टन दूध, 1.3 करोड़ अण्डे, 3.9 करोड़ किलो ऊन और 958000 मीट्रिक टन मांस उत्पादित किया।

19.7.1 मवेशी

कूबड़ वाले ज़ेबू मवेशी भारत-मूल के हैं। भारतीय मूल का ब्रह्मबैल भी एक मजबूत रोगनिरोधक पशु है जिसका वज़न तीव्रता से बढ़ता है। पश्चिम में गाय की उन नस्लों, जो मांस के लिये उपयोग में लाये जाते हैं, के प्रजनन के लिए इसकी भारी मांग है। मवेशी में कूबड़ रहित बैलों की जाति, सामान्यतः यूरोप मूल की समझी जाती है। पर हमारे पास प्रमाण हैं कि कूबड़ रहित मवेशी भारत में हड़प्पा युग में भी पालतू पशु के रूप में थे (देखिये चित्र 19.3)।

आज हमारे पास अनेक अच्छी, दुधारू (milch) भारवाही (draught) और दोनों ही उद्देश्य सिद्ध करने वाली नस्लें हैं। गिर, सईवाल, लाल सिन्धी तथा दिओनी हमारी दुधारू नस्लें हैं। भारवाही नस्लों में नागरी, कंकथ, मालवी, हलिकार, अमृत महल, खिलाड़ी, कगयम, पंवार और श्री हैं। प्रमुख द्विउद्देश्यीय नस्लों में से हैं : हरियाणा, दंज, रेवती, ओंगोल और थारपरकर (या कंकरेज)।

इसके अतिरिक्त, संसार की तटीय (जल) भैंसों में से सर्वश्रेष्ठ भारत में हैं। उनमें से कुछ जैसे मुरहि, मेहसना, जफराबदी, सूरती और नीली-रावी को अन्य देशों द्वारा अपनी आवश्यकतानुसार पशु-विकास के लिए आयात किया गया है। दलदली भैंसें, जो दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों में आम हैं, हमारे देश के तटीय और दलदली इलाकों में बहुतायत में पाई जाती हैं। चूंकि उनका दुग्ध प्रदेय कम है, उनका प्रयोग श्रमिक पशुओं के रूप में ऐसे दलदली इलाकों में किया जाता है, जहाँ मवेशी अनुकूल नहीं हैं।

दुग्ध उत्पादन भारतीय अर्थव्यवस्था ग्राम-निर्भर है। सुदूर यातायात और दूध के लिए बाज़ारी सुविधाओं के अभाव में, सदियों पूर्व डेरी पशुओं का चुनाव, मात्र पारिवारिक आवश्यकताओं के लिए दुग्ध उत्पादन सम्बन्धी उनकी योग्यता पर आधारित था।

परिणामस्वरूप, हमारे दुधारू पशुओं में से सर्वश्रेष्ठ भी, यूरोप में अपने सजातियों से चौथाई ही दूध दे पाते हैं, जबकि भारतीय मवेशी अधिक सबल और रोगनिरोधक हैं।

आज देश के पास 5 लाख से कम ही अच्छी डेयरी गायें हैं और करीब 2.5 करोड़ भैंसें हैं जो प्रति प्रसूति के पश्चात् 1,000 से 1,500 लीटर तक औसत दूध देती हैं गायों की होलेस्तेन-फ्रायसिएन, ब्राउन स्विस तथा 'लाल दानि' जैसी उच्च प्रदेयक जातियाँ जो औसतन प्रति दुग्ध स्रवण काल में 5,000 से 6,000 लीटर तक देती थीं और जर्सी गायें जो प्रति दुग्ध स्रवण काल में औसतन 4,000 लीटर देती थीं आयात की गई और संकरण कार्यक्रमों में प्रयुक्त की गईं (दुग्ध स्रवण काल बछड़े के जन्म के पश्चात् दूध स्रवण का काल)। उनके प्रजनक जो औसतन 3,000 लीटर दूध देते हैं, उत्पन्न कर लिए गए हैं। फिर भी, इनमें से कुछ संकरण ग्रामीण कृषकों के लिए उपादेय नहीं हो सकते क्योंकि वे उनके पर्याप्त भोजन तथा स्वास्थ्य की देखभाल की समुचित व्यवस्था नहीं कर सकते।

19.7.2 भेड़ और बकरियाँ

भारत में भेड़ और बकरियों से होने वाली आय ऐसे क्षेत्रों में रहने वाले 1.2 से 1.5 करोड़ लोगों का पालन-पोषण करती है, जहाँ कृषि गतिविधियाँ कम हैं। अपने छोटे थूथन और फटे हुए ऊपरी होठ के कारण भेड़ उन लघु वनस्पतियों के पत्ते टूँग सकती हैं, जो अन्य बड़े पशु नहीं खा पाते। भारत, संसार की भेड़-जनसंख्या में विश्व में छठा बृहत्तम स्थान रखता है। परन्तु आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में पाए जाने वाले भेड़ों के विशाल झुण्ड यहाँ आम नहीं हैं, क्योंकि हमारे यहाँ विस्तृत घास के मैदान और चरागाहों का अभाव है। बहुत पोषक होने पर भी, मेमने का मांस हमारे यहाँ उतना प्रचलित नहीं, जितना कि बकरे का है।

हमारी आम भेड़ जातियाँ हैं : काश्मीरी, गद्दी, छोकल, बकरवाल, मागरा, काली, मरवाड़ी, बेलरी, दक्खनी और नीलगिरी। इनसे छोटी ऊन मिलती है, जो कालीन बनाने के लिए उचित है। परिधान में प्रयुक्त होनेवाली ऊन के उत्पादन के लिए हमारी भेड़ों की नस्ल में सुधार की अपेक्षा थी। इस उद्देश्यपूर्ति के लिए मैरीनो और सफोक नस्लों का आयात किया गया।

बकरी को भारत में, गरीब आदमी की गाय समझा जाता है। यह एक सर्वतोमुखी पशु है, जिसे सीमावर्ती भूमि पर पालना सरल है। सस्ता और सम्पूर्ण दुग्ध उत्पन्न करने के कारण यूरोप में इसे 'वेट नर्स' (परिचारिका या धाय) की उपाधि दी गई है। इसके दूध में 4.5 प्रतिशत वसा होती है जो छोटी गोलिकाओं में सुविभाजित होती है और आसानी से पचाई जा सकती है। बकरी की दुधारू जातियाँ जैसे टागेनबर्ग, सनान, अलपोर और न्यूबियान आदि यहाँ लाई गई है, जिससे हमारी परिस्थितियों के अनुकूल बेहतर नस्ल तैयार हो सके।

हमारे देश में बकरी के मांस और चमड़े की बहुत मांग है। पशमीना और छेमु नस्लों द्वारा कोमल और गर्म रेशे उत्पन्न किए जाते हैं, जो दुशाला या ऐसे ही अन्य परिधान बनाने में प्रयुक्त होते हैं। अंगोरा नस्ल के वस्त्र कीमती रेशों से बनाए जाते है, जिन्हें 'मोहयर' कहा जाता है। बकरियों की अन्य जातियाँ हैं : जमुनपरी, बीटल, बारबरी, काली बंगाली, दक्खिनी और मलाबरी।

बकरियों की एक विशेषता है कि वे सफाई के विषय में तुनकमिज़ाज हैं। उन्हें स्वच्छ और ताज़ा भोजन चाहिए, जिसे उनके थान पर खिलाते रहने पर बार-बार बदलना आवश्यक है।

बकरियों और भेड़ों की परस्पर कोई तुलना नहीं, क्योंकि उनकी भोजन सम्बन्धी आदतें और आवश्यकताएँ पृथक-पृथक हैं। यह भ्रम है कि बकरियाँ वनस्पति को निरावृत्त करती हैं तथा वातावरण की विकृति में सहयोग देती हैं। असली दोषी तो मनुष्य है जो बकरियों को स्वयं चरने के लिए खुला छोड़ देता है और उन्हें जीवित रहने के लिए न्यूनतम भोजन भी प्रदान नहीं करता।

19.7.3 सुअर

भूमि पर सुअर, प्रकृति का प्रोटीन उद्योग है। इसमें अपने भोजन के अधिकांश भाग को उच्च कोटि की प्रोटीन में बदलने की क्षमता है। पशुओं, भेड़ों और बकरियों से अलग, सुअर के पेट में एक ही कोष्ठ होता है। यह तिनके इत्यादि जैसी बेकार वस्तुएँ न खा सकता है और न पचा सकता है, पर यह अन्यतम सेलुलोसी सामग्री, यहाँ तक कि काई भी खा सकता है। भैंस की तरह सुअर की चमड़ी पर भी बहुत कम रोम छिद्र होते हैं, अतः विशेषतः गर्मी में और वैसे भी इसे शरीर को ठंडा रखने के लिए पानी की आवश्यकता होती है।

भारत में, सुअर उन लोगों के द्वारा पाले जाते हैं जो आर्थिक रूप से इतने पिछड़े हुए हैं कि शायद ही इस जानवर पर कोई ध्यान दे पाते हों। इसलिए सुअर कीचड़ में लोटते हैं, सभी तरह की गन्दगी खाते हैं और कई परजीवों को शरण देते हैं। परिणामस्वरूप सुअर को गन्दा और घृणित समझा जाता है, जबकि वास्तव में यह स्वस्थ, उत्पादक और शीघ्र बढ़ने वाला पशु है। हमारे जैसे देश में, जहाँ प्रोटीन कुपोषण ही प्रचलित है, सुअर पालन समाज के कमज़ोर वर्गों के लिए एक वरदान होगा। इसीलिए, देशी सुअरों का उत्पादन सुधारने के लिए सफेद यार्कशायर, लैण्डरेस, टैमवर्थ तथा बर्कशायर जैसी जातियाँ यहाँ लाई गई हैं। पशुओं के स्वास्थ्य की देखभाल हमारे देश की जलवायु, अर्थात् उष्णकटिबन्धी और उपउष्णकटिबन्धी, विभिन्न रोगों की संचालक हैं। ये रोग हैं : पशुप्लेग, पांव और मुंह का रोग, जलांतक, तपेदिक, स्वास्थ्य प्रबन्ध और ठीक दवाई दोनों ही पशुओं को अच्छी और उत्पादक स्थिति में रखने के लिए महत्वपूर्ण है।

आज हम अपने देश में मवेशियों के स्वास्थ्य की देखभाल के लिए आवश्यक अधिकांश औषधियों और उच्च कोटि के इन्जेक्शनों का निर्माण करते हैं।

19.8 मुर्गी-पालन

पिछले दो दशकों के दौरान हमारे मुर्गी-पालन उद्योग ने असाधारण विकास दर्शाया है। आज हमारे मुर्गी-पालन उद्योग के उत्पादनों का मूल्य 900 करोड़ रुपए के करीब है। हमने 1984-85 में 1347.5 करोड़ अंडे और प्रायः 5.1 करोड़ ब्रायलर (broilers) का उत्पादन किया। पिछले दशक के दौरान उत्पादन का विकास 400 प्रतिशत हो गया जो किसी भी कृषि या उद्योग की शाखा की तुलना में अतुलनीय था। हमारे कुछ उत्तम वज़नदार ब्रायलर हैं : बी 77, (B 77) जे.बी.एल. 80, (JBL 80) और आई.बी.बी. 83 (IBB 83) आई.एल.आई. 80 (ILI 80) तथा आई.एल.आई. 82 (ILI 82)।

मुर्गी-पालन उद्योग पोषण के अन्तर्गत हुए काफी शोध कार्य के कारण, हम अच्छे वज़नी एक किलो ब्रायलर या एक दर्जन अण्डों के उत्पादन के लिए दिए गए भोजन को अब 6 किलो की अपेक्षा 2.2 किलो के करीब ही उतार लाने में सफल हो गए हैं। आज हम मुर्गी-पालन के लिए अपेक्षित सभी औषधियों के उत्पादन में भी आत्मनिर्भर हो गए हैं। इनमें से अधिकांश औषधियाँ प्रभाव और शक्ति में उच्चतम स्तर की हैं।

संसार के प्रायः सभी मुर्गों का मूल भारत के जंगली लाल मुर्ग में है (देखिए चित्र 19.4) हमारी प्रसिद्ध एज़ेल नस्ल के अतिरिक्त, हमारे पास कड़कनथ, छोटी टांगों वाले निकोबारी और बड़ी संख्या में विभिन्न हृष्ट-पुष्ट नस्लें हैं, जिन्होंने हमारे देश के विविध पारिस्थितिक क्षेत्रों के लिए स्वयं को अनुकूल बना लिया है। फिर भी, मुर्गी-पालन उद्योग के उज्जवल विकास के लिए इन जातियों में संरक्षण और सुधार की अपेक्षा है।

बत्तखों को मुर्गों से अधिक जल चाहिए, पर यह अनुमान लगाना त्रुटिपूर्ण है कि वे तैरने के लिए पानी चाहती हैं। मुर्गों के विपरीत वे जल में उत्पन्न जीवों को खाकर भी जीवित रह सकती है और इसीलिए दलदली क्षेत्रों में अधिक पाई जाती हैं। वे हमारे कुल मुर्गी-पालन उद्योग के 10 प्रतिशत को निर्मित करती हैं, इसलिए उन्हें जितनी देखभाल अब मिल रही है, उससे अधिक मिलनी चाहिए।

19.9 मछली-पालन उद्योग

समुद्री या ताज़े पानी की मछली, पशु-जन्य-प्रोटीन के उत्कृष्ट साधन हैं। वे तीव्रता से बढ़ती हैं। वे प्लवक, अपतृण तथा अन्य जल में उत्पन्न जीवों को खाकर बढ़ती हैं और उन्हें उच्च जैविक मूल्य के भोजन में परिवर्तित कर देती हैं।

1984 में, हमने प्रायः 0.3 करोड़ टन मछली का उत्पादन किया और इस प्रकार संसार के मछली-उत्पादक देशों में आठवाँ स्थान प्राप्त किया। हमारा उत्पादन अब भी बहुमुखी रूप में 1.2 करोड़ टन तक बढ़ सकती है, क्योंकि हमारे पास लम्बी तट-रेखा है और उससे जुड़ा हुआ पानी का मछली पकड़ने के लिये विशाल क्षेत्र है। हमारा आन्तरिक स्वच्छ जलीय विस्तार 0.16 करोड़ हैक्टेयर है और प्रायः 0.2 करोड़ हैक्टेयर स्थान, खारा जल तथा नदीमुख घेर लेते हैं।

19.9.1 सामुद्रिक मात्स्यकी

विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र से हमारा वर्तमान बझाव (मत्स्य उत्पादन) करीब 0.12 करोड़ टन है। पर भारतीय तट के चारों ओर, विशेषकर उत्तरपूर्व और दक्षिण-पश्चिम क्षेत्रों में बझाव को बढ़ाने की अच्छी आशा है। आधुनिक मछली-पालन उद्योग में अब सुदूर-संवेदन और उपग्रह प्रतिरूपों जैसी परिष्कृत तकनीकों का प्रयोग किया जा रहा है। सीपी, मोती, शुक्ति, झींगी, समुद्री झींगा, समुद्री शैवाल आदि के संवर्धन के लिए सुधरी हुई तकनीकें आविष्कृत की गई हैं।

मशीनीकृत बड़ी नाव और पोत (देखिये चित्र 19.8) जिसमें शीत संग्रहण एवं डिब्बाबन्दी दोनों सुविधायें उपलब्ध हैं, का आजकल उपयोग हो रहा है।

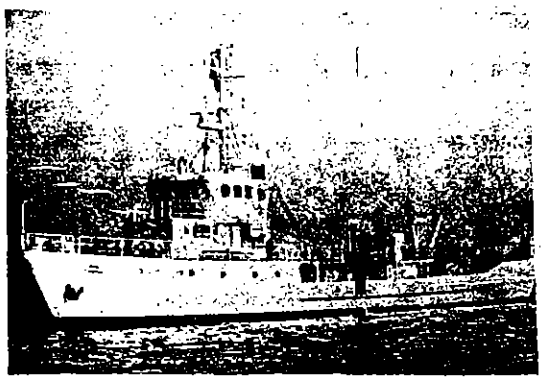

चित्र 19.8 : एम.वी. सरस्वती, आधुनिक पोत जो हमारी मात्स्यकी द्वारा उपयोग में लाया जाता है।

19.9.2 अन्तः स्थलीय मात्स्यकी

अन्तः स्थलीय मछली-पालन 'प्रगृहीत' या 'संवर्धित' इन दो श्रेणियों में रखा गया है। प्रगृहीत मछली-पालन नदी और जलाशय के बझाव की ओर संकेत करता है। दूसरी ओर, संवर्धित मछली-पालन में मछलियों को पहले तालाब, पोखर और दलदल जैसे क्षेत्रों में विकसित किया जाता है और उचित आकार की होने पर उन्हें पकड़ लिया जाता है।

हमारे देश में तालाब संवर्धन पारम्परिक है। तथा प्रतिवर्ष प्रायः 600 किलो प्रति हैक्टेयर उत्पादन होता है। फिर भी यदि तालाबों को ऐसी विभिन्न किस्मों की मछलियों से भरा जाए जो तालाब के निचले, मध्य तथा ऊपरी सतह पर भोजन पाएँ तो मछलियाँ एक-दूसरे से प्रतियोगिता नहीं करेंगी, लेकिन भोजन साधनों का सम्पूर्ण तालाब में उपयोग कर सकेंगी। इस प्रकार के आचरण को मिश्रित मछली वर्धन भी कहा जाता है। एक वर्ष में प्रति हैक्टेयर 11 टन उत्पादन प्राप्त हो सकता है, यद्यपि एक किसान औसतन ऐसे मिश्रित मछली संवर्धन से 5 टन प्राप्त करता है। मछली, प्रान, मेंढकों, बत्तखों तथा उपयोगी पौधों के संघटित संवर्धन से और अधिक लाभ हो सकता है, क्योंकि वे सम्पूर्ण तालाब के वातावरण का पूर्ण उपयोग करेंगी।

वायु श्वसन करनेवाली मछलियों के लिए दलदल तथा परित्यक्त जल अधिक अनुकूल होते हैं, क्योंकि वे प्रतिवर्ष 15 टन प्रति हैक्टेयर की दर से उत्पन्न होती है। उनका उपयोग हमारे मत्स्य उत्पादन को अनुपूरित कर सकता है।

बोध प्रश्न 4

नीचे दिये गये सही शब्दों को चुन कर सही स्थान पर भरिये।

1 अधिकतर हमारे किसान अनेक कृषि तथा शक्ति के आवश्यक कार्यों के लिये अपने ..... पर ही निर्भर करते हैं।

2 हमारे देश में ..... और ..... ज्यादा विकसित नहीं है, इसलिये दुधारू पशु में प्रजनन केवल परिवार की आवश्यकता पूरी करने के लिये किया जाता है।

3 ..... और ..... आदि पशुओं का पालन वहाँ लाभ के लिये किया जा सकता है जहाँ कृषि ठीक प्रकार से नहीं होती।

4 ..... को प्रकृति का प्रोटीन का कारखाना भी कहा जाता है।

5 ..... में पिछले दशक में इतना ज्यादा विकास हुआ है कि कृषि की कोई भी शाखा अथवा उद्योग इसका मुकाबला नहीं कर सकता।

6 आजकल भारत का विश्व में मत्स्य उत्पादन के क्षेत्र में .....स्थान है और इसका उत्पादन ..... और ..... मात्स्यकी दोनों में ही व्यापक स्थान है।

(सामुद्रिक, सुअर, यातायात, पशुधन, बकरियाँ, अंतः स्थलीय, बाज़ार, मुर्गी-पालन, भेड़, आठवाँ)

19.10 सारांश

- हमारा देश कृषि-निर्भर है और कृषि उत्पाद हमारी अर्थव्यवस्था में एक प्रमुख हिस्सेदार है।
- कृषि के लिए, फसलों के अपार वैविध्य और पशुधन तथा कृषकों की श्रम शक्ति के निवेश के अतिरिक्त सूर्य की रोशनी, मिट्टी और जल, मूलभूत साधन हैं। यदि इनमें से कोई भी तत्व कम हो या बाधित हो तो हमारा कृषि-उत्पादन प्रभावित होता है।
- हमारे यहाँ करीब 20,000 पौधों के प्रकार हैं। अनेक पौधे जो उपयोगी पौधों की सूची में प्रमुख स्थान रखते हैं, हमारे देश के अपने नहीं है। इनमें से कई विश्व के विभिन्न भागों द्वारा उनका हमारे देश से परिचय कराया गया था (उगाया गया था)। कई आर्थिक महत्व के पौधें सर्वप्रथम भारत में ही उगाये गये।
- पूर्व समय से अब तक आधुनिक कृषि ने एक लम्बा रास्ता तय किया है। हमारे वैज्ञानिकों द्वारा अनेक नई, ऊँची लाभप्रद तथा बेहतर किस्म की विविध फ़सलों को उत्पन्न किया गया है। एक फ़सल की बढ़िया पैदावार केवल बेहतर और अच्छी उपजवाले बीजों पर ही निर्भर नहीं, अपितु फसल-व्यवस्था, उर्वरक, निश्चित समय पर सिंचाई, पौधों के उचित संरक्षण-साधन जैसे पोष्य तत्वों के निवेश पर भी निर्भर है।
- हमारा पशुधन हमारे वैकल्पिक खाद्य साधन तो हैं ही, ऊन, चमड़ा आदि अन्य अनेक उपयोगी उत्पादनों के स्रोत भी हैं। अब हमने मवेशियों की जाति में बहुत सुधार कर लिया है। कुछ नस्लें दुग्ध उत्पादन के लिए हैं, कुछ श्रम और कुछ दोनों कार्यों, अर्थात् दूध देने और श्रम के लिए भी हैं। सुअर-पालन जैसे क्षेत्रों में अभी भी हमें ध्यान देने की आवश्यकता है।

- हमारा मुर्गी-पालन उद्योग, तेज़ी से बढ़ता हुआ उद्योग है। कृषि अथवा उद्योग की किसी भी अन्य शाखा की तुलना में पिछले दशक में हुई इसकी प्रगति अतुलनीय है। हमारे देश में हुए गवेषणा कार्य ने बेहतर ब्रायलर नस्ल की उत्पत्ति ने हमें समर्थ किया है। साथ ही अब हम कम खिलाकर भी अधिक वजनयुक्त ब्रायलर या अण्डे प्राप्त कर सकते हैं।
- सामुद्रिक और अंतःस्थलीय दोनों ही प्रकार के मछली-पालन में विस्तार का व्यापक स्थान है। उसकी पूर्ण संभावना का निष्कासन अभी शेष है। उत्पादन बढ़ाने के लिए, आधुनिक तकनीकों का प्रयोग बहुत सहायक रहा है। कृषकों को यदि भूमिस्थ मछली-पालन के विभिन्न पक्षों के विषय में जानकारी मिले तो वह न केवल उन्हें हमारे साधनों के उत्कृष्ट उपयोग की ओर प्रेरित करेगी, अपितु इस उद्योग के द्वारा अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त करने में भी सहायक होगी।

19.11 अंत में कुछ प्रश्न

1 कृषि के मूलभूत संसाधनों के बारे में सारांश में लिखिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2 क) दिये गये वर्गों के कम से कम दो पौधों का उदाहरण दीजिये जो हमारे देश में उगाये जाते हैं।

क्र.सं.	वर्ग	उदाहरण
1	अनाज और ज्वार आदि	
2	दालें	
3	तिलहन	
4	शर्करा फ़सलें	
5	रेशेदार फ़सल	
6	कन्द फ़सल	
7	रोपण फ़सल	
8	फल और सब्ज़ियाँ	

ख) अपने लिखे हुये उत्तर में से दो उदाहरणों को चुन कर उनके क्रमशः बिना सुधरी हुई किस्मों और सुधरी हुई किस्मों के बारे में कालम 3 और 4 में लिखिये :

क्र.सं.	पौधे का नाम	बिना सुधरी किस्मों के लक्षण	सुधरी हुई किस्मों के लक्षण
1		1	1
		2	2
		3	3
2		1	1
		2	2
		3	3

3 निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर लिखिये :

क) रिले फ़सल व्यवस्था और मिश्रित फ़सल के मुख्य लक्षण लिखिये।

.....

.....

.....

.....

ख) उर्वरकों का उपयोग किन बातों को ध्यान में रखकर करना चाहिये?

.....

.....

.....

ग) कीट नियंत्रण का अति उत्तम उपाय कौन सा है?

.....

.....

.....

4 क) वैकल्पिक भोजन के संसाधनों की सूची बनाइये।

.....

ख) संक्षिप्त रूप से बताइये कि निम्न भोजन के उत्पादन में क्या प्रगति हुई है?

i) दूध

.....

.....

.....

ii) मछली

.....

.....

.....

iii) ब्रायलर

.....

.....

.....

iv) अण्डे

.....

.....

.....

19.12 उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) 1 लगभग 60% भारतीय जनता एक या दूसरे रूप में कृषि पर निर्भर करती है।
2 हमारा लगभग 53% क्षेत्र कृषि के लिए उपयोग किया जाता है।
3 वास्तविक राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा 34.7% है।

ख) 1 दक्षिण-पश्चिम
2 आधे
3 पोषकों
4 जलोढ़
5 अट्ठाइस

बोध प्रश्न 2

1 मृदा और जलवायु
2 भारत
3 चावल, गेहूँ
4 आदर्श-किस्में
5 बीज की किस्मों
6 पोषकों, जल-आपूर्ति, कम
7 चुकन्दर
8 भारतीय
9 बहु
10 कन्द बीज
11 सुखाना, डिब्बाबंदी, रस निकालना
12 सुबाबुल, कैसुएरिना, स्टाइलॉस, यूकेलिएस

बोध प्रश्न 3

1 [5]
2 [4]
3 [1]
4 [2]
5 [3]

बोध प्रश्न 4

1 पशुधन
2 यातायात, बाज़ार,
3 भेड़, बकरी,
4 सुअर,
5 मुर्गी-पालन,
6 आठवाँ, सामुद्रिक, अंतःस्थलीय

अन्त में कुछ प्रश्न

1 सूर्य का प्रकाश — सारे साल यह काफी मात्रा में उपलब्ध होता है पर मानसून में बादलों के कारण इसकी कमी हो जाती है। पौधे प्रकाश का ज्यादा से ज्यादा उपयोग कर सकते हैं, यदि जल, कार्बन डाइऑक्साइड और पोषक सीमित कारक न बन जाये।

2 मृदा — हमारे देश में विभिन्न प्रकार की मृदा पायी जाती है जिसमें विभिन्न प्रकार की फ़सलें होती हैं। फ़सल बोने से पहले मृदा के पोषक तत्त्वों तथा भौतिक लक्षणों का परीक्षण करना चाहिए।

3 जल — हमारी कृषि मानसून वर्षा पर ज्यादा निर्भर करती है। परन्तु वर्षा सारे देश में एक जैसी नहीं होती। वर्षा ऋतु में काफी पानी भूमि के अन्दर चला जाता है। ऊपरी परत में रहने वाला पानी पौधों द्वारा उपयोग में लाया जाता है। भूमिगत पानी का उपयोग परीक्षण के बाद ही किया जाता है।

2 क

1 चावल, बाजरा,
2 अरहर, चना,
3 मूंगफली, सरसों,
4 गन्ना, चुकन्दर,
5 कपास, जूट
6 आलू, कसावा,
7 चाय, सुपारी,
8 आम, बैंगन,

ख)

क्र.सं.	पौधे का नाम		बिना सुधरी किस्म के लक्षण		सुधरी हुई किस्म के लक्षण
1	चावल	1	लम्बा, कमज़ोर तना	1	छोटा, मज़बूत तना
		2	प्रकाश का ठीक प्रकार उपयोग नहीं कर सकता क्योंकि फ्लैग पत्ती जल्दी सूख जाती है।	2	प्रकाश का अच्छी प्रकार उपयोग कर सकता है, क्योंकि फ्लैग पत्ती काफी समय तक रहती है।
		3	ढीले गुच्छों पर कम दाने	3	सघन गुच्छों पर बहुत अधिक दाने
2	अरहर	1	बिखरा हुआ पौधा, जिस में बहुत अधिक शाखाएँ हैं	1	सघन और कम शाखाओं वाला पौधा
		2	300 दिन में फ़सल तैयार	2	150 दिन में फ़सल तैयार
		3	कम उपज	3	अधिक उपज

3 क) रिले फ़सल व्यवस्था में एक फसल कटने के बदले ही दूसरी फ़सल लगा देते हैं। मिश्रित फ़सल में कई अनुकूल फ़सलें एक साथ लगा देते हैं।

ख) i) उर्वरकों का उपयोग फ़सल की आवश्यकता को ध्यान में रखकर करना चाहिये जैसे अनाजों को ज्यादा मात्रा में नाइट्रोजन चाहिये।

ii) मृदा परीक्षण के बाद उर्वरक का उपयोग करना चाहिये क्योंकि इससे पता चलता है कि कौन सा पोषक कम मात्रा में है।

iii) उर्वरकों की सही मात्रा, फ़सल के विकास के सही समय और जगह पर करना चाहिये।

ग) एकीकृत कीट नियंत्रण, सबसे अच्छा उपाय है क्योंकि इससे अपने वातावरण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। रसायनों के कम प्रयोग से आहार शृंखला में ये इकट्ठा नहीं होने पाते अतः मनुष्य तक नहीं पहुँचते हैं।

4 क) मवेशी, भेड़, बकरी, सुअर, मुर्गी-पालन, मछली

ख) i) आजकल लगभग 5 लाख अच्छी दुधारू गाय और 250 लाख भैंसें प्रति प्रसूति 1000-1500 लीटर दूध देती हैं। ऐसी शंकर किस्में अपने देश में विकसित कर ली गयी हैं जो प्रति प्रसूति 3000 लीटर दूध देती हैं।

ii) विश्व में मात्स्यकी उत्पादन के क्षेत्र में भारत का आठवाँ स्थान है। लेकिन अभी उत्पादन काफी बढ़ाया जा सकता है। आधुनिक तकनीकें और मशीनीकृत नाव काफी सहायता प्रदान करती है। अतः स्थलीय और संवर्धन उत्पादन से मत्स्य उत्पादन काफी बढ़ाया जा सकता है और संसाधनों का बेहतर उपयोग किया जा सकता है।

iii) अत्यधिक शोध से अच्छी किस्म के ब्रायलर विकसित कर लिये गये हैं। अच्छी तरह से उन्हें खिलाया जा सकता है और कम खिला कर ज्यादा भार बढ़ाया जा सकता है।

iv) अण्डों का उत्पादन लगातार बढ़ रहा है और मुर्गी को कम खिलाकर ज्यादा अण्डे प्राप्त कर सकते हैं।

इकाई 20 वैज्ञानिक संभावनाएँ और सामाजिक वास्तविकताएँ

इकाई की रूपरेखा

20.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
20.2 विशेष क्षेत्रों में कृषि
शुष्क प्रदेश
सूखी भूमि
पहाड़ियाँ
20.3 लवणीय एवं क्षारीय मिट्टी का सुधार
20.4 आधुनिक कृषि से जुड़ी हुई समस्याएँ
20.5 मनुष्य की उत्पादन करने की वैज्ञानिक क्षमता और उस उत्पाद का उपभोग करने की सामाजिक अक्षमता के बीच असंतुलन
20.6 कृषि में बायोटेक्नोलॉजी
20.7 सारांश
20.8 अन्त में कुछ प्रश्न
20.9 उत्तर

20.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने भोजन और कृषि के बारे में पढ़ा। उस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ गये होंगे कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के लगातार योगदान के कारण ही कृषि-उत्पादन में उच्च स्तर की बढ़ोतरी हो सकी है। इसलिए हम यह आशा करते हैं कि अब आपको इस विषय की अच्छी जानकारी हो गई होगी। इस इकाई में हम खेती से संबंधित विशिष्ट मुद्दों पर चर्चा करेंगे। हम आपको यह भी बताना चाहेंगे कि, यद्यपि इस क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हुई है, लेकिन हमारे समाज के बहुत बड़े भाग को इसका लाभ अभी भी नहीं मिल पा रहा है। आज भी लाखों लोगों को खाना नसीब नहीं होता है। हमारे लिए यह एक बहुत बड़ी चुनौती है। इसीलिए हमें यह जानना बहुत ज़रूरी हो गया है कि आखिर वह क्या है जिसके कारण हमारी प्रगति से मिलने वाले फ़ायदों को जनता के सभी वर्गों तक पहुँचने में कठिनाइयाँ हो रही हैं। हमें यह भी जानना होगा कि आधुनिक तकनीक को अपनाने के साथ-साथ हमारे सामाजिक दृष्टिकोण में आने वाले परिवर्तन, वर्तमान स्थिति को किस तरह सुधार सकते हैं।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- यह चर्चा कर सकेंगे कि वैज्ञानिक जानकारी के उपयोग से कठिन परिस्थितियों में भी अच्छी खेती करना किस तरह संभव है,
- आधुनिक खेती से संबंधित समस्याओं को पहचान सकेंगे,
- पैदावार बढ़ाने की मनुष्य की क्षमता और उस पैदावार का उपभोग करने की सामाजिक अक्षमता के बीच मेल न होने के कारण को समझ सकेंगे,
- बायोटेक्नोलॉजी का महत्व समझ सकेंगे।

20.2 विशेष क्षेत्रों में कृषि

हमारे देश की जलवायु में काफ़ी विविधता है और यहाँ की मिट्टी की अनेक किस्में है, जिसके फलस्वरूप खेती-बाड़ी में भी विविधता की भरमार है। देश के कभी एक भाग में तो कभी दूसरे भाग में कृषि गतिविधियाँ होते रहने के कारण पूरे साल खेती का काम चलता रहता है। खाने की बढ़ती हुई माँग को देखते हुए जिन प्रदेशों में खेती करना अगर असंभव नहीं तो मुश्किल तो ज़रूर माना जाता था, उनमें भी अब खेती होने लगी है। ऐसे प्रदेशों में सामान्य फ़सलों के लिए जो नमी, सही तापमान आदि

...रक चाहिए वे उपलब्ध नहीं है। इसलिए ऐसे प्रदेशों में वे पौधे उगाए जाते हैं जो इन कठिन परिस्थितियों का सामना कर सकें और इसी कारण इन क्षेत्रों में हृष्ट-पुष्ट (hardy) पशु पाले जाते हैं। इस भाग में हम ऐसे तीन विशेष क्षेत्रों की चर्चा करेंगे।

20.2.1 शुष्क प्रदेश (Arid Zone)

हमारे देश के प्रमुख शुष्क क्षेत्र (arid zone) राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक और लद्दाख तक फैले हैं। इनका क्षेत्रफल लगभग 400,000 वर्ग किलोमीटर है। इनमें लद्दाख का ठंडा रेगिस्तान भी है, जो लगभग 70,000 वर्ग कि.मी. है। शुष्कता और निम्न तापमान के कारण यहाँ खेती साल में लगभग पाँच महीने ही होती है। इसलिए यहाँ ऐसी फ़सलें उगाई जाती हैं जिन्हें पकने में कम समय लगता है और जो भयंकर सर्दी भी बर्दाश्त कर सकती हैं। कुछ किस्म के अनाज, तिलहन और चारा घास ऐसी ही फ़सलें हैं। लद्दाख में पशमीना बकरियों का पालन फ़ायदेमंद हो सकता है, जिनके बालों की माँग शाल और पहनने के वस्त्र बनाने के लिए बहुत अधिक है। हमारे देश में लद्दाख ही एकमात्र ऐसी जगह है, जहाँ दो-कोहान वाले बैक्ट्रियन ऊँट पाए जाते हैं। इस ऊँट का ठंडे रेगिस्तान में थोड़ी दूरी पर स्थित जगहों के बीच, परिवहन के लिये उपयोग किया जाता है और इससे दूध, माँस और ऊन मिलता है। लेकिन इसके संरक्षण की तुरंत आवश्यकता है और इसके प्रजनन (breed) के लिए विशेष प्रयास किए जाने की आवश्यकता है, क्योंकि अब मुश्किल से इस जाति के 56 नमूने ही पाए जाते हैं।

गर्म रेगिस्तान वाले प्रदेशों में, जैसे कि राजस्थान, गुजरात और हरियाणा में बहुत तेज़ धूप के कारण वाष्पन की दर बहुत ऊँची है। लेकिन इन प्रदेशों के काफ़ी क्षेत्रों में भूमिगत जल का पर्याप्त भंडार है, जिसे वैज्ञानिक तरीके से काम में लाया जा सकता है। इन क्षेत्रों में वर्षा का पूर्वानुमान बिल्कुल भी नहीं लगाया जा सकता और वर्षा 100 से लेकर 450 मिलीमीटर तक होती है। फिर भी, इन प्रदेशों में बहुत ही उत्तम नस्ल के मवेशी, भेड़ें और बकरियाँ होती हैं। कई जगहों पर तो मवेशियों की संख्या आदमियों से भी अधिक होती है। इन प्रदेशों में ऐसी घास और वृक्ष होते हैं जो वहाँ की परिस्थितियों के लिए बहुत अनुकूल हैं और यहाँ की ज़मीनों का प्रबंध सुविधापूर्वक किया जा सकता है। जहाँ एक ओर चरने वाले पशुओं की आबादी बढ़ रही है, वहीं दूसरी ओर चराई के काम आने वाले क्षेत्र घटते जा रहे हैं, क्योंकि ऐसे क्षेत्रों के ज्यादा से ज्यादा भागों में फ़सलें उगाई जा रही हैं। इस स्थिति को अब बदलना होगा, यानी उन जगहों को चरागाह में बदलना होगा जहाँ खेती होती है नहीं तो पारिस्थितिकीय संतुलन (ecological balance) बिगड़ जाएगा। आइए, अब हम यह देखें कि किस तरह हम इन क्षेत्रों में ऐसे पेड़ लगाये जो काम में ला सकते हैं, जो हमारे लिए उपयोगी हैं और कौन से पौधे इन जगहों के लिए सबसे ज्यादा उपयुक्त हैं। शुष्क क्षेत्र में बेर और अनार जैसे फल वाले वृक्ष और **अकेशिया** (कीकर), **प्रोसोपिस** (मॉस्कुइट) और **यूकेलिप्टस** (सफ़ेदा) जैसे ईंधन देने वाले पेड़ लगाने की बहुत गुंजाइश है। ऐसे क्षेत्रों में भूतल को बचाने वाले पेड़ों (रक्षक मेखला) को बड़ी संख्या में लगाकर हवा से होने वाले मृदा अपरदन को कम किया जा सकता है। इससे चारागाहों की स्थापना में मदद मिलेगी। बाद में ऐसी ज़मीन को बाजरा और मूँग की दाल उगाने के काम में लाया जा सकता है।

अब हम इस क्षेत्र के दूसरे प्राकृतिक संसाधनों की चर्चा करेंगे। रेगिस्तानी इलाकों में सूर्य का प्रकाश प्रचुर मात्रा में मिलता है और इसे खाना पकाने, कमरों या वस्तुओं को गर्म करने तथा रोशनी करने के काम में लाया जा सकता है। ऐसा करके ईंधन देने वाले पेड़ उगाने की मज़बूरी को काफ़ी हद तक कम किया जा सकता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, इस क्षेत्र में मिलने वाले मवेशियों की संख्या बहुत है। इन मवेशियों के गोबर को ज्यादातर ईंधन के रूप में जलाया जाता है, लेकिन इसे मिट्टी में मिलाना इसका अधिक अच्छा उपयोग होगा ताकि मिट्टी की उपजाऊ शक्ति बढ़ सके। इसलिए हमें गोबर जैसे संसाधन का परम्परागत उपयोग करना बन्द कर देना चाहिए। इससे शुष्क ज़मीनों और वहाँ रहने वाले लोगों को फ़ायदा होगा और इस तरह देश को भी फ़ायदा होगा। रेगिस्तानी प्रदेशों में सौर ऊर्जा को दूसरे तरीके से भी काम में लाया जा सकता है। यहाँ पानी आम तौर पर खारा होता है। सौर भभकों (solar stills) की सहायता से इस खारे पानी को पीने योग्य बनाया जा सकता है, जो इस क्षेत्र के लोगों के लिए वरदान साबित होगा।

शुष्क क्षेत्रों में जब वर्षा अच्छी होती है, जैसा कि हमने वर्ष 1988 में देखा, तब ज़मीन में ऐसी घास, झाड़ियाँ और वृक्ष लगाने के संगठित प्रयास किए जाने चाहिए जो उस समय जल्दी लग जाएँ, जबकि मिट्टी नम हो। हमारे पास अकाल के ऐसे कोड या आँकड़े हैं (famine code) जिनसे हमें यह पता चलता है कि वर्षा न होने पर लोगों और पशुधन के कष्टों को किस प्रकार कम किया जा सकता है। अब इस समय यह आवश्यक है कि हम एक उचित मौसम कोड (weather code) बनाएँ ताकि लोग यह जान सकें कि अच्छी बारिश होने पर उन्हें क्या बोना चाहिए।

20.2.2 सूखी भूमि

सूखी भूमि हमारे लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि हमारे भोजन का लगभग 42 प्रतिशत भाग इनसे मिलता है। इन ज़मीनों से हमें न केवल ज्वार, बाजरा और दालें, बल्कि कपास और मूँगफली भी मिलती हैं, जिन पर हमारे उद्योगों का एक बहुत बड़ा हिस्सा निर्भर है।

हमारी खेती की ज़मीनों का लगभग 74 प्रतिशत हिस्सा सूखी भूमि का है। ये ज़मीनें पूरी तरह वर्षा के अधीन हैं। इन ज़मीनों पर फ़सलों का लहलहाना पूरी तरह मानसून पर निर्भर है। बरसात बहुत जल्दी या बहुत देर से शुरू हो सकती है, या फिर बरसात शुरू तो समय पर हो लेकिन जल्दी ख़त्म हो जाए। यह भी हो सकता है कि बारिश की बौछारों के बीच का अंतराल काफ़ी लम्बा हो। जब वाष्पन और मिट्टी में पानी का रिसाव वर्षा से अधिक हो तो इन ज़मीनों पर सूखा पड़ जाता है। पीने के पानी की कमी हो जाती है और फ़सलों की पैदावार नहीं होती, जिनके कारण बेरोज़गारी बढ़ जाती है तथा दूसरे कई कष्ट भी उठाने पड़ते हैं।

जल संरक्षण (water conservation) की अच्छी तकनीकें उपलब्ध होने, और ऐसी फ़सलें सुलभ होने के कारण, जो थोड़े से पानी से ही जल्दी उगती हैं, सूखी भूमि से फ़सलों की उपज स्थायी रूप से प्राप्त की जा सकती है।

सूखी भूमि में पानी एक सीमित साधन है, इसलिए बह जाने वाले पानी को जितना सम्भव हो सके, सामुदायिक तालाबों में इकट्ठा कर लेना चाहिए ताकि फ़सलों की सिंचाई की जा सके। लाल मिट्टी वाली सूखी ज़मीनों में गहरी जुताई से जल संरक्षण में सहायता मिलती है। काली मिट्टी वाली ज़मीनों में सतही जल-निकास और अच्छे जल-प्रबंध के द्वारा एक समय में दो फ़सलें बोना सम्भव है। वृक्ष में पत्तियों और फ़सलों के अवशेषों (residues) को मिलाने से मृदा की बनावट में सुधार आ जाता है और इसकी जल धारण क्षमता बढ़ जाती है। अगर अरहर और अरंड जैसी फ़सलें, जिनकी जड़ें गहरी होती हैं, इन प्रदेशों में बोई जाएँ तो मिट्टी की भौतिक दशा और भी सुधर जाती है क्योंकि इन फ़सलों की जड़ें मिट्टी में कार्बनिक या जैव पदार्थ (organic matter) मिलाती हैं।

ज्वार, बाजरा, सूरजमुखी, कुसुंभ (safflower), सरसों, मूँगफली, विभिन्न दालों और कपास की ऐसी किस्में, जो कम समय में ही उग जाती हैं, और पानी की कमी को सह लेती हैं, उपलब्ध होने के कारण अब सूखी भूमि पर विविध प्रकार की खेती करना सम्भव हो गया है। फ़सलों की अनेक किस्मों और फ़सल चक्र (cropping pattern) के कारण किसान के लिए अलग-अलग जलवायु और मृदा की किस्मों के हिसाब से उचित फ़सल का चुनाव करना आसान हो गया है।

20.2.3 पहाड़ियाँ

हमारे देश के पहाड़ी प्रदेशों में जनजातियाँ खेती करने के एक पुराने तरीके को अभी भी बनाए हुए हैं, जिसे झूम खेती या काटो और जलाओ (slash and burn) या पोडु खेती कहते हैं। इस पद्धति के अनुसार पहाड़ियों पर ज़मीन के एक भाग की वनस्पति का सफाया कर दिया जाता है, और पेड़ों को जला दिया जाता है। यह राख मिट्टी में मिल जाती है, जो बाजरे की फ़सल के लिए अच्छी साबित होती है। इससे पैदावार बढ़ जाती है, जिससे जनजातीय किसानों की तात्कालिक आवश्यकता पूरी होती है। फ़सल की कटाई के बाद इन जनजातियों के लोग उस ज़मीन को छोड़ देते हैं और पास वाले क्षेत्रों में चले जाते हैं, जहाँ फिर वही प्रक्रिया दोहराई जाती है। जिस ज़मीन पर एक बार झूम खेती कर ली जाती है लगभग पाँच साल में उसकी उपजाऊ शक्ति सामान्य हो जाती है और वहाँ फिर से झाड़ियाँ उग आती हैं। जनजातियाँ उस स्थान पर लौट कर फिर से उसी पुराने तरीके से खेती करती हैं। वैसे तो यह विधि बहुत आकर्षक लगती है पर वास्तव में ऐसा है नहीं। यह पद्धति उन दिनों में तो उपयोगी सिद्ध होती थी, जब आबादी कम थी और झाड़ियों के जंगलों की भरमार थी। आज हालात ये हैं कि जनजातियों के पास इतनी ज़मीन नहीं है कि वे स्थान परिवर्तन करते रहें। इसका यह परिणाम निकलता है कि वे ज़मीन के उसी टुकड़े पर बार-बार जुताई-बुआई करते हैं। ज़मीन में खाद न के बराबर दी जाती है और मिट्टी को इतना समय नहीं मिल पाता कि उसके पोषक तत्वों की हानि की प्राकृतिक रूप से पूर्ति हो सके। इसका नतीजा यह होता है कि हर साल उपज घटती जाती है। मृदा अपरदन से यह समस्या और भी बढ़ जाती है।

आप शायद आश्चर्य कर रहे होंगे कि हमारे पहाड़ी प्रदेशों की इन कृषि समस्याओं का कोई हल है या नहीं। हाँ, इन समस्याओं का हल है। मिट्टी की ढलान और गहराई, तथा जल की उपलब्धता के अध्ययन के आधार पर वैज्ञानिकों ने खेती की एक दिलचस्प पद्धति (देखिये चित्र 20.1) निकाली है, जिसमें लागत कम आती है और जमीन की उत्पादन क्षमता काफ़ी बढ़ जाती है तथा पारिस्थितिक तंत्र में संतुलन कायम रहता है।

चित्र 20.1: मेघालय में ज़मीन का आदर्श उपभोग। यह झूम खेती का विकल्प है।

इस पद्धति में पहाड़ियों के ऊपरी भाग में वन लगाए जाते हैं। उस के बाद नीचे के क्षेत्र में फल वाले पेड़, फलियों वाले पौधे (legumes) और बहुवार्षिक चारा घास लगाए जाते हैं। फलियों वाले पौधों की जड़ें नाइट्रोजन का यौगिकीकरण (nitrogen fixation) करती हैं और मिट्टी की गुणवत्ता बढ़ाती है। इसके बाद के निचले क्षेत्र में सीढ़ीदार खेतों में मिली-जुली फ़सलें उगाई जाती हैं। इन सीढ़ीदार खेतों का निर्माण सस्ते साधनों से किया जाता है। इनमें स्थानीय रूप से मिलने

वाली मिट्टी और अन्य सामग्रियों से बाँध बनाए जाते हैं। इनमें इतना पानी एकत्र हो जाता है, जो सिंचाई के लिए और मछली पालन के लिए काफ़ी होता है। मुर्गी-पालन, सुअर-पालन, मधुमक्खी, और खुंमी की खेती और संबंधित गतिविधियों से एक ऐसी कृषि प्रणाली विकसित होती है जो अपने आप में आत्मनिर्भर और पूर्ण होती है, तथा जो पारिस्थितिक तंत्र से पूरी तरह मेल बनाए रखती है। अब तक आप यह पढ़ चुके हैं कि ज्ञान में वृद्धि के कारण हम इस योग्य बन सके हैं कि दुर्गम क्षेत्रों में सुचारू रूप से खेती-बाड़ी कर सकें। अब हम एक विशिष्ट समस्या के बारे में चर्चा करेंगे, जिसे मृदा का निम्नीकरण (degradation) कहते हैं। लवणीय मिट्टी और क्षारीय मिट्टी हमारे किसानों के लिए एक बड़ी भारी समस्या है। आइए अब हम यह देखें कि इन समस्याओं का समाधान कैसे किया जाता है।

20.3 लवणीय एवं क्षारीय मिट्टी का सुधार

शताब्दियों तक हमारी मिट्टी की उपेक्षा और कुप्रबंध का ही यह नतीजा है कि ये लवणीय और क्षारीय हो गई हैं। इस प्रकार लगभग 70 लाख हैक्टेयर ज़मीन पर असर पड़ा है। इन अन-उपजाऊ मिट्टी के क्षेत्रों का क्षेत्रफल शुष्क राजस्थान और गुजरात में लगभग 25 लाख हैक्टेयर, काली मिट्टी वाले प्रदेश में 14 लाख हैक्टेयर और तटीय प्रदेशों में 21 लाख हैक्टेयर है। क्षारीय मिट्टी में सोडियम के कार्बोनेट और बाईकार्बोनेट की मात्रा बहुत अधिक होती है। लवणीय मिट्टी में सोडियम, कैल्शियम और मैग्नीशियम के क्लोराइड और सल्फ़ेट होते हैं। ऊपर बताई गई दोनों तरह की मिट्टियों में लवणों की मात्रा इतनी अधिक होती है कि फ़सल की वृद्धि में बाधा पहुँचती है।

1968 से हुए अनुसंधान कार्य के फलस्वरूप **ब्रैकिएरिया म्यूटिका** (परा घास), **पैनिकम एन्टिडोटेल** (नीलोन घास) और **साइनोडॉन डेक्टिलॉन** (दूब) जैसी चारा घासों और **प्रोसोपिस चिलेन्सिस** (विलायती खजूरी), **अकेशिया नीलोटिका** (कीकर) और संकर (hybrid) **यूकेलिएटस** (सफेदा) जैसे पेड़ों की जातियों (species) की खेती से अब क्षारीय मिट्टी का सुधार करना सम्भव है। अगर पेड़ों को ऐसे छोटे-छोटे गड्ढों में लगाया जाए, जिनमें खाद में थोड़ा-सा जिप्सम मिलाकर डाला गया हो तो वे जल्दी लग जाते हैं। घास द्वारा भूमि सुधार के बाद के पहले ही साल में इस मिट्टी में दूसरी फ़सलें लगाई जा सकती हैं। ऐसे मामलों में चावलों की खास किस्मों को खरीफ़ की फ़सल में और गेहूँ को रबी की फ़सल में बोया जा सकता है। इन फ़सलों की बहुत ही अच्छी पैदावार हो सकती है।

लवणीय मिट्टी के प्रबंध में जल-निकास अत्यन्त महत्वपूर्ण है। लवणीय मिट्टी में भूमि जल-स्तर ऊँचा होता है। एक मीटर गहरी और 30 मीटर की दूरी पर बनाई गई जल-निकास नालियाँ भूमि जल-स्तर को बहुत कारगर ढंग से नीचे ले आती हैं और मिट्टी की लवणता को घटाने में मदद देती है। इसमें कोई शक नहीं कि जल-निकास की लागत अधिक है, लेकिन हमें इतिहास से मिले सबक को भूलना नहीं चाहिए। मैसोपोटेमिया में जल-निकास की जो व्यवस्था की गई थी वह ठीक नहीं थी और इस वजह से वहाँ बढ़ती हुई लवणता (salinity) ने उस देश को गेहूँ की खेती छोड़ देने के लिए मजबूर कर दिया। इस प्रकार लवणीय मिट्टी ने सुमेरियन (Sumerian) सभ्यता को समाप्त करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

ऊपर बताए गए तरीके से सुधारी गई मिट्टी में ज्वार, मक्का और गेहूँ की फ़सलें जिनपर लवणता का प्रभाव नहीं पड़ता, उगाना लाभकारी होता है, जबकि ऐसी मिट्टी में भूमि सुधार से पहले किसी भी प्रकार के पौधे का उगना संभव नहीं होता।

बोध प्रश्न 1

नीचे दी गई सूची में से उपयुक्त शब्द या शब्दों को चुनकर रिक्त स्थानों को भरिए :

i) खेती के लिए जो क्षेत्र कठिन माने जाते थे, वे ठीक तरह का ..... और ..... उपलब्ध न होने के कारण कठिन थे।

ii) ठंडे रेगिस्तानों में खेती के लिए ..... और ..... किस्में सबसे अधिक उपयुक्त हैं।

iii) ....., ... और ..... जैसे पेड़ों को, जो ईंधन के लिए लकड़ी देते हैं, शुष्क प्रदेशों में उगाना फ़ायदेमंद रहता है।

iv) सूखी भूमि में ..... एक सीमित साधन है और इस कठिनाई को ..... की उचित तकनीकों द्वारा दूर किया जा सकता है।

v) ..... और ..... जैसी फ़सलें जब सूखी भूमि में उगाई जाती हैं तो वे मिट्टी को काफ़ी कुछ सुधार देती हैं।

vi) पहाड़ी प्रदेशों में खेती की ..... पद्धति ..... की गुणवत्ता को नष्ट करने का एक महत्वपूर्ण कारण है।

vii) मिट्टी की क्षारीयता का मुख्य कारण उसमें सोडियम के ..... और ..... की मात्रा का अधिक होना है।

(ix) नवीकरणीय मिट्टी में सोडियम, कैल्शियम और मैग्नीशियम के ..... और ..... की मात्रा अत्यधिक होती है।

(x) [illegible] णीय मिट्टी के प्रबन्ध में ..... अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(xi) [illegible] रीय मिट्टी का सुधार अब ..... और अनेक ..... की जातियों की खेती से सम्भव है। इसके से दूसरे प्रकार की जातियाँ छोटे-छोटे गड्ढों में रोपी जाती हैं, जिनमें खाद और ..... भरा होता है।

(xii) [illegible] शात- प्रतिरोधी, बाइकार्बोनेट, चारा घासों, तापमान, सफ़ेदा, अरहर, पेड़ों, क्लोराइड, जल-निकास, जल्दी पकने [illegible], [illegible], [illegible]फ़ेट, कार्बोनेट, जल प्रबंध, नमी, कीकर, काटो-और-जलाओ, मॉस्कुइट, मृदा, जल)

20.4 आधुनिक कृषि से जुड़ी हुई समस्याएँ

आधुनिक कृषि का उद्देश्य समय, स्थान और ऊर्जा की अल्पतम मात्रा में अनाज की अधिकतम मात्रा का उत्पादन करना है, ताकि हमारी बढ़ती हुई आबादी को भरपूर खाना और अन्य कृषि उत्पाद मिल सकें।

1950 के दशक के बीच में किए गए अध्ययन से पता चलता है कि एशिया और अफ्रीका के किसान एक क्विंटल (100 किलोग्राम) अनाज पैदा करने के लिए औसत 2.5 से लेकर 10 दिन तक का समय लगाते थे। इतना ही अनाज पैदा करने के लिए फ्रांस में 3 घंटे का समय लगता था, और सयुक्त राज्य अमरीका के कुछ भागों में तो सिर्फ 6 से लेकर 12 मिनट तक का ही समय लगता था। यह तथ्य ही विकासशील और विकसित देशों के बीच आमदनी, क्रय-शक्ति (खरीदने की क्षमता) और जीवन-शैली के बीच के अंतर के लिए ज़िम्मेदार है।

दूसरी तरफ़ संयुक्त राज्य अमरीका का एक किसान एक किलोग्राम गोमांस प्रोटीन का उत्पादन करने के लिए 65,000 कि.कैलोरी ऊर्जा (kilo calories) (1 कि. कैलोरी = 1000 कैलोरी) और एक किलोग्राम गेहूँ की प्रोटीन के उत्पादन के लिए 2,860 कि. कैलोरी ऊर्जा खर्च करता है। वह अधिकतर पैट्रोलियम जैसे प्राकृतिक तेल संसाधनों से प्राप्त रसायनों का तथा मशीनों का (जो पैट्रोल, मिट्टी के तेल या डीज़ल से चलती हैं) उपयोग करता है। ये सब चुक जाने वाले ग़ैर-नवीकरणीय प्राकृतिक संसाधन है। इसकी तुलना में एशिया का किसान एक किलोग्राम चावल से मिलने वाला प्रोटीन पैदा करने के लिए ऊर्जा की 286 कि.कैलोरी खर्च करता है। वह इस ऊर्जा के लिए मानव और पशु ऊर्जा के अलावा नवीकरणीय कृषि-आधारित और कार्बनिक पदार्थों का अधिकतर उपयोग करता है। उसकी प्रौद्योगिकी ऊर्जा-किफ़ायती मगर श्रम-साध्य और समय खर्च करने वाली है।

कुछ प्रेक्षकों का यह मानना है कि औद्योगीकृत राष्ट्रों का कृषि उत्पादन ग़ैर-नवीकरणीय संसाधनों पर इतना अधिक आश्रित है कि पृथ्वी के तेल और कोयला जैसे संसाधनों के समाप्त हो जाने का स्पष्ट खतरा है, जो कि मानव जाति के लिए विनाशकारी है। अगर हमने कृषि को पश्चिम के स्तर तक ही आधुनिक बना लिया तो हम वह सब पैदा कर सकेंगे जिसकी हमें आवश्यकता है और यह सब कुछ सम्भवतः कृषि कार्य में जुटी जन-शक्ति के दसवें हिस्से से कर सकेंगे। सवाल यह है कि बाकी बचे हुए लोग क्या करेंगे? क्या वे बेरोज़गार हो जाएँगे और अगर ऐसा होता है तो वे खेती से उत्पन्न होने वाली वस्तुओं को कैसे खरीद पाएँगे? यद्यपि यह सच है कि विकासशील देशों में इतनी कम ऊर्जा के उपयोग से होने वाली खेती के कारण उनका जीवन-स्तर मुश्किल से मात्र भरण-पोषण तक ही सीमित रहता है। इससे विकास की गति मंद हो जाती है और कुपोषण पर काबू नहीं रहता लेकिन औद्योगिक देशों की नकल करना भी घोर संकट में फँसना होगा। शायद बीच का रास्ता अपनाना ही अधिक सुरक्षित रहेगा। हमें चाहिए कि आधुनिक विज्ञान और आधुनिक विचारों का उपयोग, ग़ैर-नवीकरणीय सामग्रियों और ऊर्जा का उपयोग कम करने में, अच्छे बीज और अच्छी शस्यन पद्धतियों (cropping practice) के उपयोग में और ज़मीन, पानी तथा पौधों की पत्तियों और तनों आदि की बरबादी रोकने में करें।

कुछ उत्साही व्यक्तियों का विचार है कि हमें रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग कम करना चाहिए। लेकिन वास्तविकता यह है कि दुनिया के अन्य देशों को देखते हुए हमारे देश में रासायनिक उर्वरक की सबसे कम खपत होती है और जापान या यूरोप के मुकाबले तो यह छोटा-सा अंश मात्र है। खेतों में किए गए परीक्षणों से पता चलता है कि कुछ मामलों में, बड़ी मात्रा में जैव खाद या कार्बनिक खाद (organic manures) की अपेक्षा रासायनिक उर्वरक ज़्यादा अच्छे हैं, लेकिन इनमें बहुत अधिक ऊर्जा होने के कारण इनको सावधानी से काम में लाना चाहिए। उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से इनकी बहुत बड़ी मात्रा सिंचाई या बारिश के पानी से बह जाती है, जो बाद में नदियों और तालाबों को प्रदूषित करती है। हमारे वैज्ञानिक रासायनिक उर्वरक और जैव खाद के विवेकपूर्ण मिश्रण को काम में लाने की सिफ़ारिश करते हैं। हमारे वैज्ञानिकों के सामने चुनौती यह है कि बदलते हुए समय की आवश्यकताएँ पूरी करते हुए परम्परागत कृषि को उपयोगी बनाए रखें।

प्रत्येक हेक्टेयर ज़मीन के ऊपर लगभग 87,000 टन वायुमंडल और लगभग 70 प्रतिशत नाइट्रोजन है, जिसकी पौधों को ज़रूरत होती है। हमें विभिन्न दालें, फलियाँ और मटर जैसे पौधों को बड़े पैमाने पर उगाकर इस प्रचुर संसाधन का लाभ उठाना चाहिए। वायुमंडलीय नाइट्रोजन के यौगिकीकरण द्वारा मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने वाले इन पौधों की इस महत्वपूर्ण भूमिका से आप पहले ही परिचित हैं।

उर्वरक की ही तरह हमारे देश में जीवनाशक या कीटनाशक पदार्थों की खपत इतनी थोड़ी है कि इस बारे में जो स्थिति विकसित देशों में हैं, हमारे देश में वैसी कतई नहीं है। अभी हाल में जो अधिक उत्पादन वाली फ़सलों की किस्में काम में लाई जा रही हैं, उनकी वृद्धि इतनी अच्छी होती है कि हानिकारक जीव उनकी ओर उसी तरह आकर्षित होते हैं, जिस तरह हम स्वाद भरे खाने की ओर आकर्षित होते हैं। पौधों को रक्षण देने वाले रसायन तभी सुरक्षित हैं, जबकि उनका उपयोग पूरी तरह वैज्ञानिक सलाह के अनुसार किया जाए। इनके अत्यधिक और ग़लत इस्तेमाल से हानिकारक अवशेष बचे रह सकते हैं, जो हमारे पर्यावरण और विशेष रूप से हमारे पानी को प्रदूषित कर सकते हैं। हानिकारक जीवों के नियंत्रण पर अनुसंधान किए जाने की तुरन्त आवश्यकता है।

देश में हाल ही में हुए कृषि विकासों के बारे में काफ़ी विचार-विमर्श हुआ है, जिसके फलस्वरूप ज़मीन के बड़े-बड़े भागों में गेहूँ और चावल की अधिक पैदावार देने वाली किस्में बोई गईं। इनमें से अधिकतर फ़सलों को उर्वरक और सुनिश्चित समय पर पानी दिए जाने की आवश्यकता है। ऐसी फ़सलों से भरपूर बड़े-बड़े खेत, अधिक हानिकारक जीव आकर्षित करते हैं और इसीलिए जीवनाशक पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है। उर्वरकों और जीवनाशक पदार्थों के उत्पादन के लिए न केवल ऊर्जा की आवश्यकता है, बल्कि ऐसी तकनीकों की आवश्यकता भी है, जिसके लिए विदेशी मुद्रा चाहिए। इसका नतीजा यह हुआ है कि हमारे देश में हरित क्रांति (green revolution) हुई है और हमारा कृषि उत्पादन बहुत अधिक बढ़ गया है लेकिन इसके साथ-साथ दूसरे देशों पर निर्भरता भी बढ़ गई है।

दूसरी दुविधा यह है कि इस तरह की खेती, जहाँ रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग हो और सिंचाई तथा फ़सलों की रक्षा की कड़ी व्यवस्था की आवश्यकता हो, उन किसानों द्वारा और अच्छी तरह से की जा सकती है, जिनके बड़े-बड़े खेत हों। हमारे देश की अधिकतर ज़मीन के मालिक ऐसे किसान हैं, जिनके खेत छोटे-छोटे हैं और जो आधुनिक विकास का पूरी तरह लाभ नहीं उठा सकते। इसलिए जैसा कि पहले बताया गया है, दूसरी चीज़ों के साथ-साथ ऐसी कृषि ने ग्रामीण क्षेत्रों में धनवानों को अधिक धनवान और गरीबों को अधिक गरीब बना दिया है।

एक विचार यह भी है कि कुल कृषि-उत्पादन को बढ़ाने के अलावा, कोई दूसरा चारा नहीं है और आधुनिक प्रौद्योगिकी, बड़े पैमाने और छोटे पैमाने की खेती में कोई भेदभाव नहीं करती, बशर्ते कि छोटे किसान भी उचित पद्धति को अपना लें। लोगों में व्याप्त गरीबी और अज्ञान को देखते हुए व्यावहारिक रूप में यह बात मुश्किल लगती है।

हमारे जैसे बड़े देश में, अगर पैदावार में 10 प्रतिशत की कमी हो जाती है तो भुखमरी का खतरा पैदा हो जाता है और अगर उत्पादन में 10 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है तो फिर भंडारण, अनाज सड़ने, बाज़ार में भरमार और किसानों द्वारा घबराकर कम कीमत पर बेचने जैसी समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। सब्ज़ियों, फलों, अंडों, मछली, दूध और उनसे बनी चीजों के मामले में यह समस्या और भी गम्भीर है, क्योंकि ये सब जल्दी ही खराब हो जाने वाली वस्तुएँ हैं। इस समस्या से निपटने का केवल एक ही रास्ता है और वह है किसानों को उत्पादन लागत के आधार पर न्यूनतम कीमत की गारंटी दी जाए और इस बात की तसल्ली दी जाए कि परिवहन, संसाधन (processing) और पैकिंग करने की अच्छी तथा पर्याप्त सुविधाएँ दी जायेंगी ताकि उपभोक्ता को उसके दरवाज़े पर ही माल मिल सके। अगर संसाधन और पैकिंग का काम हमारी अनुसंधान संस्थाओं द्वारा विकसित प्रौद्योगिकी से किया जाए तो यह बहुत उत्तम होगा। इसके अलावा, अगर विदेशी (या विदेशी भागीदार) कंपनियों द्वारा संसाधित खाद्य सामग्री का निर्यात किया जाता है तो हम अपने लोगों को ऐसे बहुत से खाद्य पदार्थों से वंचित कर देंगे जिनकी उनको बहुत आवश्यकता है। जैसे कि सुखाई गई सब्ज़ियाँ (dried vegetables), फलों का गूदा और रस तथा मछली प्रोटीन आदि। भारतीय बाज़ार में इन चीज़ों के दाम बढ़ जाएँगे। इस तरह आप देखते हैं कि उत्पादन बढ़ाने के लिए और अपने देशवासियों की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए विज्ञान बहुत योगदान दे सकता है। विज्ञान एक गतिशील कृषि-उत्पादन बनाए रख सकता है, बशर्ते कि जन-नीतियाँ भी उसके अनुसार बनाई जाएँ।

20.5 मनुष्य की उत्पादन करने की वैज्ञानिक क्षमता और उस उत्पाद का उपभोग करने की सामाजिक अक्षमता के बीच असंतुलन

हमारे देश को जिस चीज़ की ज़रूरत है, उसके उत्पादन के लिए अब हमारे पास वैज्ञानिक और तकनीकी जानकारी है। लेकिन हमारे यहाँ ऐसे गरीब लोग बहुत अधिक हैं, जिन्हें लाभदायक रोज़गार नहीं मिला है। इसलिए वे जो कीमत अदा कर सकते हैं, उतने में उन्हें खाना प्राप्त नहीं होता। जब तक हमारी वैज्ञानिक और तकनीकी कुशलता को सही तरह के ग्रामीण तथा शहरी विकास कार्यक्रमों द्वारा अमल में लाने के लिए राजनीतिक और प्रशासनिक सहारा नहीं मिलता, तब तक गरीबी और कुपोषण का भय बना रहेगा।

हमारे देश में लगभग 5 करोड़ 55 लाख (22.7 प्रतिशत) लोग खेतिहर मज़दूर के रूप में काम करते हैं। इनके पास न तो जुताई के लिए ज़मीन है और न ही पालने के लिए पशु हैं। वे कठोर परिश्रम करने को तैयार हैं और शाम तक भुगतान किए जाने की आशा करते हैं, क्योंकि उनकी ज़िंदगी कमाऊ-खाऊ (hand to mouth) तरह की है। इन्हें रोज़गार दिलाने के लिए ज़ोरदार प्रयासों की आवश्यकता है। लेकिन अनेक ऐतिहासिक कारणों से हमारे देश में रोज़गार देने को खैरात बाँटने के बराबर समझा जाता है और नौकरी तलाश करने वाले के साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है कि मानों वह समाज पर एक बोझ हो,

जबकि वास्तविकता यह है कि वह अपनी सेवाएँ पेश कर रहा है, भले ही वे सेवाएँ साधारण हों। ऐसा वह अपनी भलाई और देश की भलाई के लिए करता है। नीतियाँ बनाने वालों से लेकर ग्राम-स्तर कार्यकर्त्ता तक, हर स्तर पर हमारे सामाजिक ढाँचे और दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। नौकरी के अवसर प्रदान करने को राष्ट्रीय सेवा का एक प्राथमिक मुद्दा मानना चाहिए। रोज़गार के साधन हो सकते हैं — i) सरकार के विकास-कार्यक्रम और ii) सामूहिक कार्य, जिसे बैंकों से वित्तीय सहायता और ग्राम सहकारी समितियों से सहयोग मिले। विपणन (marketing), भंडारण, परिवहन, वितरण, संसाधन और ग्राहक सेवा अकेले गाँववासियों के बूते से बाहर है। यह सब ग्राम सहकारिता से हो सकता है, जो राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न मंडियों से जुड़ी हुई हो।

सरकार ऐसी बड़ी-बड़ी योजनाएँ हाथ में ले सकती है, जो देहातों में सिंचाई, पीने के पानी की सप्लाई और पक्की सड़कों तथा सुनियोजित मकानों के निर्माण से संबंधित हो। इन स्थायी राष्ट्रीय कार्यक्रमों से रोज़गार के अवसर बढ़ेंगे, जिसकी बहुत अधिक आवश्यकता है और गाँव वालों की क्रय-शक्ति बढ़ेगी।

ग्राम सहकारिता समितियों को चाहिए कि बैंक और बीमा एजेंसियों की मदद से उन महत्वपूर्ण राष्ट्रीय समस्याओं पर विशेष ध्यान दें, जिनका समाधान सामूहिक कार्यों द्वारा ही सम्भव है।

वन संसाधनों का तेज़ी से कम होते जाना और मिट्टी का अपरदन जैसी दो समस्याओं को, गाँवों में कृषि के लायक बेकार पड़ी ज़मीनों और सड़कों के किनारे बड़े पैमाने पर पेड़ लगाकर कारगर ढंग से रोका जा सकता है। यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस समय हम काटते तो दस पेड़ हैं और उसकी जगह लगाते एक ही पेड़ हैं। हमारा कर्त्तव्य केवल पेड़ लगाकर ही खत्म नहीं हो जाता, बल्कि उनकी उस अवस्था तक देखभाल भी करनी चाहिए, जब तक कि बढ़ने के लिए उन्हें देखभाल की आवश्यकता न हो।

मिश्रित मछली पालन (इकाई 19, भाग 19.9.2 भी देखिए) और ऊँचे मूल्य की सब्जियों और फलों की खेती बहुत अधिक लाभकारी व्यवसाय हैं। लेकिन हमारे किसान अधिक उत्पादन के बारे में चौकस रहते हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि इससे गाँव के बाज़ारों में भरमार हो जाएगी और इसकी वजह से कीमतें कम हो जाएँगी। ग्रामीण सहकारी-समितियों की एक ऐसी राष्ट्रीय शृंखला, जो विपणन, भंडारण और वितरण के काम-काज को सम्भाल सके, के बनने से उत्पादक और उपभोक्ता, दोनों को ही लाभ होगा।

हमारे आहार में प्रोटीन और वसा की बहुत कम मात्रा एक बहुत बड़ी चिंता का विषय है। प्रोटीन से भरपूर सोयाबीन की खेती को बढ़ाने के लिए सुगठित विपणन और संसाधन नेटवर्क की ज़बरदस्त आवश्यकता है, जो हमारी जनता में कुपोषण के शिकार लोगों के लिए वरदान साबित होगा। इसी तरह तेल ताड़ (oil palm) सहित तिलहन की फ़सलों पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। हम आजकल खाद्य तेल का भारी मात्रा में आयात कर रहे हैं। मालदार राष्ट्रों में अधिक चर्बी खाना नापसन्द किया जाता है, क्योंकि इससे हृदय रोगों की समस्या और गम्भीर हो जाती है। लेकिन हमारे देश में कुछ सम्पन्न व्यक्तियों को छोड़कर भोजन में ज़्यादा चर्बी खाना न केवल अपेक्षित है, बल्कि आवश्यक है क्योंकि चर्बी न केवल खाद्य कैलोरियों की सांद्रित स्रोत है, बल्कि कुछ विटामिनों के लिए महत्वपूर्ण साधन भी है।

प्रति व्यक्ति कम कपड़ा मिलना भी दूसरी चिंताजनक बात है। हमारे उन क्षेत्रों में भी, जो कपास उत्पादन के लिए सबसे अच्छे हैं, कपास की प्रति हैक्टेयर पैदावार सिर्फ़ 370 किलोग्राम है, जबकि मिस्र में 700 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर उपज होती है। मिस्र में कपास उत्पादन का प्रबन्ध सहकारिता के आधार पर किया जाता है और निजी मालिकों के अधिकारों में कोई दखल नहीं दिया जाता। कपास, चावल, मूँगफली, गन्ना और बागान फ़सलों के हानिकारक जीवों (पेस्ट) और मवेशियों के संक्रामक रोगों के नियंत्रण में व्यक्तिगत प्रयास बेकार रहते हैं। अतः इनके लिए गाँव या ग्रामीण खंड के सामुदायिक कार्य ही कारगर साबित हो सकते हैं। हमारे गाँवों की तात्कालिक आवश्यकता ऐसी सहकारिता समितियों की है, जो कुशलतापूर्वक कार्य करें और जिनके पास पौधों और पशुओं की सेहत की देखभाल कर सकने के लिए पर्याप्त सुविधाएँ हों। बह जाने वाले पानी को तालाबों में जमा करके बचाना, भूमिगत जल संसाधनों का उचित उपयोग, कृषि अपशिष्टों का उपयोग तलाश करना, सौर और पवन ऊर्जा का उपयोग तथा बायोगैस संयंत्रों (biogas plants) को लगाना, कुछ ऐसे कार्य क्षेत्र हैं, जिनकी ओर ध्यान देकर ग्राम सहकारी समितियाँ एक अनुकरणीय भूमिका निभा सकती हैं, रोज़गार के अनेक अवसर प्रदान कर सकती हैं और महात्मा गाँधी के "अंत्योदय" के सपने को साकार कर सकती हैं।

यह एक विरोधाभास ही होगा कि हम खाने के लिए तो पर्याप्त अनाज पैदा कर लें, लेकिन हमारी अधिकांश जनता के पास उस अनाज को खरीदने के लिए पर्याप्त पैसा न हो।

20.6 कृषि में बायोटेक्नोलॉजी

दुनिया में लगातार बढ़ती जा रही आबादी की मांगों को पूरा करने के लिए पर्याप्त अनाज का उत्पादन कृषि-वैज्ञानिकों के लिए एक बड़ा भारी काम है और एक चुनौती है। कृषि की परम्परागत पद्धति इस स्थिति का सामना कर सकने में असमर्थ है। हाल के वर्षों में बायोटेक्नोलॉजी एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में उभरी है जो कृषि की आजकल की समस्याओं के हल सुझा सकती है। आगे बढ़ने से पहले यह अच्छा रहेगा कि हम पहले यह जान लें कि बायोटेक्नोलॉजी क्या है? जैव प्रणालियों

(biological systems) या उनकी प्रक्रियाओं का औद्योगिक पैमाने पर उपयोग ही बायोटेक्नोलॉजी कहलाती है।

आजकल बायोटेक्नोलॉजी ने इस अवस्था तक प्रगति कर ली है कि ऐसे पौधे उगाए जा सकते हैं, जिनमें अनेक उन्नत लक्षण हों। ज़्यादा पैदावार, रोगों के लिए प्रतिरोध क्षमता, उन्नत पोषक गुण और पर्यावरण की प्रतिकूल परिस्थितियों में अनुकूलन आदि इन उन्नत लक्षणों के कुछ उदाहरण हैं। उन्नत पौधों के उत्पादन का एक महत्वपूर्ण पहलू प्रजनन प्रक्रिया है। प्रजनन द्वारा जनकों (parents) के एक या अधिक अनुकूल लक्षणों को मिलाकर उनकी संततियों (progeny) में पहुँचा दिया जाता है। इस उद्देश्य के लिए पौधे तैयार करने के लिए वैज्ञानिक अनेक विधियाँ अपनाते हैं। सबसे सामान्य तरीके हैं : i) परम्परागत विधि — जिसमें बीजों और प्रकंद (root stock) को पौधे तैयार करने के लिए आधारभूत सामग्री के रूप में काम में लाया जाता है, ii) दूसरे तरीके में पादप-कोशिकाओं (plant cells) के एक महत्वपूर्ण गुण का उपयोग करते हैं और यह गुण है कि पौधे की कोई भी कोशिका एक पूरे पौधे को जन्म दे सकती है। इस तथ्य के आधार पर किसी भी कोशिका या कोशिकाओं के समूह को, या पौधे के किसी भाग को जैसे कि तने, पत्ती आदि के टुकड़े को प्रयोगशाला में उचित नियंत्रित परिस्थितियों में एक पोषक माध्यम (nutrient medium) पर उगाया जा सकता है। इस विधि को ऊतक संवर्धन (tissue culture) कहते हैं। इस विधि से हम पुष्पन (flowering), बीजों के उत्पादन और उनके अंकुरण (germination) की अवस्थाओं के बिना ही पौधों को शुद्ध प्रजनन प्रकार (true breeding types) तैयार कर सकते हैं। हमारे फ़सल सुधार कार्यक्रम में इस तकनीक की महत्वपूर्ण भूमिका है और गेहूँ, चावल, मक्का तथा अनेक दूसरे पौधों की किस्मों को सुधारने में इस तकनीक को काम में लाया जा रहा है। यह विधि न केवल आज की फ़सलों के लिए बल्कि नयी किस्म के पौधे और नई फ़सलें तैयार करने के लिए उपयोगी है। ये पौधे और फ़सलें तैयार होने में कम समय लेने के कारण अल्पावधि की फ़सलें कहलाती हैं, इनसे पैदावार अधिक होती है और ये रोगों तथा पर्यावरण की दूसरी प्रतिकूल परिस्थितियों के लिए प्रतिरोधी (resistant) किस्म की होती हैं। फ़सल सुधार में लगे हुए कृषि वैज्ञानिकों को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ा है, उनमें से एक समस्या यह है कि अनेक नई विकसित की गई फ़सलों के भ्रूण (embryo) वृद्धिरोध (abortion) के शिकार हो जाते हैं अर्थात् वे प्राकृतिक रूप से जीवित नहीं रहते। लेकिन ऊतक संवर्धन द्वारा इस कठिनाई पर विजय प्राप्त कर ली गई है। ये भ्रूण प्रयोगशाला में नियंत्रित परिस्थितियों में एक पोषक माध्यम में उगाए जाते हैं और बाद में खेतों में लगा दिये जाते हैं।

हाल ही के वर्षों में एक-दूसरी तकनीक ने कृषि वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित किया है, जिसे आनुवंशिक इंजीनियरी (genetic engineering) कहते हैं। इसमें किसी विशेष पौधे के आनुवंशिक पदार्थ को किसी दूसरे पौधे के आनुवंशिक पदार्थ के प्रतिस्थापन (substitution) या योग (addition) द्वारा परिवर्तित कर दिया जाता है। यानी एक पौधे के आनुवंशिक पदार्थ को हटाकर उसके स्थान पर दूसरे पौधे के आनुवंशिक पदार्थ को लगा देते हैं या पहले वाले पौधे के आनुवंशिक पदार्थ में दूसरे पौधे के आनुवंशिक पदार्थ को मिला देते हैं। आप फलियों वाले पौधों और उनके नाइट्रोजन यौगिकीकरण (nitrogen fixation) के गुण से पहले से ही परिचित हैं। आजकल वैज्ञानिक इस आनुवंशिक पदार्थ को, जो फलियों वाले पौधों को इस लायक बनाता है कि वे नाइट्रोजन को यौगिकीकृत कर सकें, आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण विभिन्न पौधों में स्थानांतरित करने की कोशिश में लगे हुए हैं। अगर इसमें सफलता मिल गई तो यह कृषि के लिए अत्यधिक उपयोगी साबित होगा।

अगर बायोटेक्नोलॉजी के सिद्धान्त पर फलों के बाग लगाये जाएँ तो फलों के पेड़ों की ऊँचाई और आकार इच्छानुसार होगा ताकि उनका प्रबन्ध आसानी से किया जा सके। फलों का आकार, रंग और वज़न एक-समान होगा। इनका स्वाद और पोषण-मान (nutritional value) एक जैसा होगा तथा ये फल एक ही समय में पकेंगे। इससे फलों का तोड़ना, भंडारण, पैकिंग, परिवहन, डिब्बाबंदी और संसाधन (processing) आदि आसान हो जाएँगे।

अब तक हमने पौधों के सुधार में बायोटेक्नोलॉजी के कुछ अनुप्रयोगों (applications) की चर्चा की। इसी प्रकार बायोटेक्नोलॉजी हमारे पशुओं की नस्ल के सुधार में भी बहुत उपयोगी है। भ्रूण स्थानांतरण तकनीक से अच्छी नस्ल के पशुओं को बड़ी संख्या में और थोड़े समय में पैदा करना सम्भव हुआ है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अच्छी नस्ल की गाय के अण्डाणुओं की संख्या बढ़ाने के लिए उसे हार्मोन द्वारा उपचारित किया जाता है। निषेचन के बाद इन भ्रूणों को निकाल कर दूसरी सेहतमंद गायों में प्रतिरोपित कर दिया जाता है, जिन्हें सरोगेट माँ (surrogate mother) कहते हैं। इस तरह हम अल्पकाल में ही अच्छी नस्ल के अनेक बछड़े/बछड़ियाँ प्राप्त कर सकते हैं।

बायोटेक्नोलॉजी द्वारा उत्पन्न नई संभावनाओं ने बड़े-बड़े उद्योगपतियों का ध्यान आकर्षित किया है, जिन्होंने नई-नई परियोजनाओं में पैसा लगाना शुरू कर दिया है। कुछ लोगों को तो यह भी आशंका है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ (multinational companies) जल्दी ही फ़ैक्टरी में कृषि यानी "फ़ैक्ट्री फार्मिंग" पर एकाधिकार कर लेंगी और खाद्य वस्तुओं का उत्पादन भारी मात्रा में शुरू हो जाएगा। इससे कीमतें इतनी कम हो जाएँगी कि विकासशील देशों के परम्परागत किसान शायद इसके मुकाबले में न टिक पाएँ और दिवालिये हो जाएँ। लेकिन अंतर्राष्ट्रीय सहयोग, संयुक्त व्यापारिक जोखिम और पर्याप्त तकनीकी स्थानांतरण से बायोटेक्नोलॉजी विश्व की उन सभी कृषि संबंधी नीतियों के लिए वरदान साबित होगी, जो भविष्य पर नज़र टिकाए रखती हैं।

बोध प्रश्न 2

नीचे दी गई सूची में से उपयुक्त शब्द या शब्दों को चुनकर खाली जगहों को भरिए।

i) आधुनिक कृषि से जुड़ी हुई सबसे बड़ी समस्या ..... की है।

ii) ऐसा माना जाता है कि विकसित राष्ट्रों द्वारा काम में लाई जाने वाली कृषि तकनीक ..... आधारित है, जबकि विकासशील राष्ट्रों की ..... आधारित है।

iii) ..... का उपयोग आधुनिक खेती के लिए अनिवार्य हो गया है और उनके अत्यधिक उपयोग से पैदा हुई कुछ समस्याओं से बचने के लिए उन्हें कार्बनिक ..... के साथ मिलाकर इस्तेमाल किया जाता है।

iv) अनेक ..... रसायनों का उपयोग पूरी तरह वैज्ञानिक सलाह के अनुसार करना चाहिए क्योंकि उनमें से बहुत से पर्यावरण में हानिकारक ..... छोड़ देते हैं।

v) ऊर्जा के लिए ..... संसाधनों, अच्छे ..... तथा अच्छी ..... पद्धति का उपयोग करके और सभी तरह की ..... को कम करके हम आधुनिक खेती से जुड़ी अनेक कठिनाइयों को कम कर सकते हैं।

vi) जल्दी ही खराब हो जाने वाले पदार्थों के उच्च उत्पादन का बढ़िया उपयोग करने की दृष्टि से हमारे पास अच्छे ....., ..., और ..... की पर्याप्त सुविधाएँ होनी चाहिए ताकि वे उपभोक्ताओं को जल्दी मिल सकें।

vii) न केवल हमें कृषि ..... को ही बढ़ाने की आवश्यकता है बल्कि ..... ढाँचे और दृष्टिकोण में भी परिवर्तन की आवश्यकता है।

viii) एक अकेला किसान अपनी पैदावार के ....., ..., ..., ... और ..... आयोजित करने में असमर्थ है। लेकिन यह कुछ ग्राम ..... द्वारा सम्भव है, जो राष्ट्रीय बाज़ार ग्रिड से जुड़ी हुई हों।

ix) पौधों के सुधार कार्यक्रम के लिए नन्हें पौधे ....., या ..... से अथवा ..... तकनीक काम में लाकर तैयार किए जाते हैं।

x) ..... तकनीक जिससे ..... को एक सेहतमंद माँ से ..... माँ के अंदर प्रतिरोपित किया जाता है, कम समय में एक ही प्रकार के अनेक बछड़े/बछियाँ पैदा करने का अच्छा तरीका है।

(सामाजिक, नवीकरणीय, सरोगेट, परिवहन, विपणन, उत्पादन, बीजों, रासायनिक उर्वरकों, बरबादी, भ्रूण, प्रकंद, बीज, भ्रूण स्थानांतरण, भंडारण, संसाधन, अवशेष, खाद, ऊर्जा, श्रम, शस्यन, पैकिंग करने, परिवहन, ऊत्तक संवर्धन, वितरण, सहकारी समितियों, पौधों के रक्षक, ऊर्जा, संसाधन)

20.7 सारांश

- आज हम शुष्क प्रदेशों, सूखी भूमि और पहाड़ी प्रदेशों जैसे क्षेत्रों को कृषि कार्यों के लिए लाभकारी ढंग से काम में ला सकते हैं। यह सब, फ़सलों की अनेक किस्मों और पशुओं की नस्लों (जो इन प्रदेशों के लिए सबसे अधिक उपयुक्त हैं) के उपयोग के कारण सम्भव हुआ है। अपनी परम्परागत पद्धतियों में थोड़ा-सा परिवर्तन लाकर हम इन क्षेत्रों को और अधिक उत्पादक बना सकते हैं।

- हमारी खेती की ज़मीनों का काफ़ी बड़ा हिस्सा क्षारीयता और लवणता की समस्याओं से प्रभावित है। इस तरह की मिट्टियों में नमक की मात्रा इतनी अधिक होती है कि इनसे फ़सल की वृद्धि में बाधा पहुँचती है। उपयुक्त पेड़ और घास उगाकर क्षारीय मिट्टियों को काम में लाया जा सकता है और सुधारा भी जा सकता है। बाद में इस प्रकार की मिट्टी में चावल या गेहूँ की क्षार-प्रतिरोधी (alkali-resistant) किस्में उगाई जा सकती हैं। लवणीय मिट्टी के प्रबंध में जल-निकास अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ऐसी ज़मीनों पर, जिनकी जल-निकास व्यवस्था अच्छी है, ज्वार, मक्का और गेहूँ की लवण-प्रतिरोधी किस्मों की खेती लाभकारी रहती है।

- आधुनिक कृषि का लक्ष्य न्यूनतम समय, जगह और ऊर्जा के इस्तेमाल से अधिकतम अनाज पैदा करना है। आजकल की खेती से अनेक समस्याएँ जुड़ी हुई हैं। सबसे महत्वपूर्ण समस्या ऊर्जा की है। हम ग़ैर-नवीकरणीय संसाधनों पर काफी हद तक निर्भर हैं। ये संसाधन सीमित होने के कारण जल्दी ही समाप्त हो जाएँगे। हमें अधिक उत्पादन के लक्ष्य को पूरा करने के लिए आधुनिक विज्ञान को काम में लाना चाहिए जिससे कि ग़ैर-नवीकरणीय पदार्थों का उपयोग कम हो सके। हमें अच्छे बीजों का इस्तेमाल करना होगा तथा विकसित शस्यन पद्धति अपनानी होगी और रासायनिक उर्वरकों, जैव खाद या कार्बनिक खाद तथा जीवनाशकों का उचित मात्रा में इस्तेमाल करना होगा। दूसरी समस्या उत्पादन की है। अगर कम उत्पादन हुआ तो भुखमरी से मौतें होंगी। उत्पादन अत्यधिक होने से भी दूसरी तरह की समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। किसानों को उत्पादन लागत पर आधारित न्यूनतम गारंटी कीमत अदा किए जाने की आवश्यकता है। इसके अलावा अच्छे परिवहन, संसाधन और पैकिंग करने से भी उत्पादों को आसानी से उपभोक्ताओं तक पहुँचाने में मदद मिलेगी।

- आज हमारे पास ऐसी जानकारी और प्रौद्योगिकी है, जिससे वह सब पैदा किया जा सकता है जिसकी हमारे देश को आवश्यकता है। लेकिन फिर भी अधिकांश लोगों को खाना नसीब नहीं होता क्योंकि उनमें खरीदने की सामर्थ्य नहीं है।

रोज़गार देने के ज़ोरदार अभियान से इस स्थिति में सुधार होगा। इसके अलावा, ग्राम सहकारी समितियों की शृंखला, किसानों की दूसरी समस्याओं जैसे कि विपणन, भंडारण और वितरण को सुलझा सकेगी।

- बायोटेक्नोलॉजी एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में तेज़ी से उभर रही है जिससे कृषि में विकास के नये आयाम संभव हो गये हैं।

20.8 अन्त में कुछ प्रश्न

1 निम्नलिखित विशेष क्षेत्रों में कृषि के बारे में संक्षेप में लिखिए :

i) शुष्क प्रदेश

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ii) सूखी भूमि

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

iii) पहाड़ी प्रदेश

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2 आधुनिक कृषि से जुड़ी विशिष्ट समस्याओं के बारे में संक्षेप में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3 "मनुष्य की उत्पादन करने की वैज्ञानिक क्षमता और उस उत्पाद को काम में लाने की सामाजिक अक्षमता के बीच संतुलन नहीं है।" इस कथन को उचित सिद्ध कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4 बायोटेक्नोलॉजी किस प्रकार कृषि में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

20.9 उत्तर

बोध प्रश्न

1 i) तापमान, नमी

ii) जल्दी पकने वाली, शीत-प्रतिरोधी

iii) कीकर, मास्कुइट, सफ़ेदा

iv) जल, जल-प्रबंध

v) अरंड, अरहर

vi) काटो-और-जलाओ, मृदा

vii) कार्बोनेट, बाइकार्बोनेट

viii) क्लोराइड, सल्फेट

ix) जल-निकास

x) चारा घास, पेड़ों, जिप्सम

2 i) ऊर्जा,

ii) ऊर्जा, श्रम

iii) रासायनिक उर्वरकों, खाद

iv) पौधों के रक्षक अवशेष

v) नवीकरणीय, बीजों, शस्यन, बरबादी

vi) परिवहन, संसाधन, पैकिंग करने

vii) उत्पादन, सामाजिक

viii) विपणन, भंडारण, परिवहन, वितरण, संसाधन, सहकारी-समितियों

ix) बीज, प्रकंद, ऊतक संवर्धन

x) भ्रूण स्थानांतरण, भ्रूण, सरोगेट

अंत में कुछ प्रश्न

1 i) शुष्क प्रदेशों में जहाँ तापमान कम होता है और पानी की कमी होती है, जल्दी पकने वाली और शीत प्रतिरोधी फ़सलें उगाई जाती हैं। इसके अलावा, इन प्रदेशों में हृष्ट-पुष्ट पशु, जैसे कि बकरियाँ, ऊँट आदि पाले जाते हैं। उन जगहों में जहाँ तापमान अधिक रहता है, उपयुक्त घासें और फल वाले पेड़ या ईंधन देने वाले पेड़ उगाए जाते हैं। ऐसे प्रदेशों में जानवरों, भेड़ों और बकरियों की उन्नत नस्लें पाली जा सकती हैं।

ii) ये क्षेत्र पानी के लिए वर्षा पर निर्भर हैं। पानी संरक्षण के लिए हाल ही में विकसित तकनीकें ऐसे क्षेत्रों को खेती के लिए उपयोगी बना देती हैं। यहाँ फ़सलों की ऐसी किस्में उगाई जाती हैं जिन्हें कम पानी की आवश्यकता होती है। ज्वार, सूरजमुखी, कुसुंभ, सरसों, मूँगफली, कपास और अनेक दालें जैसी फ़सलें ऐसे क्षेत्रों के लिए बहुत उपयुक्त हैं। फ़सलों से मिलने वाले कार्बनिक पदार्थों के कारण ऐसी मिट्टी में पानी धारण करने की क्षमता बढ़ जाती है।

iii) पहाड़ी प्रदेशों के कुछ भागों में लम्बे समय तक और आज भी खेती करने का एक ही तरीका रहा है, जिसे झूम खेती कहते हैं। इस पद्धति ने मिट्टी को बहुत नुकसान पहुँचाया है। आजकल बहुत से क्षेत्रों में खेती की आधुनिक पद्धति अपनाई जा रही है और यह बहुत लाभदायक सिद्ध हो रही है। इस पद्धति में पहाड़ियों के ऊपरी भागों में वन लगाए जाते हैं। उसके नीचे वाले क्षेत्र में फलों वाले पेड़, घासें और फलियों वाली फ़सलें उगाई जाती हैं। उससे भी निचले क्षेत्र में सीढ़ीदार खेतों पर मिश्रित फ़सलें उगाई जाती हैं। पानी के भंडारण की व्यवस्था की जाती है। मछलीपालन, मधुमक्खी पालन आदि इसे एक सम्पूर्ण कृषि पद्धति बना देते हैं।

2 i) ऊर्जा के स्रोत-आजकल गैर-नवीकरणीय संसाधनों पर बहुत दबाव है और निकट भविष्य में ही इनके खत्म हो जाने का डर है।

ii) इसमें कोई शक नहीं कि अत्यधिक मशीनीकरण (mechanisation) से उत्पादन बढ़ जाएगा, लेकिन इससे बेरोज़गारी और गरीबी भी फैलेगी और इसके कारण लोगों की भोजन ख़रीदने की क्षमता कम हो जाएगी।

iii) काम में लाये जाने वाले अधिकतर प्रौद्योगिकी और तरीके ऐसे हैं, जिनसे काफी बरबादी होती है। कुछ अपशिष्ट पदार्थ जैसे कि रासायनिक उर्वरक और जीवनाशक पदार्थ (पेस्टीसाइड) पर्यावरण में जमा होते रहते हैं, जिनका हानिकारक प्रभाव लम्बे समय तक बना रहता है।

iv) बहुत सी आधुनिक तकनीकें बड़े-बड़े खेतों में ही काम में लाई जा सकती हैं। लेकिन हमारे अधिकतर किसान ऐसे हैं, जिनके पास खेती की ज़मीन कम है और वे इस आधुनिक प्रौद्योगिकी का फ़ायदा नहीं उठा सकते।

v) हमारे जैसे विकासशील देशों में उत्पादन की 10 प्रतिशत की वृद्धि भी समस्या खड़ी कर देती है। यह समस्या है भंडारण, बाज़ारों में भरमार और घबराकर कम कीमत पर बिक्री। यह समस्या और भी गम्भीर हो जाती है यदि ये कृषि-उत्पाद जल्दी ही खराब हो जाने वाले हों।

3 i) यद्यपि हमारे पास ऐसी जानकारी और प्रौद्योगिकी है कि हम वही पैदा करें जिसकी देश को आवश्यकता है, लेकिन हमारे देश के अधिकतर लोग गरीब हैं और इसका उपयोग नहीं कर सकते। ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक है, जिनके पास खाना खरीदने के लिए भी पर्याप्त पैसे नहीं है।

ii) हमारे देश के लगभग 22.7 प्रतिशत लोग खेतिहर मजदूर हैं और उनके पास कोई जमीन नहीं है और उनका जीवन कमाऊ-खाऊ है।

iii) विपणन, भंडारण, परिवहन, वितरण, संसाधन और उपभोक्ता सेवा की सुविधाएँ एक अकेले किसान की क्षमता से बाहर हैं, विशेष तौर पर उन किसानों के लिए जिनके पास खेत कम हैं।

4 बायोटेक्नोलॉजी पौधों और पशुओं की उन्नत किस्मों के उत्पादन में बहुत ही अधिक सहायक साबित हो सकती है। ऊतक संवर्धन जैसी नई तकनीकों से न केवल हम नए किस्म के पौधे उगा सकते हैं, बल्कि पुष्पन, बीजों के उत्पादन और उनके अंकुरण जैसी अवस्थाओं के बिना ही थोड़े समय में ही पौधों की बड़ी संख्या में उत्पादन किया जा सकता है। आनुवंशिक इंजीनियरी सिद्धांतों के अनुप्रयोग से अपेक्षित गुणों वाले पौधों का उत्पादन किया जा सकता है। अगर हम फलों के बाग लगाने में बायोटेक्नोलॉजी का उपयोग करते हैं तो जो फल लगेंगे उनका आकार, वज़न आदि एक जैसा होगा। इससे उनका तोड़ना, भंडारण, पैकिंग, परिवहन, डिब्बाबन्दी और संसाधन आदि आसान होगा। भ्रूण स्थानांतरण प्रौद्योगिकी अपनाने से अच्छी नस्ल के पशुओं की अनेक जातियाँ शीघ्रता से पैदा की जा सकती हैं।

इकाई 21 भोजन एवं पोषण

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
1.2 पोषण का महत्व
1.3 पोषक तत्व समूह और उनका महत्व
1.4 अनिवार्य पोषक तत्व
1.5 शरीर के लिए भोजन रूपी ईंधन
1.6 संतुलित आहार
1.7 भोजन संबंधी भ्रान्तियां
1.8 भोजन और एलर्जी
1.9 भोजन में मिलावट
1.10 कुपोषण और अस्वस्थता
1.11 सारांश
1.12 अंत में कुछ प्रश्न
1.13 उत्तर

1.1 प्रस्तावना

ससे पहले वाली इकाई में आपने भारत में खाद्यान्नों की सीमित उपलब्धि और वितरण के विषय में पढ़ा है। हमारी जनसंख्या ; एक बड़े भाग को पर्याप्त तथा पौष्टिक भोजन नहीं मिलता। उनके आहार में, प्रायः उन तत्वों का अभाव होता है जो वास्थ्य के लिए नितान्त आवश्यक हैं। इसके अलावा हमारी जनता पौष्टिक आहार के संबंध में जागरूक भी नहीं है। इस काई में हम यह बताएँगे कि किस प्रकार हम प्राप्य खाद्य पदार्थों का अपने स्वास्थ्य के हित में भली प्रकार से उपयोग कर सकते हैं।

ादे भोजन — जैसे चावल, रोटी, दाल, सब्ज़ी और दही — की अपेक्षा भाँति-भाँति के व्यंजन हम सबको कहीं अधिक ाकर्षित करते हैं। पर शरीर के विकास, कार्यशीलता और आवश्यकताओं की दृष्टि से यह जरूरी नहीं कि स्वादिष्ट व्यंजन र्ण व पर्याप्त हों, क्योंकि उनमें शरीर को तन्दुरुस्त और सही रख सकने के लिए आवश्यक पदार्थों की कमी हो सकती। कुछ खाद्य पदार्थ यद्यपि देखने में या स्वाद में बहुत भिन्न लगते हैं, पर उनमें पाये जाने वाले पौष्टिक पदार्थ एक से होते — जैसे दूध, अंडा, मांस, मछली इत्यादि। यह भी सम्भव है कि पूर्ण या अधिक मात्रा में भोजन करने के बावजूद सी व्यक्ति को पौष्टिक आहार प्राप्त न हो तो हम यह कैसे मालूम करें कि हमारा भोजन संपूर्ण है, अथवा नहीं। इस इकाई हम यही जानकारी दे रहे हैं। हम पढ़ेंगे कि पोषक तत्वों के आधार पर भोजन का विभिन्न समूहों में वर्गीकरण कैसे किया। सकता है, शरीर के लिए इन पोषक तत्वों की कितनी आवश्यकता है, और विभिन्न खाद्य पदार्थों से हम इन्हें किस कार प्राप्त कर सकते हैं। हम संतुलित आहार के विषय में भी जानकारी प्राप्त करेंगे।

ह सच है कि लोगों के खान-पान की रुचि पर उनके आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक मान्यताओं का प्रभाव ड़ता है, किन्तु पौष्टिक आहार के प्रति जागरूक होना स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है। सम्भव है इस इकाई में गई जानकारी के आधार पर आप अपने खाने-पीने की आदतों में सुधार ला सकें और दूसरों को भी इसकी जानकारी सकें। कई बार यह भी देखने में आता है कि कुछ धनी परिवार कम पौष्टिक और कुछ कम आय वाले लोग अधिक ष्टिक भोजन करते हैं। इसका कारण यह है कि कम आय वाले परिवार पौष्टिक आहार प्राप्त करने के लिए अपनी सीमित ाय का अधिक बुद्धिमत्ता से उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त इस साधारण ज्ञान के माध्यम से आप भोजन से सम्बद्ध ामाजिक कठिनाइयों को भी जान सकेंगे। हम कुपोषण की समस्या और उसकी विकरालता के संबंध में भी चर्चा करेंगे।

द्देश्य

ा इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- भोजन से प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों को जान सकेंगे तथा यह भी निर्धारित कर सकेंगे कि आपका दैनिक भोजन पौष्टिकता की दृष्टि से पूर्ण है या नहीं।
- ऐसे भोजन की आदत डाल सकेंगे जिससे आप स्वस्थ, आकर्षक, और चुस्त बन सकें।

- आयु, लिंग, कार्य, वज़न तथा जलवायु के अनुसार विभिन्न व्यक्तियों के भोजन की आवश्यकताओं की तुलना कर सकेंगे।
- खाने पीने की गलत आदतों तथा भोजन संबंधी भ्रान्तियों के कारण होने वाली हानियों से परिचित हो सकेंगे।
- कुपोषण, विटामिन अथवा लवण की कमी के कारण उत्पन्न होने वाली बीमारियों को जान सकेंगे।
- मिलावटी भोजन से उत्पन्न होने वाले खतरों को जान सकेंगे।
- घरों, दुकानों और गोदामों में खाद्य सामग्री को खराब होने से बचाने के महत्व को समझ सकेंगे।

इस इकाई में कई तालिकाएँ हैं। आपको इन्हें याद नहीं करना है। वे मात्र सन्दर्भ के लिए हैं।

21.2 पोषण का महत्व

हम भोजन के बिना नहीं रह सकते। हम अपनी भूख को किसी भी प्रकार के भोजन से शान्त कर सकते हैं, किन्तु शरीर को स्वस्थ और रोग मुक्त रखने के लिए हमें विशेष प्रकार के भोजन की आवश्यकता होती है। किसी भी व्यक्ति का स्वास्थ्य बहुत हद तक उसके भोजन पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त भोजन का प्रभाव हमारे व्यक्तित्व, कार्यकलाप, आचार-व्यवहार और जीवन के स्तर पर भी पड़ता है।

विभिन्न खाद्य पदार्थों में विभिन्न तत्व होते हैं। किसी भी एक प्रकार के खाद्य पदार्थ में वे सब तत्व नहीं होते जो हमें चाहिए और उस मात्रा में नहीं होते, जितनी हमें आवश्यकता होती है। यदि भोजन में किसी एक आवश्यक तत्व की एक लम्बी अवधि तक कमी बनी रहे, तो उससे बीमारियाँ तो हो ही सकती हैं और कई बार मृत्यु तक का अंदेशा हो जाता है। अतः यह जानना अति आवश्यक है कि हमारी भोजन संबंधी आवश्यकताएँ क्या हैं और उन्हें किन खाद्य स्रोतों से प्राप्त किया जा सकता है। विभिन्न देशों में किये गए अध्ययनों से पता चलता है कि उपयुक्त भोजन से बच्चों के विकास और आम जनता के स्वास्थ्य में सुधार हुआ है। जापानी बच्चों पर किए गए अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि संशोधित आहार से बच्चों के कई दशकों से चले आने वाले छोटे कद में वृद्धि हुई है।

एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमेरिका के विकासशील देशों में अधिकतर बच्चे अल्पपोषित होते हैं, कुछ को पर्याप्त भोजन ही नहीं मिलता, और कुछ बच्चों का आहार उन पौष्टिक तत्वों से वंचित है जो शरीर के लिए नितान्त आवश्यक हैं। इस प्रकार बच्चों के शारीरिक और मानसिक विकास में कमी रह जाती है और वे भोजन के अभाव के कारण होने वाले रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं।

पोषण विज्ञान एक सुविकसित विद्या है, और इस शताब्दी में पोषण के ज्ञान में बहुत वृद्धि हुई है। अब हम जानते हैं कि हमारे बच्चों और वयस्कों के लिए उचित आहार क्या है? लेकिन समस्या यह है कि इस जानकारी को लोगों तक कैसे पहुँचाया जाए ताकि वे यह सुनिश्चित कर सकें कि उनके भोजन में सभी आवश्यक पोषक तत्व हैं या नहीं और किस प्रकार लोगों को उपयुक्त भोजन उपलब्ध कराया जाये।

21.3 पोषक तत्व समूह और उनका महत्व

हमें मालूम होना चाहिए कि हमारा शरीर विभिन्न रासायनिक पदार्थों से बना है जिनका सीधा संबंध उस भोजन से है जो हम ग्रहण करते हैं। वैज्ञानिकों ने भोजन में पाए जाने वाले इन रासायनिक पदार्थों और शरीर में उनकी भूमिका का पता लगा लिया है। इन्हीं पदार्थों को वे "पोषक तत्व" कहते हैं और उन्होंने इनका अलग-अलग वर्गीकरण किया है।

यह जानने के लिए कि पोषक तत्व क्या हैं? आइए, हम प्रायः घरों में बनने वाली आलू-मटर की सब्ज़ी को लें। इसे बनाने के लिए हम घी अथवा तेल के अतिरिक्त प्याज़, टमाटर तथा कुछ अन्य मसालों का उपयोग करते हैं। इस सब्ज़ी से हमें जो पोषक तत्व प्राप्त होते हैं उनका विवरण नीचे दिया गया है :

	सामग्री	पोषक तत्व
1	आलू	कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrates)
2	मटर	प्रोटीन व कार्बोहाइड्रेट
3	घी/तेल	वसा (fats)
4	प्याज़	खनिज लवण (mineral)
5	टमाटर	खनिज लवण तथा विटामिन
6	मसाले	खनिज लवण
7	पानी	पानी

ाहरण से हमें यह पता चलता है कि किस प्रकार सभी पोषक तत्वों को भोजन में शामिल किया जा सकता
. 6 प्रकार के होते हैं — कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन, लवण और पानी। इन सभी का हमारे भोजन

तालिका 21.1 : खाद्य समूह और पोषक तत्व

खाद्य समूह	पोषक तत्व
अनाज, गेहूँ, ज्वार, बाज़रा आदि	कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, लौह तत्व (iron) तथा विटामिन बी
दालें तथा मटर सोयाबीन, रांजमा छोले आदि (legumes)	प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, लौह तत्व तथा विटामिन बी
सूखे मेवे, मूंगफली, तथा तेलों वाले बीज	वसा तथा प्रोटीन
दूध और दूध से बने पदार्थ	वसा, प्रोटीन तथा विटामिन
मांस, मछली, अंडा आदि	प्रोटीन तथा कुछ विटामिन
घी/तेल	वसा
चीनी/गुड़	कार्बोहाइड्रेट
कंदमूल	कार्बोहाइड्रेट
फल भाजी	विटामिन तथा लवण

में सही अनुपात में समावेश होना आवश्यक है। इनकी पूर्ति किसी एक अथवा विभिन्न व्यंजनों से की जा सकती है। यदि हम इस सब्ज़ी में से एक भी वस्तु निकाल देते हैं तो उस वस्तु में निहित पोषक तत्व निकल जाएगा। इसी प्रकार हम खाने की सभी वस्तुओं का मूल्यांकन कर सकते हैं।

वैज्ञानिकों ने उन भोज्य पदार्थों को, जिनमें एक ही प्रकार के तत्व होते हैं, एक खाद्य समूह में बद्ध किया है। इस प्रकार हमें भोजन के लिए अनेक विकल्प उपलब्ध हो जाते हैं। तालिका 21.1 में इन खाद्य समूहों तथा उनके पोषक तत्वों का वर्गीकरण किया गया है।

आपको मालूम है कि भारत में खान-पान की आदतें हर क्षेत्र के अनुसार अलग-अलग हैं। उत्तर भारत में मुख्य आहार रोटी है तो दक्षिण व पूर्वी भारत में मुख्य आहार चावल है। अन्य देशों में भी भोजन की अलग-अलग प्राथमिकताएँ हैं। ये आदतें प्रायः उस स्थान विशेष में उपलब्ध होने वाली खाद्य सामग्री पर निर्भर करती है। बहरहाल, कोई एक विशिष्ट भोजन अत्यावश्यक नहीं होता क्योंकि कई अन्य विकल्प वही पोषक तत्व प्रदान कर सकते हैं। हमें पता होना चाहिए कि किसी भी एक खाद्य पदार्थ में पोषक तत्व ठीक उसी अनुपात से या गुणवत्ता में नहीं हो सकते जो अन्य किसी पदार्थ में होते हैं। किसी भोज्य पदार्थ में कोई एक पोषक तत्व बहुत अधिक मात्रा में हो सकता है, और अन्य पोषक तत्व कम या नगण्य भी हो सकते हैं। उदाहरण के लिए तेल और घी में अधिकतर वसा होती है और चीनी में केवल कार्बोहाइड्रेट। उपरोक्त छह पोषक तत्व विभिन्न भोज्य पदार्थों में विभिन्न मात्रा में होते हैं। पदार्थों में युक्त पोषक तत्वों की मात्रा के आधार पर उनका वर्गीकरण किया गया है, जैसे प्रचुर प्रोटीन युक्त, प्रचुर कार्बोहाइड्रेट युक्त एवम् प्रचुर विटामिन युक्त पदार्थ। अगर हम पौष्टिक भोजन चाहते हैं तो हमें विभिन्न वस्तुओं को मिला-जुला कर खाना चाहिये।

बोध प्रश्न 1

आपने आज दोपहर के भोजन में जो कुछ खाया है उसकी सूची बनाइए और उपरोक्त तालिका के अनुसार उनको विभिन्न खाद्य समूहों में लिखिए तथा उनमें निहित पोषक तत्वों का उल्लेख कीजिए। आपकी जानकारी के लिए एक उदाहरण दिया गया है। यह भी बताइए कि क्या आपके दोपहर के भोजन में सभी पोषक तत्व विद्यमान थे?

क्रमांक	भोजन	समूह	पोषक तत्व
1	रोटी	अनाज	कार्बोहाइड्रेट प्रोटीन, लौह तत्व तथा विटामिन बी
2	चावल	.....	
3	.....	.....	.....
4	.....	.....	.....
5	.....	.....	.....
6	.....	.....	.....
7	.....	.....	.....

नोट : पोषक तत्वों का उल्लेख करते समय जिन अन्य वस्तुओं का पकाने में उपयोग किया गया है, उनको भी ध्यान में रखिए। उदाहरण के लिए बिस्कुट के तत्वों का उल्लेख करते समय आपको दूध, मैदा, घी, चीनी आदि के पोषक तत्वों की भी गणना करनी होगी।

भोजन का कार्य

आपके विचार में भोजन का क्या महत्व है? आगे पढ़ने से पहले भोजन के कुछ कार्यों का उल्लेख कीजिए?

.....

.....

.....

भोजन के निम्नलिखित कार्य हैं :

i) भोजन हमारे शरीर में ईंधन की तरह काम करता है। इससे हमें गर्मी और ऊर्जा मिलती है। इस ऊर्जा का उपयोग शरीर की आन्तरिक तथा बाह्य गतिविधियों के लिए होता है। आन्तरिक या अनैच्छिक गतिविधियाँ हैं, मस्तिष्क का कार्य, हृदय का धड़कना, साँस लेना, भोजन पचाना तथा मल त्यागना आदि। ये क्रियाएँ उस समय तक लगातार

चलती हैं, जब तक हम जीवित रहते हैं। बाह्य क्रियाओं में सभी प्रकार के दैनिक काम, खेलना-कूदना और व्यायाम आदि शामिल हैं।

ii) भोजन हमारे विकास और वृद्धि के लिए आवश्यक है विशेष रूप से बच्चों के लिए। भोजन से वे सभी पोषक तत्व प्राप्त होते हैं जिनसे मांस पेशियाँ मजबूत होती है और रक्त बनता है। इनसे शरीर के ऊतकों की सतत् क्षति पूर्ति भी होती हैं।

iii) भोजन का एक रक्षात्मक कार्य भी है। यह हमारे शरीर को संक्रमण से बचने की क्षमता देता है और हमारी आयु में वृद्धि करता है।

आइये अब हम देखें, कि भोजन के कौन से पोषक तत्व उपरोक्त कार्य करते हैं।

1 **कार्बोहाइड्रेट तथा वसा :** ये हमारे शरीर के लिए ऊर्जा का स्रोत हैं। कार्बोहाइड्रेट ऊर्जा का सबसे सस्ता साधन है क्योंकि यह आसानी से उपलब्ध हो सकता है। वसा से भी शरीर को "आपात्कालीन समय में ऊर्जा" प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए जब हमें किसी कारणवश भोजन प्राप्त नहीं होता, तब शरीर में संचित वसा से ही हमें शक्ति अथवा ऊर्जा मिलती है। अतः कार्बोहाइड्रेट एवं वसा की प्रचुरता से युक्त भोजन को **"ऊर्जादायक भोजन"** (energy foods) कहते हैं।

2 **प्रोटीन :** यह मांसपेशियों, त्वचा, रक्त तथा हड्डियों के लिए आवश्यक है। शरीर में जो ऊत्तक क्षति ग्रस्त हो जाते हैं उनकी प्रोटीन से क्षतिपूर्ति होती है। इसलिए हमें प्रतिदिन प्रोटीन चाहिए, हमारे शरीर को इनकी आवश्यकता हैं। प्रोटीन भी ऊर्जा प्रदान कर सकते हैं — विशेषकर उस स्थिति में जब यह ऊर्जा कार्बोहाइड्रेट या वसा से उपलब्ध न हो रही हो। इससे हमें संक्रमण से संघर्ष करने में भी सहायता मिलती है। प्रोटीन को **"शरीर-निर्मायी-भोजन"** (body building foods) कहा जाता है।

3 **लवण तथा विटामिन :** ये ऊर्जा के स्रोत तो नहीं हैं किन्तु ये शरीर की कोशिकाओं में ऊर्जा वितरित करने में सहायक होते हैं। अतः ये हमारे शरीर में भोजन का सही उपयोग करने में मदद करते हैं। ये हमारा रोगों से संरक्षण करते है। खनिज लवण जैसे कैल्शियम, दाँतों तथा हड्डियों का और आयरन, हीमोग्लोबिन जो लाल रक्त कणों में होता है, का मूल तत्व है। लवण से मांस पेशियों के फैलने व सिकुड़ने के कार्य में तथा नसों के स्पंदन में सहायता मिलती है। विटामिन और लवण को **"संरक्षक भोजन"** (protective foods) कहा जाता है।

4 **पानी :** यह शरीर के सभी तरल द्रव्यों का मूल पदार्थ है जैसे रक्त, पाचन-रस इत्यादि। शरीर के कुल भार का 50 से 70 प्रतिशत पानी होता है। यह शरीर की उपापचयी प्रक्रियाओं के लिए आवश्यक है। वस्तुतः हमारा शरीर किसी भी वस्तु को उस समय तक ग्रहण नहीं करता जब तक कि वह पानी में घुलने योग्य नहीं बन जाता। पाचन क्रिया में भोजन भी इतना पतला हो जाता है कि वह आसानी से घुलमिल सके और रक्त के साथ उन स्थानों पर जा सके जहां उसकी आवश्यकता है। अनावश्यक पदार्थ जैसे कि यूरिया रक्त के साथ गुर्दे में चला जाता है और अंत में मूत्र के साथ शरीर से बाहर निकलता है। पानी से शरीर का तापमान भी पसीने के माध्यम से नियमित होता है। शरीर के लिए कितने पानी की आवश्यकता है, यह जलवायु, कार्यकलाप तथा भोजन के प्रकार पर निर्भर करता है।

बोध प्रश्न 2

नीचे दी गई जगह में विभिन्न प्रकार के भोजन के उदाहरण दीजिए।

शरीर-निर्मायी भोजन .....

.....

ऊर्जादायक भोजन .....

.....

संरक्षक भोजन .....

.....

21.4 अनिवार्य पोषक तत्व

हमारा शरीर एक जीव-रासायनिक कारखाना है जो अपनी आवश्यकतानुसार कई प्रकार के यौगिक तैयार कर सकता है पर इसकी क्षमता सीमित है। हमारा शरीर कुछ जरूरी यौगिक तैयार नहीं कर सकता। इनकी पूर्ति हमें उन खाद्य पदार्थों द्वारा करनी पड़ती है जिनमें वह यौगिक हो। ऐसे यौगिकों को हम आवश्यक "पोषक तत्व" कहते हैं। उदाहरण के लिए विभिन्न खाद्य पदार्थों से प्राप्त होने वाले सभी प्रोटीन 12-20 प्रकार के एमीनों एसिड से बनते हैं। इनमें से दस का निर्माण हमारा शरीर नहीं कर सकता। इसके लिए हमें विशेष प्रोटीनयुक्त खाने का सहारा लेना पड़ता है। शेष एमीनो एसिड हमारा

शरीर किसी भी प्रोटीनयुक्त खाने द्वारा शरीर में ही बना लेता है। ऐसे एमिनो एसिड को हम अनावश्यक एमिनो एसिड कहते हैं। इसी प्रकार विटामिन, लवण और कुछ वसा एसिड (Fatlyacid) हमारे शरीर में नहीं बनते। अतः इनका भोजन में समावेश किया जाना चाहिए।

वनस्पतिक प्रोटीन तथा पशुजन्य प्रोटीन

प्रोटीन कई प्रकार के खाद्य पदार्थों से प्राप्त किये जा सकते हैं, जैसे अनाज, दालें, छोले, राजमा, मूँगफली, सूखे मेवे, दूध, मछली, मांस, अंडा आदि। किन्तु इन सबकी गुणवत्ता तथा पाच्यता एक सी नहीं होती और ये विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों में विभिन्न मात्रा में पाए जाते हैं। इनके गुणों में भी अन्तर है। पशुजन्य प्रोटीन में सभी अनिवार्य एमिनो एसिड पाए जाते हैं और इन्हें पूर्ण और बढ़िया किस्म का प्रोटीन माना जाता है। इनकी पचने की क्षमता भी कहीं अधिक है। दालों व अनाजों में पाए जाने वाले प्रोटीन में एक या एक से अधिक अनिवार्य एमिनो एसिड की कमी होती है और इसलिए इन्हें अपूर्ण प्रोटीन कहते हैं। इनकी पचने की क्षमता 60% होती है। परन्तु विभिन्न वनस्पति खाद्यान्नों के प्रोटीन मिलाकर लेने से वनस्पति प्रोटीन भी पशुजन्य प्रोटीन की तरह पूर्ण एवं कुछ हद तक बेहतर किस्म का बनाया जा सकता है। क्योंकि एक वनस्पति प्रोटीन की कमी दूसरे से पूरी हो जाती है। उदाहरण के लिए दाल-रोटी के भोजन में जो एमिनो एसिड रोटी में नहीं होते, वे दाल से और जो दाल में नहीं होते, वे रोटी से प्राप्त हो जाते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि हम भारतवासी युगों से अपने विवेक और अनुभव के आधार पर दाल-रोटी अथवा दाल-चावल मिलाकर एमिनो एसिड की जानकारी के बिना सहज रूप में खाते चले आ रहे हैं।

याद रखिए कि शाकाहारी व्यक्ति की प्रोटीन की आवश्यकता विभिन्न प्रकार के अनाज, ज्वार, बाज़रा, दालें व मटर इत्यादि के मिले-जुले आहार से पूर्ण की जा सकती है। पौधों से प्राप्त प्रोटीन में, सोयाबीन में सबसे अधिक प्रोटीन होता है। अन्य फली वाली दालों की तुलना में इसमें दुगुना प्रोटीन होता है। अंडों में भी बहुत प्रोटीन होता है और ये मांस की अपेक्षा कहीं अधिक सस्ते पड़ते हैं। भारत के ज्यादातर लोग केवल अनाज खरीदने में समर्थ हैं। जिनमें मुख्यतः कार्बोहाइड्रेट होते हैं। प्रोटीन युक्त भोजन महँगे होते हैं, हालाँकि अब सब्ज़ियों के दाम भी बढ़ते चले जा रहे हैं। समस्त विश्व में वैज्ञानिक प्रोटीन के नए स्रोत ढूँढने का प्रयास कर रहे हैं। सामान्यतः न खाई जाने वाली हरी पत्तियों, शैवाल तथा अन्य स्रोतों से प्रोटीन प्राप्त करने के तरीके निकाले जा रहे हैं। प्रोटीन एक जटिल यौगिक है जिसका फिलहाल विटामिनों की तरह किसी कार्यशाला में निर्माण नहीं किया जा सकता। भविष्य में शायद ऐसा संभव हो जाए।

हमारे लिए यह जानना भी आवश्यक है कि एक दिन में बहुत अधिक प्रोटीन नहीं लेने चाहिए, क्योंकि प्रोटीन की कुछ मात्रा ही शरीर की वृद्धि या मरम्मत में उपयोग होती है। शेष उर्जा प्रदान करने में या वसा में बदल जाती है। चूँकि प्रोटीन शरीर में जमा नहीं किया जा सकता, वह व्यर्थ हो जाता है। औसतन एक व्यक्ति को अपने एक किलो वज़न के अनुपात में एक ग्राम प्रोटीन की ज़रूरत है। शरीर की उर्जा के लिए कार्बोहाइड्रेट उपयुक्त है।

चित्र 21.1
एक वर्षीय एल्मर मैकाल्म स्कर्वी नामक रोग से पीड़ित था। उसके बचने की कोई आशा नहीं थी। उसकी माँ वैसे ही खाने के लिए उसे मेवा के छिलके देती रही। उसके स्वास्थ्य में सुधार होने देखकर वह उसे दूसरी सब्ज़ियाँ और फल भी खिलाने लगी और वह बालक देखते ही देखते स्वस्थ हो गया। इस प्रकार गहन अवलोकन से स्कर्वी रोग के लिए उचित आहार का पता लगाया गया। एल्मर मैकाल्म ने बड़े होकर 1913 में विटामिन "ए" का आविष्कार किया

विटामिन

शायद आप में से कुछ लोग विटामिनों के नामों से परिचित होंगे। ये वनस्पति व पशुजन्य खाद्यों से प्राप्त किये जा सकते हैं। विटामिन कम मात्रा में आवश्यक होते हैं पर भोजन में इनकी लगातार कमी से रोग भी हो सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में टानिक अथवा दवाइयों के रूप में विटामिन देने से ही रोग का निदान होता है। विटामिन स्वयं ऊर्जा का स्रोत नहीं, किन्तु ये कार्बोहाइड्रेट और वसा से ऊर्जा मुक्त करने में सहायक होते हैं। अतः भोजन में सही मात्रा में विटामिन अवश्य होने चाहिए। विटामिन कई प्रकार के होते हैं। कोई एक विशेष विटामिन अथवा विटामिन समूह स्वास्थ्य की रक्षा करता है और शरीर के किसी विशेष अंग के कार्य में सहायक होता है। प्रत्येक विटामिन की अपनी विशेष भूमिका है और कोई अन्य विटामिन इसका विकल्प नहीं हो सकता। तालिका 21.2 में विभिन्न विटामिनों तथा उनके स्रोतों एवं कार्यों का उल्लेख किया गया है। विटामिन "ए" स्वस्थ आँखों, चिकनी त्वचा और चमकदार बालों के लिए आवश्यक है। हमारे देश में विटामिन "ए" की कमी के कारण अनेक बच्चे अंधे हो जाते हैं। इसे आसानी से रोका जा सकता है, क्योंकि विटामिन "ए" से भरपूर सब्ज़ियाँ जैसे गाजर, हरी सब्ज़ियाँ, आदि की हमारे यहाँ कमी नहीं है। आप देखेंगे कि तालिका 21.2 में विटामिन बी के कई उपवर्ग हैं। शरीर के लिए इन का अलग-अलग महत्व है, परन्तु इनका स्रोत लगभग एक होता है। आपने देखा होगा कभी-कभी बच्चे या बड़े भूख न लगने की शिकायत करते हैं। उन्हें खाने की इच्छा ही नहीं होती। ऐसा विटामिन "बी" ग्रुप की कमी के कारण होता है जिससे व्यक्ति अल्पपोषण का शिकार हो जाता है और इसका उसकी वृद्धि पर असर पड़ता है।

विटामिन "सी" ताज़े फलों और सब्ज़ियों में विशेष रूप से नींबू, सन्तरा, मौसमी, तथा अमरूद में पाया जाता है। ये हमारी श्लेष्म झिल्लियों को स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक हैं, जो हमारे नाक, मुँह तथा अन्य भागों में होती है। इन्हें खाने से सर्दी-जुकाम आदि से बचाव होता है।

विटामिन "डी" जो अंडे, दूध, मक्खन आदि में पाया जाता है, हड्डियों के निर्माण में सहायक होता है। इसकी कमी से हड्डियाँ कमज़ोर हो जाती हैं और शारीरिक विकृति आ जाती है जैसे बच्चों की टाँग टेढ़ी हो जाती है। यही एक मात्र ऐसा विटामिन है जो हमारे त्वचा में धूप से बनता है और हमारे देश में धूप की कमी नहीं है। विटामिन "डी" को "सन-शाईन" विटामिन भी कहते हैं।

हमें मालूम होना चाहिए कि विटामिन "बी" और "सी" पानी में घुलनशील हैं। ये शरीर में नहीं रह सकते। इसीलिए इनका हमारे दैनिक भोजन में होना बहुत आवश्यक है। अन्य विटामिन पानी में नहीं घुलते। यदि वे आवश्यकता से अधिक हों तो शरीर में जमा हो जाते हैं। विटामिनों की अधिक खुराक से भी बीमारियाँ हो सकती हैं। इन्हें डाक्टर की सलाह से ही दवा अथवा टॉनिक के रूप में लेना चाहिए। हाल ही में यह देखा गया है कि विटामिन बी काम्पलेक्स तथा विटामिन "सी" के आधिक्य से स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है जैसे सिर दर्द, चिड़चिड़ापन, नींद न आना, जी मिचलाना आदि।

कुछ विशेष परिस्थितियों में विटामिन नष्ट हो जाते हैं अतः खाना पकाते समय उन्हें बचाने के लिए बहुत सतर्कता बरतनी चाहिए। उदाहरण के लिए विटामिन "सी" और "बी" ग्रुप के विटामिन, जो पानी में घुलनशील हैं प्रायः सब्ज़ी अथवा फलों को धोते समय बह जाते हैं। अधिक तापक्रम पर विटामिन "सी" नष्ट हो जाता है। अतः आँवला, हरी मिर्च, नींबू, संतरा, मौसमी, अमरूद आदि (चित्र 21.2) जिन में विटामिन "सी" प्रचुर मात्रा में होता है, पकाने की बजाय कच्चे खाने चाहिए। विटामिन बी-2, जो दूध, अनाज, और सब्ज़ियों में होता है, अधिक समय तक धूप में रहने से नष्ट हो जाता है।

साधारणतः खाना पकाते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए जिससे विटामिन नष्ट न हो :

i) सब्ज़ियाँ वगैरह धोने और पकाने में पानी का कम से कम प्रयोग करना चाहिए।

ii) जिस पानी में दाल चावल या सब्ज़ी भिगोई गई हो, अथवा पकाई गई हो, उसे फैंकना नहीं चाहिए। इस पानी को या तो खाना पकाने में अथवा अन्य किसी प्रकार से प्रयोग में लाना चाहिए।

iii) सब्ज़ी काटने से पहले धोनी चाहिए अन्यथा कटी सब्ज़ियों के विटामिन पानी के साथ बह जाएँगे।

iv) सब्ज़ी काटने के तुरन्त बाद पका लेनी चाहिए।

v) उसे कम से कम समय में पका कर तुरन्त परोसना चाहिए।

vi) खाना पकाने में मीठे सोडे का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि उससे विटामिन "सी" नष्ट हो जाता है।

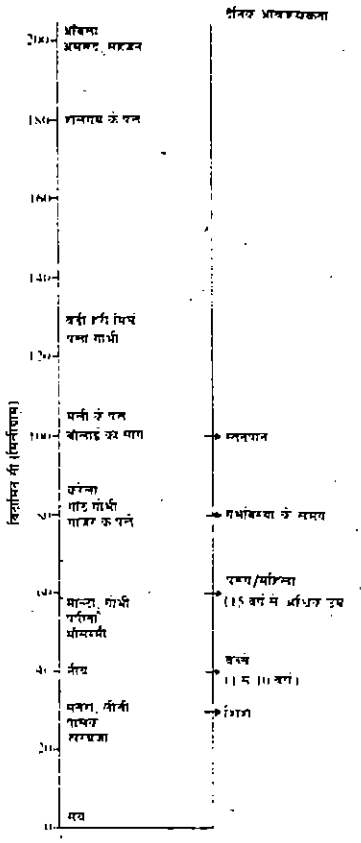

चित्र 21.2 : विटामिन सी की मात्रा, 100 ग्रा. खाद्य पदार्थ में।

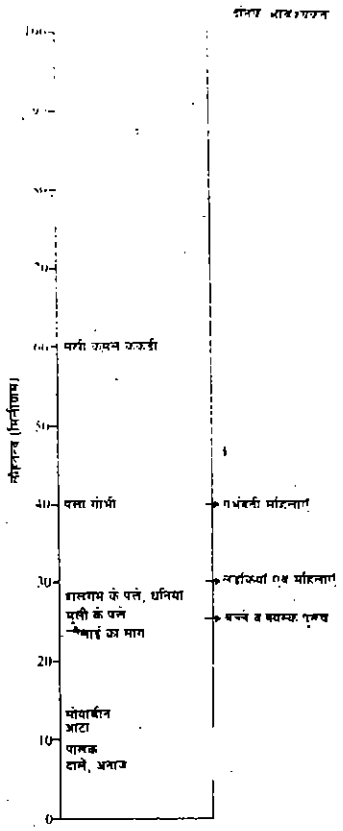

चित्र 21.3 : लौह तत्व की मात्रा, 100 ग्रा. खाद्य में 10 प्वाइंट स्केल पर अंकित।

तालिका 21.2 : विटामिन, उनके कार्य तथा स्रोत

विटामिन	कार्य	स्रोत
विटामिन "ए"	कम रोशनी में देखने की क्षमता स्वस्थ आँखें, चिकनी त्वचा, चमकदार बालों के लिए स्वस्थ हड्डियों के लिए	मक्खन, घी, दूध, अंडे की जर्दी, अधिक वसायुक्त मछली, गहरे हरे रंग की पत्तियों वाली सब्ज़ियाँ, गहरे पीले रंग की सब्ज़ियाँ, फल
विटामिन "बी" कॉम्पलेक्स बी-1, बी-2, बी-6, बी-12	स्नायुओं, मस्तिष्क, हृदय और अन्य मुख्य अंगों के कार्यों के लिए अनिवार्य सामान्य विकास एवं वृद्धि के लिए आवश्यक खून की कमी (एनीमिया) को रोकने में सक्षम	साबुत अनाज, दालें, अंकुरित दालें, दूध, अंडा, जिगर, मस्तिष्क और गुर्दा
विटामिन "सी"	घाव को जल्दी भरने में सहायक आयरन को आत्मसात् करने में सहायक, प्रतिदिन प्रयोग से संक्रमण से बचाव,	आँवला, अमरूद, पपीता, नींबू वंश के फल, हरी पत्तेदार सब्ज़ियाँ
विटामिन "डी"	आँतों द्वारा कैल्शियम और फ़ास्फ़ोरस आत्मसात् करने में सहायक हड्डियों के समुचित विकास के लिए आवश्यक	अंडा, मछली का तेल, मुर्गी, मक्खन, घी, दूध सूर्य की धूप
विटामिन "ई"	विटामिन "ए" को नष्ट होने से बचाने में सहायक	वनस्पति तेल, अनाज, अंकुरित अनाज के तेल, सूखे मेवे आदि।
विटामिन "के"	रक्तस्राव को, रक्त के जमाव द्वारा रोकने में सहायक	फलियों की दालें (जैसे मटर, छोले, राजमा आदि, हरी पत्तीदार सब्ज़ियाँ)

खनिज लवण

हमारी हड्डियों और दाँतों में काफी मात्रा में कैल्शियम होता है। एक वयस्क की हड्डियों में लगभग एक किलो और बच्चे की हड्डियों में 30 ग्राम कैल्शियम होता है। अतः बच्चे के वयस्क होने तक उसकी हड्डियों को अतिरिक्त कैल्शियम की

आवश्यकता होती है। इसलिये डॉक्टर गर्भवती महिलाओं तथा बच्चों को कैल्शियम की गोलियाँ खाने की सलाह देते हैं। कैल्शियम, शरीर में एक अन्य खनिज लवण, फ़ास्फ़ोरस के साथ सदा पाया जाता है। दूध तथा हरी सब्ज़ियाँ कैल्शियम का अच्छा स्रोत है। चौलाई और मैथी के साग में यह प्रचुर मात्रा में होता है। यह घाव से रक्त के बहाव को रोकने तथा मांसपेशियों के सही कार्य के लिए भी आवश्यक है।

एक अन्य महत्वपूर्ण खनिज लवण है लौह तत्व (iron),यह रक्त में हीमोग्लोबिन बनाने के लिए आवश्यक है। हीमोग्लोबिन से ही रक्त का रंग लाल होता है। एक किलो कैल्शियम की तुलना में शरीर में लौह तत्व की कुल मात्रा 3 ग्राम के करीब होती है। बढ़ते हुए बच्चों तथा गर्भवती महिलाओं के लिए यह बहुत आवश्यक है। रजोधर्म के समय महिलाओं में लौह तत्व की कमी हो जाती है, अतः उन्हें अतिरिक्त लौह तत्व लेने चाहिए। चित्र 21.3 में लौह तत्व युक्त विभिन्न खाद्य पदार्थ दर्शाए गए हैं।

स्वस्थ शरीर के लिये 17 विभिन्न लवण तत्वों की आवश्यकता होती है, यद्यपि जिस मात्रा में हम भोजन करते हैं उसकी तुलना में उन की मात्रा नगण्य है। इसीलिए इन खनिज लवण तत्वों को "सूक्ष्म पोषक तत्व" कहा जाता है। उनमें से कुछ तत्व शरीर की विभिन्न कोशिकाओं तथा उनके तरल पदार्थ का अंश हैं और कोशिकाओं की रासायनिक प्रक्रियाओं में भाग लेते हैं। क्या आपने फ्लोराइड दंतमंजन का नाम सुना है? फ्लोरीन दाँतों को मजबूत बनाने के लिए अनिवार्य है और उन्हें गिरने/से रोकता है। यही कारण है कि आजकल फ्लोरीनयुक्त दंतमंजन को बढ़ावा दिया जा रहा है। किन्तु अत्यधिक मात्रा में फ्लोरीन हानिकारक है। आंध्र प्रदेश और पंजाब के कुछ जिलों के पानी में अतिरिक्त फ्लोरीन पाया जाता है। ऐसा पानी पीने से दाँतों की चमक चली जाती है तथा उनका एनेमल कमजोर पड़ जाता है।

हम सब भोजन में साधारण नमक का उपयोग करते हैं। यह शरीर के लिए बहत आवश्यक है। साधारण नमक, सोडियम का क्लोरॉइड है। एक अन्य लवण है आयोडीन जिसकी की जरा सी मात्रा एक हार्मोन का महत्वपूर्ण अंश है। यह हार्मोन गले की थाइरॉइड ग्रंथि से उत्पन्न होता है। इसकी कमी से गले की थायरॉइड ग्रंथियों में सूजन आ जाती है, जिसे घेघ (गलगंडा) कहते हैं। इससे बचने के लिए खाने में आयोडीन युक्त नमक का प्रयोग करना चाहिए जो आजकल बाज़ार में आम मिलता है।

बोध प्रश्न 3

क) रिक्त स्थान भरिए :

1 ..... वे हैं जिन्हें हमारा शरीर उत्पन्न नहीं कर सकता।

2 वनस्पति से प्राप्त होने वाले प्रोटीन में कुछ ..... का ..... होता है।

3 ..... वनस्पति ..... का सर्वोत्तम स्रोत है।

4 ....., ..., ... उच्च प्रकार के प्रोटीन होते हैं क्योंकि इनमें सभी ..... पाए जाते हैं।

5 एक दिन में आवश्यकता से अधिक प्रोटीन ..... और ..... में बदल जाता है।

6 शरीर की ऊर्जा की पूर्ति ..... से करनी चाहिए।

7 ....., ..., ..., ..., ..., आदि की मिली जुली खुराक से मांस के समान किस्म का प्रोटीन प्राप्त हो सकता है।

ख) नीचे दी गई तालिका में पहले खाने में दिए गए विटामिन और लवण का मेल दूसरे खाने में दिए गए उनके कार्यों से कीजिए:

	विटामिन और लवण		कार्य
क)	विटामिन "बी"	(1)	संक्रमण से बचने के लिए प्रतिरोधक शक्ति
ख)	विटामिन "ए"	(2)	रक्त में हीमोग्लोबीन बनाने के लिए आवश्यक
ग)	विटामिन "डी"	(3)	टाँगे टेढ़ी हो जाना
घ)	विटामिन "के"	(4)	हड्डियों और दाँतों को मज़बूत बनाना
ङ)	विटामिन "सी"	(5)	आँखों को स्वस्थ, त्वचा को चिकना और बालों को चमकदार बनाने में सहायक
च)	कैल्शियम	(6)	रक्तस्राव को रोकना
छ)	लौह तत्व	(7)	मस्तिष्क और स्नायुओं के कार्यों में सहायक
ज)	आयोडिन	(8)	थायरॉइड ग्रंथि को सूजन से बचाना

21.5 शरीर के लिए भोजन रूपी ईंधन

जैसा कि पहले बताया गया है कि शरीर को आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार की क्रियाओं तथा विकास के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि शरीर की आन्तरिक और बाह्य क्रियाओं के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से शरीर की तुलना एक मशीन से की जा सकती है जिसे चलाने के लिए भोजन रूपी ईंधन की आवश्यकता होती है। शरीर में यह शक्ति अथवा ऊर्जा भोजन से उत्पन्न होती है। इस क्रिया को उपापचय कहते हैं। इसकी तुलना अग्नि के दहन क्रिया या प्रज्वलन से की जा सकती है। इस दहन में भी ऑक्सीजन का ह्रास होता है और कार्बन डाइआक्साइड उत्पन्न होती है। यदि शरीर को कम से कम मात्रा में आवश्यक शक्ति नहीं मिलती तो वह अपने आन्तरिक अथवा बाह्य कार्यों को ठीक से नहीं कर सकता।

लेकिन फिर भी शरीर और मशीन के बीच एक मूलभूत अन्तर यह है कि शरीर उसी ईंधन से निर्मित है जिससे यह शक्ति प्राप्त करता है। कोई भी मशीन ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए स्वयं उपयोग में नहीं आ सकती। किन्तु हमारे शरीर में यह क्षमता है। भोजन के अभाव में या व्रत के दिन शरीर स्वयं अपनी वसा को जला कर ऊर्जा उत्पन्न कर सकता है। इसके परिणामस्वरूप उसका वज़न कम हो जाता है। यदि शरीर को आवश्यकता से अधिक ऊर्जा मिलती है तो वह भविष्य में इस्तेमाल के लिए वसा के रूप में शरीर में एकत्रित होती जाती है।

शरीर को ऊर्जा को "कैलोरी" अथवा "किलो कैलोरी" (1000 कैलोरी) में मापा जाता है। उदाहरण के लिए जब एक चम्मच चीनी (5 ग्राम) शरीर में जलती है तो उससे 20 किलो कैलोरी ऊष्मा उत्पन्न होती है। वैज्ञानिकों ने शिशुओं, लड़कियों, लड़कों और विभिन्न आयु एवं विभिन्न वज़न वाले वयस्कों के लिए आवश्यक ऊर्जा का अध्ययन किया है जिससे वे यह जान सके कि विभिन्न कार्यों में कितनी कैलोरी खर्च होती है। आप यह जानने के लिए उत्सुक होंगे कि हमें अपने शरीर को स्वस्थ और क्रियाशील बनाए रखने के लिए कितना भोजन चाहिए। इसकी गणना के लिए हमें

i) विभिन्न पोषण तत्वों की ऊर्जा शक्ति को जानना होगा और

ii) उन बातों को जानना होगा जो किसी व्यक्ति की ऊर्जा आवश्यकता को प्रभावित करती हैं।

नीचे दी गई तालिका में उन पोषक तत्वों का विवरण है जो ऊर्जा प्रदान करते हैं। इनकी तुलना पेट्रोल से की जा सकती है :

कार्बोहाइड्रेट	4.0 किलो कैलोरी/ग्राम
प्रोटीन	4.0 किलो कैलोरी/ग्राम
वसा	9.0 किलो कैलोरी/ग्राम
पेट्रोल	10.0 किलो कैलोरी/ग्राम

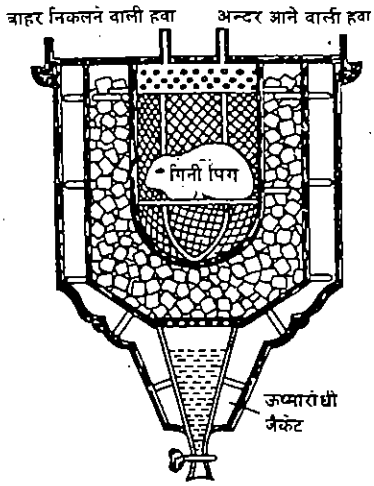

चित्र 21.4 : पोषण पर एक प्रयोग 1783 में एन्टोनी लवाइज़ियर और पियरे डी लेपलेस ने यह दर्शाया कि हमारे शरीर में भोजन आग की तरह "जलता" है। इस प्रयोग में उन्होंने गिनी-पिग द्वारा उत्पादित कार्बन डाइऑक्साइड और ऊष्मा को मापा और पाया कि ये कोयले की मात्रा के द्वारा जलने से उत्पन्न ऊष्मा और कार्बन डाइऑक्साइड के अनुपात में हैं।

आइये, अब हम यह मालूम करें कि मनुष्य को एक दिन में कितनी ऊर्जा चाहिए? व्यक्ति के लिए ऊर्जा की आवश्यकता मुख्यतः दो बातों पर निर्भर करती है :

i) शरीर की आन्तरिक या मूल प्रक्रिया जिसे आधारी उपापचय दर भी कहते हैं।

ii) उसकी शारीरिक गतिविधियों पर।

शरीर में ऊर्जा का अधिकतम भाग आन्तरिक क्रियाओं यानि आधारी उपापचय (basal metabolism) पर खर्च होता है। यह खर्च, शरीर, लिंग, आयु, नींद, शारीरिक तापमान, हार्मोन आदि से प्रभावित होता है।

उदाहरण के लिए आधारी उपापचय के लिए ऊर्जा खर्च की तुलना निम्नलिखित तालिका में देखिए।

लम्बा व पतला व्यक्ति > छोटा व पतला व्यक्ति

हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति > छोटा व मोटा व्यक्ति

शिशु > किशोर

पुरुष > स्त्री

जागृत अवस्था में > निद्रावस्था में

युवा > वृद्ध

बुखार के दौरान > स्वस्थ अवस्था में

ठंडी जलवायु में > गरम जलवायु में

विभिन्न भारतीय खाद्यों की ऊर्जा और पोषक मूल्यों को भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् ने प्रकाशित किया है। तालिका 21.3 में आमतौर पर खाई जानेवाली वस्तुओं और उनकी ऊर्जा तथा प्रोटीन का उल्लेख किया गया है।

तालिका 21.3 : आमतौर पर खाए जाने वाले कुछ खाद्य पदार्थों में कैलोरी तथा प्रोटीन की मात्रा/100 ग्राम

खाद्य पदार्थ	ऊर्जा (किलो कैलोरी)	प्रोटीन (ग्राम)
अनाज	340	10-13
दाल और फलियों वाली दालें जैसे राजमा, मटर आदि	345	20-25
सोयाबीन	430	43.00
भैंस का दूध	120	4.3
क्रीम निकला हुआ दूध	30	2.5
पनीर	264	18.3
चीज़	348	24.1
गाय का दूध	70	3.2
मक्खन	730	—
वनस्पति तेल व चर्बी	900	—
अंडा	170	13.3
चीनी	390	—
मूँगफली	570	25.3
सूखा नारियल	660	6.8
बादाम	655	20.8
केला	116	1.2
अमरूद	50	0.9
आम	74	0.6
संतरा	48	0.7
पालक	26	2.0
आलू	95	1.6
मांस	200	18.5
मछली	100	14.9

शारीरिक क्रियाओं पर ऊर्जा का खर्च आधारी उपापचय से अक्सर कम होता है और यह व्यक्ति द्वारा किये गये कार्यों पर निर्भर करता है। कार्य हल्का-फुल्का साधारण या कठिन परिश्रम हो सकता है। पत्थर तोड़ने, दौड़ने, या अन्य कठिन शारीरिक परिश्रम करने वाले व्यक्तियों की शारीरिक क्रियाओं पर ऊर्जा का खर्चा आधारी उपापचय से ज्यादा होता है। आपने अनुभव किया होगा कि कठिन परिश्रम करने के पश्चात् हमें बहुत भूख लगती है और हम बहुत खाना खाते हैं, जबकि खाली बैठे रहने पर भूख अपेक्षाकृत कम लगती है। नीचे दी गई तालिका में गतिहीन, हल्की, कठिन एवं बहुत कठिन क्रियाएँ दी गई हैं और साथ ही साथ यह भी बताया गया है कि इनमें प्रति घंटे के हिसाब से कितनी ऊर्जा व्यय होती है।

तालिका 2. विभिन्न प्रकार की क्रियाओं के लिए ऊर्जा (कैलोरी) की आवश्यकता

हल्का काम 150 किलो कैलोरी/घं.	साधारण काम 150-250 किलो कैलोरी/घं.	कठिन काम 250-350 किलो कैलोरी/घं.	बहुत कठिन काम 350 किलो कैलोरी/घं.
पढ़ना, लिखना, टाइप करना	झाड़ू लगाना, पोछा लगाना	साइकिल चलाना	टेनिस, फुटबाल, हाकी आदि खेलना
बर्तन धोना	कपड़े धोना	खेलकूद में भाग लेना	तेज दौड़ना,
बैठना	बागवानी करना	लकड़ी काटना	साइकिल चलाना,
परोसना		बढ़ईगिरी करना	तेजी से तैरना
बातचीत करना		चलना	

एक साधारण शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्ति के लिए प्रतिदिन औसतन 2000 किलो कैलोरी की आवश्यकता होती है।

21.6 संतुलित आहार

अभी तक हमने भोजन की मात्रा और उसकी गुणवत्ता का उल्लेख किया है। आहार में इन दोनों का संतुलन होना चाहिए। सन्तुलित आहार में विभिन्न खाद्य पदार्थों का समावेश होता है जिससे मनुष्य की ऊर्जा की आवश्यकता पूरी हो सके तथा स्वस्थ रहने के लिए उचित मात्रा में प्रोटीन, विटामिन एवं लवण मिल सके। चित्र 21.5 में बताया गया है कि संतुलित आहार में विभिन्न प्रकार की खाद्य सामग्री से कितनी प्रतिशत कैलोरी प्राप्त की जाए।

तालिका 21.5 से यह पता चलता है कि विभिन्न आयु वर्गों के लिए संतुलित आहार में क्या-क्या होना चाहिए।

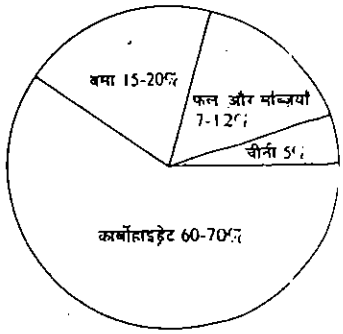

चित्र 21.5
संतुलित आहार में पोषक तत्वों की आवश्यकता के अनुसार भोज्य पदार्थों का कैलोरी के रूप में विभाजन।

तालिका 21.5 : विभिन्न आयु वर्गों के लिए संतुलित आहार

भोज्य पदार्थ	आवश्यकता (ग्राम में)								
	व्यस्क परिश्रम करने वाले पुरुष	साधारण स्त्रियां	अतिरिक्त आवश्यकतायें		छोटे बच्चे			लड़कियाँ	लड़के
			गर्भवती महिलाएं	स्तनपान करानेवाली माताएं	1-3	4-6	10-12	10-12	13-18
मिले-जुले अन्न	475	350	50	100	150	200	320	350	430-450
दालें व									
फलीवाली दालें जैसे राजमा	80	70	—	10	50	60	70	70	70
पत्तेवाली हरी सब्ज़ियां	125	125	25	25	50	75	100	150	100
अन्य सब्ज़ियां	75	75	—	—	30	50	75	75	75
कन्द मूल	100	75	—	—	—	—	—	75	100
फल	30	30	—	—	50	50	50	30	30
दूध	200	200	125	125	300	250	250	250	250
वसा/तेल	40	35	—	15	20	25	35	35	45
चीनी/गुड़	40	30	10	20	30	40	50	30	40
कुल किलो कैलोरी	2800	2200	2200 + 300	2200 + 700	1200	1500	2100	2200	2500 3000

चित्र 21.6

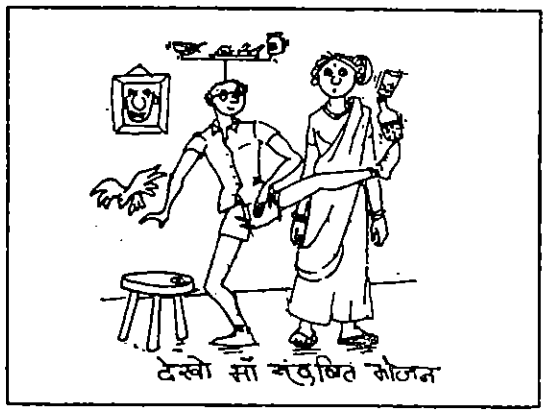

चित्र 21.7

मोटापा

प्रायः मोटे लोग यह सोचते हैं कि उनके मोटापे का कारण उनके शरीर की बनावट है अथवा यह वंशानुगत है। कुछ मामलों में तो यह सही भी हो सकता है। किन्तु क्या आपने कभी कोई मोटा मज़दूर, कुली, खिलाड़ी अथवा पर्वतारोही देखा है? अन्य लोगों की अपेक्षा उनके भोजन की मात्रा अधिक होने के बावजूद भी उनका वज़न नहीं बढ़ता। क्यों? इसलिए कि वे अपनी कैलोरी शारीरिक श्रम में खर्च कर डालते हैं, जब कैलोरी की मात्रा आवश्यकता से अधिक होती है, तो अतिरिक्त मात्रा वसा के रूप में शरीर में एकत्र हो जाती है और धीरे-धीरे व्यक्ति मोटा होता चला जाता है। सही वज़न और चुस्त शरीर स्वास्थ्य के लिए अच्छा है।

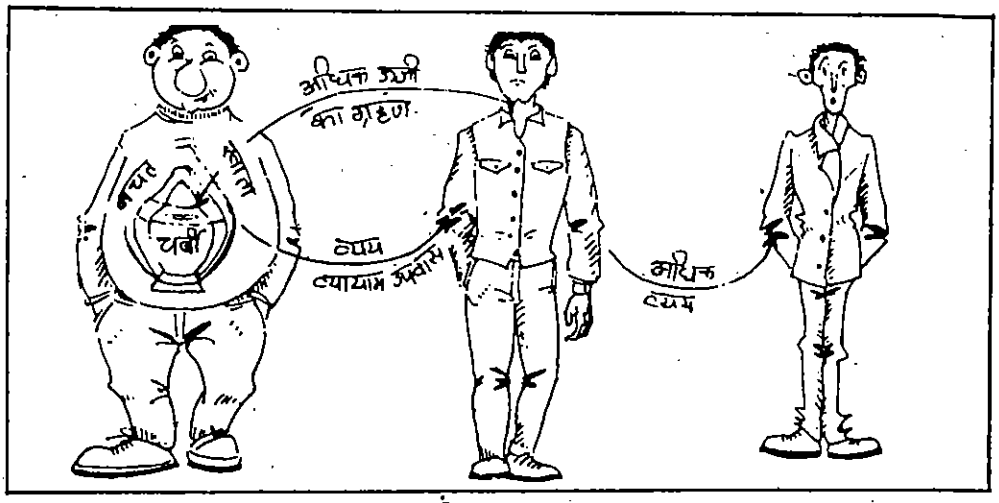

चित्र 21.8

बुखार अथवा संक्रमण में भोजन की आवश्यकता

बुखार में शरीर के ऊतकों के प्रोटीन नष्ट होते हैं तथा पानी और नमक की कमी हो जाती है। जैसे-जैसे बुखार बढ़ता है, वैसे-वैसे आधारी उपापचय दर भी बढ़ती चली जाती है। ऐसी स्थिति में किस प्रकार के भोजन की आवश्यकता होती है?

आधारी उपापचय की दर बढ़ने से तथा ऊतक के प्रोटीन नष्ट होने के कारण भोजन में कैलोरी तथा प्रोटीन की मात्रा अधिक होनी चाहिए। रोगी को ऐसा भोजन देना चाहिए जो वह आसानी से पचा सके, जैसे दूध, अंडा, कस्टर्ड, पुडिंग, फल या फलों का रस आदि। ग्लूकोज़ और चीनी से ऊर्जा की कमी को तुरन्त पूरा किया जा सकता है। बुखार के समय मक्खन, घी, वनस्पति तेल आदि नहीं देना चाहिए, किन्तु ज्वर उतर जाने पर इन्हें भोजन में सम्मिलित किया जाना चाहिए क्योंकि ये ऊर्जा के भरपूर स्रोत हैं।

अब भोजन के बारे में इतना कुछ जान लेने के पश्चात् आपको भूख लग आई होगी। थोड़ा आराम करके अपनी रुचि के अनुसार कुछ खा लें और उसके बाद निम्नलिखित बोध प्रश्न पूरे करने का प्रयास करें।

बोध प्रश्न 4

क) नीचे दिये गए कोष्ठकों में गलत शब्द काट दीजिए :-

1) 20 ग्राम वसा (20 ग्राम/45 ग्राम/70 ग्राम) कार्बोहाइड्रेट के बराबर शक्ति प्रदान करती है।

2) बच्चों को (कम शक्तिदायक/अधिक शक्तिदायक) तथा (कम प्रोटीन वाली/अधिक प्रोटीन वाली) खुराक की आवश्यकता होती है।

3) एक तरुण को एक वृद्ध की अपेक्षा (अधिक/कम) शक्ति की आवश्यकता होती है।

4) मनुष्य के मोटे होने का कारण (वंशानुगत/शारीरिक बनावट/अधिक ऊर्जाग्रहण/अधिक आधारी उपापचय दर) है।

ख) नीचे दिये गये भोज्य पदार्थ एक दैनिक आहार में सम्मिलित किये गये हैं तालिका 21.3 में दिए गये आँकड़ों का उपयोग करके बताइए इनमें कैलोरी की मात्रा कितनी है।

2 चपाती (प्रत्येक 25 ग्राम) .....

1 प्लेट चावल (50 ग्राम) .....

2 कटोरी दाल (प्रत्येक 25 ग्राम) .....

1 कटोरी पालक (50 ग्राम) .....

1 प्लेट आलू (90 ग्राम) .....

1 आम (50 ग्राम) .....

1 बड़ा चम्मच घी/तेल (10 ग्राम) .....

21.7 भोजन और अन्धविश्वास

शायद आपकी भी धारणा अपने परिवार के सदस्यों या मित्रों से जानकार बनी हो कि कुछ खाद्य पदार्थों को एक साथ खाना स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद है। जैसे कि मूली-दूध या मछली-दूध साथ नहीं लेने चाहिए, इससे त्वचा पर सफ़ेद दाग हो जाते

हैं; फल या दही के तुरन्त बाद कभी दूध नहीं पीना चाहिए, यह पेट में जाकर फट जाता है आदि। लेकिन इन विश्वासों का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। क्या आप जानते हैं कि पेट में जाकर दूध का क्या होता है? हमारे पेट में जो अमाशय रस होता है, दूध हज़म करने के लिए पहले उसे फाड़ देता है।

कुछ लोग बीमारी के निदान हेतु कुछ खास प्रकार के आहार के सेवन की सलाह देते हैं। ऐसे सुझाव हमारे हितैषी मित्रों से मिलते हैं। परन्तु यह भी तो सम्भव है कि इसमें आवश्यक पोषक तत्वों की कमी रह जाए। रोगी को डाक्टर द्वारा बताया गया आहार ही ग्रहण करना चाहिए।

21.8 भोजन और एलर्जी

भोजन और एलर्जी, और भोजन संबंधी भ्रांतियों में बहुत अंतर है। खाने की चीज़ें होती हैं जिनका कुछ लोगों पर विचित्र प्रभाव पड़ता है। शायद आप भी कभी किसी ऐसे व्यक्ति से मिले हैं जिसकी त्वचा पर अंडा खाने ही पित्त उभर आता है। भोजन के कुछ तत्वों से कुछ लोगों को एलर्जी हो जाती है। एलर्जी उस विघ्न-बाधा का वैज्ञानिक नाम है जो किसी एक विशेष प्रकार के तत्व के प्रति संवेदी होने के कारण व्यक्ति को होती है। कुछ लोगों को पराग से, तो कुछ लोगों की त्वचा में कुछ खास पदार्थ के स्पर्श मात्र से एलर्जी हो जाती है। दवाओं से एलर्जी हो जाना एक आम बात है। पेन्सिलीन का इंजेक्शन देने से पहले डाक्टर यह देख लेते हैं कि रोगी को कहीं इससे एलर्जी तो नहीं है। जिन खाद्य पदार्थों से एलर्जी हो सकती है वे हैं मछली, अंडा, दूध और दूध से बनी वस्तुएँ। प्रायः प्रोटीन वाले खाद्यों से एलर्जी होती है। भोजन से कुछ प्रकार की एलर्जी हो सकती है जैसे — त्वचा पर पित्त उछल आना, एक्ज़िमा, ऐस्थ्मा, छींके, एक तरफा सिर दर्द (माइग्रेन), उल्टी, दस्त आदि।

21.9 भोजन में मिलावट

हम एक ऐसे समाज में रहते हैं जहाँ कभी-कभी भोजन तो क्या दवाओं तक में मिलावट की जाती है और वह भी ऐसी चीज़ों की जो शायद ही खाने या पीने योग्य हों। उदाहरण के लिए — शुद्ध घी में डालडा मिला दिया जाता है और वनस्पति घी में सस्ते किस्म के तेल/ स्वाद के लिए कई प्रकार के रसायन भी मिलाए जाते हैं। दालों में कंकड़ और आटे में चॉक का पाउडर मिला कर बेचा जाता है। इसी प्रकार पिसे हुए मसालों में, चाय या काफ़ी पाउडर में भी मिलावट होती है। दूध में पानी मिलाना एक आम बात है और कभी-कभी तो यह पानी [illegible] होता है। व्यापारी मिलावट द्वारा अधिक फ़ायदा पाने के लालच में यह भी भूल जाते हैं कि लोग इस मिलावट से बीमार पड़ सकते हैं। उदाहरण के लिए सरसों के तेल में आर्जिमॉन का तेल मिलाने से लकवा हो जाता है। चने की दाल में खेसरी दाल मिलाने से लेथाइरस अर्थात् कलायखंज रोग हो जाता है। इसमें पैरों का लकवा हो जाता है। हल्दी में "धातु पीत" नामक विषैला तत्व मिलाते हैं जिससे कैंसर भी हो सकता है।

विज्ञापन एजेन्सियाँ भी झूठे आश्वासन देकर लोगों को गुमराह करती हैं। ऐसे विज्ञापनों से सतर्क रहना आवश्यक है। क्या इन पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है? सरकार भोजन अथवा भोज्य सामग्री में मिलावट करने वालों के लिए कड़े नियम बनाए और ऐसे लोगों को कड़ी सजा दे, जिससे अन्य लोग सतर्क हो जाएँ। उपभोक्ताओं को चाहिए कि वे उपभोक्ता कल्याण संस्थाएँ बनाएँ जहाँ वे अपनी शिकायतें दर्ज कर सकें और ऐसे गलत कार्यों को रोकने के लिए दबाव डाल सकें। अमेरिका में इस प्रकार की संस्थाएँ बहुत सक्रिय हैं। वे बाज़ार में बिकने वाली हर वस्तु की जाँच करती हैं।

21.10 कुपोषण और अस्वस्थता

भाग 21.6 में हमने संतुलित आहार के विषय में पढ़ा। अब हम यह देखेंगे कि कम आहार का स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है?

क्या आप "कुपोषण" शब्द से परिचित हैं? कुपोषण का अर्थ है व्यक्ति को उचित मात्रा में भोजन नहीं मिल रहा अथवा उसके आहार में किसी पोषक तत्व या तत्वों की कमी है, जिसके कारण से उसके स्वास्थ्य में गिरावट आ रही है। प्रोटीन और कैलोरी की कमी से भारत एवं एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका के विकासशील देशों में लोग प्रायः कुपोषण का शिकार होते हैं।

भारत के कुपोषण के क्या कारण है? कुछ कारण निम्नलिखित है :

1 गरीबी,
2 विशाल जनसंख्या,
3 कम उपज और भोजन का असमान वितरण,

4 ----------

5 ----------

क्या आप इनके अलावा कुछ और कारण बता सकते हैं? शिक्षा का अभाव, अज्ञानता और खान-पान की गलत आदतें या धारणाएँ भी कुछ हद तक कुपोषण के लिए जिम्मेदार हैं।

जैसा कि आप जानते हैं पृथ्वी पर जनसंख्या और गरीबी असमान रूप से फैली है। समृद्ध देशों में, जैसे अमरीका, कनाडा, रूस, आस्ट्रेलिया आदि में जनसंख्या कम है और रहन-सहन का स्तर ऊँचा है। परन्तु इसके विपरीत एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमरिका के विकासशील देशों में विश्व की 70% जनता निवास करती है परन्तु रहन-सहन का स्तर निम्न है। संसार की लगभग 3/4 कुपोषित जनता भारतीय उपमहाद्वीप में रहती है।

संसार के सबसे अधिक जनसंख्या वाले देशों में भारत का दूसरा स्थान है। अनुमान है कि वर्ष 2000 तक भारत की जनसंख्या 100 करोड़ हो जाएगी। बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ भोजन की माँग भी बढ़ती है। योजना आयोग के आंकड़ों के अनुसार 1977-80 में 48 प्रतिशत ग्रामीण और 41 प्रतिशत शहरी जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे थी, अर्थात् लोग कैलोरी से पूर्ण आहार जुटा पाने में असमर्थ थे। इसलिए हमारी जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा कुपोषण का शिकार है। हाल ही के आंकलन के अनुसार गरीबी रेखा के नीचे जनता की संख्या घटकर 39 प्रतिशत रह गई है। किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कुल जनसंख्या में वृद्धि हुई है। अतः कुपोषित लोगों की संख्या (जिसमें पुरुषों, स्त्रियों व बच्चों की संख्या) अब 30 करोड़ के लगभग है। हमें उत्पादन के साथ-साथ उपभोक्ताओं की खरीदने की क्षमता को भी बढ़ाना होगा। अर्थात् लोगों के पास सही भोजन खरीदने के लिए पैसा होना चाहिए। तात्पर्य यह है कि हमें लोगों के लिए अधिक नौकरियाँ और अधिक वेतन की व्यवस्था करनी होगी। यह एक कठिन कार्य है। इसके लिए देश में आर्थिक परिवर्तन की आवश्यकता है।

सामाजिक स्तर पर हमें भोजन बरबाद नहीं करना चाहिए। आपने देखा होगा कि बड़े-बड़े प्रीतिभोजों में चाहे वह समृद्ध लोगों के यहाँ हो या साधारण व्यक्तियों के यहाँ, काफ़ी खाना बर्बाद होता है। इसके अलावा हमें आवश्यकता से अधिक भोजन, कैलोरी या प्रोटीन के लिए नहीं लेना चाहिए क्योंकि यह स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है।

हम भारत में कुपोषण की चर्चा कर रहे थे। अपर्याप्त भोजन लेने से पोषक तत्वों का संतुलन नहीं रहता। एक या एक से अधिक पोषक तत्वों की कमी हो जाती है और परिणाम होता है स्वास्थ्य में क्षति, रोगी होने की संभावना और आयु में कमी। हमारे देश में रोगियों की चिकित्सा पर जो धन व्यय किया जाता है उसे पौष्टिक भोजन पर खर्च करके बीमारियों की रोकथाम की जा सकती है।

कैलोरी व प्रोटीन के अभाव में कुपोषण से होने वाली बीमारियाँ

विकासशील देशों में कैलोरी एवं प्रोटीन की कमी से होने वाले रोगों की समस्या गंभीर है। गरीब और अशिक्षित परिवारों के बच्चे ही इन रोगों से सर्वाधिक ग्रस्त है जो हमारी जनसंख्या का प्रमुख भाग हैं। प्रोटीन और कैलोरी के अभाव में कुपोषण से होने वाली दो गंभीर बीमारियाँ हैं **क्वाश्योरकर** और **सूखा रोग**। प्रतिवर्ष करोड़ों बच्चे इन बीमारियों के कारण मौत के मुँह में चले जाते हैं और करोड़ों इनके कारण कष्टमय जीवन व्यतीत करते हैं। इन रोगों से बच्चों का शारीरिक विकास कुंठित हो जाता है और संक्रमण से लड़ने की उनकी प्राकृतिक क्षमता कमज़ोर पड़ जाती है। अत्यधिक कुपोषण का बच्चों के मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है। वे मंदबुद्धि रह जाते हैं और पूर्णरूप से विकसित नहीं हो पाते। इसलिए हर प्रकार से अपने परिवार और देश पर एक बोझ बन जाते हैं।

क्वाश्योरकर

इस बाल रोग का पता सबसे पहले अफ्रीका में 1935 में लगा था। यह नाम अफ्रीकी भाषा के दो शब्दों से बना है जिसका अर्थ है पहला और दूसरा अर्थात् दूसरा बच्चा जल्दी पैदा होने से पहला बच्चा माँ के पोषक दूध से वंचित हो जाता है और वह क्वाश्योरकर रोग से ग्रस्त हो जाता है।

माँ का दूध छुड़ाने पर बच्चे धीरे-धीरे कमज़ोर होते चले जाते हैं, ऐसा क्यों? माँ का दूध छोड़ने पर बच्चे को बड़ों की अपेक्षा दुगनी मात्रा में प्रोटीन की आवश्यकता होती है। माँ के आहार में कोई कमी रह जाने पर भी उसका दूध 6 माह तक बच्चे के पोषण के लिए मात्रा तथा गुण की दृष्टि से पर्याप्त होता है। और वह बच्चे की संक्रमण से भी रक्षा करता है। 6 माह के पश्चात् बच्चे को सही ढंग से विकसित होने के लिए अतिरिक्त आहार की आवश्यकता होती है जो निम्नलिखित कारणों से उसे नहीं मिल पाता :

1 घर में दूसरे बच्चे के आ जाने से आर्थिक बोझ बढ़ जाता है।

2 अज्ञानवश सर्वोत्तम भोजन रोजी-रोटी कमाने वाले पुरुष को दिया जाता है, बच्चे और महिलाएँ बचा-खुचा खाना खाते हैं।

3 बच्चों को माँ का दूध अच्छा लगता है, खाने को लेकर उनके बहुत नखरे होते हैं। कोई भी नई चीज़ आसानी से नहीं खाते।

4 अधिकतर भारतीय केवल शाकाहारी भोजन जुटा पाते हैं। बच्चे को पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन देना मुश्किल हो जाता है क्योंकि इसके लिए बच्चे को बहुत अधिक मात्रा में भोजन देने से ही उसकी प्रोटीन की आवश्यकता पूरी हो सकती है।

पौष्टिक आहार के अभाव और प्रोटीन की कमी के कारण धीरे-धीरे बच्चे की भूख कम हो जाती है और उसे प्रायः दस्त लग जाते हैं। माँ समझती है कि दस्त लगने का कारण उसके दाँत निकलना है, पर यह सही नहीं। दाँत निकलते समय दस्त लगने का कारण संक्रमण होता है। बच्चा मसूड़ों में कुलबुलाहट महसूस करता है और जमीन पर पड़ी किसी भी चीज़ को उठा कर मुँह में डाल लेता है। इस प्रकार कुछ भी मुँह में डाल लेने से या बिना धुले फल, सब्ज़ी आदि खाने से उसे संक्रमण हो जाता है। माँ दस्त के कारणों को समझे बिना बच्चे को केवल कार्बोहाइड्रेट वाली वस्तुएँ देती है। इस तरह बच्चा आवश्यक प्रोटीन युक्त आहार से वंचित रहने के कारण बीमार हो जाता है।

चित्र नं. 21.9 : सूखा रोग:प्रोटीन और कैलोरी की कमी के कारण मांसपेशियों और त्वचा के भीतर की वसा की अत्यधिक क्षति से सूखा रोग हो जाता है। रोगी बच्चा जीवित कंकाल की तरह दिखने लगता है।

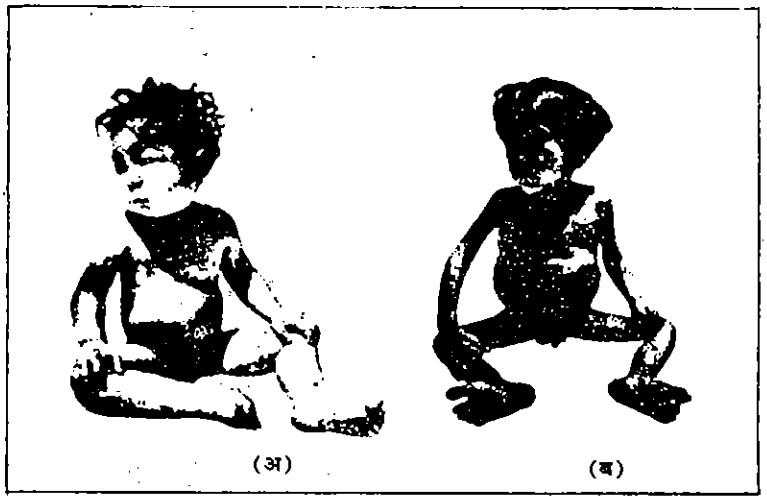

चित्र 21.10 : क्वाशियोर : (अ) प्रोटीन की कमी के लक्षण हैं फूला हुआ पेट और शोथ, (ब) प्रोटीन खिलाने से यह लक्षण समाप्त हो जाते हैं, और अल्पपोषण प्रत्यक्ष हो जाता है।

सूखा रोग

इसका कारण आहार में प्रोटीन तथा कैलोरी दोनों की अत्यधिक कमी है। 1-5 वर्ष के बच्चों में पोषण सर्वेक्षण से पता चलता है कि कम आय वाले वर्ग के 90 प्रतिशत से अधिक बच्चों को आवश्यक कैलोरी नहीं मिलती और वे सूखा रोग के शिकार हो जाते हैं। इस का उनके विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है, मांसपेशियाँ कमज़ोर पड़ जाती हैं और त्वचा के नीचे की चर्बी कम हो जाती है।

लौह तत्व की कमी से खून की कमी (anaemia) हो जाती है तथा विटामिन "ए" की कमी से आँखों को क्षति पहुँचती है। अन्य विटामिनों और लवण की कमी के कारण कम आयु वाले वर्ग के बच्चों में अन्य रोग भी पाए जाते हैं। कुछेक रोगों का इलाज कुछ खास आहार देकर किया जा सकता है। चित्र 21.9 से 21.12 में भोजन में कमी के कारण होने वाले कुछ रोगों के लक्षण दिए गए हैं।

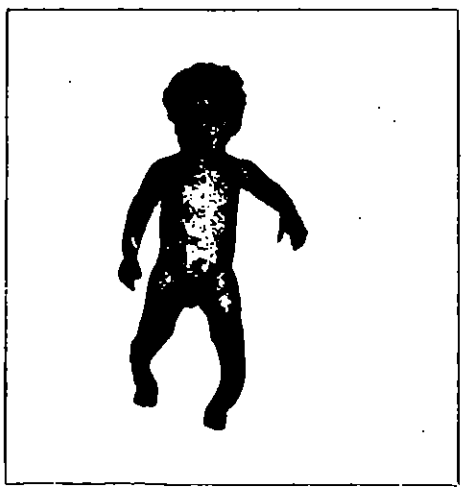

चित्र 21.11 : रिकेट्स:विटामिन "डी" की कमी से रिकेट्स हो जाता है। कमज़ोर हड्डियाँ मुड़कर धनुषाकार हो जाती हैं। और फिर कभी ठीक नहीं होतीं।

चित्र 21.12 : पेलाग्रा : विटामिन बी 2 की कमी से होता है। इसके लक्षण हैं, त्वचा का मोटा होना और धब्बे पड़ना।

चित्र 21.13 : गलगंड (घेघा) : आयोडीन की कमी से थायरॉड, ग्रंथियाँ बढ़ जाती हैं। यह रोग राजस्थान तथा हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों में सामान्यतः होता है।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कुपोषण को रोकने के लिए आवश्यक है कि देश में पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न पैदा कि ा जाएँ, उनका सही वितरण किया जाए जिससे हमारी अपार जनसंख्या को आवश्यक ऊर्जा यानि कैलोरी मिल सके। एक बार मूल भूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने पर अप्राप्य आहार में पूरक तत्व प्रोटीन, विटामिन और लवण आदि मिलाये जा सकते हैं।

21.11 सारांश

इस इकाई में हमने यह बताने का प्रयास किया है कि किसी भी व्यक्ति का स्वास्थ्य बहुत हद तक पौष्टिक आहार पर निर्भर करता है। आपको जानकारी दी गई कि जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में किस प्रकार के भोजन की आवश्यकता होती है। अपर्याप्त भोजन और असमान वितरण के कारण हमारे देश में लोगों की आवश्यकता पूरी नहीं हो पाती। कुपोषण की समस्या सतत् रूप से चली आ रही है और पोषक तत्वों के अभाव से उत्पन्न रोगों की संख्या हमारे देश में बहुत है। इस इकाई में आपने पढ़ा कि :

- आहार में 6 प्रकार के पोषक तत्व होते हैं। कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन, खनिज लवण और पानी।
- भोजन का बड़ा भाग हमें ऊर्जा प्रदान करता है। इसका उपयोग शरीर के विकास, वृद्धि और रख-रखाव के लिए होता है। भोजन का छोटा किन्तु आवश्यक अंश विटामिन व खनिज लवण है, जो शरीर की गतिविधियाँ नियंत्रित करने में सहायक है तथा संक्रमण से हमारी रक्षा करते हैं।
- एक समान पोषक तत्वों वाले खाद्य पदार्थों को एक खाद्य समूह में वर्गीकृत किया गया है, तथा कार्यों के अनुसार पोषक तत्वों को ऊर्जादायक भोजन (कार्बोहाइड्रेट व वसा), शरीर-निर्मायी भोजन (प्रोटीन) और संरक्षक भोजन (विटामिन व खनिज लवण) में वर्गीकृत किया है।
- आहार की ऊर्जा को कैलोरी में मापा जाता है। व्यक्ति को कितनी कैलोरी चाहिए, यह उसकी आयु, लिंग, कार्य-कलाप और जलवायु पर निर्भर है।
- भोजन में मिलावट और भोजन संबंधि भ्रांतियों का स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव हो सकता है। कुछ लोगों को कुछ प्रोटीन युक्त पदार्थों से एलर्जी होती है।
- विश्व के करोड़ों बच्चे आज भी क्वाश्योरकर और सूखा रोग से पीड़ित हैं जो कि प्रोटीन व कैलोरी की कमी का परिणाम है।

21.12 अन्त में कुछ प्रश्न

1 नीचे दिये गये भोज्य पदार्थों के पोषक तत्वों का उल्लेख कीजिए :

भोज्य पदार्थ	पोषक तत्व
अ) भुने हुए चने	
ब) मूँगफली	
स) बिस्कुट	
द) उबला अंडा	
क) ब्रेड पकोड़ा	
ख) संतरा	
ग) कैम्पा कोला	
घ) आलू के चिप्स	

2 एक आम वयस्क की तुलना में आप निम्नलिखित लोगों को किस प्रकार का अतिरिक्त भोजन देंगे? (यहां एक उत्तर सुझाया गया है)

लोग	भोजन के प्रकार
क) खिलाड़ी	शरीर-निर्मायी भोजन और ऊर्जा दायक भोजन
ख) मज़दूर	
ग) गर्भवती स्त्रियाँ	
घ) शिशु	
ङ) बच्चे	

3 विभिन्न कार्य करने वाले समान वज़न के लोगों की ऊर्जा संबंधी आवश्यकताओं को वृद्धि क्रम से लिखिए :
साइकिल चलाना, कुली का काम, कपड़े धाना टाइपिंग

.....

4 हमने पहले कालम में कुछ रोगों के नाम लिखे हैं, उनसे सम्बन्धित पोषक तत्व की कमी को दूसरे कालम में लिखिए :

रोग	कमी
क) रतौंधी	
ख) गलगंड (घेघा)	
ग) क्वाश्योरकर	
घ) सूखा रोग	
ङ) रिकेट्स	
च) एनीमिया	

21.13 उत्तर

बोध प्रश्न

2 **शरीर को बनाने वाले आहार :** दूध और उससे बनी वस्तुएँ, अंडा, मांस, मछली, दालें, राजमा, सोयाबीन इत्यादि।
ऊर्जा देने वाले आहार : विभिन्न अनाज, (ज्वार, बाज़रा, मक्का) घी और तेल, चीनी, शहद, गुड़, आलू इत्यादि।
रक्षा करने वाले आहार : हरी पत्तियों वाली सब्ज़ियाँ, पीले रंग की सब्ज़ियाँ, फल, दूध आदि।

3 क) 1) आवश्यक पोषक तत्व, 2) आवश्यक एमीनो एसिड, अभाव, 3) सोयाबीन, प्रोटीन, 4) दूध, मछली, , अंडे, मांस, आवश्यक एमीनो एसिड, 5) ऊर्जा और वसा, 6) कार्बोहाइड्रेट, 7) गेहूँ, चावल, बाजरा, मक्का, दालें।

ख) क) 7, ख) 5, ग) 3, घ) 6, ङ) 1, च) 4, छ) 2, ज) 8

4 क) (1) 45 ग्राम, (2) अधिक ऊर्जा, अधिक प्रोटीन, (3) अधिक, (4) अधिक ऊर्जा ग्रहण,

ख) 812 किलो कैलोरी।

अंत में कुछ प्रश्न

1 (अ) कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन (ब) कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, (स) कार्बोहाइड्रेट, वसा, (द) प्रोटीन, वसा, विटामिन (क) कार्बोहाइड्रेट, वसा (ख) विटामिन "सी" (ग) कार्बोहाइड्रेट (घ) कार्बोहाइड्रेट, वसा

2 (ख) ऊर्जादायक भोजन (ग) शरीरनिर्मायी भोजन, संरक्षक भोजन, कैल्शियम और आयरन (घ) शरीरनिर्मायी भोजन, कैल्शियम, (ङ) शरीर निर्मायी भोजन, ऊर्जा दायक भोजन, कैल्शियम।

3 टाइपिंग, कपड़े धोने का काम, साइकिल चलाना, कुली का काम

4 (क) विटामिन ए, (ख) आयोडीन, (ग) प्रोटीन (घ) प्रोटीन व कैलोरी (ङ) विटामिन डी (च) लौह तत्व

इकाई 22 स्वास्थ्य और रोग

इकाई की रूपरेखा

22.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
22.2 अच्छा स्वास्थ्य क्या है?
22.3 रोग
रोगों के प्रकार
22.4 संक्रामक रोग
सूक्ष्म जीवों की खोज
सर्वव्यापी सूक्ष्म जीव
सूक्ष्म जीवों का शरीर में प्रवेश
शरीर का रोगाणुओं से संघर्ष
22.5 रोगों का प्रसार या संक्रमण
22.6 रोगों की रोकथाम
प्राचीन काल में रोगों की रोकथाम
आधुनिक समय में रोगों की रोकथाम
पर्यावरण पर नियंत्रण
22.7 भारत में स्वास्थ्य सेवाएँ
22.8 सारांश
22.9 अन्त में कुछ प्रश्न
22.10 उत्तर

22.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई "भोजन और पोषण" में हमने स्वस्थ रहने के लिए संतुलित आहार के महत्व पर प्रकाश डाला है। आपने यह भी पढ़ा कि हमारे यहाँ अधिकांश लोग अपूर्णाहार के कारण होने वाले रोग से ग्रस्त हैं। इस इकाई में हम बतायेंगे कि किस प्रकार अशुद्ध पानी, अपर्याप्त आवास व्यवस्था, वातावरण के सफाई प्रबन्ध में कमी तथा स्वास्थ्य शिक्षा के अभाव में रोग पनपते हैं। ये केवल व्यक्ति के ही नहीं बल्कि समूचे समाज के स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं। मनुष्य और उसके वातावरण के बीच जटिल अन्तःक्रिया के परिणाम से रोगों की उत्पत्ति होती है। इसके अतिरिक्त शारीरिक और मानसिक तनावों का हमारे स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, यह उस वातावरण पर निर्भर है, जिसमें हम रहते हैं।

उपयुक्त सामुदायिक कदम उठाकर रोगों को बहुत हद तक रोका जा सकता है और यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि रोगों की रोकथाम करने से चिकित्सा पर होने वाला व्यय कम होता है, विशेष रूप से जब हजारों लाखों लोगों के स्वास्थ्य का प्रश्न हो। अतः आम व्यक्ति के लिए स्वास्थ्य शिक्षा का विशेष महत्व है।

इस इकाई के पहले भाग में हम संक्रामक रोगों के कारणों की चर्चा करेंगे। ये रोग एक से दूसरे व्यक्ति तक किस प्रकार पहुँचते है, इसकी जानकारी प्राप्त करेंगे। इन रोगों के कारण अब रहस्य नहीं है। संक्रामक रोगों के कारण हैं, अदृश्य सूक्ष्म जीव। आप जान सकेंगे कि उनकी खोज कैसे हुई, वे शरीर में किस प्रकार से प्रवेश करते हैं और जल्दी ही एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक कैसे पहुँचते हैं। हमारे शरीर में विस्तृत सुरक्षा तंत्र है जो इन रोगों से लड़ने की क्षमता रखता है। अगले भाग में हम इन रोगों की रोकथाम के लिए आवश्यक सामाजिक उपायों की चर्चा करेंगे।

अन्त में भारत की स्वास्थ्य सेवाओं के बारे में बतायेंगे। साथ ही हम इस बात की चर्चा करेंगे कि हम अपने गाँवों में आत्मनिर्भर स्वास्थ्य सेवाएँ स्थापित करने में क्यों असफल रहे हैं।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि :

- अच्छे स्वास्थ्य का क्या अर्थ है।
- संक्रामक और असंक्रामक रोगों के बीच क्या अंतर है।
- रोगों से सम्बन्धित आम धारणाएं और विश्वास प्रायः अवैज्ञानिक है।
- रोगाणुओं की खोज किस प्रकार हुई।

- रोगाणु किस प्रकार हमारे शरीर पर आक्रमण करते हैं, और एक से दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करते हैं।
- हमारे शरीर में रोगाणुओं से लड़ने की क्षमता है ।
- साफ पानी, स्वच्छ भोजन, सही आदतें और उपयुक्त वातावरण रोगों की रोकथाम के लिए क्यों आवश्यक है ।
- ग्रामीण भारत में स्वास्थ्य-सेवाओं की कमियों के क्या कारण है।

22.2 अच्छा स्वास्थ्य क्या है?

हम सब चाहते हैं कि हमारा जीवन लम्बा हो। परन्तु लम्बे जीवन के साथ-साथ स्वस्थ रहना भी बहुत महत्वपूर्ण है। स्वास्थ्य हमारे जीवन की सबसे बड़ी धरोहर है, इसलिए हमें उसकी रक्षा करनी चाहिए। "विश्व स्वास्थ्य संगठन" (डब्ल्यू.एच.ओ.) के अनुसार "रोग अथवा दुर्बलता का न होना ही स्वास्थ्य का प्रतीक नहीं है, अपितु शारीरिक, मानसिक और सामाजिक दृष्टि से पूर्ण स्वस्थता ही स्वास्थ्य की परिभाषा है।" अतः स्वास्थ्य के तीन तत्व हुए — जो व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से स्वस्थ है, उसे ही पूर्णतः स्वस्थ कह सकते हैं।

हमारे प्राचीन साहित्य में भी स्वास्थ्य की ऐसी ही परिभाषा दी गई है। विस्तार से यह कहा जा सकता है कि यह एक ऐसी अवस्था है जिसमें मनुष्य सामाजिक और भौतिक वातावरण में अपने बौद्धिक, संवेदनात्मक और शारीरिक क्षमताओं का पूरा-पूरा लाभ उठा सकता है। दूसरे शब्दों में एक स्वस्थ व्यक्ति ही अपनी शारीरिक और मानसिक क्षमता का, चाहे वह कितनी भी बड़ी या छोटी क्यों न हो, पूर्ण रूप से उपयोग कर सकता है।

शरीर के प्रत्येक अंग का ठीक से काम करना, अच्छे स्वास्थ्य में सम्मिलित है। क्योंकि अगर आपके शरीर का कोई अवयव ठीक नहीं है तो उससे आपको मानसिक तनाव होगा। मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य एक दूसरे से सम्बन्धित है। आपने शायद अनुभव किया होगा कि अशांत या परेशान होने पर आपका शरीर शिथिल पड़ जाता है। शरीर के पूर्णतः स्वस्थ होने के बावजूद भी व्यक्ति की सामाजिक और मानसिक समस्याएं हो सकती हैं। तो हम यह कैसे जानें कि हम मानसिक रूप से स्वस्थ हैं या नहीं?

मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति के कुछ लक्षण निम्नलिखित है :

i) वह शांत होगा तथा आन्तरिक उथल-पुथल से मुक्त होगा।
ii) दूसरों के साथ उसका व्यवहार सामंजस्य पूर्ण होगा और वह सम्बन्धों को संतोषजनक और स्थायी बनाये रखने में समर्थ होगा।
iii) वह संयमी होगा और उत्तरदायित्व दिये जाने पर उनको अच्छी तरह से निभा सकेगा।
iv) वह अपनी योग्यतानुसार प्राप्त उपलब्धियों से संतुष्ट और प्रसन्न होगा।

इस इकाई में हम स्वास्थ्य-नियमों का उल्लेख नहीं करेंगे। अपितु इस बात पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे कि वातावरण का हमारे स्वास्थ्य पर कैसे प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और यह किस प्रकार रोगों को फैलाने में सहायक है। रोग से हमारा क्या तात्पर्य है, इसकी चर्चा करने से पहले आइए निम्नलिखित वाक्यों को पूरा करने का प्रयत्न करें।

बोध प्रश्न 1

रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरें :

i) ..... व्यक्ति के शरीर के सभी अंग ..... काम करते हैं।

ii) स्वस्थ व्यक्ति सामाजिक और भौतिक वातावरण के दायरे में अपने .... और शारीरिक क्षमताओं का पूरा-पूरा लाभ उठा सकता है।

22.3 रोग

हम सभी ज्वर, पीड़ा, उल्टी, मतली, अतिसार, फ्लू, सर्दी-जुकाम, दुर्बलता आदि से कभी न कभी ग्रस्त रहे होंगे। रोग कई कारणों से हो सकते हैं, जैसे कि शरीर के किसी अंग में विकार पैदा होने से वांशिक परम्परा से, वृद्धावस्था के कारण या फिर किसी संक्रमण से। जैसा कि आपने पिछली इकाई में पढ़ा, रोग किसी एक या एक से अधिक पोषक तत्वों के अभाव या अल्पपोषण से भी हो सकते हैं।

आप कैंसर, तपेदिक, टायफॉयड जैसे गंभीर रोगों के नामों से तो परिचित होंगे। आज इनमें एक नाम और जुड़ गया है— "एड्स" (AIDS), यह एक घातक रोग है जिसमें शरीर की रोगों से लड़ने की सहज शक्ति समाप्त हो जाती है।

यह कहा जा सकता है कि स्वस्थ अवस्था का न होना ही रोग है। शरीर के किसी भी अंग या अवयव की सामान्य बनावट या उसके कार्यों में परिवर्तन हो जाना ही रोग है। डॉक्टर विभिन्न तरीकों और उपकरणों से रोगों का पता लगा सकते हैं, जो इस प्रकार हैं :

i) शारीरिक जांच द्वारा — जैसे आंखों का परीक्षण करके, हृदय की धड़कन सुनकर या अंगों को हिलाडुला कर।
ii) जीव रासायनिक परीक्षण द्वारा — जैसे मूत्र की और रक्त की परीक्षा करके शक्कर तथा वसा की मात्रा का पता लगाना।
iii) माइक्रोस्कोपिक जांच द्वारा — रक्त, मूत्र और शौच का परीक्षण करना आदि।
iv) एक्सरे द्वारा — निश्चित करना कि हड्डी टूटी है या नहीं अथवा फेफड़ों में खराबी है या नहीं।
v) शल्यक्रिया द्वारा — जिससे शरीर के भीतर की स्थिति का प्रत्यक्ष अवलोकन किया जा सके।

22.3.1 रोगों के प्रकार

जैसा कि हमने ऊपर कहा है, कुछ रोग जन्मजात या वंशानुगत होते हैं। उदाहरण के लिए शिशु के हृदय में जन्मजात कोई दोष हो सकता है या कोई बच्चा हीमोफीलिया से ग्रस्त हो सकता है जिसमें त्वचा के कट जाने पर रक्त स्राव नहीं रुकता। वह इस रोग से इसलिए पीड़ित है क्योंकि माता-पिता या दादा-दादी को यह रोग था। ये जन्मजात या वंशानुगत रोग कहलाते हैं। जन्म के समय अप्रशिक्षित दाई के कारण भी बच्चे में शारीरिक विकृति आ सकती है। मुख्यतः रोगों को दो समूहों में बांटा जा सकता है।

- संक्रामक या छूत के रोग — जो एक से दूसरे व्यक्ति को लगते हैं, और
- असंक्रामक रोग।

संक्रामक रोग सूक्ष्म जीव (micro organism) और कृमि के कारण होते हैं। हैज़ा छोटी माता, तपेदिक, मलेरिया आदि इसके कुछ उदाहरण हैं।

असंक्रामक रोग शरीर के अन्दर विकार या असंतुलन के कारण होते हैं। ये रोग बाहरी संक्रमण से नहीं होते इसलिए एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को नहीं लग सकते। इसके कुछ उदाहरण हैं, खून की कमी, (anaemia) मधुमेह, (diabetes) गठिया (arthritis) आदि। कुछ संक्रामक और असंक्रामक रोगों का उल्लेख तालिका 22.1 में किया गया है।

तालिका 22.1 : संक्रामक और असंक्रामक रोग

संक्रामक रोग	असंक्रामक रोग
खासी-जुकाम	मधुमेह
मलेरिया	कैंसर
हैज़ा	गंजापन
तपेदिक	दमा
छोटी माता	गठिया
प्लेग	हिस्टीरिया
कंजंक्टिवाइटिस	ब्रान्काइटिस
खसरा	क्वाशियोरकर
कनपेड़ा या गलसुआ	सूखा रोग
पोलियो	स्कर्वी
कुष्ठ रोग	हीमोफीलिया
अतिसार	
कृमि	
एड्स	

इस इकाई में हम केवल संक्रामक रोगों का वर्णन करेंगे। सामुदायिक स्वास्थ्य की दो महत्वपूर्ण समस्याएं है, नियंत्रण और रोकथाम। यदि इन रोगों की रोकथाम नहीं की जाये तो ये तीव्र गति से फैलते हैं और बहुत बड़े क्षेत्र को अपनी चपेट में ले लेते हैं और महामारी फैल जाती है। अब हम जानते हैं कि ये रोग क्यों और कैसे फैलते हैं, इसलिए इनकी रोकथाम भी संभव है। रोकथाम के लिए आवश्यक उपयुक्त सामुदायिक कदम है : i) स्वच्छ पीने के पानी की व्यवस्था, ii) मल निकासी की व्यवस्था, iii) उचित आवास, iv) साफ-सुथरा भोजन, v) प्रदूषण पर नियंत्रण, vi) उचित स्वास्थ्य सेवाएँ vii) व्यापक रूप से टीकाकरण कार्यक्रम आदि। इनकी सफलता मुख्यतः समुदाय के सदस्यों के वैयक्तिक और सामुहिक प्रयासों पर निर्भर है। लगभग 150 वर्ष पहले संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा जैसे देशों में और समूचे यूरोप में ये दुसाध्य रोग बहुत अधिक थे। परन्तु आज इन देशों ने इन पर नियंत्रण पा लिया है। हालांकि ये रोग पूर्णतः समाप्त नहीं हुए हैं और जब तक विश्व के किसी भी क्षेत्र में संक्रामक रोग हैं वे किसी भी देश में पुनः फैल सकते हैं। इसलिए विश्वव्यापी स्तर पर इन्हें समाप्त करने के लिए कदम उठाए जा रहे हैं।

इस इकाई के अगले भाग में हम आपको यह जानकारी देंगे कि संक्रामक रोग क्या हैं और वे कैसे फैलते हैं। संक्रामक रोगों को फैलाने वाले रोगाणुओं की खोज से हम इसकी शुरुआत करेंगे और देखेंगे कि वे किस प्रकार हमारे शरीर पर आक्रमण करते हैं और हमारा शरीर किस प्रकार उनका मुकाबला करता है। यह जानकारी प्राप्त करने के बाद आप ऐसे रोगों पर नियंत्रण पाने के लिए आवश्यक कदम उठा सकेंगे।

बोध प्रश्न 2

क) निम्नलिखित कथनों में से कौन से सत्य (स) हैं और कौन से असत्य (अ)? नीचे दिए गए खानों में (स) अथवा (अ) लिखकर बताइए :

i) रोग जो जन्म से होते हैं उन्हें संक्रामक रोग कहते हैं ☐

ii) संक्रामक रोग बहुत जल्दी ही एक से दूसरे व्यक्ति को लग जाते हैं। ☐

iii) रोग का अभाव अच्छे स्वास्थ्य का सूचक है। ☐

ख) पांच सामान्य रोगों के नाम लिखिए। उन्हें संक्रामक और असंक्रामक रोगों में वर्गीकृत कीजिए।

संक्रामक .....

.....

असंक्रामक .....

.....

.....

22.4 संक्रामक रोग

आप में से कुछ लोगों ने शायद ताऊन प्लेग (bubonic plague) के बारे में सुना होगा। यह एक जानलेवा रक्त का रोग है जो पिस्सुओं और रोगी के छींक या खांसी के साथ बाहर आने वाले पदार्थों से फैलता है। 13वीं से 19वीं शताब्दी तक यूरोप के अधिकांश भागों में इसने तबाही मचा दी थी। भारत में 1896 में प्लेग का भयंकर आक्रमण हुआ था जो 15 वर्षों तक जारी रहा। देश के कई गाँव व शहर तबाह हो गये। लगभग 80 लाख से अधिक लोग इसकी चपेट में आ गये थे। ऐसा लगता है कि प्राचीन काल में ऐसे रोगों का होना व उनका फैलना एक आम बात थी। समय के साथ-साथ जैसे-जैसे व्यापार बढ़ा, आवागमन में वृद्धि हुई, वैसे-वैसे ये रोग और अधिक फैलते गए और विश्वव्यापी हो गये। इसी प्रकार छोटी माता, खसरा, फ्लू, और हैजा जैसे रोग एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हुए, और एक स्थान से दूसरे स्थान तक फैलते रहे। 19वीं शताब्दी तक ये रोग मानव जाति को आतंकित करते रहे क्योंकि इनका कारण रहस्य के गर्भ में छुपा था। भोलेपन में लोग इन्हें दैवी श्राप समझते थे। भारत में इन्हें देवी-देवताओं का प्रकोप समझा जाता था। कई रोगों को देवी-देवताओं का नाम भी दिया गया, उदाहरण के लिए "शीतला माता"। उसे बड़ी माता का कारण माना जाता था। रोग से छुटकारा पाने के लिए लोग उसकी पूजा करते थे। यहां यह बताना आवश्यक है कि सुनियोजित विश्वव्यापी टीकाकरण अभियान द्वारा आज इस रोग का पृथ्वी से नामों निशान मिटाया जा चुका है।

पृष्ठ में बायीं तरफ दी गई कविता जिसे बच्चे खेलते समय गाते हैं, इंग्लैंड के एक गाँव एयाम के बाहर उन लोगों को श्रद्धांजली देने के लिए हर साल सामुहिक रूप से गाई जाती है, जिन्होंने 3 सदी पहले अन्य लोगों को बीमारी से बचाने के लिए अपनी जान दे दी। ये लोग प्लेग का शिकार हो गये थे और अन्य गाँवों में बीमारी को फैलाने से रोकने के लिए अपने गाँव में ही कैद रहे और समाप्त हो गये।

Ringa Ringa Roses,
A pocket full of posies,
Achoo, Achoo, Achoo,
We all fall down.

इस कविता में गुलाबों का वलय गुलाब की आकृति जैसे चकत्तों का सूचक है, जो प्लेग के रोगी के शरीर पर हो जाते हैं। पोज़ी छोटे-छोटे फूल हैं, जिन से भूत-प्रेतों को भगाया जाता था। "आछू" का अर्थ है, रोगी की "छींकें" और अंतिम पंक्ति सबकी मृत्यु की सूचक है।

आपने अनुभव किया होगा, परिवार में अगर किसी को सर्दी जुकाम होता है तो जल्दी ही आप भी उसके शिकार हो जाते हैं। जानते हैं — ऐसा क्यों होता है? क्योंकि सर्दी-जुकाम का कारण सूक्ष्म जीव (microbes) हैं जो एक से दूसरे व्यक्ति में बहुत शीघ्रता से प्रवेश कर जाते हैं। ये इतने सूक्ष्म होते हैं कि आपको आंखों से दिखाई नहीं देते। इनमें से कुछ को आप सामान्य माइक्रोस्कोप से देख सकते हैं जबकि अन्य जो और भी सूक्ष्म होते हैं, केवल विशेष प्रकार के माइक्रोस्कोप द्वारा ही देखे जा सकते हैं। कुछ संक्रामक रोगों का कारण कुछ विशेष प्रकार के कृमि (worms) है। यहाँ हम यह चर्चा भी करेंगे कि ये एक से दूसरे व्यक्ति में कैसे जाते हैं।

22.4.1 सूक्ष्म जीवों की खोज

सूक्ष्म जीव और इस तथ्य की खोज, कि वे संक्रामक रोगों के कारण हैं, विज्ञान की एक महान उपलब्धि है। इससे हमें विभिन्न रोगों को समझने, उनकी रोकथाम करने और उन्हें समाप्त करने में सहायता मिली है। इससे पहले किसी ने यह कल्पना भी नहीं की थी कि इतने छोटे जीव, मानव के जीवन में इतनी तबाही मचा सकते हैं।

हालेण्ड निवासी एन्टोनी फ़न ल्यूवनहॉक (चित्र 22.1) लेन्स बनाने में माहिर थे। आज से लगभग 300 वर्ष पूर्व, जीवाणुओं का अवलोकन करने वाले वे पहले व्यक्ति थे। उत्सुकतावश जब उन्होंने दलदली झीलों एवं वर्षा के पानी का, शौच और अपने दांत पर जमी मैल का परीक्षण किया तो उनमें जीवित, सूक्ष्म जीव देखकर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने इन्हें नाम दिया — "जन्तुक" (animalcules) उन्होंने देखा कि कुछ लट्टू की तरह घूमते हैं या कुछ तालाब में छोटी मछली की तरह फुदकते हैं। वे हैरत में पड़ गए तथा इन जीवों की उत्पत्ति व भूमिका के बारे में सोचने लगे। उन्होंने अपने इस अवलोकन का विवरण "रायल सोसाइटी ऑफ लन्दन" को भेज दिया। इंग्लैंड की रानी भी इन "जन्तुकों" को देखने के लिए आईं। फ़न ल्यूवनहॉक ने एक और उल्लेखनीय अनुभव किया। जब उन्होंने गरम-गरम कॉफी पीने के तुरन्त बाद दांतों को कुरेद कर परीक्षण किया तो जन्तुक मरे हुए दिखाई दिये। फ़न ल्यूवनहॉक बहुत शक्की स्वभाव के व्यक्ति थे और अपने शोध को छुपाते थे, उन्होंने किसी दूसरे को लेन्स बनाना नहीं सिखाया, इसलिए जीवाणुओं के संबंध में उनकी इस महत्वपूर्ण खोज को अन्य वैज्ञानिक शीघ्र आगे नहीं बढ़ा सके।

चित्र 22.1
एन्टोनी फ़न ल्यूवनहॉक (1632-1723) ने लैन्स द्वारा पहली बार सूक्ष्मजीवों का अवलोकन करके उनके रहस्यों के द्वारा खोल दिये।

18वीं शताब्दी में कुछ अन्य वैज्ञानिकों ने अन्य प्रकार के सूक्ष्म जीवों का अवलोकन किया, लेकिन उन्होंने इन्हें प्रकृति का निष्कर्म कौतूहल समझ कर छोड़ दिया। क्योंकि जीवाणुओं को रोगों के लिए उत्तरदायी ठहराने का अर्थ था शताब्दियों पुरानी धार्मिक आस्था और विश्वास को तोड़ना।

19वीं शताब्दी के मध्य में प्रसिद्ध फ्रेंच वैज्ञानिक लुई पास्चर ने यह सिद्ध किया कि जहाँ कहीं भी रोग फैले हुए हैं, वहां वायु में सूक्ष्म-जीव हैं लेकिन जहाँ की वायु शुद्ध है वहां रोग नहीं है। आपने इकाई 12 में लुई पास्चर द्वारा किए गए प्रयोग के बारे में पढ़ा है, कि सूक्ष्म जीव एकाएक अपने आप से पैदा नहीं होते। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि रोगों का कारण सूक्ष्म जीव ही हैं। कुछ वर्षों पश्चात् जर्मनी के रॉबर्ट कॉख, (चित्र 22.2) यह प्रमाणित करने में सफल हुए कि विभिन्न जीवाणु विभिन्न रोगों के लिए उत्तरदायी हैं। जैसे एक प्रकार का जीवाणु गिल्टी रोग (एंथ्रेक्स) के लिए उत्तरदायी है तो दूसरा तपेदिक और तीसरा प्लेग के लिए। इस अद्भुत खोज से अन्य रोगों के लिए उत्तरदायी जीवाणुओं का पता लगाने और उनका अध्ययन करने की कई वैज्ञानिकों को प्रेरणा मिली। इस अध्ययन के दौरान यह भी देखा गया कि मलेरिया रोग मादा मच्छर "एनोफ़ेलीज़" के माध्यम से "प्लैज्मोडियम" नामक प्रजीवाणुओं (protozoan) द्वारा होता है। अतः इन वैज्ञानिकों द्वारा की गई खोजों के फलस्वरूप कई रोगों का निदान संभव हुआ और रोगों के रहस्य का पता लग पाया। यहां यह कहना गलत नहीं होगा कि अगर उस समय डच वैज्ञानिक फ़न ल्यूवनहॉक की पहली खोज को आगे बढ़ाया जाता तो लाखों जानें बच जाती।

चित्र 22.2
मेधावी चिकित्सक राबर्ट कॉच (1843-1910) ने यह प्रमाणित किया कि वास्तव में जीवाणु ही रोग का कारण है। साथ ही यह भी सिद्ध किया कि एक खास प्रकार का जीवाणु एक रोग विशेष के लिए उत्तरदायी है।

सूक्ष्म जीवों की एक अन्य जाति विषाणु (virus) है। खांसी-जुकाम और विषाणु ज्वर (viral fever) जो आजकल लोगों को अक्सर हो जाता है, विषाणुओं से होता है। विषाणु जीवाणुओं से भी छोटे होते हैं, इसीलिये ये 19वीं शताब्दी के अंत तक भी रहस्य बने रहे। विषाणु साधारण सूक्ष्मदर्शी से नहीं देखे जा सकते, इसलिए तभी उनका पता चला जब अधिक शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी की खोज हुई। विषाणु विलक्षण जीव है, उनकी तुलना रासायनिक सम्मिश्रणों से की जा सकती है। वह किसी जीव या प्राणी की कोशिका के बाहर अपनी संख्या में वृद्धि नहीं कर सकते। यह चीनी या नमक की तरह स्फाटिक हो सकते हैं। लेकिन एक बार किसी कोशिका में प्रवेश करने पर, कोशिका के भीतर वे एक जीव के समान व्यवहार करते हैं तथा जीवाणुओं के समान पनपते हैं। और ज्वर या रोग उत्पन्न करते हैं। औद्योगिक क्रांति के दौरान एड्विन चेडविक (1800-1890) ने रोग और गन्दगी के गहरे संबंध को दर्शाया और इससे यह स्पष्ट किया कि रोग मनुष्य के रहन-सहन के तरीकों पर निर्भर करता है न कि यह किसी पाप का दण्ड है।

सफाई प्रबन्ध के प्रथम एडवोकेट एड्विन चेडविक इंग्लैंड में वकील थे, जिन्होंने सन् 1842 में श्रमिक वर्ग को उपलब्ध सफाई प्रबन्ध की छानबीन की।

हम सूक्ष्म जीवों या कीटाणुओं को चार समूहों में बांट सकते हैं — 1) जीवाणु, 2) विषाणु, 3) प्रजीवाणु, 4) कवक। चित्र 22.3 में विभिन्न सूक्ष्म जीवों को दर्शाया गया है।

रोगाणु — सूक्ष्म जीव जो रोग उत्पन्न करते हैं।

रोगी के रक्त, थूक या शौच के निरीक्षण से ज्ञात किया जाता है कि उसमें किस प्रकार के सूक्ष्म जीवाणु हैं। इस प्रकार मालूम हो जाता है कि कौन सा रोग है और उस का इलाज किया जाता है। तालिका 22.2 में विभिन्न सूक्ष्म जीवों और कृमियों से होने वाले कुछेक सामान्य रोगों का उल्लेख किया गया है।

यहां हमने कृमि से उत्पन्न रोगों का उल्लेख भी किया है। ये मनुष्य के शरीर में पानी या भोजन के जरिये या कुछ त्वचा को भेद कर प्रवेश करते हैं। ये आंतों में अंडे देते हैं जो मल के साथ बाहर निकलते हैं इनसे वजन कम हो जाता है, पेट में दर्द होता है और पतले दस्त होते हैं। अगर इन पर ध्यान न दिया जाए तो ये शरीर के अन्य अवयवों जैसे गुर्दे या फेफड़ों में भी प्रवेश कर जाते हैं। हमारे यहां लाखों लोग कृमि जनित रोगों से ग्रस्त हैं। एक बाल विशेषज्ञ का कहना है कि उसके पास जितने रोगी आते हैं उनमें से लगभग 80% के पेट में कीड़े होते हैं।

बोध प्रश्न 3

निम्नलिखित कथनों में से कौन सा सत्य (स) है और कौनसा असत्य (अ)? नीचे दिए गए खानों में (स) अथवा (अ) लिखकर बताइए।

i) यदि साफ-सुथरा व्यक्ति साफ-सुथरे घर में रहता है तो वह संक्रामक रोगों का शिकार नहीं होगा। ☐

ii) रोगों का कारण व्यक्ति का अपना भाग्य है। ☐

iii) संक्रामक रोग रोगाणुओं से होते हैं।

iv) फ्रन ल्यूवनहॉक ने गरम-गरम कॉफी पीने के बाद अपने दांतों को कुरेद कर देखा तो उसमें जीवित रोगाणु थे।

तालिका 22.2 : सूक्ष्म जीवों के कारण होने वाले संक्रामक रोग

जीवाणु (बेक्टेरिया)	विषाणु (वायरस)	प्रजीवाणु (प्रोटोजोआ)	कवक (फंजाई)	कृमि (वर्म)
हैज़ा	छोटी माता	मलेरिया	चर्म रोग	फीता कृमि,
अतिसार	सर्दी-जुकाम	अमीबियसिस	दाद	अंकुश कृमि
सूज़ाक (गनोरिया)	इन्फ्लुएंजा	ट्रिपैनोसोमाईसिस		गिनी कृमि, सूची कृमि
कुष्ठ रोग	खसरा	निद्रा रोग		
प्लेग	गलसुआ (मम्स)			
सिफ़िलिस	पोलियोमाइलिटिस			
रोहे, कुकरे (ट्रेकोमा)	जलांतक (रेबीज)			
तपेदिक (टी.बी.)				
टायफाईड				

22.4.2 सर्वव्यापी सूक्ष्म जीव

जैसा कि आपने पढ़ा अदृश्य सूक्ष्म जीव यानि कीटाणु सब जगह व्याप्त है क्योंकि वे किसी भी वातावरण में जीवित रह सकते हैं। चाहे वह बर्फीले पहाड़ हो, समुद्र तल या गरम झरने हो, वह हमारे चारों तरफ हैं। वे हवा में हैं, जिसमें हम साँस लेते हैं। मिट्टी में हैं, जिस पर हम खेती करते हैं। भोजन में हैं, जिसे हम खाते हैं और पानी में हैं जिसे हम पीते हैं या स्नान करते हैं। वे हर वस्तु में होते हैं जो हमारे सम्पर्क में आती है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि अरबों जीवाणु हमेशा हमारी त्वचा, हमारे मुंह और मल-द्वार पर चिपके रहते हैं। सूखे शौच का एक तिहाई भाग जीवाणु है। हालाँकि इनमें से कुछ ही ऐसे हैं जो संक्रामक रोग फैलाते हैं। अधिकांश सूक्ष्म जीव लाभप्रद है। इनके क्रिया-कलाप जीव मंडल के लिए विशेष महत्व रखते हैं। इनके बिना पृथ्वी पर जीवन का अन्त हो जाएगा। उनके अस्तित्व से अनभिज्ञ होते हुए भी हम आदिकाल से उनके क्रिया-कलापों से लाभ उठाते आ रहे हैं, जैसे कि दही, केक-पेस्ट्री और डबलरोटी व विभिन्न प्रकार की मदिरा, बीयर आदि बनाने में। वे मृत पौधों और पशुओं को अहानिकारक परन्तु अपरिहार्य रसायन जैसे नाइट्रोजन, आक्सीजन और कार्बनडाइऑक्साइड, में बदलते हैं। जैविक कारखाने के रूप में ये कई रसायन बनाने के लिए उपयोग में लाये जाते हैं जैसे कि एन्टीबॉयोटिकस। वस्तुतः विश्वप्रसिद्ध एन्टीबॉयोटिक, पेन्सिलिन की खोज, कवक (fungi) से ही संभव हुई थी। कुछ विशेष प्रकार के जीवाणु मनुष्य की आंतों में रहते हैं तथा शरीर को विटामिन "बी" तथा "के" प्रदान करते हैं। अतः एक ओर जहां कुछ कीटाणु घातक है तो दूसरी ओर कुछ कीटाणु मानवता के लिए वरदान हैं। कीटाणुओं से सम्बन्धित ज्ञान में जो वृद्धि हुई है उसका एक और उपयोग मानव को रोग व मृत्यु के चंगुल से बचाने के लिए किया जा रहा है तो दूसरी ओर बहुत से राष्ट्र विध्वंस और युद्ध के लिए भी उसका प्रयोग कर रहे हैं।

आपने शायद "जीवाणु युद्ध" के बारे में सुना होगा। विश्व के विकसित देशों में घातक जीवाणुओं को एकत्रित करके हथियार के रूप में रखा गया है जिनसे शत्रु देश का वायुमण्डल और पानी संदूषित हो सकता है और फसलें व जंगल के जंगल नष्ट हो सकते हैं। इस प्रकार के युद्ध में केवल सैनिक ही नहीं जनता भी खत्म हो जाएगी। हालांकि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इन हथियारों का प्रयोग निषिद्ध है।

22.4.3 सूक्ष्म जीवों का शरीर में प्रवेश

आपने पढ़ा कि सूक्ष्म जीव सर्वत्र है इसलिए यह हमेशा हमारे शरीर के सम्पर्क में रहते हैं। वे प्राकृतिक विवर-मुंह, नाक, मूत्र-द्वार और जननांगों के द्वार से हमारे शरीर में प्रवेश करते हैं (चित्र 22.4)। प्रदूषित वायु में सांस लेने से, गन्दा पानी पीने से या सड़ा-गला खाना खाने से ये हमारे शरीर में पहुँचते हैं। अगर हम गन्दी उंगली या गन्दे नाखून जिसमें जीवाणु चिपके हों मुँह में डालते हैं या गन्दे ग्लास से पानी पीते हैं या गन्दे तौलिए से मुंह पोंछते हैं तब भी वे हमारे शरीर में प्रवेश करते

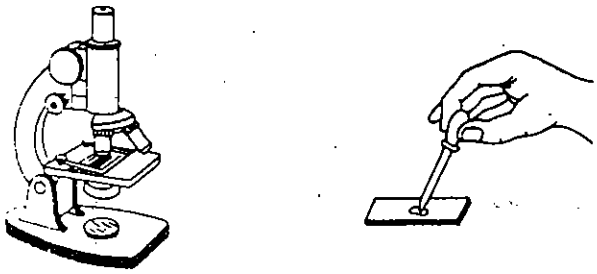

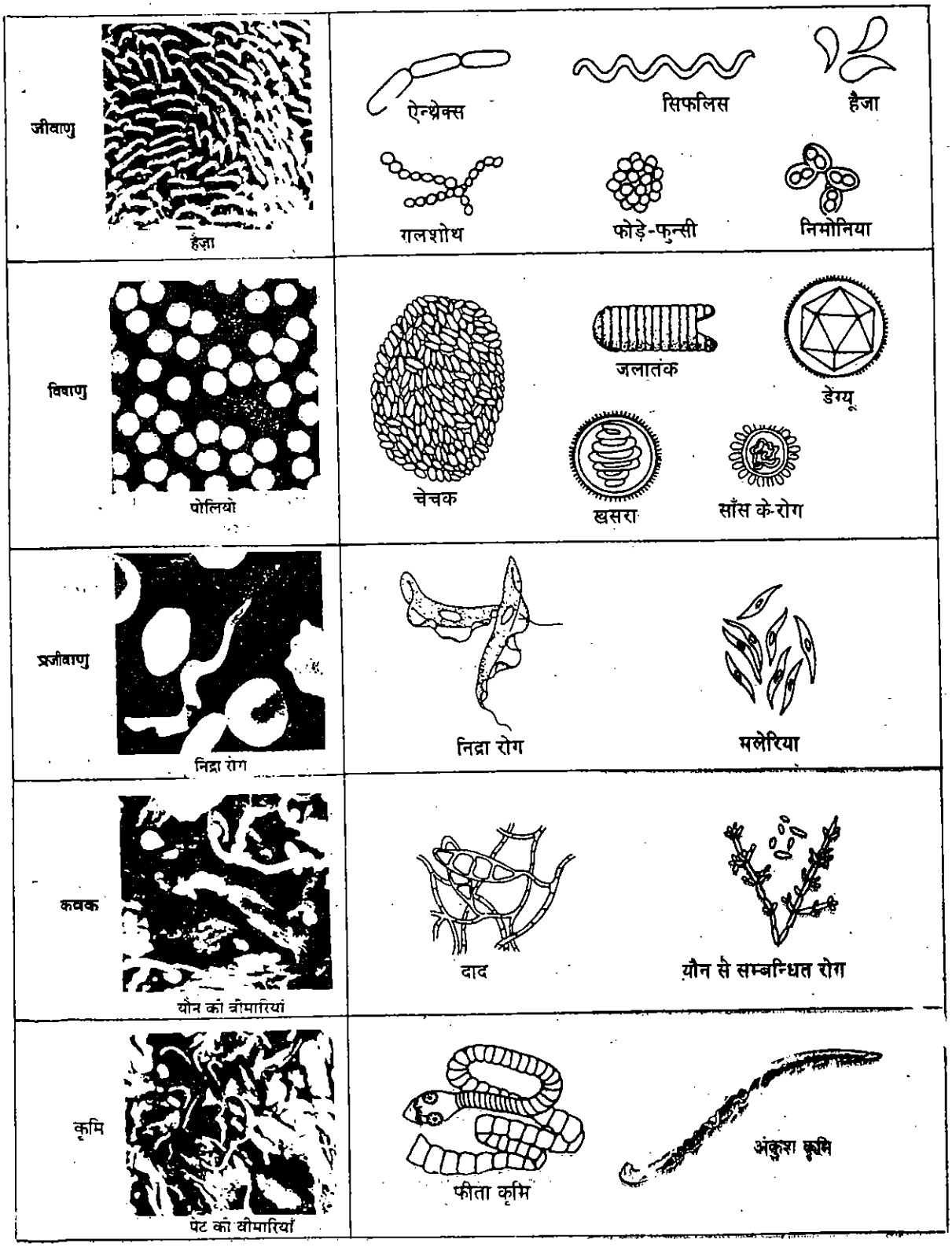

चित्र 22.3 : विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म-जीव व कृमि जिनसे बीमारियां होती है।

है। अगर हम किसी संक्रामक रोग से ग्रस्त व्यक्ति से हाथ मिलाते हैं या उसके सम्पर्क में आते हैं तो हमें भी वह रोग लग सकता है। संभोग के समय जननांगों या मूत्रद्वार द्वारा जीवाणु हमारे शरीर में जा सकते हैं। संक्रमित वायु या धूल-मिट्टी से जीवाणु हमारी आंखों में पहुँच सकते हैं। शरीर के प्रत्येक द्वार से जुड़ी एक नली होती है जो शरीर के अन्य अवयवों तक पहुंचती है। इस प्रकार जीवाणु हमारे शरीर में पहुँचकर हमारे अवयवों पर अपना प्रभाव डालते हैं। नलियों की भीतरी सतह पर एक कोमल श्लेष्मा झिल्ली होती है जो इनको अन्दर आने से तभी रोक सकती है, जबकि व्यक्ति पूर्णतः स्वस्थ हो। सर्दी जुकाम में नाक की श्लेष्मा झिल्ली पर सीधा आक्रमण होता है कीटाणु वहां बड़ी गति से बढ़ते हैं।

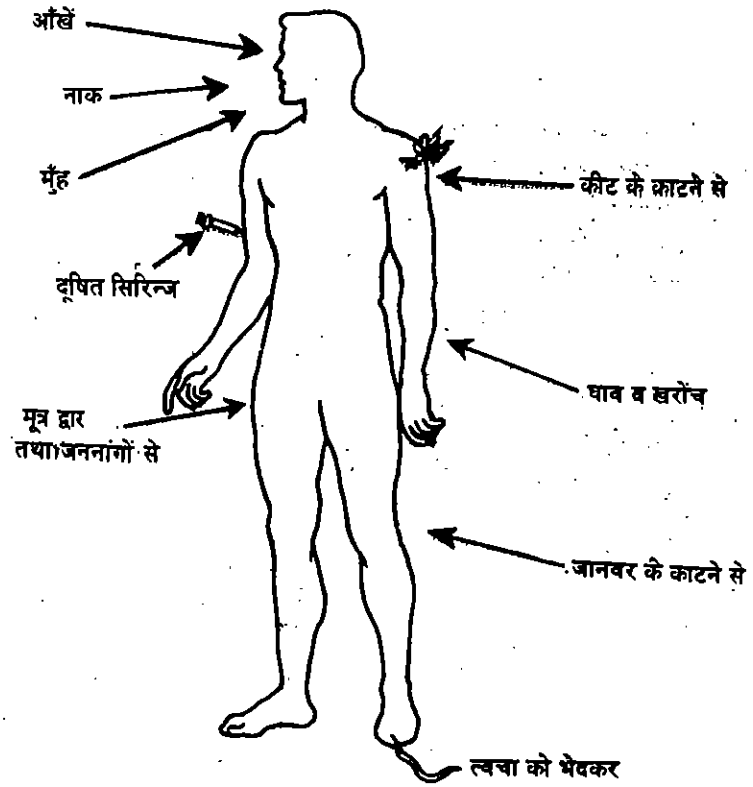

चित्र 22.4 : सूक्ष्म-जीव किस प्रकार हमारे शरीर में प्रवेश करते हैं।

कीटाणु अदृश्य हमलावर हैं, उनके प्रवेश को रोकना आसान नहीं है। उनके प्रवेश में प्रमुख भौतिक रुकावट हमारी त्वचा है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, तमाम कीटाणु हमारी त्वचा पर रहते हैं परन्तु उनमें से अधिकांश हानिकारक नहीं होते हैं। कुछ कीटाणुओं से फोड़े-फुन्सी हो जाते हैं तो कुछ रोम-छिद्रों पर धावा बोलते हैं और उस स्थान को संक्रमित कर देते हैं। अगर उस पर ध्यान न दिया जायें तो त्वचा के भीतर गहराई तक उसका असर हो सकता है। चोट लगने से अगर त्वचा कट या छिल जाती है तो रोगाणु त्वचा के अन्दर पहुँच जाते हैं और सैप्टिक हो जाता है।

मलेरिया : आयुर्वेदिक काल की चरक व सुश्रुता में मलेरिया का वर्णन है, जिसमें मलेरिया का होना मच्छरों के काटने से बताया है। सन् 1887 में रोनाल्ड रॉस ने जो सिकन्दराबाद (आंध्र प्रदेश) में मलेरिया पर काम कर रहे थे, प्रमाणित किया कि मच्छर मलेरिया फैलाते हैं।

कीड़े-मकोड़े कई रोगाणुओं के वाहक हैं। रक्त चूसने वाले कीड़ों के काटने पर त्वचा में छेद हो जाता है और कीटाणु शरीर में चले जाते हैं। उदाहरण के लिए मादा मच्छर एनोफ़िलीज के काटने से मलेरिया के रोगाणु शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। फील पांव के कीटाणुओं का वाहक भी एक विशेष प्रकार का मच्छर है। इसी प्रकार प्लेग, पिस्सुओं और निद्रा रोग टिसी-टिसी नामक मक्खी के काटने से होता है। कई कृमि जैसे, अंकुश कृमि त्वचा को भेद कर रक्त तक पहुँचते हैं। सूचिकृमि (pinworm) के अण्डे गंदी उंगलियों या दूषित भोजन या पानी के जरिये मुंह से अन्दर जा सकते हैं। जैसा कि आप जानते हैं पागल कुत्ते के काटने से व्यक्ति मर सकता है, क्योंकि कुत्ते में जलांतक (rabies) के जीवाणु होते हैं। इंजेक्शन के समय प्रयुक्त दूषित और संक्रमित सिरिंज से भी व्यक्ति रोगी हो सकता है।

आप आश्चर्य चकित होंगे कि इतने छोटे-छोटे जीव किस प्रकार बड़े-बड़े घातक रोगों के जनक हो सकते हैं। इनका कौशल यह है कि ये हमारे शरीर में बहुत गति से बढ़ते हैं। हर बीस मिनट में एक जीवाणु लाखों जीवाणु पैदा कर सकता है और आसपास की लाखों कोशिकाओं को संक्रमित कर सकता है।

विषाणु (virus) केवल जीवित कोशिकाओं में ही बढ़ते हैं। शरीर की कोशिका में प्रवेश करके वहां अपना प्रभुत्व जमा लेते हैं और कोशिका को स्व-प्रजनन की आज्ञा देते हैं। इस प्रकार उत्पन्न असंख्य विषाणु अन्य कोशिकाओं को मारते हुए शरीर में फैलते चले जाते हैं।

बोध प्रश्न 4

क) निम्नलिखित कथनों में से कौन सा सत्य (स) है और कौन सा असत्य (अ) ? नीचे दिए गए खानों में (स) अथवा (अ) लिखकर बताइए।

i) विषाणु जीवित कोशिका के बाहर प्रजनन कर सकते हैं। ☐
ii) जीवाणु विखंडन से पैदा होते हैं। ☐
iii) सभी जीवाणु हानिकर हैं। ☐
iv) लाखों जीवाणु हमारी त्वचा पर रहते हैं। ☐
v) मलेरिया प्रजीवाणु से होता है। ☐
vi) कुछ जीवाणु उपयोगी पदार्थों के उत्पादन में सहायक है। ☐

ख) रिक्त स्थान भरिए :

i) रोगाणुओं के प्रवेश में प्रमुख भौतिक रुकावट हमारी ..... है।
ii) श्लेष्मा-झिल्ली रोगाणुओं के प्रवेश को तभी रोक सकती है जबकि व्यक्ति पूर्णतया ..... हो।
iii) रोगाणु ....., ... और ..... द्वारा हमारे मुंह में पहुंच सकते हैं।

22.4.4 शरीर का रोगाणुओं से संघर्ष

आपने पढ़ा कि कई प्रकार के कीटाणु हमारे शरीर में प्रवेश करते हैं। परन्तु हम प्रायः बीमार क्यों नहीं पड़ते? रोगाणु प्रायः लोगों के सम्पर्क में आते हैं और शरीर में भी प्रवेश करते हैं। परन्तु रोग कुछ लोगों को ही होता है। तो क्या इसका यह अर्थ है कि कुछ लोगों में रोग प्रतिरोधी क्षमता अधिक होती है?

सर्वप्रथम त्वचा और श्लेष्मा-झिल्ली हमारे शरीर में रोगाणुओं को प्रवेश करने से रोकती हैं हमारी त्वचा में ग्रंथियां होती हैं, जो तेल जैसा चिकना पदार्थ, हमारी त्वचा की ऊपरी सतह की रक्षा के लिए बनाती है। पसीना भी त्वचा से खास गन्दगी और कीटाणुओं को हटाने में सहायक है। पसीने में लाइसोजाइम नामक एक विशेष प्रकार का रसायन होता है जो कीटाणुओं को नष्ट करता है। लाइसोजाइम आंसू, थूक, नाक और ऊतकों में से निकलने वाले तरल-पदार्थ में भी होता है। कई प्रकार के रोगाणु, जो हमारे पेट तक पहुँच जाते हैं, पेट के तेज अम्ल-रस द्वारा नष्ट हो जाते हैं।

रोगाणु जो शरीर में प्रवेश कर विभिन्न अवयवों में या पेट में जीवित रह जाते हैं वह शरीर का भोजन लेकर फलते-फूलते व बढ़ते हैं। फिर शरीर की कोशिकाओं को नष्ट करने लगते हैं और विषाक्त पदार्थ भी छोड़ते हैं। अगर उनकी इस गतिविधि की रोक नहीं जाता तो विषाक्त पदार्थ की मात्रा इतनी बढ़ जाती है कि हम बीमार पड़ जाते हैं। परन्तु अधिकतर हमारा शरीर उन पर काबू पा लेता है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि हमारे शरीर में विस्तृत सुरक्षा तंत्र इतना तगड़ा है कि उसकी तुलना किसी देश की सुरक्षा सेना से की जा सकती है। इसका जाल सारे शरीर में फैला है जैसाकि चित्र 22.5 में दिखाया गया है।

सुरक्षा बल विशेष कोशिकाओं के रूप में है जो "श्वेत रक्त कोशिकाओं" के नाम से जानी जाती है। ये रक्षक की तरह समूचे शरीर में रक्त के साथ परिभ्रमण करती हैं। श्वेत रक्त कोशिकाएं कई प्रकार की होती हैं और कई तरह से हमलावर कीटाणुओं का मुकाबला करती हैं। संक्रमण के समय उनकी संख्या में स्वतःतीव्र वृद्धि होती है। संख्या दुगनी-तिगुनी या चौगुनी हो सकती है जो संक्रमण की तीव्रता पर निर्भर करती है। डॉक्टर संक्रमण का पता माइक्रोस्कोप के नीचे खून की जांच कर श्वेत रक्त कोशिकाओं की संख्या से मालूम करते हैं।

जब रोगाणु हमारे शरीर पर आक्रमण करते हैं तो विशेष प्रकार की श्वेत रक्त कोशिकाएं संक्रमित स्थल पर जाकर हमलावर रोगाणुओं को निगलकर समाप्त कर देती हैं। इन कोशिकाओं को "निगलने वाली कोशिकाएं" कहा जाता है (चित्र 22.6 अ)। लड़ाई समाप्त हो जाने पर दूसरी किस्म की श्वेत रक्त कोशिकाएं मृत रोगाणुओं और मृत श्वेत रक्त कोशिकाओं को हटाने के लिए उस स्थान पर आ जाती है फोड़े फुन्सी, घाव पर जो पस जमा होती है उसमें बड़ी संख्या में ये मृत कोशिकाएं और मृत रोगाणु होते हैं। अन्य प्रकार की श्वेत रक्त कोशिकाएं लड़ने के लिए एक रासायनिक द्रव्य उत्पादित करती हैं जिसे "प्रतिपिण्ड" कहा जाता है जो विष या जीव-विष को अप्रभावात्मक करती है (चित्र 22.6 ब) इसके अलावा ये प्रतिपिण्ड हमलावर रोगाणुओं को चिह्नित करती है जिससे निगलने वाली कोशिकाओं द्वारा उन्हें पहचानने में आसानी होती है (चित्र 22.6 स)। अन्य प्रकार की श्वेत रक्त कोशिकाएं "मारक" के रूप में भी काम करती है। ये हमलावर या शरीर की संक्रमित कोशिका को तुरन्त मार देती हैं। कुछेक श्वेत रक्त कोशिकाएं एक बार किसी हमलावर का मुकाबला कर लेने के बाद उसे भूलती नहीं है। वे "प्रशिक्षित कोशिकाओं" के रूप में जानी जाती है और बाद में उसी हमलावर द्वारा पुनः आक्रमण किए जाने पर वे उनका प्रभावात्मक ढंग से मुकाबला करती हैं। शरीर का समूचा प्रतिरक्षा जाल रोगाणुओं के शरीर में घुसते ही सक्रिय हो उठता है और शत्रु से लड़ने का संकेत देता है। शरीर प्रायः स्वयं संक्रमण का प्रभावात्मक ढंग से मुकाबला कर लेता है और ज्वर, जलन या सूजन वगैरह जैसे लक्षण खुद व खुद लुप्त हो जाते हैं, लेकिन शरीर के सुरक्षा कार्यों की अनुपूर्ति के लिए यदा-कदा औषध लेना आवश्यक है। लम्बे अनुसंधान के पश्चात् विभिन्न रोगों के निदान के लिए विभिन्न औषधियों को ढूंढ निकाला गया है।

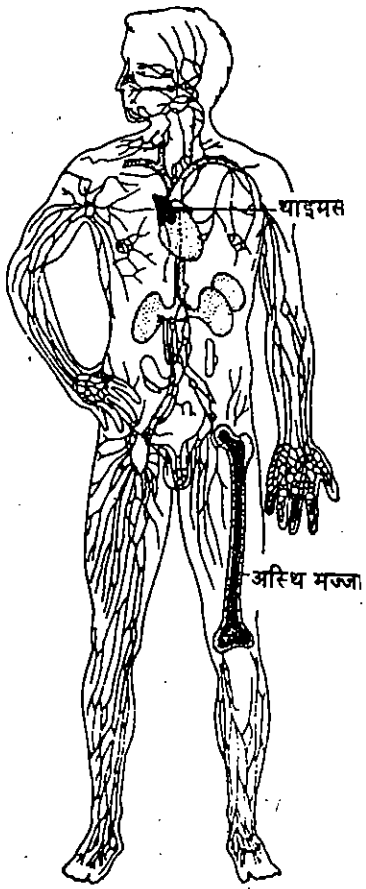

चित्र 22.5 : "सुरक्षा तंत्र" श्वेत रक्त कोशिकाएँ थाइमस और अस्थि मज्जा bone marrow) में उत्पन्न होती है। यह नव निर्मित कोशिकाएँ रक्त में चली जाती है।

कई बार लोग अस्पताल या डॉक्टर के पास देर से पहुंचते है तब तक रोगाणु शरीर को अच्छा खासा नुकसान पहुंचा चुके होते हैं।

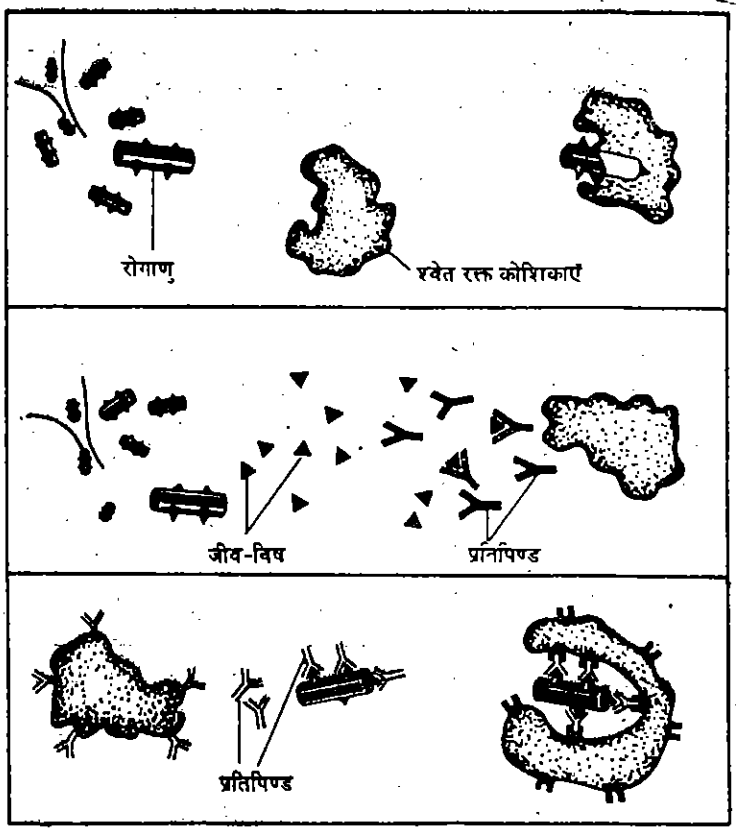

चित्र 22.6 श्वेत रक्त कोशिकाओं के कीटाणुओं को नष्ट करने के तरीके (अ) निगलना (ब) प्रतिपिण्ड द्वारा जीव-विष को निष्प्रभावित करना (स) कीटाणु चिह्नित करना।

टीकाकरण

आइए अब हम देखें कि किस प्रकार टीके हमारी रोगों से रक्षा करते हैं।

हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं कि श्वेत रक्त कोशिकाएं प्रतिपिण्ड पैदा करती हैं जो हमलावर रोगाणुओं द्वारा उत्पादित जीव-विष को निष्प्रभावित करती हैं श्वेत रक्त कोशिकाएं विभिन्न प्रकार की होती हैं और प्रत्येक प्रकार की कोशिका की संख्या करोड़ों में होती है। ये कोशिकाएं किसी भी एक प्रकार विदेशी आक्रमणकर्ता को आसानी से पहचान लेती हैं और डटकर उसका मुकाबला करती हैं। श्वेत रक्त कोशिकाओं का जो समूह एक बार विशेष प्रकार के हमलावर का सामना कर चुका होता है वह उसे भूलता नहीं है और भावी आक्रमणों से शरीर की रक्षा करने में "प्रशिक्षित" हो जाता है। इस प्रकार शरीर उस रोग विशेष से प्रतिरक्षित हो जाता है इस प्रक्रिया को "प्रतिरक्षण" कहा जाता है। जब-जब रोगाणु शरीर पर आक्रमण करते हैं, तब-तब विभिन्न कोशिकाएं उनका मुकाबला करने के लिए उत्पन्न होती हैं इस प्रकार "प्राकृतिक प्रतिरक्षण" शरीर का एक नियमित ढर्रा है। "कृत्रिम प्रतिरक्षण" अर्थात् "टीकाकरण" रोगों से बचने का चतुर तरीका है। टीके द्वारा शरीर में निर्बल संक्रामक रोगाणुओं को प्रवेश करवाया जाता है इनसे सुरक्षा कार्य सक्रिय हो जाता है और रोग विशेष का मुकाबला करने के लिए खास श्वेत रक्त कोशिकाएं उत्पन्न करके प्रशिक्षित करता है जो भविष्य के संक्रमण का पूर्णतः मुकाबला कर सकती है।

बड़ी माता का टीका खोजने वाले प्रथम व्यक्ति एडवर्ड जेनर थे। उन्होंने अपने ही पुत्र पर टीके का परीक्षण किया।

बोध प्रश्न 5

समुचित शब्दों का चुनाव कर रिक्त स्थान भरिए :

i) श्वेत रक्त कोशिकाएं हमलावर रोगाणुओं को ..... या रोगाणुओं द्वारा उत्पादित ..... को ..... नामक रसायन बना कर समाप्त कर देती हैं।

ii) श्वेत रक्त कोशिकाएं रक्त में ..... के रूप में रहती हैं और पूरे शरीर में ..... करती हैं।

iii) बहुत से रोग, जिन्हें तांत्रिक या नीम हकीम दूर भगाने का दावा करते हैं, वस्तुतः हमारा अपना ..... से स्वतः ठीक हो जाते हैं।

iv) यदि आक्रमणकारी रोगाणु ..... हो जाते हैं तो व्यक्ति पुनः स्वास्थ्य लाभ कर लेता है।

v) औषधियां रोगाणुओं को ..... शरीर की सहायता करती है।

vi) टीकाकरण द्वारा ..... रोगाणुओं के माध्यम से पहले से हमारे ..... को ..... करने का एक तरीका है।

प्रशिक्षित, शरीर, पराजित, रक्षक, निगलकर, प्रतिपिण्ड, जीव-विष, निर्बल, परिभ्रमण, सुरक्षा तंत्र, मारने में।

22.5 रोगों का प्रसार या संक्रमण

संक्रामक रोग विभिन्न प्रकार के कीटाणुओं और कृमियों से होते हैं। यह जान लेने के बाद आइए देखें कि ये एक से दूसरे व्यक्ति में कैसे जाते हैं। इनके सफर के कई माध्यम हैं जैसे वायु, पानी, भोजन, सम्पर्क, कीट और अन्य वाहक।

वायु जनित रोग

बहुत से रोग जीवाणुओं और विषाणुओं से होते हैं जो वायु में चले जाते हैं। जब बीमार आदमी छींकता या खांसता है तो मुंह से थूक के छींटे निकलते हैं। इन छींटों में रोगाणु होते हैं जो हवा में फैल जाते हैं और काफी देर तक जीवित तैरते रहते हैं। अगर वहाँ दूसरा व्यक्ति हो तो सम्भव है सांस के जरिए ढेर सारे रोगाणु उसके शरीर में प्रवेश कर जाएं और वह संक्रमित हो जाए (देखिए चित्र 22.7) एक रोगी इसी प्रकार कई लोगों को रोग दे सकता है। सर्दी-जुकाम के विषाणु इसी प्रकार फैलते हैं। तालिका 22.3 में विभिन्न प्रकार से फैलने वाले रोगों का उल्लेख किया गया है। जैसा कि उसमें दर्शाया गया है, कुष्ठ रोग भी इसी प्रकार फैलता है। लेकिन यह तभी फैलता है जब कोई रोगी कई दिनों तक रोगी के करीब रहता है। इसके लक्षणों को उभरने में बहुत समय लगता है परन्तु सभी कुष्ठ रोगी संक्रामक नहीं होते हैं। वायु जनित रोग नम, बंद और घुटन वाले स्थानों पर बहुत जल्दी फैलते हैं।

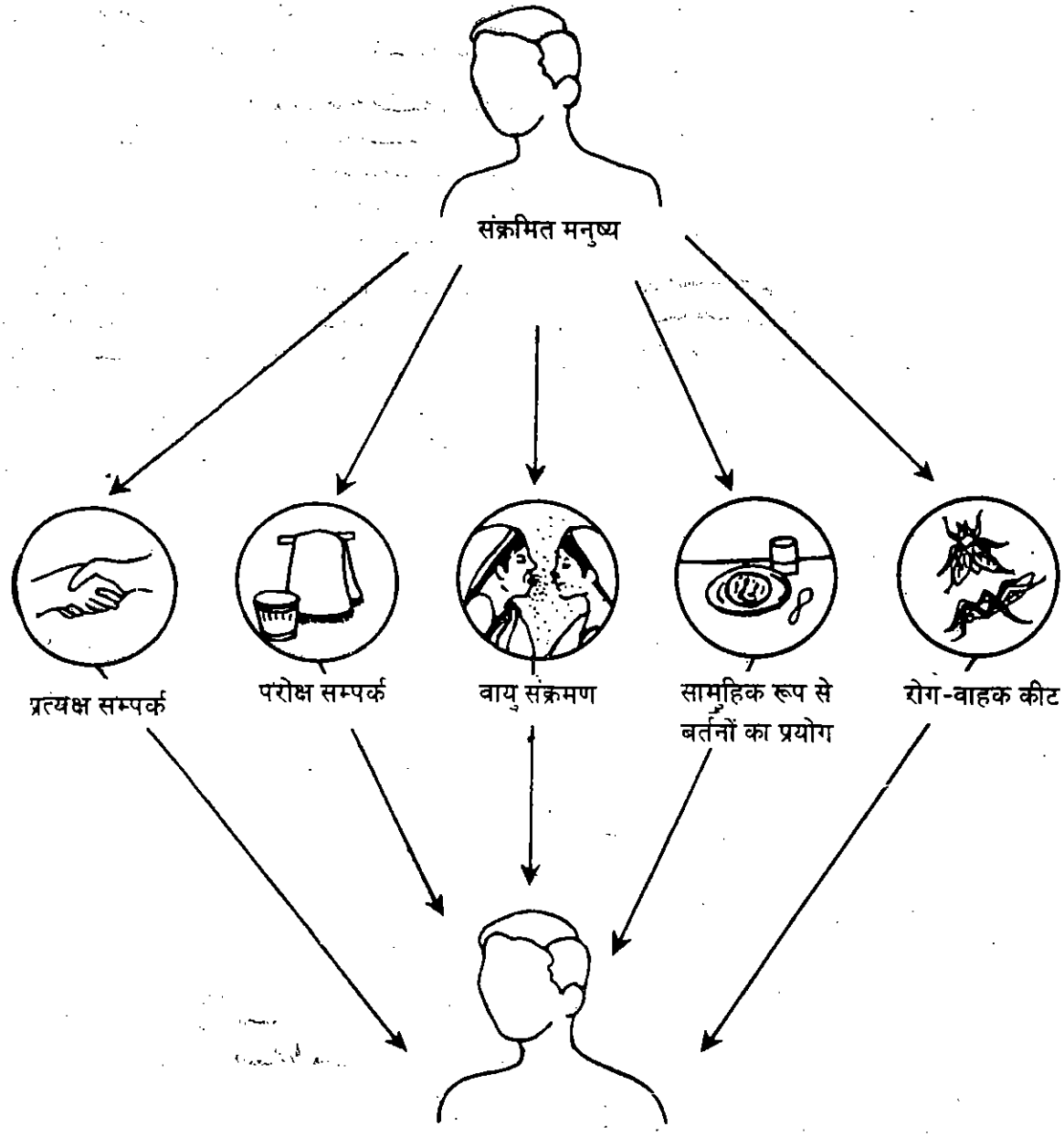

चित्र 22.7 : बीमारियों के फैलने के तरीके

दिल्ली में जुलाई सन् 1988 में हैज़े की महामारी, हैण्डपम्प पर्याप्त गहरे न होने के कारण आसपास की गन्दगी से इसका पानी प्रदूषित हो गया। प्रदूषित पानी से हैज़े का शहर में प्रकोप हो गया।

पानी जनित रोग

हैज़ा, टायफायड, अतिसार और पेचिश जैसे रोग पानी से फैलते हैं। इनके रोगाणु रोगी की आंतों में ही विखंडित होकर बढ़ते हैं तथा मूत्र व शौच के साथ बाहर आते हैं (चित्र 22.8)। कृमियों के अण्डे भी शौच के साथ बाहर निकलते हैं (चित्र 22.9)। अगर रोगी खुले मैदान में मल या मूत्र के लिए जाता है, जैसा कि दुर्भाग्यवश हमारे गांवों में प्रायः देखा जा सकता है, तो रोगाणु या कृमियों के अण्डे स्थानीय जलस्रोत जैसे नदी या तालाब तक पहुँच सकते हैं। ऐसे पानी में अगर आप बर्तन धोते हैं या इसे पीते हैं तो आप भी उस रोग का शिकार हो सकते हैं। जब कभी गन्दी बस्तियों मे शौचालय हैण्डपम्प से सटे हुए होते हैं तो पीने का पानी रोग का कारण बन जाता है। कहना न होगा कि जो लोग ऐसी जगहों में रहने के लिए मजबूर है या वे जिन्होंने शौच के लिए खेतों में जाने की आदत बनाई है उन्हें पानी से होने वाले रोग सबसे ज्यादा होते हैं। रोगों के फैलने का दूसरा कारण रोगी द्वारा व्यक्तिगत स्वच्छता की उपेक्षा है। अगर रोगी मूत्र या शौच के बाद भली प्रकार हाथ नहीं धोता तो हो सकता है कि उसके हाथों में रोगाणु या उनके अण्डे लगे रह जाएं और उसके द्वारा उन्हीं हाथों से भोजन, बर्तन या फर्नीचर या अन्य वस्तु छुए जाने पर वे रोगाणु या कृमियों के अण्डे उन वस्तुओं में लग जाएं और फिर कोई स्वस्थ व्यक्ति जब उन वस्तुओं को छुए तो बहुत संभव है कि वे रोगाणु उस तक पहुँच जायेंगे।

भोजन जनित रोग

अगर गृहणियाँ या रसोइये किसी रोग से ग्रस्त है और शौच के बाद भली प्रकार हाथ नहीं धोते तो रोगाणु या कृमि अंडे खाने में पहुंच सकते हैं और उस भोजन को खाने वाले बीमार पड़ सकते हैं। टायफायड, जीवाणु द्वारा पेचिश, और पेट की दूसरी बीमारियाँ इसी तरह फैलती हैं। मक्खियां, जिन्हें मल और कूड़ा-करकट विशेष प्रिय है, जब भोजन पर बैठती हैं तो उसे कीटाणु युक्त कर देती है फल और साग सब्जियां भी खाद के रूप में प्रयुक्त मल से संदूषित हो जाती है खुली हवा में देर तक पड़ा भोजन, या जिस पर मक्खियां बैठ चुकी हैं रोग का घर है जिसमें रोगाणु बड़ी गति से फलते-फूलते और बढ़ते हैं। ऐसा भोजन खाने से "फूड-पॉइजनिंग" हो सकती है। इसके आम लक्षण हैं — उदर-शूल, जी मचलाना, उल्टी

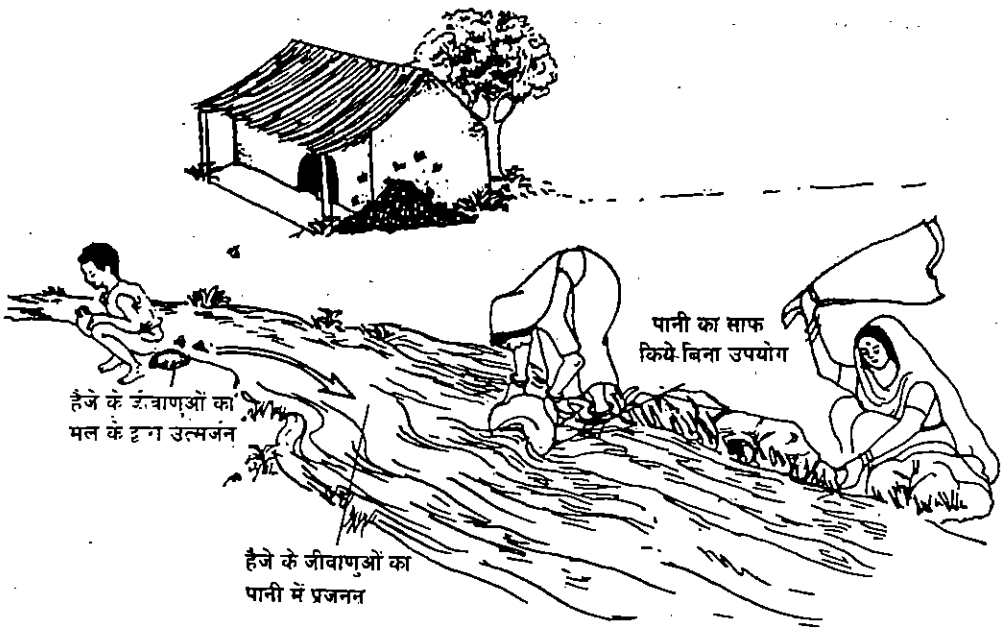

चित्र 22.8 : शौच, मूत्र व कपड़े धोने से पानी के स्रोत का प्रदूषण

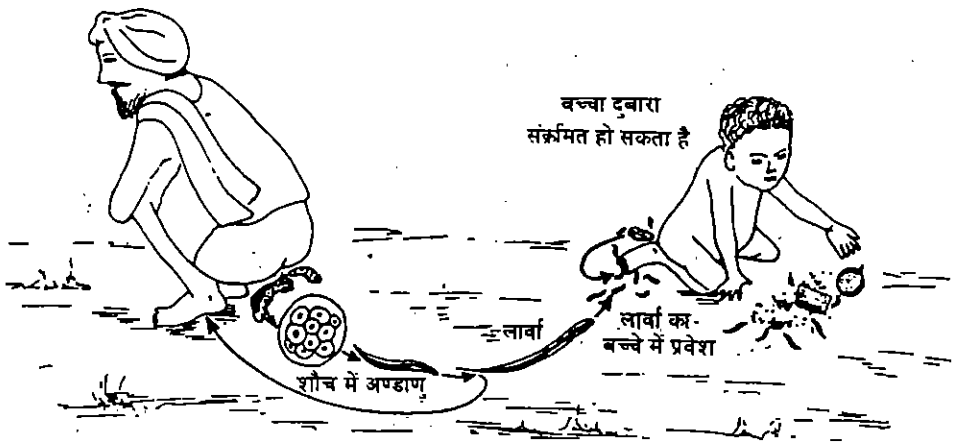

चित्र 22.9 : अंकुश कृमि (hook worm) का संचारण।

आना और दस्त लगना। रोगाणु सामान्यतः भोजन गरम करने पर मर जाते हैं पर उनके द्वारा उत्पन्न विष ऊष्मा को सह लेता है और वह नष्ट नहीं होता।

कीड़े-मकोड़े या अन्य वाहकों द्वारा फैलने वाले रोग

हम जानते हैं कि मलेरिया मादा मच्छर एनाफिलीज से होता है। डेंगू बुखार और फ़िलेरिया भी मच्छर के काटने से होता है। यह कीट रक्त चूसकर उसका कुछ अंश वापिस शरीर के अन्दर डाल देते हैं। मच्छर जब किसी रोगी का रक्त चूसता है तो कुछ कीटाणु भी उसमें आ जाते हैं और फिर जब किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटता है तो उसके शरीर में कीटाणु छोड़ देता है। मक्खियाँ पेट के रोग के कीटाणु फैलाती हैं। इसी प्रकार पिस्सू और चूहे भी कीटाणुओं का घर है। प्लेग चूहों से होता है जिसके कारण अनगिनत मृत्यु हुई है। जुएं, टिक्स, तिलचट्टे, टिड्डियां वगैरह भी कई रोगों के कीटाणु फैलाती हैं। गिनी कृमि से होने वाले नारू रोग भारत में प्रायः होता है। वयस्क कृमि एक मीटर लम्बा होता है एवं पेट से पैर तक पहुंचता है और झल्लियों (larva) को जन्म देता है जो पानी में पहुंच जाती हैं जिससे (चित्र 22.10) पानी दूषित हो जाता है।

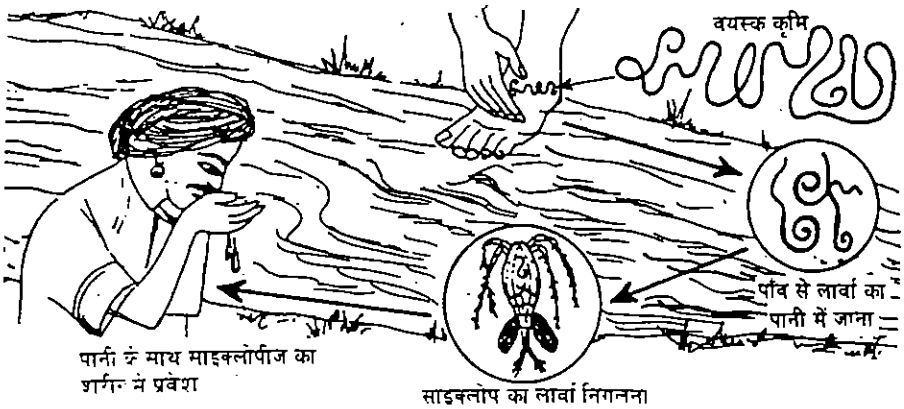

चित्र 22.10 गिनी कृमि (guinea worm) का संचरण।

तालिका 22.3 : वायु, पानी, भोजन और सम्पर्क से फैलने वाले आम रोग

वायु	पानी	भोजन	सम्पर्क
श्वसन तंत्र से संबंधित रोग	जठरांत्र रोग	टायफायड	सिफ्लीज़
सर्दी-जुकाम	संक्रमण हैजा	टेंडाणु-पेचिश	गनोरिया
खसरा	टायफायड	फीता कृमि	
काली खांसी	पेचिश		
तपेदिक	अतिसार		
कुष्ठ रोग	अमीबा से पेचिश		
मेनिंजाइटिस	गोल कृमि से पेचिश		
छोटी माता	गिनी कृमि		

बोध प्रश्न 6

निम्नलिखित रोग किस प्रकार फैलते हैं?

रोग	कारण
1) छोटी माता	
2) हैज़ा	
3) तपेदिक	
4) कुष्ठ रोग	
5) गिनी कृमि	
6) खसरा	
7) खांसी-जुकाम	
8) मलेरिया	

22.6 रोगों की रोकथाम

अब हम जानते हैं कि संक्रामक रोग किस प्रकार फैलते हैं। इनकी रोकथाम, संक्रमण पर नियंत्रण करने से व समय पर इलाज करने से सम्भव है।

22.6.1 प्राचीन काल में रोगों की रोकथाम

आइए, इस अध्याय की शुरुआत प्राचीन भारत में प्रचलित उन प्रथाओं के विश्लेषण से करें जो रोगों की रोकथाम में सहायक थी। उदाहरण के लिए खाने से पहले और खाने के बाद हाथ धोना, प्रतिदिन नहाना, कमरे में जाने से पहले चप्पल-जूते उतारना, रसोई में सबको न जाने देना विशेष रूप से उन्हें जिन्होंने स्नान न किया आदि। ये आदतें बड़े अनुभव के पश्चात् सोच-समझ कर अपनाई गई होंगी क्योंकि ये वास्तव में रोगों की रोकथाम में सहायक हैं। प्रसूति के बाद माँ और बच्चे को कुछ समय के लिए अलग रखना एक आम बात थी। इसका उद्देश्य भी मां और बच्चे को संक्रमण से बचाना था। व्यक्तिगत स्वच्छता के नियमों का उल्लेख मनुस्मृति में भी किया गया है।

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई इस बात की साक्षी है कि उस काल में भी मल प्रवाह के लिए बन्द नालियां और जल आपूर्ति की सही व्यवस्था थी। घर की सभी नालियां मुख्य नालियों में जा मिलती थी तथा सफ़ाई के प्रबन्ध की पूरी व्यवस्था थी। इसी प्रकार मिस्र, यूनान और चीन की पुरानी सभ्यता में चिकित्सा व्यवस्था थी। मिस्र में जनता के लिए सार्वजनिक स्नानगृहों की व्यवस्था थी और भूमिगत नालियां थीं। वे मच्छरदानियों का प्रयोग भी करते थे और वे यह भी जानते थे कि प्लेग चूहों से संबंधित है। यूनान के प्रसिद्ध चिकित्सक हिप्पोक्रेट ने ई.पू. पांचवीं शताब्दी में स्वास्थ्य के लिए जलवायु, खान-पान, और कपड़ों के महत्व का परीक्षण किया था। वे स्वच्छता की आदतों पर बहुत जोर देते थे। प्राचीन भारत और चीन के लोग टीकाकरण से भी परिचित थे। वे जानते थे कि बड़ी माता के रोगाणुओं का टीका लगाकर बड़ी माता को रोका जा सकता है।

22.6.2 आधुनिक समय में रोगों की रोकथाम

आइए, अब यह देखें कि रोगों की रोकथाम के आधुनिक विचार का प्रसार कब हुआ। यह कहानी केवल 150 वर्ष पुरानी है। लोग अमेरिका, यूरोप या जापान से निस्संदेह बहुत प्रभावित होकर लौटते हैं और वहाँ की आधुनिक तकनीकी प्रगति का गुणगान करते नहीं थकते। एक और पहलू है जिसकी वे तारीफ किए बिना नहीं रहते और वह है वहाँ के शहरों की स्वच्छता। क्या आप विश्वास करेंगे कि घर के बाहर सड़क पर या हाइवे पर जरा सा कचरा फेंकने वाले को भारी जुर्माना भरना पड़ता है। पर क्या ये देश पहले भी इतने स्वच्छ थे ? नहीं। आज से 150 वर्ष पहले औद्योगिक क्रांति के समय पश्चिमी जगत का श्रमिक वर्ग बड़ी गन्दगी में रहता था। उनके घर के सामने कचरे के ढेर लगे रहते थे, नालियों वगैरह की कोई व्यवस्था नहीं थी, तथा कसाई घरों में मक्खियां भिनभिनाती थीं। उसकी तुलना हमारे आज के भारत के किसी भी गांव या पुराने, गंदे भीड़वाले क्षेत्र से की जा सकती है।

तब तक पश्चिम के लोगों को यह मालूम न था कि गन्दगी स्वास्थ्य का सबसे बड़ा शत्रु है। यूरोप में औद्योगिक क्रांति के दौरान रोग और गन्दगी के बीच गहरा संबंध दर्शाया गया। यह वह समय था जब औसतन 30 परिवार एक शौचालय का प्रयोग करते थे। हैज़ा जैसे जान लेवा रोगों का फैलना एक आम बात थी। उस समय देखा गया कि मध्यम और उच्च वर्ग के लोगों की अपेक्षा मजदूरों के घरों में रोगों की अधिकता थी। इस तथ्य की खोज के परिणामस्वरूप यह विचार उभर कर सामने आया कि जनता के स्वास्थ्य का उत्तरदायित्व राष्ट्र है। राष्ट्रीय स्तर पर स्वास्थ्य नियम बनाए गए और लोग उनका पालन करें इसके लिए पुलिस की सहायता ली गई। सन् 1832 में इंग्लैंड में एक बार फिर हैजे ने अपना प्रकोप दिखाया। उस समय श्रमिक वर्ग को उपलब्ध सफ़ाई प्रबंध की व्यवस्था की जांच की गई और इससे यह विश्वास पक्का हो गया कि हैज़ा और दूसरे रोग गन्दगी भरे माहौल में, मृत जानवरों के सड़े गले शवों से निकलने वाली बदबू में पनपते हैं। यह भी पता लगा कि रोगों के प्रसार में पानी की विशेष भूमिका है।

इंग्लैंड में गंदगी को शत्रु माना गया। इसके बाद ही सुधारों की ओर ध्यान दिया गया। स्वच्छ प्रबन्ध की व्यवस्था की जाती है, आरम्भ

सन् 1848 में इंग्लैंड ने लोक स्वास्थ्य निगम जारी किया, जिसमें लोक स्वास्थ्य में राष्ट्र की भूमिका को स्पष्ट किया गया तथा स्वच्छता के लिए लोगों को जानकारी दी गई। सन् 1875 में लोक स्वास्थ्य नियम के अन्तर्गत स्वच्छ वातावरण और स्वच्छ पानी की व्यवस्था के लिए कदम उठाने का निर्णय लिया गया। यूरोप और अमेरिका के राष्ट्रों ने भी इसका अनुसरण किया। स्वच्छ पानी की व्यवस्था की गई। घरों में और उसके आसपास कचरा इकट्ठा न हो इसके लिए समुचित कदम उठाए गए।

इस प्रकार बहुत हद तक रोगों को फैलने से रोका जा सका। सड़ने गलने वाली चीजों, गन्दगी और कचरे को हटाया गया। उन स्थानों को विशेष रूप से स्वच्छ किया गया जहां रोगाणु पनपते थे। हालांकि इन प्रयासों से शहरी क्षेत्रों में महामारी पर पूर्णरूप से काबू नहीं हो सका पर इन कदमों से लोगों के स्वास्थ्य में कुछ सुधार हुआ। इसके अलावा वैयक्तिक और सामुदायिक रूप से रोगों को रोकने के लिए विशेष प्रयास भी किये गये।

अब तक रोगाणुओं से होने वाले विभिन्न रोगों का भी पता लगाया जा चुका था। इनकी खोज के बारे में आप पिछले खंड में पढ़ चुके हैं।

अगले खंड में हम रोगों की रोकथाम के लिए आवश्यक "पर्यावरण पर नियंत्रण" के संबंध में चर्चा करेंगे।

ोध प्रश्न 7

म्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दीजिए।

) प्राचीन भारत में रोगों की रोकथाम के लिए लोगों ने क्या उपाय किये, दो उदाहरण दीजिए ?

.....

.....

।। औद्योगिक क्रांति के समय श्रमिकों में फैले रोगों के कारण लिखिए ?

.....

.....

.....

।।। गन्दगी हटाने से रोगों पर कैसे नियंत्रण हुआ?

.....

.....

12.6.3 पर्यावरण पर नियंत्रण

अच्छा स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए "पर्यावरण पर नियंत्रण" आवश्यक है। अच्छा घर, शुद्ध पानी, शुद्ध वायु और सफाई का प्रबन्ध वैयक्तिक और सामुदायिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं इसके अलावा खुले में खाने-पीने की जो चीजें बेची जाती हैं उससे भी स्वास्थ्य प्रभावित होता है। हमारे देश के लोग कई अस्वस्थ सामाजिक बुराइयों और अन्धविश्वासों के शिकार हैं इन सबका कारण है : अज्ञानता, निर्धनता और खासकर स्वास्थ्य शिक्षा का अभाव। एक औसत भारतीय का स्वास्थ्य स्तर बहुत नीचा है। दुर्भाग्यवश, हममें से शायद ही कुछ लोग घर के आसपास, सड़कों पर या सार्वजनिक स्थानों पर पड़े कचरे के विरुद्ध संबंधित अधिकारी से शिकायत करते हों इस दिशा में सामाजिक प्रयासों की कमी है।

आवास

स्वास्थ्य के लिए घर व उसमें हमारा रहन-सहन बहुत महत्वपूर्ण है। शायद आप जानते हैं कि भारत में अधिकांश लोग ऐसे घरों में रहते हैं जो स्वास्थ्य की दृष्टि से सही नहीं है। गाँवों में शायद ही कहीं शौचालय हैं। गन्दे पानी की निकासी के लिए नालियों की व्यवस्था न होने के कारण जहाँ तहाँ गन्दा पानी खड़ा होता है जिसमें रोगाणु पनपते हैं। काम की खोज में आज ज्यादा से ज्यादा लोग शहरों की ओर दौड़ रहे हैं इसलिए शहरों में घरों की समस्या बढ़ती चली जा रही है। अधिकांश लोग झोपड़-पट्टियों में या सड़कों पर रहते हैं। पर्यावरण कारक, जैसे कि अच्छा घर, शुद्ध पानी, शुद्ध वायु, सफाई का प्रबन्ध, वैयक्तिक और सामुदायिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। इसके अलावा खान-पान की जो वस्तुएं आमतौर पर लोग बेचते हैं वह भी हमारे स्वास्थ्य पर असर करती है। हमारे देश में सीमित साधनों के कारण अधिकतर लोग यह चयन नहीं कर सकते कि कहां रहें, किस प्रकार का पानी पीये या अपने इर्द-गिर्द का वातावरण सही रखें। इसके अलावा लोगों को स्वास्थ्य सम्बन्धित जानकारी भी नहीं है और कई अस्वस्थ सामाजिक प्रथाएं भी हैं। छोटा घर स्वयं में रोग का कारण नहीं परन्तु इससे स्वास्थ्य और रोगों के प्रसार पर बहुत असर पड़ता है। घर हवादार होना चाहिए, उसमें धूप आनी चाहिए जिससे रोगाणुओं को पनपने की जगह न मिले। घर में पूर्ण वायु संचार होने से कीटाणुओं की संख्या कम होती है। फेफड़ों से संबंधित रोग, डिप्थीरिया, काली खांसी और तपेदिक जैसे संक्रामक रोग प्रायः गन्दे, अंधेरे और घुटन भरे घरों में अधिक होते हैं। बन्द अंधेरे कमरों में रोगाणु बहुत गति से पनपते हैं और संक्रामक रोगों के फैलने का खतरा बढ़ जाता है . सीलन और नमी से ये रोग बहुत जल्दी फैलते हैं घरों में अगर रोगाणु वाहक जैसे कि छछूंदर, चूहे, तिलचट्टे, कीड़े-मकोडे, मक्खियां और मच्छर इत्यादि हैं तो वह भी रोग फैलाने में सहायक होते हैं।

पानी

हम सब जानते हैं कि अच्छे स्वास्थ्य के लिए स्वच्छ पानी कितना आवश्यक है। हमारे देश में अधिकांश रोगों का कारण स्वच्छ पानी की व्यवस्था का अभाव है। दुर्भाग्यवश गांवों में सिर्फ 18 प्रतिशत जनता को स्वच्छ जल प्राप्त है। हमारे गांवों और नगरों की अधिकांश जनता सतही पानी अर्थात् नदियों, नालों, तालाबों, झीलों, पोखरों और टैंकों के पानी पर निर्भर है। इनका स्रोत वर्षा है। हालांकि वर्षा का पानी सबसे अधिक शुद्ध है पर वायुमण्डल में से गुजरते समय या पृथ्वी पर आकर अशुद्ध हो जाता है। धूल-मिट्टी, गंदी गैसों और सूक्ष्म जीवाणुओं से दूषित हो जाता है। पानी गंदा करने में मनुष्य का योगदान भी कुछ कम नहीं। जैसे जलाशयों या उनके पास बैठकर नहाना, धोना, बर्तन मांजना या शौच करना आदि। झरनों, कुओं, ट्यूबवैल, या हैण्डपम्प का पानी अपेक्षाकृत बेहतर है क्योंकि यह पानी पृथ्वी में से छनकर आता है और जीवाणुओं से मुक्त होता है बशर्ते हैण्डपम्प पर्याप्त गहरा हो या प्रदूषण स्रोत बहुत पास न हो।

संदूषित पानी से फैलने वाले रोगों के नाम आप पहले जान चुके हैं। रोग-दर का पानी की शुद्धता से सीधा संबंध है। यह देखा गया है कि कुछेक राज्यों में पानी की व्यवस्था में सुधार लाने से रोग-दर में काफी कमी हो गई है। पीने का पानी रोगाणुओं और हानिकर रसायनों से मुक्त होना चाहिए। कूड़े-करकट मल, कल-कारखानों के कचरे, कीटनाशक दवाइयों, रेडियो-एक्टिव-धूल के समुचित निपटान की उपेक्षा कर मानव आज स्वयं पानी को दूषित कर रहा है। शहरी क्षेत्रों में भी बहुत कम लोगों को सही मल व्यवस्था का फायदा है। ग्रामीण क्षेत्रों में 70 प्रतिशत से अधिक लोग खेतों में शौच के लिए जाते हैं जिनसे अनेक प्रकार के रोगों को फैलने का संकट निश्चित है। मानव मल का सही निपटान स्वास्थ्य और समाज दोनों के लिए नितान्त आवश्यक है। पानी को उबाल कर और छान कर पीने योग्य बनाया जा सकता है। छानने में तलछट वगैरह निकल जाती है और उबालने से रोगाणु मर जाते हैं।

शुद्ध वायु

वायु जीवन के लिए आवश्यक है। इसलिए वायु-प्रदूषण स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। श्वास रोग, जैसे मियादी ब्रांकाइटिस, फेफड़ों का कैंसर आदि वायु-प्रदूषण से संबंधित हैं। भारत में वायु-प्रदूषण का मुख्य कारण धूल और धुंआ है। शाम को अगर आप किसी छोटे गांव में पहुंच जाएं तो वहां धूल-धुएँ के अलावा कुछ दिखाई नहीं देगा। दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास जैसे महानगरों में वायु—स्कूटरों, मोटरों या ट्रकों से निकलने वाली गन्दी गैसों से प्रदूषित है। आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि एक बिजली घर से, जैसे दिल्ली के इन्द्रप्रस्थ बिजली घर की चिमनियों से प्रतिदिन आठ टन राख निकलती है। कल-कारखानों, बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों, मोटरों, कारों, स्कूटरों से निकलने वाली विषैली गैसों से और कीटनाशक दवाइयों के छिड़काव से वायुमंडल को बचाकर वायु-प्रदूषण पर काबू पाया जा सकता है। कमरों में वायु को यांत्रिक साधनों, अल्ट्रॉवायलेट रेडिएशन, रासायनिक वाष्प या विशेष छननों (filter) द्वारा शुद्ध किया जा सकता है।

घरों या दफ्तरों में संवातन (ventilation) का अपना विशेष महत्व है। तापमान, आर्द्रता और शुद्धता की दृष्टि से अन्दर आने वाली वायु संवातन का एक अविभाज्य अंग है जिससे वातावरण सुखद एवं रोग मुक्त बनता है। हम जानते हैं कि हरे-भरे पौधों से वायु शुद्ध होती है। महानगरों में हरित-क्षेत्रों को बढ़ाने से वायुमंडल की प्रदूषण से रक्षा की जा सकती है। घर के आसपास पेड़-पौधे लगाना स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है।

विकिरण

विकिरण की उच्च मात्रा मानव स्वास्थ्य के लिए घातक है। आप जानते हैं कि 1945 में जापान के हिरोशिमा और नागासाकी इन दो नगरों पर एटम बम के विस्फोट से कितना विध्वंस हुआ था। हजारों लाखों लोग काल-कवलित हुए थे और बुरी तरह घायल होने वालों की संख्या तो अनगिनत थी। उस समय जो विकिरण हुआ था उसका प्रभाव बरसों बाद कैंसर और छालों के रूप में उभर कर सामने आया। दशाब्दियों बाद जो बच्चे पैदा हुए, वे भी सामान्य नहीं थे क्योंकि उन की माताएं विकिरण से बुरी तरह प्रभावित हुई थीं।

विकिरण मानवीय पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण अंश है। हमें ब्रह्माण्ड किरणों, भौमिक व वायुमण्डलीय पर्यावरण और शरीर के ऊतकों में विद्यमान विकिरण देने वाले तत्वों पोटेशियम, स्ट्रांशियम और कार्बन के सतत मामूली विकिरण मिलते रहते हैं। बीस किलोमीटर से ऊपर ब्रह्माण्डीय विकिरण बहुत प्रबल हो जाता है। हालांकि प्राकृतिक विकिरण का हमारे स्वास्थ्य पर तुरन्त बुरा प्रभाव नहीं पड़ता लेकिन यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उसका दीर्घकालिक प्रभाव नहीं होगा। आज विकिरण के मानवनिर्मित स्रोत हमारे जीवन के अपरिहार्य अंग हैं। उदाहरण के लिए एक्सरे। इसका रोगियों, डॉक्टरों और तकनीकज्ञ पर निस्संदेह बुरा प्रभाव पड़ता है। टी.वी., रेडियो-एक्टिव घड़ियों और चमकदार चिह्नों, आदि से भी मानवीय पर्यावरण में विकिरणों की मात्रा बढ़ती है। परमाणु बिजली घर से निकलने वाले कचरे का अगर सही ढंग से निपटान न किया जाये तो वह मानव स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है। इस दृष्टि से परमाणु बम का परीक्षण बहुत बड़ा जोखिम है।

एक्स-रेज़, गामा-रेज़, एल्फा (alpha) और बीटा (beta) कण शरीर के ऊतक को भेद कर अन्दर चले जाते हैं और उन्हें क्षति पहुँचाते हैं शरीर की क्षति विकिरण की मात्रा पर निर्भर करती है। मात्रा बहुत अधिक हो जाने पर उनका तुरन्त प्रभाव होता है और व्यक्ति मर भी सकता है। ये रक्त कोशिकाओं पर असर डालते हैं और मांस पेशियों को ढीला कर देते हैं। विकिरणव्याधि एक जाना-माना रोग है। कम मात्रा में विकिरण का प्रभाव उसी समय दिखाई नहीं पड़ता। हालांकि इसके कारण कुछ कोशिकाएँ अधिक गति से विखंडित होने लगती हैं। इसका परिणाम होता है : विभिन्न प्रकार का कैंसर जैसे ल्यूकेमिया या घातक रसौली। दुर्भाग्यवश इन किरणों से होने वाले कुछ नुकसान ऐसे होते हैं जो हमें आने वाली पीढ़ियों में ही पता चलते हैं।

अन्य तथ्य

यहाँ पर्यावरण संबंधी अन्य तथ्यों का उल्लेख भी आवश्यक है क्योंकि वे हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं।

आपने अनुभव किया होगा कि पहाड़ों पर बहुत ऊँचे जाने पर "पर्वतीय अस्वस्थता" हो जाती है — इसमें सिर दर्द होता है, नींद नहीं आती, सांस उखड़ने लगती है, जी घबराता है, उल्टी होती है और आंखों के सामने अंधेरा छा जाता है। 4000 मीटर से अधिक ऊँचाई पर व्यक्ति के "फुफ्फुस शोथ" से ग्रस्त होने का खतरा रहता है जिसमें रोगी की हालत गंभीर हो सकती है। इसमें खांसी आती है, सांस अनियमित हो जाती है, दिमाग चकराने लगता है, और व्यक्ति कोमा में भी पहुँच सकता है।

हम जानते हैं कि विभिन्न ऋतुओं में, विभिन्न स्थानों पर तापमान विभिन्न होता है। यह ऊँचाई पर निर्भर करता है। वायु की दिशा और समुद्र की दूरी का भी इस पर प्रभाव पड़ता है। शरीर द्वारा प्राप्त ऊष्मा उसके द्वारा छोड़ी जाने वाली ऊष्मा की मात्रा के बराबर होनी चाहिए। बहुत अधिक या बहुत कम तापमान शरीर के लिए कष्टकारी ही नहीं अपितु अस्वास्थ्यकर भी है। बहुत अधिक गर्मी से मनुष्य को ऊष्माघात (heat stroke) या तेज बुखार हो सकता है, थकान हो सकती है या शरीर में जकड़न आ सकती है। दूसरी ओर अत्यधिक ठंड से व्यक्ति के पैर गल सकते हैं या उसे शीताघात हो सकता है। शरीर का तापमान एकाएक गिर जाने से शरीर में रोगाणुओं से लड़ने की ताकत कम हो जाती है। इसीलिए आपने देखा होगा कि जरा सी ठंडी हवा में बैठने से प्रायः जुकाम हो जाता है।

अत्यधिक शोरगुल से सिर्फ झुंझलाहट और मानसिक तनाव ही नहीं होता अपितु उससे व्यक्ति बहरा हो सकता है, बोलने में रुकावट आ सकती है और प्रतिकूल शारीरिक परिवर्तन हो सकता है।

बोध प्रश्न 8

1 अच्छे घर के अभाव में फैलने वाले रोगों का उल्लेख कीजिए।

.....

2 खेतों में शौच जाने से हैजा कैसे फैलता है?

.....

3 स्वास्थ्य पर विकिरणों के प्रभावों का उल्लेख कीजिए।

.....

22.7 भारत में स्वास्थ्य सेवाएँ

किसी भी देश में, जनता का स्वास्थ्य, उस देश की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक क्षमता पर निर्भर करता है। आइए अब हम अतीत से वर्तमान तक भारत की स्वास्थ्य पद्धति पर एक दृष्टिपात करें।

सिन्धुघाटी के युग में स्वच्छता पर बहुत ध्यान दिया जाता था। 5000 वर्ष पहले के मोहनजोदड़ो नगर में लोक स्वास्थ्य सुविधाएँ थीं। लगभग सभी घरों में स्नानागृह, शौचालय, जलाशय और बड़ी सावधानी से बनाए गए कुएं थे। हालांकि आज इसकी कल्पना करना कठिन है कि उस समय मनुष्य के सामने किस प्रकार की स्वास्थ्य-समस्याएँ थीं, पर इतना निश्चित है कि वे अपने स्वास्थ्य के प्रति सतर्क थे।

जैसा कि आपने इकाई 3 में पढ़ा वैदिक काल में चिकित्सा-विज्ञान जादू-टोने झाड़फूंक और धर्म के दायरे से निकलकर तर्कसंगत तरीके तक पहुँच गया। उस समय भी लोग जानते थे कि शरीर और पर्यावरण में गहरा संबंध है। दोनों के बीच होने वाली अन्तःक्रिया स्वस्थ और रुग्ण शरीर की निर्णायक है। ठीक यही हमारा आज का विचार है। रोग मनुष्य और उसके पर्यावरण के बीच जटिल अन्तःक्रिया का परिणाम है। इस प्रकार आपने देखा कि उस समय पर्यावरण पर अर्थात् रोग के निवारक पहलू पर अधिक जोर दिया जाता था। स्वास्थ्य के लिए रोगरोधी पहलू की यह परम्परा भारत के सुनहरे युग तक चलती रही।

भारतीय विज्ञान के ह्रासकाल के समय हमारी चिकित्सा पद्धति उन्नत न हो सकी। चिकित्सा गलत लोगों के हाथ में चली गई और हमारी प्राचीन चिकित्सा प्रणाली का वैज्ञानिक आधार पूर्ण रूप से खंडित हो गया। उपनिवेशीय शोषण से निर्धनता बढ़ी और स्वास्थ्य के लिए पर्यावरण प्रतिकूल बन गया। इसके फलस्वरूप रोग बढ़ने लगे। पाश्चात्य पद्धति की चिकित्सा जो कुछ शताब्दी पहले ही अस्तित्व में आई थी, शहर के सिर्फ मुट्ठीभर रईस ही उसका लाभ उठा सकते थे। वह आम जनता के बस की बात न थी। पाश्चात्य औषध-निर्माताओं के विशेष रूप से भारत के बाजारों में अपनी औषधियाँ बेचने के प्रयत्नों ने भारतीय चिकित्सा पद्धति से जुड़े पढ़े-लिखे लोगों में अविश्वास का वातावरण पैदा कर दिया।

भारत में विज्ञान की सक्रिय भूमिका अज्ञानता, गरीबी और बीमारी दूर करना है यह एक ऐसा शक्तिशाली साधन है जो सामाजिक परिवर्तन द्वारा करोड़ों मनुष्यों को दीर्घ व सुखी जीवन प्रदान कर सकता है।

जवाहरलाल नेहरू,
1947, साईंस कांग्रेस

स्वतंत्रता के समय देश भर में रोग फैले थे और जनता कुपोषित थी। अतः सरकार ने देश भर में स्वास्थ्य सेवाओं का जाल बिछाने और लोगों के स्वास्थ्य स्तर को सुधारने के लिए विभिन्न नीतियों, राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों और लक्ष्य पूर्ति हेतु उनकी समय-सारणियाँ भी बनवाईं। हालांकि 20 वर्ष पश्चात् जब इन कार्यक्रमों का लेखा-जोखा किया गया तो पता लगा कि उपलब्धियाँ कुछ विशेष नहीं थी। भारत सरकार की 1983 की राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति में कहा गया है कि देश की जनसंख्या और स्वास्थ्य अभी भी गंभीर चिन्ता का विषय हैं, इस पर तुरन्त ध्यान दिया जाना चाहिए। इतने वर्षों में हम जनसंख्या, स्त्रियों, बच्चों और शिशुओं की मृत्यु दर, कुपोषण, तपेदिक और कुष्ठ रोग जैसे संक्रामक रोगों, पौष्टिक आहार की कमी से होने वाले रोगों, स्वच्छ पानी, पर्यावरण स्वच्छता आदि से संबंधित प्रमुख प्रश्नों को हल करने में असफल रहे हैं।

साथ ही यह भी निष्कर्ष निकाला गया कि ये कार्यक्रम इसलिए असफल रहे क्योंकि हमने रोगों की रोकथाम के बजाय रोगों की चिकित्सा पर अधिक ध्यान दिया था। अन्य शब्दों में हमने अपनी स्वास्थ्य सेवाओं के लिए पाश्चात्य पद्धति पर आधारित "चिकित्सात्मक पक्ष" अपनाया था।

आज भी हमारी अधिकांश स्वास्थ्य संस्थाएँ चिकित्सा पर अधिक ध्यान देती हैं और रोगों की रोकथाम एवं स्वास्थ्य की देखभाल पर कम। ये हमारे गांवों की आवश्यकताओं के अनुरूप सिद्ध नहीं हुई। आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित बड़े-बड़े अस्पतालों ने सिर्फ शहरों में रहने वाले धनीवर्ग को ही लाभ पहुँचाया है।

सन् 1981 की जनगणना के अनुसार हमारी कुल जनसंख्या 68.5 करोड़ थी जिसमें 16 करोड़ (23%) लोग शहरों में तथा 52.5 करोड़ (77%) गाँवों में रह रहे थे। जैसा कि तालिका 22.4 से स्पष्ट है कि भारत के गाँवों व शहरों में अस्पतालों, डिस्पेंसरियों और बिस्तरों की संख्या इस अनुपात के विपरीत है। जैसा कि इन आंकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि 72% अस्पताल और 86% बिस्तर शहरी क्षेत्रों में हैं।

तालिका 22.4 : ग्रामीण और शहरी क्षेत्र में अस्पतालों, डिस्पेंसरियों और बिस्तरों की संख्या

	कुल संख्या	शहर	गांव
अस्पताल	7764	6131	1633
बिस्तर (अस्पतालों में)	555246	478910	76354
डिस्पेंसरियाँ	25879	12110	13761
(बिस्तर डिस्पेंसरियों में)	39483	11060	28423

डॉक्टरों और नर्सों से संबंधित आंकड़ों को देखने से पता चलता कि उनकी संख्या कम नहीं है। देश में 1985 में रजिस्टर्ड डॉक्टरों की संख्या 3,06,966, दांतों के डॉक्टरों की संख्या 9,598 और नर्सों की संख्या 1,97,735 थी। संख्या में वृद्धि के बावजूद भी अधिकांश डॉक्टर शहरों में है और बेचारी ग्रामीण जनता जिसे उनकी ज्यादा जरूरत है — उनकी सेवाओं से वंचित है। अधिकांश गांवों में पीने के स्वच्छ पानी की या सफाई संबंधी व्यवस्थाएँ नहीं है। (तालिका 22.5)।

तालिका 22.5 : ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में पानी की व्यवस्था और पर्यावरण स्वच्छता

	जनसंख्या प्रतिशत	
	शहर	गाँव
जल व्यवस्था	82	33
गंदे पानी की निकासी की व्यवस्था	27	—
शौचालय	*	2

* आंकड़े उपलब्ध नहीं है।

सन् 2000 तक सबके लिए स्वास्थ्य एक विश्वव्यापी आंदोलन है, जिसका प्रवर्तन विश्व स्वास्थ्य संगठन ने किया और अल्मा एटा (U.S.S.R.) में 1978 में संपन्न अंतर्राष्ट्रीय अधिवेशन ने उसका समर्थन किया। सबके लिए स्वास्थ्य का तात्पर्य है "हर व्यक्ति के लिए स्वास्थ्य का वह स्तर जिससे वह सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से सार्थक जीवन व्यतीत कर सके।

स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाएँ "प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों" के रूप में विकसित की गईं जो राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवाओं के सांस्थानिक केन्द्र हैं। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों का उद्देश्य जनता की छोटी से छोटी इकाई को स्वास्थ्य सेवा प्रदान करना है। भारत में 14,145 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और 98,987 उप-केन्द्र हैं। ये नर्सों, दाइयों, स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं, स्वास्थ्य निरीक्षकों आदि सहित 19,640 डॉक्टरों द्वारा चलाए जाते हैं। राष्ट्र भर में फैले प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र ही "आल्मा आटा" घोषणा के अनुसार इस शताब्दी के अंत तक "सबके लिए स्वास्थ्य" जुटाने का साधन है। तालिका 22.6 में मृत्यु दर के आधार पर भारत के शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य स्तर को, मृत्यु दर सूचक चिह्नों (mortality indicators) द्वारा दिखाया गया है। ये परिणाम प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के कार्य में अपर्याप्तता को दर्शाते हैं।

तालिका 22.6 : भारत के ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य स्तर को दर्शाने वाले आंकड़े

		वार्षिक दर/1000 जनसंख्या	
	कुल	शहर	गांव
जन्मदर	33.7	23.3	35.3
मृत्युदर	11.9	7.9	13.0
शिशु मृत्युदर	106	60	122

विभिन्न स्वास्थ्य कार्यक्रम मुख्यतः व्यक्ति और परिवारों को शामिल करने में असफल रहे हैं जो ग्रामीण क्षेत्रों में समुदायों को आत्म-निर्भर बनाने के लिए आवश्यक है। इसके विपरीत ग्रामीण लोग चिकित्सा केन्द्रों यानि कि अस्पतालों और दवाखानों पर अधिक निर्भर हो गये हैं। हमारे शिक्षण, प्रशिक्षण और अनुसंधान संस्थानों एवं प्रतिष्ठित अस्पतालों की

कार्यप्रणाली ऐसी है कि हम पुस्तकों, उपकरणों, औषधियों और यहाँ तक कि विचारों के लिए भी औद्योगिक राष्ट्रों पर बहुत अधिक निर्भर हैं।

समुदाय स्वयं ही अपनी स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ हल कर सकें, इसके लिए हाल ही में "बहु-अनुशासनिक" नीति अपनाई गई है। इसके लिए चिकित्सा एवं समाज वैज्ञानिकों दोनों का सहयोग आवश्यक है। हालांकि अनेक समाज वैज्ञानिक भी स्वतः मानते हैं कि पाश्चात्य पद्धतियाँ आधुनिक, बढ़िया और वांछनीय हैं और उन्हें अपनाया जाना चाहिए।

वस्तुतः गांवों में और अधिक बोधगम्य सामाजिक पहुँच की आवश्यकता है। यह जानना जरूरी है कि लोग अपनी स्वास्थ्य समस्याओं को कैसे लेते हैं। उनके लिए सामाजिक व सांस्कृतिक दृष्टि से इन समस्याओं का क्या अर्थ है? कार्यक्रम और स्वास्थ्य सेवाएँ ऐसी होनी चाहिए कि उनका समुदाय की वर्तमान संस्कृति के साथ तालमेल बैठ सके।

ग्रामीण जनता को स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराने के लिए राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवाओं में ऐलोपेथी, आयुर्वेदिक, यूनानी और होम्योपैथिक पद्धतियों के चिकित्सकों को मिल कर काम करना होगा। इन सेवाओं के लिए हमें अपने मॉडल (model) बनाने होंगे, जिससे कि समुदायों में स्वास्थ्य संबंधी आत्मनिर्भरता आ सके। जल व्यवस्था, स्वच्छता और सही पोषण को प्राथमिकता देनी होगी और इस प्रकार जनता का स्वास्थ्य स्तर सुधरेगा।

बोध प्रश्न 9

निम्नलिखित कथनों में कौन-सा सत्य (स) है और कौन सा असत्य (अ) है? नीचे दिए गए खानों में (स) अथवा (अ) लिखकर बताइए।

i) आज के भारत में जनता में स्वास्थ्य के प्रति जानकारी और स्वच्छता का स्तर सिंधु घाटी युग से निम्न है। ☐

ii) जनता का स्वास्थ्य स्तर उपनिवेशीय काल में आधुनिक औषधियों की प्राप्यता के कारण बेहतर हो गया था। ☐

iii) "चिकित्सा पर आधारित केन्द्र" हमारी ग्रामीण जनता की स्वास्थ्य आवश्यकताओं के लिए अनुपयुक्त सिद्ध हुए हैं। ☐

iv) ग्रामीण जनता के स्वास्थ्य स्तर को सुधारने के लिए आयुर्वेदिक, यूनानी और होम्योपैथिक जैसी पारम्परिक पद्धतियों का परिहार आवश्यक है। ☐

v) प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की सफलता स्वास्थ्य कार्यक्रमों में ग्रामीण समुदायों के सहयोग पर निर्भर है। ☐

22.8 सारांश

इस इकाई में हमने आपको यह बताने का प्रयत्न किया है कि प्रौद्योगिक व वैज्ञानिक प्रगति से कैसे रोगों का रहस्योद्घाटन हुआ और लाखों करोड़ों लोगों की रक्षा संभव हुई। आपने पढ़ा कि :

- संक्रामक रोग विभिन्न प्रकार के कीटाणुओं से होते हैं।
- पर्यावरण में विद्यमान सूक्ष्म जीव, वायु, पानी और भोजन द्वारा हमारे शरीर में प्रवेश पाते हैं। शरीर में इनकी संख्या में वृद्धि होती है और व्यक्ति रोगी हो जाता है। फिर रोगी उन्हें बहुत बड़ी संख्या में पर्यावरण में छोड़ता है और कई लोगों को संक्रमित करता है।
- हमारे शरीर का सुरक्षा तंत्र रोगाणुओं से लड़ने में सक्षम है। आधुनिक औषधियाँ इस सुरक्षा तंत्र की सहायता करती हैं।
- रोग मनुष्य और उसके वातावरण के बीच असंतुलन का परिणाम है। जनता के स्वास्थ्य स्तर को सुधारने के लिए पीने के लिए शुद्ध पानी, समुचित आवास व्यवस्था और उचित सफाई का प्रबन्ध आवश्यक है।
- राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम में "चिकित्सात्मक प्रधान प्रणाली" अपनाकर जनता का स्वास्थ्य स्तर उन्नत करने में सीमित सफलता प्राप्त हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों में रोगों की रोकथाम के लिए हमें सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, राजनैतिक व पर्यावरणीय पहलू से राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवाओं का पुनर्गठन करना होगा।

22.9 अन्त में कुछ प्रश्न

1 बताइए निम्नलिखित रोग किन रोगाणुओं से होते हैं?

रोग	रोगाणु
i) हैज़ा	
ii) दाद	

iii) एड्स

iv) छोटी माता

v) मलेरिया

vi) नारू रोग

2 अपनी बस्ती में सर्वेक्षण कर पिछले छः महीनों में फैले संक्रामक रोगों का पता लगाइए और बताइए कि क्या इन रोगों के फैलाव में वातावरण का कोई योगदान रहा है ?

.....

.....

.....

.....

3 टीकाकरण रोगों को रोकने में किस प्रकार सहायक है, संक्षेप में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

22.10 उत्तर

बोध प्रश्न

1 i) स्वस्थ, सही ii) बौद्धिक, संवेदनात्मक

2 क) i) अ, ii) स, iii) अ
ख) अपने प्रश्नों के उत्तर के लिए तालिका 22.1 देखिए।

3 1) अ, 2) अ, 3) स, 4) अ

4 क) 1) अ, 2) स, 3) अ, 4) स, 5) स, 6) स
ख) 1) त्वचा, 2) स्वस्थ, 3) भोजन, पानी, रोगाणुओं से युक्त उंगलियों से

5 i) निगलकर, जीव-विष, प्रतिपिण्ड ii) रक्षक, परिभ्रमण iii) सुरक्षातंत्र iv) पराजित v) मारने में vi) निर्बल, शरीर, प्रशिक्षित

6 1) वायु, 2) पानी, मक्खियाँ, 3) वायु, 4) वायु, 5) पानी, 6) वायु, 7) वायु,8) मच्छर

7 i) क) खाने के पहले और बाद में हाथ धोना।
ख) नहाने के बाद ही रसोई घर में जाना।

ii) औद्योगिक क्रांति के समय श्रमिक बहुत ही खराब हालत में रह रहे थे। गन्दे पानी की निकासी की कोई व्यवस्था नहीं थी, घरों के सामने कचरे के ढेर लगे थे और कसाई घरों में मक्खियाँ भिनभिनाती थीं।

iii) कुछ रोग जीवाणुओं से होते हैं जो गन्दगी में पनपते हैं। इसलिए गन्दगी और कचरे को हटाकर जीवाणुओं के पनपने के स्थानों को समाप्त कर दिया गया और रोगों पर नियंत्रण पाया जा सका।

8 i) फुफ्फुस संक्रमण, काली खांसी, डिप्थीरिया, तपेदिक आदि।

ii) हैज़े के जीवाणु हैज़े से ग्रस्त व्यक्ति के मल के साथ निकलते हैं। रोगी जब खेतों में शौच जाता है तो जीवाणु पैरों, वर्षा के पानी या अन्य किसी प्रकार से, समीप के जल-स्रोतों तक पहुँच जाते हैं और इस पानी को पीने से लोग हैज़े के शिकार होते है।

iii) विकिरणों से
क) विभिन्न प्रकार का कैंसर हो जाता है, जैसे ल्यूकेमिया और घातक रसौली।
ख) शरीर के ऊतकों को क्षति पहुँचती है।

9 ° i) स, ii) अ, iii) स, iv) अ, v) स

अन्त में कुछ प्रश्न

1 i) जीवाणु, ii) कवक, iii) विषाणु, iv) विषाणु, v) प्रजीवाणु, vi) कृमि

2 टीकाकरण, रोग से प्रतिरक्षा का एक तरीका है। टीके द्वारा निर्बल या मृत जीवाणु को शरीर में डालकर शरीर की सुरक्षा पद्धति को सक्रिय कर दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप विशेष रक्त कोशिकाएं उत्पन्न होती है और जीवाणुओं से संघर्ष करती हैं। ये श्वेत रक्त कोशिकाएं उन जीवाणुओं को भूलती नहीं है और उनसे लड़ने में दक्ष हो जाती हैं इसलिए इन्हें प्रशिक्षित कोशिकाओं के रूप में भावी लड़ाई के लिए सुरक्षित रख लिया जाता है।

शब्दावली

एमिनो एसिड : एमिनो एसिड प्रोटीन के निर्माण आधार हैं।

एनीमिया : रक्त में हीमोग्लोबिन की कमी।

एन्ज़ाइम : ये प्रोटीन यौगिक हैं। ये जीवित ऊत्तकों द्वारा उत्पन्न होते हैं तथा उपापचय प्रतिक्रिया को त्वरित करते हैं।

कुपोषण : आवश्यकता से कम मात्रा में भोजन लेने के परिणामस्वरूप सामान्यतः जो बीमारियाँ होती है, उसे कुपोषण कहा जाता है। इसका कारण है, भोजन में एक या एक से अधिक अतिआवश्यक तत्वों की कमी।

किलो कैलोरी : ऊष्मा मापने की एक इकाई । एक कि.ग्रा. पानी को 1° से. तापमान तक लाने के लिए जितनी ऊष्मा की आवश्यकता होती है, उसे 1 कि. कैलोरी कहते हैं।

क्वाश्योरकर : प्रोटीन की कमी से होने वाला रोग जो कुपोषित बच्चों में पाया जाता है। इसके लक्षण हैं, वृद्धि का रुकना, शोथ और त्वचा में वर्णक का परिवर्तन होना आदि।

गलगंड (घेघा) : थायरॉयड ग्रंथि का बढ़ जाना।

जननद्रव्य : वे आनुवंशिक पदार्थ जिनके माध्यम से पैतृक गुण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को स्थानान्तरित होते हैं।

पोषक : एमिनो एसिड, वसा और कैल्शियम जैसे पदार्थ जो शरीर के लिए आवश्यक होते हैं।

पेलाग्रा : "विटामिन बी" की कमी से त्वचा, जठरांत्र तंत्र और तंत्रिका तंत्र में होने वाला रोग।

प्रतिरक्षी : वह प्रोटीन पदार्थ जो किसी जीव के शरीर में उत्पन्न हो कर नुकसान पहुँचाने वाले अन्य जीवों तथा पदार्थों से बचाव करते हैं।

फसल चक्र : विभिन्न फ़सलों की एक के बाद क्रमवार रोपाई करना।

बेरी-बेरी : यह विटामिन "बी" की कमी से होने वाला रोग है, इसके लक्षण बहुत कमजोरी, तंत्रिका तंत्र में विकार, शोथ तथा हृदय का कमजोर हो जाना है।

ताउन प्लेग : यह जीवाणुओं द्वारा होने वाला रक्त का घातक रोग है। यह पिस्सुओं, तथा श्वसन स्राव द्वारा फैलता है।

रक्षक मेखला : मिट्टी की नमी को बढ़ाने के लिए मैदानों या खेतों के किनारे कतारों में पेड़ और झाड़ियाँ उगाना।

रिकेट्स : विटामिन "डी" या कैल्शियम या दोनों की कमी से होने वाला हड्डियों का रोग, जिससे हड्डियों में विकार उत्पन्न हो जाता है।

लाइसोज़ाइम : एक प्रकार का पाचक एन्ज़ाइम जो कोशिका के लाइसोजोम में पाया जाता है।

सूखा रोग : प्रोटीन और कैलोरी की अत्यधिक कमी के कारण कृशकाय हो जाना। यह उन बच्चों में अधिक होता है जिनको पर्याप्त भोजन नहीं मिलता।

शस्यन पद्धति : खेती करने के तरीके।

शुष्क भूमि : वे क्षेत्र जहां कम वर्षा होने के कारण वनस्पति नहीं उग पाती।

सीमाकारी कारक : रासायनिक या भौतिक कारक जो विशेष पारिस्थितिक तंत्र में जीव के जीवित रहने का निर्धारण करता है।

हार्मोन : वे पदार्थ जो शरीर की विशेष ग्रंथियों में उत्पन्न होते हैं तथा अन्य अंगों को विशेष रूप से प्रभावित करते हैं।

हीमोग्लोबीन : लाल रक्त कोशिकाओं में उपस्थित लौह-प्रोटीन वर्णक जो शरीर के सभी ऊतकों को आक्सीजन पहुँचाते हैं।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1 **फसल विज्ञान**, डॉ. चंद्रिका ठाकुर, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
2 **भारत में कृषि का विकास**, डॉ. हरिशंकर प्रसाद सिन्हा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
3 **कृषि अर्थशास्त्र एवं प्रबंध**, विन्सेन्ट, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
4 **भारतीय खाद्यान्नों के पौष्टिक मान**, सी. गोपाल, एस.सी. बाल सुब्रमण्यम, वी. राम शास्त्री हरियाणा साहित्य अकादमी।
5 **स्वास्थ्य एवं जीवाणु विज्ञान**, कुसुम कुमारी साह, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी।
6 **आहार एवं पोषाहार** , डॉ. सत्यदेव आर्य, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।

NOTES

NOTES